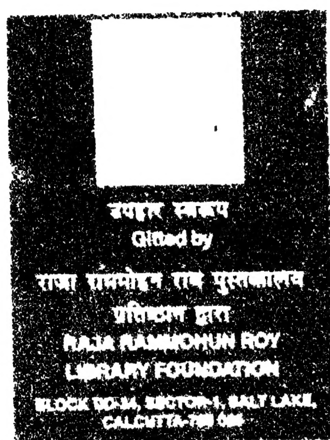


प्रेमचंद रचनावली

19

प्रेमचंद
रचनावली
19



पत्र

चिट्ठी पत्री

प्रेमचंद रचनावली

खण्ड : उन्नीस

भूमिका एवं मार्गदर्शन

डॉ॰ रामविलास शर्मा





प्रकाशकीय

'प्रेमचंद रचनावली' का प्रकाशन **जनवाणी** के लिए गौरव की बात है। कॉपीराइट समाप्त होने के बाद प्रेमचंद साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित-प्रचारित हुआ। पर उनका सम्पूर्ण साहित्य अब तक कहीं भी एक जगह उपलब्ध नहीं था। लगातार यह जरूरत महसूस की जा रही थी कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन हो।

श्रेष्ठ और कालजयी साहित्यकारों के समग्र कृतित्व का एकत्र प्रकाशन कई दृष्टियों से उपयोगी होता है। इसी आलोक में **'प्रेमचंद रचनावली'** की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख बहुत आवश्यक है। इस रचनावली में पहली बार सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य सर्वाधिक शुद्ध और प्रामाणिक मूल पाठ के साथ सामने आया है। सम्पूर्ण रचनाओं का विभाजन पहले विधावार तत्पश्चात् कालक्रमानुसार किया गया है। रचनाओं के प्रथम प्रकाशन एवं उनके कालक्रम संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रत्येक रचना के अन्त में दी गई है जिससे प्रेमचंद के कृतित्व के अध्ययन और मूल्यांकन में विशेष सुविधा होगी। इसकी अधिकांश सामग्री प्रथम संस्करणों या काफी पुराने संस्करणों से ली गई है। प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के लिए इस रचनावली का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें प्रेमचंद की अब तक उपलब्ध सम्पूर्ण तथा अद्यतन सामग्री का समावेश कर लिया गया है। रचनावली के बीस खण्डों का क्रमबद्ध प्रारूप इस प्रकार है--

> **खण्ड 1-6 :** मौलिक उपन्यास, **खण्ड 7-9 :** लेख, भाषण, संस्मरण, संपादकीय, भूमिकाएं, समीक्षाएं, **खण्ड 10 :** मौलिक नाटक; **खण्ड 11-15 :** सम्पूर्ण कहानियां (302), **खण्ड 16-17 :** अनुवाद (उपन्यास, नाटक, कहानी), **खण्ड 18 :** जीवनी एवं बाल साहित्य, **खण्ड 19 :** पत्र (चिट्ठी पत्री); **खण्ड 20 :** विविध।

रचनावली की विस्तृत भूमिका मूर्धन्य आलोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखी है, जो इस रचनावली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। डॉ॰ शर्मा ने अपनी साहित्य-साधना के व्यस्त क्षणों में भी हर कदम पर हमारा मार्गदर्शन किया। रचनावली का जो यह उत्कृष्ट रूप सामने आया है यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस कृपा और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति नतमस्तक हूं।

बिहार विधान परिषद् के माननीय सभापति, हिन्दी और उर्दू के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो॰ जाबिर हुसेन ने प्रेमचंद रचनावली के संपादक-मण्डल का अध्यक्ष होना स्वीकार किया और रचनावली के संपादन कार्य में हमारा उचित मार्गदर्शन किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। साथ ही संपादक-मण्डल के विद्वान सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

श्री केशवदेव शर्मा ने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सम्पादन कार्य में जिस गहरी लगन, समझदारी और आत्मीयता से सहयोग किया है उसके लिए उनके प्रति अनेकशः धन्यवाद। उनका अहर्निश सानिध्य मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहा। डॉ॰ गीता शर्मा एवं डॉ॰ अशोक कुमार शर्मा, वेद प्रकाश सोनी तथा डॉ॰ विनय के प्रति भी उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूं।

भाई राम आनंद साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान **'सरस्वती प्रेस'** से जुड़ गए थे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने स्व॰ श्रीपत राय (प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र) के मार्गदर्शन में अप्राप्य प्रेमचंद साहित्य पर शोध कार्य किया। वे स्व॰ श्रीपत राय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा-पत्रिका **'कहानी'** के सहायक संपादक रहे। श्रीपत राय के देहांत के बाद उन्होंने **'कहानी'** का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। उन्होंने जिस गहरी सूझ-बूझ, लगन, धैर्य और निष्ठा से इस रचनावली के संपादन कार्य को इतने सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से संपन्न किया, इसके लिए वे हम सबों के साधुवाद के पात्र हैं।

श्री हरीशचन्द्र वार्ष्णेय, श्री प्रेमशंकर शर्मा, श्री उदयकान्त पाठक ने प्रूफ-संशोधन और सम्पूर्ण मुद्रण कार्य में विशेष जागरूकता और मनस्विता का परिचय दिया; इनके साथ विमलसिंह, आर॰ के॰ यादव, सुनील जैन, शिवानंदसिंह तथा संस्था के अन्य सभी सहकर्मियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं क्योंकि इन सबके सहयोग और सद्भाव के बिना यह काम पूरा होना लगभग असंभव था।

मेरी भ्रातृजा रीमा और भ्रातृज संदीप, संजीव, मनीष, विक्रांत, चेतन की लगन और सूझबूझ ने भी मुझे सदैव प्रेरित और उत्साहित किया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

रचनावली के मुद्रण का कार्य श्री कान्तीप्रसाद शर्मा की देखरेख में हुआ है। उनकी सूझबूझ और श्रमनिष्ठा के लिए वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

सर्वश्री विजयदान देथा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामकुमार कृषक, स्वामी प्रेम जहीर, डॉ॰ कुसुम वियोगी, रामकुमार शर्मा आदि सभी मित्रों के सुझावों के लिए भी आभारी हूं।

इस कार्य में पूज्य माताजी श्रीमती जसवन्ती देवी का आशीर्वाद और पिताश्री प्रेमनाथ शर्मा का दीर्घकालीन प्रकाशन-व्यवसाय का अनुभव और आशीर्वाद मेरे विशेष प्रेरणा स्रोत रहे। इनके साथ मातृतुल्या भाभी श्रीमती ललिता शर्मा, अग्रज राजकुमार शर्मा, चमनलाल शर्मा, धर्मपाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी इन्दु शर्मा के साथ भाई हरीशकुमार शर्मा एवं सुभाषचन्द्र शर्मा के साथ ही चाचा श्री दीनानाथ शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग-दर्शन किया। और सबसे अंत में सहधर्मिणी श्रीमती गीता शर्मा ने जो सहयोग और संबल प्रदान किया उसके लिए आभार अथवा धन्यवाद जैसा शब्द बहुत कम होगा। सारा श्रेय उन्हीं का है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सहयोग से दुर्लभ पुस्तक 'महात्मा शेखसादी' लगभग सत्तर वर्ष बाद एक बार फिर इस रचनावली के मार्फत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। उन समस्त संस्थानों, पुस्तकालयों, विभागों, संस्थाओं, लेखकों, संपादकों, अधिकारियों और व्यक्तियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने इस रचनावली के आयोजन में सहयोग किया।

अन्त में विद्वान पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस रचनावली की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें ताकि आगामी संस्करणों में उन्हें दूर किया जा सके।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी जगत् इस बहु-प्रतीक्षित रचनावली का हार्दिक स्वागत करेगा।

अरुण कुमार
(प्रबंध निदेशक)





महताब राय (मँझले छोटे भाई)



राय (ज्येष्ठ पुत्र)



अमृत राय (कनिष्ठ पुत्र)

with this problem & have only such members as believed in a common language. It should have brought out a magazine in a common language in different scripts. It would have been a real service. At present its activities are communal and it has failed to justify its existence.

Contd.-by Hindustani is not a literary language in form & magnificence & grandiose. Literary language is supposed to be something apart from the spoken language. I believe in our literary expression coming as near as possible to spoken speech. At least in drama, story & novel we can write in popular language, including biography and travel, and these branches comprise three fourths of literature & that which really matters. Your science & philosophy may be written in Sanskrit or Prakrit I don't care. As Gasonsee Lacy says 'to drag thinking to its ancient moorings in the vain effort to turn the river's flow to its source.'

About the books I have asked my son to give you an account with whom he deposited the books. You may not be aware, my both children are at Kayastha Pathshala Intermediate School and lodging in the same building as Hindustani Academy. But they are shy extremely which they seem to have inherited from me supposing I am their father. His name is Sripat Rai. If you can send for him and ask an explanation he will tell you what became of the books.

. Lekhak Sangha. Its only fruitful activity is in my opinion cooperative publication, so that every author contributing to its membership may be assured a royalty of 30 to 40%. The Hindi market is so dull and authors are so anxious to get their books published that they will come to any compromise with the publishers. If they stick to their terms & publishers refuse to publish their books, the poor fellow will be nowhere. The analogy is that

प्रेमचंद

चिट्ठी | पत्री

१

संकलन-लिप्यंतर-शब्दार्थ

अ मृ त रा य

मदन गोपाल

प्रेमचंद

चिट्ठी | पत्री

२

संकलन सम्पादन-[illegible]

अमृतराय

परतावगढ़ 30 जनवरी 1905

जनाब मुकर्रम बन्दा,

तसलीम। इनायतनामा पहुँचा। मशकूर हूँ। मैंने यहाँ हरचन्द तलाश किया, तनक़ीद[1] नाविल कृष्ण कुँवर का कोई सफ़ा नहीं मिलता। मेरा जहाँ तक ख़याल है सफ़ा कोई गुम नहीं हुआ, सफ़ों पर नम्बर लिखने में मैंने ग़लती की है। अगर लेटर पेपर के तीन तख़्ते पूरे-पूरे मौजूद हों, तो तनक़ीद को मुकम्मिल समझ लीजिये। मैंने ग़ालिबन यूँ नम्बर दिये हैं. 1-3-5-7-9-11। दीगर इल्तमास[2] यह है कि अगर मुमकिन हो तो जनवरी वर्ना फ़रवरी के नम्बर में जरूर इस मजमून की इशाअत[3] हो जाये। मैं बड़े इश्तियाक़[4] से मुन्तज़िर हूँ कि आप ने मेरा नाविल अभी तक पढ़ा या नहीं। जवाब से सरफ़राज़ फ़रमाइए। ज़्यादा नियाज़।

ख़ाकसार, धनपत राय

स्कूल मास्टर, परतावगढ़।

1 समालोचना, 2 प्रार्थना, 3 प्रकाशन, 4 चाव।



इलाहाबाद, 20 फ़रवरी, 1905

प्रिय बाबू दयानरायन साहब,

दो महीने से ज़्यादा हुआ कि मुझे अपने उपन्यास की पाण्डुलिपि आपके पास अवलोकनार्थ भेजने का सौभाग्य हुआ था, इस आशा में कि आप मेरे लिए एक प्रकाशक जुटाने की कृपा करेंगे। मुझे याद है कि वह दिसम्बर की 8 तारीख थी जब कि मैंने किताब आपके पास भेजी थी। उसकी प्राप्ति की सूचना आपने 16 दिसम्बर को लिखी थी और वादा किया था कि आप इसके बारे में फिर मुझे लिखेंगे, लेकिन दो महीने से ज़्यादा निकल गये और आपने न तो पुस्तक पर ही दया दिखायी और न उसके लेखक पर। आपकी इस उदासीनता और सहानुभूति-शून्यता के लिए अपने भाग्य को ही दोषी मानता हूँ। यदि आपने मुझ पर वह अनुग्रह किया होता जिसकी मैंने आपसे याचना की थी तो यह निश्चय ही एक कृपा वल्कि दया का कृत्य होता, मुझमें आपको एक ऐसा व्यक्ति मिलता जो कृतघ्न नहीं है।

मेरा तबादला अब इलाहाबाद के लिए हो गया है और मेरी नियुक्ति ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद से सम्बद्ध माडेल स्कूल के हेडमास्टर के पद पर हो गयी है और मैंने अपने आपको नज़ायर क़ानून हिन्द प्रेस इलाहाबाद के प्रोप्राइटर बाबू बाँके बिहारी लाल के रहम-ओ-करम पर डाल दिया है। उन महाशय ने किताब को एक नज़र देख लेने के बाद उसको प्रकाशित करने में रुचि दिखलायी है। इसलिए आप कृपया पाण्डुलिपि जल्दी-से-जल्दी मेरे पास भेज दें और अगर मुनासिब समझें तो उसके साथ अपनी सिफ़ारिश के

दो लफ़्ज़ भी। मुझे यक़ीन है कि आपकी सिफ़ारिश का बहुत असर पड़ेगा। मैं आपका हृदय से आभारी हूँगा अगर आप उसको हफ़्ते भर के अन्दर भेज देने की कृपा करेंगे क्योंकि वह महाशय जल्दी ही यहाँ से आगरे चले जाने वाले हैं। मैं चाहता हूँ कि उनके जाने के पहले सारी बातें उनसे तय कर लूँ।

आशा करता हूँ कि आप मज़े में होंगे।

मैं हूँ आपका, धनपत राय

●●

पुनश्च–

मेरे रिव्यू के बारे में आपका क्या ख़याल है? क्या आप बराहे करम उसे अपने रिसाले में देंगे? अगर हां तो ता कब? मेरा ख़याल है कि आप शायद एक ही अंक में ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों समीक्षाएं न दे सकें। क्या आप कोई साहित्यिक समीक्षा लेना चाहेंगे?

अगर चाहते हैं तो कृपया सूचित करें। आपने किताब वापस मँगायी इससे पता चलता है कि अब और समीक्षा नहीं चाहिए। क्या मैं ग़लत हूँ?

उम्मीद है कि आप जल्द जवाब देंगे।

●●

बनारस जून, 1905

बरादरम,

अपनी बीती किससे कहूँ। ज़ब्त किये किये कोफ़्त हो रही है। ज्यों-त्यों करके एक अशरा काटा था कि ख़ानगी तरद्दुदात का ताँता बँधा। औरतों ने एक दूसरे को जली-कटी सुनाई। हमारी मख़दूमा[1] ने जल-भुन कर गले में फाँसी लगायी। माँ ने आधी रात को भाँपा, दौड़ीं, उसको रिहा किया। सुबह हुई, मैंने ख़बर पाई, झल्लाया, बिगड़ा, लानत-मलामत की। बीवी साहिबा ने अब ज़िद पकड़ी कि यहाँ न रहूँगी। मैके जाऊँगी। मेरे पास रुप्या न था। नाचार खेत का मुनाफ़ा वसूल किया, उनकी रुख़सती की तैयारी की। वह रो-धोकर चली गयीं। मैंने पहुँचाना भी पसन्द न किया। आज उनको गये आठ रोज़ हुए, न ख़त है न पत्तर। मैं उनसे पहले ही खुश न था, अब तो सूरत से बेज़ार हूँ। ग़ालिबन अबकी की जुदाई दायमी[2] साबित हो। खुदा करे ऐसा ही हो। मैं बिला बीवी के रहूँगा। बिल्ली बख़्शे, मुर्ग़ा लँडूरा ही रहेगा। उधर ननिहाल से वालिदा की तरफ़ से ज़िद है कि ब्याह रचे और ज़रूर रचे। जब कहता हूँ मैं मुफ़लिस हूँ, कंगाल हूँ, खाने को मयस्सर नहीं, तो वालिदा साहिबा कहती हैं, तुम अपनी रज़ामन्दी ज़ाहिर करो, तुमसे एक कौड़ी न माँगी जायगी। सुनता हूँ, बीवी हसीन है, बाशऊर है, जेब से ख़र्चने बग़ैर मिली जाती है, फिर तबीयत क्यों न भुरभुराये और गुदगुदी क्यों न पैदा हो। ईश्वर जानता है, दो-तीन दिन उसका ख़्वाब भी देख चुका हूँ। बहरहाल, अबकी तो गला छुड़ा लूँगा। आइंदा की बात नारायण के हाथ है। जैसी आपकी सलाह होगी वैसा करूँगा। इस बारे में अभी फिर मशवरा करने की ज़रूरत बाक़ी है।

रुपये आपने रवाना किये, पहुँचे। खत से रूह को मसर्रत[3] हासिल हुई। तीन बार से कम न पढ़ा होगा। किताबें और अखबार पहुँचे। उर्दूए मुअल्ला हस्बे मामूल पस्त है।

ज़माना की छपाई अबकी दो एक मज़मून की न वनी। लखनऊ और कानपुर की किताबत में साफ़ फ़र्क नज़र आता है। छपाई की सफ़ाई लिखाई के ऐब को नहीं मिटा सकी। मगर वक़्त से पर्चा निकले तो यह सब वागुज़ाश्तें[4] क़ाबिले मुआफ़ी हैं। अगर देर ही में निकलना है तो अपनी खूबियों में क्यों बट्टा लगाये। जून का पर्चा निकलते ही दस जिल्दें मय चार-पाँच अप्रैल की कापी के रवाना कीजिये। उनके पहुँचते ही ईंजानिब रवाना होंगे। फ़ेहरिस्त आपके पास पहुँची होगी। शायद इत्मीनान के क़ाबिल भी हो। जी तो चाहता था कि 50 ख़रीददारों के नाम यकबारगी लिखता मगर फ़िलहाल 16 ही पर क़नाअत की। उनके नाम पर्चे भेज दीजिये।

धोती-कुर्ता अपने तोशेख़ाने में रहने दीजिए, यहाँ भेजने की ज़रूरत नहीं, मेरा काम चल रहा है। सफ़र गाज़ीपुर, आज़मगढ़, बलिया, गोरखपुर और बनारस का करूँगा। बनारस ही में पन्द्रह-बीस ख़रीददार हो जावेंगे। ज़रा तबीयत ठिकाने हो जाये, तो काम शुरू करूँ। गर्मी की कुछ कैफ़ियत न पूछिये। कहलाने को तो साहबे मकान[5] हूँ और खुदा के फ़ज़ल से मकान भी सारे गाँव का महसूद[6] है, मगर रहने क़ाबिल एक कमरा भी नहीं। कोठे पर आग बरसती है। बैठा और पसीना चोटी से एड़ी को चला। नाचे के कमरे सब गंदे। परीशान। किसी में बैल बंधता है, किसी में उपले जमा हैं, कहीं अनाज का ढेर है, किसी में जाँत, चक्की, ओखली, मूसली वग़ैरह जुलूसफ़र्मा है। कोई बैठे कहाँ, सोए कहाँ। मजबूरन अनाज के घर में एक चारपाई की जगह निकाल ली है। उसी पर दिन-रात पड़ा रहता हूँ। अकेले घूमने कहाँ जाऊँ। बच्चे तीन-चार दिन के लिये आये थे। हमारी मख़दूमा को पहुँचाने के लिए बस्ती गये। वहाँ से अपने वालिद के पास चले जावेंगे। इस गर्मी में वैसा पढ़ना, कैसा लिखना। सुबह के वक़्त घंटा आध घंटा वर्क़गरदानी[7] कर लेता हूँ, बाक़ी रात दिन मैं हूँ और चारपाई। सुलक्कड़ बड़ा हूँ, मगर नींद भी कुछ मेरे घर की लौंडी नहीं। उस पर तरद्दुद अलग। कहाँ हँसी-मज़ाक़ में दिन कटता था, कहाँ चुप की मिठाई या गूँगे का गुड़ खाकर बैठना पड़ता है। अजब ज़ीक़[8] में जान मुबतिला है। भाई जल्दी से छुट्टी कटे और फिर यारों के जलसे और चहचहे-क़हक़हे हों। कोई बीस दिन से ज़्यादा गुज़रे, मगर क़सम ले लो जो ज़ुबान से प्यारा लफ़्ज़ 'बंदूक़' एक बार भी निकला हो।

अधबीच में छोड़ने वाले और होंगे। यहाँ तो जब एक बार बाँह पकड़ी तो ज़िन्दगी पार लगा दी। नौबत यय न आएं। क्या जहाँ मुर्ग़ा न होगा वहां सुबह न होगी। एडिटोरियल मैं सब कर लूँगा। ख़तो किताबत जो मुआमले की है वह मैं कर लूँगा। खास एडीटर की तवज्जो के क़ाबिल जो खुतूत होंगे वह ख़िदमते शरीफ़ में पेश होंगे। और काम करने का बन्दोबस्त होना ज़रूरी है। लेबल छपा लेंगे। आने का वक़्त आयेगा तो मशवरा हो रहेगा। जान गाड़ढ़े में न डालो। हिम्मते मर्दा मददे खुदा। हिम्मते एडीटराँ, मददे दोस्ताँ। हाँ, यह एलान करना ज़रूरी होगा कि नवाब राय स्टाफ़ में दाख़िल हो गये। बस। बाबू राम नारायण का क्या हश्र हुआ ? मैं उनको छोड़ आया था। कमलिया है या ग़ायब हो गया। बाबू रामसरन से प्यार और सलाम कहियेगा। यार, गज़ट निकले तो झटपट इत्तला देना।

(अंग्रेज़ी में) कुछ लेटर, पेपर और लिफ़ाफ़े भी।

1. स्वामिनी, 2. स्थायी, 3. खुशी, 4 भूल-चूक, 5 मकान-वाला 6 ईर्ष्या का पात्र 7. पन्ने पलटना 8. मुसीबत

●●

दुर्गासहाय 'सरूर' जहानाबादी

नया चौक, कानपुर, 16 नवम्बर 1907

जनाब मख़दूमी ओ मुकर्रमी,

तसलीम। मिज़ाजे अक़दस ? मुझे तो आप शायद भूल गये। अब याददेहानी करता हूँ। माह जनवरी, 1908 से इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस ने एक आला दर्जे का उर्दू रिसाला शाया करने की नीयत की है और इसकी एडिटरी की ख़िदमत मैंने आप लोगों की एयानत के भरोसे पर अपने ऊपर ली है। पहला नंबर 15 जनवरी को निकल जायेगा। रिसाला बातसवीर होगा। तसावीर और उम्दा लिखाई, छपाई और कागज का खुसूसियत से लिहाज़ रखा जायेगा। आप जानते हैं इण्डियन प्रेस कैसा मालदार है। वह जिस क़दर चाहे सर्फ़ कर सकता है। मैं चाहता हूँ कि पहले नंबर में नज़्म खासतौर पर ज़ोरदार हों और ऐसी नज़्मों के लिए आपके सिवाय और किससे इल्तिजा करूँ। मुआविज़ा जो कुछ मुनासिब होगा या जो कुछ आप फ़र्मायेंगे अक़ब से हाज़िरे खिदमत होगा। और रिसालों के मुकाबिले में आप इसे ज़्यादा खरा असामी पायेंगे। इय इल्तिमास करने की ज़रूरत नहीं कि पहली नज़्म आप ही की होगी। हाँ, यहरिसाला पोलिटिकल न होगा।

जवाब का मुन्तज़िर,

आपका नियाज़मन्द, धनपतराय उर्फ़ नवाब राय
मास्टर गवर्नमेण्ट स्कूल, कानपुर।

●●

नया चौक, कानपुर, 15 फ़रवरी 1908

हज़रत,

तसलीम। यादआवरी (याद करना) का शुक्रिया। नज़्म गुले फ़िरदौस नहीं पहुँची। आप फ़रमाते हैं मैं भेज चुका। फिर क्या बात है। अगर रवाना न फ़रमाया हो तो बरायइनायत भेज दीजिये। शायद आपके कागज़ों में रह गयी हो। मुबल्लिगात (रुपये) बहुत जल्द रवाना ख़िदमत होंगे। दिक़्क़त यह है कि अभी मेरी रुख़सत मंजूर नहीं हुई और कोई नंबर नहीं निकला। देखिए क्या होता है।

नियाजमन्द, नवाव राय

●●

दुर्गासहाय सुरूर को

नया चौक, कानपुर 15 फ़रवरी, 1908

हज़रत,

तसलीम ! यादावरी का शुक्रिया। नज़्म 'गुलोदोश' हमें नहीं पहुँची। आप फ़रमाते हैं, मैं भेज चुका, फिर क्या बात है ? अगर रवाना न फ़रमाया हो तो बराये-इनायत भेज दीजिए। शायद आपके कागज़ों में रह गई हो।

मुब्लेगात (माँगी चीज, प्रेष्य) बहुत जल्द रवाना ख़िदमत होंगे। दिक़्क़त यह है कि अभी मेरी रुखसत नहीं मंजूर हुई और कोई नम्बर नहीं निकला। देखिए, क्या होता है !

आपका, नवाब राय

●●

सम्भवतः 1936 का आरम्भ

प्रिय बनारसीदास जी, वन्दे !

यह एक छोटा-सा ड्रामा ('सृष्टि का आरम्भ'–गोयनका) बर्नार्ड शॉ की एक नयी रचना ('बैक टु मेथ्यूसेलह'–गोयनका) का अनुवाद है। इसे बड़े परिश्रम से कराया है। रचना कितनी उच्चकोटि की है, पढ़ने से ज्ञात होगी। किसी नाम की बहुत ज़रूरत हो तो ध.र. ('धनपतराय' जो प्रेमचन्द का मूल नाम था–गोयनका) दे दें। हाँ, पुरस्कार वही दें, जो आप अच्छे अनुवाद को दे सकें। आशा है, आप सानन्द होंगे।

भवदीय, धनपत राय।

●●

तिथि नहीं है; अनुमानतः सन् 1908

प्रिय निगम,

अगर आप ख़त ले जाने वाले के हाथ पाँच रुपये भेज सकें तो बड़ी मेहरबानी हो। आपके पुराने क़र्ज़े अब तक अदा नहीं हुए। मैंने कोशिश की और नाकाम रहा। मगर ख़ैर अब अगले महीने से क़िस्तवार देना शुरू करूँगा।[1]

आपका, धनपत राय।

1 रुक्क़ा अंग्रेज़ी में है। उसका तर्जमा दिया जा रहा है।

●●

तिथि नहीं है; अनुमानतः सन् 1908

भाईजान,

आज बाहर से आया हूँ। और यह कापियां देखकर रवाना करता हूँ। 'शायर अंजाम' मिला। शुक्रिया। अब तीन दिन की तातील है। क़िस्सा साफ़ हो जायगा। बाहर मुतलक़ (बिल्कुल) फ़ुर्सत न मिली।

मुंशी नौबत राय चलेगये। क्या होली की तक़रीब में ? मार्च भर मैं कुछ ख़िदमत नहीं कर सकता। अप्रैल से जो कुछ हुक्म दीजिएगा उसकी तामील होगी।

ज़्यादा नियाज़,

आपका, धनपत राय।

●●

हमीरपुर, 20 नवंबर, 1909

बरादरम,

ख़त मिला। मशकूर हुआ। आजकल फ़ुर्सत कम है। इसी वजह से 'शादी व ग़म' साफ़ न हो सका। रंजीत सिंह की भी ज़रूरत है। जल्द भेज दीजिए। वीकली के मुताल्लिक़ मेरा ख़याल अब भी है, मगर मेरा ख़याल है कि मैं मआश की फ़िक्र से आज़ाद होकर ज़्यादा काम कर सकता हूँ। मेरे अख़राजात रोज़ व रोज़ बढ़ते ही जाते हैं। अब कानपुर और महोबा, दो जगह का ख़र्च संभालना पड़ता है। अगर आप लैला और मजनं की मसनबी मुझे दे दें तो लैला पर एक अच्छा मज़मून लिखूं।

आपके लिखने से मालूम होता है कि नवम्बर और दिसम्बर दोनों नंबर अलक़त कर दिये। ऐसा न कीजिएगा।

वह अंग्रेज़ी नाविल भेज दीजिए। अगर हो सका तो फ़रमाइशे तामील कर दूँगा वर्ना मजबूरी है। तबादला फ़िलहाल ग़ैर-मुमकिन है। दीगर क्या अर्ज़ करूँ।

खाकसार, धनपतराय।



हमीरपुर, 18 मार्च, 1910

बरादरम,

आज दस रुपये मिले। मशकूर हूँ। मैं दो दिन से यहाँ आया हूँ और बहुत चाहता था कि एक दिन के लिए कानपुर चला आऊँ क्योंकि अब रेल खुल गयी है मगर 18 और 19-20, तीन दिनों में मुझे निस्फ़ दर्जन मदरसे देखने हैं और महोबा पहुँचना है। इस वजह से मजबूर हूँ। इन्हीं परीशानियों के बाइस इस हफ़्ते में कुछ न लिख सका। मुआफ़ कीजिएगा। अब महोबा पहुँचकर लिखूँगा। बाक़ी ख़ैरियत है। जी चाहता है कि नये नये वाक़यात पर कुछ नोटिस लिखा करूँ। मगर वाक़यात का इल्म मुझे उस वक़्त होता है जब वह अख़बारात में निकल चुकते हैं और उनके देर अज़ वक़्त हो जाने का खौफ़ रहता है। बहरहाल मैंने मुसम्मम इरादा किया है कि जुलाई और अगस्त में रुख़सत लूं और अपनी अख़बारी क़ाबलियत को आज़माऊँ। आइन्दा जैसा ईश्वर चाहें।

आपका, धनपत राय।



कुल पहाड़, 13 मई, 1910

भाईजान,

तसलीम। कई दिन हुए, आपका ख़त आया। जैसा आप फ़र्माते हैं वैसा ही होगा। मेरे क़िस्से अब कहीं न जायेंगे। मुआविज़े का ज़िक्र मुझे खुद मकरूह[1] मालूम होता है, मगर बात यह है कि छोटे क़िस्सों के गढ़ने में दिमाग़ी उलझन बहुत ज्यादा होती है और तावक़्ते कि तबीयत को यह झक न हो कि इस से कुछ मुबलिग[2] वसूल होंगे, वह इस काम की तरफ़ रुजू[3] नहीं होती। हक मानिये, यही बात है।

नवाब राय तो ग़ालिबन कुछ दिनों के लिये जहान से गये। दोबारा याददेहानी हुई है कि तुमने मुआहिदे[4] में गो अख़बारी मज़ामीन नहीं लिखे, मगर इसका मंशा हर क़िस्म की तहरीर[5] से था। गोया मैं कोई मज़मून ख्वाह किसी मज़मून पर--हाथी दांत पर ही क्यों न हो–लिखूँ, मुझे पहले वह जनाब फ़ैज-मआब[6] कलक्टर साहब बहादुर की ख़िदमत में पेश करना पड़ेगा। और मुझे छटे-छमासे लिखना नहीं, यह तो मेरा रोज़ का धन्धा ठहरा। हर माह एक मज़मून साहिबे वाला की ख़िदमत में पहुँचेगा, तो वह समझेंगे मैं अपने फ़राइज़े सरकारी में ख़यानत[7] करता हूं। और काम मेरे सर थोपा जायगा। इसलिए कुछ दिनों के लिए नवाब राय मरहूम हुए। उनके जाँनशीन कोई और साहब होंगे। आप मेरा मज़मून किताबत कराने के बाद मुंशी चिराग़ अली को दे दिया करेंगे। मुआवज़े की निस्बत जो आपने फ़रमाया वह मुझे मंजूर है। अगर मज़मून इतना बड़ा हो कि एक नम्बर में निकल जाय तो ख़ुम्स[8] और अगर एक से ज़्यादा नम्बरों में निकले–दो या तीन में–तो इसका अलमुज़ाइफ़[9]। यह मैं अब फिर कहता हूं और पहले भी कह चुका था मगर किसी वजह से वह रिमार्क आपने नज़रअन्दाज़ कर दिया, कि यह मुबल्लिग़ात मैं अपने तसर्रुफ़[10]

में नहीं लाऊँगा। ये एक मरहूम[11] दोस्त के पसमाँदगान[12] के नज़्र होंगे। इसलिये आप को भूल कर मुझ पर कमीनेपन, खुदग़र्ज़ी और तमा[13] का इलज़ाम न आयद करना चाहिये। आप के इस ख़त के उखड़े ढंग से मालूम होता है कि आप कुछ कहना चाहते हैं, मगर कहते नहीं। यह सब मज़ामीन जिनका आग़ाज़[14] कुंड से होता है (और ईश्वर ने चाहा तो शायद कुछ दिनों तक यह सिलसिला जारी रहे) जल्द या बदेर क़िस्से की शकल में निकलेंगे। अगर आप निकालेंगे तो चौथाई नफ़ा मेरा, और मैं निकालूँगा तो चौथाई नफ़ा आपका। गोया मेरा और आपका उन पर बराबर का अख़्तियार रहेगा। मेरा नाता उन से 'ज़माना' में निकल चुकने के बाद भी लगा रहेगा।

किताबों की फ़ेहरिस्त भेजी थी। उनकी क़ीमत मैनेजर साहब ने न लिखी। स्वामी रामतीर्थ के लिए मैं क्या फ़िक्र करूँ। अगर आप इसे टैक्स्ट बुक कमेटी में भेज कर इनाम की मद में मंजूर करा लें तो अलबत्ता सौ पचास जिल्दें निकलवा सकता हूँ। आप अब कभी-कभी इलाहाबाद की सैर करते नज़र आया करें, और इनामी किताबें शाया करने की फ़िक्र करें। मैं इस काम में आपकी क़लमी मुआवनत[15] करने को आमादा हूँ। किताबों की लिखाई वग़ैरह अच्छी हो और मंजूर हो जावें तो कुछ फ़ायदे की सूरत निकल सकती है।

और कहिये, क्या खबरें हैं। बन्दा तो कमरए आतर्शी[16] में पड़ा भुन रहा है। इमसाल ख़स की टट्टी बनवाई कि नहीं ? वाह क्या टंडी हवा है और क्या फ़रहतबख़्श[17]। याद से रूह फड़क गयी। वाए बरहाले आं[18] कि इस टट्टी की बहार ले रहे होंगे।

मैंने मख़ज़न माँगा था, वो आपने न भेजा। कोई नाविल गुड़ी बाजार से लिया हो तो वह भी बैरंग भेजिये। इलाहाबाद की लाइब्रेरी की निस्बत दर्याफ़्त किया था, मगर वह आउट स्टेशन में किताबें नहीं भेजते। अबकी इलाहाबाद जाऊँगा तो अपने खुस्र-ज़ादे[19] को अपना क़ायम मुक़ाम बना आऊँगा। वह अपने नाम से किताबें लेकर मेरे पास भेज दिया करेंगे। जून में इलाहाबाद, बनारस वग़ैरह की गर्म हवा खाऊँगा।

नज़र ने नाविल-वाला मज़मून वापस माँगा था और फ़रमाते थे कि मैंने महज़ तरमीम के लिये भेजा था। अगर आप उसे आसानी से अलहदा कर सकें, यानी रद्दी के टोकरे में पड़ा हुआ हो तो भेज दीजिये। उन्हीं के सर पटक दूँ। अबकी तो शायद हज़रत 'सरूर' एडवर्ड हफ़्तुम[20] का नौहा[21] कह रहे होंगे।

हिन्दी पर्चे का क्या हश्र हुआ ? यानी उसकी तजवीज़ खटाई में पड़ गयी या बाक़ी है। निकलने वाला हो तो हिन्दी लिखने की आदत डालूँ।

मिस्टर रामसरन की ख़िदमत में मेरा सलाम कह दीजिएगा।

अबकी 'सरस्वती' से नारद वग़ैरह पर तीन तस्वीरें अच्छी निकालीं, और सूरदास पर मज़मून अच्छा है। आप भी हिन्दी लिटरेचर पर मज़ामीन लिखाने का ढंग निकालिये। सूरज नारायन 'मेहर' शायद लिखें। और नज़दीक व दूर की जो ख़बर हो, पास-पड़ोस की, उससे मुत्तला कीजिये।

'नज़र' साहब ने अपने रिसाले को बिल्कुल इसलामी ढंग पर चलाने का बीड़ा उठाया है। और क्या लिखूँ।

नाविल वाला मज़मून जरूर भेजिये। आज फिर तक़ाज़ा है। जब आपके यहाँ उसकी

फ़िलहाल ज़रूरत नहीं है तो जाने दीजिये। रुपये मिल रहेंगे। जल्द पहुँचेगा।

ख़ादिम, धनपत राय।

1. घृणित, 2. रुपये, 3. प्रवृत्त, 4. ऐग्रीमेंन्ट; अनुबंध, 5. लेखन, 6 परम प्रतापी, 7 आरंभ, 8. पाँच रुपये, 9. दुगना, 10. इस्तेमाल, 11 दिवंगत, 12. पीछे छूट जानेवालों; बाल-बच्चों, 13. लालच, 14. आरंभ, 15. सहयोग, 16. आग-जैसे कमरे, 17 ताशगी देने वाली, 18. क्या कहने हैं उनके जो, 19. ससुर के बेटे; साले, 20. सप्तम, 21. मृत्यु पर लिखी गयी कविता।



दयानारायण निगम को

अनुमानतः हमीरपुर, सितम्बर, 1910

बेरादरम,

आज एक कार्ड लिख चुका हूँ, अब मुफ़स्सल (विस्तृत) ख़त लिख रहा हूँ। अबकी मैंने 'विकरमादित का तेग़ा' का एक क़िस्सा शुरू किया हे। बारह-तेरंह सफ़हे हो चुके हैं। शायद पाँच-छः सफ़हे और चलें। जल्द ही ख़त्म करके भेजूँगा। प्रेमचन्द अच्छा नाम है। मुझे पसन्द है। अफ़सोस सिर्फ़ यह है कि पॉच-छः सालों में नवाब राय को फ़रोग़ (प्रकाशित) देने की जो कुछ मेहनत की गयी, वह अकारत हो गयी। ये हज़रत क़िस्मत के हमेशा लंडूरे रहे और शायद रहेंगे। ये क़िस्सा मेरे ख़्याल में कई महीने से था। मैंने अपने ख़्याल में रविन्द्रनाथ के तर्ज़ की कामयाबी के साथ पैरवी की है। मगर बुरी नक़ल नहीं है। प्लाट बिल्कुल ओरिजिनल है। मैंने तो कई क़लम तोड़ दिये और दस-पांच वरक़ (पन्ने) भी काले कर डाले। मालूम नहीं, आपको भी पसन्द आता है या नहीं। ये क़िस्सा मिलाकर मेरे पाँच क़िस्सों का मज़मूआ (संग्रह) निकालने का काफ़ी मसाला हो जायेगा–गुनाह का अगनकुण्ड, सैरे-दरवेश, रानी सारन्धा, बेग़र्ज़ मुहसिन (जो 'अदीब' में निकलेगा) और 'विकरमादित का तेग़ा'। अगर आप इस मज़मूआ को निकालेंगे तो मैं इसमें काग़ज़ और लिखाई के मुतअल्लिक़ जिस क़दर सर्फ़ा (ख़र्चा) आप तजवीज़ करेंगे, दूंगा। और अगर आप खुद निकालें, तो और भी अच्छा। जैसा मुनासिब समझें करें। मगर ऐसा हो कि नय साल तक तैयार हो जाय। इस मज़मूआ का नाम 'वर्गे-सब्ज़' सोचा है। शायद आप जनाब को पसन्द आये, शायद इसलिए कि मैं नामों में आपकी पसन्द का क़ायल हूँ।

रामसरन का ख़त मुझे उस वक़्त मिला जब ड्रामा लिखने के लिए एक हफ़्ते की मुहलत भी न थी। कुजा (कहाँ) मैं और कुजा (कहाँ) ड्रामा ! गाना बिल्कुल नहीं जानता। अगर कोई गाना मिला दे, तो मैं अपने 'विकरमादित का तेग़ा' को ड्रामा बना सकता हूँ।

अब कुछ रुपया पैदा करने की बातचीत। अबकी 'एजुकेशनल गज़ेट' इलाहाबाद ने 'मैके में सावन की याद' और मिर्ज़ा सुलेमान क़द्र के हालात' 'ज़माना' से नक़ल किये हैं, अगर हवाला नहीं दिया। ख़ैर, वो 'ज़माना' के क़ायल ज़रूर मालूम होते हैं। क्या ये मुमकिन नहीं कि आपकी तरफ़ से मैं उसके लिए कभी-कभी मज़ामीन लिखा करूँ ? मेरे लिए कलक्टर को हर एक मज़मून दिखाने की ऐसी बुरी पख लगी है कि एक मज़मून महीनों में लौट कर आता है और छठवें महीने छपता है। 'रियासत भोपाल' अब जाकर छपा है, मगर एडीटर साहब तवील (बड़े) मज़मून नहीं लेते। चार-पाँच क़ालम से ज़्यादा

के मज़मून लेते ही नहीं। अगर आप इसमें कोई अम्र (कार्य) खिलाफ़े-शान न समझें तो मैं कभी-कभी एकाध मज़मून उर्दू और हिन्दी में लिखकर आपके पास भेज दूँ और आप उसे अपनी जानिब से इंस्पेक्टर साहब, नॉर्मल स्कूल के पास भेज दें। यही उस गज़ेट के एडीटर हैं। मेरे ख़्याल में इसमें कोई हर्ज़ नहीं है, और न कोई इल्मी बेईमानी है। इसका जवाब ज़रूर दीजिए। प्रेमचंद का नाम मैं वहाँ नहीं देना चाहता। नहीं मालूम, ये हज़रत हाथ-पैर सँभालने पर क्या लिखें-पढ़ें। उन्हें क़िस्सागो ही रहने दीजिए। बैठे-बैठे प्रेम और वीर रस के क़िस्से लिखा करें। दिसम्बर में इलाहाबाद में ज़रूर मुलाक़ात होगी।

नौबत राय ने मुझसे पच्चीस रुपये नलब फ़रमाये। मैंने लिखा, इल्मी दुनिया में इस तरह की बातचीत मुनासिब नहीं। इस पर आपने मुझे वादाशिकन (प्रतिज्ञा भंग करने वाला) कहा है और धमकी दी कि मैं इसकी तशहीर (बुरी तरह बदनाम करना) कर सकता हूँ। देखा, ये सीनाज़ोरी है ! उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे। तबसे फिर लिखा-पढ़ी नहीं है। आज अपने तीन मज़ामीन का बिल भेजता हूँ। नया नाविल शुरू कर दिया है मगर उसके लिए राजस्थान के मताले की ज़रूरत है।

आपको ख़ानगी-तरद्दुदात (घरेलू परेशानियों) से फ़ुर्सत मिली या नहीं ? दो महीने से 'ज़माना' में तस्वीर अच्छी नहीं निकली। रवि वर्मा अब गिर गये हैं। रविन्द्रनाथ से बहैसियत एक क़द्रदाने-फ़ने-तस्वीर (चित्रकला के प्रेमी) के क्यों ख़तो-किताबत नहीं करते ? मैं आपकी जगह होता तो तस्वीरों का खासा इन्तज़ाम करने के लिए एक बार कलकत्ता जाकर पच्चीस-तीस रुपये का सर्फ़ा बर्दाश्त कर लेता। सादी की तस्वीर 'अदीब' को कहाँ से मिल गयी ?

और तो कोई खास हाल नहीं। बेगम साहेबा मैके की हवा खा रही हैं। मैं तेज़ी के साथ बूढ़ा हो रहा हूँ। शायद चालीस तक खंगड़ हो जाऊँ।

मुझे 'ज़माना' में रफ़्तार नहीं नज़र आता। ये चुटकुले जो आप लिखते हैं, रफ्तार नहीं कहला सकते। अबके महीने से मैंने मुजम्मम (दृढ़) इरादा किया है कि चार सफ़हों का नोट माहवार 'ज़माना' की नज़र किया करूँ। अक्टूबर-नवम्बर में इंशा-अल्लाह ज़रूर होगा। सुरूर मर गये कि ज़िन्दा हैं ?

सितम्बर कब तक आवेगा ?

नियाज़मन्द, नवाब।



स्थान और तिथि नहीं है।

अनुमानतः सन् '11-'12 में महोबे से लिखा गया।

मकर्रमबन्दा जनाब एडीटर साहब ज़माना,

तसलीम। रिसाला ज़माना का माह नवम्बर का पर्चा देखकर मेरे दिल में चन्द ख़यालात पैदा हुए जिन्हें अर्ज़ कर देना मैं अपना फ़र्ज समझता हूँ। उम्मीद है कि जनाब को नागवार न होगा। इस ज़माने में जब कि गूनागूं[1] अख़लाक़ी[2], सियासी, मुआशरती[3] और इक़्तसादी[4] मसाइल[5] हमारी तमामतर[6] तवज्जो[7] के मुस्तहक़[8] हैं, मुझे यह देखकर अफ़सोस हुआ कि रिसाला ज़माना का क़रीब क़रीब एक पूरा नम्बर महज़ आतिश के कलाम के तबसरे[9] को नज़र हो गया। मैं आतिश की उस्तादी का क़ायल हूँ

लखनऊ शायरी का मज़मूम[10] पहलू आतिश की शायरी में मुकाविलतन् कम है। मगर फिर भी इतना ज़्यादा है कि बइस्तसना[11] उन हज़रात के जो लखनवी शायरी के रंग में रँगे हुए हैं और सभी तबाए[12] को मौजूदा मेयार[13] और जौक़े सही[14] से गिरा हुआ नज़र आता है।

लिटरेचर का मौज़ू[15] है तहजीव, अखलाक़, मुशाहिदाए जज़बात[16], इन्कशाफ़े हक़ायक़[17] और वारदात-ओ-कैफ़ियाते क़ल्ब[18] का इज़हार। जो शायरी हुस्न व इश्क़ को आइना व शाना[19], ख़ंजर व महशर[20], सब्ज़ा[21] व खत, दहन[22] -ओ-कमर के तख़ैयुल[23] से मुलब्बस[24] करती हो, वह हरगिज़ इस क़ाबिल नहीं कि आज हम उसका विर्द[25] करें। जिनकी उफ़तादे तबीयत[26] उस रंग की है उन्हें अख़्तियार है आतिश या नासिख, रिन्द और अमानत का वज़ीफ़ा पढ़ें। लेकिन ज़माना के मुख़्तलिफ़ुत्तबाय[27] नाज़रीन[28] को इस विर्द और वज़ीफ़े में शरीक होने के लिए मजबूर करना कहाँ का इन्साफ़ है। मिर्ज़ा जाफ़रअली खाँ साहब ने अपने तबसरे में आतिश के कलाम का इन्तख़ाब पेश किया है मगर इस इन्तख़ाब में भी बेशतर ऐसे अशआर हैं जिन्हें ज़ौक़े लतीफ़[29] हरगिज़ क़ाबिले सताइश[30] न समझेगा। मुलाहिज़ा हो :

भर गया दामने नज़्ज़ारा गुले नरगिस से।
आँख उठाकर जो कभी तुमने इधर देखा।।

आँख की रियायत से नरगिस को लाकर दामने नज़ज़ारा को गुले नरगिस से भर देना, इसमें क्या नुदरते[31] ख़याल है ? क्या हक़ीक़त है ?—समझ में नहीं आता।

क़ासिदों के पाँव तोड़े बदगुमानी ने मेरे।
ख़त दिया लेकिन न बतलाया निशाने कूए दोस्त।।

क्यों नहीं बतलाया ? थी आपकी हिमाक़त या नहीं ? आपको ख़ौफ़ हुआ कहीं माशूक़ क़ासिद का दम न भरने लगे। वाह रे माशूक़ और वाह रे आशिक़, दोनों ज़िन्दा दरगोर[32] !

ऐसे अशआर एक नहीं सैकड़ों हैं। बहुत छानबीन करने से सौ दो सौ अशआर सारे दीवान में ऐसे निकलेंगे जो पाकीजा कहे जा सकें, जिनमें वाक़ई जज़्बा, सच्चा दर्द, रुलाने वाली हसरत, चौंका देने वाली जिद्दत, राशा बरअंदाम कर देने वाली[33] नाज़ुकख़याली, जुनूंअंगेज़[34] मस्तीहो। ज़माना में अगर मेरा अंदाज़ा गलती नहीं करता तो, एक दर्जन मर्तबा आतिश की मर्सियाख्वानी[35] की जा चुकी है। यक़ीनन् मशाग़ले अदब[36] में शोअराए सल्फ़[37] की मर्सियाख्वानी के सिवा और भी बहुत से ज़रूरी काम हैं, और खासकर उन शोअरा का कलाम जिनके दीवान कोह कन्दन और काह बरआवुर्दन के मिस्दाक़[38] है। मेरा खयाल है कि रिसाले के एडीटर को ज़ाती रुझानात और दोस्ताना ताल्लुक़ात से बालातर रहना चाहिए। उसका फ़र्ज है कि हर रंग और हर मज़ाक़ के नाजरीन का लिहाज़ रखे। यह नहीं कि :



ग़ैरते मेह्र रश्के माह हो तुम, खूबसूरत हो बादशाह हो तुम।
[illegible] तुम्हें वह मर ही गया, हुस्न की तेग़ बेपनाह हो तुम।।

तेग़ देखकर कौन मर जाता है ?

फ़ौक़ है सारे ख़ुश जमालों पर, वो सितारे जो हैं तो माह हो तुम जैसे तिफ़्लाना[39]

जज़्बात के अशआर से पर्चे का पर्चा भर दें।

समाखराशी के लिए मुआफ़ फ़रमाइएगा।

नियाज़मन्द, प्रेमचन्द।

1. तरह-तरह की, 2 नैतिक, 3 सामाजिक, 4 आर्थिक, 5 समस्याएं, 6. समग्र, 7. ध्यान, 8. अधिकारी, 9 चर्चा, 10 युग, 11. अलावा, 12 तबीयतें, 13. समय की कसौटी, 14. स्वस्थ रुचि, 15 विषय, 16. भावों की अभिव्यक्ति, 17 सत्य का उद्घाटन, 18 दिल की हालत का बयान, 19. कंघी, 20. क़यामत, 21. मस भीगना, 22 मुँह, 23 कल्पना, 24 लपेट देती, 25. माला जपे, 26. तबीयत का रुझान, 27. अलग-अलग तबीयतों वाले, 28. पाठकों, 29 सुरुचि, 30 प्रशंसनीय, 31 नयापन, 32. कब्र में, 33 जिस्म को थर्रा देने वाली, 34. पागल कर देने वाली, 35 मर्सिया पढ़ना, 36. साहित्य के धंधे, 37. गुज़रे हुए शायरों, 38. खोदा पहाड़ और निकली चुहिया का उदाहरण, 39 बचकाना।



स्थान और तिथि नहीं है।

अनुमानतः सन् '11-'12 में महोबे से लिखा गया।

बरादरम,

'ज़माना' जुलाई मिला। तबीयत खुश हुई। अबकी अच्छा नम्बर है। मेरे ख़याल में दुहरे नम्बर निकालने का मौक़ा नहीं है। ऐसी सरगर्म रक़ाबत[1] के होते हुए मैं यह सलाह न दूंगा। हाँ, मेरा दोस्ताना सलाह यह है कि आप 'माडर्न रिव्यू' की जगह 'अदीब' को लेने दीजिये, खुद 'हिन्दुस्तान रिव्यू' की जगह लीजिये। मज़ामीन की खूबी, लिखाई, छपाई, पालिटिक्स वग़ैरह की तरफ़ ज़्यादा ज़ोर दीजिये और तस्वीर की तरफ़ बहुत कम। इस लाग-डांट में आप ज़ेरबार हो जायेंगे। अपनी हार मान लेने में बुराई नहीं है। आप इंडियन प्रेस के वसाइल[2] कहाँ से लायेंगे। अबकी रंगीन तस्वीर आपको फिर ख़राब मिली। इससे तो बेहतर होता कि वर्क़ की तस्वीर पहले होती। बहरहाल अब 'ज़माना' की खूबी मज़ामीन पर होनी चाहिये, तस्वीर पर नहीं। कभी कभी तस्वीरें भी दे दीं जायें, मगर उसी वक़्त जब सनअत[3] का कोई अच्छा नमूना हाथ आ जाए। ख़्वामख़्वाह तस्वीर देने से कोई फ़ायदा नहीं। मैं इसके सख़्त खिलाफ़ हूं। तस्वीर की किफ़ायत काग़ज और छपाई को इसलाह[4] में सर्फ़ कीजिये। और मौजूदा मसाइल पर मज़ामीन लिखाने की फ़िक्र कीजिये। बासू के बिल पर कोई मज़मून न निकला, गोखले के बिल ने कहाँ तक तरक़्क़ी की, मुहम्मडन यूनिवर्सिटी का कांस्टिट्यूशन वग़ैरह मसले पर कुछ होना चाहिये था। मतलब यह है कि ज़माना अपटूडेट पोलिटिकल पेपर हो। ज़ौक़ पर आधा पर्चा भरना मैं अच्छा नहीं समझता। हमें ज़ौक़ का रोना रोने से क्या मिला जाता है। ज़ौक़ के नाम पर रोने वाले बहुत हैं। यह काम अदीब को करने दीजिये। और आप इससे बेहतर काम में मसरूफ़ हूजिये। हजम[5] में मुस्तक़िल हो, यह नहीं कि कभी 70 सफ़े दिये, कभी 80, कभी 100। बड़े साइज़ के 80 या 72 सफ़े काफ़ी हैं।

हफ़्तेवार का नोटिस आपने निकाल ही दिया। ज़रा तबीयत तो अच्छी होने देते। देखिये क्या कामयाबी होती है। आपका हफ़्तावार कामरेड के नमूने का होना चाहिये।

ईश्वर का नाम लेकर शुरू कीजिये। मुझसे जो मदद हो सकेगी करता रहूँगा। फ़िलहाल मेरी हालत मुझे इजाज़त नहीं देती कि कुछ ईसार[5] कर सकूं। यक़ीन मानिये, आपसे बसिदक़े दिल कहता हूँ कि जब से यहाँ आया हूँ सिर्फ़ दो सौ रुपये मेरे पास जमा

हुए हैं। और वह भी सौ रुपये नाविल का मुआवज़ा है। और एक सौ रुपये में कोई तीस रुपये इंडियन प्रेस से मिले। शायद तीस यापैंतीस आपने दिये। और इसी क़दर एजुकेशनल गज़ट से मिला। मेरी तनख्वाह और भत्ते में कौड़ी की बचत नहीं हुई।

हाँ, बचत कहिये तो, कमाई कहिये तो, बीवीजान की बरसों की ज़िद पर रफ़ा शिकायत के लिये एक कड़ा बनवाया, जिसका सदमा अब तक न भूला। इस बिरते पर मैं क्या ईसार करूँ। 60 रुपये तनख्वाह है। 40 रुपये का औसत और। और ख़र्ज में बुख़्ल[7] से काम लेता हूँ। तब भी कभी फ़रागत नहीं नसीब होती। नहीं मालूम यहाँ कानपुर के मुक़ाबले में क्या ख़र्च बढ़ गया है। वहाँ 40 रुपये में गुज़र हो जाता था। यहाँ उसके दुगने में रोना पड़ा हुआ है। और अब बढ़े हुए अख़राजात को तोड़ना मुझ पर तो नहीं दूसरों पर सितम होगा।

नाम हिन्दू बहुत मौजूं था, मगर शायद इस नाम का कोई पर्चा पंजाब से निकलने लगा है। रफ़्तारे ज़माना से बेहतर नाम मुझे नहीं सूझता। आपने भी तो यही नाम पसंद किया था। नाम तो यही रखिये। अब रहे मज़ामीन। आप तनहा एक असिस्टेंट की मदद से हफ़्तावार अख़बार इसी हालत में चला सकेंगे जब क़लम को ज़्यादा रवाँ बनायें। मैं हफ्तावार एक दो सफ़े बिला नाग़ा आपकी ख़िदमत में भेज दिया करूँगा। कुछ नोट होंगे, बन पड़ा तो कोई एडिटोरियल, कभी किसी मज़मून का तर्जुमा, कभी कुछ। मगर अख़बार का नमूना कामरेड ही हो। पालिसी हिन्दू। अब मेरा हिन्दुस्तानी क़ौम पर एतक़ाद नहीं रहा और उसकी कोशिश फ़िज़ूल है। आप कहते हैं कि 4000 रुपये की फ़िक्रकर लूँगा। जहाँ 4000 रुपये की फ़िक्र कीजिये वहाँ 360 रुपये की फ़िक्र करनी क्या मुश्किल है। अगर आप मुझे 60 रुपये का समझौता कर देंगे तो मैं इसी पर काम करूँगा।

छः माह अख़बार की हालत देखकर बाद को फ़ैसला कर सकूँगा कि मेरे लिये कौन-सा रास्ता ज़्यादा सीधा है। यहाँ से रुख़सत लेकर चला आऊँगा। क्या अजब है मैं अख़बार को चला सकूँ। अगर छः माह के बाद अख़बार कुछ दे निकला तो मैं हाथ पैर फैलाऊँगा। वर्ना आप अपना-सा मुँह लेकर अपने पुराने ढच्चर पर चलूँगा। मगर 60 रुपये से कम पर मेरा गुज़ारा नहीं हो सकता। यह साफ़गोई आपको अपना दोस्त, हमदर्द और भाई समझकर करता हूँ। मैं काम से जी नहीं चुराता। न इस क़दर मुतालबा चाहता हूँ गोया मैं कहीं का बड़ा मुंशीविक़ार[8] हूँ। नहीं, सिर्फ़ गुज़ारा चाहता हूँ, और गुज़ारा 60 रुपये से कम में नहीं हो सकता।

दूसरी बात, आपने 'ज़माना' अब तक निज के तौर पर चलाया है। इसका ख़र्च और आपका जेब ख़र्च दोनों एक ही मद में शुमार होते रहे, जिसकी वजह से आप अक्सर परीशान होते रहे। आपने अपना ज़ाती ख़र्च बहुत बढ़ा लिया है। साफ़गोई के लिये मुआफ़ फ़र्माइयेगा। 'रफ़्तारे ज़माना' का मुआमला निज का मुआमला न होगा। इसका हिसाब-किताब और खर्च सबका मद आपके जेब खर्च से बिल्कुल अलग होगा। इन्हीं उसूलों पर काम चल सकता है। मुझे यक़ीन है कि एक हिन्दू पर्चा जो अच्छा काग़ज, अच्छी छपाई दे सके उसके लिये गुंजाइश काफ़ी है। हमारी यह कोशिश होगी कि उर्दू पर्चों में रफ़्तारे ज़माना एक ताक़त हो जाये। इसकी रायों का दूसरे अख़बार इक़्तबास[9] करें। अख़राजात[10] बग़ैरा की तफ़सील जो आपने दी है वह मैं पहले भी देख चुका हूँ।

बहरहाल में काम करने के लिये तैयार हूँ, ऊपर लिखी हुई शर्तों पर और उस हालत में जब कि माली हालत मुस्तक़िल हो। और मैं किराये का टट्टू बन कर काम न करूँगा, बल्कि सच्चे जोश से। या तो आप कभी मेरी ख़िदमत तलब करें या जब अख़बार की हालत कुछ मालूम हो तब।

अब आपकी तबीयत कैसी है।

यहाँ सब ख़ैरियत है। बारिश बकसरत हुई।

आपका, धनपतराय।

1 प्रतियोगता, 2 साधन, 3. कला, 4. सुधार, 5. आकार 6. त्याग 7. कंजूसी, 8. शान रखनेवाला, 9. उद्धरण, 10 ख़र्चों।



स्थान और तिथि नहीं है।
अनुमानतः सन् '11-'12 में महोबे से लिखा गया।

बरादरम,

मशकूर हूँ। पहले 'अवध अख़बार' वाला मुआमला। क्या ज़वाब दूँ। माली पहलू यह है कि यहाँ नेट आमदनी 80 रुपये से किसी तरह ज़्यादा नहीं है। दौरे का ख़र्च और मुलाज़िमों को तनख़्वाह इसमें शामिल नहीं है। क़रीब-क़रीब यही हालत वहाँ भी होगी। और मसारिफ़[1] बदस्तूर। मगर काम में बड़ा फ़र्क़ है। यहाँ बहुत आज़ादी है, बावजूद गुलामी के। चूँकि कोई अफ़सर सर पर नहीं रहता और न कोई जवाबदिही है, इसलिये आज़ादी सी मालूम होती है।

10 बजे से 5 बजे की हाज़री, दिमाग़ी काम, रोज़ाना अख़बार, जी कांप जाता है। हिम्मत नहीं पड़ती। यहाँ लिटरेरी काम बमंज़ला तफ़रीह[2] है। वहाँ यह मआश[3] हो जायगा। हालाँकि छोटक की पढ़ाई और आइंदा ज़िन्दगी की रफ़्तार के ख़याल से यह मौक़ा बुरा नहीं है, मगर काम की कसरत इरादे को मुस्तक़िल नहीं होने देती। बहरहाल मैं अभी दुबिधे में हूँ। अगर मौक़ा मिले तो आप प्रोप्राइटर से ज़िक्र कीजियेगा। उस वक़्त तक शायद इरादा किसी तरफ़ जम जाये।

क़िस्सा लिखा हुआ तैयार है। सिर्फ़ नक़ल करना बाक़ी है। कल तक ग़ालिबन हो जायगा। आपने मेरी तनख्वाह बढ़वा दी, इसका मशकूर हूँ। क्योंकि यह प्राइवेट ट्यूशन है। अब मुझे 8 रुपये माहवार मिलेंगे।

मेरे क़िस्सों के मज़मूए का ख़याल रखिएगा। और जब आप अवध अख़बार में पहुँच जायं उस वक़्त इसे निकालने की फ़िक्र करना मुनासिब होगा। मुमकिन है आपका अवध अख़बार में पहुँचना मेरे लिये कोई बेहतरी की सूरत पैदा करे। क्या ज़रूरत है कि मैं अपना ख़ूने जिगर या उँगलियों से निकलने वाले क़तरए ख़ून को किसी ग़ैर जगह फेंकूँ, अगर अपने घर में क़द्र हो तो दूसरे का दस्तनिगर[4] होऊँ ?

हालाँकि मैंने 'हमदर्द' को अच्छा क़िस्सा नहीं दिया, ताहम अगर उनके लिये और कोई गुंजाइश होती तो मैं वहाँ न देता। हाँ, ख़सारा[5] न होना चाहिये। आपके पास ईश्वर ने चाहा तो परसों क़िस्सा पहुँचेगा। 'अदीब' में आज तीर्थराम का 'आज़माइश' देखा। मुझे तो तर्जुमा-सा मालूम होता है। है यही बात न ?

अब रिसालों और अख़बारों का ज़िक्र। आप मुझे 'माडर्न रिव्यू', 'लीडर' और 'हिन्दुस्तान' न दीजिये। 'माडर्न रिव्यू' मैं मंगवाऊँगा। 'हमदर्द' अब अनकरीब आने ही लगेगा। बस कोई एक उर्दू पर्चा मसलन 'वकील' या 'वतन' मुझे और मिलना चाहिये। 'हिन्दुस्तान' मैं आज मंगाता हूँ। इतना काफ़ी हो जायगा।

'मुसलिम गज़ट' में शिवली का मज़मून 'मुसलमानों की पोलिटिकल क़रवट' क़ाबिलेदाद है। मैं दसहरे की तातील में यहीं रहा। कहीं न गया। अब अच्छा हूँ। और तो कोई हाल ताज़ा नहीं है।

आपका, धनपतराय।

1. ख़र्चे, 2. दिल बहलाव के लिए, 3. जीविका, 4. सहारा लूँ, 5. घाटा।



मझगवाँ, 6 फ़रवरी, 1913

भाईजान,

आज आपका अंग्रेज़ी ख़त मिला। झिंग सियाल, भारत और हिन्दोस्तान का पैकेट भी वसूल हुआ। आज़ाद भी आया। आज़ाद के मुताल्लिक़ आपने मेरी राय पूछी है। अगर्चे वह अभी तक मुझ तक नहीं पहुँचा मगर इसमें ख़ुशामद को मुतलक़ दख़्ल नहीं है कि वह अब उर्दू के वेहतरीन अख़बारों से हमसरी[1] का दावा कर सकता है। अगर इलतिज़ाम के साथ हर नंबर में किसी साहिबे राय का एक ओरिजिनल मज़मून और एक दिलचस्प तर्जुमा दिया जा सके तो इसकी दिलचस्पी और बढ़ जाये। अबकी पं. बद्रीदत्त का मज़मून था। इसी तरह हरेक नंबर में कोई न कोई मज़मून हो जाये तो क्या कहना। नामानिगारों[2] की अभी तक कमी है। आप खुद इसकी अहमियत समझते हैं और कसरतंकार[3] ने ग़ालिबन् आपको अभी इस तरफ़ मुख़ातिब नहीं होने दिया। बहरहाल इसकी रफ़्तार रू-ब-तरक़्क़ी है। मालूम नहीं क़द्रदानी का दायरा भी इसी निस्बत के साथ वसीह हो रहा है या नहीं।

बाबू रामभरोसे के पिदरे बजुर्गवार के इंतक़ाल की ख़बर निहायत पुरमलाल है। ईश्वर उन्हें सब्र दे। अब ख़ानादारी का सारा बोझ उनके सर पर आ पड़ा। जिस खूबसूरती से वह अपनी शान को सँभाले हुए थे मालूम नहीं रामभरोसे में वह सलाहियत है या नहीं। मगर इसमें शक नहीं कि मरहूम की ज़िन्दगी कामयाब ज़िन्दगी थी–और हर एक मरने वाले को उस पर रश्कत हो सकता है। आप मेरी जानिब से हमदर्दी का सच्चा पैग़ाम उन्हें दे दें। मैं ताज़ियतनामा[4] भी लिखूँगा।

मुझे यह सुनकर बड़ी खुशी हुई कि आपका मशीन प्रेस अब अनक़रीब जम जायेगा। जिल्दसाज़ी, कुतुबफ़रोशी की शाखें भी क़ायम होंगी। ईश्वर आपकी कोशिशों को सरसब्ज़ करे। मैं मजबूर हूँ कि मुझे to fall back upon का कोई सहारा नहीं है। बस किराये का टट्टू हूँ। प्रेमपचीसी इस प्रेस का पहला काम होगा। अपने तई मुबारकवाद देता हूँ। बीस क़िस्सों से ज़ायद हो गये हैं, दो अभी हमदर्द के दफ़्तर में पड़े हुए हैं। मालूम नहीं हमदर्द खुलेगा भी या ठण्डा पड़ गया। बहरहाल दो तीन माह में पच्चीस क़िस्से ज़रूर हो जायेंगे। हाँ, किताब किसी क़दर ज़ख़ीम[5] हो जायेगी। चार सौ सुफ़हे से किसी तरह कम न होगी। मिस्तर उन्नीस सतरी रहना चाहिए और साइज़ ज़माना के दो बरस क़ब्ल के

साइज़ के बराबर। कातिब खुशख़त हो। मैं मज़ामीन की तरतीब दूँगा और जहाँ कहीं छापे की ग़लतियां हो गयी हैं उनकी इसलाह[6] भी कर दूँगा। मगर मेरे पास सब पर्चे मौजूद नहीं हैं। अकसर ग़ायब हो गये। इसलिए ज़रूरत होगी कि मेरे पास सब पर्चे मौजूद हो जायें। बहरहाल जिस वक़्त फ़ैसला हो जाये मैं यहाँ से उन चंद क़िस्सों की कापी भेज दूंगा जो मेरे पास मौजूद हैं। दीबाचा आप लिखेंगे या जिसे आप मुनासिब समझें उससे लिखवाइएगा। ख़र्च और नफ़े में मुझे निस्फ़ का शरीक समझिए। नफ़े का ज़िक्र ही क्या, ख़र्च में आधे का साझीदार हूं।

अब रह गये हिन्दी रिसाले। आप मुझे अपने हिन्दी डिपार्टमेण्ट का एडीटर समझिए। मैं अख़बारात और रिसालों से मुनासिब और दिलचस्प तर्जुमे कर दिया करूँगा। कहीं कहीं उन पर नोट और तनक़ीद[7] लिखूँगा। हिन्दी शोअरा की दिलचस्प और मुख़्तसर सवाने उमरियों[8] का सिलसिला भी दूँगा। मर्यादा आप लिखते हैं भेज दिया गया, अभी यहाँ नहीं पहुँचा। सरस्वती यहाँ एक जगह आती है। अब बंद हो गयी। आप जो अख़बारात और रिसाले यहाँ भेजेंगे उन्हें मैं जब कभी आऊँगा, लेता आऊँगा, ताकि आपके दफ़्तर में मौजूद रहें। आपकी कई किताबें और कई रिसाले मेरे पास पड़े हुए हैं। अबकी आमद में सब बक़ाया बेबाक़ हो जायेगा। अगर किसी अँग्रेज़ी दिलचस्प मज़मून का तर्जुमा कराना चाहें तो मैं वह भी बक़द्रे [illegible][9] करने को तैयार हूँ। आज एक क़िस्सा 'ज़िन्दगी और मौत' ज़माना के लिए भेजता हूँ। पसंद आये तो रख लीजिएगा। यही आख़िरी कोशिश है। इधर महीने भर से एक सतर भी नहीं लिखा। रोज़ाना की दवा-दबिश रहती है। फ़ुर्सत नहीं मिलती।

अदीब आया। हरेक मज़मून के साथ एडीटर का पुछल्ला मौजूद है। देखें आगे यह हज़रत क्या दिखाते हैं। मालूम होता है नक़्क़ाद[10] की हैसियत अख़बार कर लेगा।

ज़माना की पाबंदी-ए-औक़ात[11] पर आपको मुबारकबाद देता हूँ। मेरे ख़याल में यह मार्च का रिसाला । मार्च को निकल जाये तो आइन्दा भी इलतिज़ाम[12] क़ायम रखिए। यह उर्दू दुनिया में एक ग़ैर मामूली बात होगी।

अब रहा रुपयों का ज़िक्र। मुझे इस वक़्त चंदाँ ज़रूरत नहीं है। मगर मेरे ज़िम्मे हमीरपुर आर्यसमाज के दस रुपये बाक़ी हैं। बार-बार तक़ाज़ा हुआ है मगर अपनी तिहीदस्ती[13] ने इजाज़त न दी कि अदा कर दूं। आप अगर afford कर सकें तो बराहे-रास्त मेरे नाम से हमीरपुर आर्यसमाज के सेक्रेटरी के नाम दस रुपये का मनीआर्डर कर दें। ममनून[14] हूँगा। तकलीफ़ तो होगी मगर मेरी ख़ातिर इतना सहना पड़ेगा क्योंकि यहाँ अब जल्सा भी अनक़रीब होने वाला है। मुकर्रर अर्ज़ यह है कि यह दस रुपये ज़रूर भेज देवें। मैंने जनवरी में अदा करने का हतमी[15] वादा किया है। आप अगर इजाज़त दें तो मैं यह समझूँगा कि ज़माना मेरा पंद्रह रुपये का देनदार है। जनवरी के आख़िर तक का यह हिसाब रहा। ग़ालिबन् आपको एतराज़ न होगा। फ़रवरी अव्वल से नया हिसाब चलता है।

और तो कोई नयी बात नहीं। तेजनारायन लाल ने बांदा में आठ रुपये की नौकरी कर ली है। मुदर्रिस हो गये हैं। बाक़ी काम बदस्तूर चल रहा है। सेहत अलबत्ता बहुत अच्छी नहीं है।

तामीरे देहली पर एक मुख़्तसर-सा नोट लिखा है, मुमकिन हो तो दे दीजिएगा।

आपका, धनपत राय।

1. बराबरी, 2. संवाददाताओं, 3. कार्याधिक्य, 4. समवेदना का पत्र, 5. मोटी, 6. सुधार, 7. आलोचना, 8. जीवनियों, 9. सामर्थ्य भर, 10. आलोचक, 11. समय की पाबंदी, 12. सिलसिला, 13. तंगदस्ती, कंगाली, 14. कृतज्ञ, 15. पक्का।



महोबा, 28 फ़रवरी 1913

बरादरम,

बहुत से रिसाले आये। आज़ाद भी 13 और 20 फ़रवरी का मिला। मगर 5 फ़रवरी का नहीं मिला। ख़ैर। चन्द रिसालों के रिव्यू किये हैं और वह इरसाले ख़िदमत हैं। फ़रवरी के रिसालों का रिव्यू बहुत जल्द भेजूंगा। फुर्सत न मिली। 'अमावस की रात' आधा नक़ल कर चुका हूं, बाक़ी जल्द नक़ल करके भेजूंगा। ज़माना फ़रवरी का मिला। पढ़ लिया है। सिर्फ़ लिखाई छपाई रू-ब-तनज़्ज़ुल[1] है। ये इसके पुराने खुसूसियात हैं और इनमें हर्गिज़ कमी नहीं होनी चाहिए। आज़ाद के लिए कोई नोट न लिख सका। अदीमुलफुर्सती[2] का रंज है। मगर जल्द ही काम ख़त्म हुआ जाता है। और कोई ताज़ा हाल नहीं। प्रेमपचीसी के क़िस्सों की तरतीब[3] दी है। मज़मून और रिव्यू और यह तरतीब साथ-साथ एक हफ़्ते में पहुंचेंगे। मुमकिन हुआ तो दो तीन नोट भी मुरत्तब[4] हो जायेंगे। छत्री मैगज़ीन में एक तारीख़ी मज़मून सैर-ओ-सियाहत के मुताल्लिक़ है। उसका तर्जुमा भी करता जा रहा हूं। फुर्सत है। आज़ाद की रफ़्तारे तरक़्क़ी कैसी है। रामसरन के अग़राज़[5] से मुझे पूरा इत्तफ़ाक़ है। यही बात मेरे दिल में भी थी।

आपका, धनपत।

1. गिर रही, 2. फुर्सत न मिलना, 3. क्रम, सिलसिला, 4. तैयार, 5. उद्देश्य।



महोबा, 6 मार्च, 1913

बरादरम,

तसलीम। 27 का आज़ाद देखा। योमन् फ़योमन्[1] तरक़्क़ी हो रही है। और मुबारकबाद के क़ाबिल। नामानिगारों की कमी भी जल्द पूरी हो जाय। मगर ज़माना न गिरने पाये। कल अख़बारात के रिव्यू और 'अमावस की रात' भेज चुका हूं। अगर आपने हमीरपुर समाज के नाम दस रुपये न रवाना फ़रमाये हों तो बराहे करम अब कर दीजिए क्योंकि मैं 14 को वहाँ जाऊँगा और तक़ाजा नहीं सहा चाहता। प्रेम के क़िस्से 21 आपके यहाँ छप गये हैं, 2 हमदर्द के यहाँ हैं। वह दोनों आज मंगवाये लेता हूँ। तब दो की कमी रह जायगी और यह दो किताबत के पूरे होने तक बन जायेंगे। तरतीब क्योंकर दूं। अबवाब[2] की सूरत में नहीं आते वर्ना मैंने चाहा था कि शुजाअत[3], खुद्दारी[4], ईसार[5] वग़ैरह के उनवान[6] से तरतीब दूं। मुनासिब यही मालूम होता है कि दिलचस्पी और इख़्तसार[7] के लिहाज़ से उनकी तरतीब दी जाये। 25 क़िस्सों का हज़्म बहिसाब औसत 12 सफ़े फ़ी क़िस्सा 300 सफ़े होगा या ज़्यादा से ज़्यादा बीस जुज़[8]। आपके क़यास[9] में इसका कुल सर्फ़ा क्या होगा।

और क्या हालात हैं। दो एक नोट जल्द लिखूंगा। इधर दो हफ़्ते से आपका ख़त नहीं आया, फ़िक्र है। जवाब जल्द आना हो।

आपका, धनपतराय।

यह बहुत अच्छा होगा कि किताब पब्लिक में आने से पहले खास-खास अहले कलम के पास इजहारे राय के लिए भेजी जाये और यही रायें इश्तहार का काम दें।

1 दिनोंदिन, 2 परिच्छेद, 3. बहादुरी, 4 स्वाभिमान, 5 आत्म-बलिदान, त्याग, 6. शीर्षक, 7. छोटा करने; संक्षेप, 8 फ़र्मे, 9 अनुमान।



महोबा, 22 मार्च, 1913

भाईजान,

आज हमीरपुर से वापस आया। अब तक नाज़ा आज़ाद नहीं मिला। मार्च का ज़माना मिला। अभी अच्छी तरह देख नहीं सका हूँ मगर कुछ कमज़ोर नंबर मालूम होता है और लिखाई-छपाई की शिकायत मुआफ़।

इस तरफ़ कोई मज़मून न लिख सका क्योंकि आमद व रफ़्त की तरद्दुद से इत्मीनान न मिला। अलावा इसके कोई मसाला भी पास न था। ज़िन्दगी और मौत बहुत गलत छपा। और किस्सा भी कुछ यों ही सा है। मगर अमावस की रात की निस्बत आपका क्या ख़याल है। निगाहे नाज लिख चुका हूँ, सिर्फ माफ़ करना बाक़ी है। रणथम्भोर के क़िले पर एक छोटा-सा मज़मून क्षत्रियमित्र (हिन्दी) से अख़्ज़ करके रवाना करता हूँ।

मिस्टर मरन के घर में बच्चा पैदा हुआ है। खुशी की बात है। ईश्वर उसे ज़िन्दा रखे। मेरी न पूछिए। अहबाब फलें-फूलें। मेरी खुशी के लिए इतना काफ़ी है। ज़्यादा ज़रूरत नहीं है। उन्हीं के बच्चों को प्यार करके अपनी हवस मिटा लूँगा।

प्रेम पचीसी की तैयारी में तीन सौ लगेंगे। यह रकम बहुत ज़्यादा है। क्या इससे कम में तैयार नहीं हो सकता। कागज़ बहुत अच्छा न सही। आपने छपाई खुश्क का हिसाब लगाया है या तर का। बहरहाल अब मैं जुलाई और अगस्त में दो महीने के लिए कानपुर आऊँगा और उसी ज़माने में यह सब काम हो जायगा। बाक़ी सब खैरियत है।

धनपत राय।

महोबा, 2 मई, 1913

भाईजान,

चंद मुख्तसर नोट इरसाल[1] हैं। उम्मीद है पसंद आयेंगे। आज मैं आपसे कुछ मुआमले की बातचीत करने की आज़ादी चाहता हूँ। आज़ाद को शाया हुए तक़रीबन् पाँच महीने हुए। आप छः महीने की मुद्दत को अखबार की कामयाबी के लिए काफ़ी ख़याल करते थे। वह मुद्दत अब क़रीब है। मुझे यक़ीन है कि आज़ाद अब चल निकला। मैं अव्वल से और अब तक हस्बे औक़ात[2] और फुर्सत आज़ाद के लिए थोड़ा-बहुत लिखता रहा हूँ। मगर आप जानते हैं यह माद्दियात[3] का ज़माना है। हर एक इंसान अपनी मेहनत का

कुछ-न-कुछ नतीजा जरूर चाहता है। खुसूसन् ऐसी हालत में जब कि मेरी सेहत भी अच्छी नहीं है। कुछ अमली नतीजे की तरग़ीब[4] नफ़्स[5] के लिए बहुत कारगर साबित होती है। मैं किताबी कीड़ा मशहूर हूँ और मेरा तबई मैलान[6] जैसा है उससे उम्मीद नहीं है कि मैं सरकारी मुलाज़िमत में कभी कारगुज़ार कहला सकूँ। मेरा शुमार अब तक दर्जए सोम[7] के आदमियों में रहा है और आइन्दा रहेगा। इसलिए मेरी अश्कशोई[8] होनी लाज़मी है। अगर इधर से न सही तो किसी और तरफ़ से सही, कुछ माली फ़ायदा होना चाहिए। इसलिए मेरी आपसे दरख़ास्त है कि आप अज़राहे-करम[9] जितने मज़ामीन या नोट शाया करें उनकी उजरत किसी एक शरह[10] से मसलन् आठ आने फ़ी कालम मुक़र्रर फ़रमा दीजिए। मेरा ख़याल है कि यह आज़ाद पर कोई नाक़ाबिले बर्दाश्त बार न होगा क्योंकि मैं किसी हफ़्ते में भी चार कालम से ज़्यादा नहीं लिख सकूँगा और आज़ाद को ज़्यादा से ज़्यादा सिर्फ़ दस रुपये मेरी नज़्र करने पड़ेंगे। मुझे उम्मीद है कि आप इसे मेरी जानिब से भी सख़्ती न ख़याल फ़रमायेंगे। मैं चाहता था कि यह तहरीक[11] आपकी जानिब से होती मगर एक ही बात है। अगर आप इसे पसंद न फ़रमायें तो कोई मुज़ायका नहीं मैं हस्बे दस्तूर औक़ात और फुर्सत के लिहाज़ से कुछ-न-कुछ क़लमी ख़िदमत करता रहूँगा मगर शायद दोस्ताना बेगार समझकर। मैं जानता हूँ कि आप तिहीदस्त हैं, माली हालत अच्छी नहीं। मगर ऐसा क्यों हो। और अख़बार नफ़ा कर रहे हैं, आप क्यों नुक़सान उठायें। बेज़रूरत और बेनतीजा ईसार क्यों करें। इस बेतकल्लुफ़ी के लिए मुझे मुआफ़ फ़रमाइएगा। और अगर तजवीज़ पसंद आये तो सिर्फ़ कनाये[12] से इसका ज़िक्र कीजिए वर्ना बा मन ओ तू[13] यह ज़िक्र यहीं ख़त्म हो जाना चाहिए।

आपका, धनपत राय।

1. प्रेषित, 2. अवकाश और सामर्थ्य-भर, 3. भौतिकता, 4. प्रेरणा, 5. आत्मा, 6. दिली रुझान 7. तीसरे दर्जे, 8. ऑसू पोंछना, 9. कृपया, 10. दर, 11. सुझाव, 12. इशारे, 13. आपके और मेरे बीच।



महोबा, 4 मई, 1913

भाईजान,

आज आपका मुफ़स्सल ख़त मिला। 'निगाहे नाज़' में जहाँ कहीं ज़रूरत हो मिस का लफ़्ज़ उड़ा दीजिए और नेहरू से एतराज़ है तो इसके बजाय 'हक्कू' कर दीजिए। मुझे कोई उज़्र नहीं है। मुझे यह सुनकर सख़्त मलाल हुआ कि अभी तक आज़ाद अपने पैरों पर खड़े होने के क़ाबिल नहीं हुआ। यही फ़र्ज़ करके मैंने कल आपको एक शिकायतनामा लिखा है जिस पर अब नादिम[1] हूँ। मैं समझा था कि अब हालत कुछ रूबराह[2] होगी। तेज बहादुर बाँदा में बमुशाहिरे[3] आठ रुपये माहवार नौकर थे मगर बीमार हो गये। अब घर जा रहे हैं। छोटक ने टाइपिंग का इम्तहान दिया है। उनकी शादी की बातचीत मिर्ज़ापुर के जिले में हो रही है। बेगम साहिबा यहीं तशरीफ़ रखती हैं और ग़ालिबन दुख़्तरे नेक अख़्तर[4] की आमद है। और सब हालात साबिक़ दस्तूर हैं। पापोश का इंतज़ार है। और क्या अर्ज़ करूँ। देश रोज़ाना मेरे नाम जारी हो गया है। मैंने उसका नामानिगार[5] बनना मंज़ूर कर लिया है। मुआवज़े की बातचीत हो रही है। आज छोटक के क़द्रदां मिर्ज़ापुर से आने वाले हैं। और कोई हाल ताज़ा नहीं है। बाबू रामसरन की

ख़िदमत में दस्तबस्ता आदाब पेश करता हूँ।

आपका, धनपत राय।

1 शर्मिन्दा, 2. अच्छी, 3. तनख़्वाह, 4 भाग्यवती कया, 5. संवाददाता।

●●

गोरखपुर : लक्ष्मीभवन, 2 जून, 1913

भाईजान,

तसलीम। मुझे अफ़सोस है कि मैं अपने वादे के मुताबिक़ 4 को बनारस न जा सकूँगा। अभी यहाँ मुझे तीन दिन और रहना पड़ेगा। ऐसी ही ज़रूरत दरपेश हो गयी है। इसलिए वालिदा साहिबा जिस दिन बनारस आयें और उससे बाबू महताब राय, ज्ञानमण्डल, बनारस को मुत्तिला कर दीजिएगा। वह बुलानाला के धर्मशाले में मुनासिब इंतज़ाम कर देंगे। मैंने उन्हें ताकीद कर दी है। बाबू रघुपत सहाय की तबीयत किसी क़दर नासाज़ है।

आपका, धनपत राय।

●●

महोबा, 7 जून, 1913

भाईजान,

आज आपका कार्ड आया। अपना मुफ़स्सल ख़त परसों लिख चुका हूँ। बहुत अच्छा हुआ कि मशीन आ गयी। अब ज़माना और आज़ाद दोनों वक़्त पर और साफ़ छपेंगे। ग़ालिबन् कानपुर में आपको काम की कमी न रहेगी।

प्रेम पचीसी की कापी मैं खुद देखना चाहता हूँ। मैं अपनी हालत ख़राब होने के बाइस आजकल बिल्कुल अपाहिज़ हो गया हूँ। ओरिजिनल कोई क़िस्सा नहीं। एक है तो वह अधूरा पड़ा हुआ है। हाँ एक क़िस्सा मैंने बंगाली से अख्ज़[1] किया था। वह अगर आप पसंद करें तो मैं भेज दूँ। हाँ उस पर अपना नाम न दूँगा।

मेरा ज़रा सही हो जाये तो फिर कुछ काम करूँ। कानपुर मेरे प्रोग्राम में शामिल है। और ग़ालिबन् बनारस जाने से क़ब्ल अगर आप मेरी रिहाइश[2] का कोई इंतज़ाम कर सकें तो मैं कानपुर ही में अपना मुआलिजा[3] कराऊँ। क्यों बनारस जाऊँ। क्योंकि अब शादी तो होनी नहीं, ख़ामख़ाह की दर्दसरी है।

मैंने अपने परसों वाले ख़त में कुछ अतियाए[4] 'आज़ाद' का ज़िक्र किया है। मई और जून में कुल चौबीस कालम हुए। अब शायद जून में मैं कुछ न लिखूँगा क्योंकि हाज़मा निहायत कमज़ोर हो गया है और एक घंटे भी बैठना दुश्मवार है। अगर माऊदा[5] शरह रखिए तो आठ मुबल्लिग़ात होते हैं। अगर आप बग़ैर बहुत ज़्यादा तरद्दुद के एक तीन चार रुपये की वाच और चार साढ़े चार रुपये का जूता भिजवा सकें तो आपका बहुत ममनून[6] होऊँगा। एक ही पार्सल में दोनों आ सकते हैं। मेरा जूता छोटक ने ले लिया और मैं बरहना-पा[7] हूँ। मगर यह सब उसी हालत में कि आपको तरद्दुद या परीशानी न हो वर्ना नक़्द हू हुरमत हू[8] सही। और क्या लिखूँ। जूते का नंबर 7X4 है। मैं कल क़िस्से को भेजने की कोशिश करूँगा। बाक़ी सब ख़ैरियत है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1 लिया, 2. रहने, 3. इलाज, 4. पुरस्कार, 5. स्वीकृत, 6. कृतज्ञ, 7. नंगे पांव, 8. नक़्द ज्यादा अच्छा है।

●●

महोबा, तिथि नहीं है। अनुमानतः सितम्बर, सन् 1913 में लिखा गया।

मकर्रम बन्दा,

तसलीम। इतावनामा[1], जिसे आपका इनायतनामा[2] कहना चाहिये, वसूल हुआ। कई दिन हो गये। सोचता रहा किन लफ़्ज़ों में जवाब दूँ। कैसे गुस्सा ठंडा करूँ। कुछ अक़्ल ने काम न किया। न शेर ओ शायरी से मस है कि दो चार बढ़िया शेर चस्पां कर दूँ। बिल आखिर दिल ने यही फ़ैसला किया कि तुम ख़तावार हो। मिज़ाजे यार[3] में जो कुछ आये कहने दो, और ज़बान बंद किये सुने जाओ। यह कहना कि मैं बेख़ता हूँ, ग़ालिबन आपके नज़दीक कोई मानी नहीं रखता, क्योंकि आपका गुरूर है कि आपके चंद अज़ीज भी मुलाज़िमे सरकार हैं, और आप क़बाइद[4] से वाक़िफ़ हैं। मगर मुआफ़ कीजियेगा अगर मैं अर्ज़ करूँ कि आपने अपनी उम्र का सबसे बेशबहा हिस्सा मेरी तरह सरकारी मुलाज़मत में सर्फ़ किया होना तो आप इतनी बेख़ौफ़ी से यह अल्फ़ाज़ न लिखते। मैंने रुख़सत लेने में कोई दक़ीक़ा[5] नहीं छोड़ा। दो दर्ख़्वास्तें दीं, तार दिया। दर्ख़्वास्तें दोनों बाद अज़ वक़्त[6] दी गयीं और दोनों मेरे पास रक्खी हुई हैं। बेशक मैंने मेडिकल सर्टिफ़िकेट देने की कोशिश नहीं की, लेकिन मुझे यहाँ इसके मिलने की उम्मीद भी न थी। यह इलज़ाम कि दर्ख़्वास्तें क्यों बाद अज़ वक़्त दी गयीं मेरे सर ज़्यादा से ज़्यादा 10 से है, क्यों कि मेरे पहले हफ़्तए क़याम कानपुर में तो आपने रोज़ाना वग़ैरह का कोई डाइरेक्ट तज़किरा नहीं किया। ज़िक्र किया तब जब मेरी रुख़सत ख़तम होने को आई, और फ़ैसला उस वक़्त हुआ जब कुल तीन दिन रह गये। ऐसी हालत में मेरे जैसे ज़राये[7] का आदमी बजुज़ इसके और क्या कर सकता था कि रुख़सत लेने की कोशिश बहदे इमकान[8] करे और न मिल सके तो मजबूरन व लाचारन अपनी नौकरीपर वापस आ जाये। आप ही फ़रमाइये मुझे क्या ग़रज़ पड़ी थी, क्या दबाव था कि मैं पहले काम शुरू कर देता और तब भाग खड़ा होता। आपने मेरा गला नहीं दबाया था, और न दबा सकते थे। आपने मुझे कोई सैक्रिफ़ाइस करने पर मजबूर नहीं किया, न मैंने कोई सैक्रिफ़ाइस की। मेरा माली फ़ायदा था। फिर ऐसा कौन अम्र था जो मेरी बेदिली का बाइस होता। हमीरपुर में मैं ऐसे वक़्त पहुँचा जब मेरी रुख़सत तमाम होने वाली थी। मैं 13 की शाम को चला और इतवार का दिन। डिप्टी इन्स्पेक्टर दौरे पर। ग़रज हमीरपुर में ऐसा कोई शख़्स न था जिससे मैं सलाह-मशवरा ले सकता क्योंकि हमीरपुर में मेरे जानने वाले गिनती के आदमी भी नहीं हैं। यहाँ भागा, और चार्ज लेने में तब भी एक दिन की देर हो गयी जिसका जवाब मुझको देना पड़ा। यह है मेरा बयान हलफ़ी।

अब दूसरे पहलू पर नज़र कीजिये। आपको मेरे भाग निकलने पर नाराज़ होने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि जैसा अख़बार आप चाहते हैं वह कम तनख्वाह और सर्फ़े में निकल सकता है और निकल रहा है। मालूम नहीं इसकी इशाअत क्या है, लेकिन मुझे यक़ीन है कि इसकी वह हैसियत क़ायम है। एक मामूली सेहत और मामूली लियाक़त का आदमी ऐसा अख़बार निकाल सकता है जिसमें बहुत सा ओरीजिनल न लिखना पड़े। मालूम नहीं आपने रोज़ाना आज़ाद का क्या इन्तज़ाम किया। न मुझे पूछने का कोई हक़ हासिल है। लेकिन यक़ीनन हस्ब-दिलख्वाह[9] कोई न कोई इन्तज़ाम ज़रूर हो गया होगा। और 18

अक्तूबर से तो उसकी दिलचस्पी के लिए किसी मज़ीद[10] मसाले की ज़रूरत की बाक़ी न रहेगी। आप और अगर ज़्यादा नहीं तो यही ख़याल करके मुझे मुआफ़ कीजिये कि रोज़ाना अख़बार की आरज़ू को अमली सूरत में लाने वाला यही शख़्स है। गाड़ी का पहिया पहले मुश्किल से चलता है और एक बार चल निकला तो चल निकला।

प्रेम पचीसी ग़ालिबन् अब हश्र तक न छप सकेगी, क्योंकि रोज़ाना अख़बार की ज़रूरियात कब प्रेस को ख़ामोश बैठने देंगी।

मैं आपसे अर्ज़ कर चुका हूँ कि मेरे 'आज़ाद' और 'ज़माना' के मज़ामीन के मुताल्लिक़ कुल 72 रुपये आते हैं। 56 रुपये पहले थे, इन दो ताज़ा क़िस्सों की उज़रत शामिल करके 72 रुपये हो जाते हैं।

आपने फ़रमाया था कि प्रेम पच्चीसी 4½ जुज़्व[11] छप चुकी है और इसके अख़राजात मय किताबत, कागज़ वगैरह 72 रुपये हुए हैं। गोया हमारा और आपका हिसाब यहाँ तक साफ़ है। अब अगर आप पच्चीसी को निकालना पसंद करें और आप निस्फ़[12] नफ़े-नुक़सान में शरीक हों तो 4½ जुज़्व और छपवाइये, ताकि 9 जुज़्व की एक ख़ासी किताब हो जाये। ग़ालिबन इस 9 जुज़्व में 12 कहानियाँ आ जायेंगी। अगर मेरी तरतीब[13] के मुताबिक़ 12 क़िस्से न आ सकते हों तो आप ज़रा सी तरमीम[14] करके इस 9 जुज़्व में 12 क़िस्से खपा सकते हैं। यह गोया 'पच्चीसी' का पहला हिस्सा होगा। दूसरा हिस्सा हसब ज़रूरत और मसलहत बाद को शाया कर दिया जायगा लेकिन अगर आपका प्रेस इतना वक़्त भी न निकाल सके तो मैं बदर्जा मजबूरी यह इल्तमास[15] करूँगा कि या तो मेरे 72 रुपये मुझे अता फ़रमाये जावें या प्रेम पच्चीसी के 4½ जुज़्व छपे हुए रेल के ज़रिये मेरे पास भेज दिये जावें। ग़ालिबन इन दरख़्वास्तों में ग़ैर-माक़ूलियत से काम नहीं ले रहा हूँ। मैं किसी दूसरे पब्लिशर को ढूँढूँगा और न मिला सका तो इसे 4½ जुज़्व की किताब बना लूँगा। सिर्फ़ दीबाचा और टाइटिल की जरूरत होगी। और यह भी न हो सका तो शहद और घी लगाकर औराक़[16] को चाटूँगा और समझूँगा कि :

ज़रे खुद भी खुरम
वा मेवए मेहनते खुद मी खुरम।[17]

बहरहाल आप जो कुछ तसफ़िया करें जल्द करें और मुझे मुत्तला फ़रमायें। सबसे सहल नुसखा बस छपे हुए जुज़्व को भेज देना है। इसमें आपको सिर्फ़ हुक्म देने की देर है। दफ़्तरी ने गट्ठर बनाया और रेल पर रख आये। आपको कोई तकलीफ़ न हुई।

मैं अब सिर्फ़ 9 जुज़्व की किताब निकालना पसंद करता हूँ, बशर्ते कि आप शरीक हों और जल्द किताब को निकाल सकें। क़यामत के इन्तज़ार में बैठने से तो यही बेहतर है कि जो कुछ सवाब इस वक़्त मिलता है मिल जाये। ज़्यादा क्या अर्ज़ करूँ।

नियाज़मंद, धनपत राय।

1 गुस्से का पत्र, 2. कृपा पत्र, 3. यार की तबीयत, 4 क़ायदों, 5. कसर, 6. वक्त के बाद, 7. ज़रियों, साधनों, 8. सामर्थ्य भरफ, 9. मनोनुकूल, 10. अतिरिक्त, 11. फर्मे, 12. आधे, 13. क्रम, 14. संशोधन, 15. प्रार्थना, 16. पन्ने, 17. अपना पैसा या अपनी मेहनत का फल खुद खा रहा हूं।

●●

महोबा, 10 दिसम्बर, 1913

भाई साहब,

तसलीम। प्रेम पचीसी के साढ़े चार जुज़्ब मिले। मशकूर हूँ। सफ़ा 33 पर विक्रमादित्य के तेग़े वाला हिस्सा खत्म हो गया है। मगर यह पहली बार इतना ही छपा था। मैंने दुबारा उसमें निहायत ज़रूरी इज़ाफ़ा कर दिया था। वह ज़माना के किसी नंबर में छपा भी था, लेकिन इस किताब में वह इज़ाफ़ा किया हुआ हिस्सा नहीं है, जिससे क़िस्सा बिल्कुल बे-सर-ओ-पा मालूम होता है। बराहे करम इसी ज़माने के रिसालों में इस टुकड़े को तलाश करवाके इसमें बढ़ा दीजिए और वह टुकड़ा न मिले तो दो-तीन जुमले जो नफ़्से-मतलब को ज़ाहिर करते हों ज़रूर बढ़ा दिये जावें। क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि यह प्रूफ़ है या मुकम्मल फ़र्मा जिसमें अब तसहीह की गुंजाइश नहीं ?

मैं एक हफ़्ते के अन्दर आपकी ख़िदमत में रुपये कागज़ के लिए रवाना करूँगा। क्यों क्या यह रक़म और साढ़े चार जुज़ के लिए काफ़ी न हो जायगी। फ़िलहाल मैं पहला हिस्सा ही शाया करूँगा। आप किताबत करवाने का इंतज़ाम फ़रमाइए। उसका तसफ़िया किताब के पूरे हो जाने पर हो जायेगा, जैसा आप खुद फ़रमाते हैं। और अगर यह मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो तो जिस वक़्त आप मुझे और साढ़े चार मुकम्मल कर देंगे मैं छपाई का हिसाब भी बेबाक़ कर दूँगा। मगर कागज़ के लिए मैं बहुत जल्द रुपया भेजता हूँ। अब जो कुछ ताख़ीर होगी उसका इलज़ाम मेरे ऊपर न रहेगा। ग़ालिबन् कागज़ के एकजाई इंतज़ाम न होने के बाइस किताब पँचरंगी हो गयी है। कोई मुज़ायका नहीं। टाइटिल पेज खूबसूरत होना चाहिए। बस। कई जगह लिखा-पढ़ी के बाद मैंने यही तसफ़िया किया है कि खुद ही छपाऊँ और नफ़ा-नुक़सान उठाऊँ। पहला हिस्सा इसका फ़ैसला कर देगा। और सब हालात बदस्तूर हैं।

क़हत पड़ गया है। इंमदादी काम खुलने शुरू हो गये हैं। अब जिस क़दर जल्द मुमकिन हो यह काम ख़त्म हो जाये तो अच्छा हो। मुझे ववापसी डाक मुत्तला फ़रमाइए कि विक्रमादित्य का वह आखिरी टुकड़ा मिला या नहीं, ताकि वह हिस्सा मिलाने की फ़िक्र करूँ। सैरे दरवेश बहुत तूलानी क़िस्सा है। उसके बजाय नमक का दारोग़ा रख दीजिए तो बहुत खूब हो।

आपका, धनपत राय।



सम्भवतः 1913

मुशफिक़े मन,

तस्लीम ! आपने सरवर मरहूम के नाम जो खत और हज़रत शाकिर के जो मसौदे मेरे पास भेजे हैं, इन्हें देखने के बाद मुझे आपसे कुली इत्तफाक़ है। इन नज़्मों के असल मुसन्निफ़ सरवर हैं। ताज्जुब है कि उर्दू के तब्क़ाए-मुसन्निफ़िन (लेखक-वर्ग) में इस क़िस्म की बद आदतें हैं, कैसी हैरत का मुक़ाम है कि उर्दू पब्लिक की नाक़द्रदानी ने ऐसे खुशबयाँ सुख़नबर को कलील नफ़ा (छोटे लाभ) के लिए इन ज़रूरतों पर मज़बूर किया। आपने मेरे दीवाचे में जो तरमीम फ़रमाई है, वह लहज़ा वजूह मुनासिब है। काश ! मुझे पहले

इसका इल्म होता तो मैं दीवाचा लिखने के लिए हर्गिज़ क़लम ना उठाता। वस्सलाम।

प्रेमचन्द।

('अक्सीरे-सुखन' की भूमिका में परिवर्तन के सम्बन्ध में लिखा गया पत्र)



महोबा, 16 जनवरी, 1914

भाईजान,

तसलीम। कुछ अर्सा हुआ आपका खत मय रसीद आया था। हालात मालूम हुए। आज की डाक से आपकी खिदमत में बीस रुपये और भेजता हूँ। उम्मीद है कि प्रेम पचीसी की किताबत जारी होगी। आपने फ़रमाया था कि छपाई का हिसाब बाद को होगा। चूँकि मैंने यह तसफ़िया किया है कि पहले प्रेम पचीसी के सिर्फ़ नौ जुज़ छपें, बाक़ी किताब दूसरे हिस्से में शाया की जाय इसलिए जब बाक़ी साढ़े चार जुज़ की किताबत खत्म हो जाय तो मुझे एक नज़र देखने का मौक़ा दीजिएगा ताकि जो कुछ ग़लतियाँ रह जायें उनकी तरमीम (संशोधन) कर दूँ। आप मुझे मुत्तिला फ़रमाइये कि छपाई के अलावा पहले हिस्से को खत्म करने के लिये और कितने रुपयों की ज़रूरत होगी। इसमें टाइटिल पेज और दीवाचे का भी ख़याल मद्दे नज़र रखिएगा। रनजीतसिंह के क़िस्से के मुताल्लिक़ मुझे भी यही मुनासिब मालूम होता है कि इतना हिस्सा अज़ सरे नौ छपवाकर चिपका दिया जाय। हाँ, मगर आप बराहे करम उस टुकड़े को तलाश करवा लीजिये क्योंकि जो हिस्सा मैंने बाद को मिलाया है वह ज़माना के किसी नम्बर में ज़रूर छप चुका है। अब मैं उसको इतनी खूबसूरती से शायद न लिख सकूँ।

क़िस्सों के मुताल्लिक़ क्या अर्ज़ करूँ। तब से एक हर्फ़ नहीं लिखा। तबीयत कुछ ऐसी मुर्दा हो गई है कि इस दर्दे सर का बार नहीं उठाया जाता। ताहम जो कुछ हो सकेगा लिखूँगा। एक क़िस्सा शुरू किया है—अभी नहीं अक्तूबर में शुरु किया था—वह जब खत्म हो जायगा रवानए खिदमत करूँगा।

ज़माना और आज़ाद वसूल हुए। आज़ाद अच्छा है। सेहत का वही हाल है। जब तक चलता है काम करता जाता हूँ। उम्मीद है कि आपका मिज़ाज बहुत अच्छी तरह होगा। यह इल्तमास करने की ज़रूरत नहीं है कि प्रेम पचीसी महज़ आपकी क़द्रदानी की बदौलत छप रही है और अब आप ही उसे अंजाम को पहुँचायें।

जिस क़दर जल्द मुमकिन हो, काम हो जाना ज़रूरी है। ज़्यादा क्या अर्ज़ करूं।

धनपत राय।



सुरीला (बाँदा), 20 फ़रवरी, 1914

भाई साहब,

तसलीम। मैंने दो ख़त आपकी ख़िदमत में रवाना किये मगर आपने एक का भी जवाब देना मुनासिब न समझा। खैर, इसे मैं अपनी बदक़िस्मती के सिवा और क्या समझूँ। आपने फ़रमाया था कि मैंने तुम्हारी ख़ता मुआफ़ की लेकिन शायद अभी उसका गुबार मौजूद है। वर्ना आप तो इतने सुस्तक़लम न थे। मालूम नहीं मेरी किताब की किताबत

हो रही है या नहीं। बराहे करम उसमें लग्गना लगाइए और धन्ना देने की ज़रूरत हो तो मुत्तला फ़रमाइये ताकि किताब के शाया होने की उम्मीद को दिल से निकाल दूँ। क्योंकि मुझे उसे भलेमानस की तरह जो आपके दफ़्तर से अपनी किताब छपवाकर उठा था, इतनी फुर्सत कहाँ है। दिन गुज़रते जाते हैं। अगर किताब उस वक़्त निकली जब लोगों को ख़याल भी न रहेगा कि प्रेमचंद कौन है तो उसके निकलने से क्या फ़ायदा। मैंने इधर अपना क़िस्सा पूरा कर लिया है लेकिन आपकी सर्दमेहरी[1] के वाइस उसे भेजने की जुरअत नहीं होती। अब आपसे यह इल्तिजा[2] है कि कितावत का काम शुरु कर दीजिये और मुझे मुत्तला कीजिये कि पहले हिस्से में कौन-कौन से क़िस्से हैं और वो कितने सफ़ों पर हैं। मैं पहले हिस्से को दस जुज़ से ज़्यादा नहीं करना चाहता। ज़माना और आज़ाद दोनों बराबर आते हैं और उनके लिए आपका मशकूर हूँ। आपके ख़त का इश्तियाक़[3] और इंतज़ार है।

नयाज़मन्द, धनपत राय।

1 उदासीनता, 2 विनती, 3 शौक़।



चिरैया, 4 मार्च, 1914

भाई जान,

तसलीम। आप अन्देशा न कीजिये क्योंकि मेरे अन्देशा करने की बारी है। मुझे कापियाँ 24 तारीख़ को मिलीं और मैंने उन्हें देखकर 25 को रवाना कर दिया। मालूम नहीं पहुँचीं या नहीं। मुझसे भी वही ग़लती हुई कि रजिस्टरी नहीं करायी। बवापसी इत्तला दीजिए। रहा मज़मून। उसे दो एक दिन में ज़रूर भेज दूँगा क्योंकि कहीं-कहीं माफ़ करने की ज़रूरत है। मुझे अभी तक यह इत्मीनान नहीं हुआ कि कौन-सा तर्ज़े तहरीर अख़्तियार करूँ। कभी तो बंकिम की नक़ल करता हूँ, कभी आज़ाद के पीछे चलता हूँ। आजकल काउण्ट टाल्सटाय के क़िस्से पढ़ चुका हूँ। तब से कुछ उसी रंग की तरफ़ तबीयत माइल है। यह अपनी कमज़ोरी है और क्या। यह क़िस्सा जो मैं रवाना करूँगा इसमें लुत्फ़े तहरीर की तुतलक़ कोशिश नहीं की गयी। सीधी-सीधी बातें लिखी हैं। मालूम नही आप पसंद करेंगे या नहीं। अल अस्र निकला या बैठ गया। मैंने आपसे 'एक शायर का अंजाम' और बेगम साहिबा भोपाल की नयी तसनीफ़ (रचना) माँगी है। इन दोनों किताबों को ज़रूर भेजिये। इश्तियाक़ है। किताव ग़ालिबन् मार्च में पूरी होगी। आपने वादा फ़रमाया है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



गोरखपुर, 30 अप्रैल, 1914

बरादरम,

तसलीम। ज़माना में क्या देर है। इस अपील का ख़रीददारों पर कुछ असर पड़ा ?

प्रेम पचीसी की तरह इसे मई महीने में खत्म कर दीजिये। 112 सफ़े छप गये हैं। 24 की कितावत खत्म हो चुकी है। अब सिर्फ़ 16 सफ़े या 12 या 20 जितना दरकार हो और ले सकते हैं। इस तरह पहला हिस्सा तो तैयार हो ही जाये, दूसरे हिस्से का अल्लाह मालिक है। टाइटिल, मुड़ाई, सिलाई वग़ैरह का तख़मीना होगा। तहरीर (लिखिए)

फ़रमाइए। दीबाचा आपने लिखने का वादा फ़रमाया है। तूल न हो मुख्तसर ही सही, मेरी खातिर चन्द सतरें लिखने की मुहलत निकाल लीजियेगा। और क्या अर्ज़ करूँ। लेकिन किताब मई मे ज़रूर तैयार हो जाय। मैं आपको दस रुपये और नज्र (भेंट) कर सकता हूँ। बाक़ी हिसाब खात्मे पर। अभी ग़लतनामे की फ़िक्र भी है। बहरहाल जिस क़दर जल्द हो सके मेरे पास 144 से 160 सफ़ों तक का पहला हिस्सा खत्म करके इरसाल फ़रमावें। अब बहुत देर हो गयी।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



महोबा, 3 मई, 1914

भाईजान,

तसलीम। लीजिए राना जंगबहादुर हाज़िर है। मैंने साफ़ नहीं किया। कई दिन और लग जाते।

'हँसी' का बक़िया जल्द लिखूँगा। नागरी प्रचारिणी पत्रिका में वह सिलसिला अभी ख़त्म नहीं हुआ। मगर अब हरेक नम्बर में दो तीन सफ़ों से ज़्यादा नहीं निकलते। पूरा निकल आये तो ज़माना के पाँच छः सफ़ों का मसाला हो जाये। मैंने तर्जुमा नहीं किया है, सिर्फ़ नफ़स ले लिया है।

'सरे पुरगुरूर' नाम का एक क़िस्सा लिखा हुआ है। सिर्फ़ कुछ तरमीम बाक़ी है। उसे साफ़ करना पड़ेगा। दो तीन दिन में उसे भी हाज़िर करूँगा।

भरत पर एक हिन्दी मज़मून का तर्जुमा किया था। वह अल नाज़िर में पहले ही भेज दिया था, हालांकि वह ज़माना में ज़्यादा मौज़ूँ होता। भरत के कैरेक्टर पर बहुत अच्छा, पुरमानी और दर्दनाक रिव्यू किया गया है। आपकी ख़मोशी ने मुझे उधर रुजू होने (ध्यान देने) पर मजबूर किया था।

बाक़ी सब ख़ैरियत है। प्रेम पचीसी का इश्तहार ज़रूर दिलवा दीजिएगा।

आपका, धनपत राय



महोबा, 22 मई, 1914

भाई साहब,

तसलीम। ख़त मिला। आजकल गर्मी के बाइस बैठना मुश्किल है लेकिन काम कर रहा हूँ। सरे पुरगुरूर जाता है। एक और क़िस्सा भी भेजता हूँ। यह कुछ अर्सा हुआ बंगला से तर्जुमा होकर मर्यादा में निकला था। क़िस्सा निहायत दिलचस्प है वर्ना मैं तर्जुमा क्यों करता। यह ज़ख़ीरे के लिए लिखा था। आप ज़रा इसे सरसरी तौर पर देख लीजिएगा। जी चाहे तो रख लीजिए वर्ना जहाँ का तहाँ भेज दूँगा।

मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि अब आपकी तरद्दुदात का हुजूम कुछ हटा। अब आप ज़्यादा यकसू[1] हो सकेंगे।

मेरे आने की बात यों है। मैं तो आज ही रवाना हो जाता मगर 27 मई को फ़ैज़ाबाद से एक लाला साहब छोटक की शादी के मुताल्लिक़ कुछ तज़किरा[2] करने के लिए आयेंगे। फिर मुझे धर्मपत्नी जी के साथ ससुराल जाना है। ग़ालिबन् 4 या 5 जून को जाऊँगा।

अगर यह झमेले न होते तो बराहे रास्त कानपुर आता। टट्टी और पंखे तो ख़ैरियत से होंगे। अब रही ज़माना का क़लमदान सँभालने की बात। उर्दू की हवा आजकल बिगड़ी हुई है। अख़बारनवीसी बहुत मुश्किल हो गयी है। जितने मौजूदा रिसाले हैं उनमें किसी को फ़रोग़[3] नहीं है। सब कुत्ते की ज़िन्दगी जीते हैं। इन हालात में क्या हौसला हो। इधर 15 साल की मुलाज़मत। कुछ दिन और ज़िन्दा रहूँ तो Invalid पेन्शन का हक़दार हो जाऊँ। मेरे लिए यही लाइन सबसे अच्छी है। और मुझे यहीं पड़ा रहने दीजिए। यहाँ आफ़ियत[4] है और मैं गोशानशीनी[5] में ज़्यादा क़ाने[6] रहूँगा। इसी हालत में कुछ तसनीफ़ का काम भी कर सकता हूँ। अख़बार या रिसाला लेकर मैं तसनीफ़ का काम कुछ न कर सकूँगा। अभी रोज़ घंटा भर लिटररी काम करना अच्छा मालूम होता है। लेकिन दिन भर इसी शक्ल में कैसे रहूँगा। काश मैं किसी तरह कानपुर तबदील होकर आ सकता। तबादले की दरख़्वास्त तो दी है मगर मालूम नहीं कहाँ फेंका जाऊँ।

अगर आपको किसी अंग्रेज़ी रिसाले से किसी मज़मून का खुलासा या तर्जुमा कराना हो और जिसकी जुलाई के लिए ज़रूरत हो तो फ़ौरन भेज दीजिए। वस्सलाम।

धनपत राय।

1. एकाग्र; निश्चिन्त, 2. चर्चा, 3. उन्नति, 4. शान्ति, 5 एकान्तवास, 6 संतुष्ट।



महोबा, 3 जून, 1914

भाईजान,

तो अब अर्ज़ का डण्डा पेश करता हूँ। मैंने लिखा था कि रुख़सत की दरख़्वास्त दे चुका हूँ। ग़ालिबन् पंद्रह तक मैं यहाँ से रुख़सत हो जाऊँगा। सेहत की हालत मुझे मजबूर कर रही है। आप मुझे देखें तो ग़ालिबन् पहचान न सकेंगे। हाज़मे में फ़ितूर[1] आ गया है। ज़ोफ़[2] दिन-दिन बढ़ता जाता है। इसलिए मैंने मुसम्मम[3] इरादा कर लिया है कि कुछ दिनों तक लिटररी काम मुतलक़ न करूँ। हालांकि तबीयत का तक़ाज़ा मजबूर करेगा लेकिन हत्तुल इमकान[4] उसे रोकूँगा। इसलिए मैं निहायत मजबूरी की हालत में आज़ाद की क़लमी मदद न कर सकूँगा। कम से कम दो तीन माह तक—अब आप मेरे पास अख़बारात न भिजवाया करें। सिर्फ़ आज़ाद हस्बे दस्तूर भिजवाते रहें। आइन्दा कुछ दिनों तक मैं सिर्फ़ एक कहानी माहवार लिखने की कोशिश करूँगा। बस इससे ज़्यादा कुछ नहीं। दो एक और अख़बारों से ताल्लुक़ पैदा किया था। लेकिन जी से जहान है। क्यों मरें।

छोटक की शादी डिसमिस हो गयी। बहुत अच्छा हुआ। अभी दो तीन साल तक यह काम क़ब्ल-अज़-वक़्त[5] था। आइन्दा दीदा ख़्वाहद शुद[6]। ज़्यादा क्या लिखूँ। आपके यहाँ आने का इरादा है। देखूँ कब तक पूरा होता है। मरीज़ बहुत वेलकम मेहमान नहीं होता। यह ख़याल माने[7] है।

मई के महीने में मैंने आज़ाद के लिए 17 कालम लिखे। और ग़ालिबन् जून के पहले नंबर में भी चार कालम से कम न होगा। कुल 21 कालम होते हैं। अगर आप हिसाबे दोस्तां के तौर पर मुझे एक वाच इनायत कर सकें तो आज़ाद की यादगार रहेगी। मगर वह वाच नहीं जिसके साथ तीन रुपये में सोलह चीज़ें मिलती हैं। मज़बूत

घड़ी हो जो ज़्यादा नहीं तो तीन चार साल तक तो साथ दे। उम्मीद कि आप अच्छी तरह होंगे।

प्रेम पचीसी की नसहीह जारी है। अनक़रीब-उल-इख़्तमाम[8] है। तब तक हमदर्द में भी दोनों क़िस्से छपे जाते हैं।

आपका, धनपत राय।

1. खराबी, 2. कमजोरी, 3. पक्का, 4. शक्ति भर, 5 वक्त से पहले, 6. देखा जायगा, 7. बाधक, 8. खत्म होने के करीब, 9 वक्त से पहले, 10. देखा जायगा, 11. बाधक, 12. खत्म होने के करीब।



महोबा, जून, 1914

भाईजान,

तसलीम। इश्तहार के खो जाने से वड़ा हर्ज हुआ। ख़ैर, यह दूसरा इश्तहार लिख लिया है। इस काम में मैं अनाड़ी हूँ और पहला इश्तहार कई फ़ाक़ों में तैयार हुआ था। उसे आप अगर एक हफ़्ते में छाप सकें तो आज़ाद के साइज़ पर पाँच हज़ार छाप दें। सिर्फ़ एक तरफ़। वर्ना जब बस्ती चला जाऊँगा तो वहाँ भेजना पड़ेगा। मैं अंग्रेज़ी कटिंग का तर्जुमा न कर सका, न कुछ लिखने ही की तरफ़ तबीयत रुजू हुई। क्या करूँ। वाक़ई ज़माना वहुत पिछड़ गया। जून ख़त्म हुआ अभी अप्रैल नंबर लापता है। इश्तहार की क़ीमत मय काग़ज़ वग़ैरह ख़्वाह मुझसे बज़रिये वी. पी. वसूल कर लीजिए या अगर किताब की बिक्री की कुछ अमानत हो तो वह उसके नज्र कीजिए। छप जरने पर मैं अर्ज़ करूँगा कि फ़िलहाल मुझे कितनी परतों की ज़रूरत है।

बराहे करम मुत्तिला कीजिए कि किसी और अख़बार ने रिव्यू किया या नहीं। चकबस्त की कमला पर क्या रिव्यू करें। बहुत मामूली है।

आपका, धनपत राय।



बस्ती, 16 जुलाई, 1914

भाईजान,

तसलीम। प्रूफ़ के लिए शुक्रिया। मेरे ख़याल में दोनों ही नमूने रखे जायं, सादा और मुरस्सा[1]। निस्फ़-निस्फ़ हो जाये तो अच्छा। रियायतें मैंने काट दीं, बस तुलबा[2] और मुदर्रिसीन[3] की रियायत रखी है। अगर आप मज़ीद[4] रियायत करना चाहें तो शौक़ से कर दीजिए। मगर जल्द छप जाये। अभी तक उन्नाव वाले एजेण्ट ने कोई ख़बर नहीं ली। ख़ैर। इश्तहार छप जाने पर शायद कुछ बिक्री हो सके। अगर ज़माना में दो बार तक़सीम[5] कीजिए तो और ज़्यादा छपवा लीजिए। नक़्क़ाद में भी तक़सीम करा दूँगा। और चंद रिसालों के नाम बतलाइए। माडर्न रिव्यू और सरस्वती ने रिव्यू किया नहीं क्या ? मैंने हमदर्द को एक क़िस्सा दिया था। कई माह हुए, उसने छापा नहीं। अब मैं दो तीन दिन में उसे ज़माना के पास भेजूँगा। अंग्रेज़ी कटिंग का तर्जुमा आप चाहते हैं या उस पर बेस करके कुछ लिखूँ। आज़ाद नहीं आया। एकाध अख़बार अंग्रेज़ी का और भिजवा दिया कीजिए तो आज़ाद के लिए कभी-कभी मुख़्तसर नोट लिखा करूँ। ज़माना कब तक

आयेगा।

बारिश हो रही है। मकान की सख़्त तकलीफ़ है। उम्मीद है आप बख़ैरियत होंगे।

आपका, धनपत राय।

1. सुसज्जित, 2 विद्यार्थी, 3 मास्टर, 4 अतिरिक्त, 5. बांटिए।



बस्ती, अनुमानतः 3 सितंबर, 1914

भाईजान,

आपने यह दर्याफ़्त नहीं किया कि अवध कमर्शियल बैंक ने सिर्फ़ दर्याफ़्त किया था या वही ब्रान्च बंगाल के पास चेक भेजा था। बहरहाल मुहम्मद अली साहब का ख़त आया है। वो लिखते हैं कि इसमें कमर्शियल बैंक की गलती है। उन्हें दुबारा चेक भेजना चाहिए क्योंकि ताकीद सख़्त कर दी गयी है और कोई वजह नहीं है कि बैंक वाले रुपया न दें। मैंने अवध कमर्शियल बैंक को यह लिख दिया है और ताकीद कर दी है कि वो दुबारा चेक को भेजें। अगर अबकी भी वह वापस आ जाये तो चेक को मेरे पास भेज दें, मैं रुपया भेज दूँगा। आप ख़ाहमख़ाह परीशान होते हैं। चेक भेजने का सर्फ़ा मैं दे दूँगा। चलिए छुट्टी हुई।

चंद मज़ामीन और नोट भेजता हूँ।

एक सख्त भूल से मेरे पास दस दिन तक डाक बिल्कुल न पहुँच सकी। यह सब मज़ामीन आज ही लिखे हैं। आपने मेरा हिसाब माँगा है।

जून में 10 रु.	जुलाई में 5 रु.	अगस्त अभी चल रहा है
25 कालम	14 कालम	

क़िस्सों के मुआवज़े के मद में मेरे जैल के रक़ूम (निम्नलिखित रकमें) हैं :

बेकस लड़की	सफ़ेद ख़ून	शिकारी राजकुमार
8 रु.	8 रु.	5 रु.

मेरे ख़याल में मैंने कोई ज़ायद मतालबा नहीं किया है। शिकारी राजकुमार मुख़्तसर क़िस्सा है इसलिए उसका मुआवज़ा कम रखा है।

लीडर मेरे पास एक भी नहीं आया। मालूम नहीं क्या हुआ। मैंने 'बंगाली' जारी कराया है। शायद दो तीन दिन बाद जारी हो जाए। अब यहाँ मुझे माडर्न रिव्यू, इण्डियन रिव्यू वग़ैरह मिल जाया करेंगे क्योंकि पण्डित मन्नन द्विवेदी डुमरियागंज के तहसीलदार हैं। ज़ायद क्या अर्ज़ करूँ।

आपका, धनपत राय।



बस्ती, 4 सितम्बर, 1914

भाईजान,

कल एक नोट लिख चुका हूँ। आज मुफ़स्सल ख़त लिखना चाहता हूँ। मुझे यह सुनने का बहुत इश्तियाक़ है कि आज़ाद की इशाअत में भी इस जंग का असर हुआ। गोरखपुर में मैंने प्रताप को स्टेशन पर बिकते देखा। क्या आज़ाद के लिए कोई ऐसी सूरत नहीं निकल सकती है। ज़माना के दोनों नंबर मिले। देखा। कुछ हल्के हैं।

प्रेम पचीसी का इश्तहार देखकर खुशी हुई। मगर इस वक़्त उसका निकलना ग़ालिबन् बेमौक़ा है। जंग की धुन में शायद ही किसी को क़िस्से-कहानी का शौक़ हो। क्या कुछ दरख़्वास्तें आयीं। टाइटिल पेज वग़ैरह तो शायद अभी तैयार न हुआ हो। जल्द फ़िक्र कीजिए। इंतजार करते-करते बहुत दिन हो गये। किताब छप जाने पर मुझे उसका पूरा बल मिलना चाहिए ताकि मैं हिसाब लगा सकूं कि हमारे और आपके दर्म्यान क्या मुआमला है। रह गया इशाअत के ख़र्च का सवाल। मैं इस मुआमले में हर तरह आपकी मर्ज़ी पर शाकिर हूँ। आप जैसे मुनासिब समझें करें। पहले तो अख़बारों के पास और अहले क़लम की ख़िदमत में रिव्यू और राय के लिए भेजना जरूरी होगा। यह भी एक काम है। सौ खत लिखने पड़ेंगे। सौ चिप्पियां दरकार होंगी। ख़त का मज़मून आप बना चुके थे। उसे क्यों न छपवा लीजिए। और किताब में एक-एक ख़त रख दीजिए। क्या पैसे पैसेवाले कार्डों की ज़रूरत होगी या सादा कार्ड काफ़ी होंगे। मेरे ख़याल में छपे हुए कार्ड बेहतर होंगे। अख़बारों के लिए सादा कार्ड, अहले क़लम के लिए पेड-कार्ड। क्यों? जब इन हज़रात के रिव्यू और रायें कुछ आ जायें तब इश्तहार की फ़िक्र होगी। आजाद और ज़माना तो ख़ैर हैं ही, और पर्चे जिन्हें आप मुनासिब समझें उन्हें इश्तहार देने की ज़रूरत होगी। या उन रायों का इक़्तबास[1] एक वरक़ की सूरत में छापकर अख़बारों की मार्फ़त शाया करा दिया जाये। बहरहाल यह आपका अपना काम है।

आज स्टेट्समैन के लिए लिख दिया है और अब मैं डाक का बेहतर इंतज़ाम रखूंगा ताकि आज़ाद के लिए बाक़ायदा नोटिस लिख सकूं। हां मैंने गुज़श्ता[2] बृहस्पत को एक किस्सा मय नोटिस के भेजा था। मालूम नहीं पहुंचा या नहीं। लिखिएगा। सौदाए ख़ाम आपने कहां से छापा। क्या हमदर्द से नक़्ल किया या मैंने आपके पास बराहे रास्त भेजा था। लीडर का इंतज़ाम जो आपने किया है एक मामूली अख़बारख़्वां के लिए तो अच्छा है मगर जिसे अख़बारनवीसी भी करनी पड़े उसके लिए ज़्यादा कारआमद नहीं है। इसलिए स्टेट्समैन के जारी हो जाने पर उसे बंद करना पड़ेगा। आप मेरे पास पंद्रह रुपये भेज दें तो ऐन नवाज़िश हो। उसमें मैं स्टेट्समैन मंगा लूँगा। और माह सितंबर की तनख़्वाह भी महसूब[3] हो जायगी। नये-नये इंतज़ाम की वजह से मैं यहां तंगदस्त हो गया। चारपाइयां बनवानी पड़ीं, अभी जानवर नहीं लिया मगर उसके लिए रुपये की दिन-रात फ़िक्र है। खुद सैनाटोजन का इस्तेमाल कर रहा हूँ जो शायद यह शीशी ख़त्म हो जाने पर मुश्किल से मिल सकेगी। बस्ती में अभी किसी से शनासाई[1] नहीं। बस डिप्टी इन्स्पेक्टर को जानता हूं। और डुमरियागंज में पण्डित मन्नन द्विवेदी तहसीलदार से वाक़फ़ियत हो गयी है, प्रताप की बदौलत। अभी तक यह नहीं तय कर सका कि डुमरियागंज में क़याम करूं या बस्ती में। चाची बस्ती के लिए वोट देती हैं ताकि छोटक की आमदरफ़्त में दिक़्क़त न हो। हर बार मुझे एक लंबा खुश्की सफ़र करना पड़ता है और कमबख़्त दौरा बजाय नफ़े के नुक़सानदेह होता है।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है। ज़्यादा क्या अर्ज़ करूं। प्रताप के इसरार से मजबूर होकर एक मुख़्तसर-सा क़िस्सा हिन्दी में उसके विजयदशमी नंबर के लिए लिखा है। हिन्दी लिखनी तो आती नहीं मगर कुछ क़लम तोड़-मोड़ दिया है। बच्चे कैसे हैं। जवाब का

मुन्तज़िर।

आपका, धनपत राय।

1. उद्धरण, 2. पिछले, 3 हिसाब से वसूल होना, 4 जान-पहचान।



बस्ती, 10 नवम्बर, 1914

भाईजान,

आपका 5 नवम्बर का लिफ़ाफ़ा आज 10 को मिला। ऐसी हालत में क्या अख़बारी काम करूँ, क्या न करूँ। यहाँ शायद बीस मील के नवाह (घेरे) में सिर्फ़ एक डाकख़ाना है। पंडित विश्वनाथ जी अख़बार निकालने वाले हैं। अच्छी ख़बर है। मैं अपनी मौजूदा हालत के एतबार से रोज़ाना अख़बार के लायक़ किसी तरह नहीं हूँ। फिर उर्दू और हिन्दी दोनों का बार मुझसे क्योंकर चलेगा। अगर अख़बारी काम करना होत तो आज़ाद क्या बुरा था। उसी को निकालता रहता। मेरे लिए तो अब यही मुनासिब है कि किसी प्राइवेट स्कूल की मास्टरी कर लूँ जहाँ से 50 रु. माहवार मिले। इसी के साथ-साथ 'ज़माना' और 'आज़ाद' की खिदमत करूँ। इस तरह मुझे साठ-सत्तर रुपया माहवार का औसत पड़ता जाए। इससे ज़्यादा की ख़्वाहिश नहीं और न इससे ज़्यादा पा सकता हूँ। ख़्वामख़्वाह तक़दीर से क्यों लडूँ। कुछ कितावें लिखूँगा, कुछ अपनी किताबें छपवाऊँगा। पाँच छः सौ मेरी कमाई है, उसे इन्हीं कामों में सर्फ़ करूँगा, और बिल आख़िर जब लिटररी शोहरत हासिल कर सकूँगा तो कोई माहवार रिसाला निकालकर गुज़र करूँगा। और अगर इसके पहले ही हयात (जिन्दगी) ने जवाब दे दिया तो फिर राम नाम सत्त है।

आप मेरी किताव जल्दी से छपवा दीजिये, ताकि उसकी क़द्रदानी देखकर दूसरे हिस्से में हाथ लगे, और कुछ नफ़ा भी हो। क्या कहूँ आपने तो मुझे उछालने में कोई कसर नहीं रक्खी। खूब उछाला। मगर मैं ही क़िस्मत का अन्धा हूँ कि उछल कर परवाज़ (उड़ना) नहीं कर सकता, बल्कि नीचे गिरने के लिये डरता हूँ। वर्ना शिवब्रत लाल वर्मन की तरह चैन से जिंदगी बसर करता। हक़ीक़त यह है कि सेहत बड़ी चीज़ है, जिसने उसकी क़द्र न की उसके लिए बजुज़ रोने और सर धुनने के और कोई इलाज नहीं है। और ज़्यादा क्या लिखूँ।

आज से आपका क़िस्सा साफ़ करता हूँ। देखूँ कितने दिन लगते हैं।

सारी दुनिया को सैनाटोजन फ़ायदा करती है, मुझे इससे भी कुछ न हुआ। आपने चार पाँच मील हवा खाने की सलाह दी है। उसकी तामील कर रहा हूँ। पाँच दिन से लगातार तीन-चार मील घूमता हूँ। उम्मीद कि तबीयत टिचन होगी।

कोई प्राइवेट स्कूल की मुदर्रिसी का चर्चा हो तो मेरा ख़याल रखियेगा क्योंकि मैं अब इससे वेज़ार हो गया हूँ।

आपका, धनपत राय।



बस्ती, 9 मार्च, 1915

भाईजान,

आज रुख़सत मंजूर होने के लिए कलक्टर साहब की सिफ़ारिश के साथ डाइरेक्टर

के पास चली गयी। कल से मैं आज़ाद हो गया मगर असबाब वग़ैरह यहाँ पड़ा हुआ है। उसे लेकर मजबूरन बनारस जाना पड़ता है। बर्तन वग़ैरह गुड्स से भेजूँ तो टूटने-फूटने का डर रहता है। ग़ालिबन् दो या तीन दिन बनारस में लगेंगे। इसके बाद कानपुर आ जाऊँगा। मगर इरादा मुस्तक़िल तौर पर बनारस में रहने का है। तावक़्ते कि ज़माना का इंतज़ाम ठीक नहीं हो जाता, कानपुर रहूँगा।

दो मज़ामीन इरसाले ख़िदमत हैं। बाक़ी मज़ामीन जो मैं लाया था वो बेकार हैं। आपके दफ़्तर में अगर कुछ मज़ामीन आये हों तो ववापसी डाक रवाना फ़रमा दीजिए ताकि देख डालूँ। मेरा इरादा है कि 'जर्मन फ़लसफ़े का मुहारिवाना (आक्रमणकारी) रुझान' पर एक मज़मून लिखूँ। इसलिए नवम्बर और दिसम्बर के इण्डियन रिव्यू भी भेज दीजिए। ये सब इसलिए मंगवाता हूँ कि मुमकिन है मुझे बनारस में कुछ अर्सा लग जाये। इस फुर्सत के वक़्त में कुछ न कुछ काम कर डालूँगा। जनवरी की किताबत ग़ालिबन् शुरु हो गयी होगी। 'फ़लसफ़ए जज़्बात' पर रिव्यू भी लिख रहा हूँ। अगर मज़मून आये हों और मेरी ज़रूरत ज़्यादा हो तो इण्डियन रिव्यू न भेजिएगा। सिर्फ़ ख़त डाल दीजिएगा। बाक़ी सब ख़ैरियत है। कल तीन बजे की गाड़ी से बनारस जाऊँगा।

आपका, धनपत राय।

पता : धनपत राय
मार्फत बाबू द्वारका प्रसाद, ब्रांच पोस्टमास्टर, डाकखाना पांड़ेपुर, बनारस।



पांड़ेपुर, बनारस, 20 मार्च, 1915

भाई साहब,

तसलीम। मैं कल यहाँ पहुँच गया और हस्बे दस्तूर जैसे था वैसे हूँ। ग़ालिबन् आपने मार्च का पर्चा कातिब के पास भेज दिया होगा। अगर आप मुझसे नोट लिखाना चाहें तो कामनवील के चारों पर्चे और अमृतबाज़ार पत्रिका के आख़िरी दो पर्चे रवाना फ़रमाइएगा, आठ दस सफ़े लिख दूँगा। और अगर बिला नोट के रखना चाहें तो कोई ज़रूरत नहीं।

फ़रवरी के साथ जनवरी का एक पर्चा भी भिजवा दीजिएगा। मैं जनवरी का कोई पर्चा साथ नहीं लाया।

घर में अब कैसी तबीयत है ?

आपका, धनपत राय।



बनारस, 30 अप्रैल, 1915

भाईजान,

तसलीम। आपका कार्ड मिला। क्या ज़माना की मौजूदा हालत इस क़ाबिल है कि कोई शख़्स उसे लेकर 600 रु. आपके नज़र करने के बाद 1200 रु. दीगर मसारिफ़, मसलन् तनख्वाह मैनेजर, किराया मकान, गुजरान एडीटर और तनख्वाह चपरासी वग़ैरह के निकाल सके। माहवार मसारिफ़ किताबत और छपाई, काग़ज़ टिकट वग़ैरह क़रीबन् 150 रु. होंगे। हम लोगों ने एक बार जो तख़मीने किये थे उसके हिसाब से मुझे और

आपको बमुश्किल तमाम शायद 60 रु. फ़ीस कस पड़ते थे। यह तो तयशुदा अम्र है कि कन्ट्रैक्टर को ज़माना के माली बार (आर्थिक बोझ) से कोई ताल्लुक न होगा। लेकिन Debts में क्या ख़रीददारों की वह क़ीमतें नहीं महसूब होंगी जो उनसे वसूल की जा चुकी हैं। आप बराय मेहरबानी तहरीर फ़रमाइये कि कन्ट्रैक्ट जिस तारीख़ से शुरू होगा उस तारीख़ से आप अपने कन्ट्रैक्टर पर कौन-कौन सी ज़िम्मेदारियाँ आयद करेंगे। मैंने अभी नौकरी पर जाने का कोई इरादा नहीं किया। दो माह की रुख़सत और ले ली है। अगर कन्ट्रैक्ट की की सूरत निकल आये तो मैं फौरन साल भर की रुख़सत बेतनख्वाह की दरख्वास्त भेज कर साल भर तक़दीर आज़माई करना चाहता हूँ। जिस वक़्त मैं वहाँ पर था कन्ट्रैक्ट का ख़याल न आपको आया और न मुझे। ग़ालिबन इस मुआमले में बाहमी तसफ़िया होना मुमकिन है। बस आपके मुफ़स्सल जवाब का इंतजार है।

प्रेम पचीसी के मुताल्लिक़ अभी ज़िक्र मुल्तवी। अगर यह मुआमला ठीक हो गया तो मैं ख़ुद ही छपवा लूंगा।

आपका, धनपत राय।



पांड़ेपुर, बनारस, 17 जून, 1915

भाई साहब,

तसलीम। इश्तहार मालूम नहीं अभी तक छपा या नहीं। मैं उसका इन्तज़ार कर रहा हूँ। कई दिन हुए मैंने एक लिफ़ाफ़े में डाक्टर इक़बाल के ख़त की नक़्ल भेजी थी ताकि वह भी उसमें शामिल कर दी जाये। मालूम नहीं आपने उसे शामिल करने की हिदायत कर दी या नहीं। बराहे करम उसे जल्द छपवाइए ताकि जून में इधर-उधर भेज दूँ। और अगर अभी तक काग़ज़ ज्यों का त्यों पड़ा हुआ हो तो उसे वापस ही कर दीजिए ताकि किसी पंजाबी प्रेस में छपवाकर मँगवा लूँ। नये इन्तज़ामात क्या हुए, लिखिएगा।

और सब ख़ैरियत है। जवाब बवापसी रवाना फ़रमाइए। मिस्टर रामसरन निगम की ख़िदमत में सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



पांड़ेपुर, 26 जून, 1915

भाई साहब,

तसलीम। कल आपका लिफ़ाफ़ा मिला। डा. सतीशचन्द्र के मर्गेनागहानी[1] पर जिस क़दर मातम हो थोड़ा है। बड़े आदमी जल्द मरते हैं, इस ख़याल की तसदीक़ हो गयी।

इश्तहार कई दिन हुए रवाना-ए-ख़िदमत कर चुका हूँ। डा. इक़बाल के ख़त का इक़तवास भी जो आपके पास मौजूद है उसमें शामिल करवा दीजिएगा।

मैंने इमसाल[2] इण्टरमीडिएट का इरादा किया है। मुझे ज़िन्दगी के तजुर्बे से मालूम होता है कि किसी लिटररी लाइन में बग़ैर ग्रेजुएट हुए कोई उम्मीद नहीं। इतने दिन क़िस्सा कहानी मज़ामीन लिखता रहा लेकिन आज बेरोज़गार हो जाऊँतो कोई ऐसा रिसाला या अख़बार नहीं है जो क़लील[3] मुआवज़े पर भी मेरा निबाह कर सके। दस ग्यारह साल तक मैंने रियाज़त[4] की मगर कभी फ़ैज़[5] न पहुँचा। दो चार आदमियों के वाहवाह से जी खुश

होता है। मगर महज़ इतना ही काफ़ी नहीं है। अब इसी तरह मौक़े और फ़ुर्सत के लिहाज़ से कुछ थोड़ा बहुत लिटररी काम करता रहूँगा। ज़्यादा सरगर्मी नहीं बाक़ी है। तीन साल की मामूली मेहनत में ग्रेजुएट हो सकता हूँ। बुढ़ापे में आराम मिलने का सहारा हो जायेगा, हालांकि मेरे लिए बुढ़ापे का ज़िक्र ही फ़िजूल है। मैं किस बूढ़े से कम हूँ।

मिस्टर रामसरन को मेरी तरफ़ से मुबारकबाद। सच्ची खुशी हुई। निसार-ए-हिन्द जल्द मुमकिन हो तो भिजवा दीजिए।

आपका नियाज़मन्द, धनपत राय

1. असमय मृत्यु, 2 इस साल, 3. कम, 4. मेहनत, 5. फ़ायदा



बनारस, 6 जुलाई, 1915

भाई साहब,

तसलीम। कल बस्ती जा रहा हूँ। इश्तहार दूसरी बार भेज चुका। एक हफ़्ते से ज़्यादा गुज़रा। मेरे ख़याल में क़रीब दो हफ़्ते के हुए। मगर अभी तक प्रूफ़ तक का पता नहीं। अगर आपके यहाँ न छप सके तो बराहे करम बस्ती के पते से मुत्तिला फ़रमायें ताकि कहीं और छपवा लूँ। इश्तहार के न छपने से इस एक महीने में मैं बुकसेलरों से ख़तो किताबत कुछ न कर सका। वर्ना मुमकिन था कि कुछ जिल्दें निकल जातीं।

उम्मीद है कि आप बहुत अच्छी तरह होंगे।

ख़ैर अन्देश, धनपत राय।



बस्ती, 26 जुलाई, 1915

भाई साहब,

तसलीम। नवाज़िशनामे[1] का शुक्रिया। परमात्मा आपके इरादों में बरकत दे। बस आइडियल ऊँचा रहे। तब और अब में कोई उसूली फ़र्क़ न होने पाये और मुझे यक़ीन है कि आप उसमें कामयाब होंगे। अगर इश्तहार छप गया है और आप उसे ज़माना के साथ तक़सीम करना चाहते हों तो दो माह के लिए दो हजार या जितनी ज़रूरत हो अपने पास रख लें, बाक़ी मेरे पास भेज दें। हाँ अगर आपका मुहर्रिर 100 परत उन्नाव के एजेण्ट के पास 50 परत राय बरेली के एजेण्ट के पास भेज दें तो बहुत अच्छी बात हो। वर्ना ज़्यादा तरद्दुद हो तो ज़माना के लिए रखकर बाक़ी बज़रिये रेलवे पार्सल, या वज़न ज़्यादा न हो तो डाक पार्सल मेरे पास रवाना कर दें। मशकूर होऊँगा। कोताह क़लम[2] ज़रूर हो गया हूँ। एफ. ए. का इम्तहान देना चाहता हूँ। इस महकमे में इसके बग़ैर गुज़र नहीं। मकान मदरसे से दो मील। क़िस्सा बहुत जल्द भेजूँगा। क्या बतलाऊँ। शरीकदार तो बनने के लिए मैं बना रहूँ मगर जब तक आप नहीं बनाते नहीं बनता। यह शबोरोज़[3] की गुलामी किसे पसंद है मगर मआश[4] की सूरत भी तो होना ज़रूरी है। अगर आप अपने तजावीज़ पर नज़रसानी करें और ऐसी सहूलतें दे सकें जो मेरे जैसे कमहिम्मत (ज़रूरतन्) शख़्स के लिए क़ाबिले तहरीक हों तो अब भी मुमकिन है। अब तो आपको वक़्त और भी कम मिलेगा और एक मआबिन की सख़्त ज़रूरत होगी। मैं अनक़रीब आपसे गुज़ारिश करूँगा कि मेरी तजावीज़ क्या हैं। शायद आप उन्हें खुदग़रज़ी से ख़ाली न पायेंगे मगर किसी

क़दर accomodative स्पिरिट की ज़रूरत है।

आपका, धनपत राय।

1. कृपा पत्र, 2. कम लिखने वाला, 3. दिन-रात, 4. जीविका



बस्ती, 10 अगस्त, 1915

भाई साहब,

तसलीम। मिज़ाज़ मुबारक। बिल्टी मिली। आज किसी वक़्त इश्तिहार भी आ जायगा। इसके लिए मशकूर हूँ। दायरातुल अदब देहली मुझसे प्रेम पचीसी बेचने के लिए तलब करते हैं। उनकी निस्बत आपका क्या ख़याल है। हिस्सा दोयम की इशाअत के मुताल्लिक़ भी वह आमादा हैं। आपका जवाब आ जाये तो मैं भी उन्हें जवाब दूँ। अब रह गयी हमारी बाहमी शरायत[1] की बातचीत।

'ज़माना' चूंकि इस वक़्त बिल्कुल पेयिंग कन्सर्न नहीं है, इस वजह से उसका good name उतना बेशक़ीमत नहीं है जितना दूसरी हालत में होता। मैं उसकी क़ीमत एक हज़ार ख़याल करता हूँ क्योंकि गुड नेम के साथ ही इसमें बैड नेम की भी आमेज़िश[2] है। बहरहाल मेरा तख़मीना यह है : मेरा ख़याल है कि अगर कोई नया माहवार क़ाबलियत के साथ एडिट किया जाये और उस पर एक हज़ार रुपया सर्फ़ कर दिया जाये तो उसे इतनी मुश्तहरी[3] हासिल हो जायगी।

यह मैं तसलीम करता हूँ कि आपको इस माहवार की बदौलत बहुत ज़ेरबार होना पड़ा जिसकी मिक़दार ग़ालिबन् तीन या चार हज़ार तक हो। मगर ग़ालिबन् खुले बाज़ार में इस जिंस की इतनी क़ीमत हरगिज़ न मिल सकेगी। और फिर इस ख़सारे के और भी असबाब हैं जिनकी तफ़सील की यहाँ ज़रूरत नहीं। अगर एक हज़ार गुड नेम की क़ीमत हो तो उसका निस्फ़ हिस्सा पाँच सौ होता है। मैं इस रक़म को दो या तीन साल में अदा करने का ज़िम्मेदार हो सकता हूँ। सूद बशरहे बाज़ार[4] महसूब[5] करने को भी रज़ामंद हूँ।

मैं इसका एडीटोरियल और बड़ी हद तक मैनेजीरियत चार्ज लेने पर तैयार हूँ। आप सिर्फ़ अपने रुसूख और ज़ाती असर से और नीज़ इशतिहारात के मुताल्लिक़ जितना मुनासिब समझें काम करेंगे। मैं कोशिश करूँगा कि जहाँ तक मुमकिन हो उसका खर्च कम हो। इसके अलावा फ़ाइनेंशल चार्ज बिल्कुल आपका रहेगा। यानी काग़ज़, किताबत, छपाई, कटाई, पोस्टल चार्जेज़। उनका हिसाब आप माहवार अदा करने का बंदोबस्त करेंगे। साबिक़ा[6] बक़ाया का हिसाब इससे अलग रहेगा। तारीखे शराकत[7] से आप जितना रुपया लगायेंगे वह हर माह के आख़िर में या हस्बे गुंजाइश[8] दिसम्बर या जनवरी में अदा होगा। जितना नफ़ा या नुकसान होगा, उसमें हम और आप बराबर के शरीक होंगे। मेरा ख़याल है कि जनवरी तक हम इन रक़ूम को अदा कर सकेंगे। लेकिन अगर उस वक़्त फिर कमी रहे और दूसरे साल के लिये रुपये की ज्यादा ज़रूरत हो तो फिर हस्बे ज़रूरत कोई सबील[9] करेंगे। मगर तावक़्ते कि ये ज़िम्मेदारियाँ बेबाक़ न हो जायें आमदनी में से जहाँ तक इमकान में होगा कुछ न लेंगे। एडीटर चाहे आप रहें या मैं। अगर आपके नाम से ज़्यादा फ़ायदा हो तो मुझे कोई शिकायत नहीं। वर्ना मुझे भी जायंट एडीटर रहना होगा। अगर यह शरायत आपकी तरमीमात[10] के साथ तय हो जायें तो हम लोग दिसम्बर तक

चार-पाँच नम्बर वक़्त पर निकालकर कुछ वक़ार[11] क़ायम कर लेंगे, और जनवरी से ग़ालिबन ज़्यादा फ़ायदे के साथ आग़ाज़ हो। मैंने माली ज़िम्मेदारियाँ सब आप पर रक्खी हैं। इसके वजूह सुनिये। मेरे पास इन छः माह की रुख़सत के बाद इस वक़्त कुल आठ सौ रुपये हैं। तीन सौ रुपये मैंने तीन असामियों को अठारह फ़ी सदी सूद पर क़र्ज़ दे दिये हैं। मेरा नक़दी सरमाया इस वक़्त कुल पाँच सौ रुपया है। इसे मैं उस वक़्त तक के लिये खुरिश का वसीला समझता हूँ जब तक कि 'ज़माना' से मुझे कुछ फ़ायदा न हो। और कौन जानता है उस मुबारक वक़्त के लिये कितने दिनों तक इन्तज़ार करना पड़े।

ग़रज़ मैं माली ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाने के बिल्कुल नाक़ाबिल हूँ। इसी असना[12] में अगर छोटक की शादी तय हो गयी तो ग़ालिबन यह रक़म भी मेरे हाथ से निकल जायगी। छोटक इमसाल फ़ेल हो गये। यहीं हैं। स्कूल लीविंग में नाम लिखा दिया है। चाची नहीं आई। मकान पर हैं। तेज नरायन भी यहाँ नहीं। अपने मकान पर हैं।

मैंने अपनी माली हालत का जो क़िस्सा लिखा है यह हर्फ़ ब हर्फ़ सही है। मैं आप के जवाब का इंतज़ार करूँगा।

आजकल एफ़. ए. के धुन में कुछ लिटररी काम नहीं होता। कहीं से तहरीक[13] भी नहीं हुई। और मुफ़्त में क़लम घिसना फ़िज़ूल मालूम होता है।

बाक़ी सब ख़ैरियत है। अगर मेरी तजावीज़ में खुदग़र्ज़ी की बू आये तो मुआफ़ फरमाइयेगा।

लार्ड डलहौजी की लाइफ़ देख रहा हूँ। इस पर एक रिव्यू करने का इरादा है जो ग़ालिबन ईद की तातील में पूरा हो सके। वस्सलाम।

नियाज़केश, धनपत राय।

1 आपसी शर्तों, 2. मिलावट, 3. प्रचार; प्रसिद्धि, 4. बाजार की दर से, 5. अदा, 6. पिछले, 7. साझा, 8. जैसी गुन्जाइश होगी, 9. उपाय, 10. संशोधनों, 11. प्रतिष्ठा, 12. बीच, 13. प्रेरणा।



बस्ती, 1 सितम्बर, 1915

भाईजान,

तसलीम। आपका एक लिफ़ाफ़ा पहले आया था, दूसरा अलीगढ़ गज़ट के रिव्यू के साथ फिर मिला। पहले ख़त का जवाब मैंने लिखा था मगर ग़लती से लिफ़ाफ़ा मेरी जेब में पड़ा रह गया। टिकट लगाकर छोड़ने की नौबत नहीं आयी।

मैं तो आजिज़ हूँ वह मातहती से। काम ऐसा करना चाहता हूँ जिसमें बजुज़ मेरी तबीयत के और किसी का तक़ाज़ा न हो। अगर जी में आवे तो रात-दिन करता रहूँ, जी चाहे तो थोड़ा ही करूँ, और यह सिर्फ़ मालिकाना हैसियत में हो सकता है। साल भर तक ठेके पर काम करना और वह भी जब शरायत[1] और फ़राइज़[2] का बोझ गले पड़ा हो—मुशकिल है। इसलिए फ़िलहाल इसी हालत पर क़नाअत करता हूँ।

एफ़. ए. के लिए मेहनत करना ज़रूरी है और कर रहा हूँ।

प्रेम पचीसी हिस्सा दोम के मुताल्लिक़ दायरतुल अदब देहली से ख़त-किताबत की। वह राज़ी है मगर क़िस्से सब नहीं हैं। तीन-चार क़िस्से मियाँ इश्तियाक़ हसन ने लिये थे। आज उनसे तक़ाज़ा करता हूँ। साठ रुपये पर मुआमला तय हो जायगा। हिन्दी तर्जुमे के

लिए कई जगह से इसरार हुआ है और मैं खुद ही इस काम को हाथ में लूँगा। अब हिन्दी लिखने की मश्क़ भी कर रहा हूँ। उर्दू में अब गुज़र नहीं है। यह मालूम होता है कि बालमुकुन्द गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिन्दी लिखने में ज़िन्दगी सर्फ़ कर दूँगा : उर्दूनवीसी में किस हिन्दू को फ़ैज़ हुआ जो मुझे हो जायेगा।

क़िस्सा जो आपके पास भेजता हूँ....

आपने एक ख़त में लिखा था कि ज़माना सब निकल गया। मेरे पास एक पर्चा भी नहीं आया। मार्च-अप्रैल-मई-जून-जुलाई–यह सब पर्चे बराहे करम भिजवा दीजिये।

मजिस्ट्रेटी का कुछ हाल लिखिएगा। कानपुर में तो खूब हलचल हुई होगी।

प्रेम पच्चीसी हिस्सा अव्वल कुछ बिक रही है या ज्यों की त्यों रखी है। इश्तहारों का बिल क्या हुआ ? दो हज़ार परतें तक़सीम करवा दीं। उनका कुछ असर बिक्री पर भी हुआ ? मैं तो अभी तिहीदस्ती के बाइस किसी अख़बार में नहीं भेज सका। इससे रुपया मिले तो इसी में लगाऊँ। तनख्वाह में बजुज़ मामूली मसारिफ़[3] के और गुंजाइश नहीं।

उन्नाव में जिन साहब को पच्चीस जिल्दें दी गयी थीं बराहे नवाज़िश उनका नाम लिखिएगा। मालूम नहीं उनके यहाँ कोई किताब निकली या नहीं।

मैंने बाबू राधिका कुमार के पास एक ख़त लिखा था। उन्होंने जवाब न दिया। शायद ख़त नहीं पहुँचा। उनका भी पता लिखिएगा। ताकि कुछ इश्तहार दोनों जगह भेज दूँ। इस तकलीफदिही के लिये मुआफ़ी का ख़्वास्तगार[4] हूँ।

बारिश खूब हो रही है। हफ़्तों से आफ़ताब नज़र नहीं आया। तबीयत मुज़महिल[5] हो रही है। हालाते मिज़ाज़ से मुत्तला फ़रमाइएगा। बाक़ी सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. शर्तो, 2. कर्तव्यो, फर्ज़ों, 3.. खर्च, 4 इच्छुक, 5 गिरी गिरी-सी।



बस्ती, 14 सितम्बर, 1915

भाई साहब,

तसलीम। ख़त नैनीताल वाला मिला। बाबू रामसरन को अलहदा मुबारकबाद दूंगा। अज़हद[1] खुशी हुई। अब कभी-कभी गर्मियों में बंगले की हवा खाने का मौक़ा मिलेगा और शायद बंदूक से शिकार भी खेल सकूँ। बशर्ते वह याराने क़दीम[2] को भूल न जाएँ।

आपने मेरी निस्बत जो कुछ फ़र्माया है वह बावजूद सही होने के हमदर्दी से ख़ाली है। हर एक काम जो आप छेड़ना चाहते हैं उसमें रुपये की ज़रूरत पहले ही पड़ती है। रुपया न आपके पास है और न मेरे पास। बताइये, काम क्योंकर चले। एंटरप्राइज़ ख़ाली जेब से या महज़ हवाई बातों पर तो नहीं हो सकती। आप यह तसलीम करेंगे कि इंसान को इत्तफ़ाक़ी[3] ज़रूरियात के लिये आप पसमाँदा[4] रखना चाहिये। मेरे पास बस इतना ही है। इतना सरमाया नहीं जिससे कोई तिजारती मंसूबा बाँधा जाये। आप मुझसे ईसार[5] का तक़ाज़ा करते हैं। मैं अपने को इस क़ाबिल पाता नहीं। मेरे पास 60 रुपये माहवार का ख़र्च लगा हुआ है, वह किसी तरह गला नहीं छोड़ सकता। आप कोई ऐसी सूरत बताइये जिसमें मैं अपनी रोटी हासिल करते हुए एंटरप्राइज ख़र्च कर सकूँ। इसके लिये सबसे पहली

बात यह होगी कि आप सरमाया पैदा करें। मैं तो अब की ही रुख़सत लेकर आपके यहाँ गया था, मगर रंग अच्छा न देखा, माली मुशकिलात नज़र आईं। इस वजह से ख्वामख्वाह उलझना फ़िज़ूल समझा। अगर आपकी माली हालत बमुक़ाबिलए साबिक़ बेहतर हो गयी है तो आप मुझे बुलाइये, मैं हाज़िर हूँगा और बाहमी[6] मशवरे से कोई सूरत निकालेंगे।

'प्रेम पचीसी' के लिए आपने क्या कोशिश की ? इनामी कुतुब के सिलसिले में मंज़ूर हो जायगी ? हिस्सा दोम आप ही छपवाइये। अगर आपका प्रेस जल्द छाप सके तो इससे और क्या बेहतर होगा। अगर आप छपवाएँ तो फिर समझौता हो जाना चाहिये। मैं आप ही के फ़ैसले पर राज़ी हो जाऊँगा। आजकल कोर्स की कुतुब के लिये इनामात का एलान हुआ है। अगर आप इस मैदान में आना चाहें तो मैं इसमें भी आपका साथ देने को तैयार हूँ। रूलर्स आफ़ इंडिया सीरीज़ की तरह 4 सफ़हात पर गवर्नरों के सवानेह[7] लिखने का इरादा है। एफ़. ए. भी होता रहेगा। इसके लिए मैं घंटे भर से ज़ाइद वक़्त नहीं सर्फ़ करता। मैं करना तो बहुत कुछ चाहता हूँ मगर मुझमें न एंटरप्राइज़ है और न रुपया। आपमें एंटरप्राइज़ है मगर रुपया नदारद। जब तक कोई सरमायेवाला शरीक न हो कैसे काम चले।

प्रेम पचीसी हिस्सा अव्वल, दायरतुल अदब देहली के पास कुछ जिल्दें भेज दी हैं और कुछ 'हिन्दुस्तानी' में तक़सीम कराई, मगर अभी तक कुछ नतीज़ा नहीं निकला। मैं कोशिश करूँगा कि दसहरे की तातील में कानपुर आऊँ, बशर्ते कि आप कोई मुफ़ीदे मतलब मशवरा दे सकें।

नैनीताल का कुछ और हाल सुनने के लिए मुश्ताक़ हूँ। ज़्यादा नियाज़।

ख़ादिम, धनपत राय।

1 बेहद, 2 पुराने दोस्तों, 3 आकस्मिक, 4. बचत, 5. त्याग, 6. आपसी 7. जीवन-चरित



बस्ती, 2 अक्तूबर, 1915

भाई साहब,

तसलीम। कल लिफ़ाफ़ा मिला। इसके क़ब्लवाला[1] ख़त भी मिला था। मगर मलेरिया ने कई दिन सख्त परीशान किया। अब अच्छा हूँ। सोचता हूँ क्या जवाब दूँ। इमसाल तो किताबें मँगवा ली हैं। छोटक साथ हैं। इन्हें छोड़ भी नहीं सकता। यही फ़ैसला होता है कि एक बार फिर तालिबइल्मी के उम्मीद-ओ-बीम का मज़ा ले लूँ। फिर आइन्दा साल से नया प्रोग्राम शुरू करूँगा। प्रेम पचीसी हिस्सा दोम के मुताल्लिक़ आपने मुझसे शरायत[2] तलब किये हैं। किताब आपकी है, जैसे चाहे। किसी तरह इसे इलाहाक़ी[3] कुतुब में लाने की फ़िक्र करें। अगर इसमें कामयाबी हो जाये तो मैं डिप्टी इंस्पेक्टरों से तहरीक करके इसकी ख़रीददारी करवा सकता हूँ। हर दो हिस्सों में हम और आप निस्फ़ा-निस्फ़[4] के शरीकदार हैं। चाहे हिस्सा अव्वल में भी यही मुआमला रखिये। हिस्सा दोम में मैं लागत का निस्फ़ देने पर तैयार हूँ। मेरी मेहनत आपका रसूख। लागत मुसावी[5]। अगर आपको यह भी मंज़ूर न हो तो मुझे एक एडीशन के पचास रुपये नक़्द अता फ़रमाइये। दायरतुल अदब से मेरा मतालबा[6] साठ का था। मगर फ़ैसला जल्द फ़रमाइए।

ज़माना के लिये एक और क़िस्सा लिखा है। मैं हिन्दी में भी लिख रहा हूँ। सरस्वती

को एक मज़मून दिया। प्रताप के लिये लिख। इसलिये ज़्यादा काम करने से माजूर[7] हूँ। क़िस्सा ख़िदमत में बाद दसहरा पहुँचेगा। जो कुछ अता फ़रमाइएगा शुक्रिये के साथ कुबूल करूँगा। बाबू रामचरन यहाँ क़ानूनगी हुए। ऐन मसर्रत है। उन्हें आप तहरीर करें जिस तारीख़ को वह यहाँ सादिर हों उसकी मुझे इत्तला दे दें ताकि मुसाफ़िरत की तकलीफ़ न उठानी पड़े। अगर यह न हो सके तो स्टेशन पर इक्के वाले से कहें पुरानी बस्ती डाकखाना ले चलो। डाकखाने के बाबू मेरे साढ़ू हैं। मेरे मकान पर आदमी साथ कर देंगे। मुझसे अगर उनकी कोई ख़िदमत हो सकी तो इसे अपनी खुशक़िस्मती समझूँगा। नौकर एक पहले ही से तय कर रखा है। इसकी तकलीफ़ न होगी। दसहरे की तातील में ज़माना के लिये ईश्वर चाहेगा तो कुछ न कुछ ज़रूर लिखूँगा। प्रेम पचीसी को हिन्दी में भी लिख रहा हूँ। सेहत बदस्तूर। उन्नाव के सरजू परशाद निगम ने ख़त का जवाब नहीं दिया। बराहे करम एक बार आप भी उन्हें याददिहानी करा दें। बाक़ी सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. शर्तें, 2. शर्तें, 3. सप्लीमेन्टरी; सहायक, 4. आधे-आधे, 5. बराबर, 6. मॉग, 7. विवश; असमर्थ



बस्ती, 13 अक्तूबर, 1915

भाईजान,

तसलीम। यह लीजिये एक कहानी इरसाले ख़िदमत है। इस तातील में एक और मज़मून लिखूँगा, मगर वह क़िस्सा न होगा। आपने पचीसी हिस्सा दोम के मुताल्लिक़ अभी तक कोई फ़ैसला नहीं किया। हिस्सा अव्वल भेजी डाइरेक्टर साहब के यहाँ ?

बाबू रामचरन यहाँ आने के दूसरे दिन मुझसे मदरसे में मिले और एक चारपाई की फ़रमाइश की। दूसरे दिन सख़्त बारिश हुई। तीसरे दिन मेरा आदमी चारपाई के लिए उन्हें ढूँढ़ता फिरा। आज तक उनके दर्शन नहीं हुए। वह पक्केपूर हैं और मैं पुरानी बस्ती में हूँ। उनके मकान का पता मुझे मालूम नहीं। अदालत की वजह से इस मुहल्ले में परदेसियों की बड़ी कसरत है। उनका एक मनीआर्डर सदर डाकखाने में पड़ा है। कल एक पोस्टकार्ड मेरे मार्फ़त आया था। व्रह भी पड़ा हुआ है। मालूम नहीं यहाँ हैं या देहात चले गये।

बारिश रोज़ होती है। नाकों दम है। ज़माना जुलाई का अब तक नहीं आया। कमला और कलामे महरूम पर इस तातील में ज़रूर लिखकर भेजूँगा। कोई रिसाले या अख़बार इल्तिज़ाम (नियम) के साथ भिजवा दिया कीजिए तो शायद कुछ लिख भी सकूँ। जब तक Current affairs से लगाव न रहे किसी मज़मून पर लिखने की तहरीक नहीं होती और मज़मून भी मुश्किल से सूझता है। आपके लिये कोई रिसाला या अखबार भेज देना चन्दाँ मुश्किल नहीं। वापस कर देने का ज़िम्मेदार मैं हूँ।

ज़्यादा वस्सलाम,

नियाज़मन्द, धनपत राय।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 24 नवम्बर, 1915

भाई साहब,

तसलीम। कई दिन हुए लिफ़ाफ़ा मिला। मशकूर हूँ। क़िस्से लिख रहा हूँ। ज्योंही

तैयार हो गए भेजूँगा। अभी तक हिन्दी मजमूआ तैयार नहीं हुआ है। यह क़िस्से पहले पहल हिन्दी में निकलेंगे। इसके बाद उर्दू में भी। अभी इन्हें छाप देने से इनका नयापन जाता रहेगा। कोशिश कर रहा हूँ कि अपनी और कहानियाँ भी तर्जुमा कराके छापूँ। एक साहब रुपया लगाने के लिये तैयार हैं। आपने अभी रुपये इरसाल न फ़रमाये। आप लखनऊ यक़ीनन् आयेंगे। मैं भी जाने वाला हूँ। मगर अभी तक मालूम नहीं ठहरना कहाँ होगा। आप कहाँ ठहरेंगे। वहीं मेरे लिए भी गुंजाइश रखिएगा। बच्चों के रिसाले के मुताल्लिक़ भी वहीं बातचीत होगी। प्रेम पचीसी हिस्सा दोम को अब छापने की कोशिश की जावे। काग़ज़ की गरानी का ख़याल अब करना फ़िज़ूल है। इसके इंतज़ार में मुमकिन है दस पाँच बरस लग जायें। पतला काग़ज़ लगाइए मगर ताखीर फ़िज़ूल है। इस बारे में आपका जो ख़याल हो उससे मुत्तिला फ़रमाइएगा। बाक़ी सब ख़ैरियत है। उम्मीद कि आप मय अयाल (बाल-बच्चों समेत) बख़ैरियत होंगे।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



बस्ती, 16 दिसंबर, 1915

भाईजान,

तसलीम। लिफ़ाफ़ा मिले कई दिन हुए। मैं इसका बहुत मशकूर हूँ। इरादा था कि मज़ामीन और जवाब साथ-साथ भेजूँ मगर कुछ ऐसा इत्तफ़ाक़ हुआ कि मज़ामीन के साफ़ करने की नौबत न आयी। डलहौजी तो मैं उर्दू और हिन्दी दोनों ख़तों में एजूकेशनल गज़ट में ग़ालिबन् 15 दिन होते हैं, रवाना कर चुका। क़िस्सा तैयार है। कल या परसों तक ज़रूर-बिल-ज़रूर भेज दूँगा। नागरी प्रचारिणी में ज़राफ़त[1] पर एक बहुत आलिमाना मज़मून छपा है। तर्जुमा है। कहिए तो ज़माना के लिए कुछ नये उनवान से इसी पर लिख दूँ। सरक़ा[2] बिल-जब्र[3] हो या बइजाज़त ? जवाब से बहुत जल्द मुत्तिला कीजिए। क्योंकि मज़मून लंबा है।

ज़माना के लिए इंतज़ामात निहायत अच्छे हैं। हज़रत एडिटर ज़माना ग़ालिबन् मुआमलात को राहे रास्ते पर लाने में कामयाब होंगे। लाला श्यामलाल आदमी जहीन होनहार हैं। वह आते हैं तो बुला लीजिए।

प्रेम पचीसी के मुताल्लिक़ आपने जो कोशिश फ़रमायी है उसका तहेदिल से शुक्रिया। हिस्सा दोम मैं आज ही भेज देता मगर मुसीबत यह है कि कुछ क़िस्से आरियतन्[5] निकल गये हैं, ताहम नौ या दस यहाँ मौजूद हैं। बाक़ी आप बराहे करम या तो इश्तियाक़ हुसैन से मंगवा लीजिए या दफ़्तर से। इश्तियाक़ हुसैन के पास जो मुसव्वदा[6] है वह सहीशुदा है। मेरे ख़याल में तीन क़िस्से उनके पास हैं : 1. मंज़िले मकसूद 2. अमावस की रात 3. याद नहीं आता।

अख़बारात में आप मेरे पास ये भेजें तो ऐन इनायत हो :

1. स्टेट्समैन (या बंगाली), 2. माडर्न रिव्यू (या कोई दूसरा रिव्यू), 3. ज़ख़ीरा (उर्दू), 4. आर्य गज़ट और 5. हिन्दोस्तान, 6. कामनवील, 7. हिन्दी के एक या दो माहवार रिसाले।

मैं माडर्न रिव्यू और कामनवील को बहिफ़ाज़त तमाम रखूँगा और हर तीसरे माह

रवाना कर दिया करूँगा। लीडर मिल जाता है। तर्जुमान मेरे पास आने लगा मगर क्लब बेढंगा है जहाँ लोग शतरंज और टेनिस खेलते हैं। लीडर के सिवा ग़ालिबन् कोई रोज़ाना अख़बार नहीं आता। उस पर चंदा दो रुपये माहवार।

बच्चों के क़ाबिल लिटरेचर होना ज़रूरी है। पहले मैं एक किताब लिखता हूँ जिसमें बच्चों के क़ाबिल छोटी-छोटी अख़लाक़ी, तारीख़ी, जुग़राफ़ी कहानियाँ होंगी। किताब छोटे साइज़ के 64 सुफ़हात से ज़्यादा न होगी। अगर पसंद आ जाय और टैक्स्ट बुक मंजूर कर ले तो फिर दूसरा काम शुरु किया जाय।

मेरे पास जून तक ज़माना आया है।

जब मेरे पास यह पर्चे आने लगेंगे तो मैं आज़ाद के लिए कुछ नोट्स और एडिटोरियल लिखने की कोशिश करूँगा। और रिसालों से ज़माना के लिए एकाध अच्छे मज़मून तर्जुमा कर दिया करूँगा। क़िस्सानवीसी होती जायगी। हम लोग बख़ैरियत हैं। चाची बनारस, बाक़ी तीन आदमी यहाँ। बाल-बच्चे न हुए न उम्मीद न आरजू। ज़िम्मेदारियों के ख़याल से तबीयत घबराती है। मैं समझ ही नहीं सकता कि अगर आज मेरे दो तीन लड़के होते तो उन्हें क्या खिलाता और कैसे रखता। आपके लल्ला बाबू की सी दुर्गत होती। आपको इसका मुझसे ज़्यादा तजरबा है। बाबू रामसरन फ़र्रूख़ाबाद गये। बहुत अच्छा हुआ। अगर चाहें तो कभी मिलेंगे।

मैं एफ़. ए. का इम्तहान देने मार्च में कहीं न कहीं जाऊँगा। इमसाल तैयार हूँ। और वफ़्द[6] कामयाब होगा। बनारस, इलाहाबाद और कानपुर और लखनऊ--चारों में बनारस तकलीफ़देह है। कानपूर में खाने-पीने की तकलीफ़, लखनऊ में जाये क़याम कालिज से दूर, इलाहाबाद सुभीता है। वर्ना कानपुर में चैन से रहता। बहरहाल गर्मी की तातील में ज़्यादा नहीं तो पंद्रह दिन तक सोहबत रहेगी।

और क्या अर्ज़ करूं। बच्चे बख़ैरियत होंगे और आपका मिज़ाज भी अच्छी तरह होगा।

आपका, धनपत राय।

1. हँसी, 2. चोरी, 3. जबर्दस्ती, 4. योंही, 5. मसौदा, 6. डेपुटेशन, शिष्ट मंडल।



स्थान-तिथि नहीं, अनुमानतः बस्ती, आरंभ 1915

भाईजान,

कल बस्ती जा रहा हूँ। देखूँ डाइरेक्टर साहब कब तक मास्टरी पर वापस भेजते हैं। बहरहाल इस दवा-दविश से अब तंग आ गया हूँ और मास्टरी को इस ज़िंदगी पर तरजीह देता[1] हूँ। सिर्फ़ तनख़्वाह की कमी की शिकायत अलबत्ता है। अगर मुझे पचास रुपये देगा तो बखुशी चला जाऊँगा।

तमहीद[2] देखी। इसके लिये फ़ारूक़ शाहपुरी ज़्यादा मौजूं आदमी हो सकते थे। इन हज़रत ने तारीफ़ ज़्यादा की है। अगर फ़ारूक़ न लिख सकें तो इसी को रहने दीजिये। मगर मिसतर[3] ऐसा होना चाहिये कि एक पत्थर से ज़्यादा न हो। आपकी तरफ़ से मैंने एक मुख्तसर-सा दीबाचा[4] लिख दिया है। अगर आपको पसंद आये तो उसे अपनी तरफ़ से दर्ज कर दीजिये। आपकी मेहनत और तरद्दुद रफ़ा हो जायगी।

वस्ती से एक क़िस्सा अनक़रीब भेजूँगा। लिखा हुआ तैयार है, सिर्फ़ साफ़ करना बाक़ी है। अब मिज़ाज की क्या कैफ़ियत है। घर में सेहत हो गयी या नहीं। वच्चे कैसे हैं। मैं इस वक़्त यहाँ से तनहा जाता हूँ। दिसम्वर में ग़ालिबन फिर आऊँगा। 'प्रेम पर्चीसी' कव तक तैयार होगी। ज़्यादा वस्सलाम।

धनपत राय।

1 वेहतर समझता, 2. प्राक्कथन, 3 सतरों का हिसाव, 4 भूमिका



पाण्ड़ेपुर, वनारस, अनुमानतः जून, 1915

भाईजान,

तसलीम। मुझे यहाँ आये क़रीबन् दो हफ़्ते हुए।...क्या मेरी तरफ़ से कोई अम्र[1] नागवारे खातिर हुआ या अभी ख़ानगी तरद्दुदात की तरफ़ से निजात नहीं हुई। भावज साहबा की तवीयत तो अव ग़ालिवन् रू-बइसलाह[2] होगी। ज़माना फ़रवरी...अव तक तैयार नहीं हुआ। आज़ाद भी नहीं आया। मार्च की किताबत हो रही है या नहीं।

मालूम नहीं मेरी किताव का रिव्यू और अख़बारों ने किया या नहीं। मैंने कई अख़बारों से ख़त किताबत की है और इश्तहार देने के लिए रिव्यू का इन्तज़ार कर रहा हूँ। वराहे करम लाला श्यामसुन्दर से कह दीजिएगा कि अगर किसी अख़बार ने रिव्यू किया हो तो उसे काटकर दे दें। जिन हज़रात के पास किताव तोहफ़तन् इज़हारे राय के लिए भेजी गयी थी उन हज़रात में से किसी ने जवाब दिया या नहीं। अगर कुछ खुतूत आये हों तो वह मेरे पास रवाना फ़रमाइएगा। इश्तहार का काम देंगे। आपके यहाँ प्रेम पचीसी की बिक्री कैसी हो रही है। वही रफ्तार क़ायम है या बिल्कुल सुस्त पड़ गयी। फ़रवरी का पर्चा अगर निकल गया तो रिआयती एलान का कुछ असर हुआ या नहीं।

मेरी तबीयत वदस्तूर है। आजकल कोई दवा इस्तेमाल नहीं करता हूँ। सैर और एहतियात पर ही दारोमदार रखा है। लिटररी काम बिलकुल बंद है।

आप मेरे यहाँ चले आने से कुछ तरद्दुद में तो नहीं पड़े। बात यह है कि मैंने ज़माना की मौजूदा हालत को देखकर उस पर ज़्यादा भार डालना मुनासिव नहीं समझा। मेरा ख़याल था कि उसकी माली हालत में कुछ एस्तहकाम[3] आया होगा मगर जनवरी नम्बर ने मुझे वहाँ और ज़्यादा नहीं रहने दिया। मेरे चले आने से अगर ज़्यादा नहीं तो तीन सौ रुपये साल की बचत तो हो गयी। इसी तरह तसावीर की मद में आप चार-पाँच सौ रुपया बचा लेंगे। दो क्लर्कों से भी पूरा काम निकल जायगा, तीन की कोई ज़रूरत नहीं। अगर कोई हिस्सेदार है तो आप प्रेस में अपना शरीक बना लें। उसे कुछ कमीशन देने का वादा कीजिए तो इस तरह प्रेस की ज़िम्मेदारी से आप अलग हो जायेंगे। इस तरह से आप साल भर में कम से कम एक हज़ार रुपया बचा सकते हैं। हाँ आपको थोड़ी सी मेहनत करनी पड़ेगी।

जवाब से जल्द मशकूर फ़रमाइएगा। बाक़ी सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. बात, 2. सुधर रही, 3. स्थिरता



डॉ. इक़बाल का ख़त

सम्भवतः जुलाई, 1915

आपने इस किताब[1] की इशाअत से उर्दू-लिट्रेचर में एक निहायत क़ाबिलेक़द्र इजाफ़ा किया है। छोटे-छोटे नतीजाख़ेज़ अफ़साने जदीद (आधुनिक) लिट्रेचर की इख़्तिरा (आविष्कार) हैं। मेरे ख़्याल में आप पहले शख़्स हैं जिसने इस दक़ीक़ (सूक्ष्म, गूढ़) राज़ को समझा है और समझकर इससे अहले-मुल्क़ को फ़ायदा पहुँचाया है। इन कहानियों से मालूम होता है कि मुसन्निफ़ (लेखक) इन्सानी फ़ितर के अस्तार (मर्म) से खूब वाक़िफ़ है और अपने मुशाहदात (अनुभवों को) एक दिलकश ज़बान में अदा कर सकता है।

1. 'प्रेम-पचीसी'-1, उर्दू कहानी-संग्रह, प्रथम संस्करण, अक्टूबर, 1914 पर दी गयी सम्मति।



स्थान-तिथि नहीं, अनुमानतः बस्ती, अंत 1915

भाई साहब,

तसलीम। 'हँसी' पर एक मज़मून हस्ब वायदा रवानये ख़िदमत है। मज़मून नामुकम्मल है। अभी असल मज़मून ही पूरा नहीं शाया हुआ। जब वह पूरा हो जाये तो उसका दूसरा हिस्सा भेज दूँगा। क़िस्सा लिख रहा हूँ। ज़रूर रवाना करूँगा मगर तातील के बाद ख़त्म होगा। अबकी आज़ाद नहीं आया, मालूम नहीं क्या बात है। इसके पहले जो ख़त और मज़मून भेज चुका हूँ वह ग़ालिबन् पहुँचे होंगे। प्रेम पचीसी हिस्सा दोम कातिब के पार' गयी या नहीं। और क़िस्से ढुंढ़वाने की तकलीफ़ आपको उठानी पड़ेगी।

बाकी सब ख़ैरियत है। उम्मीद है आप बख़ैरियत होंगे। ज़माना कब तक निकलता है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



बस्ती, 10 फ़रवरी, 1916

भाई साहब,

तसलीम। लिफाफ़ा मिला। ज़माना भी आया। मशकूर हूँ। मज़ामीन अच्छे हैं। अभी सरसरी तौर पर देखा है। मज़ामीन के मुताल्लिक़ शिकायत का कोई मौक़ा नहीं। परमात्मा आपको ख़ानगी परीशानियों से जल्द निजात दे। ग़ालिबन् इस मख़मसे (उलझन) की पैरवी का बार अब आपके सर होगा। और किसके सर हो ही सकता था। ख़ैर किसी तरह आपने ज़माना को ज़िन्दा तो किया। अब मुझे यह जानने की ख़्वाहिश है कि ख़रीदारान का बर्ताव कैसा है और अभी उनकी तादाद इस क़दर कम तो नहीं है कि ख़सारा[1] (नुकसान) ही नज़र आये।

प्रेम पचीसी की जिल्दें यहाँ नहीं हैं। मैंने उन्नाव के लाला सरजू परशाद निगम को लिखा है कि वह अपने यहाँ की जिल्दें आपके दफ़्तर में भिजवा दें। ज़माना में पचीसी का इश्तहार न देखकर ताज्जुब हुआ। अगर भूलकर रह गया हो तो बराहे करम फ़रवरी से ज़रूर दर्ज करा दें।

हिस्सा दोम के मुताल्लिक़–अगर इश्तियाक़ हसन वादे करते हैं तो मजबूरी है। मज़ामीन की फ़ेहरिस्त मैंने भेज दी है। कोई तरेह क़िस्से होने चाहिए। छः मौजूद हैं, सात

और इन्तख़ाबे ज़माना लीजिए। सिर्फ़ पुराने पर्चे तलाश करवाने पढ़ेंगे।

मज़ामीन के मुताल्लिक़—आजकल मसरूफ़ बतैयारी हूँ। राना जंगबहादुर आफ़ नैपाल की सवाने उमरी (जीवनी) लिखने का इरादा है। मसाला जमा कर लिया है। वहुत जल्द लिखकर रवाना करूँगा।

आपका, धनपत राय।



वस्ती, 24 फ़रवरी, 1916

भाई साहब,

तसलीम। मिज़ाज कैसा है ? मुक़दमे के मुताल्लिक़ क्या हुआ ? क्या अभी तक दवा-दविश (दौड़-धूप) जारी है ? या नजात हो गयी ? इससे तो आपके काम में बड़ा हर्ज होता होगा। मुझे यह जानने की ख्वाहिश है कि जनवरी नंबर का पब्लिक पर क्या असर पड़ा। ख़रीददारों में कुछ तो ज़रूर ही ख़ारिज़ हो गये होंगे। मगर उनकी तादाद इतनी तो नहीं कि ख़सारा ज़्यादा हो ? गवर्नमेण्ट की सरपरस्ती 150 जिल्दों तक महदूद है या कुछ और ज़्यादा हुई ? मेरे ख़याल में अभी आपको इसमें कामयाबी नहीं हुई।

मालूम नहीं इन दिनों आपकी माली हालत क्या है। मैं तो परीशानहाल हूँ। अख़बारी आमदनी मसदूद (बन्द) सिर्फ़ तनख्वाह पर गुज़ारा। सिर्फ़ मेरी फ़ीस और किताब वग़ैरह पर एक तनख्वाह सर्फ़ हो गयी। और अभी पंद्रह दिन की रुख़सत भी पड़ गयी। कोई पच्चीस रुपये का और सर्फ़ा है। क्या मैं आपको तकलीफ़ देने की कुछ जुरअत करूँ। अगर आप मज़ामीन के मुताल्लिक़ तसफ़िया कर दें तो इस वक़्त मुझे मदद मिल जाये। प्रेम पचीसी का हिसाब और आपके इश्तहारात का हिसाब फिर होता रहेगा। मैंने मजबूर होकर आपको तकलीफ़ दी है वर्ना मैं आपकी ज़रूरतों की तरफ़ से बेख़बर नहीं हूँ। मुझे यक़ीन है कि मुझे मायूस न होना पड़ेगा।

प्रेम पचीसी का इश्तहार ज़माना में नहीं नज़र आया। बराहे करम उसे दे दीजिए। उन्नाव के सरजू परशाद के पास मेरी पच्चीस जिल्दें पड़ी हुई हैं। अगर आप उन्हें मँगवा लें तो बहुत अच्छा हो। मैंने तो उन्हें लिख दिया था मगर शायद उन्हें कुछ परवाह न हुई। किताबें बनारस में हैं इस वजह से फ़िलहाल भेजने में मरद्दुद है। पच्चीस जिल्दें दो माह तक हो जायेंगी। उन्नाव से तो आपके दफ़्तर में रोज़ ही कोई न कोई आता जाता रहता है। हाँ आपको ख़याल आना शर्त है। एक मज़मून मैंने ज़माना के लिए लिख रखा है। मगर साफ़ करने की मुतलक़ फुर्सत नहीं मिलती, मजबूर हूँ। दफ़्तर ज़माना में आजकल कौन साहब हैं ? वही अलिफ़. जे. या और कोई। बाबू रामसरन का कुछ हाल कहिए। बाक़ी सब ख़ैरियत है। उम्मीद है कि बच्चे खुश होंगे।

जवाब का मुन्तज़िर,

नियाज़मन्द, धनपत राय।



बस्ती, 13 मई 1916

भाईजान,

कल कार्ड मिला। आज बनारस जाता हूँ। मेरे एक साले साहब की शादी 8 जून

को है। इसलिए मैंने यह बेहतर समझा है कि जून ही में बनारस से चलूँ और आपसे मुलाक़ात करता हुआ शादी में शरीक होने के बाद 15 तक बनारस वापस चला आऊँ। मज़ामीन बनारस पहुँचकर हाज़िर करूँगा। मेरा पता ज़ैल है :
गाँव–मढ़वाँ, बनारस कैण्ट

नियाज़मन्द, धनपत राय।



रोज़नामा 'हमदम'
नं. 27, लाटूश रोड, अमीनाबाद, लखनऊ

दि 'हमदम', लखनऊ
22 सितम्बर, 1916

मोतरमी व मुकर्रमी,

बन्दगी !

अफ़सोस है कि 'हमदर्द' की इशाअत गैर-मुअय्यन (अनिश्चित) ज़माने के लिए मुल्तवी हो जाने के बाद आपसे बिलवास्ता ख़तोकिताबत का सिलसिला क़ायम न रह सका और मुझे आपके जदीद मुकाम (नये स्थान) तबादला की इत्तला नहीं होने पायी। जहाँ तक मुझे याद है, आपका पहला मुक़ाम, जहाँ से आप 'हमदर्द' के लिए कहानियाँ इर्साल फ़रमाते थे, महोबा था, और मेरे रफ़ीक़कार काज़ी अब्दुलगफ़्फ़ार साहब ने वहीं आपका आख़िरी अफ़साने का नज़राना आपकी ख़िदमत में भेजा था। मगर अप्रैल गुजश्ता में अव दफ़्तर 'सदाक़त', कलकत्ता से मैंने अफ़साने के लिए आपकी ख़िदमत में एक आरीज़ा (प्रार्थना-पत्र) इर्साल किया तो कोई जवाब नहीं मिला और अब लखनऊ आने पर बाज़ अहबाब की ज़बानी यह मालूम हुआ कि आप वहाँ से तब्दील होकर गोरखपुर चले गये हैं, मगर सही मुक़ाम किसी से न मालूम हो सका। इसलिए मैं अपने देरीना (पुराने) करमफ़र्मा मुंशी दयानरायन निगम, मालिक-ब-मुदीर (स्वामी एवं सम्पादक) 'ज़माना', से अपना यह आरीज़ा आपकी ख़िदमत में भेजने और मुझे आपका पता तहरीक करने में मदद लेता हूँ। आपको तकलीफ़ देने की गायत यह है कि लखनऊ से एक जदीद रोज़ाना अख़बार वज़बान उर्दू मेरी एडीटरी में जारी होता है और उसके लिए मैंने अपने तमाम क़दीम अहबाब (पुराने मित्रों) और ख़ासकर मुआवनीन (सहायक) व हमदर्द, जिसकी तरतीब-ब-चीफ़ सब-एडीटरी आखिरी डेढ़ साल में मुझसे मुताल्लिक़ रही, क़लमी इमदाद की इस्तिदा (प्रार्थना) की है। 'हमदम' मुआवनीन (सहायकों) की ख़िदमतगुज़ारी में 'हमदर्द' की-सी फ़राक़दिली का तो इज़हार नहीं कर सकता, क्योंकि इतना सरमया बहम नहीं पहुँचा है और इस वक़्त अखबार का ख़र्च भी कई पहलुओं में बमुकाबला साबिक बढ़ा हुआ है, ताहम (फिर भी) वो ख़ास-ख़ास मुआवनीन की ख़िदमत में किसी क़दर नज़राना पेश करना चाहता है, जो अगर्चे उनकी दिमाग़सोज़ी के मुक़ाबले में निहायत हक़ीर (कम) कहा जाएगा, लेकिन क़ौमी उम्मीद है कि वो असहाब उसकी इब्तिदाई हालत का लिहाज़ करके और मुल्क़ व ज़बान की ख़िदमत का ख़याल मद्दे-नज़र रखकर मंजूर फ़रमायेंगे। जिन हज़रात से इस क़िस्म की इस्तिदा की गयी है, उन्हें अपनी ज़ाती दिलचस्पी के लिहाज़ से मैंने सबसबे पहले आपका नाम-नामी लिखा है और अगर आपका पता दरयाफ़्त-तलब न होता तो यह आरीज़ा कई रोज़ क़ब्ल (पूर्व) आपको पहुँच जाता। अब ये बिलवास्ता ख़िदमत आली में भेजा जा रहा है और चूँकि 'हमदम' का इब्तिदाई पर्चा दोशम्बा या

सेशम्बा को शाया हो जाने की तवक्को है, इसलिए मैं इल्तिमास (प्रार्थना) करता हूँ कि आप इस आरीज़े का जवाब जल्द तहरीर फ़रमायें और अगर कोई कहानी, जो 'हमदम' के एक सफ़े से न बढ़े, जिसकी तक़्सी-ओ-सतर (लिखाई-छपाई) 'हमदर्द' की मानिन्द होगा, आपके पास तैयार हो तो मेरे पास भेज दें, वरना कोई मुख़्तसर-सा अफ़साना नया लिखकर इर्साल फ़रमायें और साथ ही इत्तला दें कि आप 'हमदम' की मुश्किलात को मद्दे-नज़र रखते हुए कम-से-कम कितना नज़राना क़बूल करने को तैयार हैं। 'हमदम' की हालत ज़रा तक़्वियत-पज़ीर (साधन-सम्पन्न) होते ही इंशा-अल्ला नज़राने में इज़ाफ़ा हो जाएगा।

आपका क़दीम ख़ैरख़्वाह, सैयद जालिब देहलवी
एडीटर, रोज़ाना 'हमदम', लखनऊ।

●●

गोरखपुर, 11 दिसंबर, 1916

भाई साहब,

तसलीम। कल कार्ड मिला। मशकूर हूँ। दो चार रोज़ में कुछ इरसाले ख़िदमत करूँगा। एक क़िस्सा और कुछ और।

दिसंबर में लखनऊ जाने का इरादा तो करता हूँ। देखूँ, ग़ैब से मद्द मिलती है या नहीं। इसी के लिए कई रिसालों में लिखा। एक साहब ने तो ख़बर ली दूसरे साहब आइन्दा लेंगे। हो सकेगा जाऊँगा, नहीं तो न सही। तक़रीर मैं सुनता नहीं और तो कोई काम नहीं। अखबारों में पढ़ लूँगा। और क्या करूँ। जब शब-ओ-रोज़ की मेहनत पर यह हाल है तो मालूम होता है इफ़लास (गरीबी) से कभी निजात न होगी। ज़्यादा नियाज़।

धनपत राय।

●●

जनवरी, 1916

जनाब एडीटर साहब, रिसाला 'ज़माना',

तस्लीम ! आपने मेरे 'दो भाई' ('ज़माना', जनवरी, 1916 में प्रकाशित कहानी—गोयनका) के मुताल्लिक़ जो ख़तूत भेजे, उन्हें पढ़कर मुझे वाक़ई ताज्जुब और अफ़सोस हुआ। ताज्जुब इसलिए कि मेरे नामों की मुताबक़त (सदृशता) हममें से कुछ लोगों को इस ख़्याल की जानिब माइल (आकर्षित) करती है कि यह क़िस्सा कृष्ण भगवान् की ज़िन्दगी से तो कोई ताल्लुक नहीं रखता, और अफ़सोस इसलिए कि मेरी यह लाइल्मी (भूल) इस क़िस्म के एहतिमाल (सन्देह) का बाइस हुई। मेरा ख्याल था कि हमारे दिलों में कृष्ण और बलराम की इस क़दर इज़्ज़त है कि महज़ नामों के मिल जाने से हमको इस वाक़े को उनकी तरफ़ मन्सूब करने का गुमान भी न होगा। मगर मालूम हुआ कि मैं गलती पर था, और हक़ीक़त-हाल कुछ और ही है। मैंने ये इस्माए-ग्रामी (संज्ञाएँ) इस गर्ज़ से इस्तेमाल किये हैं कि बिरादराना एहतिराम (सम्मान) और मुहब्बत का वह आला मेयार (उच्च स्तर), जो कृष्ण और बलराम की ज़िन्दगी में मुज़मिर (छिपा) है, वो हमारे पेशे-नज़र (आँखों के सामने) रहे और देखें कि हम किसी क़दर गिर गये हैं। मेरा मंशा यह दिखाना था कि जहाँ कृष्ण और बलराम जैसे भाई थे, वहाँ अब उन्हीं के नामलेवा

कितने खुदग़र्ज़ और फ़रोगाया (कृतघ्न) हो गये हैं। हम इसी मुल्क के रहने व अपने को इन्हीं बुजुर्गों का पैरो (अनुयायी) कहने वाले, हमको अगर उनसे कोई ताल्लुक़ है तो वो महज़ नामों का है, और सभी बातों में हम बिल्कुल मयार से गिरे हुए हैं, यह था मेरा मुद्दा। मगर चूँकि बदक़िस्मती से बाज़ क़द्रदाँ हज़रात को यह एहतिमाल (सन्देह) हुआ कि यह क़िस्सा कहीं कृष्ण भगवान् की ज़िन्दगी का वाक़ा न समझ लिया जाये। इसलिए यह वाजेह तौर पर लिखना ज़रूरी मालूम होता है, कि यह क़िस्सा वाक़ा नहीं है, मगर इसे कृष्ण भगवान् की ज़िन्दगी से कोई ताल्लुक नहीं। वो मुक़द्दस (पवित्र) हस्तियाँ हैं और इस क़िस्म के शख़्सी तनाजहात (खींचातानी) से बिल्कुल बालातर (बहुत ऊँचे) हैं, और ऐसी कौमीपुस्ती के वाक़ियात का हमारे दिलों में बसने वाले कृष्ण और बलराम से कोई ताल्लुक नहीं।



गोरखपुर, 2 जनवरी, 1917

भाईजान,

तसलीम। आपका ख़तम मिला था। उसका जवाब जल्द न दे सका। क्योंकि आप भी तो कांग्रेस में मसरूफ़ रहे होंगे। पहले यह बताइए कि Victor Hugo की मशहूर किताब Les miserables का उर्दू तर्जुमा हुआ है या नहीं। अगर हुआ है तो कहाँ मिल सकता है। अगर नहीं हुआ है तो मैं इस काम में जुटना चाहता हूँ। साल भर का काम है। किसी तरह से पता लगाकर बतलाइए। हिस्सा दोम प्रेम पचीसी को निकालिए। हल्के काग़ज़ पर सही। जिस काग़ज़ पर आज़ाद छपता है उसी पर हो तो क्या नुकसान। जल्द करना चाहिए क्योंकि प्रेम बत्तीसी भी पूरी हुआ चाहती है। ग़ालिबन् पच्चीस क़िस्से हो चुके हैं। छः सात की और कमी है। इसके बाद मैं विक्टर ह्यूगो में जुटूँगा। 'पैके अब्र' की तनक़ीद भेजी थी मगर वह आपके यहाँ बेकार हो गयी क्योंकि किसी दूसरे साहब ने लिख दी। ख़ैर जैसा मुनासिब समझें, करें।

बाकी ख़ैरियत है। उम्मीद कि आप और बच्चे बख़ैर-औ-आफियत होंगे।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



गोरखुपर 15 जनवरी 1917

भाईजान,

तसलीम। मुबारकबादियों के लिए तहे दिल से शुक्रिया। मेरी जानिब से भी वही दुआएँ क़बूल फ़रमाइए।

उम्मीद कि आप शादी की तक़रीब से वापस आ गये होंगे। कुछ इसका ज़िक्र लिखिएगा। आज मुद्दत के बाद यहाँ आज़ाद देखा। फिर ज़िन्दा हुआ। प्रेम पचीसी के लिए जो क़िस्से चाहें ले लें। इसकी फ़ेहरिस्त तो मैंने पहले ही दे दी थी। सहीकर्दा (सही की हुई) कापियाँ भी भेजी थीं। 'क्या वह कापियाँ ग़ायब हो गयीं। ख़ैर मतलब तो तेरह कहानियों से है। अगर यह हों।

नियाज़मल, धनपत राय।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 24 जनवरी, 1917

भाईजान,

तसलीम। कल कार्ड मिला। मशकूर हूँ। मनीआर्डर अभी नहीं मिला। आता होगा। मेरे इस मनीआर्डर के बाद पैंतीस रुपये और रह जायेंगे। हिसाब से मिला लीजिएगा। मैं आजकल एक क़िस्सा लिखते-लिखते नाविल लिख चला। कोई सौ सफ़े तक पहुंच चुका है। इसी वज़ह से छोटा क़िस्सा न लिख सका। बस इस नाविल में ऐसा जी लग गया है कि दूसरा काम करने को जी ही नहीं चाहता। मगर मार्च के लिए दो तीन दिन में ज़रूर कुछ न कुछ भेजूँगा। फ़रवरी के लिए मजबूरी है। आप अगर इस नाविल को मुसलसल देना चाहें तो कैसा हो ? हालांकि मुझे खुद यह सूरत पसंद नहीं। मालूम नहीं कब तक ख़त्म होगा। और रिसाले की मौजूदा ज़खामत[1] भी इस बोझ को नहीं संभाल सकती। क़िस्सा दिलचस्प है और मुझे ऐसा ख़याल होता है कि मैं अबकी बार नाविल-नवीसी में भी कामयाब हो सकूँगा। एक मज़मून हमारी बाज़ तालीमी जुरूरियात पर ख़याल में है। देखिए बन जाये तो भेजूँ। फ़रवरी में मुझे इलाहाबाद आना है। खुसर साहब सख़्त बीमार हैं। शायद इस सिलसिले में आपसे मुलाक़ात हो सके। बाबू रामभरोसे के घर तो जून में शादी होगी। बन पड़ा तो चलूँगा। अभी बहुत दिन हैं। बच्चों की चेचक का हाल पढ़कर रंज हुआ। क्या टीका नहीं लगा था ? ईश्वर बच्ची को चंगा करे। अब की जो क़िस्सा आपके पास दो तीन दिन में जायेगा उसे अर्सा हुआ लिखा था मगर ख़ौफ़ के मारे नहीं भेजा। इसमें वाइज़[2] बन गया हूँ हालांकि कुजा मैं और कुजा पीरे फ़रतूत[3]। अगर पसंद आये तो छापिएगा वर्ना हिन्दी में छप जायेगा।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1 मोटापन, 2 उपदेशक, 3 कहाँ मैं और कहाँ जर्जर बुड्ढा।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर 9 फ़रवरी, 1917

भाईजान,

तसलीम। दो मज़मून बैरंग भेजे थे। जवाब न मिला। मालूम नहीं पहुंचे या नहीं। तरद्दुद है।

अब तो ज़माना ठीक वक़्त पर निकलने लगा है। मुझे यह जानने की ख़्वाहिश है कि इस पाबन्दी का तादाद ख़रीदारान पर कुछ असर पड़ा या नहीं। मुत्तला फ़रमाइएगा।

पचीसी हिस्सा दोम की किताबत ग़ालिबन् शुरू हो गयी होगी। सेहत का लिहाज़ रखना ज़रूरी है। इस किताब की इशाअत में मेरा क्या समझौता रहेगा। मेरी है या आपकी या मुश्तरक। मुश्तरक रखिए तो अच्छा।

जवाब से सरफ़राज़ फ़रमाइएगा। मैं इसी माह में आऊँगा मगर मालूम नहीं कब।

नियाज़मन्द, धनपत राय



इलाहाबाद, 20 फ़रवरी, 1917

भाईजान,

तसलीम। मैं कल इलाहाबाद आ गया। 15 मार्च तक रहना पड़ेगा। हिफ़्ज़े सेहत (स्वास्थ्य रक्षा) और First aid के मुताल्लिक़ लेक्चर होंगे। सरकार ने हर एक नार्मल स्कूल से एक-एक आदमी को तैनात किया है। मैंने बस्ती से आपकी खिदमत में दो ख़त भेजे थे। लेकिन जवाब से महरूम रहा। तशवीश (चिन्ता) है। खुदा न ख्वास्ता तबीयत तो ख़राब नहीं हो गयी। और आप इलाहाबाद तो नहीं आये। मुलाक़ात हो जाती। मैं खुद आता लेकिन बज़ज़ होली के और कोई तातील नहीं पड़ती। ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद के पते से ख़त लिखियेगा। बाक़ी सब ख़ैरियत है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

ट्रेनिंग कालिज, इलाहाबाद, 2 मार्च, 1917

भाईजान,

तसलीम। आज लिफ़ाफ़ा मिला। मशकूर हुआ। आपकी परेशानियों का हाल पढ़कर अफ़सोस हुआ। क्या बच्चे की आँख इस क़दर ख़राब हो गयी कि तालीम तर्क करना पड़ी। यही सब अयालदारी (गृहस्थी) की तकलीफें हैं। आपकी ख़ामोशी से मैं समझ गया था कि ख़ैरियत नहीं है और अंदेशा सही निकला। ईश्वर बच्चे के हाल पर रहम करे। लिफ़ाफ़े के अन्दर वाले खुतूत देखे। खुश हुआ। हालांकि मेरे पास बहुत सी ख़िदमातों के लिये न दिमाग़ है न वक़्त। आजकल अपना नाविल लिखने में मह हूं। यह खत्म हो जाय तो कुछ और करूँ। हां, 'ज़माना' के लिये स्टाक मौजूद है।

'प्रेम पचीसी' हिस्सा दोम में ज़रा ज्यादा सरगर्मी फ़रमाइये। जल्दी खत्म हो जाय। अभी बहुत कुछ छपवाना है। अगर पहली मंज़िल में इतना रुके तो फिर इतनी लम्बी ज़िंदगी कहां से आयेगी। तातीलें गर्मी के पहले खत्म हो जाना जरूरी है। मैं शंकित हूं।

'प्रेम पचीसी' हिस्सा अव्वल की जिल्दें भेजी जायंगी। मैंने गोरखपुर लिख दिया है; लेकिन अगर किसी वजह से इस वक़्त न गयीं तो मैं वहां पहुंचते ही भेज दूंगा। आपसे भी 'यादगारे राम' की कुछ जिल्दें लूंगा। गोरखपुर के स्टेशन पर एक दुकान खुली है वहाँ उर्दू की किताबें भी बिकती हैं। मुमकिन है 'यादगारे राम' कुछ निकले। 'प्रेम पचीसी' तो दस-पाँच निकल जाती है। मैं होली की तातील में आने वाला हूं। लेकिन मेरे पिछले हिसाब में कुछ रवाना फ़रमाइये, वर्ना मुझे गोरखपुर से मंगाना पड़ेगा जो ज़्यादा तरद्दुद तलब है। पिछला हिसाब मैं आपको लिख चुका हूं। ग़ालिबन आपने नोट कर लिया होगा।

'प्रेम पचीसी' का हिन्दी एडीशन छप रहा है। उसका मराठी एडीशन भी छप रहा है।

मुलाक़ात के लिए जी बहुत चाहता है। होली में शायद एक दिन वक़्त निकल सके। और तो सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

●●

इलाहाबाद, 12 मार्च, 1917

भाईजान,

तसलीम। अफ़सोस है कि इस तातील में मैं कानपुर न आ सका। बहुत कोशिश की कि आऊँ लेकिन एक तरफ़ ससुराल का तक़ाज़ा दूसरी तरफ़ हमजुल्फ़[1] (साढ़ू) साहब का इसरार। तीन दिन की तातील में बमुश्किल तमाम इन दोनों तक़ाज़ों से नजात मिली। आज आया हूँ और फिर कालेज शुरू हुआ। ज़माना के लिए दो मज़ामीन तैयार हैं मगर गोरखपुर जाने पर साफ़ होंगे। नाविल ग़ालिबन एक माह में पूरा होगा और उम्मीद करता हूँ कि मई में उसे आपके मुआइने के लिए हाज़िर कर सकूँगा। बच्चों की नासाज़ी-ए-तबीयत अजब हैजान (बेचैनी) है। गज़ट से मालूम हुआ कि आजकल कानपुर में प्लेग की भी कमी नहीं है। ईश्वर ख़ैरियत से रखे। ऐसी कोशिश कीजिए कि प्रेम पचीसी हिस्सा दोम जून तक निकल जाये। प्रेम पचीसी की 44 जिल्दें भेज दी गयी हैं, पहुँची होंगी। और सब ख़ैरियत है। वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 20 मार्च, 1917

भाईजान,

तसलीम। मैं 16 को यहाँ वापस आ गया। कई हिन्दी के बुकसेलर प्रेम पचीसी को शाया करने की इजाज़त माँगते हैं। मैं हिस्सा दोम का इन्तज़ार कर रहा हूँ। किताब पूरी हो जाये तो किसी को दे दूँ। आपने होली के बाद उसके मुताल्लिक़ मुफ़स्सल (विस्तार पूर्वक) लिखने का वादा किया था। अब उसे पूरा कीजिए। ज़माना के लिए मज़मून साफ़ कर रहा हूँ। तीन दिन लगेंगे। अभी मार्च का ज़माना नहीं आया। क्या देर है ?

बाबू महताब राय लखनऊ से टाइप सीखकर आ गये हैं। आप इन्हें वहाँ किसी मिल या फ़र्म में इन्ट्रोड्यूस करा सकते हैं। अगर ऐसा हो सके तो मुझ पर ख़ास इनायत होगी। मुत्तिला फ़रमाइएगा। किताबें पहुँची होंगी। रुपया इलाहाबाद ही में मिल गया था। मशकूर हूँ।

कानपुर में प्लेग की क्या कैफ़ियत है। यहाँ तो निजात है। मगर देहातों में बड़ा ज़ोर शोर है।

जवाब से सरफ़राज़ (सम्मानित कीजियेगा) फ़रमाइएगा।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



गोरखपुर, 23 मार्च, 1917

भाईजान,

तसलीम। यह 'मिशअले हिदायत' ख़िदमत में हाज़िर है। कोई प्लाट नहीं है। सिर्फ़ ज़मानए मौजूदा का मुरक़्क़ा (तस्वीर) दिखाने की कोशिश की गयी है। उम्मीद है

पसन्द आयेगी।

मुझे 43 रु. में से 10 रु. मिले, 33 रु. और रहे। इसमें इस मज़मून को और इज़ाफ़ा फ़रमाइये तो 38 रु. होते हैं। अगर हिन्दी शोअरा वाला सिलसिला पसंद हो तो एक शायर को रवाना करूँ। वरना 'तर्जुमान' में भेज दूँ।

यहाँ मेरे एक दोस्त ने स्टेशन पर उर्दू किताबों का स्टाल खोला है। उन्हें कुछ 'ज़माना' प्रेस की किताबें दरकार हैं। आप ज़ैल की किताबें रवाना करा दें। हिसाब, मय कमीशन के, लिख भेजें। चाहे मेरे हिसाब में मुजरा हो जायगी चाहे क़ीमत रवाना हो जायगी। मेरा ज़िम्मा है। फ़ेहरिस्त हस्ब ज़ैल है :

यादगारे राम	5 जिल्दें
भारत दर्पन	2
सैरे दरवेश	20
नसायेह चाणक्य	10
हयाते हाली	5
तरीक़े दोस्तमदी	5
महादेव गोविंद रनाडे	5
आर्य समाज और पालिटिक्स अज़ इज़्ज़तराय	10
मुसद्दस हाली	5
उर्दू मज़मून नवीसी	2

इन किताबों के भिजवाने में देर न फ़रमायें। 'प्रेम पचीसी' हिस्सा दोम के मुताल्लिक़ अब तक जो कुछ हो चुका है उससे मुत्तिला कर दें। मेरा नाविल चल रहा है। अब ज़रा इत्मीनान हो जाये, तो ख़त्म करूँ। तूल हो रहा है। चाहता हूँ कि जल्द अंजाम की तरफ़ चलूँ।

एक और क़िस्सा तैयार है। अच्छा क़िस्सा है। मगर ज़रा सफ़ाई में देर है। जल्द भेजूँगा। 'शाकिर' का 'अलअस्र' देखा। क्या जिंदा हो गया? आपको मालूम हो तो कुछ उसकी कैफ़ियत लिखियेगा।

बच्चों की तबीयत कैसी है। कानपुर में प्लेग तो नहीं है?

सोज़े वतन की एक जिल्द ज़रूर रवाना करें। यहाँ एक भी नहीं है।

नियाज़मंद, धनपत राय।



दफ़्तर 'उर्दू-ए-मुअल्ला', अज़ अलीगढ़, 2 अप्रैल, 1917

मुक़र्रमी,

तसलीम ! मैंने बज़रिया एडीटर साहब 'ज़माना' एक जिल्द 'दीवान-ए-हसरत' आपकी ख़िदमत में रवाना की थी। उम्मीद है, आपके मुलाहिज़ा (सामने) से ज़रूर गुज़री होगी। काश, जनाब तकलीफ़ फ़र्माकर इसकी रसीद से मुझे मुत्तला फ़र्माकर ममनून फ़रमायें, ताकि इत्मीनान हो जावे। इस वक़्त ये चन्द सतरें लिखने पर जिस शै ने मुझे मजबूर किया है, उसकी तारीफ़ मेरे ज़बाने-क़लम से किसी तरह नहीं अदा हो सकती।

हक़ यह है कि एक मामूली-से-मामूली क़िस्से को निहायत मुअस्सिर और दिलकश पैराये में अदा करना आप ही का हिस्सा है। पुख़्तगी-ए-तहरीर (साहित्य की परिपक्वता) और सलामते-बयान (बातचीत की मधुरता) गर्ज़े कि शुरू से आख़िर तक एक मुख़्तसिर अफ़साने को इस तरह क़लमबन्द करना कि उसमें तसन्नो (कृत्रिमता) और बनावट का कहीं शायबा (प्रभाव, छाया) तक न हो, कमाल है। मैं आपको इस खुदादाद क़ाबलियत पर मुबारकबाद देती हूँ। आज के आये हुए ज़माने में यही शोला-ए-हुस्न बहुत ख़ूब है !

क्या मैं उम्मीद करूँ कि आप दीवान की पहुँचने की रसीद से इत्तला देंगे और क्या यह भी मुमकिन है कि आप भी दीवान पर अपने ज़रीन ख़यालात का इज़हार फ़रमायें ?

मुंतज़िर, बेगम हसरत मोहानी



सलेमपुर, डाकखाना कनवार, इलाहाबाद, 8 जून, 1917

भाई साहब,

तसलीम। आप परसों लौटेंगे। यह ख़त आज ही जाता है। मैं यहाँ बुरा आ फँसा। बाक़ी सब बीमार हो रहे हैं। अब देखूँ किस तारीख़ तक पिण्ड छूटता है। अगर मेरी कोई चिट्ठी-पत्री आये तो उसे गोरखपुर भेजिएगा।

(शेष मिट गया है।–अ.)



गोरखपुर, 2 जुलाई, 1917

भाईजान,

तसलीम। मैं यहाँ तीस जून को आ पहुँचा लेकिन अभी इत्मीनान से काम नहीं कर सका। आपने वहाँ किसी से इमदाद[1] के मुताल्लिक़ गुफ़्तगू की या नहीं। मैंने वादा तो कर लिया है और उसे पूरा करने का ख़याल भी है लेकिन नये प्रास्पेक्टस को देखकर जी ज़रा घबराता है। और इसे आप भी ग़ालिबन् तसलीम करेंगे कि मुझे इन दो हुरूफ़ की ज्यादा ज़रूरत है। ऐसी हालत में मैं मुस्तक़िल तौर पर इमदाद शायद न कर सकूँ। हाँ वक़्तन् फ़वक़्तन् के लिए हाज़िर हूँ। ज़माना और प्रेम पचीसी की कापियाँ कानपुर में एक लेटर बकस में डाल आया था। मिल गयी होंगी। इस वक़्त अदीम[2] फ़ुर्सती के बाइस मिल न सका। और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है।

बारिश ख़ूब हो रही है। लीडर आजकल ख़ूब धूम से निकलता है और प्रताप में भी ज़ोर है। इस वक़्त मामूली तवज्जो से काम चलता नहीं नज़र आता। अर्क़रेज़ी[3] की ज़रूरत है। और क्या लिखूँ। उम्मीद है कि बच्चे अच्छी तरह होंगे।

नियाज़मंद, धनपत राय।

1 सहायता, 2 समयाभाव, 3 पसीना गिराना, मेहनत



गोरखपुर, 9 जुलाई, 1917

भाईजान,

तसलीम। लाटरियान की फ़ेहरिस्त छप गयी। क्या ख़बरें हैं। अव्वल दोम सोम न

सही, हज़ार दो हज़ार कुछ हाथ लगा. दोस्तों में कोई सुर्ख़रू (कामयाब) हुआ।

चार दिन से बच्चे को ब्रान्काइटिस की शिकायत हो गयी है। डाक्टर की दवा कर रहा हूँ। आज़ाद के मुताल्लिक़ आपने कुछ तहरीर नहीं फ़रमाया। देखने में ही नहीं आया। मैं तो अभी तक अपनी झंझट से नहीं छूटा।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 25 जुलाई, 1917

भाईजान,

तसलीम। आज एक काम से फुर्सत मिली। शेख़सादी के हालात एक साहब की फ़रमाइश से हिन्दी में लिखे हैं। अब 'ज़माना' के लिये कुछ लिखने की फ़िक्र में हूं। लॉटरी ने फिर धोखा दिया। इसका अफसोस रहा। ठाकुर जी की भक्ति किस उम्मीद पर की जाय। 'प्रेम पचीसी' प्रेस में चली गयी, बहुत अच्छा हुआ। प्रूफ़ अगर बहुत ख़राब हों तो यहाँ भिजवा दीजिये और अगर ग़लतियाँ कम नज़र आयें तो वहीं दिखवा लीजिये। आने जाने में देर होगी। मेरे हिसाबे साबक़ा में बाद मिनहाई[1] क़ीमत पार्चा[2] 33 रुपये निकलते हैं। इसे महसूब करके मेरे ज़िम्मे जो कुछ सर्फ़ हो उससे मुत्तिला कीजियेगा। हिस्सा अव्वल की अगर ज़िल्दें दरकार हों तो भेज दूं। हर दो जिल्दें 1 रु. 8 आना में [illegible] हो जाना चाहिये। आपकी बुक एजेंसी कुछ और चली या नहीं। अख़बार 'आज़ाद' माफ़िक दस्तूर चला जाता है, मुझे तो कोई तग़य्युर[3] नहीं नज़र आता। अब मुझे स्टेट्समन मिलने लगा है। चाहता हूं कि लिखा करूँ, लेकिन मुश्किल यह है कि मेरा कुछ न कुछ वक़्त अब हिन्दी नवीसी में चला जाता है। बच्चे अब दोनों अच्छी तरह हैं। और तो कोई ताज़ा हाल नहीं। उम्मीद कि आपके यहाँ लाटरी की मायूसी के अलावा और सब ख़ैरियत होगी।

नियाज़मंद, धनपत राय।



गोरखपुर, 8 अगस्त, 1917

भाईजान,

तसलीम। अभी तक प्रेम पचीसी के प्रूफ़ नहीं आये। प्रेस में क्या देर हो रही है। आपका इधर कोई ख़त नहीं आया। शायद आप बहुत मसरूफ़ हैं। मेरी भी यही हालत है। एक क़िस्सा ज़माना के लिए कल परसों तक रवाना होगा। आपकी किताबों की एजेन्सी का क्या हश्र हुआ। कुछ काम चला या ठण्डा पड़ गया।

अपना नाविल ख़त्म कर रहा हूँ। उसे पहले हिन्दी में तबा (छपाने) कराने का क़स्द (इरादा) है। उर्दू में तो पबलिशर अनक़ा (अप्राप्य) हैं।

अपने हालात से मुत्तला फ़रमाइए। उम्मीद है आप बख़ैरियत होंगे। हम लोग अच्छी तरह हैं।

नियाज़मंद, धनपत राय।



गोरखपुर, 11 सितम्बर, 1917

भाईजान,

तसलीम। आपकी ख़ामोशी ग़ज़ब ढाती है। मज़मून भेजा, 'सप्त-सरोज' भेजा। लेकिन आपने एक रसीद की तकलीफ़ भी गवारा न की। आप ज़रूर अदीमुलफुर्सत हैं, लेकिन मेरे लिये एक कार्ड लिखना चन्दां मुश्किल न था। 'प्रेम पचीसी' के मुताल्लिक़ आपने क्या कार्रवाई की। लखनऊ आ गयी या कानपुर ही में कोई दूसरा इन्तज़ाम हुआ, या उसकी इशाअत का खयाल ही तर्क कर दिया। अगर ऐसा हो तो कितावत की कापियाँ मेरे पास रवाना फ़रमा दें, मैं उन्हें छपवा लूँ, वर्ना फिर कापियाँ खराब हो जायंगी। जवाब से जल्द मुमताज़ फ़रमायें।

उम्मीद है कि अयाल, बच्चे अच्छी तरह होंगे।

आपका, धनपत राय।

••

हिन्दी पुस्तक एजेंसी, गोरखपुर, 16 सितंबर, 1917

भाईजान,

तसलीम। कल आपका कार्ड मिला। बहुत खुश हुआ। ईश्वर करे जल्द निकले। आपने काउण्ट टाल्सटाय का सवानही' (जीवनी-वाला) मज़मून जो फ़ाइल से निकालकर अलग रख दिया है उसकी मुझे सख़्त ज़रूरत है। अगर बराहे इनायत उसे भेज दीजिए तो मशकूर होऊँगा। एक मजमून लाला लाजपत राय का है और दूसरा किसी और साहब का। दोनों मज़ामीन इरसाल फ़रमायें। एक हफ्ते में वापस हो जायेंगे। इसी के साथ प्रूफ़ भी आ जायें तो बेहतर है।

••

गोरखपुर, 17 सितम्बर, 1917

भाईजान,

तसलीम। प्रेम पचीसी आज भेजी जायगी। मिस्टर मुंगिया के ख़त का जवाब दे दिया है। एक क़िस्सा आपके लिए लिखा था। वही यहां भेज दूँगा। आपके यहाँ भी वही शाया हो जायेगा। ग़ालिबन् इसमें आप कोई हर्ज न समझेंगे। कल मैंने काउण्ट टाल्सटाय के सवानही मज़ामीन जो आपके यहाँ निकले हैं मांगे हैं। उनका एक हिन्दी एडीशन शाया करने की नीयत है। बैरंग भेजिएगा। एक हफ्ते में वापस कर दूँगा।

बाक़ी सब ख़ैरियत है। अभी तक प्रूफ़ नहीं आया।

नियाज़मंद, धनपत राय।

••

गोरखपुर, 21 सितम्बर, 1917

भाईजान,

तसलीम ! कार्ड मिला। प्रूफ़ वापस हैं। लाला काशीनाथ की हिन्दी किताब तातील (छुट्टियों) से यूँ ही पड़ी हुई है। इस पर मैंने रिव्यू कर दिया है। किताब अच्छी है। रफ़ा-शिकायत हो गयी। मैंने जो हिसाब लिखे हैं, उसमें 'प्रेम पचीसी' या 'ज़माना' के

दफ़्तर से आयी हुई किताबों का हिसाब शामिल नहीं है। दफ़्तर के ज़िम्मे मेरी चौवालीस जिल्दें 'प्रेम-पचीसी' की हैं। मेरे जिम्मे दफ़्तर की मुरसेला कुतुब (भेजी हुई पुस्तकें)।

मैं खुद ऐसी कोशिश में हूँ कि मज़ामीन का सिलसिला न टूटे। आजकल कुछ तो खुद पढ़ता हूँ, कुछ वक़्त नावेल की तैयारी में निकल जाता है। 'प्रताप' के ख़ास नम्बर के लिए भी एक मज़मून लिखा। ये कमी क़िस्से से नहीं, किसी दूसरे मज़मून से पूरी करूँगा।

कोशिश करूँगा कि 12 को लखनऊ आऊँ। लेकिन ठहरने का ठिकाना कहाँ होगा ? सब पहले से तय कर दीजिएगा।

आपका, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 2 अक्तूबर, 1917

भाईजान,

तसलीम। मिज़ाज शरीफ़। फिर कोई प्रूफ़ नहीं आया। क्या एक एक फ़र्मे में दो हफ़्ते का वक़्फ़ा होगा ? इस तरह तो कई महीने लग जायेंगे। हमारा स्कूल बदक़िस्मती से 18 अक्तूबर से बंद होगा। इंस्पेक्टर से दरख़्वास्त की गयी थी कि इसके क़ब्ल (पहले) ही से बंद करने की इजाज़त दें लेकिन मंजूर नहीं की। इस वजह से मेरा सीतापुर जाना मंसूख़। अब बशर्ते ज़िन्दगी कलकत्ते की सैर होगी। उम्मीद कि आप बहुत अच्छी तरह होंगे।

नियाज़मंद, धनपत राय।

●●

मैनेजर 'ज़माना'

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 17 अक्तूबर, 1917

जनाब मैनेजर साहब,

तसलीम। प्रूफ़ वापस है। इकहत्तर के आख़िर में और बहत्तर सुफ़हात में कुछ सतरें बिल्कुल उड़ गयी थीं। चूँकि अस्ल मेरे पास नहीं है, इसलिए इन सतरों को दुरुस्त नहीं कर सका। अस्ल से देखकर बनवाने की तकलीफ़ कीजिएगा।

चूँकि आपने तादादे कुतुब के बारे में फिर मुझी से पूछा है इसलिए पाँच सौ जिल्दें छपेंगी। ज़्यादा की गुंजाइश नहीं।

इसके क़ब्ल आपके ख़त के जवाब में मैंने हिसाबात के मुताल्लिक़ जो ख़त लिखा था उसका आपने जवाब नहीं दिया। जो राय तय पाये वह मुझे लिख भेजिए।

बाक़ी सब ख़ैरियत है।

ख़ैर अन्देश, धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 1 नवम्बर, 1917

मुकर्रमी,

तसलीम। आपने मेरे हिसाबात के मुताल्लिक़ जो ख़त लिखा था उसका मैंने दूसरे

ही रोज़ जवाब दे दिया था लेकिन बदक़िस्मती से वो ख़त आपके यहाँ पहुँचा ही नहीं और मेरे यहाँ भी आपके ख़त का पता नहीं। बहरहाल प्रेम पचीसी पाँच सौ छपेगी। इसका निस्फ़ ख़र्च मेरे ज़िम्मे है। जैल की रुक़ूम को मिनहा करके मुझे मुत्तिला फ़र्माइए कि मेरे ज़िम्मे और कितना निकलता है। प्रेम पचीसी चौवालीस जिल्दें बाद कमीशन बाइस रुपया बाबत मज़ामीन वग़ैरह अड़तिस रुपया मीज़ान कुल साठ रुपया।

आपके दफ़्तर से मुझे अट्ठाइस रुपये की किताबें आयी हैं। वह इस हिसाब में शामिल नहीं हैं। बहरहाल हिसाब लिखते वक़्त बराहे करम मदों की तफ़सील भी दे दीजिएगा।

जवाब आते ही रुपये रवाना होंगे।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



गोरखपुर, 19 नवम्बर, 1917

मुकर्रमे बन्दा जनाब मैनेजर साहब ज़माना,

तसलीम। नवाज़िशनामा सादिर हुआ। हिसाबात से मालूम हुआ कि मुझे अपने निस्फ़ की शराकत के लिए फ़िलहाल रुपया भेजने की ज़रूरत नहीं है। छपाई का रुपया किताब छप जाने के बाद वाजिबुल अदा होगा और जो कुछ मेरे ज़िम्मे निकलेगा अदा कर दूँगा। वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 3 जनवरी, 1918

जनाब मुकर्रमे बन्दा मैनेजर ज़माना,

तसलीम। प्रेम पचीसी हिस्साए दोम की तैयारी में अभी कितनी कसर बाक़ी है। कुछ मज़ीद काम हुआ या प्रूफ़ तक ही मुआमला रुका हुआ है। मैंने आपके दफ्तर से अर्सा हुआ सतरह रुपये की किताबें मंगवायी थीं लेकिन यहाँ उनकी फ़रोख़्त का माक़ूल इन्तज़ाम न होने के बाइस उन्हें फिर रवानए ख़िदमत करता हूँ। महसूल पार्सल अदा कर दिया है ताकि आपको तावान न हो। इनमें कुछ किताबें 'अल नाज़िर' की भी है। उनके लेने में ग़ालिबन् आपको ग़रज़ न होगा।

जवाब से सरफ़राज़ फ़र्मायें।

नियाज़मन्द, धनपत राय



गोरखपुर, 29 जनवरी, 1918

भाईजान,

तसलीम। किताबें लाहौर पहुँच गयीं। वहाँ से भी किताबें ग़ालिबन् कानपुर आ गयी होंगी। मैंने ताकीद तो कर दी थी। सरे वर्क़[1] (आवरण पृष्ठ) की तबदीली करने का ख़याल ज़रूर रखिएगा। लाहौर वाले और तो सब पसंद करते हैं सिर्फ़ यही शिकायत उन्हें भी है।

मज़मून अभी साफ़ नहीं हो सका। अपना नाविल हिन्दी में लिख रहा हूँ। फुर्सत

नहीं मिलती। न कोई तातील ही पड़ती है। मगर आज इरादा करता हूं कि साफ़ करने में हाथ लगा दूँ।

हिसाब अभी तक जनाब ख़्वाजा साहब ने नहीं भेजा।

प्रेम पचीसी का दूसरा एडीशन लाहौर जा रहा है। आप पब्लिशर बनना पसन्द ही नहीं करते, इस वजह से मजबूरी है। मैं खुद पब्लिशर बनने का दर्द सर नहीं चाहता। मुझे दूसरे एडीशन के दो सौ रुपये मिल जायेंगे। x x x x x x में मिल जायेंगी, जो शायद लागत से ज्यादा नहीं। उम्मीद है कि आपकी तबीयत अब अच्छी होगी।

अज़ीज़ बाबू बिशन नारायन जी को आशीर्वाद। ज़्यादा वस्सलाम।

आपका, धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 11 फरवरी, 1918

जनाब मुकरमे बन्दा मैनेजर साहब ज़माना,

तसलीम। आपने अपने नवाज़िशनामे मुवर्रिख़ा 27 जनवरी में मेरे ज़िम्मे ज़माना के दफ़्तर की दस रुपये तीन आने की किताबें नामज़द कर दी हैं। आपको ख़्याल होगा आपने मेरे नाम कुल सत्रह रुपये की किताबें भेजी थीं। मैंने आपको सोलह रुपये की मालियत की किताबें वापस कर दी हैं। इस तरह गोया मैं दफ़्तर का सिर्फ़ एक रुपये का और मक़रूज़ हूँ। अगर्चे उनमें दफ़्तर की कई किताबें नहीं हैं लेकिन उनके एवज़ मैंने अन नाज़िर प्रेस की किताबें रख दी हैं जो आपकी एजेन्सी से फ़रोख़्त हो रही हैं। बराहे करम इसे नोट फ़र्मा लें।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 5 अप्रैल, 1918

जनाब मुकर्रमे बन्दा मैनेजर साहब ज़माना,

तसलीम। प्रेम पचीसी हिस्सा दोम को देखकर बेहद मसर्रत हुई। कागज़ ज़रूर हल्का है लेकिन किसी तरह प्रेस से किताब निकल तो गयी। इस ज़माने में यही हज़ार ग़नीमत है। इसलिए मैं कारखाने का ममनून हूँ। अब मुझे यह बतलाइए कि कुल कितना सर्फ़ा हुआ। दफ़्तर ज़माना पर मेरे मतालिबात हस्बे ज़ैल हैं...पचहत्तर रुपये हस्बे तहरीर आपके और प्रेम पचीसी की पचास और सत्ताइस जिल्दें जिनकी क़ीमत बाद कमीशन साढ़े अड़तिस रुपये होती है। एक रुपया खर्च निकालकर साढ़े सैंतीस हुए। इस रक़म को पचहत्तर रुपये दस आने में शामिल कर लीजिए। एक सौ तेरह रुपये दो आने होते हैं। अब आप अपना मतालबा बतलाइए ताकि मुझे मालूम हो कि मुझे कितना देना या पाना है। अब प्रेम बत्तीसी हिस्सा अव्वल की किताबत शुरू कराने का इरादा है। इसमें ज़ैल के क़सस होंगे...

1. शोलाए हुस्न, 2. तिरिया चरित्तर, 3. निगाहे नाज़, 4. पंचायत, 5. बॉगे सहर, 6. सरे पुरग़ुरूर, 7. धोका, 8. बाज़याफ़्त, 9. राजपूत की बेटी, 10. ईमान का फ़ैसला, 11. कुर्बानी, 12. नेकी का बदला, 13. सौत, 14. जुगनू की चमक, 15. दुर्गा का मन्दिर, और 16. फ़तेह।

मुझे मालूम हो जाय तो किताबत के लिए तजवीज़ करूँ

आपका, धनपत राय

••

बनारस, 2 जून, 1918

भाईजान,

तसलीम। आपके दो कार्ड मिले। आपको शिफ़ा[1] हुई, इस ख़बर से निहायत तसकीन हुई। मैं 29 मई को शादी से फ़रागत पा गया। अभी दो एक रोज़ की झंझट और बाक़ी है। इसके बाद कलकत्ते आने का क़स्द है। अपने हिन्दी नॉविल को प्रेस में दिया है। आपने रफ़्तार लिखने की फ़रमाइश की है। मगर इधर मई में मुझे अख़बारों के देखने का बहुत कम मौक़ा मिला। जून में भी सफ़र से निजात न होगी और जुलाई में सिलसिला ख़्वान्दगी[2] शुरू करूँगा वरना बी. ए. न पास कर सकूँगा। अभी तक सारी किताबें देखने को पड़ी हैं। क़िस्सों का सिलसिला जारी है। यही ग़नीमत है। इससे ज़्यादा फ़िलहाल इमकान से बाहर है। मुझे बहुत नदामत[3] के साथ यह सतरें लिखना पड़ती हैं। लेकिन क्या करूँ, मजबूर हूँ। ताहम बहदूदे इमकान अगस्त से रफ़्तार लिखने की कोशिश करूँगा।

इन्शाअल्लाह कल प्रेम पचीसी की 104 जिल्दें रवाना होंगी। उम्मीद कि आप मय अयाल बख़ैर-ओ-आफ़ियत होंगे।

नियाज़मन्द, धनपत राय

1. रोग से आराम, 2. पढ़ाई, 3. शर्मिन्दगी।

••

गोरखपुर, 6 जुलाई, 1918

भाईजान,

तसलीम। आपका कार्ड मिला। क्या करूँ, ऐसी परेशानियों में था कि कानपुर आने का मौक़ा ही न मिला। 11 मई को यहाँ से चला, 27 को बारात के साथ गया, 30 को वापस आया, 11 को कलकत्ते गया। 20 को वहाँ से आया। फिर मकान की मरम्मत में फंसा। खपरैल का घिसा, पुराना, बोसीदा मकान, गिर पड़ने का अन्देशा था। ऐसी हालत में क्या लिखता। अभी ज्वर से अच्छा हूँ आँखें उठी हुई हैं। किसी तरह मदरसे जाता हूँ; मगर ज्योंही ज़रा फ़रागत[1] हुई कुछ न कुछ लिखने की कोशिश ज़रूर करूँगा। अब मैं सरकारी अख़बारनवीस क्या बनूँगा। अगर अख़बारनवीस बनना तक़दीर में है तो ग़ैर सरकारी, आज़ाद अख़बारनवीस होऊँगा। जंग के मुताल्लिक़ मज़ामीन लिखने की भी इस वक़्त मुझे फुर्सत नहीं है। बस इसी अपनी रफ़्तारे क़दीम[2] पर चलूँगा। बी. ए. करके किसी प्राइवेट स्कूल की हेडमास्टरी और एक अच्छे अख़बार की एडिटरी और कुछ पब्लिक काम। यही मेराजे[3] ज़िन्दगी है। अख़बार मज़दूरों-किसानों का हामी और मुआविन[4] होगा।

मैं आपको एक ख़ास अम्र में तकलीफ़ देना चाहता हूँ। छोटक हफ़्ते अशरे या ज़्यादा-से-ज़्यादा एक माह में तख़फ़ीफ़[5] में आ जायेंगे। बन्दोबस्त का काम फ़िलहाल बंद किया जा रहा है। मुझे उनकी फ़िक्र लगी हुई है। अगर आप उनके लिए कोई काम दिलाने में मेरी मदद कर सकें तो ऐन एहसान हो। मेरे और कौन से दोस्त हैं जिनसे इनकी

सिफ़ारिश करूँ। बस्ती में टाइपिस्ट थे, पैंतीस रुपये पाते थे। कानपुर के किसी कारख़ाने में अगर आपकी सिफ़ारिश कारगर हो सके तो इन्हें बाद तख़फ़ीफ़ वहाँ भेज दूँ या वार के मुताल्लिक़ कोई ऐसा काम हो जिसमें हिन्दोस्तान से बाहर न जाना पड़े तो भी कोई उज्र नहीं है। जवाब से जल्द सरफ़राज़ कीजिए, इंतज़ार रहेगा।

प्रेम बत्तीसी हिस्सा दोम एक जिल्द ज़ख़ीरा के पास आपने भिजवा दी होगी।

वस्सलाम,

धनपत राय।

1. अवकाश मिला, 2. पुरानी रफ़्तार, 3. जीवन का शिखर, 4. सहयोगी, 5. छँटनी।



गोरखपुर, 27 जुलाई, 1918

भाईजान,

तसलीम। अर्से से कोई ख़त नहीं। मैंने एक ख़त लिखा भी लेकिन चूँकि उसमें आपको थोड़ी-सी तकलीफ़ दी थी इस वजह से आपने उसका जवाब न देना ही मुनासिब समझा। उम्मीद है कि अब आप बख़ैरियत होंगे।

नियाज़ फ़तेहपुरी ने हाल में एक क़िस्सा लिखा है। अगर वह आपके दफ़्तर में आया हो और आप उसे देख चुके हों तो एक हफ़्ते के लिए मेरे पास भेज दीजिएगा। देखने का इश्तियाक़ है।

गर्मी शिद्दत की है। उम्मीद कि बच्चे अच्छी तरह होंगे।

ज़रा मैनेजर साहब से फ़रमाइएगा कि मुझे प्रेम पचीसी हिस्सा दोम की तादाद फ़रोख़्तशुदा (बिकी हुई) की इत्तला दे दें। कुछ बिक रही है या आल्मारी में दीमकों की खूराक बन रही है। और तो कोई हाल ताज़ा नहीं। वस्सलाम।

धनपत राय।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 27 जुलाई, 1918

बन्दानवाज़,

तसलीम। रुपये मिले और रसीद न भेज सका। आप ही का काम कर रहा था। 'कहकशाँ' के लिये यह किस्सा ज़ंजीरे हवस इरसाल है। इसकी आपसे दाद चाहता हूं। इसकी X X X सूरत पर न जाइयेगा। इसके मानी पर ग़ौर फ़रमाइयेगा।

अगर मुमकिन हो तो मौलाना राशिद की कोई किताब मुझे देखने के लिए रवाना फरमाइये। कब यह मुमकिन हो कि 'कहकशाँ' में मेरा नाविल 'बाज़ारे हुस्न' बिलतरतीब निकल सके। मुमकिन है कि इसके निकलने से पर्चे की इशाअत[1] पर कुछ असर पड़े। यह नाविल कोई तीन सौ सुफ़हात का है। इसके लिखने में मैंने अपनी कोई कोशिश उठा नहीं रक्खी। किताब की सूरत में अब तक इसलिये नहीं निकाल सका कि मुझे इतनी फुरसत ही नहीं मिलती कि तमाम-ओ-कमाल[2] एक बार साफ़ कर सकूं। माहवार दस बीस सफ़े तो मुमकिन हैं, मगर यकबारगी 300 सुफ़हात का ख़याल करके हौसला छूट जाता है। मगर जब तक 'कहकशाँ' की इशाअत माकूल न हो जाय नाविल निकालने का ख़याल क़ब्ल-अज़-वक़्त[3] मालूम होता है।

बारिश नहीं हुई। क़हत का सामान है। उम्मीद है कि आप बख़ैरोआफ़ियत होंगे। सैयद मुमताज़ अली साहिब की ख़िदमत में आदाबे दस्तबस्ता कह दें। अगर किसी वजह से 'कहकशाँ' में न निकल सके तो यह मज़मून वापस फ़रमाइयेगा। 'तहज़ीब' में इसे नहीं देना चाहता।

नियाज़मंद, धनपत राय।

1 प्रचार, 2 पूरे का पूरा, 3 असमय।



गोरखपुर, 29 जुलाई, 1918

बरादरम,

तसलीम। कार्ड के लिए शुक्रिया। कलकत्ते से पोद्दार महाशय का ख़त आया है। वह कहते हैं कागज़ रोज़ कुछ न कुछ गिर रहा है। इसी वजह से वह ख़रीदने में तअम्मुल (ढील देर) कर रहे हैं। इसी वजह से मैंने भी उजलत नहीं की कि शायद दस पाँच रुपये की बचत हो जाये। मगर आज मैं लिख देता हूं कि जिस भाव मिले फ़ौरन भेज दो। क़िस्से तलाश करके कल परसों तक भेजूँगा। जब तक खुदाई इंसाफ़ नक़्ल करायें।

ज़माना के लिए मैंने माटरलिंक का एक ड्रामा जो तक़रीबन् ज़माना के तीस सुफ़हात होगा तर्जुमा किया है। अनक़रीब इरसाल करूँगा। आजकल माटरलिंक पर एक मुख्तसर-सा दीबाचा लिख रहा हूँ। काम मुशकिल है। मुहलत नहीं। मुंशी नौबत राय पर आपके यहाँ जो मसाला है उसे रवाना कर दीजिए तो हफ़्ते अशरे में उससे भी छुट्टी पा जाऊँ। उम्मीद कि आप मय अयाल ओ अतफ़ाल (बाल-बच्चों समेत) बख़ैरियत होंगे। मेरे बाल-बच्चे भी यहाँ आ गये। वस्सलाम।

नियाज़मन्द धनपत राय।



गोरखपुर. 22 अगस्त, 1918

भाईजान,

तसलीम। क़िस्सा इरसाले ख़िदमत[1] है। उम्मीद कि आप अच्छी तरह होंगे। यहाँ आजक़ल फ़सली बुखार की शिकायत है। घर के दो आदमी बीमार हैं।

बहुत अरसा हुआ मैंने हिसाबों की तफ़सील लिखी थी और आपसे इलतिजा की कि उसे नोट फ़र्मा लीजियेगा। ग़ालिबन आपने नोट नहीं किया। उस वक़्त 63 रुपये होते थे। इसके बाद मुझे 30 रुपये वसूल हुए। लेकिन 5 रुपये का और इज़ाफ़ा हुआ। इस तरह 38 रुपये रह गये। 5 रुपये मुझे गर्मियों की तातील में बमद पार्चेजात मिले। इसे वज़ा[2] करने के बाद 33 रुपये रह गये। अब यह मज़मून जाता है। 5 रुपये इसके भी महसूब फ़रमाइये। तो फिर 38 रुपये के 38 रुपये रह जायेंगे।

'प्रेम पचीसी' बेहतर है लखनऊ ही में छपवा लीजिये। शायद वहाँ छपाई का निर्ख भी कुछ कम हो। महसूल का ज़ायद ख़र्च शायद इस तरह निकल आये।

यह मज़मून मैंने साफ़ नहीं किया। बहुत तूल है। अगर ग़लतियों का ज़्यादा एहतमाल[3] हो तो मुझे कापी भेज दीजिएगा। देख लूँगा। उम्मीद है कि बच्चे अच्छी तरह होंगे।

(अंग्रेजी में) क्या आपके पास शेक्सपियर का Twelfth Night है ?

नियाज़मंद, धनपत राय।

1. सेवा में प्रेषित, 2. वसूल, 3. डर।

●●

गोरखपुर, 4 सितंबर, 1918

भाईजान,

तसलीम। हज़ार-हज़ार शुक्रिया। भला मुझ ग़रीब मुदर्रिस की याद अभी तक हुज़ूर के दिल में बाक़ी तो है। यह आपकी ख़ता नहीं, ज़माने की हवा से आप भी नहीं बच सकते। और न मुझे इसका दावा है। मन्सब[1] और सरवत[2] का हक़ अव्वल है और जो महज़ दोस्त है और कुछ नहीं उनका सानी[3]! शिकायत करे वह गंवार। बुरा न मानिएगा।

वार जर्नल के मुताल्लिक़। मुझे यहाँ मय मकान के सौ रुपये मिलते हैं। इलाहाबाद में एक सौ बीस पर जाना मेरे लिए बेसूद है। और मैं बदक़िस्मती से इसे क़ौमी काम नहीं समझता। मुतर्जमी[4] उम्मीदवारों का काम है जो अख़बारनवीसी से बिल्कुल अलग है। मुझे इस काम से मुआफ़ रखिए। हाँ मैंने उसमानिया यूनिवर्सिटी में दरख़्वास्त दी है। अगर आप मिस्टर हैदरी पर मेरी बाबत कोई असर डाल सकें तो यह आपकी दोस्तनवाज़ी[5] होगी। हालांकि मुझे उम्मीद नहीं है कि हैदराबाद में मेरा कोई पुरसां होगा।

प्रेम बत्तीसी की किताबत ज़रूर होनी चाहिए। मुसन्निफ़[6] और पबलिशर दोनों जुदा-जुदा होते हैं लेकिन मैं इस कुल्लिये[7] से मुस्तसना[8] हूँ। खौफ़ सिर्फ़ यही है कि दफ़्तर ज़माना जिस काम में हाथ लगाता है उसका अंजाम उस वक़्त होता है जब उससे कोई मसर्रत[9] नहीं होती। आज हाथ लगा और किताब निकली सन् 22 में ! बल्कि शायद इससे भी परे। अगर आप एक जनवरी को किताब मेरे हाथ में दे दें यानी इसका हिस्सा अव्वल तो मैं इसे छपवाने पर तैयार हूँ। इसका तख़मीना मेरे पास भिजवा दीजिए। मिस्तर 21 सतरों का रखिएगा और सोलह क़िस्से रहेंगे। रुपया मैं इन्दुत्तलब[10] भेज दूंगा। फ़िलहाल ज़माना पर मेरा जो कुछ आता है वह पाँच जुज़ की किताबत के लिए काफ़ी होना चाहिए।

ज़माना के लिए बेशक इधर कुछ नहीं लिख सका। कोर्स का मुतालआ[11] सोहाने रूह[12] है और कुछ यह अम्र भी माने होता है कि ज़माना में अब ज़िन्दादिली नहीं बाक़ी रही। वह किसी नये रक़ीब[13] के लिए जगह ख़ाली करता हुआ मालूम होता है। ज़माना में अब दिल नहीं है, सिर्फ़ क़ालिब[14] है। ज़्यादा वस्सलाम।

नियाज़मन्द धनपत राय।

1. पद; ओहदा, 2. धन-दौलत, 3. दूसरा, 4. तर्जमा; अनुवाद, 5. दोस्त को अपनाना, 6. लेखक, 7. क़ायदे, 8. मुक्त, 9. खुशी, 10. तलब करने पर, 11. अध्ययन, 12. आत्मा को कष्ट पहुँचाने वाला, 13. प्रतिद्वंद्वी, 14. ढाँचा।

●●

गोरखपुर, 23 सितम्बर, 1918

भाईजान,

तसलीम। एक हफ़्ते में हुक्म की तामील होगी। लिख रहा हूँ। प्रेम बत्तीसी के

मुताल्लिक़ भी एक दो हफ़्ते बाद तसफ़िया करूँगा। अभी लाहौर के एक मतबे से ख़त-किताबत कर रहा हूँ। अगर उससे मुआमला तय हो गया तो मुझे दर्द सर से निजात हो जायेगी। बाज़ारे हुस्न के मुताल्लिक़ भी गुफ़्तगू हो रही है। इसका हिन्दी एडीशन दस फ़ार्म छप चुका है।

दसहरे में कैसे आऊँ। अब तो ज़िन्दगी बाक़ी है तो मई में दर्शन करूँगा। यहाँ हम लोग बख़ैरियत हैं। उम्मीद है कि आपके यहाँ सब ख़ैर-ओ-आफ़ियत होगी। बुख़ार का ज़ोर है। बारिश ग़ायब। क़हत[1] (अकाल) मौजूद। सर्दी शुरू हो गयी। काम करने का मौसम आ गया। वस्सलाम।

यह टिकटिक कौन साहब हैं। मेरी घड़ी। ख़ूब है। कहीं मिस्टर सरन तो नहीं।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 27 सितम्बर, 1918

बरादरम,

तसलीम। दोनों कार्ड मिले। मगर क्या करूँ। मजबूर हूँ। कोई मज़मून तैयार नहीं है, वर्ना बवापसी डाक भेज देता। मगर वायदा करता हूँ कि यह मज़मून जो लिख रहा हूँ, 'ज़माना' ही को दूँगा। मेरे नाविल के छपने का लाहौर में इन्तज़ाम हुआ जाता है। अब जो देर है, वह मेरी जानिब से। ग़ालिबन 'प्रेम बत्तीसी' भी वहीं छपेगी। मेरे दो क़िस्से 'ज़माना' में निकल चुके हैं, तीसरा भेजने वाला हूँ। 10 रुपये उन दोनों के और 10 रुपये इसके मेरे हिसाब में दर्ज करा दीजियेगा, और अगर कोई अम्र माने न हो तो अक्तूबर में रवाना फ़रमाइयेगा। क्योंकि मुझे कई ज़रूरतें दरपेश हैं। बाक़ी सब ख़ैरियत है, उम्मीद है कि आप भी मय अयाल ख़ुश होंगे।



नियाज़मंद धनपत राय।



गोरखपुर, 27 अक्तूबर, 1918

भाईजान,

तसलीम। कई दिन हुए आपका ख़त आया। दिल को तसकीन हुई। बाबू रामसरन की बीमारी का हाल मालूम करके अफ़सोस हुआ। ग़ालिबन् अब अच्छे हो गये होंगे। अख़बारों में तो कानपुर की कैफ़ियत देख देखकर जी काँप उठता है। परमात्मा आप लोगों की रक्षा करें। मैं भी यहाँ बहुत परीशान रहा। मेरे सिवा सारा घर पड़ा हुआ था। खाना तक अपने हाथों से बनाना पड़ता था। अभी तक कुछ-कुछ कसर बाक़ी है। सबको खाँसी आ रही है। अगर मैं कानपुर गया होता तो यहाँ लोग बिन मारे मर जाते। आपने प्रेम बतीसी की इशाअत के मुताल्लिक़ क्या तजवीज़ सोची थी वह न मालूम हुई। हिस्सा अव्वल के लिए मैंने क़िस्सों का इंतख़ाब (चुनाव, चयन) कर लिया है। लेकिन इशाअत की क्या सूरत होगी। मुफ़स्सल लिखिएगा तो मैं यहाँ से वह मुसव्वदे भेज दूँ जो ज़माना में नहीं छपे हैं। ज़माना के लिए हर महीने में तो क़िस्सा लिखना मुशकिल है लेकिन

कोशिश करूँगा कि हर दूसरे माह ज़रूर लिखूँ। सुबह के डेढ़ दो घण्टे लिटररी काम करता हूँ। बाक़ी वक़्त ग़पशप, अख़बार और कुतुब में सर्फ़ होता है। अब सुबह का वक़्त भी आधा कोर्स की किताबों की नज्र (भेंट) होता है। एक घंटा रोज़ में क्या-क्या करूँ। हिन्दी वाले अलग तक़ाज़ा करते हैं। नाविल शुरू कर रखा है जो शायद महीने में चार-पाँच सुफ़हात से ज़्यादा नहीं चलता। कहानियाँ भी लिखता जाता हूँ। और एक कहानी दस दिन से कम में तैयार नहीं होती। यही वुजूहात हैं कि ज़्यादा नहीं लिख सकता। इम्तहान से निबटकर शायद ज़्यादा काम कर सकूँ। क़िस्सों के मुताल्लिक़ अपनी-अपनी पसन्द है। यहाँ एक साहब ने जो मेरे दोस्त और दूर के अज़ीज़ होते हैं और जो डिप्टी कलक्टरी पर मुक़र्रर हो गये हैं 'मरहम' इतना पसन्द किया है कि उसका अंग्रेज़ी तर्जुमा कर रहे हैं।

और क्या अर्ज़ करूँ। ज़माना वक़्त पर निकल रहा है इसके लिए आपको मुबारकबाद देता हूँ। उम्मीद है कि बच्चे बख़ैरियत होंगे। बाबू ग़ामसरन से मेरा सलाम कहिएगा।

आपका, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 13 नवम्बर, 1918

भाईजान,

तसलीम। ग़ालिबन् दो हफ़्ते से आपका कोई ख़त नहीं आया। कानपुर में बुख़ार का ज़ोर है। मुझे अन्देशा हो रहा है कि नसीबे दुश्मनां कहीं तबीयत तो नासाज़ नहीं हो गयी। बराहे करम मिज़ाज से मुत्तिला कीजिए। ज़माना के लिए मज़मून लिख रखा है, मौक़ा मिले तो साफ़ कर दूँ। जनवरी नम्बर में निकल सकेगा।

बाक़ी सब ख़ैरियत है। प्रेम बत्तीसी के मुताल्लिक़ आपने न जाने क्या तजवीज़ की थी। उससे भी इत्तला न दी। उम्मीद कि साहिबज़ादे खुश व खुर्रम होंगे। वस्सलाम।

धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 20 दिसंबर, 1918

भाईजान,

तसलीम। इधर कोई चिट्ठी नहीं आयी। उम्मीद कि आप बख़ैर-ओ-आफ़ियत होंगे। मज़मून लिख चुका हूँ। बड़े दिन की तातील में साफ़ कर डालूँगा। सुर्खी (शीर्षक) है 'दौरे क़दीम और जदीद'।

प्रेम बत्तीसी की किताबत शुरू हुई या नहीं। कहकशांवाले उसे शाया करने पर मुस्तैद हैं। अगर आपके यहाँ इस वक़्त सुभीता न हो तो कहिए उन्हीं के गले मढ़ूँ। मगर मुसव्वदे सबके सब आप ही को देने पड़ेंगे। जवाबे ख़त का इंतज़ार करूँगा।

मैं आपके शायरी वाले मज़मून की दाद देना भूल गया। इक़बाल पर आपने जितनी जामियत (योग्यता, विद्वता) से बहस की है उतनी अब तक और कहीं नजर न आयी थी।

आपका, धनपत राय

●●

गोरखपुर, 30 दिसम्बर, 1918

भाईजान,

तसलीम। आप ग़ालिबन् दिल्ली से आ गये होंगे। आपका लिफ़ाफ़ा मिला था। मालवीयजी से मेरे मुताल्लिक़ आपने जो कुछ सिफ़ारिश की है उसका मशकूर हूँ। ज़माना की हालत में सरीह[1] तरक़्क़ी नज़र आ रही है। और इसकी मौजूदा पालिसी बिल्कुल रफ़्तारे ज़माना के मुताबिक़ है। मज़ामीन का पाया भी ऊँचा हो गया है। ज़ाहिरी खामियाँ अलबत्ता कुछ बाक़ी हैं जो ग़ालिबन् बाज़ार की हालत के साथ सुधर जायेंगी। बेहतर है प्रेम बत्तीसी आप ही शाया करें।

आज की डाक से एक मज़मून भेजता हूं। एक नज़्म भी है जो मेरे क़ाबिल दोस्त बाबू रघुपति सहाय ने भगवत् गीता की दसवीं मंज़िल से तर्जुमा की है। यह इमसाल डिप्टी कलक्टरी में नामज़द हो गये हैं। इल्म-दोस्त आदमी हैं। शेर-ओ-सुख़न का चर्चा पसन्द है। इनका एक मज़मून ग़ालिब पर ईस्ट-वेस्ट जून में छपा था। और वह बहुत क़ाबलियत से लिखा गया था। यह मेरी प्रेम पचीसी के मुन्तख़ब[2] हिस्सों को अंग्रेजी में करने का इरादा कर रहे हैं और 'मरहम' का तर्जुमा शुरू भी किया है। हाँ इस नज़्म में कुछ नौमश्क़ी[3] की फ़रोगुज़ाश्तें[4] रह गयी हैं। क्या अच्छा हो कि आप मुंशी नौबत राय या किसी दूसरे उस्ताद से इसकी तसहीह[5] करा लें। मेरा मज़मून फ़रवरी में दें चाहे मार्च में। अब मुझे इम्तहान की फ़िक्र हो रही है। हालाँकि कामयाबी का यक़ीन करता हूँ। और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है। उम्मीद है कि बाल-बच्चे अच्छी तरह होंगे। यहाँ भी सब ख़ैरियत है।

मेरी आमद की कोई सूरत नहीं है और न तमन्ना है। आपसे बतीबे ख़ातिर[6] कहता हूं। खत का जवाब दीजिएगा। वस्सलाम।

आपका, धनपत राय।

1 माफ़, 2 चुने हुए, 3. नौसिखिएपन, 4. खामियाँ; भूल-चूक, 5. संशोधन, 6 सच।



तिथि नहीं, अनुमानतः मार्च, 1918

भाई साहब,

तसलीम। एक कार्ड भेज चुका हूँ। आज यह क़िस्सा इरसाले ख़िदमत है।

आपके ख़त को पढ़कर निहायत अफ़सोस हुआ। मुझे आपसे कमाल हमदर्दी है। काश मुझसे कुछ मदद हो सकती।

राणा जंग बहादुर की सवानेहउम्री लिखी है। कल परसों तक पूरी हो जायगी। साफ़ न करूंगा क्योंकि कई दिन की देर हो जायगी। फ़रवरी के 'ज़माना' में तसहीह की बहुत ज़रूरत है।

मेरे मज़मून के आजकल बहुत चोर हो रहे हैं। मुमकिन है आपको ज़्यादा नज़र आते हों। मुझे शिवशम्भू देखने का मौक़ा मिला। उसे गौरीशंकर लाल अख़्तर निकालते हैं। हज़रत ने मेरी इबारत के पूरे-पूरे पैरेग्राफ़ नक़ल कर लिये हैं। जनवरी, फ़र्वरी, मार्च, तीनों नम्बरों में यही हाल है। ऊटपटांग क़िस्सा लिखकर उसे सर्क़े[1] के लिबास से सजाने की कोशिश की है। फ़र्वरी के ज़र्खीरा, में 'ज़रीफुत्तबा' एक किस्सा है। लखनऊ के एक साहब ने लिखा है। इसे पढ़िये और मेरा क़िस्सा 'मनावन' पढ़िये, साफ़ चर्बा मालूम होगा। सिर्फ़

जुज़्ज़ियात[2] में रद्दोबदल कर दिया गया है। दिमाग़ पर ज़ोर न डाला चाहें और मज़मूननिगार बनने का ख़ब्त या जुनून सवार।

छोटक की शादी के दो एक जगह से तज़किरे हो रहे हैं। शायद तातील में हो जाये।

गर्मी सख़्त पड़ रही है।

'प्रेम पचीसी' का इश्तहार फ़र्वरी के 'ज़माना' में भी नहीं है। क्यों ? क्या ज़रूरत से ज़्यादा जिल्दें फ़रोख़्त हो गयीं ?

कहिये तो इन चोरियों पर एक छोटा-सा शिगूफ़ा छोड़ूं ? यह हज़रात जिज़बिज़[3] होंगे। हुआ करें।

शाकिर का पता नहीं है। मालूम नहीं इस दुनिया में हैं या उस दुनिया में।

मैं कानपुर 20 मई तक शायद आ जाऊँ। और दो-एक रोज़ लुत्फ़े सोहबत उठाऊँगा।

बाकी सब ख़ैरियत है।

आपका धनपत राय।

1. चोरी, 2 छोटी-छोटी बातें, 3. सिटपिटा जायेंगे।



गोरखपुर, अप्रैल, 1918

भाईजान,

कल आपका लिफ़ाफ़ा मिला। मिस्टर अब्दुल्ला की राय पर अमल करूँगा हालांकि Supernatural element इन्सान की ज़िन्दगी में दाखिल है।

प्रेमबत्तीसी की इशाअत[1] के लिए आपने जो सूरत सोची है उससे जल्द मुत्तिला कीजिए। ऐसा न हो कि मैं पाबन्द[2] हो जाऊँ। मैं हर तरह से राज़ी हूं।

नाविल के लिए मेरी राय में लाहौर ही बेहतर रहेगा। वहाँ से मुझे कुछ नक़्द मिल जायेगा जिसकी मुझे ज़रूरत है। आप क्या कहते हैं, ज़िन्दगी की उम्मीद यहां भी कम है। मगर यह चाहता हूं कि या तो साथ चलें या ख़फ़ीफ़[3] सी तक़दीम[4] व ताख़ीर[5] हो। मैं आपका पेशरौ बनना चाहता हूँ। मौत की फ़िक्र मारे डालती है। कितना चाहता हूं कि परमात्मा पर भरोसा रखूँ मगर दिल मूज़ी है, समझता नहीं। किसी महात्मा की सोहबत मिले तो शायद रास्ते पर आये। यही फ़िक्र है कि मैं आज मर जाऊं तो इन बाल-बच्चों का पुरसानेहाल कौन होगा। घर में कोई ऐसा नहीं। छोटक से कोई उम्मीद नहीं रही। दोस्तों में अगर हैं तो आप और नहीं हैं तो आप; और न होगा तो मेरे बाद साल-दो साल इन बेकसों की खबर तो ले सकते हैं। इसी फ़िक्र में डूबा जाता हूँ। कुछ सरमाया जमा करने की कोशिश करता हूं। मगर कामयाबी नहीं होती। कभी किसी दूकान की कभी किसी दूसरे कारोबार की नीयत बाँधता हूं।

ज़माना का सिलसिला मैं भी क़ायम रखना चाहता हूं मगर यह भी चाहता हूं कि मेरे और आपके दरमियान क़तई बरादराना बर्ताव हो। इसे मैं अदना[6] और आला[7] की हिमाक़त से बेलौस[8] चाहता हूँ। और जब आपकी तरफ़ से ढील देखता हूँ तो मायूस हो जाता हूँ और हैरान होता हूँ कि अब कौन-सा दरवाज़ा खटखटाऊँ।

यह मज़मून जा रहा है। पसंद हो तो लिखिएगा। महज़ यही नहीं चाहता कि ज़माना में छपे बल्कि आपको पसंद भी हो।

प्रेम बत्तीसी के मुसव्वदे आप मुझसे क्या माँगते हैं। वह तो आपके फ़ाइल में हैं। हां, दस-पाँच क़िस्से जो मेरे दूसरी जगह छपे हैं वह बरवक़्त ज़रूरत मैं मुहय्या कर लूँगा। मगर मैं आपकी तजवीज़े इशाअत का मुन्तज़िर हूँ। मुफ़स्सल लिखिएगा।

हाँ, प्रेम पचीसी हिस्सा दोम की पाँच जिल्दें ववापसी डाक ज़रूर बिल ज़रूर भिजवा दीजिएगा। कई दोस्तों को देना है। वस्सलाम।

धनपत राय।

1 प्रकाशन, 2 बँध जाऊं, 3. थोड़ी-सी, 4. देर-सवेर, आगा-पीछा, 5. छोटा, 6. बड़ा, 7. पाक; मुक्त, 8 रोग से मुक्ति।



गोरखपुर, 10 जनवरी, 1919

भाईजान,

तसलीम। उम्मीद है कि आप बख़ैरियत होंगे। मज़मून और नज़्म भेजी थी। रसीद नहीं आयी। ग़ालिबन् पहुच गया होंगी। प्रेम बत्तीसी में भी काम लग गया होगा।

हम लोग बफ़ज़्ले ख़ैरियत से हैं।

एक ख़त भेज दीजिए। रफ़ए तरद्दुद हो। फ़िलहाल कोई मज़मून तैयार नहीं है वर्ना ज़रूर भेजता।

आपके इक़बाल और अकबर के तनक़ीदी (आलोचनात्मक) मज़ामीन की बड़ी तारीफ़ हो रही है। यहाँ कई साहब चाहते हैं कि यह सिलसिला जारी रहे। ए. ज. के मज़ामीन से लोगों की तसकीन नहीं होती। वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



गोरखपुर, 20 जनवरी, 1919

भाईजान,

तसलीम। ख़त मिला। मशकूर हूँ। मज़मून तो अब मैं अप्रैल तक शायद ही लिख सकूँ। बाबू रघुपति सहाय अलबत्ता लिख रहे हैं और लिखने का वादा करते हैं। इनकी नज़्म ज़रूर नज़र साहब के पास भिजवा दीजिएगा और शाया करने की भी कोशिश फ़रमाइएगा।

जनवरी नम्बर के मुताल्लिक़—यह नम्बर बहमासूरत[1] क़ाबिले इत्मीनान है, मज़ामीन बहुत अच्छे पाये हैं। ज़ाहिरी औसाफ़[2] भी मौजूद। अर्से के बाद इसकी यह सूरत देखने में आयी है। 'सुबहे उम्मीद' यक़ीनन् दबा। आपने अकबर और इक़बाल पर ऐसे मज़ामीन लिखे। अगर यह सिलसिला क़ायम रह सके तो पर्चा ख़ासतौर पर मक़बूल[3] हो। मेरा इरादा ख़ुद इस क़िस्म के मज़ामीन लिखने का है लेकिन अभी नहीं। अप्रैल के बाद।

और क्या लिखूँ। बच्चे अच्छी तरह हैं।

आप बददुआएँ देते हैं। डरता हूँ कि कहीं उनका असर न हो। उम्मीद है कि आप

भी मय अयाल बख़ैर-ओ-आफ़ियत होंगे। आपके ख़याल में 100 सुफ़हात का माहवार रिसाला आइवरीफ़ेस कागज़ और उम्दा किताबत के साथ कितने सरमाये में एक साल तक चल सकेगा। एक दोस्त के इसरार से यह बात दरियाफ़्त करता हूँ।

अप्रैल में मेरा इम्तहान होगा। वापसी शायद कानपुर से हो तो मुलाक़ात होगी। और क्या अर्ज़ करूँ।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1. हर तरह, 2. गुण, 3. पसंद।



गोरखपुर, 28 जनवरी, 1919

भाईजान,

तसलीम। कार्ड का शुक्रिया। ताज्जुब है कि रघुपति सहाय का मज़मून अब तक आपके पास नहीं पहुँचा। मैंने उसे यहाँ से 23 या 24 को भेज दिया है। रसीद से मुत्तिला कीजिएगा। वर्ना तरद्दुद रहेगा। इंशा अल्ला अप्रैल में वापसी बराहे कानपुर होगी। हाँ, सुरूर और नज़र पर ज़रूर लिखिए। बाबू रघुपति सहाय का दूसरा मज़मून मीर पर जल्द जावेगा। आजकल वह कानवोकेशन के जलसे में गये हुए हैं। बच्चे अच्छी तरह हैं। उम्मीद है कि आप मय अयाल खुश होंगे। आज कई दिन से अब्र है।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 31 जनवरी, 1919

भाईजान,

तसलीम। बाबू रघुपति सहाय के मज़मून की रसीद अब तक नहीं मिली। तरद्दुद है। बराहे करम जल्द इससे मुत्तिला कीजिए और उसके मुताल्लिक़ अपनी राय भी तहरीर फ़रमाइए। वह इसरार कर रहे हैं। बाक़ी सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 7 फ़रवरी, 1919

बरादरम,

तसलीम। ख़त मिला। मशकूर हूँ। इसके पहले मज़मून को रसीद भी मिली थी। बाबू रघुपति सहाय आजकल कानवोकेशन के जल्से में इलाहाबाद गये हुए हैं। उनका पता है : आनन्द भवन, गोरखपुर। आदमी सुखनफ़हम[1] हैं। दमाग़ फ़लसफ़ियाना है। मुस्तैद हैं। मगर ज़रा मुतलव्विन[2] हैं। इलाहाबाद से आकर वह मीर का मज़मून ख़त्म कर देंगे। और मैं कोशिश करूँगा कि वह कोई और मज़मून भी लिखें। आज आपके मैनेजर साहब के ख़त से मालूम हुआ कि प्रेम पचीसी हिस्सा दोम की कुल 129 जिल्दें निकली हैं। इस हिसाब से तो शायद किताब मेरी ज़िन्दगी में भी सब न निकल सकेगी। दूसरे अख़बारों में इश्तहार देने से कुछ फ़ायदा हो सके तो कहकशां और हिन्दोस्तान को आज़माना चाहिए। आपकी क्या राय है। मैं अप्रैल में इलाहाबाद से लौटते हुए कानपुर आने की

कोशिश करूँगा। और गर्मियों में तो बइत्मीनान मुलाक़ात होगी।

आपका, धनपत राय।

1 सहृदय; काव्य-मर्मज्ञ, 2. झक्की

●●

गोरखपुर, 14 फ़रवरी, 1919

भाईजान,

तसलीम। कल कार्ड मिला। बाबू रघुपति सहाय का पता लिखने में ग़लती हुई। आनन्द भवन के बजाय लक्ष्मी भवन होना चाहिए।

अगर रूठी रानी और हज़रते सहर की शकुन्तला तैयार हों तो एक एक जिल्द मरहमत (इनायत) कीजिए। बाबू रघुपति सहाय शायद रूठी रानी का तर्जुमा अंग्रेजी में करना चाहते हैं। मीर पर उनका मज़मून एक हफ़्ते में तैयार हो जायेगा।

बाक़ी खैरियत है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 20 मार्च, 1919

मुशिफ़क़ीओ मुकर्रमे बन्दा,

तसलीम। मशकूर हूँ। सख़्त नादिम[1] हूँ कि अब तक 'बाज़ारे हुस्न' के मुताल्लिक़ ईफ़ाएवादा[2] न कर सका। बार बार कोशिश की कि मुस्तक़िल तौर पर साफ़ कर डालूँ लेकिन एक न एक रुकावट आ जाती है। किताब एक चौथाई साफ़ करके पड़ी हुई है। अब तो 15 अप्रैल तक मुझे मरने की फुर्सत नहीं है। इंशा अल्लाह 1 मई तक। जिस 'कहकशाँ' में 'चम्पा' का क़िस्सा छपा था वह मेरी फ़ाइल में नहीं है। कोई साहब उड़ा ले गये। हरचन्द तलाश किया मगर बेसूद। मजबूर हूँ। 'कहकशाँ' में अबकी रसाइले[3] पर तनक़ीद मुझे बेहद पसन्द आई। मगर उसका टाइटल का डिज़ाइन बावजूद मिस्टर चुग़ताई के तबाज़ाद[4] होने के मुझे कुछ नहीं जँचता। शायद यह मेरी नाशनासी[5] का बाइस है। मज़ामीन भी मई ही में लिखूँगा। ताख़ीर के लिए मुआफ़ी का तालिब हूँ।

ख़ैरअन्देश, धनपत राय।

1 लज्जित, 2. वादा पूरा, 3. पत्रिकाओं, 4. मौलिक, 5 जानकारी की कमी।

●●

गोरखपुर, 29 मार्च, 1919

भाईजान,

अर्से से आपने ख़बर नहीं ली। उम्मीद कि आप खुश होंगे। रुपये मिले। बहुत मशकूर हूँ। मैं 1 को इलाहाबाद जा रहा हूँ। मेरा पता यह होगा :

बाबू कृपा शंकर, वकील, कटरा, इलाहाबाद

आपका, धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल गोरखपुर, 2 अप्रैल, 1919

जनाबे मुशिफ़क़ी,

तसलीम। मुफ़स्सल ख़त मिला। 'प्रेम बत्तीसी' की तबाअत शुरू नहीं हुई। काग़ज़ से मजबूरी है। मुझे उम्मीद है कि आप ताहद्दे इमकाँ[1] करेंगे। तसावीर का मैं बहुत गिरवीदा[2] नहीं हूँ। इससे बच्चे खुश हो सकते हैं। मगर अहले मज़ाक को तसावीर की ज़रूरत नहीं। मैं भी इस झमेले में नहीं पड़ना चाहता।

अपने क़सम[3] का मजमूआ ज़रूर शाया कीजिये। मुझे यक़ीन है कुबूल होगा। कल की डाक से 'बाज़ारे हुस्न' बज़रिये रजिस्टर्ड पैकेट ख़िदमत में पहुँचेगा। खत्म हो गया। पैकेट बना हुआ तैयार है। आज डाकखाना बन्द है। आप इसे एक बार सरसरी तौर पर देख जायें और तब इसके मुताल्लिक अपनी राय से मुत्तला फरमावें। अबकी हिन्दी के मशहूर रिसाले 'सरस्वती' में इस पर एक मुफ़स्सल तबसरा निकला है। अगर वहाँ कहीं पर्चा मिले तो मार्च नम्बर में देखें।

'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल के 12 फर्मे छप चुके हैं। 'शबाबे' उर्दू, ने मुझे याद किया है। लेकिन यहाँ फुर्सत कहाँ। बन पड़ेगा तो कुछ लिखूँगा। 'कहकशाँ' के लिए अभी तक कोई मज़मून नहीं लिख सका। मगर जल्दी शुरू करूँगा।

जवाब से जल्द सरफ़राज़ फ़रमाइयेगा।

नियाज़मंद, धनपत राय।

1. यथासंभव, 2. प्रेमी, 3. क़िस्सों।



कटरा, इलाहाबाद, 10 अप्रैल, 1919

भाईजान,

तसलीम। मुझे यहाँ से 16 की शाम को फुर्सत मिलेगी और 17 को मुझे गोरखपुर पहुँचना लाज़िमी है, इसलिए मैं अबकी बार कानपूर न आ सकूँगा। मुलाक़ात का इश्तियाक़ (शौक) अज़हद (बेहद) है। यह दस दिन की रुख़सत सिर्फ़ इम्तहान की नज़्र हो गयी। अब तो बशर्ते ख़ैरियत मई में इत्मीनान से मुलाक़ात होगी। उम्मीद कि आप मय अयाल खुश-ओ-खुर्रम होंगे।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 19 अप्रैल, 1919

भाईजान,

तसलीम। कल गोरखपुर पहुँच गया। पंद्रह दिन की रुख़सत ली थी। पूरे पंद्रह दिन इम्तहान में लग गये। अब लिटररी काम करूँगा। ज़रा दो एक रोज़ दिमाग़ को आराम दे लूँ।

अख़बार में आपकी सरगर्मियों की ख़बरें पढ़कर बेइन्तहा महज़ूज़ (खुश) होता हूँ और रश्क करता हूँ।

उम्मीद कि आप मय बाल-बच्चों के बख़ैर-ओ-आफ़ियत होंगे। प्रेम बत्तीसी कुछ और आगे चली या नहीं।

मेरे लड़के-वाले तो आजकल नाना साहब के यहाँ हैं। बाबू रघुपति सहाय का मज़मून रिसाले में दर्ज ही नहीं। वह कई बार पूछ चुके हैं। यह निकल जाये तो उनसे कुछ और लिखने को कहूँ।

आपका, धनपत राय।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 19 अप्रैल, 1919

मुशिफ़क़ीओ मुकर्रमबन्दा,

तसलीम। कल इलाहाबाद से वापस आया। 'कहकशाँ' मिला। आपके 'फ़तहे मुहब्बत' की दाद देता हूँ। मुहब्बत का नश्वोनुमा[1] खूब है। बिल्कुल हस्वे फ़ितरत[2]। आप मुझे मजबूर कर रहे हैं कि छोटी कहानियाँ लिखना छोड़ दूँ।

अब मज़ामीन और 'बाज़ारे हुस्न' में लिपटा हूँ। खुदा करे लाहौर में अमन हो। एक जिल्द 'माहे अजम' बज़रिये वी . पी. क़िस्म अव्वल इरसाल फ़रमायें। मशकूर हूँगा।

ख़ैरअन्देश, धनपत राय।

1 उपजना-बढ़ना, 2 स्वाभाविक।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 24 अप्रैल, 1919

भाईजान,

तसलीम। आज कार्ड मिला। ज़रा नाना साहब के पास चला गया था।

आप फ़रमाते हैं तुम्हारी लाइन यह नहीं है। मैं तसलीम करता हूँ। मगर चारा क्या है। मैं कुर्बानी को अपनी ज़ात तक रखना चाहता हूँ। अयाल को इस चक्की में पीसना नहीं चाहता। फ़िलहाल मेरी रोटियाँ मिली जाती हैं। कुछ लिटररी काम कर लेता हूँ। यह कुर्बानी है। खुदा और दुनियाए दूँ, क़ौम और ज़ात, दोनों को साथ लिये हुए हूँ। मैं लिटररी काम को थोड़ी कुर्बानी नहीं समझता। जो शख़्स अपनी फालतू आमदनी का एक हिस्सा किसी मदरसे के लिये ख़ैरात कर देता है। वह हमारी कुर्बानी का सही अंदाज़ा नहीं कर सकता जो अपने ऊपर सोना तक हराम कर लेता है। आपने मेरे लिये कोई ऐसी तजवीज़ नहीं निकाली जिसमें फिक्रे मुआश से आज़ाद होकर मैं ज़िंदगी काटता। मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि इससे ज़्यादा नफ़्सकुशी मेरे इमकान से बाहर है और आपने जब कभी कोई तजवीज़ की तो वही हवाई। आकाशी गुआश से मुझे इतमीनान नहीं होता। ज़रूरियात के लिये मुसतक़िल सूरत चाहिये। तकल्लुफ़ात के लिये आकाशी सूरत हो तो मुज़ायक़ा नहीं। मुझे फिलहाल सौ रुपये मिल जाते हैं। अगर साल में एक नाविल लिखूँ तो शायद चार-पाँच सौ रुपये और मिल जायँ। इस तरह से मैं अपने पसमांदगान के लिये दस साल में शायद 4-5 हज़ार रुपये छोड़ मरूँ। अख़बारी ज़िन्दगी में किस क़दर तो फ़िक्र और झंझट, उस पर पंचास-साठ रुपये से ज़्यादा कोई देने वाला नहीं। अभी हमारे यहाँ वह ज़माना नहीं आया कि जर्नलिज़्म को Career बनाया जा सके। आप 'लीडर' की तरह कोई कम्पनी क़ायम करें। वह माहवार रिसाला, रोज़ाना अखबार निकाले, कारकुनों को माकुल तनख़्वाह दें, तब देखिये मैं कितनी खुशी से दौड़ता हूँ। मगर यहाँ तो यह हाल है कि 'अवध अख़बार' भी ग्रैजुएट मुतरज्जिम तलाश करता है तो उसकी तनख्वाह सौ रुपया

बतलाता है।

मैं अगर इम्तहान में पास हो गया तो किसी aided स्कूल में 125 रुपये का हेडमास्टर हो जाऊँगा। वहाँ गोशए आफ़ियत में बैठा हुआ अपना क़लम घिसता रहूँगा। साल में एक क़िस्सा ज़रूर लिख डालूँगा। यही क़ौमी ख़िदमत होगी। मज़ामीन जो क़लम से निकलेंगे वह भी ख़िदमत ही के मद में डालिये।

अगर आप इससे बेहतर कोई सूरत निकाल सकते हैं तो मैं हाज़िर हूँ। वर्ना मुझे अपने ढर्रे पर चलने दीजिये। 'शाकिर' और 'साबिर' बनना मेरे लिये मुमकिन नहीं।

क्या हौसला अख़बार और लिटररी काम का हो। 'प्रेम पचीसी' हिस्सा अव्वल को छपे हुए चार साल हुए मगर अभी तक निस्फ़ पड़ी हुई है। हिस्सा दोयम की मुश्किल से 150 जिल्दें बिकीं। मैं इससे बेहतर नहीं लिख सकता, और बेहतर कामयाबी की उम्मीद नहीं रखता।

आप यह सुनकर खुश होंगे कि मेरे हिन्दी नाविल ने खूब शोहरत हासिल की और अक्सर नक़्क़ादों ने उसे हिन्दी ज़बान का बेहतरीन नाविल कहा है। यह 'बाज़ारे हुस्न' का तर्जुमा है। 'बाज़ारे हुस्न' अब साफ़ कर रहा हूँ।

उम्मीद है कि आप बख़ैरो आफ़ियत होंगे। मई में ज़रूर हाज़िर हूँगा।

आपका धनपत राय।



रामपुर, 15 मई, 1919

भाईजान,

तसलीम। मैंने गोरखपुर से एक ख़त लिखा था। 3 मई को लाला तेजनरायन लाल की शादी में यहाँ चला आया। 18 को यहाँ से चलने का क़स्द है। इस दरमियान में मुझ पर कई सानिहे (मुसीबतें) गुज़रे। मेरी हमशीरा[2] (बहन) साहबा का 4 मई को इंतक़ाल हो गया। मेरे एक नौजवान साले का 5 मई को। इसलिए मिर्ज़ापुर में दो-चार दिन रहकर इलाहाबाद होता हुआ आख़िर मई तक कानपुर पहुँचूँगा। दो माह की तातील में पंद्रह दिन बेकार गये और शायद दस दिन और भी जायें। बजुज़ ख़त लिखने के और कोई काम नहीं हो सका। अगर आपको इस ख़त का जवाब देने की ख़ास ज़रूरत हो तो इस पते से दीजिएगा। ज़्यादा वस्सलाम।

धनपत राय।

मार्फ़त मुंशी शंभू प्रसाद साहब, मुख़्तार, कलक्टरी, बनारस कैण्ट



कानपुर, 27 मई, 1919

जनाबे मुकर्रम-ओ-मुशफ़िक़े मन,

तसलीम। मुझे कई दिन हुए आपका कार्ड मिला था। उस वक़्त मैं मौज़े रामपुर में था। कई तरद्दुदात के बाइस जवाब न दे सका। मुआफ़ फ़रमाइयेगा। इस तातील में कुछ नहीं लिख सका। इस वजह से नामीले इरशाद[1] से क़ासिर[2] हूँ। हाँ यह वायदा करता हूँ कि पन्द्रह जून तक कुछ न कुछ ज़रूर हाज़िर करूँगा। मेरा 'कहकशाँ' मालूम नहीं

कहाँ-कहाँ ठोकर खाता होगा।

'बाज़ारे हुस्न' के मुताल्लिक : आप इसे अगर हमेशा के लिये चाहते हैं तो मुझे कोई उज्र नहीं है। मैं उर्दू पब्लिक से वाक़िफ़ हूँ। यहाँ हमेशा के मानी हैं ज़्यादा से ज़्यादा तीन एडीशन और वह भी दस सालों में या इससे ज़्यादा। इसलिये मैं ऐसी शर्तें हर्गिज़ पेश नहीं कर सकता जो नामाक़ूल हों। मेरे ख़याल में पहले एडीशन के लिये आप बीस फ़ीसदी रखें और बक़िया दो एडीशनों के लिये दस फ़ी सदी। यानी कुल रक़म तीन सौ पचास रुपये होती है। यह हिसाब मैंने कुल उमूर को मद्देनज़र रखकर पेश किया है और मुझे यक़ीन है कि आपको नागवार न होगा।

आपकी मजमूए की निस्वत क्या राय है।

'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल के एक सौ बारह सफ़हात छपे हैं। अभी अस्सी सफ़हात बाक़ी हैं। हिस्सा दोयम की कितावत ख़त्म हो गयी या नहीं। काग़ज़ आजकल बेहद गराँ हो रहा है। एक तो यह काम यूँ ही नुक़सानात से पुर[3] था, उस पर ये मज़ीद[4] आफ़तें शायद इसे तवाह ही कर छोड़ें। मजबूरन नफ़ासत के ख़याल को तर्क करना पड़ेगा। मेरे ख़याल में तसनीफ़ की इशाअत को नफ़ासत पर कुर्वान न करना चाहिये।

'शबाबे उर्दू' निकला ज़रूर, मगर मेरी नज़र से नहीं गुज़रा। हज़रते तपिश ने भेजा है। कहीं गोरखपुर में पड़ा होगा। यहाँ दफ़्तर 'ज़माना' में भी इसका पता नहीं। ख़ैर, फिर देख लूँगा। उर्दू में किताबें बहुत कम बिकती हैं। मालूम नहीं यह मेरा ही तजरबा है या और लोगों का।

'प्रेम पचीसी' हिस्सा दोयम की जिल्दें अगर दरकार हों तो मैं आपके पास भेजता हूँ। किसी तरह यह एडीशन ख़त्म हो जाये तो दूसरी बार ज़्यादा एहतियात और सफ़ाई से छपवाने की कोशिश की जाय।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है। यहाँ जेठ के महीने में बारिश हो गयी। अप्रैल में दो-चार दिन गर्मी हुई थी। मगर दस मई से फिर रातें सर्द होती हैं, और दिन को भी लू का पता नहीं। इरादा था कि देहरा जाऊँ। मगर जब यहीं देहरा हो रहा है तो ख़ामख़ाह सफ़र की ज़हमत कौन उठाये। हाँ कह नहीं सकता जून क्या रंग लाये। बुझक्कड़ों का गुमान है कि जून में शिद्दत की गर्मी होगी। वस्सलाम।

धनपत राय।

1 आज्ञा पालन, 2 असमर्थ, 3 भरा हुआ, 4 अतिरिक्त।



नार्मल स्कूल गोरखपुर, 14 जुलाई, 1919

बरादरम,

तसलीम। आपके दो नवाज़िशनामे एक साथ आये। मशकूर हूँ। तवारुद[1] मज़ामीन का मुझे अफ़सोस इसलिये है कि आपका क़िस्सा अधूरा रह गया, और खुशी इसलिये कि हमारे दरमियान कोई रूहानी[2] या बातिनी[3] ताल्लुक़ ज़रूर है वर्ना औरों को वही बातें क्यों नहीं सूझतीं। पर आप अपना क़िस्सा ज़रूर तमाम करें। हर गुले रा रंगों बू दीगर[4]।

संस्कृत लिटरेचर पर लिखने का मैंने इरादा किया था। मगर उसके लिये जो मवाद जमा किया था वह सब इधर-उधर हो गया। अब बिहारी के मुताल्लिक़ कोई मज़मून

अन्क़रीब[5] भेजूँगा।

'प्रेम पचीसी' के लिये आप नक़द हिसाब कर दें तो ज़्यादा बेहतर। कुल क़ीमत पर चालीस फ़ीसदी कमीशन और सिर्फ़ रेल वज़ा कर लें। यूँ बीस रुपये निकलेंगे। क़िस्से का हिसाब मिलाकर तीस रुपये का मनीआर्डर इरसाल फ़रमा दें तो ऐन इनायत हो।

मैं अब तक आपसे अपने मज़मूनों के लिये दस रुपया लिया करता था। मुझे अब भी कोई इन्कार नहीं है। मगर चूँकि बाज़ दीगर रसाइल इससे बेहतर शरायत करने पर आमादा हैं इसलिये मुझे एहतमाल[6] है कि मेरा नफ़्स[7] कहीं इन शरायत पर फ़रेफ़्ता[8] न हो जाये और मुझे अपनी ख़्वाहिश के ख़िलाफ़ अपने अच्छे मज़ामीन उनके पास भेजने के लिये मजबूर न करे।

'सुबहे उम्मीद' के मुतवातिर खुतूत आ रहे हैं और वह मुझे पन्द्रह रुपये से बीस रुपये तक नज़्र कर रहा है। अब मुझे मजबूरन उसके शरायत मंजूर करने पड़े वर्ना आपने देखा होगा कि मैंने अब तक उसमें एक सतर भी न लिखी थी। अब किस हीले से इन्कार करूँ। यह सब दुखड़ा आपसे महज़ दिली ताल्लुक़ के बाइस कर रहा हूँ।

मैं हाशा यह नहीं कहता कि आप भी मुझे पन्द्रह रुपये दिया करें। अपने क़दीम[9] समझौते पर क़ाने[10] ओ शाकिर हूँ। पर अगर मेरे मज़ामीन 'सुबहे उम्मीद' में निकलें और मुझ जैसा सुस्त-क़लम आदमी 'कहकशाँ' में इससे भी ज़्यादा तसाहुल[11] करे तो मुझे माजूर ख़याल फ़रमाइयेगा।

मेरी वज़ा ओ क़ता[12] और शकलो-शबाहत[13] के मुताल्लिक़ आपने जो क़यास किया है उससे रूहानी ताल्लुक़ का गुमान और भी पुख़्ता हो जाता है। बेशक मेरा सिन चालीस साल है। मैं बन्द कालर का कोट और सीधा पाजामा पहनता हूँ और पगड़ी बाँधता हूँ। एक पूरबी आदमी का पहनावा फ़ेल्ट कैप है। आपने पगड़ी का गुमान क्यों किया। क्या आपको इल्क़ा[14] हुआ है। मैं अपने 15 मुसल्लमाँ उसूलों के ख़िलाफ़ अपना एक फ़ोटो भी इरसाले ख़िदमत करता हूँ इस शर्त पर कि वह बाद मुलाहज़ा वापिस कर दिया जाये। और या अगर आप बतौर एक दोस्त की यादगार के रखना चाहें तो उसका किसी आर्टिस्ट से एक बड़े पैमाने का बस्ट बनवा लें।

और क्या अर्ज करूँ।

'कहकशाँ' का इन्तज़ार है।

रवीन्द्र बाबू की कौन-कौन-सी तसनीफ़ के तर्जुमे जनाब के दफ्तर से शाया होने वाले हैं ?

अबकी 'ज़माना' जुलाई में रविन्द्र पर एक दिलचस्प मज़मून निकल रहा है। आपकी नज़र से गुज़रेगा।

जनाब क़िब्ला सैयद मुमताज़ अली साहिब की ख़िदमत में मेरा दस्तबस्ता आदाब कुबूल हो।

नियाज़मन्द, प्रेमचंद।

1. टक्कर, 2. आत्मिक, 3. छिपा हुआ, 4. हर फूल का अपना अलग रंग और बू होती है, 5. जल्द, 6. डर, 7. मन, 8. आकृष्ट, 9. पुराने, 10. संतुष्ट, 11. ढील, 12. रंग-ढंग, 13. सूरत-शकल, 14. दैवी प्रेरणा।

●●

गोरखपुर, 16 जुलाई, 1919

भाईजान,

तसलीम। जब से आया हूं आप ख़ामोश हैं। उम्मीद है कि आप खुश होंगे।

मालूम नहीं कलकत्ते से महावीर प्रसाद पोद्दार ने काग़ज़ का नमूना भेजा या नहीं। मुझे भी उन्हें याद दिलाने का ख़याल न रहा। आज याददिहानी कर रहा हूँ। कितावत तब तक जारी रहे।

मज़मून भी लिख रहा हूँ। ज़रा परीशान था। अभी तक अयाल इलाहाबाद से नहीं आये। वह आ जायें तो मुझे फुर्सत हो। ज़्यादा वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 30 जुलाई, 1919

मेहरबाने बन्दा,

तसलीम। कितनी ही ख़ताओं की माफ़ी का ख़्वास्तगार हूँ। आज दो माह के बाद यहाँ आया हूँ और कामिल चार माह के बाद क़लम उठाया है। दो महीने तो इधर-उधर आवारा फिरता रहा, दो महीने इम्तहान की नज़र हुए मगर मेहनत ठिकाने लगी। अब मुस्तक़िल तौर पर काम करूँगा।

एक मुख़्तसर सा क़िस्सा इरसाले ख़िदमत है। पसन्द आये तो रख लीजिये। 'बाज़ारे हुस्न' का ज़िक्र करते हुए ख़ौफ़ मालूम होता है। इसलिये अब वादे न करूँगा।

'प्रेम पचीसी' की साठ जिल्दें बनारस से भेजी थीं। आपने रसीद से इत्तला नहीं दी, या दी हो तो मुझे मिली नहीं। उम्मीद है कि आपके दफ़्तर से यह किताबें जल्द निकल जायेंगी।

और क्या अर्ज़ करूँ। यहाँ कुछ खफ़ीफ़-सी बारिश हुई है पर ज़रूरत से बहुत कम। शुक्र है कि पंजाब में अब सुकून हुआ। कल मैंने 'चम्पा' को ख़ासतौर से पढ़ा। मुन्सिफ ने खूब लिखा है। अगर कोई हिन्दू साहब हैं तो ख़ैर। और अगर मुसलमान साहिब हैं तो उनकी क़लम की दाद देता हूँ। क़िस्सा खूब बनाया गया है। श्रीकांत का कैरेक्टर क़ाबिले तारीफ़ है। मैंने इस क़िस्से का हिन्दी में तर्जुमा करने का फ़ैसला कर लिया है।

उम्मीद है कि आप बख़ैरो आफ़ियत होंगे। जवाब से जल्द सरफ़राज फरमाइयेगा हालाँकि इसका मुझे इस्तहक़ाक़ (हक) नहीं।

अहक़र, धनपत राय

●●

गोरखपुर, 5 अगस्त, 1919

भाईजान,

तसलीम। आज महावीरप्रसाद पोद्दार का ख़त आया है कि उन्होंने एक गांठ काग़ज़ कानपुर भिजवा दिया। काग़ज़ चिकना है। शायद 10 रुपये रीम पड़ेगा। 1500 जिल्दों का ख़्याल मैंने तर्क कर दिया। उतनी ही जिल्दें छपें जितना काग़ज़ पहुँचें। शायद 20 या 22 रीम होगा।

मातरलिंक का ड्रामा तैयार है। तमहीद भी मुख़्तसर-सी लिखी। ज़्यादा मसाला न मिल सका। साफ़ करते ही भेजूँगा।

कहकशाँ 'प्रेम पचीसी' हिस्सा दोयम की सौ जिल्दें तलब कर रहे हैं। वराहे इनायत 100 जिल्दों का बंडल वहाँ बनवा कर भिजवा दें। क़ीमत का हिसाब मैं खुद उनसे कर लूँगा। महसूल लाहौर में दिया जायगा। आपके दफ़्तर का जो सर्फ़ा टाट वग़ैरह का हो वह मेरे नाम लिखवा दें। मगर हाँ यह ख़याल रखने की ताकीद कर दें कि वज़न बेकार कम या बेश न हो। पैकेट या बीस सेर का हो या तीस सेर का, मगर इक्कीस सेर का नहीं, वर्ना महसूल का नुक़सान होता है।

और सब ख़ैरियत है। बारिश के मारे नाक में दम है। उम्मीद है कि आप मय बाल-बच्चों के खुश होंगे।

हां जरा मैनेजर साहब से दर्याफ़्त करके मुझे मुत्तला कर दें कि 'बत्तीसी' की छपाई फ़ी जुज़्व कितनी पड़ेगी। इस मुआमले में मुझे उम्मीद है कि आपके इमकान में जितनी रिआयत हो सकती होगी उससे दरेग़ न फ़रमायेंगे। ऐसा न हो कि आपकी अदम-तवज्जही (ध्यान न देना) से मेरा नुक़सान हो जाय। मैंने महज़ आपकी निगरानी के बाइस कानपुर में छपाई का फैसला किया है। मैं चाहता हूँ कि किताब की कीमत 1 रुपये से ज़्यादा न हो क्योंकि लागत 400 रुपये से कम शायद न हो। टाइटिल कलकत्ते में छपवाने का क़सद है।

जवाब से जल्द सरफ़राज़ कीजियेगा।

क़िस्सों का पैकेट भेज चुका हूँ। पहुँचा होगा।

नियाज़मंद, धनपत राय



गोरखपुर, 11 अगस्त, 1919

मुश्फ़िक़े मन,

तसलीम। लिफ़ाफ़ा मिला। मशकूर हूँ। मई-जून के पर्चे खूब पढ़े और हज़ उठाया। मैं बिला मुबालग़ा कहता हूँ कि ऐसा दिलचस्प रसाला इस वक़्त उर्दू ज़बान में नहीं है। पब्लिक अगर क़द्र न करे तो मजबूरी है। बिलखुसूस 'इर्तक़ा और अस्ल अनवा' पर जो मज़मून किब्ला सैयद मुमताज़ अली साहब ने तहरीर फ़रमाया है वह रिसाले की जान है। इन मौज़ूआत पर ऐसा साफ़ और रौशन मज़मून मेरी नज़र से नहीं गुज़रा। मुझे अब तक न मालूम था कि हज़रते मम्दूह इल्मी मज़ामीन में इतनी दस्तरस[1] है। कुछ ज्यादा दिलचस्प नहीं लेकिन 'शबनम की सरगुज़श्त' बहुत अच्छा है। 'गुलकदे' पर उर्दू रिसालों में कोई मुबस्सिराना[2] तनक़ीद नहीं निकली। इस लिहाज़ से व नीज़ तनक़ीद की खूबी के एतबार से आपका रिसाला अव्वल है। उर्दू के नक़्क़ाद पर अच्छी चोट की है, हालाँकि किसी क़दर ग़ैर-मुंसिफ़ाना है। 'आलमे ख़ाब' मुझे बहुत पसंद आया। 'इलाजे बे-दवा' खूब है। मालूम नहीं तबाज़ाद है या कुछ और। हिस्साएज़ नज़्म भी दीगर रिसालों से कहीं बलन्दतर है। मैं तारीफ़ करने का आदी नहीं हूँ, हक़ का इज़हार कर रहा हूँ। गुमनाम साहब तो बड़े लिक्खाड़ मालूम होते हैं और हक़ यह है कि खूब लिखते हैं।

'प्रेम पचीसी' हिस्सा दोम की सौ जिल्दें आपके यहाँ भिजवा दी हैं। 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल छप रही है। ग़ालिबन दो महीने में तैयार हो जायेगी। क्या 'बत्तीसी' का हिस्सा दोम अपने एहतमाम से नहीं शाया कर सकते ? 'बाज़ारे हुस्न' तो अभी मालूम नहीं कब तक तैयार हो इस असना में अगर 'बत्तीसी' हिस्सा दोम आप शाया कर सकें तो खूब हो। कुछ क़िस्से आप ही के दोनों पर्चो में निकले हैं। बक़िया दस मैं दे दूँगा। कोई दस जुज़ की किताब होगी। आपके लिए एक क़िस्सा लिख रहा हूँ। खूने जिगर तो बहुत सर्फ कर रहा हूँ पर मालूम नहीं कुछ रंग भी आयगा या नहीं। खून ही नहीं है तो रंग क्या खाक पैदा हो ! और क्या इल्तमास[3] करूँ। अपने वालिद साहिब क़िब्ला की ख़िदमत में मेरा दस्तबस्ता सलाम कहियेगा। आपके खुतूत से ऐसा खुलूस[4] टपकता है कि बे-अखतियार मिलने को जी चाहता है। पर गुलामी की क़ैद और सफ़र की दराज़ी हिम्मत तोड़ देती है। वस्सलाम।

नियाज़मंद, धनपत राय।

1 अधिकार, 2. समीक्षात्मक, 3. प्रार्थना, 4. सच्चा प्रेम।



गोरखपुर, 5 सितम्बर, 1919

भाईजान,

तसलीम। शबेतार का बक़िया हिस्सा रवाना करता हूँ। माटरलिंक का एक ड्रामा Sightless नाम का है। Scott Library के सिलसिले में मिलेगा। इसमें एक ड्रामा और भी है। उसका नाम Pelleas and Melisanda है। मैं उसे हिन्दी में तर्जुमा कर रहा हूँ। यह किताबें मुझे बहुत पसंद हैं। यह ड्रामा खत्म हो जाये तो आपके पास भेजूँ। मैंने हर चंद कोशिश की कि इस allegory को सुलझाऊँ लेकिन पूरी कामयाबी नहीं हुई। शबेतार का हिन्दी एडीशन मय दीबाचे (भूमिका) के शाया हो रहा है। लेकिन वह दीबाचा कुछ गोलमोल है। बाज़ारे हुस्न निस्फ़ से ज़्यादा साफ़ कर चुका। नया नाविल खूब तवील[2] हो रहा है। इसका नाम अभी 'नेकनाम' रखा है। ग़ालिबन् दिसंबर तक ख़त्म हो जायगा। अफ़सोस यही है कि मुझे अपनी किताबें दूसरों को देना पड़ती हैं। आप भी फ़ाक़ामस्त और मैं भी फ़क़ीर। नेकनाम तैयार हो जाये तो उसे उर्दू में खुद शाया करने का क़स्द है। बाज़ारे हुस्न का गुज़राती एडीशन भी शाया होने वाला है। मुझे हक़े तसनीफ़ के सौ रुपये मिले हैं। या यों कहिए कि मिलने वाले हैं। ज्ञानमण्डल काशी वाले मुझे तसनीफ़ के सिलसिले में अपने यहाँ खींचना चाहते हैं। अभी तक कोई मुस्तक़िल राय नहीं क़ायम कर सका। 'खूने वहदत' आपने सुबहे उम्मीद में देखा होगा। ज़माना के लिए एक क़िस्सा लिखने का इरादा है लेकिन अभी तो कम से कम दो नंबरों तक आपको शबेतार ही काफ़ी होगा।

कई दिन से अब्र है मगर बारिश बहुत कम। नौआमद के इंतज़ार में तीन औरतें यहाँ मुक़ीम हैं और वह हज़रत हैं कि आने का नाम ही नहीं लेते। उम्मीद है कि आप और बाल-बच्चे सब अच्छी तरह होंगे।

अगर तकलीफ़ न हो तो शबेतार की मज़दूरी इसी माह में भिजवा दीजिएगा क्योंकि

आजकल दोनों मीज़ान बराबर है।

बाबू रघुपति सहाय अजीब सुस्त आदमी हैं। 'तअश्शुक़' पर एक मज़मून लिखा। वह अंग्रेजी में। मीर का आधा लिखकर रख छोड़ा है। अवनीन्द्रनाथ का मजमून Message of the Forest जुलाई के माडर्न रिव्यू में है। शायद उसे तर्जुमा करें। ज्यादा वस्सलाम।

धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 11 सितम्बर, 1919

जनाब बन्दानवाज़,

तसलीम। नवाज़िशनामे के लिए मशकूर हूँ। आप कहकशाँ के हर नम्बर के लिये कुछ लिखने को कहते हैं। और कई माह से एडीटर साहब जमाना नाराज़ हैं, इसलिए कि मैं अपने मज़ामीन दूसरे रिसालों को क्यों देता हूँ। उनकी रज़ाजोई[1] भी ज़रूरी है। उस पर अपने कारे-मनसबी[2] के अलावा ये नयी उलझनें, सेहत नाक़िस[3], खुदा ही हाफ़िज़ है।

मैंने 'प्रेम पचीसी' के दोनों हिस्से खुद ही शाया किये थे। लेकिन पब्लिशर और मुसन्निफ़ दो जुदा-जुदा हस्तियाँ हैं। मुझे इस काम में घाटा रहा। क्या यह मुमकिन है कि लाहौर में मेरे प्रेम बत्तीसी के लिए कोई पब्लिशर मिल जावे। मैं अपने 32 कहानियों के मजूमए को दो हिस्सों में निकालना चाहता हूँ। दोनों हिस्से मिलकर गालिबन 500 सुफहात की किताब होगी। इसमें 500 जिल्दें मैं लागत की कीमत पर खरीद सकूँगा। इधर तो उर्दू के पब्लिशरों का क़हत है। एक नवलकिशोर है। उसने इशाअत का काम बन्द-सा कर रखा है। अगर आपकी मार्फत कुछ इन्तजाम हो सके तो फर्माइयेगा। किस्से सब 'जमाना' और दूसरे रसायल में शाया हो चुके हैं। सिर्फ इन्तख़ाब[4] और तरतीब देना बाकी है। इसमें मेरी ग़रज़ सिर्फ इतनी है कि किताब शाया हो जाय और उसकी हस्ती महज़ अख़बारी न रहे। मुझे जो कुछ क़दरे कलील मिल रहेगा उसी पर शाकर रहूँगा।

एक और तकलीफ देता हूँ। लाहौर में किताबत और छपाई का निर्ख़ क्या है ? इससे भी मुत्तिला फ़रमाइये। अगर मैं 'प्रेम बत्तीसी' बारह पोंड के कागज़ पर छपाऊँ तो 32 जुज़्ब की किताब पर क्या लागत आयगी। मुमकिन है छपाई अरजाँ[5] पड़े तो मैं खुद ही जुरअत कर जाऊँ।

एक ताज़ा किस्सा 'हज्जे अकबर' इरसाले खिदमत है। पसन्द आये तो रख लें। आपने जमाना के जिस मज़मून की तरफ इशारा किया है उसका नाम 'मंज़िले मक़सूद' है। वह मुझे खुद बे इन्तहा पसन्द है और बारहा चाहता हूँ उसी रंग में फिर कुछ लिखूँ। पर क़लम नहीं चलता। प्रेम पचीसी हिस्सा दोयम में वह छप गया है। उम्मीद है कि जनाब सैयद मुमताज अली साहिब किब्ला बख़ैरियत होंगे। उनकी ख़िदमत में मेरा सलाम अर्ज़ कीजियेगा। वस्सलाम।

धनपत राय।

1. खुश रखना, 2. ड्यूटी, 3. बुरी, 4. चुनाव, 5. सस्ता।

●●

गोरखपुर, 20 सितम्बर, 1919

भाईजान,

तसलीम। शबेतार का वक़िया हिस्सा अर्सा हुआ रवाना ख़िदमत कर चुका मगर अभी तक उसकी रसीद से महरूम हूँ।

मेरा इरादा है कि प्रेम पचीसी और बत्तीसी का दायमी हक़्क़े इशाअत[1] 'कहकशां' के नाम मुंतक़िल[2] कर दूँ। वह इसके लिए राज़ी हैं। बराहे करम मुत्तला फ़रमाएँ कि प्रेम बत्तीसी हिस्सा अव्वल कब तक छपकर तैयार हो जायेगी। या अगर इसके निकलने में देर हो तो काग़ज़ के रुपये कहकशां से वसूल कर लिये जायँ और किताबत की उजरत भी ले ली जाये और काग़ज़ और कापी भेज दी जाये। और अगर छपना शुरू हो गया हो तो पूरी किताब की लागत उनसे ले ली जाये। हक़्क़े तसनीफ़[3] दोनों किताबों का आपके ख़याल में कितना लेना चाहिए। अगर आप चाहें तो काग़ज़ अपने सर्फ़ के लिए रख लें और कापी सबकी सब लाहौर भेज दें। हाँ पहले हक़्क़े तसनीफ़ की रक़म के मुताल्लिक़ मुझे मशविरा दें और जहाँ तक मुमकिन हो बहुत जल्द। क़िस्सा आपकी ख़िदमत में दो तीन दिन में भेज दूँगा। मगर उम्मीद करूँगा कि दो तीन दिन में आप इस मुआमले में मुझे माकूल सलाह देंगे ताकि किसी फ़रीक़ का नुक़सान न हो। ज़्यादा वस्सलाम।

धनपत राय।

1 सदा के लिए प्रकाशन का अधिकार, 2 हस्तान्तरित, 3 कापीराइट



गोरखपुर, 20 सितम्बर 1919

भाईजान,

तसलीम। ख़त मिला। मेरा ख़याल है कि जब तक बाज़े[1] तौर पर मुआहिदा[2] न हो जाये उस वक़्त तक अख़बारात का पेड मज़ामीन पर महज इशाअते अव्वल का हक रहता है। माडर्न रिव्यू में रवीन्द्र बाबू के कितने मज़ामीन और तसानीफ़ निकले हैं। पर बाद को मैकमिलन ने इन सभों को किताबी सूरत में शाया किया है। और यह मुसल्लम है कि जब अख़बार किसी मजमून पर दायमी इसतहक़ाक़[3] चाहेगा तो उसे इसी हिसाब से मुआवज़ा भी देना पड़ेगा।

'कहकशां' और 'सुबहे उम्मीद' मुझे हर एक क़िस्से के 15 रुपये देते हैं। बाज़ बहुत छोटे क़िस्सों के 10 रुपये ही ले लेता हूँ। 'सौतेली माँ' के 10 रुपये मिले मगर 'खूने हुरमत' के 15 रुपये।

मुझे 'कहकशां' ने कोई आफ़र नहीं किया। खुद ही मुझसे शरायत पूछे। मैंने आपसे इसतसवाब[4] किया; आप 12 फ़ीसदी रायल्टी कहते हैं। यह बहुत कम है। 15 फ़ीसदी मेरे ख़याल में ज़्यादा क़रीने इन्साफ़ है। अगर आपको इसमें ख़सारा न हो तो आप 'प्रेम पचीसी' का दूसरा एडीशन शाया फ़रमायें। किताब की क़ीमत डेढ़ रुपया रक्खें। एक ही जिल्द में निकले। 1000 जिल्दों की कुल मतबूआ क़ीमत 1500 रुपये होगी। उस पर 15 फ़ीसदी के हिसाब से मुझे 225 रुपये मिलना चाहिये। मैं 200 रुपये पर क़नाअत कर लूंगा। मगर नक़्द होना चाहिये। इसलिए कि मैं एक हिन्दी प्रेस खोलना चाहता हूँ ताकि अपने पसमांदों[5] को बिल्कुल बे-आड़ न छोड़ूँ। इसलिये मुझे नक़्द की ज़रूरत है।

'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल छप जाने के बाद जब सर्फ़े का हिसाब हो जाये तो उसकी निसबत भी आप 15 फ़ीसदी पर तय फ़रमा सकते हैं।

'आत्माराम' हस्बे वायदा इरसाल है।

तिफ़्ले नौज़ादा[6] की ख़बर शायद आपको दे चुका हूँ।

बाबू रघुपति सहाय की तहरीक से उनके वालिद के कलाम का एक हिस्सा इरसाल है। एक नोट भी उसके साथ है। मुनासिब समझें तो दर्ज कर दें। रघुपति सहाय की नज़्म क्या हुई। अगर दर्ज न करें तो उसे वापिस कर दें। वह बार-बार तक़ाज़ा करते हैं।

उम्मीद कि बच्चे बखैरियत होंगे। आपको परमात्मा सेहत दें। इधर भी वही हाल है। पर ज़िन्दा हूँ।

'अदीब' मेरे यहाँ एक भी नहीं है, सब लोग उठा ले गये। 'जलवए ईसार' की एक जिल्द मौजूद है। एक महीना हुआ इंडियन प्रेस से वी. पी. मंगवाया है। कहियें तो भेज दूँ।

आपका, धनपत राय।

1. स्पष्ट, 2. इकरार, 3. स्थायी अधिकार, 4. जिज्ञासा, 5. बाल-बच्चों, 6. नवजात शिशु।



नार्मल स्कूल गोरखपुर, 25 सितम्बर 1919

मुश्फ़िक़े मन,

तसलीम। 'दफ़्तरी' आपकी ख़िदमत में दस्तवस्ता हाज़िर होता है। इस पर निगाहे करम कीजिये। यह इस अम्र का सबूत है कि मज़ामीन के हुकूक के मुताल्लिक़ मैं ज़रा भी X X नहीं हूँ। मगर 'दफ्तरी' इन शरायत की इसलाह करेगा। यह 'प्रेम चालीसी' का पहला किस्सा है। 'कहकशां' का हक़ अव्वल इशाअत के साथ ख़त्म हो जायगा। देखें यह 'चालीसा' कब तक खत्म होता है। ग़ालिबन दो साल लगेंगे।

'प्रेम पचीसी' और 'प्रेम बत्तीसी' के मुताल्लिक़। बत्तीसी का पहला हिस्सा छप रहा है। आपने शरायत का बार मुझ पर डाला है। मैं चाहता था कि इसका फैसला आप खुद कर सकते। 'प्रेम पचीसी' आइन्दा दस साल में ग़ालिवन दो एडीशन निकल सकेंगे। अगर आप मतबूआ कीमत पर मुझे पन्द्रह फ़ी सदी दें और फ़ी एडीशन एक हज़ार कापियां रखें तो बहिसाब एक रुपये चार आना फ़ी नुस्ख़ा मुझे कमोवेश एक सौ अस्सी रुपये मिलते हैं। यानी चौदह सौ पचास रुपये पर पन्द्रह फ़ी सदी। और दो एडीशन के इसी हिसाब से तीन सौ साठ रुपये हो जायेंगे। चूँकि आपको मुद्दते दराज़ तक किताबें बेचने के बाद नफ़ा होगा। इसलिए इस तीन सौ साठ रुपये में आप तख़फ़ीफ़ का मुतालिबा कर सकते हैं। वह आप शौक से करें। 'बत्तीसी' के तीन एडीशन होंगे। आपके किस्से निकालने के बाद मेरे लिए यह भी पचीसी ही रह जायगी और उसी पुराने हिसाब से मुझे पाँच सौ चालीस रुपये मिलने चाहिए। इसमें भी आइन्दा और हाल का ख़याल करके मुझे जो तख़फ़ीफ़ चाहें करें। मैं उस आफ़र पर खूब गौर करूँगा; आप बिना तआम्मुल[1] अपना खयाल ज़ाहिर फ़रमायें।

'बाज़ारे हुस्न' में ताख़ीर हुई। यह ख़याल हुआ कि दस दिन की तातील हो रही है। मुमकिन है सुफ़हात और नकल हो जायें तो इकट्ठे भेजूँ। इसलिए रोक लिया है।

मैंने इन्हीं दिनों एक और क़िस्सा लिखा है, 'आत्माराम'। वह 'ज़माना' में भेज रहा

हूँ। वह इस कदर हिन्दू हो गया कि 'कहकशाँ' के लायक़ नहीं। आप खुद हिन्दू सही लेकिन आपके नाज़रीन[2] तो हिन्दू नहीं हैं।

'दफ़्तरी' बिल्कुल लाइफ से लिया गया है। तख़ैयुल[3] का बहुत कम दख़ल है। मुमकिन है कि वह खुश्क मालूम हो। आप बिला तकल्लुफ़ वापिस फ़र्मा दीजियेगा। मुझमें एक ख़ास ऐब यह है—और वह उम्र के साथ बढ़ता जाता है—कि मैं कहानियों में हुस्न-ओ-इश्क़ की चटपटी चाशनी नहीं दे सकता। वह दिन अब नहीं रहे। हज़रते नियाज़ की-सी जवान तबीयत कहाँ से लाऊँ। और क्या अर्ज़ करूँ।

एक बात आपसे राज़ की कह दूँ। मुझे 'पचीसी' और 'वत्तीसी' के लिए चौदह फ़ी सदी का आफ़र हो चुका है और बग़ैर तग़य्ययुर[4] आइन्दा व हाल। रवीन्द्र बाबू को मकमिलन बीस फ़ी सदी देता है। मैं रवीन्द्र बाबू नहीं हूँ। इसलिए बारह और बीस के दरमियान 15 पर क़ाने होना चाहता हूँ।

वस्सलाम, धनपत राय।

1 बेधड़क, 2. पाठक, 3. कल्पना, 4 बदले बिना, सदा वही।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 30 सितंबर 1919

बन्दानवाज़,

तसलीम। 'ज़ंजीरे हवस' कोई तारीख़ी वाक़या नहीं है और न किसी तारीख़ी वाक़ये से इसका वरायेनाम भी ताल्लुक़ है। क़ासिम ज़रूर फ़ातिहे सिंध का नाम है और उसकी ज़िन्दगी में एक वाक़या ऐसा भी है जो क़िस्से के काम आ सकता है लेकिन इस क़िस्से को उससे ताल्लुक़ नहीं। यहाँ तक कि मैंने देहली के किसी बादशाह का नाम भी नहीं दिया ताकि किसी को ग़लतफ़हमी न हो—न मुलतान के फ़र्मारवा[1] का नाम दिया है। इसमें यह दिखाना मेरा मक़सूद है कि इंसान हवस के हाथों कितना अंधा हो जाता है और यह हवस किस तरह तेज़ी से बढ़ती जाती है, और कुछ नहीं।

अब 'बाज़ारे हुस्न' के मुताल्लिक़—यह नाविल तक़रीबन् तीन सौ सुफ़हात का होगा। लिखा हुआ तैयार है मगर महज़ अदीम-उल-फ़ुर्सती[2] के बाइस[3] साफ़ न कर सका। अगर आप इतनी बड़ी किताब छाप सकें तो मैं साफ़ करना शुरू करूँ वर्ना अभी गर्मी की तातील तक मुल्तवी रखूँ। आपको साफ़ करने की तकलीफ़ न दूँगा क्योंकि साफ़ करने में अकसर क़िस्से के सीन के सीन पलट जाते हैं। इस क़िस्से में मैंने एक अख़लाक़ी[4] बेशर्मी यानी बाज़ारे इस्मतफ़रोशी[5] पर चोट की है। अगर आप यूँही देखना चाहें तो इसके मुताफ़र्रिक़, अजज़ा[6] आपके पास भेज दूँ। मुआवज़े के मुताल्लिक़, क़िस्सा जब आप देख लेंगे तब। 'कहकशाँ' के लिए मैंने पहले अर्ज़ की थी कि मैं आइन्दा कई माह तक बहुत कम लिख सकूँगा। मगर इंशाअल्लाह कोई मौक़ा निकालकर आपके इर्शाद की तामील करूँगा।

बारिश इधर भी वाजिबी हुई है और फ़स्लें ख़राब हो गई हैं। जवाब से मुमताज़ फ़र्माइए।

नियाज़मंद, धनपत राय।

1 हाकिम, 2 फ़ुर्सत न होने, 3 कारण 4 नैतिक, 5 वेश्यावृत्ति, 6 अलग-अलग टुकड़े



गोरखपुर, 8 अक्तूबर 1919

भाईजान,

तसलीम। मज़मून की रसीद से तो मुत्तिला फ़रमाइए। पहुंचा या नहीं। उसके साथ एक ख़त भी था। अगर ज़रूरत समझिए तो उसका भी कुछ जवाब। बाक़ी सब ख़ैरियत है। उम्मीद है कि आप मय अयाल बख़ैर-ओ-आफ़ियत होंगे।

आपका, धनपत राय।



गोरख़पुर, 12 अक्टूबर, 1919

बन्दानवाज़,

तसलीम। मिज़ाजे आली। 'अन्ना' देखी। खूब है। जिस कलम से 'अन्ना' निकल सकती है उससे आयन्दा मुझे रक़ाबत (होड़) का अन्देशा हो तो क़ाबिले मुआफ़ी है। बक़िया का इश्तियाक़ (चाव) है। छोटी कहानियों को कई हिस्सों में छापने से लुत्फ़ जाता रहता है।

रुपये मिल गये। ममनून हूँ। 'पैमाने वफ़ा' अहबाबे क़दीम के नज़्र हुआ। आपके लिये दूसरी फ़िक्र करूँगा।

'बाज़ारे हुस्न' 'रफ़्ता-रफ़्ता' साफ हो रहा है। इरादा है कि एक मुहर्रिर रखकर काम ज़ल्दी से ख़त्म कर डालूँ।

ज़्यादा वस्सलाम

अहक़र, धनपत राय।



गोरखपुर, 25 अक्तूबर, 1919

भाईजान,

तसलीम। लिफ़ाफ़ा, मनीआर्डर, मुबारकबाद, तहनियत[1] सबों का पंजगाना शुक्रिया। सरस्वती ज़बान पर नहीं खोपड़ी पर सवाल हैं। लक्ष्मी दरवाज़े पर नहीं बालाये बाम बैठी हुई हैं। दाना दिखाता हूँ, बुलाता हूँ, पर उतरने का नाम नहीं लेतीं। क़िस्से मैं शायद लिखूं या न लिखूँ, आजकल बाज़ारे हुस्न की सफ़ाई और नये नाविल की तसनीफ़ में बेहद मसरूफ़ हूँ। बाज़ारे हुस्न का गुजराती तर्जुमा शाया हो रहा है। अब तक मर्यादा, अभ्युदय, प्रताप, स्वदेश, प्रतिभा, भारतमित्र, सरस्वती वग़ैरह ने निहायन उम्दा रिव्यू किये और हिन्दी में लोग इसे बेहतरीन नाविल ख़याल करते हैं। कहानियों का तर्जुमा बँगला ज़बान में हो रहा है। हिन्दी में पब्लिशर खूब हैं। किताब की इशाअत में कोई रुकावट नहीं होती। बाज़ारे हुस्न मुकम्मल हो जाये तो आपके पास मुलाहिज़े के लिए भेजूँ।

प्रेम बत्तीसी कितनी छप गयी ? कब तक किताबत तमाम हो जायेगी ? मैंने अबकी कलकत्ते में भी किताबों की बिक्री का इंतज़ाम किया है। आपने कहा था अक्तूबर तक ख़त्म हो जायेगी। क्या अभी ज़्यादा कसर है। मैं हिस्सा दोम खुद ही शाया करूँगा। जब क़ीमते माल नहीं तो डिस्काउण्ट क्यों कहूँ। ज्योंही हिस्सा अव्वल ख़त्म हो जाये और उसका हिसाब मुरत्तब[2] हो जाये हिस्सा दोम शुरू कर दिया जाये। कागज़ मैं भेज दूँगा। अगर

मतबे[3] में कुछ तसाहुली[4] हो तो आप ज़रा खटखटा दीजिए।

मैं क़िस्से का वादा नहीं करता लेकिन कोशिश करूँगा कि नवंबर में कम से कम दो क़िस्से लिखूँ, एक आपके लिए, एक सुबहे उम्मीद के लिए।

उम्मीद कि बाल-बच्चे खूब खुश होंगे। छोटा बच्चा मज़े में है। दोनों बड़े बच्चे आजकल नाना साहब के यहाँ मेहमान हैं। महताब राय कलकत्ते में नौकर हैं।

और क्या अर्ज़ करूँ।

आपका, धनपत राय।

1 बधाई, 2 तैयार, 3 प्रकाशन गृह, 4 देर।

●●

गोरखपुर, 6 नवम्बर, 1919

भाईजान,

तसलीम। ख़त का जवाब नहीं मिला। आज मैंने लीडर में देखा, आपके यहाँ डी. ए. वी. हाईस्कूल की हेडमास्टरी ख़ाली है। अगर आप समझें कि मैं इस पोस्ट के काबिल हूँ और उसके फ़राइज़ (कर्तव्य) अदा कर सकता हूँ उसके साथ ही मुझे वहाँ मुख़ालिफ़ और नागवार हलात म न रहना पड़ेगा तो आप उसके कारकुन से मेरे मुताल्लिक़ तज़किरा (चर्चा) करने की तकलीफ़ उठायें। ममनून होऊँगा। कम-से-कम जवाब से जल्द सरफ़राज़ कीजिए। अगर आपको कामयाबी की उम्मीद हो तो ऐसी हालत में मैं अपनी तरफ़ से दरख़्वास्त भेजना मुनासिब समझूँगा।

आपका, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 20 नवम्बर, 1919

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। मशकूर हूँ। आपकी इनायात का ममनून हूँ। मैंने एक प्राइवेट ख़त मुंशी ज्वाला परशाद साहब की ख़िदमत में रवाना कर दिया है। मगर अभी तक उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया।

बाबू रघुपति सहाय आजकल सिविल सरविस की फ़िक्र में परीशान हैं। उनका नम्बर इंतख़ाब में आठवाँ आया है। कभी इलाहाबाद कभी लखनऊ का चक्कर लगा रहे हैं।

रहा मैं तो आजकल अपना नाविल लिखने में मसरूफ़ हूँ। और ज्ञानमण्डल काशी का भी कुछ काम ले रखा है। फुर्सत पाते ही मुंशी नौबत राय के हालात लिखने का इरादा कर रहा हूँ।

बाबू रामसरन ने बत्तीसी का नाम पसन्द नहीं किया। लेकिन मुझे इससे बेहतर कोई नाम नहीं सूझता। उन्होंने खुद कोई नाम बतलाया हो तो फ़रमाइए, उस पर मैं ग़ौर करूँ।

प्रेम बत्तीसी के अभी कुल चार फ़र्में आये। अब मालूम होता है कि किताब फ़रवरी तक तैयार होगी। वस्सलाम।

अहक़र, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 28 नवम्बर, 191

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। रुपये मिले। मशकूर हूँ। बाबू रामसरन ने शिफ़ा[1] पायी परमात्मा का शुक्र है। मगर डाक्टर लोग कहते हैं कि दिसम्बर में इसका हमला फिर होगा देखूँ उस वक़्त सर पर क्या गुज़रती है। मिस्टर अब्दुल माजिद ने मेरी निस्वत क्या लिखा मैंने नहीं देखा। ज़माना जिस दिन यहाँ आया उसी दिन एक साहिब ले गये और तब से देखने को नहीं मिला। खैर, अगर उसमें है तो देख लूँगा। कहीं और है तो मजबूरी है। तावक़्ते कि आपकी इनायत न हो।

क़िस्सा भेज रहा हूँ। इसकी साफ़ कापी ज़खीरे को दी थी मगर ज़खीरा ग़ालिबन मर गया। ख़त भेजे थे, वह वापस आ गये। इस मज़मून को आप शाया कर दें। अब दुबारा लिखना गरां गुज़र रहा है। अगर कातिब से ग़लतियाँ रह जायें तो मैं प्रूफ़ देख लूँगा।

प्रेम बत्तीसी के मज़ामीन की तरतीब भेजा हूँ। किताब शुरू करवा दीजिए। अगर मौलाना अब्दुल माजिद का तर्जुमा किया हुआ फ़लसफ़ए अख़लाक़े यूरप आपके दफ़्तर या एजेन्सी में आया हो तो उसकी एक जिल्द क़ीमती तीन रुपये मेरे पास भिजवा दीजिएगा। मैं उसे देखने का बहुत शाइक़ हूँ। और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है। बाज़ारे हुस्न का हिन्दी एडीशन 550 सुफ़हात पर खत्म हुआ। छपकर तैयार हो गया। ज्योंही वह आया उसकी एक कापी नज़्र करूँगा। बाज़ारे हुस्न अदीमुल फुर्सती[2] का शिकार हो रहा है। इसी असना में बाँगे सहर शुरू हो गया और सौ सुफ़हात हो भी चुके। अब कुछ दिनों के लिए छोटे क़िस्से लिखना बन्द करके इल्मी मज़ामीन[3] लिखने की कोशिश करूँगा दिमाग़ एक साथ दो मुख्तलिफ़ प्लाट नहीं संभाल सकता। तजरबा कर चुका हूँ कि एक ही काम एक वक़्त हो सकता है। या तो नाविल लिखूँ या कहानियाँ। नाविल के लिए एक ही प्लाट काफ़ी है, और उसका लिखना इतना मुश्किल नहीं है जितना हर माह में दो तीन कहानियों का। इस क़िस्से के बाद कोई मज़मून भेजूँगा। और बन पड़ा तो कोई क़िस्सा ही लिख डालूँगा। ज़्यादा बस्सलाम।

आपका, धनपत राय

1. रोग से मुक्ति, 2. अवकाश का अभाव, 3. गंभीर लेख।



30 नवम्बर, 1919

जनाब मकर्रमे बन्दा,

तसलीम। मैं यहाँ तीन दिन से आपका इन्तज़ार कर रहा हूँ। मगर गालिबन आप लखनऊ से वापिस आ गये। मेरी बदनसीबी। 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा दोम के लिये मैंने कौन-कौन से क़िस्से तज़वीज किये थे उनकी एक फेहरिस्त मुझे भेज दीजिये। मुझे याद नहीं आता। मिसतर इक्कीस सतरी ही होना चाहिए। इस मिसतर पर हिस्सा अव्वल छप रहा है। काग़ज़ मैंने हिस्सा अव्वल के लिए बीस पौंड लगाया है। अगर आप भी यही काग़ज़ लगायें तो दोनों हिस्सों में यकसानियत आ जाय और तब कीमत भी यकसां रखी

जा सकेगी। घटिया काग़ज़ लगाना बेजोड़ होगा।

मेरी शर्तें क्या थीं इसकी भी एक नक़्ल दरकार है। मेरा हाफ़िज़ा[1] नाक़िस[2] है और याददाश्त का नोट भी नहीं रखता। आज 'कहकशां' दोनों सितम्बर और अक्टूबर मिले। खूब हैं। पढ़कर तनक़ीद करूँगा।

'बाज़ारे हुस्न' के तीन सौ सुफहात हो गये। सिर्फ दो सौ और बाक़ी हैं। आप को अगर फुरसत हो तो मैं यह तीन सौ सुफ़हात चलता करूँ। जब तक आप देखेंगे, कातिब लिखेगा, तब तक मैं दो सौ सफ़हात पूरे कर दूँगा, जो दो घंटा रोजाना के हिसाब से दो-एक माह का काम है। 'खूने हुर्मत' से हज़रते 'तमद्दुन' कितने बरहम[3] हुए। देखी आपने इन साहबों की वुसअतदिली[4]। जहाँ सुई न चुभे वहाँ शहतीर डालने की कोशिश की जाती है। इनका जवाब मैंने लिखकर 'तमद्दुन' को भेजा है। अगर छपा तो ख़ैर, वर्ना 'ज़माना' में निकलेगा। क़िब्ला सैयर मुमताज़ अली के दिमाग़ में ग़ालिबन फ़लसफ़ा यानी मसाइल का ज़खीरा मौजूद है। हर माह निकलता ही आता है। इस मौजू पर उन्हें निहायत मुहक़्क़िक़ाना[5] दस्तगाह[6] है। जनवरी से रिसाला 'ज़माना' में रंगीन तसवीरें भी होंगी। आपने मुझ से कुछ जनवरी के लिए माँगा है। मैं मुस्तकिल वादा नहीं कर सकता क्योंकि मैं आजकल अपने जदीद नाविल में दिलोजान से लिपटा हुआ हूँ। इसे दिसम्बर इकतीस तक ख़त्म करना चाहता हूँ। ज्यादा वस्सलाम। जवाब से जल्द याद फ़रमाइयेगा।

अहक़र, धनपत राय।

1 स्मरण शक्ति, 2. ख़राब, 3 नाराज, 4. उदारता, 5. पाण्डित्य पूर्ण, 6. अधिकार।

गोरखपुर, 7 दिसम्बर, 1919

भाईजान,

तसलीम। पण्डित मनोहरलाल जुत्शी को भी ख़त लिख दिया और सेक्रेटरी साहब को भी। कल एक दरख़्वास्त बज़रिये इंस्पेक्टर रवाना कर दूँगा। बेहतर होता कि वहाँ से मेरे पास आफ़र आ जाता और मैं उसे अपनी दरख़्वास्त के साथ मुनसलिक (जोड़कर) करके अपना डेपुटेशन करवा लेता। यों अभी मेरी दरख़्वास्त जायगी तब वहाँ से कुछ हाँ नहीं का फ़ैसला होगा। तब फिर मैं डेपुटेशन की दरख़्वास्त करूँगा। महीनों बेकार हो गये। मिस्टर हैदर क़ुरेशी यहाँ नार्मल स्कूल में मुदर्रिस हैं। क़िस्सा जो उन्होंने भेजा है एक हिन्दी कहानी का तर्जुमा है। इसलिए आप सरस्वती का हवाला ज़रूर दें। वह आइन्दा भी तर्जुमे करके भेजते रहेंगे। मैं भी दो चार दिन में अपने एक ग्रेजुएट दोस्त की तर्जुमा की हुई कहानी भेजूँगा जो डिकेन्स से ली गयी है। प्रभा ने मज़मून का तक़ाज़ा किया है। अखबार निकलते ही आते हैं। प्रभा की फ़रमाइश की तामील कर रहा हूँ। बाक़ियों को जवाब है।

करेण्ट पालिटिक्स पर 20 दिसम्बर तक मज़मून लिखता मगर उसमें कांग्रेस का हाल सितम्बर तक शामिल होगा। या कहिए वह हिन्दोस्तानी पालिटिक्स से कोई ताल्लुक न रखे।

आपका, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 16 दिसम्बर 1919

जनाब मुश्फ़िक़ी,

तसलीम। प्रूफ और नवाज़िशनामा कई रोज़ गुज़रे मिले। काग़ज़ बुरा नहीं है। इसी पर छपने दीजिये। छपे हुए फ़ार्म रद्द कर देने से नुकसान होगा। मेरा काग़ज़ इससे कहीं बेहतर है। लेकिन कोई मुज़ायक़ा नहीं। सस्ता काग़ज़ रहेगा तो किताब भी अर्ज़ां[1] होगी। मिस्तर यही रहना चाहिए, मगर कातिब को ताकीद कर दी जाये कि मक़ालमे हमेशा नई सतरों से शुरू किया करें। क़िस्सों की फ़ेहरिस्त ज़रूर रवाना फ़रमाइयेगा। 'कहकशाँ' सितम्बर और अक्तूबर दोनों मिले। बेहतरीन मज़मून मौलाना साहब क़िब्ला का है। इन मौज़ूआत पर ऐसे वाज़े मज़ामीन मेरी नजर से नहीं गुज़रे। 'हिजाबे उल्फ़त' खूब है। हाँ, प्लाट कमजोर है और कहीं-कहीं सलासते[2] बयान क़ायम नहीं रहने पायी है। दीगर मज़ामीन औसत दर्जे के हैं। बन्नू इबाद बिल्कुल तारीख़ी मज़मून है।

इससे अवाम को क्या दिलचस्पी होगी। मैं अनक़रीब चार्ल्स डिकेन्स का एक क़िस्सा भेजूँगा। नादिर[3] क़िस्सा है। तर्जुमा मुकम्मल है। अदीम-उन-फुर्सती के बाइस एक साहिब से नक्ल करा रहा हूँ। 'बत्तीसी' का काम जारी रखियेगा ताकि हिस्सा अव्वल व दोम साथ-साथ निकलें। 'बाज़ारे हुस्न' की कापी भी क़िस्सए मौऊदा[4] के साथ रवानए ख़िदमत होगी।

'एक रात' मुझे बहुत पसन्द आया। ज़ोरे बयान है, तशवी हात नादिर।' रसाइएफ़िक्र[5] की दाद देता हूँ। कुछ 'ख्वाबे परीशाँ' से मिलता हुआ मालूम होता है। तशवीहें कई बहुत खूब हैं। वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1. सस्ती, 2. सरलता, 3. अनूठा, 4. वादा किये हुए, 5. कल्पना की पहुंच।



गोरखपुर, 21 दिसम्बर, 1919

भाईजान,

तसलीम। लिफ़ाफ़ा मिला। मशकूर हुआ। मैं डी. ए. वी. कमेटी के फ़ैसले का मुन्तज़िर हूँ। मायूसी की कोई बात नहीं है। मुझे वहाँ कोई ज़्यादा माली फ़ायदा न था। यहाँ ग़ालिबन् अप्रैल से सौ रुपये मिलने लगेंगे। इसलिए कानपुर में 130 तक आना मेरे लिए फ़ायदे की सूरत नहीं है। मैं 150 से कम पर जाना मंजूर न करूँगा। इससे बहस नहीं कि कौन स्कूल है। अगर मारवाड़ी स्कूल में इसकी गुंजाइश हो तो आप वहाँ भी मेरी तजवीज़ करने की तकलीफ़ उठाए। ज़माना आब-ओ-ताब से निकल रहा है। ज़हे नसीब। मेरे ख़याल में चार रुपये का एडीशन ज्यों का त्यों रहने दीजिए। वर्ना इशाअत में कमी हो जाने का अन्देशा है। सुपीरियर एडीशन छः रुपये का निकाल सकते हैं। एक ख़त छपवाकर दिसम्बर में दर्ज करा दीजिए कि जो लोग छः रुपये की ज़ैल[1] में ख़रीददार होंगे उन्हें क्या फ़ायदे होंगे। क्या यह मुमकिन है कि रंगीन तसवीरें सिर्फ़ आला एडीशन में लगायी जायें और क़िस्म दोम बिला तसवीर रहे। इसके सिवा मुझे तो और कोई सूरत नहीं नज़र आती।

मैंने अभी तक करेण्ट पालिटिक्स पर कुछ नहीं लिखा। मुझे ज़माना की पालिसी

पर नज़र डालते हुए कुछ लिखना मुनासिब नहीं मालूम होता। मैं पीस डिक्लेरेशन का तो अमदन्[2] ज़िक्र न करूँगा। लेकिन रिफ़ार्म स्कीम का ज़िक्र न करना ग़ैरमुमकिन है। और स्कीम या ऐक्ट के मुताल्लिक़ मैं मिस्टर चिन्तामणि वग़ैरहुम से मुत्तफ़िक़[3] नहीं हूँ। मेरे ख़याल में मोतदिल[4] पार्टी इस वक़्त ज़रूरत से ज़्यादा मग़रूर और नाज़ा[5] है हालाँकि इसलाहों[6] में अगर कोई खूबी है तो सिर्फ़ यह कि तालीमयाफ़्ता जमाअत को कुछ आसानियाँ ज़्यादा मिल जायेंगी और जिस तरह यह जमाअत वक़ील बनकर रिआया का खून पी रही है उसी तरह आइन्दा यह हाकिम होकर रिआया का गला काटेगी। इसके सिवा और कोई जदीद[7] अख्तियार नहीं दिया गया। जो अख्तियारात दिये गये हैं उनमें भी इतनी शर्तें लगा दी गयी हैं कि उनका देना न देना बराबर हो गया है। ऐसी हालत में मैं ज़माना में क्या लिखूँगा। मैं अब क़रीब-क़रीब बाल्शेविस्ट उसूलों का क़ायल हो गया हूं। आपकी क्या राय है ? लिखूँ या अपने लिए कोई दूसरी मद ले लूँ। वह मद यह हो सकती है—हिन्दी अख़बारात और रसायल[8]। इन पर चन्द सफ़ों में रायज़नी कर दिया करूँ।

'हुस्ने फ़ितरत' मसनवी रवानए ख़िदमत करता हूँ। यह इबरत मरहूम की बेहतरीन मसनवी है। इसे आप तीन चार नम्बरों में शाया कर दें तो अच्छा हो। ग़ालिबन् मक़बूल होगी।

प्रेम बत्तीसी मालूम नहीं किस हालत में है। छप रही है या काम बन्द कर दिया गया। आपने फ़रमाया था नवम्बर में निकलेगी। दिसम्बर ख़त्म हो गया। हिस्सा दोम के कई फ़र्मे छप चुके हैं। हालांकि उनका काग़ज़ घटिया है।

मैंने अमृतसर का इरादा तर्क कर दिया। तातील में बैठकर छुट्टी मनाऊँगा और अपना नया नाविल लिखूँगा।

बाक़ी सब ख़ैरियत है। उम्मीद है कि आपकी तरफ़ सब चैन-चान होगी।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1. कोटि; श्रेणी, 2. जान-बूझकर, 3. सहमत, 4. मॉडरेट; उदार पंथी, 5. घमंड से फूली हुई, इतरायी हुई, 6 सुधारों, 7. नया, 8. पत्रिकाएं।



गोरखपुर, 30 दिसम्बर, 1919

भाईजान,

तसलीम। मुझे याद नहीं आता कि हिस्सा अव्वल के कौन से दो क़िस्से आपको दरकार हैं। या तो उनके नाम से मुत्तिला कीजिए ताकि यहाँ तलाश करूँ, शायद निकल आवें। वर्ना दो नये क़िस्से जो इस माह के कहकशां और ज़माना में निकलने वाले हैं ('दफ़्तरी' कहकशां 'आत्माराम' ज़माना) शामिल कर दीजिए। नाम मुझे बत्तीसी ही अच्छा मालूम होता है। भोज बत्तीसी और बैताल पचीसी मौजूद हैं। हमारे यहाँ अददी नामों का पुराना रिवाज है। सतसई, हनुमान चालीसा, शुक बहत्तरी, अलिफ़ लैला वग़ैरह। एक क़िस्से का नाम लिख देने से पता नहीं चलता कि मजमूए में कुल कितने क़िस्से हैं। मैं कोशिश करूँगा कि लाहौर में भी काग़ज़ बीस ही पौण्ड का लगे। मैंने लाहौर वालों से पंद्रह फ़ीसदी रायल्टी नक़्द तय की है। उन्होंने तीन कहानियाँ छाप भी ली हैं। ज़माना

फिर पुरानी शान को ज़िन्दा कर सके तो क्या कहना। मैं Current Politics अपने ज़िम्मे लेने को तैयार हूँ। आइन्दा से अख़बारों को ज़्यादा ग़ौर से देखूँगा। अमृतसर चलने का तो जी चाहता है। शायद रुपया भी मिल जाये। प्रेम बत्तीसी के गुजराती एडीशन से सौ रुपये का आफ़र आकर रखा हुआ है। लेकिन तकलीफ़ का ख़याल करके रुक जाता हूँ। पेचिश ने मुझे बिल्कुल निकम्मा कर दिया। जहाँ रहूँ मेरे लिए एक बैतुलख़ला अलग चाहिए जिस पर मैं बिला मदाख़िलते[1] ग़ैर तसर्रूफ़[2] रखूँ। कोई साहब मज़ाहिम[3] न हों। अमृतसर या कहीं परदेस में यह बात मुमकिन नहीं। जब तबीयत ही क़ुसलमन्द[4] रही तो लुत्फ़ क्या आयेगा। किसी तरह भागने के लिए तबीयत बेताब रहेगी। ऐसी हालत में पड़ा रहना ही बेहतर है। मैं डी. ए. वी. स्कूल कमेटी के फ़ैसले का इंतज़ार कर रहा हूँ। और इंतज़ार की हालत आप जानते ही हैं कितनी परीशानकुन होती है। आपने इस अम्र में जो कोशिश की है या करेंगे उसके लिए ममनून हूँ। 125 पर आने में मुझे कोई ख़ास नफ़ा नहीं है। हाँ यहाँ की आबहवा और मातहती से निकलना मक़सूद[5] है। इस लाइन में रहकर मैं अभी दस साल से कम में हेडमास्टर नहीं हो सकता।

और क्या अर्ज़ करूँ। वस्सलाम।

धनपत राय।

1. हस्तक्षेप, 2. क़ब्ज़ा, 3. बाधक, 4. गिरी-पड़ी; उदास, 5. अभीष्ट।



गोरखपुर, 9 जनवरी, 1920

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला था। आप बख़ैरियत वापस आ गये। परमात्मा करे आपको मुक़दमे से जल्द फुर्सत हो जाये। मेरी सेहत इन दिनों बेहद ख़राब हो रही है। मुस्तक़िल तौर पर कुछ लिख नहीं सकता। मैंने सोचा है ज़माना के लिए मौजूदा वाक़याते आलम के बजाय मैं हिन्दी रसायल का माहवार रिव्यू कर दिया करूँ। प्रभा, संसार, सरस्वती, शारदा, स्वार्थ वग़ैरह रिसाले यहाँ मुझे मिल जाते हैं। उन पर पाँच छः सुफ़हात का रिव्यू हो जाया करे तो कैसा हो। इससे हिन्दू समाज में ज़माना ज़्यादा मक़बूल हो सकेगा। फ़रमाइएगा।

मुझे अब प्रेम बत्तीसी के लिए आप कब तक मुंतज़िर रखेंगे ? नवंबर गुज़रा, दिसंबर गुज़रा, जनवरी भी गुज़री जाती है। कोई तारीख़ मुअय्यन[1] कर दीजिए और उस तारीख़ तक किसी न किसी तरह किताब निकल जाये। ग़ैर मुअय्यन इंतज़ार से तकलीफ़ होती है। रुपया फँसा हुआ है वह अलग। कुछ रुपया मिले तो और कुछ छपवाने का इरादा करूँ। बाज़ारे हुस्न मैंने अभी तक किसी को नहीं दिया। खुद ही छपवाना चाहता हूँ। बराहे करम फ़रवरी तक प्रेम बत्तीसी का हिस्सा अव्वल निकाल दीजिए। मर जाऊँगा तो आप Posthumous एडीशन क्या निकालेंगे जब ज़िन्दगी में ज़िन्दा एडीशन नहीं निकालते। आख़िर तरद्दुद क्या है। क्या मतबे ही की जानिब से देर हो रही है या और कोई बात है। अब तो क़िस्से भी सब पूरे हो गये। इसका हतमी[2] जवाब मुझे दीजिए। हिस्सा दोम ग़ालिबन् अव्वल से पहले निकल जायेगा। यह तुरफ़ा[3] बात होगी। उम्मीद है बच्चे

बख़ैर-ओ-आफ़ियत होंगे। वस्सलाम।

धनपत राय

1. निश्चित, 2. पक्का, 3 निराली।



गोरखपुर, 3 फरवरी, 1920

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। जनवरी का पर्चा मिला, लेकिन मुफ़स्सिल ख़त न मिला। ख़ैर। आप अदीमुलफुर्सत होंगे।

मैंने आस्कर वाइल्ड की एक दिलचस्प कहानी तर्जुमा कर ली है, शायद कल तक ख़त्म हो जाये। सय्यद मुनीर हैदर कुरैशी इसे साफ़ कर रहे हैं। मज़मून तूलानी है, 'ज़माना' के 30 सफ़हात से कम न होगा। आपके पास भेजूँ ? जवाब से जल्द सरफ़राज़ कीजियेगा।

'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल ग़ालिबन छप रही होगी। मैं उम्मीद करता हूँ कि 1 मार्च को मेरी आँखें उसके दर्शन करेंगी। कल पानी बरसा, आज खूब सर्दी है।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



गोरखपुर, 3 फ़रवरी, 1920

भाईजान,

तसलीम। कल एक अरीज़ा (अर्जी, खत) इरसाल कर चुका हूँ। इस वक़्त ज़रूरते तहरीर यह है कि प्रेम बत्तीसी हिस्सा दोम के लिए ज़ैल (निम्नांकित) के क़िस्सों की अशद ज़रूरत है। बराहे करम दफ़्तर से निकलवाकर दफ़्तरे कहकशां को भिजवा दीजिए और मुझे इस तकलीफ़दिही के लिए मुआफ़ कीजिए। मेरे फ़ाइल से कोई साहब उड़ा ले गये।

1. ईमान का फ़ैसला, 2. फ़तेह, 3. दुर्गा का मन्दिर।

बक़िया सब ख़ैरियत है। पहले कार्ड का जवाब दीजिएगा।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 11 फरवरी, 1920

भाईजान,

तसलीम। खुतूत का जवाब देने में देर हुई। मुआफ़ कीजियेगा।

'इसलाह' हस्बे वादा इरसाले ख़िदमत है। इसे आप कहानी की निगाह से नहीं, ख़यालात की निगाह से देखने की इनायत कीजियेगा।

चन्द नज़्में मुंशी गोरखप्रसाद 'इबरत' मरहूम की भी इरसाल हैं। पसन्द आयें तो दर्ज कीजियेगा।

जनवरी नम्बर मिला। हस्बे मामूल क़िब्ला मुमताज़ अली का मज़मून बेहतरीन है। बहैसियत मजमूई बहुत ही अच्छा नम्बर है। नज़्म का हिस्सा ख़ासतौर पर दिलकश है। तापेश और नश्तर की ग़ज़लों में खूब लुत्फ़ आया।

'बाज़ारे हुस्न' का गुजराती एडीशन निकल रहा है। खूब-खूब तसवीरें निकल रही

हैं। आप चाहेंगे तो ब्लाक दिलवा दूँगा मुसव्वर (सचित्र) एडीशन निकल जायगा और अज़ां।

'दुर्गा का मन्दिर' 'ज़ख़ीरा' में छपा था। 'ज़खीरे' के फ़ाइल में देखें। मिल जाये तो बेहतर। वर्ना मुझे इत्तला कीजिये। नक़ल करके भेज दूँ।

'नेकी की सज़ा' हिन्दी में निकला था। इसका मुसव्विदा (मसौदा) भी मेरे पास है। सिर्फ़ नक़ल करने की ज़रूरत है। 'ईमान का फ़ैसला' और 'फ़तेह' आपकी ख़िदमत में पहुँच गये होंगे। उजलत में हूँ। मुआफ़ कीजियेगा।

सैयद इम्तियाज़ अली ताज को : सन् 1920-1921

नियाजमंद, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 18 फ़रवरी, 1920

भाईजान,

तसलीम। कागज़ के मुताल्लिक़ कल ख़्वाजा साहब को कार्ड लिख चुका हूँ। 14 पौंड टीटागढ़ लगवा दें, और क़ीमत से मुझे मुत्तला फ़रमायें।

मारवाड़ी स्कूल में असिस्टेंट टीचरी मुझे मंजूर नहीं है, ख़्वाह कितनी ही तनख़्वाह मिले। वही हालत तो यहाँ भी है। यहाँ फुर्सत बहुत ज़्यादा है। हेडमास्टर निहायत माकूल। करूँगा तो हेडमास्टरी। और असिस्टेंट रहना हो तो यहाँ बड़े मज़े में हूं। मुझे यहाँ मय मकान के 120 रुपये मिलते हैं। इस लिहाज़ से भी कोई फ़ायदा नहीं है। इसलिये ख़्वामख़्वाह डावांडोल क्यों हूँ। जुलाई से ग़ालिबन मेमोरियल का कुछ नतीजा हुआ तो मुझे कुछ और मिल रहेगा। वहाँ से बेहतर हालत रहेगी। आपको मेरी फ़िक्र है इससे अलबत्ता क़ल्ब को सुरूर होता है। इसके लिये मेरा एक-एक रोआँ आपका मशकूर है। परमात्मा करे आपको जल्द मौजूदा कशमकश से नजात हो। मेरा दूसरा नाविल 'नाकाम' अनक़रीब-इख़्तताम (समाप्त प्राय) है। वह पूरा हो जावे तो नौबत राय की तरफ़ मुतवज्जो हूँ, और क़िस्से भी लिखूँ। हिन्दी का आजकल बहुत काम करना पड़ता है। यह नाविल भी हिन्दी में छपेगा। उर्दू में इसका हश्र क्या होगा, मालूम नहीं। 'बाज़ारे हुस्न' अलबत्ता छप जायगा।

नियाज़मंद धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 2 मार्च, 1920

भाईजान,

तसलीम। होली मुबारक हो। परमात्मा अहल-ओ-अयाल को खुश व खुर्रम रखें।

आपकी शफ़क़त (कृपा) का तालिब (इच्छुक)
धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 11 मार्च, 1920

भाईजान,

तसलीम। ख़त मिला। बेशक इमदादी स्कूलों में कारगुज़ारी की ज़रूरत होती है।

लेकिन चूँकि यह सीग़ा (विभाग) अनक़रीब मुन्तक़िल (परिवर्तित) होने वाला है इसलिये उम्मीद है कि शायद आइंदा इस क़िस्म की कारगुज़ारी के मुक़ाबले में ख़ालिस तालीमी काम की ज़्यादा क़द्र की जाये। आपके सदमात और परेशानियों पर बहुत रंज होता है। क्या करूँ। मैं इसीलिए तो कानपुर आना चाहता था कि मिलकर कुछ काम कर सकते। यहाँ चाहूँ तो प्रेस भी खोलूँ, अख़बार भी निकालूँ। हमदर्दों के तक़ाज़े हो रहे हैं लेकिन मैं टालता आता हूँ। अख़बारनवीसी की तरद्दुदात की बर्दाश्त का ख़याल मारे डालता है। मास्टरी में वह गर्मीए शोहरत न सही, रोज़ी तो चलती है। अगर कानपुर आ गया तो हम और आप मिलकर कुछ काम कर सकेंगे। वर्ना इसकी और क्या सूरत है। महताब राय कलकत्ते के उस छापेख़ाने में, जिसके मालिक मेरे दोस्त मिस्टर पोद्दार हैं, मैनेजर है। 60 रुपये माहवार पाते हैं और पोद्दार का इरादा है कि उन्हें नफ़े में कुछ हिस्सा भी दे दें। बजुज़ फ़ासले के और उन्हें वहाँ हर तरह आराम है। हम लोगों का छापाख़ाना क़ायम होगा तो उन्हें यहाँ बुला लूँगा। वह काम से खूब वाक़िफ़ हो गये हैं।

मज़मूननवीसी तर्क नहीं की है और न करूँगा लेकिन आजकल 'बाज़ारे हुस्न' की तरतीब में मसरूफ़ हूँ। अभी तक 'नाकाम' में मसरूफ़ था। 'बाज़ारे हुस्न' अब प्रेस जा रहा है। इसके बाद 'नाकाम' में हाथ लगेगा। पहले हिन्दी एडीशन निकलेगा।

सेहत ऐसी ख़राब है कि ज़्यादा काम करने की मोहलत नहीं देती। ताहम जल्द ही कुछ भेजता हूँ। 'रूए स्याह' तैयार कर चुका हूँ। सिर्फ़ माफ़ करना बाक़ी है।

बाबू रघुपति सहाय अपनी माली तरद्दुदात में परेशान हैं। उनसे भी कह रहा हूँ। मगर मेरा 'रूए स्याह' जल्द हो जायगा।

उम्मीद है कि बच्चे खुश होंगे। यहाँ भी ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 24 मार्च, 1920

मुशिफ़क़ी,

तसलीम। यह ख़मोशी क्यों ? दो ख़त लिखे, जवाब नदारद। प्रेम पूर्णिमा नज्र की, रसीद नदारद। सख़्त तरद्दुद है। जल्द रफ़ा कीजिए। मार्च का रिसाला देखा। मौलाना राशिद और हज़रत नियाज़ दोनों साहबों के मज़ामीन क़ाबिलेदाद हैं। खूब लुत्फ़ आया।

मसूरी चलने की दावत दी थी। मैं तैयार हूँ। मगर आप दावत करके भूल गये। जल्द फ़ैसला कीजिए ताकि उधर से मायूसी हो तो मैं देहरादून जाने का इरादा कर लूँ। और तो कोई हाल ताज़ा नहीं। 'प्रेम बत्तीसी' का क्या हाल है ? कितनी हुई और कितनी बाक़ी है ? 'बाज़ारे हुस्न' के अब कुल अड़तीस सुफ़हात बाक़ी हैं। पहली अप्रैल को आपके पास रजिस्टर्ड पहुँच जायगी। वस्सलाम।

धनपत राय।



गोरखपुर, 4 अप्रैल, 1920

भाईजान,

तसलीम। मैंने यहाँ से इबरत मरहूम की मसनवी 'हुस्ने फ़ितरत' रवाना की थी।

वह ज़माना में अभी तक नहीं निकली। बाबू रघुपति सहाय दर्याफ़्त करते हैं कि आप उसे कब तक शाया करने का क़स्द (इरादा) रखते हैं। अगर आप किसी सबब से ज़माना में जगह न दे सकें तो उसे वापस फ़रमा दें क्योंकि यहाँ उनके पास उसकी कोई नक़ल नहीं है।

मुझे अफ़सोस है कि मैं मज़ामीन के मुताल्लिक़ अभी तक अपना वादा पूरा न कर सका। हिन्दी रसायल के तक़ाजों के मारे नाक में दम हो रहा है। लेकिन मज़मून तैयार रखा है। सिर्फ़ साफ़ करने की देर है। इसकी भी मुहलत नहीं मिलती। मसनवी के मुताल्लिक़ ख़याल से मुत्तला फ़रमाइएगा। वस्सलाम।

आपका धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 14 अप्रैल, 1920

भाईजान,

तसलीम। एक कार्ड लिखा था। उसके बाद एक मुख़्तसर सा मज़मून भेजा मगर जवाब से सरफ़राज नहीं हुआ। इधर बाबू रघुपति सहाय के तक़ाज़ों के मारे नाक में दम है। मुंशी गोरखप्रसाद साहब मरहूम की मसनवी 'हुस्ने फ़ितरत' के मुताल्लिक़ आपने क्या फ़ैसला फ़रमाया है। जल्दमुत्तिला फ़रमाइए। उम्मीद है कि मय अयाल ख़ुश-ओ-ख़ुर्रम होंगे। यहाँ सब परमात्मा का फ़ज़्ल-ओ-करम (दया) है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, नार्मल स्कूल, 14 अप्रैल, 1920

मुहिब्बी,

तसलीम। मुफ़स्सल ख़त मिला, लेकिन मुफ़स्सल जबाब उस वक़्त दूँगा जब आप 'बाज़ारे हुस्न' तमाम-ओ-कमाल (पूरा) पढ़ चुकेंगे। उसके मुतल्लिक़ आपने जो कुछ फ़रमाया वह सब आपकी क़द्र-अफ़ज़ाई है। मैं बहुत ममनून हूँगा अगर जनाब उस पर अपनी मुफ़स्सल तबसराना राय से मुझे मुत्तला फ़रमायें। इसमें नाराज़ होने की कौन बात है। नक़्क़ाद (अवलोचक) हैं कहाँ ? मुझे तो इसकी आरजू रहती है कि कोई मुझे ख़ूब नेक-ओ-बद समझाए। इसकी तवाअत, हक़्-उल-ख़िदमत वग़ैरह के मुतल्लिक़ आप मुझसे कहीं बेहतर फ़ैसला कर सकते हैं। क़िब्ला सैयद मुमताज़ अली साहब को मेरी जानिब से सालिस (पंच) बना लीजिएगा। मुक़द्दमा आपके लिए लिख रहा हूँ, मई में दर्ज हो सकेगा। वस्सलाम।

धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 20 अप्रैल, 1920

भाई साहब,

तसलीम। ग़ालिबन् अब आपको डिस्ट्रिक्ट कान्फ्रेंस की मसरूफ़ियत[1] से निजात हो गयी होगी। मैं, आप और मिस्टर नरायन प्रसाद निगम की सलामतरवी[2] का क़ायल हूँ। आपको दाद देता हूँ।

इससे क़ब्ल दो चिट्ठियाँ लिख चुका हूँ। मसनविए 'हुस्ने फ़ितरत' के मुताल्लिक़ आपने क्या फ़ैसला किया है। अगर उसकी इशाअत मंजूर न हो तो बराहे करम उसे मिस्टर रघुपति सहाय, लक्ष्मी भवन, गोरखपुर के पते से वापस फ़रमा दें। मेरा मदरसा 1 मई को बंद होगा। इरादा करता हूँ कि कानपुर में आकर नियाज़ हासिल करूँ लेकिन इसके क़ब्ल एक माह तक ऋषीकेश रहने का क़स्द है। प्रेम-बत्तीसी की तैयारी में अब कितनी देर है ? कितने फ़र्मे छप चुके हैं ? बराहे करम जवाबे ख़त से मुमताज़[3] फ़रमावें। मैं 1 को यहाँ से चला जाऊँगा। अगर जवाबे ख़त में देर हो तो मेरा पता नोट फ़रमा लें : गाँव रामपुर, डाकखाना रामपुर, ज़िला आज़मगढ़।

मैं 10 मई तक इस मौज़े में रहूँगा। उम्मीद कि आप मय अयाल खुश होंगे।

अहक़र, धनपत राय।

1 व्यस्तता, 2. सबसे हेल-मेल रखना, 3. सम्मानित।



गोरखपुर, 22 अप्रैल, 1920

मुश्फ़िक़े मन,

तसलीम। नवाज़िशनामा मिला। 'बाज़ारे हुस्न' आप शाया करें। शरायत के मुताल्लिक यह अर्ज़ है कि आप पहले एडीशन के लिये मुझे बीस फ़ी सदी रायल्टी अता फरमावें। पहला एडीशन बारह सौ नुस्ख़ों का हो। ग़ालिबन सवा रुपये क़ीमत रखी जाय। मुझे 240 जिल्दें मिलेंगी। यह जिल्दें ख्वाह मुझे जिल्दों की सूरत में दे दें या रुपये की सूरत में। रुपये की सूरत में देने से वही कमीशन जो मैं किसी दूसरे बुकसेलर, मसलन् रिसाला 'ज़माना', को दूँगा आपको वज़ा कर दूँगा। अगर आप इसे पसन्द न फरमावें तो आप मुझे जिल्दें ही दे दें। मैं किसी तरह बेच या बिकवा लूँगा। अगर इन सूरतों में कोई पसन्द न हो तो मुझे पहले एडीशन के लिए दो सौ पचास रुपये अता फरमावें। हिन्दी में मुझे पाँच सौ रुपये मिले थे। गुजराती एडीशन के मुझे सौ रुपये मिले। आप जिस तरह चाहें फैसला करें। दो सौ पचास रुपये ग़ालिबन ज़रूरत से ज़्यादा मुतालबा[1] नहीं है। मेरी डेढ़ साल की मेहनत और ख़ामाफ़रसाई[2] का नतीजा यह किताब है। अगर यह सब शर्तें आपको नागवार मालूम हों तो अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ किताब शाया करके मुझे जो चाहें दे दें। मैं आपका मशकूर हूँगा। मुझे यह सख्त जिल्लत मालूम होती है कि अपनी किताब के लिए पब्लिशरों की खुशामद करता फिरूँ।

'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा दोम का क़िस्सा 'खूने अज़मत' मलफ़ूफ़[3] है। पहला हिस्सा अनक़रीब तैयार है। दूसरा हिस्सा भी जल्द निकले तो बेहतर। मालूम नहीं काग़ज़ दस्तयाब[4] हुआ या नहीं। मेरे हिन्दी पब्लिशर कलकत्ते से आपके लिए हर एक क़िस्म का काग़ज़ सुभीते के साथ भेजने पर आमादा हैं। निस्फ़[5] क़ीमत पेशगी दरकार होगी। अगर आप इसे मंजूर फ़रमावें तो काग़ज़ आ जायगा। आर्डर वग़ैरा इस पते से दे सकते हैं। मेरा हवाला देना ज़रूरी होगा :

श्रीयुत महावीरप्रसाद पोद्दार, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, 126, हरीसन रोड, कलकत्ता।

मुंशी गोरखप्रसाद साहब 'इबरत' मरहूम की नज़्म 'यादे मिज़गाँ' आपने शाया की। इसके लिए शुक्रिया कुबूल फ़रमाइये। अभी इनका कलाम आपके यहाँ ग़ालिबन पाँच

ग़ज़लें और दो नज़्में हैं। इन्हें भी शाया कर दें। और इन नज़्मों की एक-एक कापी बराहे करम जैल के पते से अता फ़रमावें :

बाबू रघुपति सहाय, लक्ष्मी भवन, गोरखपूर, यू. पी.।

यह साहब ज़िन्दादिल आदमी हैं और उम्मीद है कि अपनी तरद्दुदात से फुर्सत पाकर 'कहकशाँ' की कुछ ख़िदमत कर सकेंगे। इस कलाम की इशाअत का मंशा सिर्फ़ यह है कि रसायल में तबा[6] हो जाने के बाद इसकी किताबी सूरत शाया हो। इसलिए जिस क़दर जल्द मुमकिन हो सके इन्हें आप निकाल दें।

आजकल कलम बिल्कुल सुस्त है। एक क़िस्सा बिल्कुल अधूरा पड़ा हुआ है। सुबह का मदरसा हो गया है। दस बजे लौटकर फिर चार बजे तक बैठने की हिम्मत नहीं होती। और यह वक़्त अख़बारबीनी[7] का है न कि तसनीफ़[8] का।

ज़्यादा वस्सलाम। जवाबे खत से जल्द सरफ़राज़ फ़रमावें।

नियाज़मंद, धनपत राय।

1 माँग, 2. क़लम घिसाई, 3 लिफाफे में बन्द, 4 मिला, 5 आधी, 6 प्रकाशित, 7. अख़बार देखने, 8 रचना।



देहरादून, 6 जून, 1920

भाईजान,

तसलीम। आज कई दिन के बाद आपको ख़त लिखने बैठा हूँ। मुआफ़ कीजिएगा। मैं हरिद्वार, कनखल, ऋषीकेश वग़ैरह होता हुआ आज देहरादून आ गया और बहुत जल्द यहाँ से भागने का क़स्द रखता हूँ। मेरी तबीयत दौराने सफ़र में ज़्यादा ख़राब हो गयी। बजाय इसके कि आबहवा की तबदील से कुछ फ़ायदा होता, उल्टा और नुक़सान हुआ। मुझे यहाँ यह तजरबा हुआ कि बग़ैर मुलाज़िम के सख़्त तकलीफ़ होती है। हरिद्वार और कनखल और ऋषीकेश में बहुत अच्छे-अच्छे धर्मशाले मौजूद हैं। वहाँ आप बहुत आराम से रह सकते हैं लेकिन अपना आदमी साथ रहना ज़रूरी है वर्ना तकलीफ़ होने लगती है। खाना बाज़ार से भी हो सकता है लेकिन बहुत मामूली। रोटी और दाल, कोई एक तरकारी, ख़र्च ज़्यादा नहीं। चार आने में सेर (तृप्त) हो सकते हैं। यहाँ देहरादून में भी वही आदमी की ज़रूरत महसूस हो रही है। अगर मस्तूरात (औरतों) के साथ हरिद्वार का सफ़र कीजिए तो ख़ास लुत्फ़ आये। हरिद्वार निहायत पुरलुत्फ़ और पुरफ़ज़ा जगह है। और तो कोई ख़ास अम्र नहीं। मैं दो तीन दिन में यहाँ से देहली, आगरा होता हुआ जल्द ही वापस आ जाऊँगा। सख़्त तकलीफ़ हो रही है। वस्सलाम।

धनपत राय।



रेस्ट हाउस, नीयर रेलवे स्टेशन, देहरादून, 6 जून, 1920

मुश्फ़िक़े मन,

तसलीम। मैं आजकल कनखल, ऋषिकेश वग़ैरा का सफ़र करता हुआ देहरादून आ पहुँचा। मैंने कनखल से एक ख़त आपकी ख़िदमत में रवाना किया था। मालूम नहीं पहुँचा

या नहीं। मुझे उसका जवाब नहीं मिला। आप इधर आने का क़स्द रखते हों तो बराह करम एक मामूली तार से मुत्तिला फ़रमाइये ताकि आपका इन्तज़ार करूँ। वर्ना मैं बहुत जल्द यहाँ से चला जाऊँगा। मेरी तबीयत दौरान सफ़र में ज़्यादा मुज़महिल (गिरी-पड़ी, कमजोर) हो गयी है। आया था कि हरिद्वार की आबोहवा से कुछ फायदा होगा, लेकिन नतीजा इसका उलटा हुआ। पेचिश ने, जिससे मेरी पुरानी दोस्ती है, बहुत दिक़ कर रखा है। इस ख़त के पाते ही अपने फ़ैसले से मुत्तला फ़रमाइए। अगर यहाँ न आ सकें तो देहली में मिलने का फ़ैसला कीजिये और मुत्तला कीजिये कि आप वहाँ कब तक पहुँचेंगे और मैं कहाँ आप से मिलूं। ज़्यादा वस्सलाम।

नियाज़मंद धनपत राय।



नया चौक, कानपुर, 15 जून, 1920

मुश्फ़िक़े मन,

तसलीम। आपका रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़ा मुझे दफ़्तर 'ज़माना' में आकर मिला! अफ़सोस है कि काश यह ख़त देहरादून में मिल गया होता तो मैं आप लोगों की हमराही में मसूरी की सैर कर लेता। मुझे अबकी सफ़र में यह तजुर्बा हुआ कि मैं बग़ैर किसी रफ़ीक़ या दोस्त के तनहा नहीं रह सकता।

यह सुनकर बग़ायत (बहुत) ख़ुशी हुई कि कागज़ आ गया और प्रेम बत्तीसी की किताबत मुकम्मल हो गई। अब उसे छपवा भी डालें। हिस्सा अव्वल भी ग़ालिबन आख़िर जुलाई तक तैयार हो जायेगा।

'बाज़ारे हुस्न' के मुताल्लिक़, अगर आपको मेरी शर्तें मंजूर हैं तो रुपये के लिए फ़िक्र न कीजिए। मुझे फ़िलहाल अशद ज़रूरत नहीं, आख़िर अगस्त तक भेज दें तब भी कोई हर्ज़ नहीं।

अब उज्रे गुनाह—आपके लिए दौराने सफ़र में मज़मून लिखा और भेजने ही वाला था, मगर यहाँ आते ही आते वह मेरे क़ब्ज़े से निकल गया। 'मेहरे-पिदर' नाम था। अदमे तामीले इर्शाद के लिए माफ़ कीजिएगा। आज गोरखपुर वापस जाता हूँ। पेचिश का बाक़ायदा इलाज करूँगा। और 'रिश्ता-ए-आरजू' जो शुरू कर चुका हूँ, जल्द ही हाज़िरे खिदमत होगा। वस्सलाम।

धनपत राय



गोरखपुर, 25 जून, 1920

भाईजान,

तसलीम ! मैं कल यहाँ आ पहुँचा। कल आपका ख़त मिला और आज अपनी तसवीर देखी। फोटो खूब है। मुझे उम्मीद न थी कि आप इसे ग्रुप में से इतनी सफ़ाई से जुदा कर सकेंगे। ख़ैर, आपकी बदौलत मुझे अपनी सूरत तो नज़र आयी।

बेहतर, 'बाज़ारे हुस्न' दो हिस्सों में शाया हो। मेरे ख़याल में भी यही तजवीज़ थी। 'टीन की लैला' का दीबाचा ज़रूर लिखूँगा, मगर किताब छप जाने के बाद ग़ालिबन

ज़ियादा सहूलत होगी। 'प्रेम बत्तीसी' अगर सितम्बर तक तैयार हो जाये तो मैं ग़नीमत समझूँ।

अब मज़मून की बात। मज़मून फ़िलहाल मेरे पास दो हैं, मगर सफ़र की थकान और तबीयत के मुज़महिल हो जाने के बाइस साफ़ नहीं कर सका। इरादा था कि ख़त का जवाब और मज़मून साथ-साथ भेजूँ, लेकिन फ़ोटो की रसीद देनी ज़रूरी थी। कल इन्शा अल्लाह एक मज़मून साफ़ करना शुरू करूँगा और ग़ालिबन 29 जून को यहाँ से रवाना कर दूँगा। इस ताख़ीर के लिए मुझे माजूर समझिएगा। सेहत से मजबूर हूँ। उम्मीद है कि आप खुश होंगे। काश्मीर की ज़ियारत मुबारिक।

नियाज़मंद धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 26 जून, 1920

भाईजान,

तसलीम। मालूम नहीं मैंने आपको कोई ख़त लिखा या नहीं। यहाँ 24 को आ गया और आते ही आते छोटा बच्चा बीमार हो गया। आजकल इसी परीशानी में हूँ। मज़मून नातमाम पड़ा हुआ है। मेरी तवीयत भी ज्यों की त्यों है। इस नयी मुसीबत से ख़लासी हो तो अपनी फ़िक्र करूँ। उम्मीद है कि आप मय बाल-बच्चों के खुश होंगे।

पानी खूब बरसा है। वस्सलाम।

धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 29 जून, 1920

मुहिब्बी,

तसलीम। मेरी परेशानियों का खात्मा नहीं हुआ। छोटे बच्चे को चेचक निकल आई है। उसके रोने-रुलाने का नज़्ज़ारा कोई काम नहीं करने देता। यह मज़मून आस्कर वाइल्ड के एक क़िस्से Canterville's ghost का तर्जुमा है। पसन्द आये तो रख लें। मगर इसके आखिर में मेरा नाम देने की ज़रूरत नहीं क्योंकि 'आवे हयात' और 'अश्के नदामत' के बाद से अब मैंने अहद कर लिया है कि तर्जुमे न करूँगा।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं। वस्सलाम।

धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 5 जुलाई, 1920

भाईजान,

तसलीम। कल कार्ड मिला। दोनों कामयावियों की ख़बर सुनकर बहुत ख़ुशी हुई। शंभू तो मेरा शागिर्द ही था।

आज रात को मुझ पर एक सानिहा (विपत्ति, शोक) गुज़रा। ग़रीब मुन्नू मेरा छोटा बच्चा इलाहाबाद से आकर चेचक में मुबतिला हो गया था। उसने नौ दिन तक ग़रीब को घुला-घुलाकर आख़िर जान ही लेकर छोड़ा। तक़दीर ने तो अपनी दानिस्त (समझ) में मुझे सज़ा दी होगी लेकिन मैं खुश हूँ कि फ़िक्रों का आधा बोझ सर से दूर हो गया।

उम्मीद है कि आप खुश होंगे। अब मुझे यहीं मरने दीजिए। इसी गोशे में।

आपका, धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 28 जुलाई, 1920

भाईजान,

तसलीम। आपका एक कार्ड कई दिन हुए आया था। 'कहकशाँ' भी मिला। मज़मून की फ़रमाइश अभी तक पूरी न कर सका। आजकल मुसीबतों की यूरिश (धावा) है। यहाँ 23 जून को आया, 6 जुलाई को छोटा बच्चा चेचक में मुबतिला हो गया और हमेशा के लिए दाग़ दे गया। अभी तक इस ग़म से निजात नहीं हुई। सब्र तो हो गया मगर याद बाक़ी है। और शायद ताज़ीस्त रहेगी। इसे अपने आमाल (कर्मों) का नतीजा समझता हूँ, और क्या।

जब तक दिल न सँभले मज़मून कहाँ से आयें। खतों का जवाब देना भी शाक़ है। मुआफ़ कीजियेगा।

'प्रेम बत्तीसी' और 'बाज़ारे हुस्न' की क्या हालत है। उम्मीद है कि आप खुश होंगे।

दुआगो, धनपत राय

●●

गोरखपुर, 12 अगस्त, 1920

भाईजान,

तसलीम। क्या ईश्वर के साथ अहवाब भी मुझसे रूठ जायेंगे। दो महीने के क़रीब होने आये हैं और आपने एक ख़त तक न लिखा। इस मसरूफ़ियत (व्यस्तता) की भी कोई इन्तहा है।

अभी तक मेरी सेहत इस क़ाबिल नहीं हुई कि कुछ लिटररी काम कर सकूँ। मगर पहले से कुछ बेहतर ज़रूर हूँ। आपके लिए जो क़िस्सा शुरू किया था वह नातमाम पड़ा हुआ है। ईश्वर ने चाहा तो जल्द ही ख़त्म करके भेजूँगा। बत्तीसी का क्या हाल है ? कुछ और आगे बढ़ी ? ज़रा जनाब मैनेजर साहब को हफ़्ते में दो एक बार खटखटाइएगा तो शायद वह इसी साल के अन्दर निकल सके वर्ना शक है। और तो कोई हाल ताज़ा नहीं है। आजकल मामू साहब का कुनबा भी यहीं आया है और छोटे भाई का भी। घर में चहल-पहल है। वस्सलाम।

धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 25 अगस्त, 1920

जनाब मुश्फ़िकी,

तसलीम। नवाज़िशनामा सादिर हुआ। आप अपने सिलसिला-ए-इशाअत[1] की तौसीह[2] करना चाहते हैं। यह अम्र मेरे लिए ख़ासतौर पर बाइसे इतमीनान है। उर्दू में रिसाले और अख़बारात तो बहुत निकलते हैं। शायद ज़रूरत से ज़्यादा। इसलिए कि मुसलमान एक लिट्रेरी क़ौम है और हर तालीमयाफ़्ता शख़्स अपने तईं मुसन्निफ़[3] होने के

काबिल समझता है। लेकिन पब्लिशरों का यकसर क़हत है। सारे क़लमखे[4]-हिन्द में एक भी ढंग का पब्लिशर मौजूद नहीं। बाज़ जो हैं उनका अदम और वजूद[5] बराबर है क्योंकि उनकी सारी कायनात[6] चंद रद्दी नाविल हैं जिनसे मुल्क या ज़बान को कोई फायदा नहीं। अर्सा हुआ 'दायरा तुल अदब' देहली में क़ायम हुआ था और बड़े तमतराक़[7] से चला, लेकिन थोड़े ही दिनों में उसके नाज़िम साहिब का जोश फ़रो[8] हो गया और वह कुछ इस तरह ग़ायब हो गये कि मुआमलेदारों का हिसाब तक न साफ़ किया। इसलिए मैं आपकी इस तजवीज़ से बहुत मुतमइन[9] हूँ। लेकिन मुआफ फ़रमाइयेगा एक अदबी रिसाले का बार अपने सर पर रखे हुए आप अपनी नयी तजवीज़ में कामयाब हो सकते हैं, इसमें मुझे शक है। एक अव्वल दर्जे का उर्दू रिसाला एक आदमी को हमातन[10] मसरूफ़[11] रखने के लिए काफ़ी से ज़्यादा है। वरना उसका मेयार[12] से गिर जाना यक़ीनी है। ऐसी हालत में आप दोनों काम कामयाबी के साथ नहीं कर सकते तावक़्ते कि आपको कोई होशियार एसिस्टेंट न मिल जाये। और चूँकि आजकल लाहौर में बिला माकूल मुआवज़े के होशियार आदमी मिल नहीं सकता और 'कहकशाँ' के लिए यह बार शायद नाक़ाबिले बर्दाश्त हो इसलिये आपकी इसके सिवा और मफ़र[13] नहीं कि या तो इशाअत के हों या कहकशाँ के। मेरी नाचीज़ राय है कि अगर आप इशाअत का काम सरअंजाम दे सकते हैं तो 'कहकशाँ' को ख़ैरबाद कहिये। 'कहकशाँ' जो काम कर रहा है वही काम और भी कई मुमताज़ रिसाले कर रहे हैं या करने का इरादा रखते हैं। मगर पब्लिशिंग का मैदान बिल्कुल खाली है और ज़बान की खिदमत करने के जितने मौक़े इशाअते कुतुब के ज़रिये मिल सकते हैं माहवार रिसाले से मुमकिन नहीं। मैं यह नहीं कहता कि माहवारी सहाइफ़[14] में ज़बान की ख़िदमत नहीं होती; मगर रसायल के वसायल महदूद होते हैं और उसके हुदूद उसे तसनीफ़ के अक्सर शोबों से बेफ़ैज़ रखते हैं। उर्दू रिसालों में आप कोई ज़ख़ीम और मुहक़्क़िक़ाना[15] तारीख़ी तसनीफ़ नहीं शाया कर सकते, तावक़्ते कि वह आपके रूबरू खुर्दबीनी सूरत में पेश न की जाये। अलाहाज़ा, फ़लसफ़ा,[16] शेर,[17] नज़रयात,[18] कीमियात,[19] वग़ैरा वग़ैरा सभी असनाफ़े कलाम का दरवाज़ा आपके लिए बन्द है। आपको चलते हुए मज़ामीन, तफ़रीहबख़्श[20] चुटकुले, दिलचस्प शायराना तज़किरे, रंगीन किस्से चाहिए। यहाँ तक कि आप कोई ज़ख़ीम नाविल हाथ में लेते हुए डरते हैं। तो जनाब चटपटे मज़ामीन से नाज़रीन की ज़ियाफ़ते तबा चाहे हो जाये लेकिन ज़बान की कोई मुस्तक़िल ख़िदमत नहीं हो सकती। ऐसे मज़ामीन से ज़बान के मुस्तक़िल सरमाये में कोई क़ाबिले क़द्र इज़ाफ़ा नहीं होता। उर्दू को हर एक शोबे[21] की अच्छी और मुस्तनद[22] किताबों की जितनी ज़रूरत है वह मोहताजे बयान नहीं। और हालांकि इस बेविज़ाअती[24] का बाइस एक बड़ी हद तक हमारी सियासी बेदस्तओ-पाई है ताहम हमने अपने लिटरेचर की तरफ़ अभी उतनी तवज्जो नहीं की जिसका वह मुस्तहक़ है। अगर हमें अपनी लाज रखनी है तो अपने लिटरेचर को फ़रोग़ देना पड़ेगा। और चाहे यह काम अफ़राद[25] करें या मजमूआए अफ़राद, मगर इसे कारोबारी उसूलों पर किये वग़ैर इस्तहकाम[26] नहीं हो सकता। अगर आप एक मुश्तरिका सरमाये से कोई पब्लिशिंग काम जारी कर सकें तो क्या कहना। लाहौर जैसे तिजारती मक़ाम पर ऐसी कम्पनी खोलनी बहुत मुश्किल न होनी चाहिए। बहरहाल अगर आप इशाअत के कारोबार में हाथ डालना चाहते हैं तो 'कहकशाँ'

को बन्द कीजिये। बिलखुसूस ऐसी हालत जब कि आपको इसके जारी रखने में सरासर खसारा है। यही मेरी दोस्ताना सलाह है। उम्मीद है आप मेरी साफ़गोई को मुआफ़ फ़रमायेंगे।

ख़ाकसार, प्रेमचंद

1 प्रकाशन माला, 2. विस्तार, 3. लेखक, 4. हिन्दुस्तान, 5. होना-न-होना, 6. पूंजी, 7. धूम-धड़ाके, 8. उतर गया, 9. आस्वस्त, 10. पूरी तरह, 11. व्यस्त, 12. स्टैन्डर्ड, 13. बचाव, 14. पत्रिकाओं, 15. गंभीर, पाडित्यपूर्ण, 16. दर्शन, 17. काव्य, 18 सिद्धान्त शास्त्र, 19. रसायनशास्त्र, 20. मनोरंजक, 21. विभाग, 22 प्रामाणिक, 23. दरिद्रता, 24 व्यक्ति, 25. स्थिरता।



गोरखपुर, 26 अगस्त, 1920

भाईजान,

तसलीम। ख़त इन्तज़ार के बाद मिला। मशकूर हूँ। 'बत्तीसी' छप गयी, शुक्र है। 'बाज़ारे हुस्न' की किताबत होने लगी, बड़ी खुशी की बात है। हिस्सा अव्वल अभी तक मुंशी दयानारायन साहिब की बेतवज्जो ही के सबब मआरिज़े-इल्तवा[1] में पड़ा हुआ है। मगर उम्मीद है कि हिस्साए दोम का शाया होना ताज़ियाने का काम देगा। और यही मेरी गरज़ थी।

'कहकशाँ' आप बन्द करना चाहते हैं। जब नुक़सान हो रहा है तो ज़रूर बन्द कीजिये। जब आपको विलायत जाने का मौक़ा मिले तो इससे फ़ायदा न उठाना अपने ऊपर और क़ौम के ऊपर जुल्म है। यह उमंग के दो-चार साल निकल जायँगे तो मेरी तरह आपको भी पछताना पड़ेगा। काश मैंने अवायले[2] उम्र में एम. ए. तक हासिल कर लिया होता तो यह कसम-पुर्सी[3] की हालत न होती। वर्ना वह ज़माना फ़सानानिगारी के नज़्र हुआ और अब ज़रूरतें डिग्री के लिए मजबूर करती हैं। आप बी. ए. पंजाब से कीजिये और फ़ौरन विलायत का सफ़र कीजिये। दो-तीन सालों में आप पाँच छः सौ रुपये हासिल करने के मुस्तहक़ हो जायँगे और अगर अख़बारनवीसी की तरफ मायल होंगे तो यहाँ भी अव्वल दर्जे का अंग्रेजी रिसाला निकाल सकेंगे। अख़लाक़ी और ज़ेहनी फ़वायद जो हासिल होंगे उनकी कोई क़ीमत नहीं। मैंने अपनी जानिब से एक दोस्ताना ख़त लिखा है। मुनासिब समझें तो इसे शाया कर दीजिये। मुझे इस नरग़े[4] से खूबसूरती से निकल जाने का इसके सिवाय और कोई रास्ता नज़र न आया। लतायफउल[5] हील के फ़न में भी उम्मी[6] हूँ। साफ़-साफ़ कहना जानता हूँ।

'बत्तीसी' और दीगर कुतुब ज़रूर रवाना करें। आपने गांधी के हालात लिखे थे, उसकी कितनी जिल्दें निकल गयीं। 'प्रेस बत्तीसी' आपके यहाँ से कितनी निकल जायगी। अब तो 'कहकशाँ' का ज़रियाए इश्तहार भी न रहेगा।

यहाँ बारिश क़ब्ल अज़ वक़्त बन्द हो गयी। फ़स्ल का नुक़सान हो रहा है।

मैंने कलकत्ते के एक हिन्दी प्रेस में शिरकत कर ली है। ग्यारह आने मेरे एक दोस्त का होगा और पाँच आने मेरे। मुझे अपने हिस्से के रुपयों की फ़िक्र करनी है। अगर काम चल गया तो पचास-साठ रुपये माहवार का फ़ायदा हो सकेगा। अगर आपको तरद्दुद न हो तो सितम्बर में मशूला[7] हिसाब तै फ़रमा दीजियेगा। कुल प्रेस सोलह हज़ार का है।

ताज़ियत[8] के लिए मशकूर हूँ। दो बच्चे थे, एक ने मुर्फाकत[9] की, अब एक चहारसाला[10] शीरख़ार[11] रह गया और एक लड़की। परमात्मा इन्हीं दोनों को ज़िदा रक्खे। ग़म जो कुछ होना था हो चुका। मशीयत[12] यही थी। मुझे भी अब उसकी मसलहत नज़र आ रही है। शायद मुझे अलायक़[13] की ज़ंजीरे-गराँ[14] से कुछ आज़ाद करना मक़सूद था। ख़त जल्द लिखियेगा। आपके ख़ुतूत से तसकीन होती है।

आपके वालिद साहिब बुज़ुर्गवार ने जिन अलफ़ाज़ में मुझे तलक़ीने-सब्र[15] और तवक्कुल[16] फ़रमाया है उनके लिये तहेदिल से ममनून हूँ। ईद-उज्जुहा का दिन है, दो-चार अहबाब मिलने आते होंगे। इसलिए अब रुख़सत। ईद मुबारिक। ख़याल में आपसे भी बग़लगीर हो रहा हूँ। वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1. खटाई, 2. शुरू उम्र, 3. बेकसी, 4. घेरे, 5. बहानेबाजी, 6. नादान, 7. शर्त किया हुआ, 8. मातमपुर्सी, 9. वियोग, 10. चार साल की, 11. दूधपीती, 12. दैवी इच्छा, 13. मुसीबतों, 14. भारी जंजीर, 15-16. सब्र करने और ईश्वरेच्छा के आगे सिर झुकाने की हिदायत।



गोरखपुर, 28 अगस्त, 1920

भाईजान,

तसलीम। तार मिला था मगर ख़त का इन्तज़ार करते-करते थक गया। इरादा था कि जवाब में मेरा मज़मून पहुँचे ख़त न लिखूँ। लेकिन सेहत और कुछ सोज़े पिन्हाँ (दिल की जलन) ने ऐसा मजबूर कर रखा है कि आज मजबूरन ख़त लिख रहा हूँ। क्या करूँ, कई काम छेड़ रखे थे, सभी अधूरे पड़े हुए हैं। 'नाकाम' नामुकम्मल है। उसका हिन्दी तर्जुमा नामुकम्मल है। चार मुख़्तसर कहानियाँ अधूरी, एक ड्रामा ज़ेरे तजबीज़। मगर सेहत कुछ करने ही नहीं देती।

मालूम नहीं 'प्रेम बत्तीसी' इस ज़िन्दगी में शाया होगी या नहीं। 'बाज़ारे हुस्न' का अल्लाह ही हाफ़िज़ है, और 'नाकाम' का तो अभी ज़िक्र ही क्या। न ज़माना प्रेम को फ़ुर्सत, न दार-उल-इशाअत को मोहलत।

सितम्बर के महीने में कुछ ज़रूर हाज़िर करूँगा। वस्सलाम।

अहक़र, धनपत राय।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 30 अगस्त, 1920

भाईजान,

तसलीम। कई दिन हुए कार्ड मिला था। आपका पहला ख़त किसी वजह से मुझे नहीं मिला। शिकायत की मुआफ़ी की तालिब।

प्रेम बत्तीसी हिस्सा दोम छप गयी। मेरे पास एक जिल्द आ भी गयी। अब बतलाइए क्या हो। वह हिस्सा अव्वल तलब कर रहे हैं। उसके बग़ैर उन्हें इश्तहार देने में ताम्मुल[1] है। बराहे करम मुत्तिला फ़रमाइए कि अभी हिस्सा अव्वल के कुल कितने फ़ार्म बाक़ी हैं।

मैं लाहौर वालों से सख़्त नादिम[2] हूँ। मैं बराबर उनसे ताकीद करता रहा, इस उम्मीद में कि हिस्सा अव्वल पहले तैयार हो जायेगा। मगर अब ख़िफ़्फ़त[3] उठानी पड़ रही है। क्या अभी मुमकिन है कि किताब सितंबर के महीने में मुकम्मल हो जाये। बवापसी जवाब से सरफ़राज़ फ़रमाइए। उम्मीद है कि आप मय बाल-बच्चों के ख़ुश होंगे। वस्सलाम।

धनपत राय।

1 संकोच; आपत्ति, 2. लज्जित, 3. ज़िल्लत; झेंप।

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 14 सितम्बर, 1920

भाईजान,

तसलीम। आपका नवाज़िशनामा कई रोज़ हुए मिला था, मगर इस आलमे ज़ईफ़ी[1] क़ब्ल-अज़-वक़्त[2] में एम. ए. पास करने की धुन सवार हो गयी है। इस वजह से वक़्त का बहाना करता रहा। सुबह को शाम के लिए रख छोड़ता था, शाम को सुबह के लिए। आपने 'कहकशाँ' को बन्द कर देने का फ़ैसला किया। ख़ूब किया। नुक़सान उठाना, उस पर दर्दे सर। इस बला से निजात ही अच्छी। मगर इस वक़्ते फ़ुर्सत को या तो अपनी आइन्दा तरक़्क़ी या तसनीफ़ में सर्फ़ कीजिये। क्यों, आपके इंग्लैंड जाने की तजवीज़ क्या फ़िस्क़[3] हो गयी ? अगर आपके माली हालात इजाज़त दें तो आप जैसे तब्बा[4] नौजवान का वहाँ क़िस्मत आज़माई करने जाना ज़रूरी है। वहाँ से लौटकर आप किसी कालिज के प्रोफ़ेसर और फिर प्रिंसिपल हो सकते हैं। सिर्फ़ दो साल की जिलावतनी[5] है।

महात्मा गांधी की अगर सिर्फ़ हज़ार डेढ़ हज़ार जिल्दें ही निकलीं तब तो आपको शायद इसमें भी ख़सारा ही रहा हो। 'प्रेम बत्तीसी' का मुन्तज़िर हूँ। 'ज़माना' को भी तक़ाज़ों से चैन नहीं लेने देता। ग़ालिबन अक्तूबर में दोनों हिस्से निकल जायेंगे। आपके 'तहज़ीब' की मार्फ़त मेरी पाँच सौ जिल्दों में से भी कुछ निकल जायँ तो क्या कहना।

'ज़माना' का हाल मुझे मालूम है। साल भर में शायद डेढ़ सौ दो सौ जिल्दें निकलीं, और कहीं इश्तिहार देना नहीं चाहता। अबकी 'सुबहे उम्मीद' में भी कुछ जिल्दें भेजूँगा। इसके लिए एक क़िस्सा 'बाद अज़ मर्ग' लिखा है। क़िस्सा क्या है एक दोस्त की हक़ीक़त है। सिर्फ़ आख़िर में थोड़ी-सी उपज है। पढ़कर अपनी तनक़ीद और मुमकिन हो तो हज़रते 'पितरस' की तनक़ीद से मुत्तिला फ़रमाइयेगा।

मुझे रुपयों की ज़रूरत तो थी और है। इसलिए कि मैं प्रेस में शिरकत कर चुका हूँ और उसके रुपये अदा करने लाज़िम हैं। लेकिन चूँकि मेरा शरीक मेरा क़द्रदाँ है, उसकी जानिब से रुपयों का तक़ाज़ा नहीं है और शायद न हो। अगर आपको फ़िलहाल तरद्दुद है तो मुज़ायक़ा नहीं। जब आपको सहूलियत हो उस वक़्त सही।

'पचीसी' भी दोनों हिस्से ख़त्म हो चुकी है। शायद हिस्सा दोम की चन्द जिल्दें बाक़ी हों। दूसरी इशाअत का मरहला दरपेश है। 'ज़माना' के मैनेजर साहब इसरार कर रहे हैं मगर मैंने अहद कर लिया है कि ज़माने की गर्दिश में न पड़ूँगा। अगर आप इसे निकाल सकें तो कहीं बेहतर।

1. जी हाँ, नवाबराय मैं ही था लेकिन जब 'सोज़े वतन' लिखने के बाद मुझे मेरे

डिपार्टमेंट ने मज़ामीन लिखने से मजबूर कर दिया और डिपार्टमेंटल सख्तियाँ शुरू कीं तो मैंने मुहिब्बी[6] बाबू दयानरायन के मशविरे से यह नाम तजवीज़ कर लिया।

2. 'सैरे दरवेश' 'ज़माना' ने शाया किया है। मगर उसके हुकूक़ मेरे ही पास हैं। अगर आप पुरतकल्लुफ़ छाप सकें तो शौक से छापिये।

3. जी नहीं, 'नक़्क़ाद' मेरे पास इलतज़ामन कभी नहीं आया। और न इसमें कभी लिखने की जुर्रत की। दिलगीर साहब ने दो-एक बार फ़र्माइश ज़रूर की थी मगर मैं बन्दए दाम[7] और वहाँ क़द्रदानी और तहसीन। इससे मेरा काम न चला। हज़रत नियाज़ फ़तेहपुरी के चन्द मज़ामीन मार्के के थे। उन्हें 'ज़माना' के दफ्तर में देख आया था। 'नक़्क़ाद' अक्सर चोंचले बहुत करता है। मुझे यह ज़नानापन पसंद नहीं। मैं लिटरेचर को Masculine देखना चाहता हूँ। Feminine ख्वाह वह किसी सूरत में हो मुझे पसंद नहीं। इसी वजह से मुझे टैगोर की अक्सर नज़्में नहीं भातीं। यह मेरा फ़ितरी नुक़्स है। क्या करूँ। अशआर भी मुझे वही अपील करते हैं जिनमें कोई जिद्दत हो। ग़ालिब के रंग का मैं आशिक़ हूँ। अज़ीज़ लखनवी के गुलकदे की खूब सैर की थी मगर बदक़िस्मती से आज तक एक शेर भी मोज़ूँ नहीं कर सका। न जी चाहता है। ग़ालिबन शायराना हिस[8] दिल में है ही नहीं। आपके 'सुन्दर मुरली' और 'गंगा अस्नान' के देखने का इत्तफ़ाक़ नहीं हुआ। अगर आपके पास उनकी नक़्ल हो तो भेजने की इनायत कीजियेगा। मैंने तो अब तक आपकी जितनी चीज़ें देखी हैं उनमें 'नाबीना जवान' सबसे ज़्यादा पसन्द आया। आपने ग़ज़ब किया था। शायद उर्दू में ऐसा तख़ैयुल और नहीं नज़र आ सकता। 'लाला ए सहरा' में भी ज़ोर खूब था। मगर वह बात न थी।

आपकी ग़ज़लों को खूब ग़ौर से देखा। 'माना आफ़रीनी'[9] की दाद देता हूँ। यह शेर बहुत खूब हैं, सुबहान अल्ला।

दुनिया दिखाई देती थी मख़मूर सी मुझे
वह देखना तेरी निगहे नीमबाज़ का

'दास्ताँ मेरी' वाला शेर बहुत खूब है। खमोशी क्या है हैरते हुस्न व रोबे। हुस्न वफूरे जज़्बात। यहाँ भी इतवार को बाबू रघुपतिसहाय के मकान पर एक छोटा-सा मकामी मुशायरा हुआ था। तरह थी :

सो गया जागने वाला शबे तनहाई का–

बाबू रघुपति सहाय ज़िन्दादिल शायर हैं। उन्होंने भी आपकी ग़ज़लों की खूब दाद दी। वह आपके 'लाला ए सहरा' का तर्जुमा अँग्रेज़ी में करना चाहते थे मगर बहुत दिक़्क़ततलब देखा तो इरादा तर्क कर दिया।

और क्या लिखूँ। सेहत बदस्तूर, मसरूफ़ियात[10] रोज़ अफ़ज़ूँ[11] बारिश रोज़ाना। 'कहकशाँ' का जुलाई नम्बर खूब था। वस्सलाम।

धनपत राय।

1-2. अकाल वार्द्धक्य, 3. खत्म, 4. क्षीण बुद्धि, 5. निर्वासन, 6. मेरे प्यारे, 7. पैसे का गुलाम, 8. काव्य-संवेदना, 9. बात पैदा करना, 10-11. दिनोंदिन बढ़ती हुई व्यस्तताएँ।

●●

गोरखपुर, 14 सितम्बर, 1920

जनाब मैनेजर साहब ज़माना,

तसलीम। आपका 9 सितम्बर का ख़त मिला। प्रेम बत्तीसी पन्द्रह रोज़ में तैयार हो जायेगी, यह खुशख़बरी ख़ास फ़रहत का बाइस हुई। मैंने लाहौर वालों को हिदायत कर दी है कि वो हिस्सा दोम बत्तीसी की पाँच सौ जिल्दें दफ़्तर ज़माना को भेज दें। आपके यहाँ हिस्सा अव्वल तैयार हो जाये तो आप भी पाँच सौ जिल्दें कहकशाँ के दफ़्तर को रवाना फ़र्मा दीजियेगा। प्रेम पच्चीसी का फ़ैसला बत्तीसी के निकलने पर होगा। दोनों हिस्से पच्चीसी के साथ ही निकलेंगे। हिस्सा दोम की चन्द जिल्दें हों तो उन्हें सस्ते दामों में निकालने की कोशिश फ़र्माइए। क्या हर्ज है अगर बजाय बारह आने के ज़माना में एक जदीद सफ़े पर इसकी क़ीमत आठ आने कर दी जाय। शायद इससे कुछ जिल्दें ज़्यादा फ़रोख़्त हो जायें। वस्सलाम।

धनपत राय।



गोरखपुर, 21 सितम्बर, 1920

भाईजान,

तसलीम। ख़त मिला। हालात मालूम हुए। मैं आजकल एम. ए. के लिये तैयार हो रहा हूँ। सेहत भी अच्छी नहीं है। इस वजह से काम भी बहुत कम हो गया है। प्रेम बत्तीसी के लिए चश्म बराह (आंख बिछाये) हूँ। प्रेस के मुताल्लिक़ मैं क्या लिखूँ। महताब राय कलकत्ते ही में एक प्रेस में साझा कर रहे हैं। जिस प्रेस में वह हैं वह बिक रहा है। उनका इरादा है कि नये ख़रीददारों के साथ शरीक हो जायें। मैंने उन्हें आपकी तजवीज़ लिख भेजी है। वह कानपुर आने पर आमादा हो जायें तो आपको इत्तला दूँ। प्रेस की क्या क़ीमत है? कितने रुपये की ज़रूरत है ? यह सब आपने कुछ न लिखा। टाटा शुगर के हिस्सों ने आपको कुछ दिया या नहीं ? रौशन मिल्ज़ के हिस्सों का क्या हश्र हुआ ?

और सब ख़ैरियत है। उम्मीद है कि आप बाल-बच्चों के साथ ख़ैरियत से होंगे। मेरे लिये बराये खुदा अब कोई दुआ न करें। बिल्ली बख़्शे मुर्ग़ा लँडूरा ही जियेगा।

आपके यहाँ 1. Deighton's Antony and Cleopatra
2. Deighton's Much Ado About Nothing

तो नहीं हैं। अगर हों तो मेरे पास भेज दीजिये, पढ़कर वापस कर दूँगा।

जवाब से जल्द सरफ़राज़ फ़रमाएँ। कहकशाँ ग़ालिबन् बन्द हो रहा है। ख़सारा (घाटा) बहुत हुआ।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 2 अक्तूबर, 1920

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। मशकूर हूँ। किताबें मैंने मंगवा लीं। अब आप तरद्दुद न फ़रमायें। 'बत्तीसी' आपके यहाँ पहुँची या नहीं ? मुत्तला कीजिये तो यहाँ से भेज दूँ।

आपके ख़्वाजा साहब ऊटपटाँग जवाब देते हैं। कैसी मज़ामीन की फ़ेहरिस्त ? और कहाँ दफ़्तरी चिपकायेगा ? मेरी समझ में नहीं आता। 'बत्तीसी' 232 सफ़हात पर ख़त्म हुई है। काग़ज़ अच्छा है। किताबत अलबत्ता ज़रा खफ़ी[1] है। मगर और जली[2] होती तो दाम ज़्यादा होता। हिस्सा अव्वल की भी यही क़ीमत रक्खी जायगी। हाँ, घटिया काग़ज़ वाली किताबों के 1 रुपये 4 आना रक्खे जायें। अब कितने फ़र्मे बाक़ी हैं, इसका मुफ़स्सल जवाव चाहता हूँ। इस माह में किताब तैयार होगी ?

'ज़माना' के लिये मज़ामीन लिखूँगा, और ज़रूर लिखूँगा। अक्तूबर ही में इंशाअल्लाह एक क़िस्सा हाज़िरे ख़िदमत होगा। अब 'कहकशाँ' तो रहा नहीं, 'ज़माना' है और 'सुबहे उम्मीद'।

मैंने कलकत्ते के प्रेस में ½ का साझा कर लिया। 5000 रुपये देने पड़ेंगे। इस वक़्त अगर आपकी माली हालत ख़राब न हो तो आप कुछ मेरी एआनत फ़र्माइये। मुझे इस वक़्त 200 रुपये की अशद ज़रूरत है। यह रक़म मुझे बतौर क़र्ज़ दे सकें तो ऐन एहसान समझूँगा। 'बत्तीसी' हिस्सा अव्वल छप जाने के बाद जब हिसाब-किताब हो जायेगा तो मुझे मालूम हो जायेगा कि मैं कितने का देनदार हूँ। किताब की बिक्री में आप 200 रुपये वसूल करके तब मुझे दीजियेगा। मगर अब की कमीशन मैं 30 फ़ीसदी से ज़्यादा न दे सकूँगा। हाँ अगर आप 100 जिल्दें दोनों हिस्सों की ख़रीद लें तो 40 फ़ीसदी कमीशन ले लीजिए। इस तरह आपको 220 रुपये में 300 रुपये की किताबें मिल जायेंगी। बहरहाल किसी तरीक़े से मुझे 200 रुपये या इससे कुछ ज़्यादा ज़रूर भेजिये क्योंकि दसहरे तक मुझे 4000 रुपये की फ़िक्र ज़रूर करना है। तंगदस्ती के हीलों की यहाँ समाअत[3] न होगी। और न आपको अपने रुपयों के मुताल्लिक़ कोई ख़दशा है। ज़्यादा से ज़्यादा सूद का नुक़सान। जवाब से जल्दी सरफ़राज़ फ़रमाइये कि किस तारीख तक रजिस्ट्री बीमा का इन्तज़ार करूँ। वस्सलाम।

धनपत राय।

1. महीन अक्षरों वाली, 2. मोटे अक्षरों वाली, 3. सुनवाई।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 3 अक्टूबर, 1920

जनाब मुकर्रमे मन,

तसलीम। किताबों का पार्सल पहुँचा। 'प्रेम बत्तीसी' देखी। बाग-बाग़ हो गया। मुझे यह मजमूआ निहायत पसन्द आया। किताबत जरा और जली होती तो बेहतर होता। लेकिन तब कीमत और ज़्यादा रखनी पड़ती। फ़िल जुमला किताव खूब छपी है और मैं इसके लिए आपका तहेदिल से ममनून हूँ। देखें पब्लिक इसकी क्या क़द्र करती है। पहला हिस्सा भी शायद इस माह में तैयार हो जाय। मैंने दफ़्तर 'ज़माना' को लिख दिया है कि आपके यहाँ पाँच सौ जिल्दें भेज दें। आप भी उनके यहाँ इतनी भी जिल्दें या इससे दस पाँच कम भेज दीजियेगा। मुफ़स्सल ख़त बाद को लिखूँगा।

अहक़र, धनपत राय।



गोरखपुर, 7 अक्टूबर, 1920

बरादर अज़ीज़मन सल्लमहू।

बाद दुआ। तुम्हारा ख़त मिला। पढ़कर कुछ खुशी भी हुई कुछ रंज भी हुआ। खुशी इसलिए हुई कि तुम्हारे दिल में बरादराना मुहब्बत के ऐसे ऊँचे भाव मौजूद हैं, रंज इसलिए कि तुमने मेरी बातों का मंशा ग़लत समझा। मैंने पोद्दार जी को जो ख़त लिखा है उसमें मेरा मंशा सिर्फ यही है कि मैं श्रीपतराय के नाम से साझा चाहता हूँ, अपने या तुम्हारे नाम से नहीं। हम और तुम अपनी फ़िक्र कर सकते हैं और बच्चे ही के आइन्दा के ख़याल से यह सब इन्तज़ाम करने की फ़िक्र है। इसलिए वही साझेदार भी रहे। चूँकि तुम वहाँ मौजूद हो और तुम्हारी निगरानी में उसकी जायदाद रहेगी इसलिए तुम गोया उसकी जायदाद के ट्रस्टी और गार्जियन हो। इन्हीं वजूह से मैं तुम्हारे ऊपर उसकी परवरिश की ज़िम्मेदारी का बार डालना नहीं चाहता था। मैं इसे बहुत (ज़रूरी समझता हूँ) हूँ कि तुम्हारे ज़िम्मे उसकी ट्रस्टीशिप रहे। मैं क्या अगर सब रुपया तुम्हीं देते तब भी यही कहता कि साझा श्रीपतराय के नाम से हो क्योंकि मैं जानता हूँ कि तुम उसे अपन या मेरे नाम के मुक़ाबले में ज़्यादा पसन्द करोगे। और यह तो मैं अब भी कहता हूँ कि जिस जायदाद को मैं तुम्हारे लिए लेता उसके लिए भी तुम्हें कर्ज़ लेने की सलाह न देता और न तुम्हारे ऊपर उसका बार डालता। बलदेव लाल ने कहा था कि मेरे पास सात सौ रुपये हैं, वह मैं तुम लोगों को दे सकता हूँ। चाची साहिया सिर्फ नाना के भरोसे पर वादा करती थीं लेकिन जब नाना साहब मुझे दो सौ रुपये ज़ायद नहीं दे सके (मैंने सात सौ रुपये माँगे थे मगर उन्होंने पाँच ही सौ दिये) तो मैं कैसे उम्मीद करता कि वह तुम्हें या हमें एक हज़ार दे देंगे। इसीलिए मैंने लिखा था कि महताब राय धोखे में हैं यानी हम लोग दोनों धोखे में हैं। काम वही करना चाहिए जो अपने सम्हाले सम्हल सके। क़र्ज़ लेना मुझे किसी तरह पसन्द नहीं, ख़ासकर ऐसे काम में।

मैंने पहले भी पोद्दार जी को जो लिखा था उसका मंशा बजुज़ इसके और कुछ न था कि चूँकि महताबराय कलकत्ते में एक अजनबी आदमी हैं और दुनिया की मक्कारियों से अभी वाक़िफ़ नहीं है इसलिए मैं तुम्हारी ट्रस्टीशिप को उतना ही ज़रूरी समझता हूँ जितना पोद्दार या किसी ऐसे ही मोतबर शख़्स की मदद को। जब तुम खुद लिखते हो कि मैं अपना नाम नहीं रखना चाहता था और बार-बार मुझे लिखते थे कि आप शरीक हो जाइये तो जब मैंने तुम्हारे हुक्म की तामील की तो तुम क्यों बदगुमान होते हो। पोद्दार जी हर एक ख़त में लिखते थे कि बाबू महताब राय मेरे साझेदार होंगे। आप पंच बनियेगा। जब मेरे और उनके दरमियान कोई इख़्तलाफ़ हो तो आप फ़ैसला कीजियेगा। मैंने पंच बनने से बचने के लिए लिखा कि महताब राय साझेदार न होंगे बल्कि श्रीपतराय होंगे और मैं पंच नहीं बनूँगा बल्कि प्रोफ़ेसर रामदास गौड़ को पंच बना दूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे दिल में मेरे और मेरे बच्चों की निस्बत ऐसे ऊँचे ख़यालात हैं। मैं हमेशा.... तुम्हारी सआदतमंदी की तारीफ़ किया करता हूँ। अगर मैं जानता कि तुम इस बात के लिखने से इतने बदगुमान हो जाओगे तो हरगिज़ न लिखता। अगर तुम्हारा बच्चा होता तो मैं इस साझे को अपने और तुम्हारे बच्चे दोनों ही के नाम से लेता या कोई दूसरी जायदाद लेता तब भी और अगर ईश्वर ने ज़िन्दगी बाक़ी रक्खी तो मैं इसे साबित कर

दूँगा। हाँ एक बात ज़रूर है। चूँकि मेरे घर में भी औरत है और तुम्हारे घर में भी औरत है, मैं यह नहीं चाहता कि खुदा न ख़्वास्ता अगर मेरी ज़िन्दगी वफ़ा न करे तो औरतों में तानाज़नी हो और एक दूसरे पर रोब या सख़्ती जताये। मैं यह साफ़ कर देना चाहता हूँ कि मैं अपने लड़के के लिए जो कुछ करता हूँ वह सब अपनी कूवतेबाजू से करता हूँ और उसके चचा पर महज़ उसकी सरपरस्ती और निगरानी का बार डालना चाहता हूँ। महज़ तुम्हें इस बात का मौक़ा देने के लिए कि तुम अपनी सआदतमंदी का इज़हार कर सको, मैं कलकत्ते के कारोबार में शरीक होने पर राज़ी हुआ। हालाँकि मेरा शुरू से इरादा था कि तुम बनारस रहते और यहीं खानदान को अपने साथ रखकर मुझे हर एक फ़िक्र से आज़ाद कर देते। यहाँ फ़ैज़ाबाद में एक ताल्लुक़ेदार प्रेस बिक रहा है। उसकी बाबत मैंने मुंशी गुलहज़ारीलाल को लिखा भी है। खुलासा यह है। मेरा मंशा पोद्दार को इस ख़त लिखने का और कुछ न था कि श्रीपत राय उसका मालिक और महताब राय उसके ट्रस्टी रहें। इसके लिए तुम्हें बदगुमानी की कोई वजह नहीं है। प्रेस का जो नफ़ा होगा (या नुक़सान भी हो सकता है) उसके ख़र्च की मैंने यह सूरत सोची है कि मकान बनवाऊँगा क्योंकि इस तरह हम लोगों के पास काफ़ी रुपया जमा होना मुश्किल है। इसी ख़याल से मैंने तुम्हें प्रेस के काम में लगाया और अब भी हमेशा इसी कोशिश में रहूँगा कि तुम्हारा प्रेस किसी तरह बनारस चला आये। एक और बात याद रक्खो। तुम्हारा दिल मैं जानता हूँ, बहुत साफ़ है, लेकिन औरतों का दिल अक्सर तंगख़याल होता है। तुम्हारी बीवी को ग़ालिबन मालूम हो कि तुम रुपया क़र्ज़ ले रहे हो महज़ इसलिए कि श्रीपत राय के नाम से प्रेस ख़रीदो तो वह इसे हरगिज़ पसन्द न करेगी। तुम सआदतमंदी से ख़्वाह उसे डाँटते रहो लेकिन बहुत मुमकिन है कि इससे तुम्हारी आफ़ियत में खलल पैदा हो और तुम्हारे घर में एक रार मचे। इन सब बातों का खयाल करके मैंने यही इरादा किया कि रुपया सब मेरा हो जो मैंने अपनी मेहनत से वसूल किया हो। वह तुम्हारी निगरानी में लड़के के नाम से लगा दिया जाय। गोया तुम उसकी जायदाद के ट्रस्टी रहो। और जब तुम भी साहिबे औलाद हो जाओ (ईश्वर करे कि मैं वह मुबारक दिन देखूँ) तो हरेक जायदाद में दोनों भाइयों की औलादें बराबर की हिस्सेदार रहें, दोनों का साथ-साथ नाम चढ़े। इसीलिए तुम्हारे दिल में मेरे उस ख़त से ज़रा भी मलाल हो तो उसे निकाल डालो, क्योंकि तुम मेरे ख़त का मंशा पूरी तरह समझ गये होंगे। ईश्वर ने चाहा तो दो-तीन साल में हम लोग इस प्रेस के पूरे मालिक हो जायेंगे और उसे बनारस ले जाकर काम करेंगे।

आज नाना साहब का ख़त आया है। तेजनरायन लाल की बीवी का इन्तक़ाल हो गया। 20 अक्टूबर को ब्रह्मभोज होगा।

अभी पोद्दार जी का ख़त नहीं आया। ख़त आने पर मैं रुपया भेजूँगा। तुम्हारे पास ढाई सौ रुपये मौजूद होंगे, पाँच सौ बलदेवलाल भेजने वाले हैं। मैं सिर्फ़ ढाई हज़ार दूँगा। रघुपति सहाय से वसूल नहीं हुए। कल...रुपये पोद्दार जी के पास पहुँच जायेंगे। अक्टूबर से जनवरी तक दो सौ तुम्हारे पास हो जायँगे, ढाई सौ मेरे पारा तनख़्वाह से होंगे। दो सौ 'जलये ईसार' से मिलेंगे और साढ़े तीन सौ रुपये 'प्रेम बत्तीसी' और 'बाज़ारे हुस्न' के मिलेंगे। गोया एक हज़ार हम लोग जनवरी तक पूरा कर देंगे। फ़रवरी में रघुपति सहाय

से सात सौ रुपये मिल जायँगे। इस तरह अप्रैल तक हम हिसाब साफ़ कर देंगे। तुम आधे प्रेस के मालिक हो जाओगे। वलदेवलाल का रुपया आइन्दा अक्टूबर तक पहुँच जायगा। ज़्यादा दुआ।

तुम्हारा दुआगो, धनपत राय।



गोरखपुर, 20 अक्तूबर, 1920

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। ववापसी जवाब लिख रहा हूँ। अब आप चेक न भेजें, क्योंकि कलकत्ते में साझा करने का इरादा फिस्क़ हो गया है। 1500 रुपये भेज चुका था लेकिन चंद ऐसी बातें हुईं जिनसे वह तजवीज़ तर्क करनी पड़ी। बरवक़्ते मुलाक़ात मुफ़स्सल बयान करूंगा। अब आप ही की सलाह पक्की रही यानी बनारस, इलाहाबाद या कानपुर में प्रेस। छोटक यहाँ आ गए हैं और अब ग़ालिबन कलकत्ते न जायें। बनारस में उन्हें 70 रुपये की पोस्ट ज्ञानमंडल वालों ने आफ़र की है। वहीं गय हुए हैं। लेकिन कल मैंने 'प्रताप' में लाइट प्रेस, कानपुर, के फ़रोख़्त होने का इश्तिहार देखा। क्यों न हम और आप मिलकर इस प्रेस को ले लें। मेरे पास 4000 रुपये हैं। मुमकिन है फ़िक्र करने से कुछ और बहम (मिल जाये) पहुँच जाये। अगर आपको यह प्रेस काम का और चलता हुआ मालूम हो तो उससे गुफ़्तगू कीजिये और क़ीमत वग़ैरह तय फ़रमाइये। तब मुझे नोटिस दीजिये ताकि मैं भी आ जाऊं और मुआमला अपना हो जाय। तब छोटक को कानपुर छोड़ दूँ। वह मैनेजर रहें और आप सुपरवाइजर, मगर आनरेरी। बाँदा से आते ही यह कार्ड आपको मिलेगा। मैं तीन-चार दिन में जवाब का इन्तज़ार करूँगा। वस्सलाम।

धनपत राय।



गोरखपुर, 20 अक्टूबर, 1920

बरादरम,

तसलीम। आपकी तूलानी ख़ामोशी ने ग़ज़ब किया। 'कहक़शाँ' भी अब तक नहीं आया। क्या मुआमला है ? क्या कतई राय हुई ? आपने आइन्दा के लिए कौन सबील निकाली। मुफ़स्सल ख़त चाहता हूँ। 'प्रेम बत्तीसी' की बिक्री की क्या क़ैफ़ियत है ? कुछ निकल रही है ? कानपुर वाले अभी देर कर रहे हैं। नाक में दम हो गया है। अब भूलकर भी अपनी ज़िम्मेदारी पर कोई किताब न छपवाऊँगा। 'प्रेम पचीसी' के दूसरे एडीशन का मसला दरपेश है। आपका 'हिर्मां-नसीब' मुझे कुछ न पसन्द न आया। मोहमल-सी किताब मालूम होती है। हाँ शेख हसन के इब्तदाई हिस्से दिलचस्प हैं। हालाँकि आख़िरी हिस्सा उम्मीद के खिलाफ़ है। ईश्वर ने चाहा तो चन्द माह में मेरा अपना नाविल 'नाकाम' तैयार हो जायगा। 'सैरे दरवेश' की निस्बत आपने क्या फ़ैसला किया ? 'बत्तीसी' रिव्यू के लिए कहीं भेजी या नहीं ? क्या मुमकिन है कि पंजाब टेक्स्ट बुक कमेटी वाले उसे कुतुब में ले लें। लेकिन नहीं, पब्लिक की क़द्रदानी ही पर छोड़िये।

बारिश बन्द हो गयी। क़हत नाज़िल हो गया। मुल्क पर सख़्त मुसीबत है। देखें परमात्मा कैसे नाव पार लगाते हैं।

और क्या लिखूँ। हाँ, मैंने कलकत्ता में प्रेस लेने का इरादा तर्क कर दिया। दूर-दराज़ का मामला था। अब इसी सूबे में इरादा है। कानपुर में एक प्रेस बिक रहा है। 'लाइट प्रेस' नाम है। इसके मुताल्लिक ख़तोकिताबत कर रहा हूँ। तय हो जाय तो नौकरी से मुस्ताफ़ी (इस्तीफा दे दूंगा) हो जाऊँगा। अब यह तौक़ नहीं सहा जाता। ग़ालिबन नवम्बर में आप मुझे बिला तरद्दुद रुपये दे सकेंगे। ज़्यादा वस्सलाम।

अहक़र, धनपत राय।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 29 अक्टूबर, 1920

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। मशकूर हूँ। ईश्वर मरीज़ को जल्द शिफ़ा[1] और आपको तीमारदारी की मुसीबत से नजात दे। बहुत खुश हूँ कि 'बाजारे हुस्न' की किताबत क़रीब ख़त्म है। बेशक शांता के ख़त का एक हिस्सा नक़ल करने से रह गया। आपने खूब गिरिफ़्त[2] की। उसे पूरा किये देता हूँ–

"मैं बड़ी मुसीबत में हूँ। मुझ पर रहम कीजिये। यहाँ की हालत क्या लिखूँ। पिताजी गंगा में डूब गये। आप लोगों पर मुकदमा चलाने की सलाह हो रही है। मेरी दोबारा शादी होनी करार पाई है। जल्द खबर दीजिये। एक हफ्ते तक आपकी राह देखूँगी। उसके बाद इस बेकस यतीम की फ़रियाद आपके कानों तक न पहुँचेगी।"

'प्रेम बत्तीसी' अगर इस अर्से में एक सौ निकल गयी तो आग़ाज़[3] बुरा न समझना चाहिये। 'ज़माना' प्रेस अभी तक वादों ही पर टाल रहा है। तंग आ गया। किसी तरह अब की नजात हो, फिर उसके जंजाल में न फँसूँगा। मेरे प्रेस की शराकत का मसला बिल्कुल अभी तक तय नहीं हुआ। उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला सभी कुछ छापने का इरादा है। मेरा छोटा भाई मैनेजरी के काम में होशयार है। इस वजह से शायद मुझे ज़्यादा दर्दे सर न हो। और फिर किस कारोबार में परेशानियाँ नहीं है, कशमकश तो जमानए हाल की एक लाज़िमी क़ैफ़ियत है। इससे छुटकारा कहाँ।

आपके मुफ़स्सल ख़त का इन्तज़ार कर रहा हूँ। मुझे लाहौर से आप सरमाई[4] चीज़ें कुछ भेज सकते हैं। यहाँ अलवान और शाल वग़ैरह नायाब हैं। मेवे खुश्क भी बाबा के मोल; किशमिश डेढ़ रुपये सेर। बादाम...सेर। लाहौर से यह चीज़ें शायद कुछ अर्ज़ां हों। एक अलवान उम्दा आपके खयाल में कितने का मिल जायगा। यहाँ तो शायद...से कम पर न मिले। अगर तकलीफ़ न हो तो ज़रा रेट दर्याफ्त करके मुझे फ़रमाइयेगा और दूकान का पता भी ताकि मैं खुद मँगवा लूँ। आपको तकलीफ़ नहीं देना चाहता।

'प्रेम पचीसी' आप ही के गले पड़ेगी। हाँ, अगर मेरा प्रेस चल निकला तो मुमकिन है इसी में छप जाय। मगर जहाँ तक मेरा ख़याल है मेरे भाई साहब लिथो का काम पसंद न करेंगे। टाइप के काम में सहूलियत होती है। कातिबों की अनक़ासिफ़ती[5] ने लिथो का काम बहुत दिक़्क़ततलब बना दिया है।

और क्या अर्ज़ करूँ। क़हत पड़ गया। गेहूँ का निर्ख़ पाँच सेर है। घी छः छटाँक, शक्कर तो नायाब है। रुपये की सेर भर भी नहीं। चौदह छटाँक है। कोई क्या खाये और कैसे जिन्दा रहे।

ख़त का जवाब जल्द दीजिए। उम्मीद है आप मअल-खैर[6] होंगे। नानको-आपरेशन ने तो लाहौर का कचूमर निकाल दिया। देखिये यह ऊँट किस करवट बैठता है। वस्सलाम।

धनपत राय।

1. नीरोगता, 2. पकड़, 3. आरंभ, 4. जाड़े की, 5. दुर्लभना, 6. कुशल पूर्वक।



गोरखपुर, 30 अक्तूबर, 1920

भाईजान,

तसलीम। ख़त का अभी तक इंतज़ार कर रहा हूँ। प्रेम बत्तीसी अब और कितनी बाक़ी है। हिस्सा दोम की कुछ जिल्दें निकल भी गयीं और हिस्सा अव्वल अभी तक पड़ा हुआ है। अक्तूबर भी ख़त्म हुआ। अव ऐसी हालत में आप मुझे प्रेम पचीसी के दूसरे एडीशन को ग़ालिबन् कानपुर में छपवाने की हरगिज़ सलाह न देंगे। मैं इसे भी लाहौर से निकलवाऊँगा।

'रूहे हयात' इरसाले ख़िदमत है। हरचन्द कोशिश की कि क़िस्सा वन जाय लेकिन न वन सका। इसके बाद जो क़िस्सा आपके पास पहुँचेगा वह सच्चे मानों में क़िस्सा होगा। यह तो एक ख़याल ही है।

बरादरे अज़ीज़ छोटक ने ज्ञानमण्डल में सत्तर रुपये की नौकरी कर ली। कलकत्ते से इस्तीफ़ा दिया। परसों यहाँ से जायेंगे। हाँ अगर हम लोगों का मुआमला कानपुर में कुछ तै हो जायगा तो बुला लिये जायेंगे। बशर्ते कि हम उन्हें इतनी ही तनख़्वाह दे सकें। आपको अभी तक शायद लाइट प्रेस की तरफ़ जाने की मुहलत न मिली। कहीं से थोड़ा-सा वक़्त निकाल लीजिए।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है। प्रेम बत्तीसी का शबो रोज़ इन्तज़ार है।

आपका, धनपत राय।



गोरखपुर, 10 नवम्बर, 1920

बन्दानवाज़,

तसलीम। इनायतनामा मिला। मशकूर हूँ। 'कहकशाँ' भी नम्बर अव्वल से बेहतर है। मुबारकबाद। दीगर रसाइल पर नोट लिखने की फ़िक्र ज़रूर कीजिये। इससे रसाला मक़बूलतर होगा।

एक क़िस्सा 'बैंक का दीवाला' जाता है। लम्बा हो गया है। देखिये पसंद आये तो रख लीजिये। दो नम्बरों में निकल जायगा। क़िस्सा रूखा है, जज़्बात नहीं आने पाये।

नाविल के मुताल्लिक़ तसवीरों की राय फ़िस्क़ हो गयी। हिन्दी का पब्लिशर इसे जल्द निकालना चाहता है। दूसरे एडीशन में तस्वीरें दी जायँगी। इसलिए फ़िलहाल उनका ज़िक्र फिजूल। रहा मुआवज़ा, वह क़िस्सा पढ़ लेने पर आप खुद तय कर लेंगे। हिन्दी वालों ने मुझे चार सौ रुपये दिये हैं। उर्दू से इतनी उम्मीद नहीं। मगर इक्कीस सतरी सफ़े के बारह आने के हिसाब से क़बूल कर लेने में मुझे ताम्मुल न होगा। यह मेरा पहला ज़ख़ीम नाविल है। मुझे इसकी इशाअत की फ़िक्र है। दूसरा नाविल भी शुरू कर चुका

हूँ। और क्या अर्ज़ करूँ। सैयद मुमताज अली क़िब्ला की ख़िदमत में आदाब कुबूल हो। जवाब से याद कीजिएगा। वस्सलाम।

धनपत राय।



गोरखपुर, 12 नवम्बर, 1920

भाईजान,

तसलीम। ख़त मिला। प्रेम बत्तीसी छप गयी, बड़ी खुशी की बात है। अब टाइटिल छप जाये और किताब मेरे सामने आ जाये तो दूनी खुशी हो। प्रेम पचीसी का फ़ैसला फिर होगा। अगर अपना प्रेस हो गया तो कोई बात ही नहीं। वहीं छपेगी। लाइट प्रेस के मुताल्लिक़ आपने कोई फ़ैसला नहीं किया। जब मालिके प्रेस से मुलाक़ात ही नहीं हो सकी तो आप बजुज़ (सिवाय) प्रेस देख आने के और कर ही क्या सकते थे। इसकी क़ीमत वग़ैरह का फ़ैसला हो जाये तब मैनेजर का मसला तै हो। इसका कोई मैनेजर तो होगा ही। मालूम नहीं क्या तनख़्वाह पाता है। छोटक को ज्ञानमण्डल से हटा लेना मुनासिब नहीं है। कुछ दिनों तक हमें दूसरों के सहारे काम करना पड़ेगा। हमारे शरीक क्या बाबू रामभरोसे भी रहेंगे। प्रेस की मालियत और आने वाले मसारिफ़ (खर्चो) का अंदाज़ा करके मुझे मुत्तिला फ़रमाइएगा। तब मैं भी आने की कोशिश करूँगा।

मज़मून आज की डाक से रवाना करता हूँ। हिन्दी में छप चुका है। शबाब वालों का सख्त तक़ाज़ा था। मगर अब वहाँ जवाब लिख दूँगा। आप उसे शाया कर दें।

बक़िया सब ख़ैरियत है। मेरी सेहत बदस्तूर चली जाती है। बहुत कम काम करता हूँ। एम. ए. का इरादा तर्क कर दिया। चालीस-पचास रुपये किताबों में सर्फ़ हुए। कुछ स्पेन्सर पर देख लिया, तस्कीनं हो गयी।

आपके छोटे भांजे का सानिहा सुनकर सख्त रंज हुआ। कितनी मुद्दत के बाद यह दिन देखना नसीब हुआ था। वह भी आसमान से न देखा गया। ग़रीब माँ के दिल से कोई इस दर्द को पूछे, परमात्मा उसे सब्र दे। वस्सलाम।

धनपत राय।

आपके छोटे भांजे का सानिहा सुनकर सख्त रंज हुआ। कितनी मुद्दत के बाद यह दिन देखना नसीब हुआ था। वह भी आसमान से न देखा गया। ग़रीब माँ के दिल से कोई इस दर्द को पूछे, परमात्मा उसे सब्र दे।



नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 25 नवम्बर, 1920

भाईजान

तसलीम। कार्ड मिला। मशकूर हूँ। आपकी परेशानियों और नीज़ नासाज़िए तबीयत से तरद्दद है। ईश्वर आपको इन झमेलों से फुर्सत दे।

'बाज़ारे हुस्न' का मुआवज़ा दो सौ पचास तय हुए थे। 'प्रेम पचीसी' के लिए यक सद। कुल साढ़े तीन सौ रुपये होते हैं। बज़रिया रजिस्ट्री भिजवा दें। किफ़ायत होगीं।

मेरे ख़त के दीगर उमूर (बातों) का जवाब आपने कुछ न दिया। आपके दूसरे ख़त का इन्तज़ार कर रहा हूँ। तब तक हिस्सा अव्वल 'प्रेम बत्तीसी' का टाइटल वगैरा भी तैयार हो जायगा।

और क्या अर्ज करूँ।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

••

गोरखपुर, 1 दिसम्बर, 1920

भाईजान,

तसलीम। अर्से से कोई ख़त नहीं आया। लाइट प्रेस का मुआमला इल्तिंवा[1] में पड़ गया। ख़ैर जाने दीजिए। प्रेम बत्तीसी का टाइटिल अभी लगाया नहीं। अब तो लिल्लाह[2] देर न कीजिए। जैसा काग़ज़ दस्तयाब[3] हो लेकर किताब निकाल दीजिए। लाहौर से तबादला हो जाये तो दो चार जिल्दें इधर-उधर रिव्यू के लिये भेजी जायें। मेरा क़स्द है कि लीडर में एक छोटा-सा नोटिस दे दिया जाय। शायद कुछ फ़ायदा हो जाये। मुकम्मल हिसाब से मुझे जल्द मुत्तिला कीजिए। मज़मून पहुँचा होगा। वस्सलाम।

धनपत राय।

1. मुल्तवी हो गया, 2. खुदा के वास्ते, 3 मिले।

••

गोरखपुर, 11 दिसम्बर, 1920

भाईजान,

तसलीम। आपका इनायतनामा मिला। ज़हे नसीब। दीगर उमूर (बातों) का जवाब फ़ौरन सोचकर दूँगा। मेरी सेहत ऐसी नहीं है कि अख़बारी काम का बार (बोझ) ले सकूँ। इस ख़याल से मैंने एम. ए. का इरादा तर्क कर दिया है। रहा टाइटिल। आपको बाज़ार में जैसा काग़ज़ मिले, अच्छा बुरा बढ़िया घटिया ब्राउन काला पीला नीला सब्ज़ सुर्ख़ नारंजी लेकिन टाइटिल पेज छपवा दीजिए और किताब की छः सौ जिल्दें (क़िस्म अव्वल 500 क़िस्म दोम 100) लाहौर भिजवा दीजिए। चीड़ के बक्स में भिजवाने से किताबें बहिफ़ाज़त पहुंच जायेंगी। लाहौर वालों के तक़ाज़ों ने मेरा नाक में दम कर रखा है। बोरे में न भिजवायें वर्ना बहुत सी किताबें ख़राब हो जायेंगी।

और सब ख़ैरियत है। मुफ़स्सल ख़त कल लिखूँगा। इतवार है। इत्मीनान रहेगा। प्रेस का ख़याल अब शायद गया। मैंने गवर्नमेंट के काग़ज़ात के रुपये लगा दिये। अब बीस रुपये माहवार घर बैठे मिल जायेंगे। रुपयों का अन्देशा नहीं। वस्सलाम।

धनपत राय।

••

गोरखपुर, 29 दिसम्बर, 1920

भाईजान,

तसलीम। नौरोज़ मुबारक। कई दिन से वाक़ई बीमार हूँ। दस्तों ने दिक़ कर रखा है। प्रेम बत्तीसी निकल गयी। निहायत खुश हुआ। लाहौर जिल्दें भिजवाने के लिये मालगाड़ी खुलने का इंतज़ार करना ही मुनासिब होगा। पार्सल से महसूल और दीगर मसारिफ़ (खर्चे) बहुत पड़ेंगे। वहाँ से हिस्सा दोम की 400 जिल्दें भेजने के लिए लिखता हूँ। अनक़रीब आ जायेंगी। बाबू रघुपति सहाय आजकल नागपुर गये हुए हैं। उन्हें मज़ामीन लिखने की

अब फुर्सत कहाँ। शायद इसे भी नान-कोआपरेशन समझें। बहरहाल कहूँगा। मिस्टर इक़बाल वर्मा सेहर ने अपनी मौसमों वाली नज़्में दीबाचा लिखने के लिए यहाँ भेजी हैं। इरादा था इस तातील में लिख डालता लेकिन दस्तों ने मजबूर कर दिया। आज़ाद मेरे पास बरसों से नहीं आता। अब भिजवायें तो देखूँ। उम्मीद कि आप कुशल से होंगे।

जनाब मैनेजर साहब से कहिए मुझे प्रेम बत्तीसी वग़ैरह कुल हिसाबात से मुत्तिला करें। मुफ़स्सल हिसाब चाहता हूँ। आमदनी और ख़र्च का, ताकि मुझे अपनी पोज़ीशन मालूम हो सके।

आपका, धनपत राय।

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 30 दिसम्बर, 1920

जनाब ख़्वाजा साहब बन्दा नवाज,

तसलीम। इनायतनामा मिला। अगर मालगाड़ी के खुलने में बहुत ज़्यादा यानी एक हफ़्ते से ज़ाइद की देर हो तो आप बराहे करम सौ जिल्दें रेलवे पार्सल से लाहौर भेज दें। वहाँ से बार-बार तक़ाज़े आ रहे हैं और मुझे महजूब होना पड़ता है। मैं वहाँ भी सौ जिल्दें कानपुर भेजने के लिए ताकीद कर रहा हूँ। बक़िया जिल्दें मालगाड़ी से रवाना फ़र्माइएगा। उम्मीद है कि आप हत्तुल इमकान उजलत फ़र्मायेंगे।

दूसरी गुज़ारिश है कि मुझे हिसाब आमदनी और ख़र्च का मुफ़स्सल लिख भेजें। ऐन नवाज़िश होगी। ज़्यादा वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 3 जनवरी, 1921

जनाब भाई साहब,

तसलीम। उम्मीद है आप ने मेरे हस्बे-इसतदआ (प्रार्थनानुसार) 100 जिल्दों का पार्सल लाहौर भिजवा दिया होगा। इसका लिहाज़ भी ग़ालिबन रख लिया होगा कि वज़न का महसूल बेकार न देना पड़े, ख़्वाह जिल्दों की तादाद में कमी-बेशी कर ली जाये। 20 सेर के पार्सल में शायद 100 या इससे कुछ कम जिल्दें आ जायें। 5 जिल्दें यहाँ भिजवा दें। इनायत होगी। मैंने लाहौर वालों को भी लिख दिया है। वहाँ से जिल्दें आती होंगी। हिसाब से भी मुत्तला किया जाना चाहता हूँ। एक मज़मून 'ज़माना' के लिए लिख रहा हूँ। ग़ालिबन् आपको पसन्द आए। क़तरए खून टपका रहा हूँ, मगर आख़िरी नहीं। नवम्बर में सय्यद अब्दुल हामिद का मज़मून खूब था। गो रवीन्द्र बाबू के मज़मून से माखूज़ है, मगर ओरिजिनल रंग आ गया है। ज़िन्दा हूँ। नाविल की हिन्दी कर रहा हूँ। और 'प्रेम बत्तीसी' की फिक्र खाए जा रही है। उम्मीद है आप मय अयाल खुश व खुर्रम होंगे। क्या इस ग़रीबकदे (झोंपड़ी) को आपके क़दमों की ज़ियारत कभी नसीब न होगी। ग़रीबों से इतनी बे-नियाज़ी। मौक़ा मिले तो दो दिन के लिए चले आइये। रात ही भर का तो सफ़र है। मैं तो अपनी सेहत से लाचार हूँ।

आपका, धनपत राय

●●

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 10 जनवरी, 1921

जनाब मुशफ़िको व मकर्रमे बन्दा,

तसलीम। अर्से से हालाते मिज़ाज से मुत्तला नहीं हुआ। तरद्दद है। बराहे करम हालात से मुत्तला फ़रमाइये। मैंने दफ्तर ज़माना को ताकीद की थी कि आपकी ख़िदमत में 'प्रेम बत्तीसी' की छः सौ जिल्दें रवाना कर दें। लकड़ी के संदूक में किताबें बंद करा के स्टेशन भेजी गयीं, लेकिन मालगाड़ी बंद थी। इस वजह से फ़िलहाल सौ जिल्दें बज़रिये रेलवे खिदमते वाला में भेजी गयीं। ज्योंही गाड़ी खुलेगी बकिया पाँच सौ जिल्दें भेज दी जायँगी। आप भी एक सौ जिल्दें हिस्सा दोम को बज़रिया पार्सल रवाना फ़रमावें। कानपुर के पते से। और अगर लाहौर से मालगाड़ी मिल सके तो पूरी चार सौ जिल्दें भेज दें। ताकि ख़र्चा ज़्यादा न पड़े। जैसा मुनासिब मालूम हो वह कीजिये। पाँच सौ जिल्दें ग़ालिबन इसी माह में आपके पास पहुँच जायेंगी।

प्रेम पचीसी के मुताल्लिक़ आपने कुछ तहरीर न फ़रमाया। उम्मीद है कि आप खुश व खुर्रम होंगे।

अहक़र, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 10 जनवरी, 1921

जनाब मुकर्रम,

तसलीम। शुक्रिया। लाहौर वालों को आज ताकीदी ख़त लिख दिया है। हफ़्ते अशरे में किताब पहुँच जायेगी। मेरे पास हिसाब के साथ पाँच जिल्दें ज़रूर रवाना फ़र्माइएगा। मेरे मज़ामीन का दफ़्तर के ज़िम्मे कुल बीस रुपया आता है। वस्सलाम।

मालगाड़ी का इन्तज़ार कीजिएगा ताकि फिर रेलवे पार्सल न भेजना पड़े।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

गोरखपुर, 18 जनवरी, 1921

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। शुक्रिया। बत्तीसी का पैकेट मिला। टाइटिल देखकर रो दिया। बस और क्या लिखूँ। किताब की मिट्टी ख़राब हो गयी। आपने बेहतर काग़ज़ न पाकर यह काग़ज़ इस्तेमाल कराया होगा। ग़ालिबन् किताब की तक़दीर में इस तरह बिगड़ना लिखा था। ख़ैर, फ़िलहाल चलने दीजिए। लाहौर वालों से कह दूँगा कि वह टाइटिल बदल डालें। आपके यहाँ भी अच्छा काग़ज़ मिलते ही टाइटिल बदलना पड़ेगा। कुछ नुक़सान होगा मगर ग़म नहीं। आप मार्च में तशरीफ़ लायेंगे। अभी से दिन गिन रहा हूँ। ज़रूर आइए। क़िस्सा तमाम हो गया। साफ़ करके भेजूँगा।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

नार्मल स्कूल, गोरखपुर, 29 जनवरी, 1921

भाईजान,

तसलीम। बाद इन्तज़ारे[1] शदीदाँ-मदीद[2] इनायतनामे के दर्शन हुए। मश्कूर

किताबें आपने ग़ालिबन कानपुर भेज दी होंगी। मालगाड़ी मिलने पर वहाँ से आपकी खिदमत में पाँच सौ जिल्दें और पहुँचेंगी। आप भी उनके पहुँचने पर तीन सौ जिल्दें और भेज दीजिएगा। सरे वरक़ का मुझे सख़्त अफ़सोस है, यह मोहतमिम[3] साहब प्रेस की इनायत का नतीजा है। मुमकिन हो तो आप सरे वरक़ दूसरा लगवा लें, कीमत मुझसे वज़ा कर लें।

'सैरे दरवेश' और 'प्रेम पचीसी' की एक जिल्द भी मेरे पास नहीं। ज़ियादा तसहीह[4] की ज़रूरत नहीं। किताबत या प्रूफ़ के साथ-साथ तसहीह भी होती जायगी। बस कातिब ने पैराग्राफ़ अलग नहीं किये हैं। अक्सर दो पैराग्राफ़ मिला दिये हैं। इसके सिवा मुझे तो ज़ियादा अग़लात मालूम नहीं होते। आप क़िताबत शुरू करवा दें और दोनों 'बाज़ारे हुस्न' ही के साइज़ पर छपवायें। मुझे भी एक ही साइज़ की किताबें पसन्द हैं। आप इन दोनों किताबों का कापीराइट चाहते हैं या महज़ दूसरे एडीशन का हक़्क़े इशअत है ?

मैंने इधर दो-तीन क़िस्से लिखे हैं एक, 'सुबहे उम्मीद' में है, 'बाद अज़ मर्ग,' दूसरा 'ज़माना' में है, 'नोक-झोंक'। एक और 'ज़माना' में रखा हुआ है। 'मसर्रते हयात'। एक चौथा मेरे पास है, 'दस्ते ग़ैब' पाँचवाँ ज़ेरे तहरीर है जिसमें नान कोआपरेशन का रंग नज़र आयेगा। इनके मुताल्लिक़ मैं आपकी नुक्ताचीनी का शौक़ से इन्तज़ार करूँगा। आपको मेरी तहरीरें जब नज़र आयें, ज़रूर इज़हारे ख़्याल कर दिया करें। इससे मुझे दिली तसकीन होती है। इन क़िस्सों के अलावा एक नाविल 'नाकाम' साफ़ कर रहा हूँ, जो तसनीफ़ से कम जाँसौज़ काम नहीं है। यह ख़त्म हो जाये तो ड्रामे में हाथ लगाऊँ। इसका प्लाट तैयार है, चार ही ऐक्ट में ख़त्म हो जायगा मगर सीन पंद्रह-सोलह से कम न हो सकेंगे। कामयाब हो सकूँगा या नहीं, ईश्वर ही जाने। 'नाकाम' ज्योंही तैयार हुआ, आपके मुलाहिज़े के लिए भेजूँगा। मैं अपनी किताबों की तौसीए इशाअत के एतबार से पंजाब के किसी रिसाला में लिखना चाहता हूँ। लेकिन 'कहकशाँ' के बाद अब मुझे कोई ऐसा रिसाला नज़र नहीं आता। अब आपका शग़ूल क्या रहता है ?

मेरे एक दोस्त आपकी किताब 'भारत सपूत' का हिन्दी तर्जुमा कराना चाहते हैं। उनका इरादा उसे पाँच हज़ार छापने का है। अगर आप पसन्द फ़रमायें तो इस किताब की एक जिल्द मेरे पास भेज दें। जो नुस्ख़ा आपने नज़्र किया था वह कोई साहब उड़ा ले गये। यों हिन्दी में गाँधी जी की कई सवाने-उम्रियाँ[5] मौजूद हैं लेकिन आपकी तसनीफ़ में और ही लुत्फ़ है। इसी वजह से मेरे दोस्त मौसूफ़ उसे हिन्दी जामा पहनाने के शायक़ हैं। और क्या लिखूँ ? क्या मेरी और आपकी मुलाक़ात कभी न हो सकेगी ? दुनिया में मेरे सिर्फ़ गिनेगिनाये दोस्त हैं। आप भी इस निहायत महदूद तादाद के रुकने-ख़ास[6] हैं। मगर अफ़सोस कि अभी तक सूरत-आशनाई भी नहीं। और न हो तो अपना फ़ोटो ही भेज दीजिए। हाँ, हम खुरमा-ओ-हमसवाब' व 'किश्ना' वग़ैरह मेरी इब्तदाई तसानीफ़ है। पहली किताब तो लखनऊ के नवल प्रेस ने शाया की थी दूसरी किताब बनारस के मेडिकल हाल प्रेस ने। यह ग़ालिबन उन्नीस सौ की तसानीफ़ है। मेरे पास इनमें से एक जिल्द भी नहीं, और न शायद पब्लिशरों के यहाँ ही निकल सकें और न उनके देखने को ज़रूरत ही है। नौमश्क़ी के सारे उयूब उनमें मौजूद हैं। मौलाना मुमताज़ अली साहब

किब्ला को ख़िदमत में दस्तबस्ता आदाब फ़रमा दीजिएगा।

आपका, धनपत राय।

1-2 लंबी और कठिन प्रतीक्षा, 3. मैनेज़र, 4. जीवन-चरित्र, 5. विशिष्ट सदस्य, 6. दोस्त।



8 फरवरी, 1921

भाईजान,

तसलीम। तसवीर मिली। बहुत ममनून हूँ। इसने मुलाक़ात की आरज़ू दह-चन्द कर दी। आपकी मेरे ज़ेहन में जो तसवीर थी वह कुछ और ही थी। मैं अगर मुसव्विर होता तो 'शेर' आर 'अदब' की ग़ालिबन यही तसवीर बनाता।

महात्मा भी गाँधी मिले[1]। (आज यहाँ उनकी आमद है।)

आपने शायद अभी तक 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा दोम की जिल्दें कानपुर नहीं इरसाल फ़रमाईं। वहाँ की फ़र्माइशें रुकी हुई हैं। बराहे करम अब ताख़ीर न फ़र्माइये। अगर मालगाड़ी से न भेज सकें तो फ़िलहाल 100 जिल्दें ही रवाना फ़र्मायें।

इससे पहले के ख़ुत के जवाब का मुन्तज़िर हूँ। वस्सलाम।

धनपत राय।

1 यानी 'महात्मा गांधी' नामी किताब मिली



गोरखपुर, 15 फ़रवरी, 1921

भाईजान,

तसलीम। कई दिन हुए जनाब ख़्वाजा साहब ने हिसाब भेजा था। देखा। इत्मीनान हो गया। मैं कुछ ज़्यादा मक़रूज (क़र्ज में) नहीं हूँ। कुल दस रुपये का मुआमला है। इंशा अल्ला माह दो माह में साफ़ हो जायगा।

मैं कल सरकारी मुलाज़मत से सुबुकदोश हो गया। आज इस्तीफ़ा भी मंजूर हो गया। यहाँ से एक हफ़्तेवार उर्दू अख़बार निकालने का क़स्द है। प्रेस की भी तलाश है। ग़ालिबन् यहाँ रुपये का भी इंतज़ाम हो जायगा। अर्से से यह ख़याल था। अब इसके पूरा होने के दिन आये। फ़िलहाल खुतूत सी पते से लिखिएगा। दो चार रोज़ में अपने नये हालात से आपको मुत्तिला करूँगा। क्या कानपुर में कोई लीथो मशीन मिल सकेगी। अगर मुमकिन हो तो मुत्तिला फ़रमाइए। इसी हीले से ज़रा मुलाक़ात हो जाये। उम्मीद है आप खुश होंगे।

आपका दुआगो, धनपत राय।



गोरखपुर, 23 फ़रवरी, 1921

भाईजान,

तसलीम। आज़ाद के कई पर्चो का पैकेट मिला। बेशक इस अख़बार ने तरक़्क़ी की है और इस पर मैं आपको और नीज़[1] असिस्टैण्ट एडीटर साहब को मुबारकबाद देता हूँ। इसका दर्जा अब मुल्क के बेहतरीन उर्दू अख़बारात में है। ग़ालिबन इशाअत[2] पर भी

कुछ असर ज़रूर पड़ेगा।

प्रेम बत्तीसी हिस्सा दोम की जिल्दें ग़ालिबन् आपके यहाँ पहुँच गयी होंगी। कुछ मालूम नहीं आपके यहाँ से भी बक़िया 500 जिल्दें गयीं या नहीं।

मैंने तर्के मुलाज़िमत कर ही ली। आप मुझे बहुत अर्से से इसकी तहरीक[3] कर रहे थे। हालांकि यह आपकी तहरीक का असर नहीं है बल्कि रफ़्तारे ज़माना का। मगर किसी तरह अब मैं आज़ाद हो गया। अब बतलाइए क्या करूँ। प्रेस और अख़बारनवीसी और कुतुबनवीसी के सिवा मैं कोई दूसरा काम करने के क़ाबिल नहीं। कपड़े बुनने के लिए तैयार नहीं। काश्तकारी मेरे किये हो नहीं सकती। क्या आपका इरादा अब भी प्रेस की तरफ़ है। मैं चार पांच हज़ार का सरमाया और अपना सारा वक़्त आपके नज़्र करने को तैयार हूँ बशर्ते कि आप भी मेरे मुआविन[4] और शरीक हों। मैं अब ज्यादा तज़बज़ब[5] में नहीं रहना चाहता। जल्द कोई न कोई फ़ैसला करना चाहता हूँ। मेरे लिए गोरखपुर बनारस और कानपुर तीन मुक़ामात हैं; और भी जगह थोड़ी बहुत आसानियाँ हैं लेकिन कानपुर में जितनी आसानी नज़र आती है उतनी और कहीं मिलती नहीं। मैं एक अच्छा प्रेस उर्दू हिन्दी और अंग्रेज़ी का खोलना चाहता हूँ जो फ़िलहाल महज़ जाब वर्क पर चले। अख़बार से उसे कोई ताल्लुक़ न रहे। मैं ज़ाती तौर पर अख़बार का काम भी कर सकता हूँ मगर ज़्यादा नहीं। अगर आप चाहें तो दो एक दिन के लिए कानपुर आ जाऊँ और बिल मुसाफ़[6] उमूर[7] तै हो जायें। लाइट प्रेस अभी ग़ालिबन् फ़रोख्त न हुआ होगा। अगर वह बिक भी गया हो तो कलकत्ते से मशीन और ट्रेडिल मंगाया जा सकता है। लीथो प्रेस का इंतज़ाम भी ज़रूरी है ताकि अपने घर के काम के लिए दूसरों का दस्तनिगर न होना पड़े। मैनेजरी का काम हम और आप दोनों मिलकर खूब कर सकते हैं। एडिटरी के काम में भी हत्तुल इमकान आपकी थोड़ी मदद कर सकता हूँ। इस ख़त के जवाब का मुन्तज़िर हूँ। अगर आपने कुछ उम्मीद न दिलायी तो और कोई सबील सोचूँगा। यहाँ मैंने फ़िलहाल एक कपड़े का कारख़ाना खोल रखा है जिसमें आठ करघे चल रहे हैं। कुछ चर्ख़े वग़ैरह भी बनवाये जा रहे हैं। एक मैनेजर पच्चीस रुपये माहवार पर रख लिया है। गो उससे मुझे माहवार कुछ न कुछ नफ़ा ज़रूर होगा लेकिन इतना नहीं कि मैं उस पर तकिया कर सकूँ। बावजूद नान-कोआपरेशन करने के अभी तक मैं दौलत की तरफ़ से बिल्कुल मुस्तग़नी[8] नहीं हूँ। और मैं ज़ाती तौर पर हो भी जाऊँ लेकिन मेरी बीवी को यक़ीन हो जाये कि अब इसी तरह उसकी ज़िन्दगी बसर होगी तो वह मुझे हरगिज़ मुआफ़ न करेगी।

और क्या अर्ज़ करूँ। आजकल एक देहात में मुक़ीम हूँ। खूब आराम से दिन कट रहे हैं। आज़ादी का लुत्फ़ उठा रहा हूँ। आप ख़त इस पते पर रवाना फ़रमायें :

धनपत राय, मार्फ़त महादेव प्रसाद पोद्दार, उर्दू बाज़ार, गोरखपुर।

तालीमी नान-कोआपरेशन के मुताल्लिक़ आपका मालूम नहीं क्या ख़याल है। मैंने इस पर एक मज़मून लिख रखा है। मैं इसकी असली अहमियत दिखलानी चाहता हूँ। दस्ते ग़ैब एक क़िस्सा भी तैयार है। वह भी जल्द ज़माना के नज़्र होगा। ज़ियादा वस्सलाम।

आपका, धनपत राय।

1. साथ ही, 2. प्रचार; संस्करण, 3. प्रेरणा, 4. सहयोगी, 5. दुविधे, 6 आमने-सामने, 7. बातें, 8. विरक्त।

गोरखपुर, 7 मार्च, 1921

भाईजान,

तसलीम। कल कार्ड मिला। दो मज़ामीन भेजे थे। ग़ालिबन् पहुँचे होंगे। मैं कानपुर नहीं आ सका। कई दिन से बुख़ार की तकलीफ़ हो रही है। कानपुर में आपने यह नहीं लिखा कि मैं क्या काम करूँगा। महज़ प्रेस खोलकर बैठे रहना तो मेरे लिए फ़िज़ूल-सा मालूम होता है। मैनेजरी करने की मुझमें लियाक़त नहीं। अख़बार का काम कर सकता हूँ लेकिन उसकी सूरत क्या है ? इसके मुक़ाबले में तो मुझे यही ज़्यादा मुनासिब मालूम होता है कि यहाँ से एक अच्छा उर्दू अख़बार निकालूँ। मैं दो चार दिन में प्रेस वग़ैरह की फ़िक्र में कानपुर आऊँगा। लखनऊ दो एक दिन ठहरूँगा और प्रेस मिलते ही अख़बार का डिक्लेरेशन दिया जायगा। काम ही तो करना चाहिए, क्या कानपुर और क्या गोरखपुर। रोज़ी यहाँ भी है और वहाँ भी है। दौलत की हवस नहीं।

और ज़्यादा क्या लिखूँ। बवक़्ते मुलाक़ात खूब बातें होंगी।

आपका, धनपत राय।



ज्ञान मण्डल, काशी, 22 मार्च, 1921

प्रिय द्विवेदी जी, वंदे।

मैं आने के दिन जल्दी के कारण आपसे मिल न सका। अपना आदमी आपको देखने को भेजा था पर आप दफ्तर में न थे। मुझे दुबारा आने का अवकाश न मिला। होली की संख्या तो निकल ही गयी होगी। 'तहक़ीक़' का क्या हाल है ? अगर वह बंद हो गया तो मैं प्रेस का प्रबन्ध करूँ। लखनऊ में प्रेस मिल रहा है। अगर नहीं वन्द हुआ तो आप मुझे अभी गोरखपुर न बुलाइए। यदि आपकी इच्छा हो तो मैं यहाँ से प्रति बुधवार को अग्रलेख और टिप्पणियाँ भेज दिया करूँ। वह बृहस्पति को वहाँ पहुँच जायगा और रविवार तक आपका पत्र निर्विघ्न निकलता रहेगा। नौ कालम का मैटर देने का भार मैं ले सकता हूँ। इस सेवा के लिए आप मुझे पचास रुपये भी दे देंगे तो मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा। यहाँ देहात में इतना मेरे लिए काफी है। होली संख्या के वाद 'स्वदेश' फिर कब निकलेगा। पत्र का उत्तर कृपया शीघ्र ही दीजिएगा।

मेरे पास भूल से चला आया है। लौटा दूँगा।

मार्च में मैंने 'स्वदेश' की जो सेवा की है उसके लिए आप जो कुछ उचित समझें वह कृपया भेज दें।

भवदीय, धनपत राय।



ज्ञान मण्डल, बनारस सिटी, 23 मार्च, 1921

बरादरम,

तसलीम। मैं यहां 19 तारीख़ को आ गया और घर पर मुक़ीम (स्थित) हूँ। होली के एक दो दिन बाद कानपुर आने का क़स्द करता हूँ। ज़माना के लिए 'लाल फ़ीता' नाम का एक क़िस्सा लिखा है। उसे भी साथ लेता आऊँगा।

गोरखपुर से उर्दू अख़बार निकालने का इरादा ख़त्म हो गया। वहाँ एक हफ़्तेवार अत्तहक़ीक़ जो पहले बन्द हो गया था फिर जारी हो गया और इसकी मौजूदगी में किसी दूसरे हफ़्तेवार की खपत नहीं हो सकती। आपके नौजवान दोस्त ग़ालिबन् मेरे तवक़्क़ुफ़ (देरी) से बददिल न हुए होंगे। मैं होली के बाद चलूँगा।

बाक़ी सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय



ज्ञान मण्डल, काशी, 5 अप्रैल, 1921

भाईजान,

तसलीम। मैं नादिम (लज्जित) हूँ कि अब तक कानपुर नहीं आ सका। मेरा अख़बार निकालने का मुसम्मम (पक्का) इरादा है बशर्ते कि काफ़ी सरमाया फ़राहम हो जाये और मददगार काफ़ी मिल जायें।

दो एक रोज़ में ज़रूर आऊँगा। और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है।

आपका, धनपत राय।



ज्ञानमंडल, काशी, 8 अप्रैल, 1921

प्रिय द्विवेदी जी, वंदे।

पत्र मिला। मैं स्वयं आपसे बिना मिले चले आने पर अत्यन्त लज्जित हूँ। हालाँकि मैंने आपसे मिलने की चेष्टा बहुत की पर आप दफ्तर में न थे और मैं सब तैयारियाँ कर चुका था। क्षमा कीजिए। मैं अभी तक घर पर ही हूँ। प्रेस का प्रवन्ध कर रहा हूँ। ज्ञानमण्डल से एक साप्ताहिक पत्र भी निकलने वाला है। संभव है उसका सम्पादन करने लगूँ। सौ रुपये मिलेंगे। इस बीच मैं दैनिक 'आज' के लिये महीने में चार लेख देना तय कर लिया है। तीन रुपया प्रति कालम मंजूरी हुई है। मुझे 'स्वदेश' की सेवा करने से इनकार नहीं है पर सोलह कालमों के लिए तीस रुपया बहुत कम है। दो रुपया से भी कम। समय फालतू होता तो कहता लाओ यही सही, पर निर्वाह भी तो होना चाहिए। चार पृष्ठ लिखने के लिए चार दिन दो-तीन घंटा रोज़ मिहनत करना ज़रूरी है। तीन दिन 'आज' के भेंट कर दूँ तो मुझे कुल साठ रुपये मिलेंगे इसमें यहाँ गुज़र होना मुश्किल है। पूँजी में से खाने लगूँ तो कितने दिन खाऊँगा। इसलिये समय का अधिक लाभयुक्त उपयोग करना आवश्यक है। अतएव मैं आपसे किसी बंधन में न पड़ूंगा। अवकाश मिलने पर जो कुछ हो सकेगा लिख दिया करूँगा। मैंने समय का विचार कर ही पचास रुपये लिखे थे। रुपये कमाने का ख़याल न था। ख़ैर, जाने दीजिये।

अच्छी बात है उर्दू पत्र न निकालिए। झंझट है।

बीस रुपये जो आपने प्रदान किये उसके लिये कोटिशः धन्यवाद। बड़े वक्त पर पहुँचे क्योंकि मुझे एक गाय लेनी थी और कहीं से कुछ मिलने का सहारा न था।

देहात में हूँ। कुछ थोड़ा-सा प्रचार का काम भी कर लेता हूँ।



ज्ञानमंडल, बनारस, 18 अप्रैल, 1921

मकर्रमे बन्दा,

तसलीम। अर्साए दराज़ से आपकी ख़ैरियत से मुत्तला नहीं हूँ। उम्मीद है बख़ैरो आफ़ियत होंगे।

मैं इधर एक माह से अपने घर आ गया हूँ। मुलाज़मत से मुसताफ़ी हो गया हूँ। कुछ लिटरेरी काम करता हूँ और कुछ इशाअती। आपका शुगूल आजकल क्या है ?

'प्रेच पचीसी' की इशाअत के मुताल्लिक क्या फ़ैसला किया ? 'बाज़ारे हुस्न' की क्या हालत है ?

'प्रेम बत्तीसी' की जिल्दें आपके यहाँ कितनी पहुँच गयीं और उनकी बिक्री कैसी हो रही है।

बराहे करम इन उमूर से सरफ़राज़ फ़र्माइये।

'तहज़ीबे निसवां' और 'फूल' अभी तक गोरखपुर जाते हैं। वहाँ भेजने की मुमानियत कर दें और जब तक मैं अपना कोई मुस्तक़िल (स्थायी) पता न लिखूँ ऊपर के पते से ही भिजवाने की इनायत करें। और तो कोई हाल ताज़ा नहीं। हालाते मिज़ाज से जल्द मुत्तला फ़र्मावें। सख़्त तशवीश (चिन्ता) है।

आपका, धनपत राय।



बनारस, 14 मई, 1921

भाईजान,

तसलीम। बख़ैरियत हूँ। उम्मीद है मकतब बख़ैर-ओ-ख़ूबी अंजाम पा गया होगा। अदम-ए-तआवुन वाला मज़मून आपने देख लिया या नहीं। अगर देख लिया हो और उसमें कुछ क़ाबिले-एतराज़ न हो तो बराहे करम कातिब को दे दें। वर्ना बैरंग ज्ञानमण्डल के पते से मेरे पास भेज दें। मैंने सार्टीफ़िकेट वग़ैरह महाशय काशीनाथ के पास भेज दिये हैं। अब उनके जवाब का मुन्तज़िर हूँ। सेन बाबू अगर वापस आये हों तो उनसे कहिएगा 'मंजरी' प्रताप के दफ़्तर में महाशय बालकृष्ण शर्मा के पास भिजवा दें। मैं उन्हीं के पास से लाया था। और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है।

एक क़िस्सा 'तालीफ़े-क़ल्ब' लिखा है। ठाकुरद्वारा का मकान बनना शुरू हुआ या नहीं। मेरा आना आप मुक़द्दम (निश्चित) समझें, अगर महाशय जी ही की तरफ़ से कोई रुकावट न हुई। ठाकुरद्वारा मिल जाये तो मुझे आपके कुर्ब (निकटता) के अलावा किफ़ायत होगी। ज़्यादा वस्सलाम। बच्चों को दुआ।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



बनारस, 27 मई, 1921

भाईजान,

तसलीम। आप शायद सीधे गये होंगे। मुझे आज आपके दोनों ख़ुतूत मिले क्योंकि बाबू महताब राय नाना साहब के यहाँ नवेद में चले गये थे और मेरे पास चिट्ठियां न पहुँच सकती थीं। मैं ख़ुद तो अभी कानपुर न आ सकूँगा लेकिन आज़ाद के लिए हत्तुल

इमकान (यथासंभव) लिखने की कोशिश करूँगा। गर्मी इतनी शिद्दत की है कि बैठने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। महाशय जी का ख़त आया था। अनक़रीब वह बाक़ायदा ख़त भेजनेवाले हैं। शिमले से वहाँ की कार्रवाइयों की ख़बर देते रहियेगा बशर्ते कि ख़िलाफ़ ज़ाब्ता न हो। वस्सलाम।

धनपत राय

••

ज्ञानमण्डल, काशी, 11 जून 1921

भाईजान,

तसलीम। ग़ालिबन् आप शिमले से वापस आ गये होंगे। वहाँ की तरावत ने तो आपको ताज़ा कर दिया होगा। यहाँ तो गर्मी के मारे तवख़ीर (उबलने की कैफियत) हो रही है। न दिन को चैन है न रात को।

तालीमी अदम-ए-तआवुन वाला मज़मून अगर देख सके हों तो उसके मुतअल्लिक़ अपने फ़ैसले से मुत्तला कीजिएगा। 'लाल फ़ीता' साफ़ कर रहा हूँ, जल्द भेजूँगा। अभी तक महाशय काशीनाथ जी ने मेरे पास फ़ार्मल ख़त नहीं भेजा। आपके ख़त से मालूम हुआ था कि जून के पहले ही हफ़्ते में भेज देंगे। आज तो 11 जून आ गयी।

उम्मीद है कि आप मय अयाल खुश होंगे।

नियाज़मन्द, धनपत राय

••

बनारस, 19 जून, 1921

भाईजान,

तसलीम। आपके मुतवातिर तीन कार्ड आये। एक का जवाब दे चुका हूँ। दूसरे का जवाब दे रहा हूँ और तीसरे के जवाब में बनफ़्से नफ़ीस[1] हाज़िर हो जाऊँगा। कल सब तैयारियाँ कर चुका था। इक्का तक मंगवा लिया था (देहात में यह आसान काम नहीं है) लेकिन शाम को छोटक नाना साहब का ख़त लाये कि मैं सोमवार को तुमसे मिलने आ रहा हूँ। इसलिए तूअन् ओ करहन्[2] रुकना पड़ा। और वही पहली मुअय्यन तारीख़ मुक़द्दम रही। मैं 22 को चलूँगा और 23 को पहुँचूँगा। पहले इरादा था कि अयाल को इलाहाबाद छोड़ दूँ और कानपुर में मकान तय करके लिवा लाऊँ। अब आप फ़रमाते हैं कि मकान भी रोक लिया गया है। यह मुश्किल भी आसान हो गयी। अब मय अयाल के कानपुर आऊँगा। मुमकिन हो सका तो आपको ठीक वक़्त से मुत्तला कर दूँगा। मकान मौजूद ही है। कोई तरद्दुद न होगा। मेरी ज़रूरतों से आप वाक़िफ़ हैं ही लेकिन बग़रज़ मुहाल अगर मकान मुझे पसंद न भी आया तो फिर दूसरा तलाश करूँगा। हाँ अगर आते ही आते मकान न मिला तो फिर मुझे आपके घर को ख़ाना बेतकल्लुफ़ बनाना पड़ेगा दो एक दिन मस्तूरात[3] को भी एक देहक़ानी औरत की मेहमानवाज़ी करनी पड़ेगी जिसमें ग़ालिबन् ज़्यादा दिक़्क़त न होगी। आप भावज साहिबा को तैयार अलबत्ता कर दें ताकि वह इस आमद को बलाये नाख़ास्ता[4] न ख़याल करें।

म्यूनिसिपल सेक्रेटरी का ज़िक्र आप फ़िज़ूल करते हैं। एक मुआहिदा[5] तय हो जाने के बाद अब मैं किसी दूसरी मुलाज़िमत का ख़याल भी नहीं कर सकता। मैंने म्यूनिसिपल

मुलाज़िमत की कोशिश उसी हालत में की थी जब महाशय काशीनाथ जी ने कोई हतमी वादा न किया था। उनके और आपके यक़ीन दिलाने के बाद फिर मैंने इस ख़याल को दिल में जगह ही नहीं दी—वर्ना यहाँ मुझे डेढ़ सौ रुपया माहवार, मकान मुफ़्त और काम हस्बे ख्वाहिश की सूरत पेश हो गयी थी। वह मैंने मंजूर न किया। कुछ तो मुआहदे का ख़याल था और इससे ज़्यादा आपके कुर्ब का ख़याल। महाशय जी की हमदर्दी और सलामतरवी[6] भी इस फ़ैसले में मुईन[7] हुई। बस यह आख़िरी फ़ैसला है। अभी बारिश नहीं हुई हालांकि हवा में इतनी हिद्दत[8] नहीं है। दीगर हालात साबिक़ दस्तूर हैं। चर्ख़े बनवा रहा हूँ। बढ़ई बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। ज़ियादा वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

लाल फ़ीता, तालीफ़े क़ल्ब वग़ैरह कानपुर आकर ही साफ़ होंगे। अब तो यहाँ जी नहीं लगता।

1 सशरीर, 2. मजबूरन, 3 स्त्रियों 4. अयाचित विपत्ति, 5 पक्की बात, 6 सद्भावना, 7. सहायक, 8 गर्मी।



मारवाड़ी स्कूल, नयागंज, कानपुर, 26 जून, 1921

जनाबे मोहतरम ओ मकर्रमे बन्दा,

तसलीम। मिज़ाजे अक़दस[1] ? कई माह से मुझे आप साहिबों के ख़ैरियतें मिज़ाज की खबर न मिली। यक गूना तरद्दुद है। भाई इमतियाज़ अली साहब के पास कई ख़त लिखे मगर मालूम नहीं क्यों उन्होंने ग़ैर-मामूली सुकूत[2] से काम लिया। मुझे मुतलक़ ख़बर नहीं कि 'बाजारे हुस्न' की इशाअत का काम कितना हुआ है और इसमें कितनी देर है। 'प्रेम बत्तीसी' की जिल्दें यहाँ आप की ख़िदमत में भेजी जाने के लिए रखी हुई हैं। लेकिन आपके किसी रिसाले में उसका इश्तिहार तक नज़र नहीं आता। कुछ राज़ समझ में नहीं आता। बराहे करम मुफ़स्सल हालात से सरफ़राज़ फ़रमावें। ऐन एहसान होगा। 'तहज़ीबे निसवां' मेरे पास मुन्दर्जा बाला[3] पते से इरसाल फ़रमावें। मैंने तर्के मवालात करके सरकारी मुलाज़िमत से इस्तीफ़ा दे दिया और अब इस क़ौमी पाठशाला की हेडमास्टरी पर आ गया हूँ। हज़रते 'ताज' और कई किताबें शाया करने वाले थे। इशाअत का दायरा वसीह करना चाहते थे। मगर यह तूफानी ख़ामोशी कुछ और ही कहती है। उम्मीद है जवाबे ख़त से महरूम न रखा जावेगा।

नियाज़मंद, धनपत राय प्रेमचंद।

मैनेजर, दारुल अशायत पंजाब, लाहौर।

1 पाकीजा, 2 ख़ामोशी, 3 उपरोक्त।



मारवाड़ी हाईस्कूल, कानपुर, 3 अगस्त, 1921

बरादरम,

तसलीम। मज़मून भेजा था। रसीद नहीं आई। क्या मज़मून पसन्द नहीं आया। मुत्तला फरमावें।

कल रेल से 'प्रेम बत्तीसी' रवाना होगी। ख़्वाह माल से ख़्वाह पार्सल से। तवक्कुफ़ न होगा। माल का इन्तज़ार न करूँगा। किताबें बक्स में पड़े-पड़े सड़ रही हैं। इश्तिहार

जारी फ़र्मावें।

'तहज़ीब' और 'फूल' अब नहीं आते। क्या बनारस जाते हैं ? पता तबदील करा दें तो एहसान होगा। और अगर बन्द कर दिया हो तो कोई ज़रूरत नहीं।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

मारवाड़ी हाईस्कूल, कानपुर, 27 अगस्त, 1921

बरादरम,

तसलीम। ख़त कई दिन हुए आया। मेरा क़िस्सा पसन्द न आया। मुझे ख़ुद भी यही ख़ौफ़ था। इसकी तनक़ीद आपने मुनासिब की है। बेशक क़िस्सा दब गया है। आइन्दा एहतियात रखूँगा। 'ज़माना' के जुलाई नम्बर में 'लाल फीता' एक क़िस्सा है। इसके मुताल्लिक़ भी अपनी राय तहरीर फ़रमाइयेगा। क्या अबकी बार भी क़िस्सा दब गया, या मैं कुछ कामयाब हुआ। कम से कम मैंने कामयाब होने की कोशिश ज़रूर की थी। आपकी राय का बेताबी से मुन्तज़िर रहूँगा। 'मख़ज़न' क्यों नहीं आया ? आपके ख़त के लिए मैं चश्म बराह हूँ।

आप इस क़िस्से को 'मख़ज़न' में शाया नहीं कर सकते तो इतनी तकलीफ़ कीजिए कि इसे 'बन्देमातरम' आफ़िस में भेज दीजिए। वहाँ निकल जायगा। 'मख़ज़न' के लिए मैं जल्द लिखूँगा। क़िस्सा होगा या कुछ और अर्ज़ नहीं कर सकता। ज़ियादा वस्सलाम

नियाज़मंद, धनपत राय।

●●

मारवाड़ी विद्यालय, नयागंज, कानपुर, 5 नवंबर, 1921

बरादरम,

तसलीम। मुझे चपरासी की ज़बानी मालूम हुआ कि आपको किसी चपरासी की ज़रूरत है। हामिल-ए-रुक़्क़ा शिवप्रसाद-इसी विद्यालय में 3-4 साल तक चपरासी रह चुका है। जून में पैरों में चोट लग जाने के बाइस बेकार हो गया था। आदमी तजुर्बेकार मालूम होता है। कम-से-कम शहर के मुहल्लों और गली-कूचों से वाक़िफ़ है। हालांकि बहुत फ़हीम (तीक्ष्ण बुद्धि) नहीं है। अगर आप मुनासिब समझें इसे रख लें। अभी इम्तहानन् एक महीने के लिए रखें। अगर इत्मीनान हो जाये तो फिर मुस्तक़िल रखें। आज शाम को साढ़े चार बजे आऊँगा। ग़ालिबन् आपसे मुलाक़ात हो जायगी मगर मेरी वजह से आप अपने engagements में कोई हर्ज न होने दीजिएगा।

आपका, धनपत राय।

●●

मारवाड़ी हाईस्कूल, कानपुर, 19 दिसम्बर, 1921

मुश्फ़िक़े मन,

तसलीम। अब तो आपके ख़तों के लिए महीनों तरस जाता हूँ। मैं समझता हूँ मैं ही अदीमुल फुर्सत हूँ। पर आप मुझसे ज़्यादा मसरूफ़ेकार (व्यस्त) नज़र आते हैं। या यह बेएतनाई तो नहीं है।

'बाज़ारे हुस्न' की बाक़ी किताबत अभी ख़त्म हुई या नहीं। किताब के शाया होने का कब तक इन्तज़ार करूँ।

'प्रेम बत्तीसी' की बिक्री कैसी हो रही है। आपने किसी अख़बार में ग़ालिबन इश्तिहार नहीं दिया। आपने उर्दू लिटरेचर की ख़िदमत का बीड़ा उठाया है तो ज़्यादा ज़िन्दादिलाना जोश के साथ काम करना चाहिये। इस वायज़ाना (उपदेशकों जैसे) मशविरे के लिए मुआफ़ फ़र्माइयेगा।

उम्मीद है कि आप बख़ैरो आफ़ियत खुश व खुर्रम होंगे।

नियाज़मंद, धनपत राय।



कानपुर, 28 दिसम्बर, 1921

भाईजान,

तसलीम। इधर दो तीन दिन से आ न सका। मालूम नहीं अज़ीज़ सेन की तबीयत कैसी है।

जिस दिन आपके यहाँ से आया उसी दिन रात को ज़ीने पर से गिर पड़ा। दोनों अंगूठों में सख़्त चोट आई और एक घुटनी भी फूट गयी। कमर में भी चोट लगी। इस वजह से घर में मुक़ैयद (कैद) हूँ।

लाहौर से सैयद इम्तियाज अली ताज का एक ख़त आया है। वह प्रेम पचीसी हिस्सा दोम एक रुपये बारह आना में फ़रोख़्त कर रहे हैं और कहते हैं इन दामों वहाँ इसके ख़रीददार हैं। ख़्वाजा साहब से ताकीद फ़रमा दें कि वह नवम्बर के 'ज़माना' और अगले 'आज़ाद' में हिस्सा दोयम की कीमत एक रुपये आठ आना के बजाय एक रुपये आठ आना बनवा दें वर्ना लाहौर वालों को शिकायत होगी। ईश्वर ने चाहा तो कल परसों तक हाज़िर हो सकूँगा।

नियाज़मंद, धनपत राय।



महावीर विद्यालय, कानपुर, 29 दिसम्बर, 1921

बरादरम,

तसलीम। नवाज़िशनामा मिला। बहुत इतमीनान हुआ। दफ़्तरे 'ज़माना' में 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा दोम की क़ीमत में तरमीम करने के लिये कह दिया। 'मख़ज़न' के लिये मज़मून लिखा हुआ तैयार है। स्कूल ही में लिखा था। तातील के बाइस वहाँ जाना नहीं होना। मदरसा खुलते ही मज़मून भेजूँगा। मगर क़िस्सा बहुत मुख़्तसर है। आजकल लाहौरी रिसालों में लिखते हुए तबीयत हिचकिचाती है। मैं वह ज़बान नहीं लिख सकता जिसका आजकल अक्सर रिसालों में नमूना नज़र आता है और जिसका पेशरौ अगर कोई एक शख़्स है तो आगरे का 'नक़्क़ाद' है। इस रंग का उन्सुर[1] है सीधी-सी बात को तशबीहात[2] और इस्तआरात[3] में बयान करना। मैं इस रंग की तक़लीद[4] से क़ासिर हूँ। ताजवर साहिब भी इसी रंग के मुक़ल्लिद[5] थे और मुआफ़ कीजियेगा हज़रते बेदिल भी इसके दिलदादा नज़र आते हैं।

ऐसे रंगीननवीसों को मेरी रूखी-फीकी तहरीर क्या पसन्द आयेगी। यह महज़ आपका इसरार है जिसने मुझे 'मख़ज़न' के लिये क़लम उठाने पर मजबूर किया। अलावा बरीं मैं भी तर्क़े मवालाती[6] हूँ। मेरे दिलो-दिमाग़ में भी आजकल वही मसाइल गूँजा करते

हैं। क़िस्सों में भी वही ख़यालात झलकते हैं और अदबी रसाइल में उनकी गुंजाइश नहीं। नवम्बर के 'ज़माना' में 'मूठ' लिखा है। ज़रा उस पर रायज़नी कीजियेगा। मुमकिन है यह आपके मेयार पर उतरे। इसमें सिर्फ़ चन्द घंटों के वाक़यात हैं, दो-तीन पुश्तें नहीं गुज़रने पाईं। और सब ख़ैरियत है। ज़रा जल्द-जल्द याद फ़रमाया कीजिये। आपके ख़तों का बहुत मुन्तज़िर रहता हूँ।

आपका, धनपत राय।

1. तत्व, 2. उपमाओं, 3. रूपकों, 4. अनुकरण, 5. अनुकरण करनेवाले, 6. असहयोगी।



स्थान-तिथि नहीं, अनुमानतः गोरखपुर, जनवरी, 1921

...नसीबे दुश्मनां कुछ तबीयत तो ख़राब नहीं हो गयी।

प्रेम बत्तीसी अभी तक तैयार होकर नहीं आयी। टाइटिल पेज में अगर बहुत ज़्यादा तरद्दुद हो और जल्द उसके तैयार होने की उम्मीद न हो तो आप उसकी सात सौ जिल्दें बग़ैर टाइटिल ही के लाहौर दफ़्तर कहकशां को रवाना फ़रमा दें। वह अपना टाइटिल छपवाकर लगवा लेंगे। उजरत[1] मुझसे वज़ा[2] कर लेंगे। मगर लाहौर भेजिएगा क्योंकर–देवदार के बक्स में या मामूली बोरों में। सात सौ जिल्दों के भेजने के लिए पाँच बोरे लगेंगे। किताबों के साथ रद्दी काग़ज़ अन्दर भर देना ज़रूरी होगा ताकि किताबें खराब न हों। अगर चीड़ के बक्स आसानी से दस्तयाब हो जायें और रुपये दो रुपये से ज़्यादा फ़र्क़ न हो तो आप बक्स ही में भिजवायें। इसमें किताबों के ख़राब हो जाने का अन्देशा कम है।...वहाँ से तीन सौ जिल्दें ही मिलेंगी। मैंने लाहौर वालों को चालीस रुपये कमीशन देने का फ़ैसला कर लिया है और वह राज़ी हैं। मई तक सब क़ीमत अदा कर देंगे। बाज़ारे हुस्न और हिस्सा दोम बत्तीसी के बाबत उन्होंने मेरा मतालबा[3] बिल्कुल बेबाक़ कर दिया है। अब हिस्सा अव्वल के लिए जल्दी कर रहे हैं। पचीसी का हक़्क़े तालीफ़[4] और मेरे नये नाविल का हक़्क़े तालीफ़ भी लेने पर आमादा है। मैं खुद अपनी ज़िम्मेदारी पर छपवाने की बनिस्बत यह मुआमला बेहतर समझता हूँ। और ग़ालिबन् आप भी मुझसे मुत्तफ़िक़ होंगे।

इस ख़त का जवाब बवापसी तहरीर फ़रमाइए। और मुझ पर रहम करके एक रोज़ अपने आदमियों को थोड़ी-सी तकलीफ़ देकर किताबें वहाँ भिजवा दीजिए। अगर आपको इसमें ज़्यादा तरद्दुद हो तो मैं खुद आकर इस काम को अंजाम दूँ। हालांकि मुझे तकलीफ़ बेहद होगी और बेजान हो रहा हूँ। बहरहाल जवाब का सख़्त इंतज़ार है। ज़ियादा वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1. दाम, 2. वसूल, 3 माँग, 4 कापीराइट।



धनीराम प्रेम को

दिसम्बर, 1921

प्रियवर,

आपने जो कुछ कहानियाँ लिखी हैं, मुझे भेज दो। मैं देखकर सम्मति लिख दूंगा।

जो छप चुकी हैं, वे भी देखने को भेज दीजिएगा, यदि आप कानपुर आना चाहते हैं, तब तो यहाँ बातें हुआ ही करेंगी।



मारवाड़ी विद्यालय, कानपुर, 16 फरवरी, 1922

भाईजान,

तसलीम। आपका ख़त मिला। 'मख़ज़न' और 'हुमायूँ' में आपके मज़ामीन देखे। सिदक़[1] दिल से दाद देता हूँ। 'जुबेदा' में ज़ोरे क़लम ज़्यादा है और तख़ैयुल निहायत बलन्द। मगर मेरे ख़याल में हीरोइन की नाज़ुक फ़िलासफ़ी अच्छी तरह वाज़े नहीं हुई। उसके ज़ज़बाती फ़लसफ़े का तो इल्म हो जाता है। लेकिन ज़ेहन में एक उड़ते हुए खाके के सिवा और कोई असर नहीं होता। अन्दाज़े तहरीर में जिद्दत है, तासीर है, उमक़[2] है, गहरे जज़बात की तौज़ीह[3] है लेकिन शीरीनी[4] नहीं। कहीं-कहीं ऐसे अलफ़ाज़ सक़ील[5] आ जाते हैं जो नग़मे की रवानी में हारिज[6] हो जाते हैं। बाज़-बाज़ मक़ामात पर ऐसा मालूम होता है कि आपने किसी जज़्बे की तौज़ीह करने की कोशिश की है मगर अदा करने में नाकाम रहे। मसलन कि आसमान को एक वहम बना दें। अंजाम भी बहुत जल्द हुआ। कोई छोटा-मोटा वाक़या आ जाता तो जुबैदा के नर्ज़े अमल से उसके ख़यालात और रौशन हो जाते। बहरहाल इन मामूली बातों से क़तानज़र, क़िस्सा महज़ क़िस्सा ही नहीं बल्कि एक नग़माए मानी है। आप 'नाबीना जवान' का सा क़िस्सा लिखने की फिर कोशिश कीजिये। वह लाजवाब चीज़ थी। 'मख़ज़न' में जो क़िस्सा है वह मुझे जँचा नहीं। मुझे याद आता है कि मैंने एक जगह कुछ इसी क़िस्म का एक क़िस्सा देखा था। अंजाम ज़रूर ड्रामैटिक है। मैं आपसे यह भी गुज़ारिश कर देनी चहाता हूँ कि इख़्तिराइयत[7] के दाम[8] में न फँसिये। सलासत और रवानी हाथ से न जाये। आजकल लोग एक अजीब तर्ज़े बयान इख़्तियार करते जाते हैं जिसमें सादगी और नैचुरलपन को छोड़कर ख़्वामख़्वाह शौकते-बयान[9] पैदा करने की कोशिश करते हैं।

मेरा हिन्दी नाविल ख़त्म हो गया। अब उर्दू काम जल्द होगा। जब तक 'बाज़ारे हुस्न' प्रेस से निकलेगा, शायद नये नाविल का हिस्साए अव्वल आपकी ख़िदमत में हाज़िर हो जाये।

'नूरजहाँ' का तर्जुमा मै खुद तो नहीं कर सकता क्योंकि मुझे फुर्सत नहीं है। खुद भी एक ड्रामा लिखने की कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन मेरे चन्द अहबाब बँगला ज़बान के माहिर हैं। उनकी मदद से यह काम हो सकता है। ओरिजनल से तर्जुमा करने में ज़्यादा आसानी होगी। और क्या अर्ज़ करूँ।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1. सच्चे, 2. गहराई, 3. व्याख्या, 4. मिठास, 5. गरिष्ठ, भारी, 6. बाधक, 7. नयी बात पैदा करने, 8. जाल, 9. आडंबरपूर्ण लेखन शैली।



मारवाड़ी विद्यालय, कानपुर, 22 फ़रवरी, 1922

भाईजान,

तसलीम। मैंने आज इस्तीफ़ा दे दिया। बहुत तंग आ गया था।

मेरे पाँच क़िस्से 'ज़माना' में निकल चुके हैं—1. 'रूहे हयात' 2. मुअम्मा, 3. लाल

फ़ीता, 4. तक़दीर, 5. मोठ। इनका जो मुआवज़ा मुनासिब समझें भेज दें।

मेरी किताबों का हिसाब भी अर्से से नहीं हुआ है। बराहे करम जनाब ख़्वाजा साहब से कह दीजिये कि वह दिसम्बर के आख़ीर तक का हिसाब कर दें। जनवरी से फिर हिसाब चलता होगा। इसमें यह भी दर्ज कर दें कि अब मेरी कितनी जिल्दें 'बत्तीसी' और 'पचीसी' की दफ़्तर 'ज़माना' में हैं। इस तकलीफ़देही के लिये मुआफ़ कीजियेगा। मैं जुमे के रोज़ हाज़िर हूँगा। आप आने की तकलीफ़ न कीजियेगा।

बाबू रघुपति सहाय का ख़त आया है। आपने उनकी ग़ज़ल नहीं शाया की। इसकी शिकायत की है। चन्द और ग़ज़लें और रुबाइयाँ भेजी हैं। जुमे के दिन लेता आऊँगा। बाकी सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।



ज्ञानमण्डल, काशी, 26 अप्रैल 1922

भाईसाहब,

तसलीम। कार्ड के लिए मशकूर हूँ। इसके पहले के दोनों खुतूत भी मिले थे। हिन्दी में आजकल नये रिसालों की धूम है। लखनऊ से एक निकल रहा है, दूसरा कलकत्ते से। दोनों बड़ी-बड़ी तैयारियाँ कर रहे हैं। मज़ामीन की फ़रमाइशें रोज़ाना मौसूल (प्राप्त) होती हैं। इसलिए उर्दू लिखने की तरफ़ ख़याल ही नहीं गया। इधर चैत और बैसाख की मर्यादा को बैसाख ही में निकालने का इरादा है। हालांकि आधा बैसाख गुज़र गया और अभी चैत भी नहीं निकाला।

मैंने सैरे दरवेश की एक जिल्द माँगी थी। बराहे करम भिजवा दें। शादी ने ज़रूर आपको मुतरद्दिद (परीशान) कर रखा है। अब तो वक़्त भी क़रीब आ गया। जी तो चाहता है कि आऊँ लेकिन मौक़ा ऐसा है कि आपको तरद्दुद और मुझे तकलीफ़। ख़ैर परीशानी सही। अख़बार में मद नहीं घटाना चाहता। बाबू शिवप्रसाद साहब गुप्त की तजवीज़ है।

हुमायूँ क्या अब तक नहीं निकला। वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



46/30 मध्यमेश्वर, बनारस, 11 मई, 1922

भाईजान,

तसलीम। कई दिन हुए एक मज़मून और ख़त इरसाले ख़िदमत कर चुका हूँ। जवाब का इंतज़ार है। अगर मज़मून इस माह में न निकला तो बेकार हो जायेगा। मशीन फ़िट हो रही है। ऊपर मकान का पता है। इसी पते से ख़त का जवाब देने की इनायत कीजिए।

और तो सब ख़ैरियत है। उम्मीद है आप भी बख़ैर-ओ-आफ़ियत होंगे। आजकल देहात में घर पर हूँ। वस्सलाम।

धनपत राय।



ज्ञानमण्डल काशी, 25 मई, 1922

भाईसाहब,

तसलीम। 7 मई को शादी थी। 18 दिन गुज़र गये। उम्मीद है कि शादी बहुस्न-ओ-खूबी तय हो गयी और अब ग़ालिबन् मेहमानों की यूरिश (धावा, चढ़ाई) भी दूर हो गयी होगी। अब तो ख़ैरियत-ए-मिज़ाज से मुत्तिला फ़रमाइए। यहाँ पर ख़ैरियत है।

बच्चों को दुआ।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



ज्ञानमण्डल बनारस, 31 मई, 1922

भाईजान,

तसलीम। मसर्रतनामा (खुशी का पत्र) मिला। खूब खुश हुआ। मेरी यह बदनसीबी थी कि इस लुत्फ़ में शरीक न हो सका। एतराज़ सिर्फ़ एक है। आपने अंग्रेज़ हुक्काम की दावत नाहक़ की। क्या फ़ायदा। क्या अभी आपने शोहरत गंज, ख़लीलाबाद, लखीमपुर वग़ैरह के वाक़ये नहीं देखे ? ऐसी हालत में अब हमनवाई (मेल-जोल) बेमौक़ा है ख़्वाह (चाहे) इससे अपना कितना ही जाती नफ़ा क्यों न होता हो।

बाज़ारे हुस्न पढ़िएगा। मैं ज़माना में रिव्यू का मुंतज़िर हूँ। मेरा न यनाविल भी शाया हो गया। बड़े अच्छे रिव्यू हो रहे हैं।

मेरे रुपये अगर वार बाण्ड में न देकर उसके ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन के कुछ Deferred हिस्से ख़रीद सकें तो अच्छा हो। बराहे करम लिखिएगा कि उनका निर्ख़ आजकल क्या है।

जनाब ख़्वाजा साहब मुकर्रम से मेरी किताबों के हिसाब मुरत्तब करने की ताकीद फ़रमा दीजिएगा। मैं जानना चाहता हूँ कि जनवरी, सन् 21 में दफ़्तर ज़माना में प्रेस पचीसी अव्वल दोम, प्रेम बत्तीसी अव्वल दोम की कितनी जिल्दें थीं, कितनी लाहौर गयीं, कितनी लाहौर से आयीं, कितनी फ़रोख़्त हुई, अब स्टाक में कितनी हैं और कमीशन की मिनहाई के बाद अब कितनी रक़म मुझे मिलनी चाहिए। इसका इश्तहार बन्द करा दें। ज़माना में और आज़ाद में भी। मैं अनक़रीब दूसरा इश्तहार भेजूँगा। मुझे मालूम हो जाये कि मुझे आपसे कुल क्या मिलेगा तो मैं फ़ैसला करूँ कि कितने हिस्से ले सकूँगा। चालीस हिस्सों के लिए मुझे क्या देना पड़ेगा। इस तफ़सील में ज़रा ज़ोर तो लगेगा मगर मेरी ख़ातिर से इसे क़बूल कीजिएगा।

उम्मीद है बच्चे अच्छी तरह होंगे। मेरा मकान बन रहा है। वस्सलाम।

धनपत राय।



ज्ञानमण्डल, बनारस, 16 जून, 1922

बरादरम,

तसलीम। अर्सा हुआ कार्ड लिखा था, मालूम नहीं पहुँचा या नहीं। जवाब से महरूम हूँ। मैंने ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन के डेफ़र्ड हिस्सों के मुताल्लिक़ लिखा था। मालूम होता है कि वह फ़िलहाल न मिल सकेंगे। अख़बारों में उनकी क़ीमत सोलह रुपये फ़ी हिस्सा

नज़र आती है। अगर न मिल सकें तो बराहे करम रुपये रजिस्टर्ड और बीमा करके रवाना फ़रमाइए। कानपुर में वार बाण्ड के ख़रीददार आसानी से मिल जायेंगे। यहाँ मैं कहीं बैंकों में मारा-मारा फिरूँगा। मेरा फिर प्रेस खोलने का इरादा है। और ग़ालिबन् बारवर (सफल) होगा। प्रेस तय भी हो गया है। सिर्फ़ एक ट्रेडिल की और ज़रूरत है। आइन्दा एक मशीन ले लूँगा।

किताबों के हिसाब के मुताल्लिक़ मैंने तफ़सील से अर्ज़ किया था, लेकिन उसका भी कुछ न मालूम क्या हुआ। जनवरी 21 से हिसाब करना है, मुफ़स्सल। मौजूदात, बिक्री, बाक़ी वग़ैरह। उम्मीद है कि दुबारा इसके लिए तकलीफ़ देने की ज़रूरत न होगी। मैं अगस्त में मिलने का इरादा करता हूँ। ग़ालिबन् उस वक्त तक अपना प्रेस हो जायगा, और मैं अपने तईं आज़ाद महसूस करूँगा। उम्मीद है आप बख़ैरियत होंगे। आजकल एक ड्रामा लिखने में और अपने घर की तामीर (निर्माण) में ऐसा मसरूफ़ हूँ कि कोई क़िस्सा लिखने का मौक़ा न पा सका। मुआफ़ कीजिएगा।

बच्चे बख़ैरियत होंगे। बाज़ारे हुस्न को सेन बाबू ने पसंद किया या नहीं।

ख़ैरअंदेश, धनपत राय।



ज्ञानमण्डल, बनारस, 24 जून, 1922

भाईजान,

तसलीम। अरसे से हालात न मालूम हुए। मुतरद्दिद[1] हूँ। यहाँ बाबू शिवप्रसाद जी ने ज्ञानमण्डल को एक तरह से शिकस्ता[2] कर दिया। ख़सारा हो रहा था। इसलिए सब आदमियों को अलहदा करके अब सिर्फ़ एक एडीटर रह गया है जो एडिटिंग का काम ठेके पर कराने का इंतज़ाम करेगा। मेरे लिए विद्यापीठ में इंतज़ाम हो रहा है। पर मैं वहाँ जाने पर रज़ामन्द नहीं हूँ। अपना प्रेस खोलने का मुसम्मम इरादा है। यहाँ एक प्रेस–लकड़ी के सामान और टाइप दो हज़ार रुपये में मिले हैं। अभी मिले तो नहीं मगर मिलने की पूरी उम्मीद है। अब एक ट्रेडिल और एक मशीन की ज़रूरत है। सोमवार को इलाहाबाद जाऊँगा। सुनने में आया है कि वहाँ वह दोनों चीज़ें बिकाऊ हैं। अगर मिल गयीं तो मेरा प्रेस तैयार हो जायेगा और अपना काम जारी कर दूँगा।

किताबों के हिसाब में 31 दिसम्बर तक मेरे दफ़्तर ज़माना पर 103 रुपये आठ आना निकले। इस हिसाब को 31 मई सन् 22 तक मुकम्मल करा दीजिए। मुझे मज़ामीन के मुताल्लिक़ मिनजुमला[3] पैंतीस रुपये के बीस मिले थे। इसके बाद मैंने एक मज़मून और दिया। इस तरह मज़ामीन की मद में मुझे 5 रुपये और मिलने चाहिए। 123 रुपये आठ आना तो यह होते हैं। जनवरी से 31 मई तक की बिक्री के ग़ालिबन् कुछ और निकल आयेंगे। इस वक्त मैं आपको तकलीफ़ नहीं देना चाहता था पर ज़रूरत सख़्त मजबूर कर रही है। मुझे प्रेस के लिए पांच हज़ार दरकार होंगे। प्रेस जमते-जमाते एक हज़ार लग जायेंगे। प्रेस को चलाने के लिए एक हज़ार की फ़िक्र और है। मैंने चार हजार का इंतज़ाम कर लिया है। एक हज़ार मेरे इंदौरी भाईसाहब दे रहे हैं। अभी कम अज़[4] कम एक हज़ार की और ज़रूरत है। आपके यहाँ से सात सौ मिल जायँ तो गोया एक छोटे से सेकेण्ड हैण्ड ट्रेडिल का दाम निकल आये। अगर मुझे मालूम होता कि इस क़दर जल्द मुझे प्रेस

खोलना पड़ेगा तो मैंने तामीरे मकान में हाथ न लगाया होता जिसमें अभी तक तक़रीबन दो हज़ार सर्फ़ हो चुके हैं और प्लास्टरिंग फ़र्श वग़ैरह का काम बाक़ी है। यह समझ लीजिए कि प्रेस खुल जाने के बाद मेरे अकाउण्ट में एक कौड़ी भी न रहेगी। इस दांव पर अपना सब कुछ रखकर क़िस्मत आज़मा रहा हूँ। देखूँ क्या नतीजा होता है।

मैं जानता हूँ कि इस वक़्त आपके हाथ खाली हैं। नादिम हूँ कि आपको तकलीफ़ दे रहा हूँ। पर ज़रूरत मजबूरन् यह सतरें मुझसे लिखवा रही है। मुझे यक़ीन है कि साल के अन्दर मैं इस क़ाबिल हो जाऊँगा कि घर बैठे दो ढाई सौ पैदा कर सकूँ। नाना-वाना मे मुतलक़[5] उम्मीद नहीं। बड़े शातिर निकले। छोटक के पास चार पाँच सौ थे वह मकान की नज़र हो गये।

मैं उम्मीद करता हूँ कि इलाहाबाद से आने पर मुझे मशीन और ट्रेडिल का दाम चुकाते वक़्त आपके यहाँ से रुपये मिल जायेंगे। बेचारे रघुपति सहाय जेल में हैं। नहीं तो उनसे भी मेरे सात सौ वसूल हो जाते—ख़ैर।

बच्चे अच्छी तरह हैं। मैं आजकल अपना नया नाविल गोशए आफ़ियत साफ़ लिख रहा हूँ। एक हिन्दी ड्रामा भी लिख रहा हूँ। इस वजह से क़सम[6] की तरफ़ तबीयत माइल नहीं होती। मेरा इरादा है कि अपने प्रेस में 'संसार दर्शन' सीरीज़ निकालूँ जो Peeps At Many Lands के ढंग की किताबें होंगी। यह मैदान हिन्दी में ख़ाली है और ग़ालिबन् इसकी ज़रूरत भी है। हिन्दी पुस्तक एजेन्सी से तय हो गया है कि वह मेरी किताबों को चालीस फ़ी सदी कमीशन पर यकमुश्त नक़्द ख़रीद लिया करेगी।

उम्मीद है कि मअले-ख़ैर[7] होंगे।

नियाज़केश, धनपत राय।

1 परीशान, 2 तोड़ दिया, 3. कुल मिलाकर, 4. से, 5. तनिक भी, 6 क़िस्सों, 7. ख़ैरियत से।



ज्ञानमण्डल, बनारस, 24 जून, 1922

जनाब मुश्फ़िक़े बन्दा ख़्वाजा साहब,

तसलीम। प्रेम बत्तीसी का हिसाब देखा। समझ में न आया। लाहौर वाले कहते हैं कि प्रेम बत्तीसी हिस्सा दोम की पाँच सौ जिल्दें दफ़्तर ज़माना में आ चुकी हैं, आप फ़र्माते हैं सिर्फ़ एक सौ सैंतालिस जिल्दें आयी हैं। इस क़दर तफ़ावुत क्यों ? या तो लाहौर की ग़लती या आपसे सहू हुआ है। हिस्साए अव्वल एक हज़ार तबा हुई। पाँच सौ कहकशां को दी गयी, ग्यारह मेरे नाम दर्ज हैं, दो दाख़िले अदालत है, बाक़ी दफ़्तरे ज़माना में चार सौ सत्तासी रह गयीं। क्या तबा के वक़्त से यकुम मई तक तिरपन जिल्दें फ़रोख़्त हो गयीं? मुझे बीस रुपये जो मार्च में मिले थे वह कुतुब के मुताल्लिक़ न थे, मज़ामीन के मुताल्लिक़ थे। अब बराहे करम इतनी तकलीफ़ और कीजिए कि 31 दिसम्बर, 1921 से 31 मई 1922 तक का हिसाब और तहरीर फ़र्माइए। बग़ायत मशकूर होऊँगा। उम्मीद है कि आप बख़ैर ओ आफ़ियत होंगे।

ख़ैर अन्देश, धनपत राय।



बनारस, 7 जुलाई, 1922

भाईजान,

तसलीम। इस तरफ़ बहुत परीशान रहा। यहाँ ज्ञानमण्डल से अलहदा हो गया। बाबू साहब ने स्टाफ़ कम कर दिया है। मुझे विद्यापीठ के स्कूल महकमे की हेडमास्टरी मिल गयी है। आना जाना बहुत दूर पड़ता है। प्रेस जो यहाँ मिलने वाला था, उसकी तरफ़ से मायूसी हुई। मालिक के एक अज़ीज़ ने ख़रीद लिया। इलाहाबाद में मशीन है मगर बहुत दिनों की चली हुई है। ट्रेडल है। एक साहब को भेजा था। वह देख आये हैं। अब मैं कल मिस्त्री को लेकर खुद जाऊँगा और मिस्त्री ने मुवाफ़िक़ राय दी तो क़ीमत वग़ैरह तय कर लूँगा। कानपुर आना अब मेरे लिए मुश्किल है। मकान तैयार हो जाता है तो घर ही रहूँगा और लौट जाया करूँगा। अब परदेस की क़स्द (इरादा) नहीं है। मुझे यहाँ नफ़ा ज़्यादा न होगा तो नुक़सान का अंदेशा भी नहीं है। कुछ पब्लिशिंग का काम खुद करूँगा। इससे बिल्कुल बाहर के काम का सहारा न रहेगा। मशीन दो हज़ार के एक फ़ार्म। रोज़ छाप लेगी। महीने में तातील वग़ैरह निकालकर ग़ालिबन् 24 फ़ार्म निकल सकेंगे। बारह फ़ारम मैं खुद छापूँगा बारह फ़ारम के लिए बाहर का मुन्तज़िर रहूँगा। हाँ जाब बाहर से लाना पड़ेगा। आपने बाण्ड ग़ालिबन् कलकत्ता कैश होने के लिए भेज दिये होंगे। लाहौर ने अभी तक ख़त का जवाब नहीं दिया। बड़े हज़रत हैं। तीन सौ जिल्दें डकारना चाहते हैं। सैरे दरवेश की मुझे सख़्त ज़रूरत है। अगर एक जिल्द भी मिल जाती तो काम निकल जाता। आपके यहाँ एक जिल्द ज़रूर निकल आयेगी। मुझे आरियतन् (उधार) दे दें। तर्जुमा करके लौटा दूँगा। उम्मीद है कि अयाल खुश होंगे।

आपके यहाँ सेकण्ड हैण्ड प्रेसों की फ़ेहरिस्त थी। बराहे करम भेज दीजिये। वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

आशा भवन : कबीर चौरा, बनारस शहर, 14 जुलाई, 1922

भाई साहब,

तसलीम। इनायतनामा मय चेक मिला। मशकूर हूँ। सूद ज़रूरत से ज़्यादा है। ज़माना के लिये जो कुछ लिखा है वह कल भेज दूँगा। किताबों का हिसाब लाहौर से आने वाला है। शायद दो चार रोज़ में आ जाये। विद्यापीट में मैं आरज़ी तौर पर हो गया हूँ। बाबू भगवानदास जी ने स्कूल का हिस्सा मेरे सिपुर्द कर दिया है। दख़ल नहीं देते। इसलिये कोई तरद्दुद नहीं। ज्ञानमंडल में भी काफ़ी आराम था। विद्यापीठ में ख़िदमत का मौक़ा है। और आराम भी। मुझे मारवाड़ी स्कूल में जितनी तकलीफ़ हुई उतनी कहीं और हो ही नहीं सकती। मालूम नहीं महाशय से मेरी क्यों अनबन हो गयी।

प्रेस ने बहुत पराशान किया। अब की इतवार को इलाहाबाद गया था। मशीनें दो देखीं। एक अच्छी थी। मगर क़ीमत तीन हज़ार। इसलिये लोगों ने ख़रीदने की सलाह नहीं दी। वहाँ से वापस आने पर मालूम हुआ कि बनारस ही में एक कारख़ाना मुसल्लम बिक रहा है। अब इससे बातचीत हो रही है। मशीन कोई नहीं है मगर प्रेस दो हैं और तुमफ़र्रिक़[1] सामान है। देखूँ क्या नतीजा होता है। काम का मुझे भरोसा है। मैं दस

आने की किताबों का एक सिलसिला निकालने का क़स्द कर रहा हूँ। ग़ालिबन हर दूसरे महीने ऐसी एक किताब निकल जायेगी। मुझे 400 रुपये मिल जायेंगे। प्रेस की छपाई वग़ैरह सब इसमें निकल आयेगी। यहाँ जाब कम है मगर पब्लिशिंग काफ़ी है। नया नाविल एक हज़ार निकल गया। अब क़िस्सों का मजमूआ[2] निकलने वाला है। मुझे मालूम होता है कि शायद एक नाविल और अच्छा लिखकर मैं खानानशीन[3] हो सकता हूँ। हस्बे ज़रूरत घर बैठे मिल जायगा।

यहाँ बारिश ने नाक में दम कर दिया। 'बाज़ारे हुस्न' का रिव्यू ज़रूर कराइएगा। लाहौर से 'हज़ार दास्तान' निकल रहा है। एक किस्सा बहुत इसरार के बाद मैंने भी लिखा है। बच्चे अच्छी तरह हैं। उम्मीद है आप भी मय अयाल खुश होंगे। क़िब्ला मुकर्रम[4] व मुअज़्ज़म[5] की कैफ़ियत से आपने मुत्तला नहीं किया। सेहत हो गयी या नहीं। अज़ीज़ सेन ने 'बाज़ारे हुस्न' को पसन्द किया या नहीं। मैं उनके फ़ैसले का मुन्तज़िर हूँ। और सब ईश्वर की कृपा है। जन्माष्टमी में लखनऊ क़ैदियों से मिलने जाऊँगा। उस वक़्त आपसे भी मुलाक़ात होगी। वस्सलाम।

धनपत राय।

1 फुटकर, 2. संग्रह, 3. घर बैठ सकता हूँ, 4 मेहरबान, 5 बुजुर्ग।



बनारस, 19 सितम्बर, 1922

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। प्रूफ़ वापस है।

लाला काशीनाथ की हिन्दी किताब तातील से यूँही पड़ी हुई थी। इस पर मैंने रिव्यू कर दिया है। किताब अच्छी है। रफ़े शिकायत हो गयी। मैंने जो हिसाब लिखे हैं उसमें 'प्रेम पचीसी' या 'ज़माना' के दफ़्तर से आई हुई किताबों का हिसाब शामिल नहीं है। दफ़्तर के ज़िम्मे मेरी 94 जिल्दें 'प्रेम पचीसी' की हैं, मेरे ज़िम्मे दफ़्तर की मुरसला कुतुब (भेजी हुई किताबें)

मैं खुद ऐसी कोशिश में हूँ कि मज़ामीन का सिलसिला न टूटे। आजकल कुछ तो खुद पढ़ता हूँ कुछ वक़्त नाविल की तैयारी में निकल जाता है। 'प्रताप' के खास नम्बर के लिये भी एक मज़मून लिखा। यह कमी क़िस्से से नहीं किसी दूसरे मज़मून से पूरा करूँगा।

कोशिश करूँगा कि 12 को लखनऊ आऊँ। यक़ीनन आऊँगा। लेकिन ठहरने का ठिकाना कहाँ होगा ? सब पहले से तय कर दीजियेगा।

आपका धनपत राय।



आशा भवन : कबीर चौरा, बनारस, 1 अक्तूबर, 1922

भाईजान,

तसलीम। ज़माना के लिए एक मज़मून लिखा था। उसका हिन्दी तर्जुमा कलकत्ते के एक रिसाले में निकला था। मैंने मज़मून साफ़ किया मगर हिन्दी में निकलने के तीसरे ही दिन उसका तर्जुमा लाहौर के प्रताप में नज़र आया। इसलिए उस क़िस्से को न भेज

सका। संदूक़ में साफ़ किया हुआ पड़ा है। हालांकि लाहौरी तर्जुमा बिल्कुल भद्दा है मगर क़िस्सा तो वही है। अब कुछ और लिखूँगा।

प्रेस का सामान कुछ कलकत्ते से मँगवाया। टाइप का आर्डर दे दिया है मगर मशीन अभी तक नहीं मिली। Woodroff & Co से ख़त-किताबत कर रहा हूँ। ग़ालिबन् वहीं से मिलेगी। इसमें एक दो माह का अर्सा ज़रूर लगेगा। अगर आपको किसी मशीन का पता हो तो मुझे इत्तिला दीजिएगा। प्रेस खुला और मैं घर बैठा। ज़माना में कौशिक जी का क़िस्सा खूब था। ज़बान का क्या कहना। सरशार मरहूम का अच्छा ख़ाका उतारा। हिन्दी में कौशिक जी इतना अच्छा नहीं लिखते। उन्हें मेरी तरफ़ से मुबारकबाद।

चचा साहब क़िब्ला (आदरणीय) की सेहतयाबी की ख़बर बाइसे इत्मीनान हुई। उम्मीद है लड़के अच्छी तरह होंगे। यहाँ भी सब ख़ैरियत है। छोटक अच्छी तरह है। नाना साहब तशरीफ़ लाये हुए हैं। उनके खानदान में ख़ानगी जंग शुरू हो गयी। भाई-बन्दों से उनकी तनहाखुरी (अकेले-अकेले खाना) न बर्दाश्त हो सकी। अब बटवारे का मसला दरपेश है। मेरे मकान में हुल्लड़ हो रहा है। जन्माष्टमी क़रीब आ रही है। मुसम्मम इरादा है कि इस तातील में आपसे मुलाक़ात करूँ। ज़िन्दगी का एतबार नहीं। रस्मे मुलाक़ात क़ायम रहे तो बेहतर। आप तो कुतुब हैं। ख़ैर। प्यासे कुएँ पर जाते हैं, कुआँ नहीं दौड़ा आता। बारिश ने नाक में दम कर दिया। फ़स्ल को भी नुक़सान पहुँचा। आपको यह सुनकर खुशी होगी कि प्रेमाश्रम की 1200 जिल्दें निकल गयीं। अब दूसरे एडीशन की तैयारी है। और सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।



आशा भवन : कबीर चौरा, बनारस, 7 नवंबर, 1922

भाईजान,

तसलीम। मुबारकबाद। इधर अर्से से आपके हालात मालूम नहीं हुए। मैंने ख़ुद कोई ख़त नहीं लिखा। इसलिए शिकायत की गुंजाइश नहीं। परमात्मा आपको कानपुर का गंगा प्रसाद वर्मा बनाये। उम्मीद है कि बाल-बच्चे अच्छी तरह होंगे। यहाँ भी ख़ैरियत है। अभी प्रेस कलकत्ते से नहीं आया। शायद इस माह के आख़ीर तक आ जाय। मैंने इधर कोई ऐसी चीज़ न लिखी जो ज़माना के क़ाबिल समझता। और रिसालों में तराजिम (अनूदित) कहानियाँ दे दिया करता हूँ। आपको कुछ ओरिजिनल देना चाहता हूँ। नाविलनिगारी, स्कूल और घर के झंझट—यह सब परीशान किया करते हैं।

देहली में एक बुकसेलर हैं। उनके पास जैल की किताबें बज़रिये वी. पी. भिजवाने की इनायत करें। (शायद वह ज़्यादा जिल्दें ख़रीदें। पता यह है)

Maessrs Gupta & Co.
Publishers, Booksellers & Stationers
Egerton Road, Delhi
प्रेम बत्तीसी हर दो हिस्सा...
प्रेम पचीसी हर दो हिस्सा, अगर दस्तयाब हो सके। शायद वह इसका दूसरा एडीशन

निकालने पर रज़ामन्द हैं वर्ना हिस्सा दोम ही सही।

जवाब और दीगर हालात से मुत्तिला फ़रमायें।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

बनारस, 2 दिसम्बर, 1922

भाईजान,

तसलीम। फोड़ों ने आपका पीछा पकड़ लिया है। अभी सेन बाबू को निकला, अब वही शिकायत आपको पैदा हुई। ख़ैर यह सुनकर इत्मीनान हुआ कि अब ज़ख़्म मुन्दमिल (भर रहा है) हो रहा है। परमात्मा करे आपको जल्द सेहत हो। यहाँ तो ईश्वर की कृपा से सब ख़ैरियत है। हाँ छोटे बच्चे को खाँसी आती है। प्रेस इंग्लैण्ड से रवाना हुआ है। शायद दिसंबर के आख़ीर तक यहाँ आवे। मकान बार हो गया है। मैं साबिक़ दस्तूर विद्यापीठ में हूँ। ज़माना ने हज़रते नियाज़ की खूब क़लई खोली। देखूँ हज़रत क्या जवाब देते हैं। यहाँ ज्ञानमंडल की तरफ़ से एक अंग्रेज़ी हफ़्तेवार निकालने की तजवीज़ दरपेश है। मुंशी नौबत राय साहब का ताल्लुक़ तो अब अवध अख़बार से नहीं रहा। क्या कर रहे हैं। आप बनारस आते ही आते रह गये। क्या इरादा तर्क कर दिया ?

बच्चों को दुआ। सेन बाबू तो अब तैयार हो रहे होंगे। ज़्यादा वस्सलाम,

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

छविनाथ पाण्डेय का पत्र

हिन्दी-पुस्तक भवन — 181, हरिसन रोड, कलकत्ता

प्रकाशक और विक्रेता — 12-1-1923

प्रिय भाई साहब,

वन्दे ! हिन्दी पुस्तक-भवन के संचालक ने आपके पास एक पत्र लिखा है। आपकी कहानियों का एक संग्रह वे चाहते हैं। 'प्रेम-प्रसून' के लिए ही उन्होंने लिखवाया था, पर वह तो काका का हो गया। अब भी वे मुझे ताना ही देते हैं। अगर आप उन्हें अपनी कहानियों का एक संग्रह अभी दे दें तो वे छपवाकर प्रकाशित कर दें। मैं भी बड़ा कृतज्ञ हूँगा।

राधाकृष्ण जी उपन्यास के बारे में कई बार पूछ चुके हैं। क्या उत्तर दूँ, लिखिएगा। राधाकृष्ण जी की पत्नी का स्वर्गवास गत मंगल को हो गया।

आशा है, आप इस बार पुस्तक-भवन के संचालक को हताश न करेंगे और मेरी भी बात रखेंगे। महताब राय से कह दीजिएगा कि ज़रा पत्र का उत्तर दे दिया करें। जब से मैं आया, कई पत्र लिखे, पर उत्तर नदारत।

स्नेही, छविनाथ।

●●

काशी विद्यापीठ, बनारस, 17 फरवरी, 1923

भाईजान,

तसलीम। एक मुद्दत के बाद आपने याद फ़रमाया। ममनून हूँ। मैं बख़ैरियत हूँ और

उम्मीद करता हूँ कि आप भी बख़ैर-ओ-आफ़ियत हैं। मैं अज़हद[1] नादिम हूँ कि ज़माना के लिए अर्से से कुछ न लिख सका। बार बार इरादा करता हूँ लेकिन कभी तो वक़्त नहीं मिलता और कभी मज़मून नहीं सूझता। हिन्दी रिसालों में लिखने के बाइस वक़्त ही नहीं निकलता। फिर अपना नया नाविल भी लिखना चाहता हूँ। ज़माना को फिर नुक़सान का सामना करना पड़ा। अफ़सोस है। उर्दू में शायद अच्छे रिसालों का क़ायम रहना ग़ैरमुमकिन हो गया है। मालूम नहीं इसका क्या बाइस है। उर्दू पढ़ने वालों की तादाद तो कम नहीं है लेकिन ग़ालिबन् सब मुफ़्त के पढ़ने वाले हैं। सबको दावए नामानिगारी[2] है। सभी अहले क़लम हैं पढ़ने वाला कोई नहीं। अब इलाहाबाद से एक नया रिसाला 'आईना' निकलने वाला है। देखूँ यह कितने दिनों चलता है।

आपने मुझसे पूछा मैं किस पार्टी में हूँ। मैं किसी पार्टी में भी नहीं हूँ। इसलिए कि दोनों में से कोई पार्टी कुछ अमली काम नहीं कर रही है। मैं तो उस आने वाली पार्टी का मेम्बर हूँ जो कोतहुन्नास[3] की सियासी तालीम को अपना दस्तूर-उल-अमल[4] बनाये। स्वराज्य-ख़िलाफ़त पार्टी की जानिब से जो कान्स्टीच्यूशन निकला है उससे अलबत्ता मुझे कुल्ली[5] इत्तफ़ाक़[6] है। मगर ताज्जुब यही है कि यह एक पार्टी से क्यों निकला। मेरे ख़याल में दोनों ही पार्टियाँ इस मुआमले में मुत्तफ़िक़[7] हैं।

जिस मज़मून का आप ज़िक्र फ़रमाते हैं वह पहले बनारस के मर्यादा में निकला था। उसके बाद हज़ारदास्तां में शाया हुआ। इसके मुताल्लिक़ आपने ताज्जुब का इज़हार क्यों किया।

मिस्टर गोपाल कृष्ण ने जो तजवीज़ लिखी है उसकी कामयाबी में मुझे बहुत शक है। इंगलैण्ड में नामानिगारों को हज़ारों मिले होंगे तब इस क़िस्से की तकमील[8] की होगी। यहाँ ऐसी कोई तरग़ीब[9] नहीं है। महज़ तफ़रीह के लिए शायद कोई लिखने पर तैयार न हो। बहरहाल अगर मुझे लिखिए तो मैं एक बाब[10] लिखने की कोशिश कर सकता हूँ।

अब प्रेस की बात। आज तक प्रेस नहीं आया। सितंबर के महीने में वुडराफ़ के पास रुपये रवाना किये गये थे। 4 अक्तूबर को जवाब और रसीद आ ही गयी थीं। मालूम हुआ था उसने दो मशीनें रवाना की हैं। दोनों इन्श्योर्ड थीं। लेकिन तब से अब तक कोई ख़बर नहीं। 1 फ़रवरी को मायूस होकर फिर याददिहानी की गयी है। देखूँ कब तक पहुँचती हैं। टाइप वग़ैरह जमा कर लिया है और जमा करता जाता हूँ। लेकिन इस तूलानी[11] इंतज़ार के बाइस हौसला पस्त हुआ जाता है। रुपये की तो कोई कमी नहीं है। साढ़े छः हज़ार की रक़म हाथ में है। हाँ, मेरा मकान तैयार हो गया और होली से उसे आबाद भी कर दिया जायगा।

बाबू महताब राय साबिक़ दस्तूर ज्ञानमण्डल में है। बच्चे अच्छी तरह हैं। यहाँ भी कई दिनों अब्र रहा। लेकिन आज मतला[12] साफ़ हो गया है। आख़री बात यह कि जनाब ख़्वाजा साहब से मेरी किताबों का हिसाब तैयार करने की फ़रमाइश कीजिए। फ़रवरी ख़त्म हो रहा है। मार्च में मैं कानपुर आने की उम्मीद करता हूँ लेकिन अगर किसी वजह से न आ सका तो मैं बहुत मशकूर होऊँगा अगर आप वह रक़म मेरे नाम किसी बैंक की

मार्फ़त रवाना फ़रमायेंगे। इस तरफ़ मेरा एक हिन्दी ड्रामा भी निकला है। बच्चों को दुआ।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1. बेहद शर्मिन्दा, 2. लिखने-लिखाने का दावा, 3. छोटे लोगों, 4. कार्यप्रणाली, 5. पूरी, 6. सहमति, 7. सहमत, 8. समापन; पूर्णाहुति, 9. प्रेरणा; प्रलोभन, 10. अध्याय, 11. लंबे, 12. आसमान।



कलकत्ता

श्रीयुक्त प्रेमचन्द जी, 10.3.1923

महोदय,

आपका कृपापत्र मिला। यह तो दो हजार ही आ चुके हैं, देखने की भूल थी। बैंक में रुपये दे दिए गए हैं, सब 2051 रु. सवा चार आने अब देने पड़े हैं। उन्हीं की दर कुछ ठीक है, इसी से थोड़ा फ़ायदा पड़ गया। 1000 रु. आप और दे चुके हैं। बाक़ी रुपयों का हिसाब पीछे होता रहेगा। रुपयों के लिए आपका काम नहीं अटकेगा, इसकी कुछ चिन्ता न कीजिएगा। सिर्फ़ सूचना देना उचित था, इसी से लिखा गया था। माल छुड़ाने के लिए बैंक को पहले लिखा जा चुका है। बिल्टी आने पर आपकी सेवा में भेज दी जाएगी।

'संग्राम' की कापियाँ आपके लिखे अनुसार सब भेज दी जायेंगी। प्रूफ़ की अशुद्धियाँ मुझे भी खटक रही हैं, परन्तु उस समय प्रेस में अच्छे आदमी होते हुए भी ऐसा हो गया।

विद्यापीठ में रसीद की आवश्यकता नहीं। 3 मास के बाद दूसरे 3 मास तक 25 रुपये मासिक और देने का विचार है।

आपका, बैजनाथ केड़िया



काशी विद्यापीठ, बनारस, 8 अप्रैल 1923

श्री धनपत रायजी,

पाठशाला विभाग के फुटकर खर्चे के हिसाब में आपको 8 रु. 6 आना, 30 फाल्गुन 79 को दिया गया है। मैं समझता हूँ कि अब आपका हिसाब ठीक हो जायेगा।

आपका, यज्ञनारायण उपाध्याय।



आशा भवन, कबीरचौरा, बनारस, 10 अप्रैल, 1923

मुश्फ़िक़े बन्दा जनाब ख़्वाजा साहब,

तसलीम। इसके क़ब्ल एक अरीज़ा बाबू दयानरायन साहब की मार्फ़त आपकी ख़िदमत में इरसाल कर चुका हूँ। जवाब से महरूम हूँ। मेरी किताबों का हिसाब एक मुद्दत से नहीं हुआ। बराहे करम मार्च, 1923 तक के अकाउण्ट मुरत्तब करने को तकलीफ़ गवारा फ़र्मायें। ज़रा हिसाब तफ़सील के साथ हो जिसमें मुझे समझने में दिक़्क़त न हो। मैं खुद हाज़िर होने वाला था मगर चंद दर चंद परीशानियों के बाइस अभी तक न आ सका। उम्मीद है कि जवाब से जल्द मुम्ताज़ फ़र्मायेंगे।

ख़ैरअन्देश, धनपत राय।



आशा भवन, कबीर चौरा, बनारस, 22 अप्रैल, 1923

भाईजान,

तसलीम। शायद इस मकान से यह आख़री ख़त आपके पास भेज रहा हूँ। आज प्रेस के लिए मकान तै हो गया, मशीन आ गयी, टाइप, ब्लाक, लकड़ी के केस वग़ैरह पहुँच गये। उम्मीद है कि इस मई के महीने में प्रेस मुकम्मल तौर पर काम करने के क़ाबिल हो जायगा। अब डिक्लेरेशन दाख़िल करना रह गया है। सोमवार को दाख़िल कर दूँगा। अभी तक नाम नहीं तजवीज़ कर सका। साहित्य प्रेस, सरस्वती प्रेस, संसार प्रेस वग़ैरह नाम ज़ेहन में हैं। आप भी कोई नाम तजवीज़ कीजिए क्योंकि नामों के इंतख़ाब[1] में आपको कमाल है। इसके क़ब्ल आपको इसलिए तकलीफ़ नहीं दी कि आप म्युनिसिपल इंतख़ाबात में परीशान थे। अब आपको फुर्सत है। हालांकि अब तक मुझे यह नहीं मालूम हुआ कि आप बोर्ड में आये या नहीं। यहाँ तो पूरा बोर्ड कांग्रेसी है।

मेरा इरादा एक लीथो प्रेस रखने का भी है। क्या कोई कानपुर में लीथो प्रेस है। बराहे करम इसकी मुझे इत्तला दीजिएगा। लोग कहते हैं बनारस में लीथो प्रेस नहीं चल सकता लेकिन मैं एक बार कोशिश करके देखना चाहता हूँ। मेरी कई किताबें निकलने के लिए तैयार हो रही हैं। प्रेम पचीसी ख़त्म हो गयी, गोशए आफ़ियत महज़ इसलिए नातमाम है कि कोई पब्लिशर नहीं है। ताज़ा ड्रामा संग्राम भी उर्दू में निकालना चाहता हूँ। जब तक यह किताबें तैयार होंगी ग़ालिबन् मेरा नया नाविल तैयार हो जायगा। कहानियाँ भी दस-बारह तैयार हो गयी हैं। बहरहाल कोशिश ज़रूर करूँगा। कानपुर में अब हैण्ड प्रेस आउट आफ़ डेट हो गया है। शायद वहाँ सस्ते दामों मिल जाये।

ख़्वाजा साहब के हिसाब की परतों से मालूम हुआ है कि ज़माना एजेंसी पर मेरे साबिक़[2] और हाल मिलाकर 265 रुपये आते हैं। यह रक़म अगर आप इस वक़्त दे दें तो मुझ पर बड़ा एहसान हो। मुझे मकान प्रेस के लिए न मिलता था। बड़ी मुश्किलों एक मौक़े का मकान मिला है। इसमें अब तक डी. ए. वी. स्कूल था। अब स्कूल अपनी नयी इमारत में चला गया। मगर पुरानी इमारत में उसने कुछ इज़ाफ़े किये हैं जिसके लिए वह मालिक मकान से 1200 रुपये रुपये का तालिब[3] है। मालिक मकान से मेरा समझौता यह हुआ है कि मैं साल भर तक एक सौ रुपया माहवार के हिसाब से आर्यसमाज को दूँ और पचास रुपये के हिसाब से किराये में मिनहा[4] करूँ। आर्यसमाज ने यह शर्त मंजूर की है। एक और पुराना प्रेस जो बहुत मशहूर है, लक्ष्मीनारायण प्रेस, इस मकान के लिए उधार खाये बैठा है। 1200 रुपये यकमुश्त देने के लिए आमादा है मगर समाज के दो एक मेम्बरों की इनायत से अभी तक उसका आफ़र मंजूर नहीं हुआ है। अगर मैं यह शर्त न पूरी कर सका तो वह मकान निकल जायगा और महीनों की दवा-दविश[5] अकारथ हो जायगी। मेरे बजट में इस बार सौ की गुंजायश न थी। आप तीन सौ रुपये दे दें तो तीन महीने तक किराये की फ़िक्र न करनी पड़े। तब तक मुमकिन है प्रेस से कुछ आमदनी होने लगे तो किराया अदा होता जाय। मगर इस वक़्त रुपयों की ज़रूरत शदीद[6] है। अगर आपको यकबार देने में तरद्दुद हो तो तीन महीने तक सौ रुपये माहवार दे दें। मुझे उम्मीद है आप मायूस नहीं करेंगे।

मैंने इधर लिखना बंद सा कर रखा है। फुर्सत ही नहीं मिलती। मलकाना शुद्धि

पर एक मुख्तसर मज़मून लिख रहा हूँ। मुझे इस तहरीक से सख़्त इख़्तिलाफ़ है। तीन चार दिन में भेज सकूँगा। आर्यसमाज वाले भिन्नायेंगे लेकिन मुझे उम्मीद है आप ज़माना में इस मज़मून को जगह देंगे।

मेरा इरादा कानपुर आने का है। मई के पहले या दूसरे हफ़्ते में आने का क़स्द करता हूँ। अगर कोई नया झंझट सर पर सवार न हो गया तो।

आप इस तरफ़ मुझसे कुछ नाराज़ से हो रहे हैं। महीनों तक कोई ख़त ही नहीं। मैं शिकायत नहीं करता, खुद भी इसी इल्लत में गिरफ़्तार हूँ। ईश्वर ने चाहा तो अब मेरी तरफ़ से यह सिलसिला हस्बे साबिक़ जारी रहेगा।

यहाँ सब ख़ैरियत है। उम्मीद है आप मय अयाल अच्छे होंगे। सेन बाबू ने पर्चे अच्छे किये होंगे। बच्चों को मेरी तरफ़ से दुआए ख़ैर।

और क्या लिखूँ। जवाबे ख़त का बेताबी से इंतज़ार रहेगा।

आपका, धनपत राय।

1 चुनाव, 2. पिछले, 3. तलबगार, 4. कटाऊँ, 5. दौड़-धूप, 6. सख़्त।



आशा भवन, बनारस, 23 अप्रैल, 1923

भाईजान,

तसलीम। कल सुबह एक ख़त लिखा, शाम को आपका कार्ड मिला। पढ़कर निहायत सदमा हुआ। बीमारियाँ और परेशानियाँ तो ज़िन्दगी का ख़ास्सा[1] हैं लेकिन बच्चे की हसरतनाक मौत एक दिलशिकन हादसा है और उसे बर्दाश्त करने का अगर कोई तरीक़ा है तो यही कि दुनिया को एक तमाशागाह या खेल का मैदान समझ लिया जाय। खेल के मैदान में वही शख़्स तारीफ़ का मुस्तहक़[2] होता है जो जीत से फूलता नहीं, हार से रोता नहीं, जीते तब भी खेलता है, हारे तब भी खेलता है। जीत के बाद यह कोशिश होती है कि हारें नहीं। हार के बाद जीत की आरज़ू होती है। हम सबके सब खिलाड़ी हैं मगर खेलना नहीं जानते। एक बाज़ी जीती, एक गोल जीता, तो हिप हिप हुर्रे के नारों से आसमान गूँज उठा, टोपियाँ आसमान में उछलने लगीं, भूल गये कि यह जीत दायमी[3] फ़तह की गारण्टी नहीं है। मुमकिन है कि दूसरी बाज़ी में हार हो। अलहाज़ा[4] हारे तो पस्तहिम्मती पर कमर बांध ली, रोये, किसी को धक्के दिये, फ़ाउल खेला और ऐसे पस्त हो गये गोया फिर जीत की सूरत देखनी नसीब न होगी। ऐसे ओछे, तंगज़र्फ़[5] आदमी को खेल के वसीह[6] मैदान में खड़े होने का भी मजाज़[7] नहीं। उसके लिए गोशएतारीक[8] है और फ़िक्रे शिकम[9], बस यही उसकी ज़िन्दगी की कायनात[10] है ! हम क्यों खयाल करें कि हमसे तक़दीर ने बेवफ़ाई की ? खुदा का शिकवा क्यों करें ? क्यों इस ख़याल से मलूल[11] हों कि दुनिया हमारी नेमतों से भरी थाली को हमारे सामने से खींच लेती है ? क्यों इस फ़िक्र से मुतव्वहश[12] हों कि क़ज़्ज़ाक हमारे ऊपर छापा मारने की ताक में है ! ज़िन्दगी को इस नुक़्तये निगाह से देखना अपने इत्मीनाने क़ल्ब[13] से हाथ धोना है। बात दोनों एक ही है। क़ज़्ज़ाक ने छापा मारा तो क्या ? हार में सारे घर की दौलत खो बैठे तो क्या ? फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि एक जब्र है दूसरा अख़्तियार। यह क़ज़्ज़ाक ज़बर्दस्ती

जान और माल पर हाथ बढ़ाता है लेकिन हार ज़बर्दस्ती नहीं आती। खेल में शरीक होकर हम खुद हार और जीत को बुलाते हैं। क़ज़्ज़ाक के हाथों लूटा जाना ज़िन्दगी का मामूली वाक़या नहीं, हादसा है लेकिन खेल में हारना और जीतना मामूली वाक़ये हैं। जो खेल में शरीक होता है वह खूब जानता है कि हार और जीत दोनों ही सामने आयेंगी, इसलिए उसे हार से मायूसी नहीं होती, जीत से फूला नहीं समाता। हमारा काम तो सिर्फ़ खेलना है, खूब दिल लगाकर खेलना, खूब जी तोड़कर खेलना, अपने को हार से इस तरह बचाना गोया हम कौनैन[14] की दौलत खो बैठेंगे लेकिन हारने के बाद, पटख़नी खाने के बाद, गर्द झाड़ कर खड़े हो जाना चाहिए और फिर खम ठोंककर हरीफ़[15] से कहना चाहिए कि एक बार और !

खिलाड़ी बनकर आपको वाक़ई बड़ा इत्मीनान होगा। मैं खुद नहीं कह सकता कि मैं इस मेयार[16] पर पूरा उतरूँगा या नहीं मगर कम से कम अब मुझे किसी नुकसान पर इतना रंज न होगा जितना आज से चन्द साल क़ब्ल हो सकता था। मैं अब शायद न कहूँगा कि हाय ज़िन्दगी अकारथ गयी, कुछ न किया। ज़िन्दगी खेलने के लिए मिली थी खेलने में कोताही नहीं की। आप मुझसे ज़्यादा खेले हैं, हार और जीत दोनों देखी हैं, आप जैसे खिलाड़ी के लिए शिकवये तक़दीर की ज़रूरत नहीं। कोई गोल्फ़ और पोलो खेलता है कोई कबड्डी खेलता है, बात एक ही है, हार और जीत दोनों ही मैदानों में हैं। कबड्डी खेलने वाले को जीत की खुशी कुछ कम नहीं होती। इस हार का ग़म न कीजिए। आपने खुद ही न किया होगा। आप यहाँ मुझसे मश्शाक़[17] हैं। मैं 5 या 6 मई तक कानपुर आने वाला हूँ। यहाँ की कोई चीज़ दरकार हो तो बेतकल्लुफ़ लिखिएगा। दीगर हालात मेरे पहले ख़त से मालूम हुए होंगे।

आपका, धनपत राय।

1. सहज गुण, 2 अधिकारी, 3. स्थायी, 4 इसी तरह, 5 सकीर्ण-हृदय, 6 लंबे-चौड़े, 7. अधिकार, 8. अंधेरा कोना, 9 पेट की चिंता, 10. कुल पूंजी; सर्वस्व, 11. दुःखी, 12 पागल, 13. मानसिक शांति, 14 इहलोक-परलोक, 15. दुश्मन, 16 कसौटी, 17. कुशल; अनुभवी।



काशी विद्यापीठ, बनारस, 22 मई 1923

श्री धनपत राय जी,

आपके पास पाठशाला-विभाग के फुटकर हिसाब का 10 रु. पड़ा था। उसके विषय में मैंने कई बार आपको लिखा था। आपने अपने एक पत्र में लिखा था कि "मैंने उसका हिसाब किस मास में लिखा था ?" जिसके उत्तर में लिखा गया था कि फाल्गुन मास में 8 रु. 6 आना आपको फुटकर व्यय के हिसाब में दिया गया था। कृपाकर यह हिसाब शीघ्र तय कर दीजिए।

आपका, यज्ञनारायण उपाध्याय, सहायक मन्त्री।



46/31 मध्यमेश्वर, बनारस, 29 मई, 1923

भाईजान,

तसलीम। आपका 25 मई का कार्ड कल मिला। इसके पहले आपने तीन ख़त भेजे।

मुझे सख़्त अफ़सोस है कि उन तीनों में से मुझे एक भी न मिला। मुझे इसका सख़्त रंज है। किसका सर अपने पैरों पर टेक दूँ। मैं तो देहात में हूँ। ख़ुतूत शहर में आते हैं। वहाँ से यहाँ तक आने में ग़ायब हो जाते हैं। मैं आज रात की गाड़ी से बहुत ज़रूरी काम से गोरखपुर जा रहा हूँ। 31 को या 1 जून को लौटूँगा। वालिदा साहिबा जिस दिन यहाँ आने वाली हों उससे मुझे 1 जून तक ऊपर के पते से मुत्तिला फ़रमाइए। यहाँ मेरा निज का किराये का मकान है जिसमें प्रेस है। जगह वसीह (लंबी-चौड़ी) है मगर इसमें शायद खटपट से तकलीफ़ हो। इसलिए यहाँ के एक अच्छे धर्मशाला में इंतज़ाम कर दूँगा। किसी बात की तकलीफ़ न होगी। हाँ मुझे पहले ख़त मिल जाना चाहिए ताकि मैं स्टेशन पर ख़ुद या विकालतन् (प्रतिनिधि के जरिये) मौजूद रहूँ। अगर 1 जून या 2 जून तक मुझे ख़त न मिला तो मैं कानपुर आऊँगा और जिस दिन वह यहाँ आना चाहेंगी उन्हीं के साथ मैं भी चला आऊँगा। अभी तो मलमास 15 दिन बाक़ी हैं।

और सब ख़ैर-ओ-आफ़ियत है। प्रेस अभी चला नहीं मगर मशीन फ़िट हो गयी। लकड़ी का सामान तैयार किया जा रहा है। वस्सलाम।

आपका, धनपत राय।



46/31 मध्यमेश्वर, बनारस, 18 जून. 1923

भाईजान,

तसलीम। सेन बाबू की नाकामयाबी का मुझे ताज्जुब है। और क्या कहूँ। ग़ालिबन् यह पिछले साल की तवील[1] बीमारी का नतीजा है।

आपकी बीमारी की ख़बर इससे भी ज़्यादा अफ़सोसनाक है। इस तपिश में बुख़ार की तकलीफ़। ज़रूर यह बनारस की तकलीफ़ का ख़मियाज़ा[2] है, जिसका ज़िम्मेदार एक हद तक मैं हूँ। अगर एक दिन भी रुक गया होता तो मुतलक़ तकलीफ़ न होती। मेरा प्रेस का मकान इतना वसीह, शहर से मुलहिक़[3] और फिर इतना दूर और ऐसे मौक़े से है कि उससे बेहतर जगह बनारस में नहीं है। बिल्कुल टाउनहाल और पार्क के मुत्तसिल[4]। कमरे के दरवाजे खोल दीजिए और पार्क का लुत्फ़ घर बैठे उठाइए। उसे छोड़कर इन्हें मणिकर्णिका घाट पर रहना पड़ा। मेरा एक आदमी भी प्रेस मे रहता है। पर क्या करूँ, मेरी उजलत[5]।

अभी प्रेस नहीं खुला। बाबू महताब राय की ज्ञानमण्डल से गुलूख़लासी[6] का इंतज़ार है। वस्सलाम।

नियाज़मंद, धनपत राय।

1. लंबी, 2. भुगतान, 3. मिला हुआ, 4. क़रीब, 5 जल्दी 6. गला छूटना; मुक्ति।



मध्यमेश्वर, काशी, 3 जुलाई, 1923

बरादरम,

तसलीम। कई दिन से कुछ मिज़ाज की ख़ैर-ओ-आफ़ियत और लड़के-वालों का हालचाल नहीं मालूम हुआ। सेन बाबू ग़ालिबन् अब बिल्कुल अच्छे होंगे। मैं तो आते आते

रह गया। मेरे तीनों लड़कों को चेचक (छोटी) निकल आयी थी। इसके बाद फोड़े फुंसियों का सिलसिला शुरू हुआ जो अभी तक जारी है।

मेरा ताल्लुक़ 1 जुलाई से काशी विद्यापीठ से टूट गया। इंतज़ामिया कमेटी ने स्कूल के इब्तदाई[1] दर्जे तोड़कर बाक़ी कालिज से मिला दिये। हेडमास्टर की ज़रूरत नहीं रही। और मैंने किसी दूसरी जगह पर रहना मंजूर नहीं किया। यह तो ज़ाहिर ही है कि चंद महीनों के वाद मुझे इस्तीफ़ा देना पड़ता क्योंकि प्रेस के मुताल्लिक़ कुछ न कुछ काम मुझे भी करना ही पड़ता। लेकिन इस वक़्त कुछ तरद्दुद[2] ज़रूर हुआ। अव जब तक प्रेस से कुछ याफ़्त[3] न हो क़लम ही का भरोसा है।

मैंने इरादा किया था कि आपको तकलीफ़ न दूँगा। आपकी परीशानियाँ बढ़ी हुई हैं लेकिन मेरी मौजूदा हालत मुझे अपने इरादे पर क़ायम नहीं रहने देती। मकान का क़िस्सा तो आपको पहले ही लिख चुका हूँ। साल भर तक एक सौ वीस रुपये माहवार किराया देना पड़ेगा। मज़ीद[4] तरद्दुद का बाइस यह है कि बाबू महताव राय ने दो हज़ार मंजूर किया था। वह नाना साहब से रुपये लेनेवाले थे। नाना साहव ने एक हज़ार तो दिया मगर अब आनाकानी कर रहे हैं। वह एक हज़ार भी अव मुझे ही कहीं से पैदा करना है। इतने रुपयों का बन्दोवस्त होते ही काम शुरू कर दूँगा।

मेरा गोशए-आफ़ियत अभी तक पड़ा हुआ है। क्या करूँ, इसे भी लाहौर भेज दूँ? मेरे लिए खुद छपवाना तो कम अज़ कम दो साल तक मुश्किल है।

प्रेम पचीसी का छपना भी ज़रूरी है। इसी दरमियान में एक नाटक भी हिन्दी में लिख डाला। इसका उर्दू-एडीशन निकलना ज़रूरी है। इस वक़्त एक नाविल लिख ही रहा हूँ जो 1000 हिन्दी सुफ़हात या 600 उर्दू सुफ़हात से कम न होगा। ग़रज़ इस वक़्त मुझे एक अच्छे पब्लिशर की ज़रूरत है जो इन किताबों से खुद फ़ायदा उठाये और मुझे भी कुछ दे। एक बार फिर नवलकिशोर का दरवाज़ा खटखटाऊँगा। आपसे कुछ मदद माँगते हुए क़लम रुकता है लेकिन अगर इस वक़्त आप किसी तरह मेरे रुपये भेज सकें तो बड़ा काम चल निकले। मैंने अपने हिन्दी पब्लिशरों से भी रुपया मांगा है। अगर कुछ उधर से मिल गया तो यह एक हज़ार की फ़िक्र दूर हो जायेगी।

कल रात को ख़ासी बारिश हुई।

मुझे उम्मीद है कि आप इस मौक़े पर मुझे मायूस न करेंगे। वस्सलाम।

आपका, धनपत राय।

1. आरंभिक, 2. झंझट, 3. प्राप्ति, 4. और भी।



हिन्दी पुस्तक एजेन्सी (प्रकाशक और विक्रेता) 126, हरिसन रोड, कलकत्ता
तारा का पता–'प्रेमाश्रम' कलकत्ता 5-7-1923

श्रीयुत प्रेमचन्द जी, काशी

प्रियवर,

आपका कृपा-पत्र मिला। बा. शम्भूप्रसाद जी के पत्र का उत्तर मैं दे चुका था। खेद है कि उन्होंने आपसे नहीं कहा।

आपका जो हिसाब उन्होंने लिखा था, उसमें अभी करीब 200 रु. जमा नहीं किये थे। यह रक़म मशीनों का जहाज़-भाड़ा, ड्यूटी, गाड़ी-भाड़ा आदि का खरच पड़ा था। इस तरह 'प्रेम-पचीसी' तक का पुरस्कार अनुमानतः आपके पास पहुँच चुका है।

अब जैसी आपकी मरज़ी हो लिखिए, और प्रबन्ध कर दिया जायगा। यदि मालिक ख़र्च के हिसाब कुछ-कुछ लेते रहें तो आपका भी काम चल जाय, हमें भी एक साथ प्रबन्ध नहीं करना पड़े, परन्तु यह सब आपकी इच्छा पर है।

यह बड़े आनन्द की बात है उपन्यास प्रायः तैयार कर चुके हैं, परन्तु काशी विद्यापीठ से सम्बन्ध तोड़ने का कोई विशेष कारण होगा। वहाँ काम करते हुए भी आपको समय काफ़ी मिल जाता था।

आपके प्रेस का काम कैसा चल रहा है ? इस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा। आशा है अच्छी तरह चल निकला होगा। कृपा बनाये रखिएगा।

भवदीय, बैजनाथ।



46/31 मध्यमेश्वर, बनारस, 18 जुलाई, 1923

भाईजान,

तसलीम। आपका ख़त पढ़कर सख़्त मायूसी हुई। आप उधर परेशान, मैं इधर परेशान। कौन किसको सुने। पर आपके वसाइल[1] वसीह[2] हैं, मेरे निहायत महदूद[3]। इसलिए मुझे फिर भी यही अर्ज़ करना पड़ता है कि आपने मेरी तरद्दुदात का काफ़ी अन्दाज़ा शायद नहीं किया। मगर इसकी तौज़ीह[4] महज़ इतने ही से हो सकती है कि मुझे मजबूर होकर 400 रुपये क़र्ज़ लेने पड़े। और मकान का किराया 200 रुपये देने पर फिर 200 रुपये बच रहे। अभी आजकल में Chase आ जायँगे, और फिर बिल्कुल तिहीदस्त हो जाऊँगा।

20 से प्रेस का काम शुरू होगा। मगर ख़ाली हाथ। मेरे पास अब कुछ नहीं रहा। कुल 8000 रुपये का तख़मीना किया था। मैं 500 रुपये ज़ाइद ख़र्च कर चुका। अब कहाँ से लाऊँ। दोस्तों को तकलीफ़ देने के सिवा और कहाँ जाऊँ। 400 रुपये एक साहब से लिये। अगर आप 300 रुपये दे सकें तो एक महीने के लिये कुछ सर हलका हो जाय। एक महीने में ग़ालिबन कुछ आमदनी हो ही जायगी। शायद उस वक़्त तक बाबू रघुपति सहाय का मौज़ा फ़रोख़्त हो जाय। इसके बाद ही वह मुझे रुपये अदा करने वाले हैं। मैंने तो आप पर बार न डालने के लिये लिखा था कि आप माहवार 100 रुपये दे दें तो मैं मकान के किराये से सुबुकदोश हो जाऊँ। आपकी तरद्दुदात का अन्दाज़ा कर रहा हूँ। जानता हूँ कि मकान की तरमीम[5] में काफ़ी रक़म सर्फ़ करनी पड़ेगी। मगर मेरा मकान भी तो अभी पूरा नहीं हुआ। सिर्फ़ गुज़र करने के क़ाबिल हो गया है। अभी एक हज़ार और लगें तो मुकम्मल हो। इसे मैंने ज़्यादा इत्मीनान के मौक़े के लिए टाल दिया है। और क्या अर्ज़ करूँ।

मुझे एक जुज़ रक़म के लिये बार-बार आपको तकलीफ़ देते हुए शर्म आती है। मैंने उस वक़्त तक लिखने से तअम्मुल[6] किया जब तक किसी नहज[7] से मेरा काम चल

सका। पर अब मजबूर हो गया हूँ। अगर आपने इमदाद न की तो फिर क़र्ज़ लेना पड़ेगा। इसके सिवा और कोई चारा नहीं है। मैं बड़ी बेताबी से...मगर ख़्वामख़्वाह क्यों आप पर अपनी ज़रूरत की अहमियत साबित करने की कोशिश करूँ। आप खुद समझ सकते हैं। आपको मेरी माली हालत का इल्म है। मैंने ऐसे मौक़े के लिए आपसे ज़्यादा इमदाद की तवक़्क़ो[8] की थी। इतना मायूस न कीजिये। मेरे साले साहब को आप जानते हैं। मेरी मजबूरी का अन्दाज़ा महज इससे कर सकते हैं कि मैंने इस बन्दए खुदा से मदद माँगने से भी गुरेज़ न किया। हालाँकि वहाँ क्या मिलना था। जवाब तक न आया। ज़्यादा वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

1. साधन, 2. विस्तृत 3. सीमित, 4. स्पष्टीकरण, 5. सशोधन, 6. विलंब, 7. तरीक़े, 8 आशा।

●●

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी — 126, हरिसन रोड, कलकत्ता, 26-7-1923

प्रियवर,

आपका कृपा-पत्र मिला, सन्तोष हुआ। मैंने भी यह अन्दाज़ा लगा लिया था कि आप निराशा की हालत में ही वह पत्र लिखे थे, परन्तु आपके पहले पत्र का उत्तर तो मैं दे चुका हूँ एवं उसमें यह भी लिख दिया था कि खर्चे के लिए मासिक के हिसाब आप दूकान से लेते रहें और आपको (जहाँ तक याद है) खर्चे के लिए ही हाथ में कुछ तंगी लिखी थी, परन्तु खैर, अब सब बात ठीक हो गई।

अनुवाद भी आपको दूसरों के लिए क्यों करना पड़े, जब एजेन्सी बराबर अनुवादित पुस्तक भी प्रकाशित कर रही है। मौलिक पुस्तक आस्ते-आस्ते जैसा जी चाहे, लिखते रहिए, बाक़ी समय में धड़ल्ले के साथ अनुवाद करते जाइए। जो पुस्तक आप आवश्यक समझें, समयानुकूल हो एवं आपका मन लगता हो, उसी में हाथ लगा दीजिए।

देहली और गोरखपुर में दुकानें खुल गई हैं। अब बिक्री और भी बढ़ने का ढंग हो गया। इससे प्रकाशन भी अवश्य ही बढ़ाना होगा। इस महीने में क़रीब-क़रीब 4 पुस्तकें तैयार हो चुकी हैं। 'रागिनी' उपन्यास क़रीब 750 पृष्ठ का, 'शिवाजी' क़रीब 650-700 पृष्ठ का, 'भारतीय वीरता' 325 पृष्ठ की एवं 'आकृति-निदान', जो छोटी होने पर भी 50-60 चित्रों के कारण उन्हीं के बराबर हो जायगी। यह चारों तो एजेन्सी-माला में हैं। इसके सिवा मूल रामायण छपकर तैयार है जो 42 फ़र्मों के लगभग हो गई है। स्वामी विवेकानन्द जी का भक्तियोग प्रकाशित हो गया है। आगे के लिए यह प्रबन्ध कर दिया गया है, जो अपने यहाँ प्रकाशित हो, आपको एवं गौड़जी को काशी की दुकान से तुरन्त मिल जाया करे।

'प्रेम-पचीसी' में हाथ लगा दिया गया है। वह भी शीघ्र ही खत्म समझिए। प्रायः 8-9 फर्मे तो छप चुके हैं। पोथियों की माँग अधिक रहने के कारण बीच बीच में उनको शीघ्रता से निकालना पड़ता है। दूसरे प्रेस नं. 1. सरकार लेन से उठा लाने के कारण प्रायः 15-20 दिन काम एकदम ही बन्द-सा रह गया था। अब अपनी पहली अवस्था से भी अच्छी हालत पर आ गया है।

आपके प्रेस का क्या हुआ, कुछ उत्तर भी नहीं मिला। आशा है, मज़े में चल निकला

होगा। मशीनें कैसी रहीं ? सब हाल खोलकर लिखिएगा।

कृपा बनाये रखिएगा।

भवदीय, बैजनाथ।

●●

सरस्वती प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी, 29 जुलाई, 1923

मुकर्रमे बन्दा जनाब ख़्वाजा साहब,

तसलीम ओ नियाज़। बराहे करम ववापसी एक जिल्द सैरे दरवेश भेजकर ममनून फ़र्माइए। उसकी सख़्त ज़रूरत है।

उम्मीद है कि आप खूब खुश होंगे। देखूँ कब तक आपसे मुलाकात होती है।

ख़ैरअन्देश, धनपत राय।

●●

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, (माधुरी-संपादन विभाग)
लखनऊ, 29-7-1923

प्रियवर,

हमने निश्चय किया है कि समालोचनार्थ आई हुई पुस्तकें बाहर के सज्जनों के पास भेजकर 'पुस्तक-परिचय' लिखवाया जाय। तदनुसार कुछ उपन्यास हम आपके पास भेजना चाहते हैं। पुरस्कार भी इस सम्बन्ध में 'माधुरी'-कार्यालय भेजा करेगा। उत्तर शीघ्र दीजिए। कृपा-भाव रक्खें। आशा है, आप प्रसन्न हैं।

भवदीय, दुलारेलाल (सम्पादक)

●●

सरस्वती प्रेस, मध्यमेश्वर बनारस, 14 अगस्त, 1923

वगदरम,

तसलीम। जब से आया हूँ आपने कोई ख़त नहीं भेजा। लाहौर से किताबें आ गयीं या नहीं। मेरी तहरीर के मुताबिक़ उनकी तादाद निकली या नहीं। यानी हिस्सा अव्वल की 18 और हिस्सा दोयम की 120। मैंने अव इरादा कर लिया है कि अपनी उर्दू किताबें खुद ही छाप लूँ। एक छोटा-सा लीथो प्रेस रख लूँ। आपने अपने प्रेस का ज़िक्र फ़रमाया था। कैसा प्रेस है। क्या साइज़ है। अभी काम दे रहा है ? कल-पुर्ज़े दुरुस्त हैं ? उसके साथ पत्थर भी है या नहीं ? 'ज़माना' के 4 सफ़े एक बार देता है या 8 ? इन उमूर से मुझे जिस क़दर जल्द मुमकिन हो मुत्तला फ़रमाइये। अब ताख़ीर (देर) करने से कोई फ़ायदा नहीं। 'कर्बला' के मुताल्लिक़ जनाब ख़्वाजा साहब ने मुझे एक किताब दिखाई थी जिसमें मरासी (मर्सियों) के इन्तख़ाव थे। बराहे करम उसकी एक जिल्द मेरे पास भिजवा दें, और क़ीमत मेरे नाम दर्ज फ़रमायें। निहायत मशकूर हूँगा। यहाँ और सब ख़ैरियत है। कांग्रेस हो रही है।X X X

वाबू रघुपति सहाय तशरीफ़ लाये हुए हैं। 'ज़माना' का ताज़ा पर्चा मेरे पास नहीं आया। क्या अभी नहीं निकला है। उम्मीद है कि आप मलेरिया की ज़द में न आये होंगे।

आपका, धनपत राय।

●●

दि 'चाँद' ऑफ़िस, इलाहाबाद, 25 अगस्त 1923

प्रियवर,

मैं हिन्दू-सभा में गया था। मैंने आपसे एक बार मिलना भी चाहा, पर दुर्भाग्यवश भेंट न हो सकी। प्रेस में एक घंटा बैठकर चला आया। शायद आपको मेरा कार्ड मिला भी हो।

मुझे आपसे एक ज़रूरी बात करनी है, वह यह कि 'माधुरी' की तुलसीसंख्या में 'आभूषण' शीर्षक आपकी जो कहानी छपी है, उसे यदि वहाँ न भेजकर आप 'चाँद' में भेजे होते तो इससे विशेष उपकार की सम्भावना थी। यह सच है कि मैं आपको उतना पुरस्कार न दे सकता जो आपको 'माधुरी' से मिलता होगा। प्रचार की दृष्टि से भी चांद 8000 नहीं छपता, पर मेरा ख़याल है, उपयोगिता की दृष्टि से, चाहे 'चाँद' की थोड़ी-सी प्रतियाँ ही छपती हों, यह कहानी इसके लिए बहुत मौजूँ थीं। ख़ैर !

एक कार्ड पहले भी आपकी सेवा में भेज चुका हूँ। आशा है, मिला होगा। यदि अगले अंक के लिए आप कुछ भेजें तो कृपया इसकी सूचना मुझे तुरन्त दे दें। क्योंकि अगले मास में 'चाँद' के दो संस्करण 15/15 दिन में प्रकाशित होंगे।

योग्य सेवा सदैव लिखते रहेंगे।

भवदीय, रामरखसिंह सहगल।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 26 सितम्बर, 1923

भाईजान,

तसलीम। मिज़ाज शरीफ। 'तहज़ीबे 'निसवां' के दफ़्तर से आपके यहाँ 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल 18, 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा दोम 120 जिल्दें रवाना की गयी हैं। रसीद से मुत्तला फ़रमायें और अपने यहाँ दर्ज करा दें।

मैं तो जब से यहाँ आया हूँ अपने नये नाविल के लिखने में हमातन[1] मसरूफ़ हूँ। आपने भी याद नहीं किया।

बाबू बिशन नरायन भार्गव साहब के यहाँ से अम्रे ज़ेरे-बहस[2] के मुताल्लिक़ कोई ख़त नहीं आया। मैंने खुद दो बार लिखा, पर जवाब नदारद। समझ गया वह भी एक रईसाना उबाल था। यह है हमारे शुर्फ़ा की तलव्वुन-मिज़ाजी[3]। ख़त का जवाब तक देना मंजूर नहीं और तलब किया वज़रिये तार !

आपका, धनपत राय।

1. पूरी, 2. विचाराधीन बातों, 3. झक्कीपन।

●●

'आर्यमित्र' आगरा
29 सितम्बर 1923

हरिशंकर शर्मा (सम्पादक)

श्रीयुत मान्यवर महोदय,

सादर नमस्ते

नये अंक के लिए एक गल्प लिखकर अनुगृहीत कीजिए, बड़ी दया होगी। मैं पहले

भी प्रार्थना कर चुका हूँ। अब पुनः याद दिलाता हूँ। आशा है कि आप निराश न करेंगे। समय बहुत थोड़ा रह गया है।

भवदीय विनीत, हरिशंकर।



गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, (माधुरी-सम्पादन विभाग)
लखनऊ, 1 अक्टूबर, 1923

प्रिय प्रेमचंद जी,

हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस के श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल का हमें एक पत्र मिला है। उसमें उन्होंने आपकी प्रशंसा करते हुए हमारे सम्मुख यह प्रस्ताव रखा है कि प्रेमचंद जी की आख्यायिकाएँ दो भागों में प्रकाशित की जायँ। एक में सरल और दूसरे में गम्भीर कहानियों का संग्रह हो, जो स्कूल और कॉलेज दोनों में काम आ सकें।

हमने उनके पत्र का उत्तर दे दिया है और लिख दिया है कि श्रीयुत प्रेमचंद जी से सम्मति लेकर हम शीघ्र ही इस पर विचार करेंगे। अस्तु, लिखिए, आपकी क्या सम्मति है ? आपकी आख्यायिकाएँ प्रकाशित करने का हम प्रबन्ध करें ? उत्तर शीघ्र देने की कृपा करें। क्या ऐसे सग्रह ठीक होंगे ?

भवदीय, दुलारेलाल (सम्पादक)



गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, (माधुरी-सम्पादन विभाग)
लखनऊ, 1 अक्टूबर, 1923

प्रिय प्रेमचन्द जी, सादर वन्दे !

कृपा करके लिखिए 'प्रेम-प्रसून' में किन-किन गल्पों का संग्रह किया गया है। हम 'माधुरी' की इस संख्या में उसका विज्ञापन देना चाहते हैं।

500 रु. तो आपकी सेवा में पहुँच ही चुके हैं। शेष रुपये भी शीघ्र ही सेवा में भेजे जायँगे।

भवदीय, दुलारेलाल।

पुनश्च—छपे हुए फ़ार्मों का एक सेट आपने अभी तक नहीं भेजा। कृपया शीघ्र भेजिए। आजकल लखनऊ में अभूतपूर्व बाढ़ आई हुई है। प्रेस में बहुत कम आदमी आते हैं। सब का ध्यान बाढ़ की ओर है। बिशननारायण से अभी बातें नहीं कर सका हूँ। अतएव आपके पत्र का उत्तर बि. ना. से बातें करके दूँगा।

दुलारेलाल।



टेलीग्राम-'गंगा', लखनऊ
टेलीफ़ोन नं. 306

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय,
29-30, अमीनाबाद पार्क
लखनऊ, 3 अक्टूबर, 1923

प्रिय महाशय,

कृपया 'प्रेम-प्रसून' के लिए एक पेज का विज्ञापन 'माधुरी' में छपने के लिए भेज

दीजिए। अथवा 'प्रेम-प्रसून' के गल्पों की सूची तथा अन्य आवश्यकीय सूचनाएँ भेज दें। हम यहाँ विज्ञापन बनवा लेंगे।

कृपा बनाये रखिये।

भवदीय, (हस्ताक्षर अस्पष्ट हैं) संचालक।

●●

शीज़ादा

26 अक्टूबर, 1923

बख़िदमत जनाब मुंशी प्रेमचन्द जी,

नमस्ते !

मैंने आगे भी एक अदद कार्ड लाहौर से आपकी ख़िदमत में लिखा था, लेकिन आपकी तरफ़ से अभी तक कोई जवाब न पाकर मुझे फिर दोबारा लिखने की ज़ुर्रत हुई है। मैंने अपने पहले कार्ड में लिखा था कि 'गोशाए आफ़ियत' ताहाल (अभी तक) छपा है या नहीं। अगर छप गया हो तो एक कॉपी बज़रिए वी. पी. भेजकर मशकूर फ़रमावें। आप यह भी लिखें कि वो कहाँ छपेगी और अन्दाज़न कितनी क़ीमत होगी। मैं और मेरे दोस्त बड़ी बेचैनी से उस किताब का इन्तज़ार कर रहे हैं। 'प्रेमाश्रम' की तारीफ़ सुनते-सुनते कान उकता गये हैं। जवाब जल्दी—

उल राक़िम, प्रेमचन्द्र शर्मा, नेशनल कॉलेज, लाहौर

हाल 'शीज़ादा', ज़िया स्यालकोट, पंजाब।

हिन्दी पुस्तक-भवन (प्रकाशक और विक्रेता)

181, हरीसन रोड, कलकत्ता

श्रीयुत् बाबू प्रेमचन्द जी

10 नवम्बर, 1923

सरस्वती प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी

प्रिय महोदय,

आपकी सेवा में पहले एक पत्र दिया गया था किन्तु दुःख की बात है कि उसका कोई उत्तर अब तक प्राप्त न हुआ। हमें श्रीयुत पं. छविनाथ जी पाण्डेय द्वारा मालूम हुआ है कि आपके पास कहानियों का एक संग्रह है जो अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है। यदि यह बात ठीक है तो कृपा करके वह संग्रह हमें भेज दीजिएगा। पुरस्कार के लिए जैसा आप कहेंगे, कर दिया जायगा। पत्रोत्तर शीघ्र देने की कृपा करें।

भवदीय, गंगाप्रसाद भोलीछा (मैनेजर)

●●

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय,

लखनऊ,

(माधुरी-सम्पादन विभाग)

12 नवम्बर, 1923

प्रियवर,

कृपया लौटती डाक से लिखिए कि आपकी 'रंगभूमि' नाम की पुस्तक अन्दाजन कितने पृष्ठ की होगी ? हम उसकी नोटिस 'माधुरी' की इसी संख्या में दे रहे हैं। अतिशीघ्र।

'माधुरी' में एक नोट प्रकाशित हो रहा है जिसमें गं. पु. मा. में प्रकाशित ग्रन्थों

· सूची दी जा रही है।

भवदीय, दुलारेलाल (सम्पादक)



रामचन्द्र टण्डन के पत्र

16/2 Aminuddowlah Park, Locknow, 12.11.1923

y dear Premchandji,

Many thanks for your kind letter of the 8th instant. I had in the eantime also received your earlier letter sent along with the book. Thanks r both of them.

I am very sorry to learn of the reappearance of your son's malady. The ot of the trouble is there and in my opinion a radical treatment becomes iperative. That treatment can only be an operation of his tonsils and adeoids. ; all events the proper man—an—expert–must be consulted; and for expert edical & surgical advice Lucknow is the place.

I can quite understand your wife's nervousness. As to her prejudice, she ould be cured of it. In the case of my brother my mother raised similar jections. She actually had it...to me that I should take my brother back ome and the operation should not be done. I fead long ignored her wishes id informed her that the operation was imperative, that a date had been fixed r it, that, in short, it must be done. She does not regret my choice now. But hat a headlong & obstinate son can do, it may not be given to a loving isband also to do. So try sweet pursuation by all means. Only remember that e continuance of your son's malady is detrimental alike to his physical and ental growth. It wili be criminal on your part to neglect his case. You will ive to do this same thing sooner or later. The sooner the tendency towards afness is arrested the better. This operation can only arrest tendency to rther deafness; it only rarely restores lost hearing. So you are the judge of e matter now. You know what my own advice is.

If you choose to bring the boy here, as I think you should do without elay, you can put up with us, if will be a pleasure to me if you do so. We ive rented a small house here, but it is well situated and quite sanitary. You eed not at all bother about accomodation. We shall be here for at least 3 eeks more–my friend in the medical college and myself will render you hat little help we can in the matter of the treatment.

I am glad you are busy with writing a Drama named 'Karbala'. This, I nderstand from Dularelal Bhargava this morning, was had contributed an

article of the same title to the 'Madhuri.'

I confess to not having been able to comprehend your question regarding drama and your difference from what Sanskrit literature makes it out to be. We shall talk it over when you are here.

From two of the latest of Raghupati Sahai's letters I have come to know of his anxiety and devotion for the time being he is making supreme efforts to continue his congress work.

Sincerely Yours, Ram Chandra Tandon

●●

Managed by
Mrs. Vidyawati Saigal

'The Chand' Office
Allahabad, 19-11-1923

प्रियवर,

इसके पहले भी दो पत्र सेवा में भेज चुका हूँ। आपने विश्वास दिलाया था कि अक्तूबर के अंत तक आप अवश्य एक कहानी 'चाँद' के लिए भेजने की कृपा करेंगे, किन्तु यह नवम्बर का मध्य है पर आज तक आपकी कहानी मिली नहीं।

'चाँद' का अगला अंक एक बड़े विशेषांक के रूप में निकल रहा है जो कि दिसम्बर के पहले सप्ताह में प्रकाशित हो जायगा। आपसे सादर अनुरोध है कि इस नये साल के शुरू वाले अंक में कुछ अवश्य भेजने की कृपा करेंगे।

आपका, रामरखसिंह सहगल।

●●

भगवती प्रसाद वाजपेयी (भूतपूर्व सम्पादक 'संसार')
वर्तमान सहकारी सम्पादक 'माधुरी'

प्रेम-मन्दिर, लखनऊ
11 दिसम्बर 1923

प्रिय प्रेमचंद जी, प्रणाम !

सेवा में एक पत्र भेजा था। कई दिन हुए। उसमें मैंने आपसे कुछ निवेदन किया था। उत्तर नहीं मिला। आशा है, आप तो अवश्य मुझ पर कृपा करेंगे।

भवदीय, भगवती प्रसाद वाजपयी।

●●

लाहौर, 13-12-1923

बख़िदमत मुंशी प्रेमचंद जी, नमस्ते !

ख़त आपका बहुत अर्सा हुआ मिला था। यादआवरी का मशकूर हूँ। मेरे ख़याल से आपने इस पर्चे में 'गोशाए आफ़ियत' के छपवाने का इन्तज़ाम कर लिया होगा। हिन्दी की किताब 'रंगभूमि' का आपने उर्दू में क्या नाम रखा है और आपका दूसरा नाविल, जिसका आपने पहले ख़त में ज़िक्र किया था, कब छपेगा और उसका क्या नाम होगा? हिन्दी में तो 'प्रेम पचीसी' निकल आई है, मगर उर्दू में कहीं मिली ही नहीं। आपकी एक किताब 'सुखदास' है, वो भी नहीं मिली। जवाब जल्दी–

ताबेदार, प्रेमचन्द्र शर्मा।

●●

F/6 first Hostel, हिन्दू यूनिवर्सिटी
18 दिसम्बर, 1923

पूज्य भाई साहब,

आपने नहीं लिखा कि द्विवेदी जी की पुस्तक लिखाने का प्रबन्ध हो सका या नहीं। मेरा विचार है कि जनवरी के प्रथम सप्ताह में कागज़ खरीदकर आपके यहाँ दे दूँ। छपाई के बारे में आपने अपने भाई साहब से पूछ लिया ?

मुझे 'मर्यादा' के उस अंक की ज़रूरत है जिसमें आपने 'जलपरी' छापी थी। क्या कहीं से मिल सकता है ?

'रंगभूमि' के बारे में आपने निश्चय कर लिया ? मेरे साथ केवल यही सूरत निकल सकती है कि पहली दो हज़ार पुस्तकों का तमाम मुनाफ़ा आप ले लें। दो हज़ार का खर्च सजिल्द का (900 कागज़+750 छपाई+500 जिल्द बँधाई+150 विज्ञापन)=2300 हुआ और मूल्य साढ़े चार रु. फी के हिसाब से 9000 रु. हुआ। अतः 6700 रु. बचे, इसमें से अनुमानतः पौना कमीशन का भी निकाल दीजिए, यानी कम-से-कम साढ़े चार हज़ार रुपये आपको बच रहेंगे। मुझे इस पुस्तक के छपाने से जो फायदा होगा वह लिख ही चुका हूँ। जैसी आपकी आज्ञा हो, सो करने को तैयार हूँ। पुस्तक तथा उपहार सहित ज़्यादे-से-ज़्यादे जितने की आप आशा कर सकते हैं, उससे अधिक इस प्रकार आप प्राप्त कर सकते हैं।

सेवक, रायकृष्ण दास

●●

भगवतीप्रसाद वाजपेयी (भूतपूर्व सम्पादक 'संसार')
वर्तमान सहकारी-सम्पादक 'माधुरी'

प्रेम-मन्दिर, लखनऊ
19 दिसम्बर 1923

श्रद्धेय प्रेमचन्द जी, प्रणाम !

कृपा-पत्र पाकर अनुगृहीत हुआ। पुस्तक कलकत्ते से आती हुई शीघ्र ही सेवा में पहुंचेगी। जिस दिन प्राप्त हो, उसी दिन कृपा करके उसके प्राप्त होने की सूचना दे दें।

आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली, आपकी इस कृपा का मैं हृदय से आभारी हूँ।

कृपा-भाव रक्खें।

भवदीय,
भगवती प्रसाद वाजपेयी।

●●

हिन्दी पुस्तक-भवन
प्रकाशक और विक्रेता

181, हरिसन रोड, कलकत्ता
10 दिसम्बर 1923

मान्यवर महोदय,

श्रीयुत पं. भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी के लिखने से हम उनका 'प्रेम-पथ' आपकी सेवा में भेजते हैं। पहुँचते ही सूचित कीजिएगा। विशेष कृपा रखिएगा। हमारे योग्य सेवा से सूचित कीजिएगा। अपनी रचना में से हमें भी कुछ देने का ख़याल रखिएगा।

भवदीय, गंगाप्रसाद भोलीका (मैनेजर)

बनारस, 26 दिसम्बर, 1923

भाईजान,

तसलीम। उम्मीद है अब आपको फोड़े से नजात हो गयी होगी। बहुत तकलीफ़ दी। मैं तो अच्छी तरह हूँ यानी बीमार नहीं हूँ।

बाबू रघुपति सहाय ने एक मुशायरा जेल की रिपोर्ट भेजी है। देख लें। कहीं दर्ज करा दें तो अच्छा हो। ग़रीबों की आरजू बर आये।

सर्दी तो वहाँ भी खूब पड़ती होगी। कई दिन से अब्र-ओ-बाद ने नाक में दम कर रखा है। बाल-बच्चे मज़े में हैं। उम्मीद है वहाँ भी सब भगवान की कृपा होगी।

प्रेस अभी तक नहीं आया। हाँ, अब उम्मीद है कि अब लीथो का काम भी करने का सुभीता निकल आये। सरमाये (पूंजी) में इज़ाफ़ा होने की क़वी (सबक) उम्मीद है। और क्या अर्ज़ करूँ। बच्चों को दुआ।

आपका, धनपत राय।



कलकत्ता, तिथि नहीं, सम्भवतः 1923

प्रिय भाई साहब, वन्दे !

कृपा-पत्र मिला। हाल जाना। ठीक है, किसी से कोई वस्तु माँगना अगर उसकी हँसी उड़ाना है, तो बेशक मैंने आपकी हँसी उड़ाई। एक बात लिखूँ तो शायद अत्युक्ति समझी जायगी, पर लिख देता हूँ। लोग अशोक के पास ही जाते हैं, बबूल के नहीं। इसी से उन्होंने भी आपको ही देखा और फिर से लिखवाया। तीन मास बाद ही सही।

अब राधाकृष्ण जी की बात सुनिए। वे कहते हैं–उर्दू का संग्रह जो आप कर रहे हैं, वह तो बड़ा बाज़ार कुमार-सभा के निमित्त लिखा ही जा रहा है, उसकी बात यहाँ क्यों ? रही उपन्यास की बात सो कमाने-खाने वालों के लिए संसार में अनेकानेक उपन्यास पड़े हैं। उनके लिए तो पुस्तकों की कमी नहीं। अगर कमी है तो बड़ा बाजार कुमार सभा-सदृश प्रकाशकों को, जिन्हें हर तरफ़ फूँक-फूँककर क़दम रखना पड़ता है और चुन-चुनकर रत्न निकालना पड़ता है। आपके उपन्यासों को हम उपन्यास समझकर नहीं निकाल रहे हैं, बल्कि साहित्य की अमूल्य वस्तु। इसलिए उसे आपको देना ही पड़ेगा। हाँ, अगर सभा को देने से आप किसी तरह की आर्थिक क्षति समझते होंगे, उसकी पूर्ति आप उससे भली प्रकार करवा सकते हैं, और प्रतिष्ठा के ख़याल से तो शायद बड़ा बाज़ार कुमार-सभा किसी अन्य प्रकाशक से घटकर न होगी।

इससे आप कमाने वालों का ख़याल छोड़कर साहित्य-प्रचार करने वालों पर अनुग्रह कर उपन्यास जल्द समाप्त कीजिए और छपने के लिए दीजिए। अगर आपने किसी भी कारण से यह पुस्तक दूसरों को देने का इरादा किया है, तो वास्तव में नहीं ही है–तो उसे कृपया छोड़ दीजिए और सभा की ही वस्तु उसे समझने की कृपा कीजिए। अधिक क्या लिखें।

'अहंकार' के पुरस्कार के रुपये के साथ-ही-साथ 15 रु. गल्प का पुरस्कार भी भेज दिया था। महताब को लिख भी दिया था। पत्र में हिसाब का ब्यौरा भी था। आश्चर्य है कि उन्होंने आपसे कुछ नहीं कहा। गल्प अभी तक छपी नहीं।

भविष्य में पत्र अगर आप राधाकृष्ण जी के नाम से ही लिखेंगे, तो अच्छा होगा, क्योंकि अब मैं उनके साथ नहीं रहता। शम्भू-हम साथ रहते हैं। हमें पत्र एजेन्सी के पते से ही दीजिएगा।

भवदीय, छविनाथ।

●●

कलकत्ता, तिथि अंकित नहीं, सम्भवतः 1923

प्रियवर प्रेमचन्द जी,

कृपा-पत्र मिला। हाल जाना। बड़ा बाज़ार कुमार-सभा सार्वजनिक संस्था होकर भी लेखकों की ख़ातिरदारी करने में क़दम पीछे नहीं हटाना चाहती। उसके दो ही तो उद्देश्य हैं–सस्ती पुस्तकें लोगों तक पहुँचाना और लेखकों को सन्तुष्ट करना। इसलिए उस सम्बन्ध में लिखना अनावश्यक था, पर बहुत विचार करने के बाद यही निश्चय हुआ कि आपको उस पुस्तक के लिए कष्ट नहीं दिया जाय। पं. छविनाथ जी ने मुझसे सब बातें कहीं थीं, पर उस समय 'माधुरी' के पुरस्कार का ख़याल न तो छविनाथ जी को ही था और न मुझे ही। इसी से इतना ज़ोर देना पड़ा, पर अब आपकी आर्थिक हानि नहीं कराना चाहता। इससे सहर्ष लिख देता हूँ कि आप दुलारेलाल जी को ही पुस्तक दे दीजिए।

रही उर्दू-संग्रह की बात। उसके सम्बन्ध में हमें दो बातें कहनी है। एक तो यह कि अगर रामनरेश जी की पुस्तक निकल गयी और आपने बाद में लिखा तो कोई लाभ नहीं होगा। हिन्दी साहित्य की ओर लोगों का जितना कम अनुराग है, उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि एक विषय पर दो पुस्तकें अभी नहीं चल सकतीं। दूसरे इस समय सभा के हाथ में दूसरी कोई भी पुस्तक नहीं है। अगर आपको समय हो और आप कर सकें तो उसे जल्दी कर दीजिए, जिसमें उससे पहले हम निकाल लें। नहीं जैसी आपकी इच्छा ! इससे अधिक इस सम्बन्ध में क्या लिख सकते हैं ! विशेष कृपा, योग्य सेवा !

भवदीय, राधाकृष्ण नेवटिया

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 9 जनवरी, 1924

भाईजान,

तसलीम। दुआए ख़ैर के लिए मशकूर हूँ। यहाँ हमातन[1] दुआ हो रहा हूँ। मुझे बंगाल के समझौते में बजुज़ इस नुक़्स के कि इसकी इशाअत[2] बेमौक़ा थी और कोई ख़ास नुक़्स नज़र नहीं आता। एक सूबे का समझौता हर एक सूबे के लिए क़ाबिले अमल नहीं हो सकता और हर एक सूबे को अपने अग़राज़[3] के एतबार से उसमें तरमीम करने का अख़्तियार है। लाला लाजपत राय जी ने मिस्टर दास के साथ किसी क़दर ज़्यादती की है। ख़ैर मुझे तो इस वक़्त अली बरादरान की सुलहकुल[4] पालिसी फ़रेफ़्ता[5] कर रही है। उनके ख़यालात में जो हैरतअंगेज़ इंक़लाब हो रहे हैं उसको असली शुद्धि समझता हूँ और वही शुद्धि देर-पा हो सकती है। आपने मेरे मज़मून को मुस्तरद[6] कर दिया। ख़ैर, कोई मुज़ायक़ा नहीं। मैंने लिख डाला, दिल की आरज़ू निकल गयी।

काग़ज़ के नमूने देखे। वही रूलदार सफ़ेद 24 पौण्ड का काग़ज़ मुझे पसंद है। यहाँ वैसा काग़ज़ नहीं है। 24 पौण्ड का काग़ज़ उसी क़िस्म का मिलता है। दाम साढ़े सात

रुपये यानी वही पाँच आने पौण्ड मगर शायद रेल के किराये के अलावा आने में देर होगी और रुपये नक़्द देना पड़ेंगे। इसलिए मैं 24 पौण्ड ही का लूँगा। क्योंकि यहाँ क्रेडिट मिल जायेंगे। X X ने मजबूर कर रखा है। X X आप तकलीफ़ न करें। हाँ अगर कुछ इमदाद[7] कर सकें तो मशकूर होऊँगा।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है। बच्चों को दुआ।

आपका, धनपत राय।

1 समग्र भाव से, 2. प्रचार, 3. उद्देश्यों, 4. शान्तिपूर्ण, 5. आकर्षित, 6. अस्वीकृत, 7.सहायता।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 17 फ़रवरी, 1924

भाईजान,

तसलीम। एक हज़ार शुक्रिया मय सूद। बहुत ज़रूरत पर आपने इमदाद फ़रमाई। मज़ामीन लिखने की बार बार कोशिश करता हूँ मगर यक़ीन मानिए हिन्दी रसायल इस क़दर दिक़ करते हैं कि कुछ किये नहीं बन पड़ता। अब मैं कहानियाँ उर्दू में नहीं हिन्दी ही में लिखकर भेज दिया करता हूँ। इसलिए... मेरी एक राय है। मैंने इधर पाँच महीने में अपने नाविल रंगभूमि के साथ एक ड्रामा लिखा है जिसका नाम है कर्वला। इसमें कर्वला के वाक़यात पर तारीख़ी हैसियत को क़ायम रखे हुए एक ड्रामा लिखा गया है। मैंने ख़त तो हिन्दी रखा है मगर ज़बान सरासर उर्दू है। ख़्वाह[1] हिन्दी पब्लिक इसकी क़द्र न करे पर मैंने मुसलमान कैरेक्टरों की ज़बान से फ़सीह[2] हिन्दी निकलवाना बेमौक़ा समझा। नाटक इसी हफ़्ते में मतबे में चला जायगा। मेरे ही मतवे में। इस वक़्त नज़र-सानी कर रहा हूँ। मैं इसे सिलसिलेवार ज़माना में दे दूँ तो क्या राय है। क़िस्सा निहायत दिलचस्प है, निहायत दर्दनाक। मैंने माधुरी में कर्वला पर एक मज़मून लिखा था जिसकी क़द्र भी काफ़ी हुई। कोई वजह नहीं कि उर्दू में ड्रामा मक़बूल न हो। इसमें मुझे मज़मून-निगारी[3] न करनी पड़ेगी सिर्फ़ ख़त तबदील कर देना पड़ेगा। बाद को यह सिलसिला किताबी सूरत में निकल जायगा। इसका यक़ीन रखिए कि मैंने एहतराम[4] को कहीं नज़र-अन्दाज़ नहीं होने दिया है। एक एक लफ़्ज़ पर इस बात का ख़याल रखा है कि मुसलमानों के मज़हबी एहसासात[5] को सदमा न पहुँचे। मक़सद है पोलिटिकल, बाहमी एत्तहाद[6] को बढ़ाना, और कुछ नहीं। आपका जवाब आने पर पहला सीन इरसाले ख़िदमत होगा। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उर्दू में ऐसा दिलचस्प ड्रामा न होगा। हाँ ज़बान की फ़साहत[7] मेरे इमकान में नहीं। वाक़या खुद ही इतना दिलचस्प और दर्दनाक है कि ड्रामे के लिए निहायत मौज़ूँ है।

और क्या अर्ज़ करूँ। प्रेस चल रहा है। अभी नफ़ा तो नहीं हो रहा है मगर अपना ख़र्च आप सह लेता है। साल आख़िर तक मुमकिन है कि कुछ नफ़ा भी होने लगे। बच्चे अच्छी तरह हैं। नई आमद इमरोज़-फ़र्दा[8] में होने वाली है। अपनी हिमाक़त पर अफ़सोस करता हूँ और क़हे दरवेश बरजाने दरवेश[9] के मिसदाक़[10] अपने किये पर नादिम और मुतास्सिफ़[11] हूँ।

बच्चों को दुआ। परमात्मा आपको मक़सद में कामयाब करे। ईश्वर ने चाहा तो

जल्द कानपुर आऊँगा।...

1 चाहे, 2. शुद्ध, 3. रचना; लेखन, 4. आदर-सम्मान, 5. भावनाओं, 6. आपसी एकता, 7. तत्सम लेखन शली, 8. आज-कल, 9. भिखारी का गुस्सा अपने ऊपर निकलता है, 10 अनुसार, समान, 11. दुःखी।



सरस्वती प्रेस, 10 मई, 1924

बरादरम,

तसलीम। यादआवरी का मशकूर हूँ। कर्बला माफ़ करने की नौबत नहीं आयी। वादा न पूरा करने का नादिम हूँ। ब्याह की तारीख़ हिफ्ज़ (यदा) है। इंशा अल्लाह।

जुलाई की याद भी है। इंशा अल्लाह।

यहाँ के दीगर हालात साबिक़ दस्तूर हैं। मकान अब एक क़रीने का बन गया। अब इसकी हैसियत मकान की हो गयी। उम्मीद है बाल-बच्चे अच्छी तरह होंगे।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी, 5 जून, 1924

भाईजान,

तसलीम। मैं 3 जून को न आ सका। इसके लिए मआज़रत[1] करते हुए मुझे निहायत अफ़सोस मालूम होता है। मेरी छोटी लड़की जो 8 मार्च को पैदा हुई थी 28 की शाम से दस्त और बुख़ार में मुबतिला हुई। मैं समझता था ख़ारिजी शिकायत है, रफ़ा हो जायगी मगर शिकायत बढ़ती गयी यहाँ तक कि 3 तारीख़ को उसकी हालत इतनी अबतर हो गयी कि घर में लोगों ने रोना-पीटना भी शुरू कर दिया। मगर सुबह को उसे ज़रा-सा इफ़ाक़ा[2] हुआ। तब से अब तक न वह मुर्दा है न ज़िन्दा है, आँखें बंद किये पड़ी रहती है और रोया करती है। होमियोपैथिक की दवाएं दे रहा हूं मगर अभी तक कोई दवा कारगर नहीं हुई। लाग़र[3] और नहीफ़[4] इस क़दर हो गयी है कि अगर बच जाये तो मैं इसे ईश्वर की खास रहमत समझूं। मुझे बार-बार अफ़सोस होता है कि मैं इस तक़रीब[5] में न शरीक हो सका। मगर जब लोग एक बच्चे की चारपाई के पास बार बार उसका मुँह खोल कर देख रहे हों कि अभी नीचे उतारने का वक़्त आया या नहीं ऐसी हालत में सिवाय इसके और क्या कहूँ कि ईश्वर को यह बात मंजूर न थी और इसका क़लक़ मुझे ताज़ीस्त रहेगा। ख़ैर, अब तो जो कुछ होना था हो चुका। शादी बहुस्न-ओ-ख़ूबी अंजाम पा गयी होगी। अहबाब ने खूब दावतें उड़ायी होंगी। इस पर आपको मुबारकबाद देता हूँ। मुझे इस तक़रीब में शरीक न हो सकने का दिली सदमा है। मजबूरी माने हुई। सख़्त मजबूरी जिसका मुतलक़[6] गुमान न था। और क्या लिखूँ। आपसे अपनी दास्ताने ग़म सुनानी इस वक़्त निहायत बेमौक़ा है, बेसुरा राग है। मगर मआज़रत की कोई दूसरी सूरत पैदा ही न हो सकती थी सिवाय इसके कि मैं खुद बीमार हो जाता। ईश्वर बने और बनी को हयात-ए-तबई अता फ़रमाये और उनकी ख़ानाआबादी मुबारक हो। शायद नहीं कि क़सीद।[7] या तहनियत-नामा[8] लिखूँ।

ख़्वाह मेरी शिरकत किसी वजह से न हो सकी लेकिन मैं इसे हमेशा अपने लिए

बाइसे हिजाब[9] समझूँगा।

1. क्षमा-याचना, 2. तबीयत सुधरी, 3. दुबली-पतली, 4. कमज़ोर, 5 उत्सव, 6. एकदम, 7-8. स्तुति-काव्य, 9. लज्जा।



बनारस, 11 जून, 1924

भाईजान,

तसलीम। उम्मीद है कि आप बखुशी व खुर्रमी (खुशी) शादी करके वापस आ गये होंगे और अहबाब की दावत-तवाज़ो से फ़ारिग़ हो गये होंगे। यहाँ तो सात को लड़की रुख़सत हो गयी। उसकी जां-कन्दनी (जान का निकलना) तसवीर अभी तक आँखों में फिर रही है। मासूम को परमात्मा सद्गति दें। गर्मी इतनी शिद्दत की है कि कोई काम नहीं होता। कर्बला का मुसव्वदा तैयार कर रहा हूँ। कम से कम तीन ऐक्ट तैयार हो जायें तो भेजूँ। ज़्यादा वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, मध्यमेश्वर काशी, 28 जून, 1924

भाईजान,

तसलीम। कई दिन हुए आपका कार्ड मिला था। मैं अपनी क्या कहूँ, हद दर्जा परीशान हुआ। जब से लड़की मरी है घर में जोफ़े[1] हाज़मा की शिकायत होते होते अब संग्रहणी की सूरत में नमूदार[2] हुई है। देहात का क़याम, शहर में हकीम, हर दूसरे रोज़ जाना और आना और यह शिद्दत की गर्मी—दिल ही जानता है। इधर अज़ीज़ धुन्नू भी एक हफ़्ते से बुख़ार में मुबतिला है।

मेरे प्रेस की हालत अच्छी नहीं। साल भर पूरे हो गये, नफ़ा और सूद तो दरकिनार कोई छः सौ रुपये का घाटा है। नातजुर्बेकारी से ऐसे आदमियों के काम हाथ में लिये गये जिनके पास कुछ न था। अब उनसे रुपया वसूल होना मुश्किल है। मुझे ख़ौफ़ है कि मेरे बड़े भाई साहब जिनके दो हजार दो सौ पचास रुपये लगे हुए हैं तर्के शिरकत[3] पर आमादा हो जायेंगे। इधर अज़ीज़ महताब राय ने भी क़र्ज़ लेकर इतने रुपये लगाये थे। उन पर महाजन के सूद का तक़ाज़ा हो रहा है। वह भी अपने रुपये की वापसी की फ़िक्र में हैं। अगर मैं भी अपने रुपये की वापसी पर इसरार करूँ तो नतीजा मालूम है। सारा सामान X X

1. हाजमे की कमज़ोरी, 2. प्रकट, 3. साझेदारी से अलग होना।



सरस्वती प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी
8 जुलाई, 1924

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। आप उसके जवाब में यह ख़त देखकर मुताज्जिब होंगे मगर इधर दो माह में यहाँ की हालत बहुत ख़राब हो गयी है। भाई साहब अब अपने रुपये

की वापसी पर मुसिर[1] हो रहे हैं। टालमटोल कर रहा हूँ। बात यह है कि उन्होंने इधर चार छः सौ रुपये किसानों को क़र्ज़ दिये। उस पर उन्हें दो रुपये सैकड़ा माहवार सूद मिल रहा है। अब उन्हें प्रेस में रुपया फँसाना मुहमिल[2] मालूम होता है। अगर कहता हूँ कि रुपया वापस नहीं हो सकता तो कहते हैं, प्रेस तोड़ दो। हम लोगों ने उन्हें नफ़े की उम्मीद दिलाकर उनसे सवा दो हज़ार रुपये लिये थे। उम्मीद भी नफ़े की थी। ख़सारा[3] उम्मीद के ख़िलाफ़ हुआ। चूँकि मेरी ही तहरीक से उन्होंने रुपये दिये थे, इसलिये वह मुझी को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। मुझे तो प्रेस को कम अज़ कम दो साल और चलाना है, चाहे ख़सारा होता रहे। लेकिन इन्हें क्या करूँ। इसलिए मुझे बहुत नदामत[4] के साथ लिखना पड़ता है कि अभी मैं मौजूदा रक़म न इरसाल कर सकूँगा। अक्तूबर तक मुझे काफ़ी रुपये मिलने की मुस्तक़िल उम्मीद है। उस वक़्त मुझे तामीले इरशाद[5] में मुतलक़ उज्र न होगा। ईश्वर जानता है मैं हीलासाज़ी नहीं कर रहा हूँ। घर का नज़ाअ[6] बचाने के लिए यह वादाख़िलाफ़ी करने पर मजबूर हुआ हूँ। मेरे रुपये जो ऊपर थे वह कर्बला, मनमोदक, सुघड़ बेटी, और सुशील कुमारी इन चार किताबों की तबाअत और तैयारी में फँसे हुए हैं। उम्मीद थी कि मई के आख़िर तक किताबें तैयार हो जायेंगी मगर चंद दर चंद वुजूह से देर होनी लगी और अभी चारों की तैयारी में एक माह की और देर है। एक हज़ार से ज़ाइद इन चारों किताबों में फँसा हुआ है। बस इतनी ही तो कायनात[7] है। हाँ रंगभूमि के रुपये अक्तूबर तक मिलेंगे। इस उम्मीद पर आपसे वादा कर रहा हूँ। आप मुझसे नाराज़ न हों। अगर यह ग़ैर-मुतवक़्क़ो[8] सूरतें पैदा न हो गयी होतीं तो मुझे मुतलक़ तरद्दुद न होता। घर में अभी तक सिलसिलए अलालत[9] जारी है। मट्ठे के इलाज से किसी को इत्मीनान नहीं। दवा का इस्तेमाल ज़्यादा आसान मालूम होता है। इधर मकान की तकमील[10] हो रही है। ग़ालिबन् अगस्त के आख़िर तक मुकम्मल हो जायगा। यह सब मुसीबतें तो थीं ही, कुछ मज़ामीन के मुआवज़े कुछ तर्जुमे वग़ैरह से यह काम चलता जाता था मगर भाई साहब के तक़ाज़ों ने सूरत बहुत अन्देशानाक[11] कर दी है। उनके रुपये अदा करके मैं बिल्कुल तिहीदस्त हो जाऊँगा। प्रेस रह जायगा। वह चला तो अच्छा है वर्ना खुदा हाफ़िज़। अज़ीज़ सेन और चुन्नू कामयाब हो गये, निहायत खुशी की बात है। चुन्नू अव्वल डिवीज़न में आये सुबहानअल्लाह। आपके लड़के खानदान रोशन कर देंगे।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है। एक और ख़सारे की सूरत निकल आयी मार्च में एक काग़ज़ काटने की मशीन मद्रास से मंगायी थी, पाँच सौ रुपये बिल्टी के दे दिये, माल अभी तक लापता है। हालाँकि कंपनी से लिखा-पढ़ी हो रही है। पाँच महीने से पाँच सौ रुपये फँसे हुए हैं। मशीन आ जाती तो अब तक उससे कुछ आमदनी हो गयी होती। देखिए माल का पता लगता है कि कंपनी से रुपये मिलते हैं।

क्या लड़कों को क़ानून पढ़ाइएगा। और रास्ता ही कौन-सा है। या मुलाज़मत या क़ानून। मैंने तो फ़ैसला किया है कि अपने लड़के को थोड़ा-सा पढ़ाकर कारोबार में लगा दूँ। अक़्ल होगी तो यहाँ भी दौलत पैदा कर लेगा। और क्या अर्ज़ करूँ।

आपका, धनपत राय।

1. आग्रहशील, 2. निरर्थक, 3. घाटा, 4. शर्मिन्दगी, 5. आज्ञा-पालन, 6. फूट, 7. पूँजी, 8. अप्रत्याशित, 9. बीमारी, 10. पूरा होना, 11. खतरनाक।

सरस्वती प्रेस, काशी, 22 जुलाई, 1924

भाईजान,

तसलीम। बेहतर है कि कर्बला न निकालिए। मेरा कोई नुक़सान नहीं है। न मैं मुफ़्त का ख़िलजान[1] सर पर लेने को तैयार हूँ। मैंने हज़रते हुसैन का हाल पढ़ा। उनसे अक़ीदत[2] हुई। उनके ज़ौक़े शहादत ने मफ़तूं कर लिया। उसका नतीजा यह ड्रामा था। अगर मुसलमानों को यह भी मंजूर नहीं है कि किसी हिन्दू की ज़बान-ओ-क़लम से उनके किसी मज़हबी पेशवा या इमाम की मद्हसराई[3] भी हो तो मैं इसके लिए मुसिर नहीं हूँ। इस कार्ड का जवाब देना तो फ़िजूल है, हां हज़रत हसन के मुताल्लिक़ कुछ अर्ज़ करना चाहता हूँ। आप फ़रमाते हैं शिया हज़रात यह नहीं पसंद कर सकते कि उनके किसी मज़हबी पेशवा का ड्रामा तैयार किया जाये। शिया हज़रात अगर मज़हबी पेशवा की मसनवी पढ़ते हैं, अफ़साने पढ़ते हैं, मर्सिये सुनते और पढ़ते हैं तो उन्हें ड्रामा से क्यों एतराज़ हो। क्या इसलिए कि एक हिन्दू ने लिखा है ?

तारीख़ और तारीख़ी ड्रामा में फ़र्क़ है। जैसा आप खुद तसलीम करते हैं। तारीख़ी ड्रामा ख़ास कैरेक्टरों में तो कोई तग़ैयुर[4] नहीं कर सकता मगर सानवी[5] कैरेक्टरों के तबद्दुल[6] और तरमीम[7], यहाँ तक कि तख़लीक़[8] में भी उसे आज़ादी है। हज़रत असग़र की उम्र छः माह की...लेकिन बाज़ रिवायतों में छः साल की भी लिखी हुई है। मैंने वही रिवायत अख़्तियार की जो मेरे मुवाफ़िक़ हाल थी। अगर बिलफ़र्ज[9] ऐसी रिवायत न भी हो तो हज़रत असग़र इस ड्रामा के कोई ख़ास कैरेक्टर नहीं हैं।

यज़ीद को अख़लाक़ी[10] हैसियत मुझसे कहीं ज़्यादा बेहतर मुअर्रख़ीन[11] ने कर दी है। मैं मज़बूर था। मैंने तो सिर्फ़ उसकी शराबख़ोरी और ऐशपसंदी का ज़िक्र किया है। शराबख़्वार था ही।

खुलफ़ाए राशिदीन के बाद और जितने खुलफ़ा हुए सब पीते थे और धड़ल्ले से पीते थे। देखिए यज़ीद के मुताल्लिक़ मौलाना अमीर अली क्या फ़रमाते हैं :

Yezid was both cruel and treacherous; his depraved nature knew no pity or justice. His pleasures were as degrading as his companions were low and vicious. He insulted the ministers of religion by dressing up a monkey as a learned divine and carrying the animal mounted on a beautifully caparisoned Syrian donkey. Drunken riotousness prevailed at court...

अमीर अली को तो आप मुस्तनद मानते ही होंगे। क्या मैंने यज़ीद को इससे भी ज़्यादा पस्त कर दिया है ? आप फ़रमाते हैं, हालांकि वह मुसलमान था। खूब दलील है। नवाब रामपुर भी तो मुसलमान था।

तारीख़ी हैसियत से आपने साहब राव के तदाखुल[12] पर एतराज़ किया है। बेशक, क़दीभ[13] रिवायात में इसका कोई ज़िक्र नहीं। मगर एक रिवायत जो मैंने रिसाला आईना, इलाहाबाद से ली है, मुमकिन है वह रिवायत ग़लत हो। लेकिन अगर मान लीजिए ज़ेब-ए-दास्तां ही के लिए ली गयी है तो ? ड्रामा तारीख़ तो नहीं है। इससे किसी तारीख़ी कैरेक्टर पर असर नहीं पड़ता। इन कैरेक्टरों का मंशा है हिन्दुओं का हज़रत हुसैन पर फ़िदा हो जाना। उनका वजूद[14] भी इसीलिए हुआ है। यह ड्रामा तारीख़ी होने के साथ

पोलिटिकल है। अदबी हैसियत से मुस्तसना[15]। आपका एतराज़ तो बसरो चश्म तसलीम करता हूँ। मैंने कभी अदीब होने का दावा नहीं किया। मुझे लोग ज़बर्दस्ती इंशापरदाज़[16] और सेहनिगार[17] और अल्लम ग़ल्लम लिख दिया करते हैं। मैं बात को सीधी तरह सीधी ज़बान में कह देता हूँ। रंग आफ़रीनी[18] और इंशापरदाज़ी[19] में क़ासिर[20] हूँ। और जब ड्रामा इसलिए तैयार किया गया है कि हर ख़ास व आम उसे पढ़े तो ज़बान-आराई[21] और भी बेमौक़ा हो जाती। बहरहाल मैं ड्रामा की इशाअत के लिए मुसिर नहीं हूँ। इसलिए यह बहस मुल्तवी और ख़त्म हो गयी।

ख़्वाजा हसन निज़ामी ने कृश्न बीती लिखी। एक हिन्दी नक़्क़ाद ने उसकी तारीफ़ की, सिर्फ़ इसलिए कि मौलाना ने कृष्ण से अपनी अक़ीदत का इज़हार किया था। मेरा भी यही मंशा...अगर हसन निज़ामी को वह आज़ादी हासिल है और मुझे नहीं है तो मुझे इसका अफ़सोस नहीं। बराहे करम उस मुसव्वदा को वापस फ़रमा दीजिए। हाँ मैं यह अर्ज़ करना भूल गया। ड्रामे दो क़िस्म के होते हैं। एक क़िरत[22] के लिए एक स्टेज के लिए। यह ड्रामा महज़ पढ़ने के लिए लिखा गया था। खेलने के लिए नहीं। ज़्यादा वस्सलाम।

आपका, धनपत राय।

1 उलझन, 2 श्रद्धा, 3 स्तुति, 4 परिवर्तन, 5. गौण, 6 परिवर्तन, 7 संशोधन, 8. सृष्टि, 9. मान लीजिए, 10 नैतिक, 11. इतिहासकारों, 12. दाख़िल होना; प्रवेश. 13 पुरानी. 14. अस्तित्त्व, 15. अलग, 16. रचनाकार, 17. लेखनी से जादू पैदा कर देने वाला, 18. रंग भरना; सजावट, 19. रचना-शिल्प, 20. असमर्थ, 21. भाषा की सजावट, 22. पढ़ने।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 2 अगस्त, 1924

भाईजान,

तसलीम। लिफ़ाफ़ा मिला। मशकूर हूँ। मैं कई दिन से ख़त लिखने का इरादा कर रहा था लेकिन भारे नदामत[1] के क़लम उठाने की हिम्मत न पड़ती थी।

प्रेस ने मुझे इस क़दर परेशान कर रखा है कि मैं तंग आ गया हूँ। वह बुरा वक़्त था जब मेरे सर में यह सौदाए ख़ाम[2] समाया। आपकी ख़िदमत में बक़ायादारों की यह फ़ेहरिस्त जो इस वक़्त मेरे सामने रक्खी हुई है इरसाल कर रहा हूँ। देखिये, तब मेरी परेशानियों का सही अन्दाज़ा आप कर सकेंगे। 2272 रुपये बक़ाया पड़े हुए हैं और इसके वसूल होने में अभी न जाने कितनी देर है। इधर मुझ पर 500 रुपये टाइप के और 400 रुपये काग़ज़ के और 200 रुपये किराया मकान के सवार हैं। मैं तो मुतफ़र्रिक़ रकूम न जाने कब पाऊँगा, पर मेरे तक़ाज़े वाले कब चैन लेने देते हैं। दो किताबें खुद शाया कीं मगर उम्मीद के खिलाफ़ अभी तक एक किताब तैयार ही नहीं हुई।

मैंने सोचा था सितम्बर अक्तूबर तक दोनों किताबें तैयार हो जायँगी। बक़ाया वसूल हो जायगा। किताबें बिक जायँगी। रुपयों की क़िल्लत रफ़ा हो जायेगी। मगर वह सारे मंसूबे परेशान हो गये। न किताबें तैयार हुईं न बक़ाया वसूल हुआ। बल्कि हर महीने में कुछ न कुछ बढ़ता गया। अभी कोशिश कर रहा हूँ कि किसी बुकसेलर से मुआमला करके यह सब छपी हुई जिल्दें लागत पर देकर अपने तक़ाज़ेदारों को अदा कर दूँ। बक़ायादारों से रफ़्ता-रफ़्ता वसूल होता रहेगा। हालांकि इसमें से कम अज़ कम 500 रुपये Bad debt में चले जायेंगे। ईश्वर जानता है मैं हीलासाज़ी नहीं कर रहा हूँ। आख़िर हीला करता ही

क्यों। आप मुझसे दोस्ताना मरासिम[3] के तौर पर तो नहीं मांग रहे थे। दरअसल मैंने यह झंझट मोल लेकर अपनी जान आफ़त में फंसाई। नहीं तो मेरे खाने भर को बहुत काफ़ी था। इसी तरद्दुद में लिटरेरी काम भी नहीं होता। अब प्रेस को बक़ाया से आज़ाद करने और बाज़ारी काम से मुस्तग़नी[4] होने के लिये इस फ़िक्र में हूँ कि रोज़ाना 'हमदर्द' की एक हिन्दी हफ़्तावार नक़ल 'हिन्दी हमदर्द' के नाम से शाया करूँ। मगर इसके लिए भी रुपये की ज़रूरत है। देखिये परमात्मा क्या करते हैं।

घर में अभी रोज़े अव्वल है। यहाँ इलाज में सहूलियत न देखकर इलाहाबाद पहुँचा आया कि शायद शहर में बाक़ायदा इलाज से कुछ फ़ायदा हो। लेकिन आज तीसरा दिन है, इलाहाबाद से लौटकर आया हूँ। वहाँ यहाँ से भी बदतर हालत हो गयी है। अब हफ़्ते अशरे[2] में जाकर लिवा लाऊँगा। जानता हूँ कि यह परेशानियाँ रफ़ा हो जायंगी। कम अज़ कम इसकी उम्मीद करता हूँ। मगर कब, यह नहीं कह सकता।

मैं इलाहाबाद गया, हिन्दू होस्टल में भी गया, रात भर वहाँ रहा भी, पर सेन बाबू को न देखा। मुझे याद ही न रहा कि वह यहाँ हैं, वर्ना ज़रूर मिलता।

अब 'कर्बला' की सुनिए। अब आपको मालूम हो गया कि मैंने हिन्दू उन्सुर[5] जो शामिल किया था वह तारीख़े वाक़या[6] है। आप इसे निकालना शुरू करें। ग़ज़लें हज़फ़[7] करने की ज़रूरत न होगी। मैंने हज़रत हुसैन की ज़बान से कोई आशिक़ाना ग़ज़ल कहीं नहीं अदा कराई है। यज़ीद की मजलिस में ग़ज़लें गाई गयी हैं और बेमौक़ा नहीं हैं। ग़ज़लों का इन्तख़ाब अच्छा नहीं हुआ है तो आपको इख़तियार है। अहसन साहब से अच्छी ग़ज़लें चुनवाकर शामिल कर दीजिये। मगर क्या सफ़ी की यह ग़ज़ल अच्छी नहीं है।

सफ़ी थक के बैठे दवा करने वाले
उठे हाथ उठा कर दुआ करने वाले।–काफ़ी सुफ़ियाना ग़ज़ल नहीं है !
या
हाँ खुले साक़ी दरे मैख़ाना आज
ख़ैर हो भर दे मेरा पैमाना आज।–अच्छी नहीं है ?
या
शबे वस्ल वह रूठ जाना किसी का
वह रूठे को अपने मनाना किसी का।

ख़यालात की नज़ाकत न देखिये। यह देखिये कि ग़ज़ल सलीस,[8] आमफ़हम, सुलझी हुई है या नहीं। गाने के लिये मौजूं है या नहीं। ग़ालिब की ग़ज़ल या नासिख़ की या अज़ीज़ की या चकबस्त की गाने के काम की नहीं होतीं। वहाँ इज़ाफ़तें[9], इस्तआरे[10] इस क़दर होते हैं कि वह बईद फ़हम हो जाती हैं।

मिर्ज़ा जाफ़र अली खाँ साहब ने अगर कुछ तरमीमात की हैं तो कोई मुज़ायक़ा नहीं। वाक़या यह है कि मैंने हिन्दी से खुद तर्जुमा नहीं किया है। मेरे एक नार्मल स्कूल के दोस्त मुंशी मुनीर हैदर साहब कुरैशी हैं, उन्हीं से करा लिया है। अब बक़िया हिस्सों का तर्जुमा मैं खुद करूँगा। तब जो खामियाँ होंगी वह ज़रूर निकाल दूँगा। ज़बान के लिहाज़ से किसी को हर्फ़गीरी[11] का मौक़ा न दूँगा। मेरे अहबाब ने हिन्दी में यह ड्रामा पढ़ा है और उसकी तारीफ़ की है। रघुपतिसहाय तो इस पर एक तबसरा लिखने वाले

हैं। और क्या अर्ज़ करूँ। बारिश नहीं होती। क़हत के आसार है। कोहरा पड़ने लगा। शवनम गिरनी शुरू हो गयी। मुसीबत का सामना है।

आपको डाक्टर इक़बाल का पता मालूम हो तो बराहे करम मुत्तला फ़रमाइये। मैं उनके कलाम का इन्तख़ाब आपके तबसरे[12] को दीवाचा[13] बनाकर हिन्दी में शाया करने का इरादा कर रहा हूँ। यह भी तहरीर फ़र्माइयेगा कि उनका कलाम सब का सब कहाँ मिलेगा। काग़ज़ तमाम हो गया।

आपका, धनपत राय।

1 शर्म, 2. पागलपन, 3. व्यवहार, 4. निवृत्त, 4. पखवारे, 5. तत्त्व, 6 ऐतिहासिक सत्य, 7. क्रम, 8. सरल, 9 फ़ारसी ढंग पर ज़ोर लगाकर षष्ठी-कारक बनाना, 10. उत्प्रेक्षा-रूपक आदि, 11 आपत्ति करने, 12. समीक्षा, 13 भूमिका।



बनारस, 3 सितम्बर, 1924

प्रिय दशरथ जी, वन्दे।

कार्ड मिला। ज़रूर विजयदशमी अंक निकालिए। मैं कहानी तो न लिखूँगा, एक लेख अवश्य लिखूँगा।

राम वनवास तो बहुत प्रचलित चित्र है। सीताहरण भी कई बार दिया जा चुका है। मगर ऐसी तो कोई घटना याद नहीं आती जिस पर चित्र न बन गये हों। रामचन्द्र और उनके भाइयों को ग़रीब विद्यार्थियों के साथ विश्वामित्र के आश्रम में दिखायें तो कैसा हो। इससे कुछ साम्य भाव प्रकट होगा।

विषयों के विषय में लेखकों की ही पसंद पर छोड़ देना अच्छा। उन्हें बाँधने की ज़रूरत नहीं। मैं तो शायद उस समय की राजनैतिक व्यवस्था पर लिखूं। यह भी क्या जरूरी है कि सब लेख रामचन्द्र ही से सम्बन्ध रखते हों। किसी भी विषय पर लेख होने चाहिए।

रहे कार्टून। 1. इसमें द्विविधि शासन का अंत। 2. हिन्दू-मुस्लिम खटपट। 3 चरखे की व्यापकता। 4. अंग्रेज़ों का भारतीय स्त्रियों से दुर्व्यवहार। 5. सिविल सर्विस वालों की वेतन वृद्धि।

इनमें से जो पसन्द आये किसी चित्रकार से बनवायें।

मैंने हाल में तीन किताबें प्रकाशित कराई हैं। उनकी एक-एक प्रति आपके पास भिजवा रहा हूँ। कृपया उन पर आलोचना कर दीजिएगा। क्या आपके यहाँ कुछ पुस्तकें बिक्री के लिए भी भिजवा दूँ ?

आशा है, उत्तर देंगे।

भवदीय, धनपत राय



लखनऊ, 30 सितंबर, 1924

भाईजान,

तसलीम। आपका नवाज़िशनामा कई दिन हुए मिला। मशकूर हूँ। खूब, आप मेरी शकस्ता-पाई[1] का शिकवा करते हैं हालांकि आप कानपुर से हिलने का नाम नहीं लेते।

कर्बला आप शाया करना शुरू कर दें। यों तो इसका तमाम होना ज़रा मुश्किल है। हां जब निकलना शुरू हो जायेगा तो झक मारकर लिखना पड़ेगा। तब मिज़ाज हीलासाज़ को कोई हीला न होगा।

ज़माना के लिए एक ज़राफ़त-आमेज़[2] क़िस्सा लिखा है। कल या परसों तक भेज दूँगा।

हिन्दू-मुसलिम फ़िसादात का सिलसिला जारी है। मैंने पहले ही पेशीनगोई की थी। वह हर्फ़ व हर्फ़ सही साबित हो रही है। हिन्दू सभा दिल्ली में भी शायद समझौता न होने दे। लखनऊ में ज़ियादती हिन्दुओं की तरफ़ से हुई मगर बाद को किसी ने मुँह न दिखाया। Wit, Humour and Fancy of Persia ज़रा एक हफ़्ते के लिए मेरे पास भेजने की इनायत कीजिए। देखने का इश्तियाक़ है। ज़रूर भेजिए। शायद मज़मून के लिए कोई मसाला मिल जाय। मुंतज़िर रहूँगा। और तो सब ख़ैरियत है। तिलिस्मी खुतूत बहुत दिलचस्प हैं। तर्ज़ तहरीर निहायत दिलनशीं[3]।

नियाज़मंद, धनपत राय

1. पैरों की थकन, 2. हास्यपूर्ण, 3. लुभावनी।



सरस्वती प्रेस, बनारस शहर, अनुमानतः 22-23 फरवरी, 1924

बेरादरम,

तस्लीम ! कार्ड मिला। 'कर्बला' का एक सीन फ़ौरन लिख दिया। उज्लत (शीघ्रता) के ख़्याल से और ज़्यादा न लिखा। दो-चार रोज़ में और एक-दो भेज दूँगा।

अभी तो कुछ मालूम नहीं कि इलाहाबाद में कब तलबी (बुलावा) होगी। नाम तो बड़े-बड़े हैं। ग़ैर-सरकारी आदमियों में चार-पाँच आदमियों से ज़्यादा नहीं। और लोग किसी-न-किसी तरह सरकार से बावस्ता हैं। और तो सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।



सम्भवतः जून, 1924)

भाईजान,

तस्लीम ! 'कर्बला' ख़त्म है। कल आपके दो कार्ड साथ ही मिले। सीतापुर से वापस आकर फ़ौरन ख़त लिखूँगा। क़िस्सा यही कह रहा हूँ, फोटो भी खिंचवाऊँगा। ब्लॉक बनने में देर न लगेगी। 16 की रात को गाड़ी से जाने का इरादा है। अगर आप उसी दिन जाते हों तो क्यूँ ना मैं भी कानपुर चला आऊँ ? साथ ही साथ चलें।

आपका, धनपत राय।



शिव पूजन सहाय

लखनऊ, 2 जनवरी, 1925

प्रिय शिवपूजन जी, वंदे।

मिश्रा जी से आपके कलकत्ता में सकुशल रहने का समाचार पाकर प्रसन्न हुआ। आपके चले जाने का दुख तो ज़रूर हुआ क्योंकि अब मैं भी यहाँ दो-चार महीने रहना

चाहता हूँ लेकिन यह कम खुशी की बात नहीं कि आप सानन्द हैं।

'फूलों की डाली' आदि आपने देख ली हो तो कृपया उसे प्रेस में देने के लिए भेज दें। यदि अभी समाप्त न हुई हो तो सूचित करें कि कब तक भेज सकेंगे, और यदि अवकाश न हो तो कृपया लिखें ताकि मैं ही टेढ़ा-सीधा देख-दाख कर अलग करूँ। इस कष्ट के लिए क्षमा प्रदान कीजिये।

भवदीय, धनपत राय।

रंगभूमि के 40 फार्म छप चुके हैं।



लखनऊ, 22 फरवरी, 1925

प्रिय शिवपूजन सहाय जी, वंदे।

मुझे तो आप भूल ही गये। लीजिए जिस पुस्तक पर आपने कई महीने दिमाग़-रेज़ी की थी वह आपका अहसान अदा करती हुई आपकी खिदमत में जाती है और आपसे विनती करती है कि मुझे दो-चार घंटों के लिए एकांत का समय दीजिये और तब आप मेरी निस्बत जो राय काम करें वह अपनी मनोहर भाषा में कह दीजिये।

मैं अभी यहीं हूँ। बाल विनोद माला के निकालने के लिए पकड़ लिया गया हूँ। काश आप होते तो कैसी बहार रहती। खैर इस माला के लिए यदि आप कोई छोटी-मोटी, हँसने-हँसाने वाली, चूहे-बिल्ली, चील-कौवे की कहानी लिखें तो बड़ा एहसान करें। मैं रंगभूमि पर आपकी आलोचना का बड़ी बेसबरी से इंतजार करूँगा।

भवदीय, धनपत राय।



लखनऊ, 17 मार्च, 1925

प्रिय शिवपूजन जी, वंदे।

रंगभूमि की आलोचना आपने अब तक न लिखी। इसकी मुझे आपसे शिकायत है। सिवा इसके और क्या समझूँ कि आप उसे इस योग्य नहीं समझते। आशा है अब माधुरी या किसी अन्य पत्रिका के लिए अवश्य लिखेंगे।

एक बात और लिखने की ज़रूरत मालूम होती है। यों तो 'मतवाला' में माधुरी पर नित्य दो-चार छींटे उड़ा दिये जाते हैं पर अब की होली के अंग में तो उसने सुरुचि और सभ्यता का अंत ही कर दिया। आपके देखते यह अनर्थ हो इसका मुझे दुख है। आपस की थोड़ी-सी चुहल जिससे दिल खुश हो बुरी नहीं, लेकिन जब यह चुहल साहित्यिक मनोरंजन की सीमा से निकलकर द्वेष की हद तक पहुँच जाती है तो यही कहना पड़ता है कि यह हिन्दी भाषा का दुर्भाग्य है, जहाँ ऐसे-ऐसे गंदे, अपमानजनक, भ्रष्ट लेख निकालने में संपादकों को आपत्ति नहीं होती। मालूम नहीं मतवाला के पाठकों को इन लेखों से कोई विशेष रुचि है या इस अनवरत प्रवाह का और कोई कारण है। बहरहाल जो कुछ हो यह बात बुरी है और अब उस हद से कहीं आगे बढ़ गयी है जिसे दिल्लगी कहकर क्षम्य समझा जाय। दुलारेलाल और माधुरी के और सेवक कितने ही गए-गुज़रे हों पर वे हिन्दी की कुछ न कुछ सेवा अवश्य कर रहे हैं और उनके काम की कद्र न करके नित्य खिल्ली उड़ाते रहना अपने को गुणग्राहकता से शून्य सिद्ध करना है। मैं आपको

यह शब्द इसलिए लिखने का साहस कर रहा हूँ क्योंकि मैं आपको, बहुत थोड़े दिनों का परिचय होने पर भी, अपना मित्र समझता हूँ और आपकी शिष्टता और सज्जनता का क़ायल हूँ। यदि मतवाला की पालिसी में आपको कुछ दखल हो (और इसका हमारे पास प्रमाण है कि है) तो खुदा और परमेश्वर के लिए आप इस सिलसिले को बंद कर दें या करा दें। आप उस आदमी को जिसने यह लेख लिखा है फिर मतवाला में ऐसे लेख लिखने का मौका न दीजिये। इस लेख में उसने खुली-खुली चोटें की हैं और यहाँ कुछ लोगों की सलाह हो रही है कि मतवाला पर अपमान करने का दीवानी और फ़ौजदारी अभियोग चलाया जाय। अगर आपस में यह नौबत आ गयी तो क्या मज़ा रहा। मतवाला भी हैरान होगा, उसका नशा भी हिरन हो जायगा और यहाँ वालों को भी काफी मानसिक वेदना होगी। मैं नहीं चाहता कि मित्रों में जूतियाँ चलें। लेकिन इसका रोकना मतवाला के अपने हाथ में है। आश्चर्य तो यह है कि यहाँ से कोई उत्तेजना न मिलने पर भी मतवाला को क्यों लगातार एक fair sex पर ऐसे अश्लील आक्रमण करने का साहस होता है। क्या उसमें महिला-सम्मान बिल्कुल नहीं रहा ?

आशा है आप मुझे क्षमा करेंगे। मैंने जो कुछ लिखा है मित्रभाव से लिखा है और आप उसे इसी भाव से देखियेगा।

आशा है अपने कुटुम्ब सहित सकुशल होंगे।

भवदीय, प्रेमचंद।



गंगा पुस्तकमाला कार्यालय,
29-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ, 25-3-1925

प्रिय शिवपूजन जी, वन्दे !

आपकी मुसीबतों की कहानी पढ़कर दिल काँप उठा। मैं भी शीतला में दो बच्चे खो चुका हूँ। मुझे आपके साथ हमदर्दी है और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको धैर्य और सन्तोष दें। मैंने अज्ञान में आपको दोषी ठहराया, इसका मुझे अत्यन्त खेद है, दुःख है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके एक-एक अक्षर का मुझे विश्वास है और अपनी भूल को मान लेने में ज़रा भी संकोच नहीं है।

दुलारेलाल को आपसे कोई शिकायत नहीं है। वह अभी तक आपको याद करते हैं। उनकी ओर से आपको जो कुछ तकलीफ़ पहुँची हो, उसके लिए लज्जित हैं और आपका स्वागत करने के लिए हमेशा तैयार हैं। आपने जो सलाह दी, वही सलाह मैंने भी दी थी। 'उपेक्षा' के सिवाय इस अलानिया गाली-गलौज का क्या जवाब हो सकता है ?

मैं आपकी सम्मति का इन्तज़ार तो कर रहा हूँ, पर जब तक आपका चित्त भली-भाँति शान्त न हो जाय, आपको मजबूर नहीं कर सकता। आप जब चाहें लिखें, कोई जल्दी नहीं है।

'मतवाला' में 'रंगभूमि' की लम्बी समालोचना निकलेगी, यह सुनकर बड़ी खुशी हुई। कम-से-कम मुझे अपने दोष तो मालूम हो जायेंगे। मुझे ज़बाँदानी का दावा न कभी था और न है, व्याकरण से मैं वैसा ही कोरा हूँ, जैसे गंजा बालों से, इसलिए मेरे लिए तो

आलोचना कभी शिक्षा से ख़ाली नहीं हो सकती। कौन लिखेगा इसकी मुझे चिन्ता नहीं। कोई कहे, मैं तो यह मानता हूँ कि संसार में सैकड़ों ही बातें मुझे सूरदास-जैसे अपाहिज अन्धे से सीखनी हैं। उस आलोचना का स्वागत करने को तैयार हूँ।

आशा है, आपका दिल अब कुछ हल्का होगा।

भवदीय, धनपत राय।

●●

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 31 मार्च, 1925

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। रुपया अभी नहीं मिला। इनके रुपये किताबों में फंस गये हैं। इस वजह से मेरी उम्मीद के ख़िलाफ़ इन्दुत्तलब (मांगने पर) न मिल सके। दो हफ़्ते का वादा है। क्या हुक्काम इतने दिनों तक मुंतज़िर न रह सकेंगे ? मुझे आपको फिर याददिहानी की ज़रूरत न पड़ेगी, मिलते ही भेज दूंगा।

जी हां किताबत और छपाई के ख़याल से मैंने अपनी दोनों किताबों को छपवा लेने ही का इरादा किया है। सहर की मसनवी भी छपवाये देता हूँ। उनको पब्लिशर की तलाश है और पब्लिशर मिलता नहीं। छपवाकर उन्हें दे दूँगा चाहे ज़माना एजेंसी को दे दूँगा।

और क्या अर्ज़ करूँ। बच्चों को दुआ।

आपका, धनपत राय

●●

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 20 अप्रैल, 1925

बरादरम,

तसलीम। ब्लाक मिल गया। ख़त भी मिला। मैंने उसी वक़्त जवाब भी लिखा पर भेज न सका। आज भेज रहा हूँ। अफ़सोस है बाबू दुलारेलाल जी अभी तक नहीं आये। मुझे बेहद नदामत हो रही है। मुझे उम्मीद नहीं थी कि वह इतने दिन के लिए जा रहे हैं। सिर्फ़ चार दिन में लौट आने का वादा था। पर आज गये हुए सोलह दिन हो गये। शायद दो एक दिन में आ जायें। इधर से कारबगरी (कामयाबी) होते ही मैं हाज़िर करूँगा। यक़ीन है। मौक़ा मिला तो खुद ही लेकर आऊँगा। वस्सलाम।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, (माधुरी सम्पादन-विभाग),
लखनऊ, 10-5-1925

My dear Rajeshwar,

I saw your review in the Leader and was astonished at your critical grasp of the whole mechanism of the story. I appreciated it thoroughly well. I do not think any high sounding name would have done better justice to the work than you did. Many many thanks !

I did not mean that you should not draw on imagination. Imagination is of the greatest importance, but what I meant was if it be borne out by

observation it would give more life to your writings. You will yourself find that characters drawn from life are much real. I do not deny that very often–I do not mind, but this is a just defect in me and in your writing. I should try to guard you against it. A review of 'Rangbhumi' has appeared in the 'Prabha' of May.

Yours affly.,
D. Rai.

●●

29-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ, 19-5-1925

प्रिय पद्मसिंह शर्मा जी, वन्दे !

आपकी विपत्ति-कथा सुनकर आँखों से आँसू की नदी बह निकली और मुख से आहें निकलने लगीं। ये लुटेरे जो कुछ न करें, थोड़ा है, पर आपको यह जानकर सन्तोष होना चाहिए कि ऐसे बिरले ही महाशय होंगे जो उनके हाथों खून के आँसू न रोते हों। आप उनकी तफ़तीश न कीजिए। ब्रह्मा भी उनका पता नहीं लगा सकते। वे आँखों के सामने बैठ हुए भी ग़ायब रहते हैं। कमबख़्त शायद सुलेमानी सुरमा लगा लेते हैं।

ख़ैर, सेवा में 'रंगभूमि' का दूसरा सेट भेजा जा रहा है। कृपया अब बहुत इन्तज़ार न दिखाइएगा। अधिक-से-अधिक एक सप्ताह की मुद्दत काफ़ी है।

आशा है, आप स्वस्थ होंगे।

सेवक, धनपत राय।

●●

29 ईस्टर्न कैनाल रोड, देहरादून, 10 जून, 1925

प्रिय प्रेमचंद जी,

रंगभूमि के विषय में आपको पत्र लिखने में जो अक्षम्य देरी हुई है उसके लिए कृपया क्षमा कर दें। मैंने अब उसे समाप्त कर लिया है। मैंने उसका एक-एक शब्द पढ़ा है और अब पहले से भी ज़्यादा, आपकी अद्भुत सृजनात्मक प्रतिभा का प्रशंसक, बहुत बड़ा प्रशंसक, हो गया हूँ। सूरदास को अपना नायक बनाना अत्यंत साहस का काम था; लेकिन उसके चरित्र को आपने कितनी सुन्दरता से चित्रित किया है ! अगर आप एक-दो सुझावों के लिए मुझे माफ़ करें तो वे ये हैं। पृष्ठ 785, पंक्ति 6 में 'सेवक जी' स्पष्ट ही भूल है। उपन्यास में दो कथा प्रसंग मुझे काफी कमज़ोर जान पड़ते हैं—रेलगाड़ी में विनय और सोफ़िया वाला दृश्य, और वीरपालसिंह के गुप्त अड्डे पर विनय का वह अत्यंत झुका-झुका, बल्कि दबा-सहमा सा भाव। इन्हें छोड़कर मेरे ख़याल में मेरे पास दूसरा कोई आलोचना का शब्द नहीं है। रंगभूमि आधुनिक हिन्दी का एक गौरव बनेगी।

समस्त शुभकामनाओं के साथ,

आपका, अमरनाथ झा

●●

बनारस सिटी, 12 जून, 1925

प्रिय शिवपूजन सहाय जी,

दो दिन से दरे दौलत पर हाज़िरी दे रहा हूँ पर दुर्भाग्यवश दर्शन नहीं होते। इस वक्त यह कहना है कि 'परीक्षा प्रश्नावली' समाप्त हो गयी। इसके टाइटिल पेज की फ़िक्र :। टायटिल पर क्या लिखा जायगा, कागज़ कैसा लगाया जायगा ? कृपया ये बातें बतला दीजिये। दूसरी कोई किताब यदि दे सकें तो पैका खाली है इसमें चला दूँ। रुपए का बिल आपको दूँ या सीधे लहेरियासराय भेजना होगा ?

आपका, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 19 जून, 1925

प्रिय शिवपूजन सहाय जी,

यदि वह पुस्तक देख चुके हों तो कृपया भेज दें।

लहेरियासराय वालों ने मेरे पत्र का अब तक जवाब नहीं दिया। क्या आप उन्हें लिखकर यह पूछ सकेंगे कि परीक्षा प्रश्नावली के लिए कैसा कवर दिया जायगा ? और उस पर क्या लिखा जायगा ?

किताब तैयार हो जाती तो छपाई का बिल वसूल होता वरना मुफ़्त में देर होगी।

आपका, धनपत राय

●●

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 23 जून, 1925

बरादरम,

तसलीम। ज़रा एक तक़रीब में मिर्ज़ापुर चला गया था। उम्मीद है आप बख़ैरियत होंगे।

बाबू रघुपति सहाय का यह ख़त भेजता हूँ। उन्होंने मौलाना अब्दुल हक़ साहब के पास भेजने के लिए मेरे पास भेजा है। मुझे मम्दूह[1] का पता नहीं मालूम है। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में एक उर्दू प्रोफ़ेसर की जगह है। 250 रुपये माहवार, 25 रुपये सालाना तरक़्क़ी। रघुपति सहाय उसके लिए कोशां[2] हैं। मज़मूने ख़त से मालूम होगा कि वह क्या चाहते हैं। आप बराहे करम इसी डाक से इस ख़त को मुंशी अब्दुल हक़ की ख़िदमत में भेज दें। मैंने रघुपति सहाय से दर्याफ़्त भी किया था तो उनसे मालूम हुआ कि उन्होंने क़रीब-क़रीब सब मरहले तय कर लिये हैं, सिर्फ़ मोतरिज़ों[3] की ज़बान बन्द करने के लिए दो चार ख़ास मुसलमान असहाब की सिफ़ारिश दरकार है।

आप खुद कोशिश करना चाहें तो ग़ालिबन् कामयाबी हो। आप कानपुर कब तक आते हैं। मैं शायद 1 जुलाई तक आऊँ।

1. महाशय, 2. प्रयत्नशील, 3. आपत्ति करने वालों।

●●

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 8 जुलाई, 1925

भाईजान,

तसलीम। ख़त मिला। मशकूर हूँ। मैं इतवार को कानपुर आऊँगा। अगस्त के आग़ाज़ में यहाँ से बनारस जाने का इरादा है। इसलिए एक बार आप लोगों से मुलाक़ात कर लूँ। फिर न जाने फिर कब मिलें। इतवार को आऊँगा। और उसी दिन लौट भी आऊँगा। और बातें उसी वक़्त आपसे अर्ज़ करूँगा।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 22 जुलाई, 1925

भाईजान,

तसलीम। आज मतलूबा (मांगी हुई) रक़म रजिस्टरी से रवाना कर दी है। रसीद लिखिएगा। और तो सब ख़ैरियत है।

हाँ ज़रा अपने यहाँ की लीथो छपाई का रेट लिखिएगा। शायद मुझे रंगभूमि कानपुर छपवाना पड़े। लखनऊ से जाने के बाद यहाँ छपाना मुशकिल हो जायेगा।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

महताबराय (छोटे भाई) के नाम

3 अगस्त, 1925

बिरादरम अज़ीज़ी,

तुम्हारे ख़त का कई दिनों से इन्तज़ार कर रहा हूँ, मगर अभी तक कुछ न मालूम हुआ कि तुमने रुपयों का इन्तज़ाम किया या नहीं। क्या हो जायगा ? किसी ने तुम्हें यों ही हुक्म दिया था। मैं तो 3 को रवाना होने वाला था, मगर एक तो बन्नू के पेशाब करने के मुक़ाम पर सूजन हो गयी है, जिससे शायद उसका चमड़ा हटाना पड़ेगा और इसलिए मुझे कमज़कम 10 तक लग जायेंगे। इधर 10 को मेरठ एक सम्मेलन का प्रेसिडेण्ट बनना है। वहाँ जाना पड़ेगा। इस अर्से में ग़ालिबन तुम्हारा ख़त आ जायगा कि अब तुम प्रेस को किस तरह चलाने का इन्तज़ाम करना चाहते हो। रघुपति सहाय का हिस्सा भी मेरी ही समझो, क्योंकि वह प्रेस में हिस्सा नहीं लेना चाहते। इस तरह अब गोया मेरे 6 हज़ार रुपये प्रेस में हैं। कमज़कम मेरा...का नुकसान हो रहा है। कब तक यह नुक़सान बर्दाश्त करता जाऊँ ? मैं बड़ी पसोपेश में हूँ। तुमने अभी तक न रुपये का इन्तज़ाम किया, न कोई जगह तलाश की। कैसे क्या होगा ? तुम्हारे लिए माहवार मुस्तक़िल आमदनी ज़रूरी है, और वह मेरे आ जाने की सूरत में मुमकिन नहीं, क्योंकि मैं हर माह अपना नफ़ा लगाने की कोशिश करूँगा। अभी मुझे टाइप और मँगाना पड़ेगा, तभी बाहर का काम करूँगा। इसके लिए रुपये की फ़िक्र करनी पड़ेगी। भाई साहब भी अब सब्र नहीं कर सकते। वह भी नफ़े के मुन्तज़िर हैं और प्रेस में काम करना चाहते हैं। ऐसी हालत में क्या करूँ ? मुझे सबसे बड़ी फ़िक्र तुम्हारी है, क्योंकि मैं प्रेस जाकर तुम्हारे इन्तज़ाम में दख़ल देना भी नहीं चाहता। उस पर एक प्रूफ़-रीडर रखने की सख़्त ज़रूरत महसूस कर रहा हूँ। अगर मेरे पास इस वक़्त काफ़ी रुपये होते तो मैं तुम्हें ज़रूर दे देता,

लेकिन मज़बूर हूँ। यह भी डर है कि तुमने और रुपये कर्ज़ लेकर भाई बलदेवलाल का हिस्सा भी ले लिया लेकिन हिस्सा ले लेने ही से तो प्रेस नफ़ा नहीं देने लगेगा, तावक़्ते कि इन्तज़ाम, सामान, काम, सेहत सभी बातों में तरक़्क़ी होगी। अगर उस हालत में भी नफ़ा न हो तो तुम्हें और भी ज़्यादा ज़ेरबारी हो जायगी। मैं तो तुम्हें यह सलाह दूँगा कि अगर कलकत्ते में कोई गुंजाइश निकल सके तो चले जाओ। तनख़्वाह अगर न 100 रुपये मिले तो मुज़ायका नहीं। मेरी तरफ़ से इस बात का मुतलक़ अन्देशा न करो कि मैं अपने लिए तनख़्वाह रख लूँगा और तुम लोगों को नफ़ा न दूँगा। जो कुछ नफ़ा होगा उसे मैं हिस्सेवार तक़सीम कर दूँगा। मुझे उम्मीद है कि मेरे आने के वक़्त तक तुम हिसाब सही कर रखोगे। और क्या लिखूँ !

मेरी समझ में यही एक इन्तज़ाम आता है कि या तो तुम प्रेस का ठीका लो या मैं ठीका लूँ। बस, इसके सिवा और कोई तदबीर नहीं नज़र आती और ठीके की रक़म माहवार पर तय हो जाय।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 5 अगस्त, 1925

भाईजान,

तसलीम। मैंने आपके ख़त का जवाब नहीं दिया। इस ख़याल से कि शायद अभी आप हमीरपुर से लौटे न हों। मैं यहाँ से 4 को बनारस जाने वाला था लेकिन कई वजूह से इरादा मुल्तवी कर देना पड़ा। अब 15 को जाऊँगा। मुझे 10 को मेरठ में एक जलसे में शरीक होना है। वहाँ से लौटता हुआ एक दिन के लिए कानपुर भी ठहरूँगा। तब बातें होंगी। उस दिन आपकी निगम सभा के वाइस न हो सकीं।

पंजाब का एक पब्लिशर मेरी कहानी का मजमूआ शाया करना चाहता है। मुझे याद नहीं आता कि प्रेम बत्तीसी के बाद मेरी कौन-कौन कहानियाँ कहाँ-कहाँ शाया हुई। चंद कहानियाँ तो लाहौर के हज़ारदास्ताँ में निकली थीं। एक हुमायूँ में शाया हुई थी। एक हमदर्द में हाल में निकली जो मुझे याद है। मुमकिन है एकाध और निकली हों जिसकी मुझे इस वक़्त याद नहीं। शायद नौबहार वालों ने दो का तर्जुमा किया था। पंजाबी अख़बारों ने भी मुमकिन है कुछ कहानियों के तर्जुमे कर डाले हों। क्या आप इस मजमूए परीशां के जमा करने में मेरी कुछ मदद कर सकते हैं ? हज़ारदास्ताँ का फ़ाइल मुकम्मल आपके यहाँ है ? हुमायूँ है ? नौबहार है ? हमदर्द भी है या नहीं ? आज़ाद में तो कोई कहानी नहीं निकली ? बराहे करम इसका जवाब मुझे जल्द दीजिए ताकि वापसी में मैं एक काम यह भी पूरा कर लूँ।

●●

लखनऊ, 6 अगस्त, 1925

प्रिय शिवपूजन जी,

कृपा पत्र मिला। आप 'उपन्यास तरंग' निकालने जा रहे हैं, यह जानकर खुशी हुई। इस वक्त तो मरने की भी फुर्सत नहीं है, लेकिन लिखूँगा ज़रूर, ज़रा अवकाश मिल

जाय तो।

आपकी पत्नी की बीमारी का हाल सुनकर बहुत दुख हुआ। इसके पहले पत्रों में भी यह समाचार पढ़कर चित्त दुखी होता था। आप ही ऐसे दिल के मज़बूत हैं कि इतने कष्ट और धक्के सहकर भी अपना काम किये जाते हैं। मैं तो कब का कंधा डाल चुका होता। सज्जनों को उनकी सज्जनता का यही पुरस्कार मिलता है।

मैं भी 15 अगस्त तक बनारस चला आऊँगा और तब लिखने का अवकाश ज्यादा मिलेगा।

और तो सब कुशल है।

आपका, धनपत राय।



गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 10 अगस्त, 1925

बरादरम सल्लमहू,

बाद दुआ। तुमने मेरे ख़त का अभी तक जवाब न दिया। मैंने यहाँ से चलने की इन्तज़ारी में धोबी को कपड़े देना बन्द कर दिये, आटा बाज़ार से मँगवाता हूँ कि ज़्यादा पिस जायगा तो क्या होगा। धुन्नू का नाम नहीं लिखाया और तुम मेरे ख़तों का जवाब ही नहीं देते। आख़िर तुमने क्या फ़ैसला किया ? किस तरह काम चलाना चाहते हो। मैंने कई सूरतें लिखीं, तुमने एक भी न पसन्द की। आख़िरी सूरत मैंने यह लिखी कि ठेके का इन्तज़ाम करो, या तुम ठेका लो या मैं। रुपया सैकड़ा माहवार सूद, चार रुपया सैकड़ा सालाना घिसाई। इस शर्त पर अगर ठेका लेकर काम करना चाहो, तो करो वर्ना कोई दूसरी सूरत बतलाओ जिससे किसी का नुक़सान न हो। मैं इसी शर्त पर ठेके पर काम करने को तैयार हूँ। अगर तुम ठेका लोगे तो मैं लखनऊ से अपना सिलसिला न तोड़ूँगा। तुम न ठेका लोगे तो खुद आकर काम करूँगा। जवाब में देर न करो। अभी गुज़िश्ता साल का हिसाब देना है। वह सब तुमने तैयार किया या नहीं। वापसी डाक ख़त लिखो। लेना मंजूर हो तो साफ़-साफ़ लिख दो, न ले सकते हो तो साफ़-साफ़ लिख दो। इस तरह दो साल गोलमाल करते हो गया। कब तक नुक़सान उठाया जाय। जब तुम नफ़ा नहीं हासिल कर सकते तो ख़ामख़ाह हम लोगों को क्यों ज़ेरबार करते हो। हाँ, ठेके का हिसाब माहवार करना पड़ेगा।

मैं कई दिन से चारपाई पर हूँ। पैर में फोड़ा निकल आया है। कल नश्तर दिलाया है। उठ-बैठ नहीं सकता हूँ, लेटे-लेटे ख़त लिखता हूँ।

उम्मीद है कि अब जल्द जवाब दोगे जिसमें पहली सितम्बर से बनारस का इन्तज़ाम हो जाये वर्ना मजबूरन मुझे प्रेस बन्द करना पड़ेगा। ज़्यादा दुआ। उम्मीद है कि तुम लोग अच्छी तरह होगे।

तुम्हारा, धनपत राय।



गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 12 अगस्त, 1925

भाईजान,

तसलीम। मैं वापस न भेज सका। सबब यह कि 5 तारीख़ से पैर में कचक पड़ गयी। चार दिन सख़्त दर्द और जलन और टीस थी। पाँचवें दिन डाक्टर से नश्तर लिया। दाहिने पाँव की आधी एड़ी का चमड़ा काट दिया गया। अब दो दिन से तकलीफ़ तो बहुत कम है लेकिन उठने-बैठने काम करने से माजूर हूँ। इसी असना में स्वराज्य पार्टी के लोग वही रद्दी मुसव्वदा उठा ले गये और कातिब से भी लिखवा लिया। अगर मैं समझता कि कातिब पढ़ लेगा तो पहले आप ही के पास भेज देता। मैं तो समझता था शायद मेरे सिवा और कोई पढ़ ही न सकेगा। लेकिन यह कातिब साहब होशियार मालूम होते हैं। मैंने कापी देखी, ग़लतियाँ कम निकलीं। ख़ैर, अब तो पैम्फ़लेट ही की एक कापी भेजूँगा। 4 को यहाँ से जाने का इरादा था लेकिन अब शायद पंद्रह दिन तक न जा सकूँगा। मसनवी-ए-सेहर छपकर रखी हुई है। ज़रा तबीयत अच्छी हो तो आपके पास भेज दूँ। अब की इस्तदआ है कि कमीशन 25 फ़ी सदी लिया जाय। खुद बेचारे नहीं कह सकते। आप शायद उनकी इतनी बात मान लेंगे। रंगभूमि का तसफ़िया दो सौ पर कर दिया। अब इरादा है गोशए आफ़ियत भी भेज दूँ। ख़त्म हो जाये। मेरे ख़त्म किये न होगी। दारुल इशाअत छापने को तैयार है। सौ रुपये इस किताब पर देने का वादा किया है। और तो कोई ताज़ा हाल नहीं। उम्मीद है आप वापस आ गये होंगे। ख़त लिखिएगा।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 22 अगस्त, 1925

भाईजान,

तसलीम। आपका कार्ड मिला। अब ज़ख़्म पुर हो गया मगर अभी तक चलने-फिरने से माजूर हूँ। जी तो मेरा भी चाहता है कि बनारस जाने से क़ब्ल एक रोज़ कानपुर आ जाऊँ। देखा चाहिए। यहाँ प्रेम बत्तीसी हिस्सा दोम रखी हुई थी। कोई उठा ले गया। अगर आप इतनी इनायत करें कि हिस्सा दोम के मज़ामीन की फ़ेहरिस्त नक्ल करवा के भेज दें तो ऐन एहसान हो। मैं कुछ हिन्दी कहानियों का तर्जुमा करके पंजाब के एक पब्लिशर पिण्डीदास को भेजना चाहता हूँ। डरता हूँ कि कहीं वही मज़ामीन न आ जायें जो हिस्सा दोम में निकल चुके हैं। हिस्सा अव्वल मेरे पास मौजूद है। सिर्फ़ जिल्द दोम के मज़ामीन की फ़ेहरिस्त की ज़रूरत है। परसों तक मुझे फ़ेहरिस्त मिल जायगी तो मैं इक़बाल वर्मा साहब को मज़ामीन की फ़ेहरिस्त लिख भेजूँगा। जो उर्दू में हुए हैं। मसनवी भी भेजनी है। ज़रा पैर काम करने लगे तो भेजूँ। वस्सलाम।

धनपत राय।

●●

लखनऊ, 25 अगस्त, 1925

भाईजान,

तसलीम। सैरे दरवेश का तर्जुमा अनक़रीब ख़त्म होने वाला है। तब इसे वापस कर

दूँगा। अब सोज़े वतन की ज़रूरत है। उसमें से दो तीन कहानियाँ ले लूँगा। बराहे करम सोज़े वतन की एक कापी भिजवा दीजिए। जितनी जल्द हो जाये उतना ही अच्छा है। दिसंबर के पहले यह मजमूआ अपने प्रेस से निकाल दूँगा। इसका नाम होगा 'प्रेम प्रसून' (प्रेम का फूल) पच्चीस कहानियों का एक अलहदा मजमूआ कलकत्ते से भी निकल रहा है, जो हिन्दी की प्रेम पचीसी होगी।

आजकल Anotole France का एक क़िस्सा हिन्दी में तर्जुमा कर रहा हूँ। और मेरे ही प्रेस में छप भी रहा है।

ख़ैरियते मिज़ाज से मुत्तिला फ़रमाइएगा। और सब ख़ैरियत है।

ग़ालिबन् मुकर्रर याददिहानी की तकलीफ़ आप उठाना पसंद न करेंगे। क्योंकि आज के पाँचवें दिन मैं फिर सोज़े वतन के लिए हाज़िरे ख़िदमत होऊँगा। उसी के तीन क़िस्सों की कमी है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 30 अगस्त, 1925

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। मैं तो अब लंगड़ा-लंगड़ाकर चल रहा हूँ। मगर आप बुखार में मुबतिला हो गए। अब तो मैं कल रवाना हुआ जाता हूँ। ईश्वर ने चाहा तो दिसम्बर में इत्मीनान से मुलाक़ात होगी।

हजरत सेहर की कितावें पार्सल से रवाना कर दी हैं। बैरंग पार्सल है। उन्होंने कुछ ग़लतियाँ निकाली हैं। ग़लतनामा लगवाना चाहते हैं। मुझे फ़िजूल मालूम होता है। लेकिन अगर उन्होंने इसरार किया तो एक ग़लतनामा लगवाना ही पड़ेगा। इसकी फ़ेहरिस्त मैं यहीं से आपके पास भिजवाऊँगा। आप इसकी क़ीमत किताब की बिक्री में से बज़ा फ़रमा लीजिएगा। और सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी, 5 सितम्बर, 1925

बरादरम,

तसलीम। मैं 1 को लखनऊ से बख़ैरियत पहुँच गया। आपका ख़त और मज़ामीन की फ़ेहरिस्त मुझे लखनऊ में मिल गयी थी।

अब एक और तकलीफ़ आपको देना चाहता हूँ। मेरा वह ज़माना जिसमें शतरंज के खिलाड़ी शाया हुआ था गुम हो गया है। बराहे करम वह नंबर मेरे पास फिर से भिजवा दीजिए। ऐन नवाज़िश होगी। मैं अपनी मतबूआ (प्रकाशित) आज़ाद कहानियों का मजमूआ तैयार कर रहा हूँ। उम्मीद है मसनवी-ए-सेहर पहुँच गयी होगी।

और सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

●●

6 सितम्बर, 1925

डियर छोटक,

(1) मुझे याद आता है, मैंने तुम्हें साफ़ लिख दिया था कि मैं आठ आने सैकड़ा तुम्हें उस वक़्त तक देता रहूँगा जब तक तुम्हें रुपये न अदा करूँगा। इसमें मुझे कोई उज्र नहीं, हालाँकि यह तुम्हारे साथ रियायत है और मैं ख़सारा में रहूँगा। (2) अगर तुम्हारे पास रुपये हों और तुम कोई तारीख़ मुक़र्रर कर दो जिसके अन्दर तुम, भाई साहब और रघुपति सहाय के एक हज़ार रुपये लौटा दोगे तो मुझे कोई उज्र नहीं है। मैं भाई साहब की तरफ़ से रुपया लेने से इन्कार करने वाला कौन हूँ। अगर वो लेते हैं तो तुम दे दो। हम और तुम आधे-आधे के हिस्सेदार हो जायें। मुझे इसमें भी कोई उज्र नहीं है, लेकिन रुपये का इन्तज़ाम कब तक होगा, इसकी कोई तारीख़ बतला दो। मैं साल-छः महीना इसके लिए मुन्तज़र न रहूँगा। ज़्यादा से ज़्यादा एक माह की मोहलत दे सकता हूँ। (3) हम और तुम हिस्सादार हो जायेंगे उस वक़्त तुम्हें किसी मुलाज़िम को रखने न रखने का अख़्तियार बग़ैर मेरी रज़ामन्दी के न होगा। (4) इस वक़्त अख़बार में जो नुक़सान हुआ है उसके ज़िम्मेदार तुम हो, क्योंकि तुमने मुझसे इस बारे में कोई सलाह नहीं ली। मुझे इसके नफ़ा-नुक़सान से कोई मतलब नहीं। (5) तुम्हें शिकायत है कि मैंने पब्लिशिंग का काम नहीं किया। क्यों यह शिकायत है ? 'मनमोदक' निकली। उसका क्या अन्ज़ाम हुआ ? एक किताब का इश्तियार दिया। चार किताबें तुमने मेरी छापीं, मगर चारों रद्दी जो अभी तक पड़ी सड़ रही हैं और जिसके बाइस मैं काफ़ी बदनाम हूँ। ऐसी हालत में मैं क्या पब्लिशिंग करता। रुपये मिट्टी में मिल जाते। इसका क़सूर भी तुम्हारे ही सर है। (6) और कोई शिकायत या एतराज़ तुम्हें हो तो उसको भी दूर कर दूँ। मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं हूँ। तुम्हें नुक़सान नहीं पहुँचाना चाहता। सिर्फ़ चाहता हूँ कि काम नफ़ा के साथ चलें।

तुम्हारा, धनपत राय।



लखनऊ, स्थान-तिथि नहीं है। अनुमानतः अगस्त, 1925

भाईजान,

तसलीम। कर्बला ख़त्म है। कल आपके दो कार्ड साथ ही मिले। सीतापुर से वापस आकर फ़ौरन ख़त लिखियेगा। क़िस्सा भी लिख रहा हूँ। फ़ोटो भी खिंचवाऊँगा। ब्लाक बनने में देर लगेगी। 16 की रात की गाड़ी से जाने का इरादा है। अगर आप उस दिन जाते हों तो क्यों न मैं भी कानपुर आ जाऊँ। साथ ही साथ चलें।

आपका, धनपत राय।



गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
अनुमानतः प्रथम सप्ताह अगस्त, 1925

बरादरम,

तसलीम। कार्ड मिला। मशकूर हूँ। दर्स (सबक) का हिन्दी तर्जुमा कर लूँ तो भेजूँ। अभी तीन-चार दिन की कसर है।

हज़रत सेहर ने 'रंगभूमि' का उर्दू तर्जुमा कर दिया, मगर मुआवज़ा हिन्दी सफ़हात

पर 8 आना फ़ी सफ़ा माँगते हैं, यानी कुल 465 रुपये। मुझे कुल किताब के 600 रुपये मिल जायेंगे तो मैं समझूँगा मैंने तीर मारा। आप 465 रुपये खुद माँग रहे हैं। बतलाइये है न सादालौहीं (नामसझी) की बात। मैंने लिख दिया है कि आप खुद किताब किसी पब्लिशर को देकर मुझे 300 रुपये दिलवा दें, और आप बाक़ी सब ले जायें। मैं राज़ी हूँ। दूसरी शर्त मैंने छपे हुए उर्दू सफ़हात पर 4 आना फ़ी सफ़हा रक्खी है। और तीसरी शर्त यह कि पब्लिशर से जो कुछ मिले उसका 2/5 आपका और 3/5 मेरा। बतलाइये मैंने ज़्यादती की है ? अगर आपको इसमें मेरी तरफ़ से ज़्यादती मालूम होती हो तो साफ़ लिखिये। शायद वह आपसे पूछें। उर्दू बाज़ारे क़लम की हालत देखकर 150 रुपये बुरा मुआवज़ा नहीं है। और यह मैं खुशी से देने पर तैयार हूँ। उनके ज़्यादा से ज़्यादा तीन महीने सर्फ़ हुए होंगे। 3-4 घंटा रोज़ काम करके अगर 150 रुपये मिलते हैं तो क्या कम हैं मगर वह न जाने किस ख़याल में हैं। मैं अगर 465 रुपये उन्हें दूँ तो मुझे कुछ न मिलेगा। अगर वह आपसे पूछें तो ज़रा समझा दीजिएगा। मैंने मुहर्रम के बाद बनारस जाना तय किया है। वस्सलाम।

धनपत राय।



लखनऊ, प्रथम सप्ताह अगस्त, 1925

हज़रत सेहर को मैंने 200 रुपये देना तय कर लिया। वह राज़ी भी हो गए। मसनवी की इशाअत (छपाई) में 110 रुपये ख़र्च हो चुके। बक़िया 90 रुपये उन्हें और देने हैं। अगर वह राज़ी हों तो गोशए आफ़ियत भी उनसे पूरा करवा लूँगा और कुछ नई कहानियों का तर्जुमा भी। पंजाब में सब खप जाएंगे और कुछ न कुछ दे मरेंगी।

बाबू रामसरन की तबियत अब कैसी है ? लड़के तो इलाहाबाद चले गए होंगे।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



इक़बाल वर्मा 'सेहर' हथगामी को

सम्भवतः 1925 का अन्त

.........मुकर्रमी मुंशी राजबहादुर का ख़त भी देखा। तसकीन हुई। आप साहबान का ख़याल बिल्कुल दुरुस्त है। इलाहाबाद में एक ब्राह्मण पार्टी है। अवध उपाध्याय जी उसके हाथ में कठपुतली बने हुए हैं। ऊटपटाँग बातें कहकर मुझे बदनाम कर रहे हैं। 'रंगभूमि' और 'वैनिटी फ़ेयर' में ज़र्रा भर भी मुनासिबत नहीं है। और 'प्रेमाश्रम' को 'रिज़केक्शन' के ममासिल बतलाना तो हद दर्जा बेहूदगी है। मैंने आज तक 'रिज़केक्शन' पढ़ा ही नहीं, हालाँकि उसकी तारीफ़ बहुत सुन चुका हूँ। ममासिलत (सदृशता) जैसी उपाध्याय जी दिखलाते हैं, क़रीब-क़रीब सभी किताबों में है। आप फ़रमाते हैं कि 'वैनिटी फ़ेयर' में एक आदमी ग़लत-सलत अंग्रेज़ी बोलता है। इसी से 'रंगभूमि' में एक बंगाली बाबू लाये गये। इस शख़्स को यह भी ख़बर नहीं कि बंगालो बाबू क्यों लाये गये, उनके वजूद का मंशा क्या है ? एमीलिया को आप सोफ़िया से मिलाते हैं, हालाँकि सोफ़िया का असल मिसेज़ एनी बेसेण्ट हैं।

(प्रेमचन्द–'क़लम का सिपाही', पृष्ठ 387 पर उद्धृत)



गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
तिथि अनुमानतः मई-जून, 1925

भाईजान,

तसलीम। दोनों मज़ामीन देखे। इनके मुताल्लिक़ क्या अर्ज़ करूँ। पंडित माधोराम साहब को शिकायत है कि मैंने इसलाही[1] कहानियां नहीं लिखी और अक्सर दीगर अहबाब को शिकायत है कि इसलाही मक़ासिद क़िस्सों को ख़राब करते हैं। मेरे निस्फ़ से ज़ायद क़िस्से किसी न किसी तमद्दुनी[2] मुआमले से मुताल्लिक़ हैं। 'बाज़ारे हुस्न' 'प्रेमाश्रम' 'रंगभूमि' कोई भी इसलाह से ख़ाली नहीं। मगर आप मज़मून शाया कर सकते हैं।

दूसरा मज़मून मालूम नहीं किसका लिखा हुआ है। मगर कोई लखनवी साहब हैं। एतराज़ उनके बिल्कुल ठीक हैं, लेकिन उन्होंने क़िस्से का असली मंशा न समझ कर उन जुज़यात[3] से बहस की है जिन पर रोशनी डालना मेरा इरादा न था। देखने की बात सिर्फ़ इतनी है कि उस वक़्त लखनवी रऊसा की यह Mentality थी या नहीं जिसका मैंने ज़िक्र किया है। बस। इसे भी आप शाया कर सकते हैं।

दुलारेलाल आज दो हफ़्ते से आगरे गया हुआ है। 4 को गया था। उसी दिन शायद मैंने आपको ख़त भी लिख दिया था। लेकिन अब तक, उम्मीद के ख़िलाफ़, वापिस नहीं आया। मुझे कामिल उम्मीद है कि तीन चार रोज़ के अन्दर वह आ जायगा और मैं अपने वायदे को पूरा कर सकूँगा।

सोलन चलने की बावत। मैं जब कभी इस क़िस्म का इरादा करता हूँ तो मुझे फ़ौरन घर वालों का ख़याल आता है कि मैं तो वहाँ तफ़रीह करूँ और यह बेचारे यहाँ पड़े सड़ा करें। तबदील की ज़रूरत किसको नहीं महसूस होती लेकिन जो खुदमुखतार हैं वह अपना इरादा पूरा कर लेते हैं, जो मोहताज हैं वह दिल में सोचकर रह जाते हैं। इसी ख़याल से रुक जाता हूँ। कुनबे भर को ले के जाना मुश्किल। इसलिये यहीं पड़ा रहूँगा। खस का एक पर्दा और दो तीन पैसे का रोज़ाना बर्फ मौसम की तकलीफ़ के लिये काफ़ी है।

और क्या अर्ज़ करूँ। सब ख़ैरियत है। बच्चों को दुआ।

आपका, धनपत राय।

1. सुधारवादी, 2. सांस्कृतिक, 3. छोटी-छोटी बातों।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 2 फ़रवरी, 1926

बरादरम,

तसलीम। कार्ड मिला। 'कर्बला' का एक सीन फ़ौरन लिख भेजता हूँ। उजलत (जल्दी) के ख़याल से और ज़्यादा न लिखा। दो-चार रोज़ में और एक-दो भेज दूँगा।

अभी तो कुछ मालूम नहीं हुआ कि इलाहाबाद में कब तलबी होगी। नाम तो बड़े-बड़े हैं। ग़ैर-सरकारी आदमियों में तो शायद चार-पाँच आदमियों से ज़्यादा नहीं। और लोग किसी न किसी तरह सरकार से वाबिस्ता (संबद्ध) हैं।

और तो सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

सरस्वती प्रेस, बनारस, 27 मार्च, 1926

भाईजान,

तसलीम। मुद्दत से आपने न कोई ख़त लिखा और न मैंने। इसलिए शिकायत का मौक़ा नहीं। उम्मीद है कि आप मय अयाल अच्छी तरह हैं। ज़रा कोई ख़त भेज कर मुतमइन[1] फ़रमाइए। मेरा इरादा हो रहा है कि अपने सवानही[2] मज़ामीन का हिन्दी तर्जुमा शाया करूँ। क़रीबन् सभी सवानेहउमरियाँ मैंने 'ज़माना' ही में लिखी हैं। मेरे पास 'ज़माना' का कोई फ़ाइल नहीं। क्या यह हो सकता है कि आप मेरे पास एक एक जिल्द भेजते जाएँ और मैं उसका तर्जुमा करा के लौटाता जाऊँ। या एक दूसरी सूरत यह है कि जगमोहन जी दीक्षित से कहूँ कि वह आपके यहाँ से फ़ाइल लेकर मज़ामीन का तर्जुमा करके मेरे पास भेजते जाएँ। अगर वह आमादा न हुए तो फिर आपको फ़ाइलें मुझे आरियतन्[3] देनी पड़ेंगी।

और तो सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. आश्वस्त, 2 जीवनी-विषयक, 3 उधार।



सरस्वती प्रेस बनारस, 31 मार्च, 1926

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। मुंशी शिवनारायण साहब की वफ़ात (देहान्त) की ख़बर सुनकर अफ़सोस हुआ। परमात्मा उन्हें जन्नत नसीब करे। कई दिन हुए एक ख़त लिख चुका हूँ। यहाँ के हालात मालूम हुए होंगे। भाभी साहबा की तवील अलालत की ख़बर पढ़कर भी रंज हुआ। शुक्र है कि अब उन्हें सेहत है। मैं तो साबिक़ दस्तूर काम करता चला जा रहा हूँ। प्रेस की हालत ख़राब थी, अब कुछ रूबइसलाह है। अभी तक शहर में मुक़ीम होने की सूरत नहीं निकली। अब जून के बाद ही मकान लूँगा। लड़के की ख़ान्दगी[2] (पढ़ाई) का सवाल न होता तो मैं रोज़ाना आया जाया करता। ज़माना के लिए कुछ नहीं लिख सका। इसकी मुआफ़ी चाहता हूँ। उर्दू में कोई पुरसानेहाल तो है ही नहीं, अपने दो नाविलों केतर्जुमे दारुल इशाअत पंजाब को दिये। अभी कुछ तय नहीं हुआ। और मुंशी इक़बाल वर्मा साहब मारे तक़ाज़ों के नाक में दम किये हुए हैं हालांकि एक सौ पचास दे चुका हूँ लेकिन अभी उन्हें इतना ही और देना है। इन दोनों किताबों की इशाअत पर ही ख़र्चा वसूल होगा। और क्या अर्ज़ करूँ।

आपका, धनपत राय



सरस्वती प्रेस, बनारस, 17 जुलाई, 1926

भाईजान,

तसलीम। कार्ड के लिए मशकूर हूँ। मेरे हालात नोट कर लें। तारीख़ पैदाइश संवत् 1937। बाप का नाम मुंशी अजायबलाल। सुकूनत मौज़ा मढ़वाँ, लमही। मुत्तसिल[1] पाण्डेपुर। बनारस। इब्तदाअन[2] आठ साल तक फ़ारसी पढ़ी। फ़िर अंग्रेज़ी शुरू की। बनारस के कालेजिएट स्कूल से एन्ट्रैन्स पास किया। वालिद का इन्तक़ाल पंद्रह साल की

उम्र में हो गया। वालिदा सातवें साल गुज़र चुकी थीं। फिर तालीम के सीगे[3] में मुलाज़िमत की। सन् 1901 ई. से लिटरेरी ज़िन्दगी शुरू की। रिसाला ज़माना में लिखता रहा। कई साल तक मुतफ़र्रिक़ मज़ामीन लिखे। सन् 1904 में एक हिन्दी नाविल प्रेमा लिखकर इण्डियन प्रेस से शाया कराया। सन् 12 में जल्वए ईसार और सन् 18 में बाज़ारे हुस्न लिखा। हिन्दी में सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प—चारों नाविल दो-दो साल के वक़्फ़े बाद निकले। इनके उर्दू तर्जुमे अनक़रीब शाया होंगे। कहानियों के मजमूए प्रेम पचीसी और प्रेम बत्तीसी उर्दू में निकले। हिन्दी में भी कई मजमूए शाया हुए। सन् 20 में मुलाज़मत से किनाराकश हो गये। अब ख़ानानशीं[4] हैं। बाक़ी उमूर आपको खुद ही मालूम हैं।

कर्बला आप निकाल रहे हैं। मैं इसके आगे के हिस्से जल्द भेज दूँगा। उर्दू की तारीख़ के तर्जुमे के मुताल्लिक़ क्या अर्ज़ करूँ। उस पर आपका फ़ैसला मेरे फ़ैसले से बेहतर होगा। अगर ज़माना की तक़्तीअ[5] के मुफ़हात हैं तो दो रुपया फ़ी सुफ़ा उजरत किसी तरह ज़्यादा नहीं। इससे कम में तर्जुमा करना मेरे हक़ में नुक़सान का बाइस होगा। अगर मंज़ूर फ़रमायें तो मेरे पास मुसव्वदा भेज दें। अपना नाविल जाड़ों में शुरू करूँगा। बरसात में तर्जुमा ख़त्म कर डालूं।

ओर तो सब ख़ैरियत है। एलेक्शन का काम मुझे तो नहीं मिला न मैंने फ़िक्र की। मगर अब देखता हूं कहाँ मिल सकता है। बारिश मामूली है। गर्मी भी कुछ कम हो गयी।

बच्चे अच्छी तरह हैं। आप बारबार मुझे बुलाते हैं। एक हफ़्ते बनारस की हवा खाइए। मैं बहुत जल्द आऊँगा, मौक़ा मिला तो हफ़्ते-अशरे में आप मुझे कानपुर में देखेंगे।

बच्चों को दुआ। खुदारा कुछ मोहन वग़ैरह का हाल भी लिख दिया कीजिए। आपके बाइस मुझे उन लोगों का हालचाल जानने की भी फ़िक्र रहा करती है। मसलन् बाबू रामसरन का ज़िक्र आप मुतलक़ नहीं करते। सेठ के हालात से मुझे भी कुछ इन्टरेस्ट है। यह हज़रात मुझे भूल गये हैं लेकिन मुझे तो उनकी याद आया करती है। वस्सलाम।

धनपत राय।

1 पास, 2 शुरू में, 3. विभाग, 4 घर बैठे, 6 साइज।



श्रीमान सम्पादक 'मतवाला', कलकत्ता — गायघाट, बनारस सिटी, 26-8-1926

प्रिय मतवाला जी,

इससे पहले भी आप इस ग़रीब पर दो-एक बार इनायत कर चुके हैं। वह ज़ख़्म अभी हरा है, लेकिन यहाँ उन लोगों में हैं जिन्हें तेग़े कातिल के तले तड़पने में ही मज़ा आता है, तीरे-निगाह से जिन्हें तस्कीन नहीं होती। अपने दिल के दोनों टुकड़े (1) कायाकल्प और (2) प्रेम-प्रतिमा लिये हुए हाज़िर होता हूँ। खूब अरमान निकालिए, जिसमें ..भी बाक़ी न रहे। कब ?

आशा है, इन्तज़ार में दम न तोड़ना पड़ेगा। मुझे तो इन्तज़ार में नहीं, वस्ल ही में

कुछ लुत्फ़ आता है।

भवदीय, धनपत राय (प्रेमचन्द)

लाजपतराय एण्ड संस,
लाहौर, 19-11-1926

श्रीमान मुंशी प्रेमचन्द जी, नमस्ते !

मैं देहली चला गया था। वहाँ जाकर तबियत ख़राब हो गयी। मेरे पीछे आदमियों को 'बाल रामानन्द', 'महाभारत' भेजनी याद नहीं रही। दो-तीन दिन हुए आपको भिजवाई है, लेकिन हैरानी है, आपने नॉविल का मसौदा नहीं भेजा, ताकि उसे लिखना शुरू किया जावे। चूँकि आपकी किताबें अच्छे क़ातिबों के सुपुर्द की जाती हैं और देर लगती है। आप कृपा करके वापसी डाक से भेजने की कृपा करें। साथ ही रॉयल्टी की निस्बत अपने आख़िरी फ़ैसले से इत्तला बख़्शेंगे, ताकि मैं आपकी मंजूरी की चिट्ठी भेज दूँ, और बच्चों के लिए 'रामानन्द', 'महाभारत' कहानियों की किताब की निस्बत अपने हालात से इत्त बख़्शकर मशकूर फ़रमा देंगे।

आपका शुभचिन्तक, लाजपतराय

नोट :–'ख़्वाबो-ख़याल' दो हफ़्ते में तैयार हो जावेगा।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 27 जनवरी, 1927

भाईजा़न,

तसलीम। आपका कार्ड कई दिन हुए आया। मैं इधर जुकाम और दर्दसर की वजह से तीन दिन से प्रेस नहीं आया। मुझे कार्ड पढ़कर हैरत और अफ़सोस हुआ क्योंकि मैंने दो हफ़्ते से ज़ायद हुए कर्बला का एक 20 सुफ़हे का टुकड़ा भेज दिया था। क्यों नहीं पहुँचा, मुझे इसका ताज्जुब है। दो शबाना[1] रोज़ की मेहनत अकारथ गयी। ख़ैर अब फिर मौक़ा निकालकर जल्द ही लिखता हूँ।

एकेडेमी से आप बेनियाज़[2] हुए इसका मुझे और भी ताज्जुब है। तुख़्मरेज़ी[3] आपने की, आबयारी[4] आपने की, फ़स्ल दूसरे खा रहे हैं। आप शायद इस धोखे में थे कि आपको सेक्रेटरीशिप के लिए मदऊ[5] किया जायेगा। इस नज़उल-बक़ा[6] के ज़माने में दावत कहाँ? जिसने सबक़त[7] की वह बाज़ी ले गया। फिर जब आप ही न रहे तो मेरा भला कहाँ गुज़र और किस हैसियत में। देखिए कब जल्सा होता है। मुलाक़ात होगी। मुझे तो सबसे बड़ी यही खुशी है। आप भी तो मेरे एक पुराने रफ़ीक़[8] और ग़मगुसार[9] ठहरे और आपसे बरसों से मुलाक़ात की नौबत नहीं आयी। इत्तफ़ाक़ाते[10] ज़माना और क्या।

उम्मीद है कि और सब लोग बख़ैरियत होंगे। यहाँ बहमा वुजूह ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. रात-दिन, 2. अलग, 3. बीज बोना, 4. खींचना, 5. आमंत्रित, 6. जीवन-संघर्ष, 7. पहल, 8. दोस्त, 9. हमदर्द, 10. संयोग।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 9 फ़रवरी, 1927

भाईजान,

तसलीम। कर्बला के दो सीन दो तीन दिन में भेजूँगा।

कल लखनऊ से बाबू विशन नरायन भार्गव ने मुझे माधुरी की एडिटरी के लिए बुलाया है। मुशाहिरा दो सद माहवार होगा। आपने इलाहाबाद जो ख़त लिखा उसका अभी कुछ जवाब आया ? कुछ फ़लाह (भलाई) की उम्मीद है ? अगर उधर कोई उम्मीद न हो तो यही सही। जवाब बवापसी डाक मुत्तला फ़रमाइए।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 14-2-1927

प्रिय शर्माजी,

आपको पत्रों से ज्ञात हुआ होगा कि 'माधुरी' के सम्पादकीय विभाग में कुछ परिवर्तन हो गया है। अब पं. कृष्णबिहारी मिश्र और मैं इसके सम्पादक बनाये गये हैं। आपकी मुझ पर सदैव कृपा रही है। क्या आशा करूँ कि 'माधुरी' पर भी कृपा-दृष्टि कीजिएगा ? इधर बहुत दिनों से आपने 'माधुरी' के लिए कुछ नहीं लिखा। कृपया अब इस मौनव्रत को तोड़िए और आगामी अंक के लिए कुछ अवश्य लिखिए।

कई महीने हुए, 'कायाकल्प' की एक प्रति सेवा में भेजी गयी थी। आपने लिखा था कि उस पर अपनी सम्मति लिखूँगा, मगर अभी तक इन्तज़ार कर रहा हूँ। क्या 'रंगभूमि' की भाँति इसे भी तो कोई महाशय उड़ा नहीं ले गये ?

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

सेवक, धनपत राय।

●●

नवलकिशोर प्रेस (बुक डिपो), लखनऊ, 21-2-1927

प्रिय सेठ जी,

कृपा-पत्र बनारस ही मिल गया था। 18 तारीख़ को 'माधुरी' का सहकारी सम्पादक होकर यहाँ आ गया हूँ। पं. कृष्णबिहारी जी मिश्र और मैं काम करेंगे।

आप होली का अंक कब तक निकालिएगा? कोशिश करूँगा, उसके लिए कुछ लिखूँ।

'कायाकल्प' की आलोचना शायद क़यामत में निकलेगी ? और मेरी रूह पढ़ेगी।

आशा है, आप सानन्द होंगे।

भवदीय, धनपत राय।

●●

नवलकिशोर बुकडिपो, लखनऊ, 21 फ़रवरी, 1927

भाईजान,

तसलीम। मैं 15 तारीख़ को यहाँ आ गया हूँ। आप पटना कब जायेंगे ? अगर पटना गये हुए हैं तो वहाँ से कब लौटेंगे। आप आ जायें तो एक रोज़ के लिए आऊँ। मुलाक़ात का जी चाहता है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

अनसूयाप्रसाद पाठक को

सम्भवतः फ़रवरी, 1936

प्रियवर,

तुम्हारा मीरा वाला लेख मिला। इसी अंक में प्रकाशित हो रहा है। एक लेख तुम उत्कल का साहित्य और वर्तमान प्रगति के बारे में लिखो या किसी उत्कल के साहित्यिक से लिखाकर भेज दो तो मैं बहुत धन्यवाद दूँगा।

तुम्हारा, प्रेमचन्द।

●●

'माधुरी' कार्यालय, लखनऊ, 25-2-1927

प्रिय बन्धुवर,

आज आपका पत्र मिला। और कुछ तो न सूझा, एक चुटकुला लिख मारा। देखिए, कुछ हो तो दे दीजिए, नहीं तो फिर कुछ जोर लगाऊँगा।

आलोचना निकलेगी, यह तो ठीक है, पर मेरे लाइफ़-टाइम में निकल आती तो अच्छा था। चित्र तो भेजना नहीं चाहता था, पर डरः कि नहीं मालूम, मतवाले क्या ग़ज़ब ढायें। मारे डर के भेज देता हूँ। आज से कोई दस साल पहले का है। प्रकाशित करके क्या कीजिएगा ? उग्र जी से मेरा वन्दे कहियेगा।

आप 'माधुरी' के इश्क़ में एड़ियाँ रगड़ते रह गये, इधर यारों ने ब्याह कर लिया। देखें, कब तक नाज़बरदारी निभती है। अब तो Civil Marriage का बिल पास हुआ जाता है। कोई चिन्ता नहीं।

भवदीय, धनपत राय।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 14-3-1927

भाईजान,

तसलीम। अपनी ऐनक भूल आया। बवापसी डाक से भेजिए। अंधा हो रहा हूं।

16 को बनारस चला जाऊँगा। इसलिए कल ही भेज दीजिएगा। परसों मुझे मिल जायेगा। आपके मेज़ पर रक्खी थी।

आपका, धनपत राय।

●●

'माधुरी' कार्यालय, (सम्पादकीय-विभाग),
हज़रतगज, लखनऊ, 1-4-1927

प्रिय महादेवप्रसाद जी,

आपने होली खूब खेली ! बेचारे दुलारेलाल भी लथपथ हो उठे। मुझ पर भी दो-चार छींटे पड़ गये, लेकिन ख़ैर, घर तो बस गया।

आपने राजकुमारी माया का चित्र प्रकाशित किया है। उसका ब्लॉक भी आपके पास अवश्य होगा। कृपया वह ब्लॉक अगर मँगनी देना चाहें तो कहना ही क्या, अन्यथा वी. पी. सही। हम उस पर एक सचित्र नोट लिखना चाहते हैं। खड्गबहादुर सिंह जी का

चित्र 'सेनापति' में निकला है। वह भी मँगवा रहा हूँ। इस वीरात्मा ने हिन्दू मनुष्यत्व की लाज रख ली। काश, हममें ऐसे जीवट के युवक और होते।

उग्र जी से मेरा वन्दे कहिएगा। यार, 'माधुरी' के लिए कोई कहानी क्यों नहीं लिखते? मगर, चाकलेट पर न हो। कब तक ? इन्तज़ार कर रहा हूँ।

भवदीय, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 5 अप्रैल, 1927

प्रिय शिवपूजन सहाय जी, वन्दे।

आपका कृपा पत्र मिला। आपके लेख के चित्र तो बन गये, अब लेख का इंतजार है। आपको अब झंझटों से छुट्टी मिल गयी है, दो-तीन दिन में लिख डालिए जिसमें वैशाख में अवश्य छापा जाय।

इसके बाद और कोई लेख सोचिये। बंगला साहित्य पर एक सुन्दर सचित्र लेख की बड़ी ज़रूरत है। आप ही उसे लिख सकते हैं।

मेरे प्रेस का ध्यान रखियेगा। यदि बेनीपुरी जी आये हों तो उनसे माधुरी के लिए 'विद्यापति' पर लिखने को याद दिला दीजिएगा, उन्होंने वादा किया था।

आशा है आप सानन्द होंगे।

भवदीय, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 7 अप्रैल, 1927

प्रिय महाशय,

आपका पत्र मिला। उत्तर में निवेदन है कि मेरी कहानियों का कापीराइट दूसरे प्रकाशकों के पास है और मुझे उनके प्रकाशन की अनुमति देने का अधिकार नहीं है। आशा है आप प्रकाशकों से ही तय कर लेंगे।

क्षमा करें।

भवदीय, धनपत राय, प्रेमचंद।

●●

लखनऊ, 15 अप्रैल, 1927

प्रिय शिवपूजन सहाय,

आपके लेख के चित्र बन गये हैं। वैशाख का मैटर प्रेस में देने की जल्दी है। कृपाकर लेख शीघ्र समाप्त कीजिए। इस पत्र को तार समझिए।

आपका, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 16 अप्रैल, 1927

प्रिय महाशय,

आपने अभी तक लेख नहीं भेजा। आज वैशाख का मैटर प्रेस को दे दिया गया है। कोई सचित्र लेख तैयार नहीं था। इसलिए आपके लेख के आने की आशा में मैंने

उसका नाम भी लिख दिया है। लेख न आया तो बड़ी देर हो जायगी। कृपा करके जल्द से जल्द और फ़ौरन से पहले भेजिए।

भवदीय, धनपत राय।

●●

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 25 अप्रैल, 1927

भाईजान,

तसलीम। ख़त मिला। कर्बला का एक टुकड़ा परसों तक भेज दूँगा। फ़ोटोग्राफ़र के पास गया था। प्रूफ़ डाक्टर ताराचंद साहब के पास से आ गया है। उसने एक हफ़्ते के अंदर देने का वादा किया है। ज्योंही मिलेगा ब्लाक बनवाकर माधुरी में दूँगा और बाद को ब्लाक आपके पास भेज दूँगा। बच्चे ग़ालिबन् 15 मई तक आयेंगे। दीवान साहब का एक ख़त आया है। शायद उनका अख़बार का मुआमला ठीक हो गया। एक दिन खूब लुत्फ़ रहा। गुरबत (परदेश) में भी एक मज़ा है। दोस्तों के साथ दोज़ख़ भी हो तो नागवार न गुज़रे। इक़बाल वर्मा साहब ज़माना के लिए कायाकल्प का रिव्यू लिख रहे हैं।

आपका, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 13 मई, 1927

प्रिय शिवपूजन सहाय और रामवृक्ष शर्मा जी साहबान,

खुदा ने सारी दुनिया का बोझ आप ही दोनों देवताओं के कंधों पर डाल दिया है क्या ? वादे करके उन्हें पूरा न करना कितना बड़ा जुल्म है। निराशा में नींद तो आती है, वादे में तो तड़प और खटक सब कुछ है। बंगला स्टेज के लिए कब तक आशा करें? भला एक पत्र तो लिखिए।

आपका, धनपत राय।

●●

माधुरी कार्यालय (सम्पादन-विभाग)
हज़रतगंज, लखनऊ, 25-5-1927

प्रिय पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी,

'चन्द हसीनों के ख़तूत' मिले। कई पत्र पढ़े भी और आलोचना भी शीघ्र ही करूँगा, तब तुम लजाओगे कि इस बूढ़े ने पुस्तक की कितनी चटपट आलोचना कर दी और मैं ताज़े खून का आदमी 9 मास के बाद भी ठण्डा ही रहा।

आलोचकों ने मुझ पर फिर कृपा की है। 'सूर्य' के तीन अंकों में कोई महाशय 'नयी माधुरी' के शीर्षक से अपने जिले-दिल का बुख़ार निकाल रहे हैं। ज़रा उसे पढ़ना, मेरी ख़ातिर से। उचित समझना तो कुछ लिखना भी।

'मतवाला' को इस नये फ़ैसले पर बधाई ! सेठ जी को सलाम।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 2 जून, 1927

प्रिय शिवपूजन सहाय,

लेख मिला, फिर भी अधूरा। इसे मैं आषाढ़ में दूँगा और एक ही बार छापूँगा क्योंकि नये वर्ष से नयी लेखमाला शुरू होनी चाहिए। पर यदि आप इतना ही और लिखें तो मैं सावन और भादों के अंकों में निकाल दूँ। हाँ, ज़रा जल्दी कीजिएगा। इसे तो मैं न लौटाऊँगा। आपके पास से फिर मिलेगा कैसे। अगर आप न भेजें तो विवश होकर इतना ही छापना पड़ेगा, तब आप कहेंगे कि आपने अधूरा लेख छाप दिया। सोच लीजिये अब आप मेरे हाथ में हैं।

और तो सब कुशल हैं।

भवदीय, धनपत राय।

●●

माधुरी कार्यालय, 8 जुलाई, 1927

प्रिय महाशय,

पत्रोत्तर में निवेदन है कि मेरी कहानियों का सर्वाधिकार प्रकाशकों ही को है। मैं उसमें हस्तक्षेप कैसे कर सकता हूँ ?

रही मेरे जन्म की तिथि आदि। मेरा जन्म सं. 1937 में हुआ। काशी के उत्तर की ओर पाँड़ेपुर के निकट लमही ग्राम का निवासी हूँ। क्वीन्स कालेज में अंग्रेज़ी पढ़ी। शिक्षा विभाग में रहा। पहले 1900 सौ में 'प्रेमा' लिखा, फिर उर्दू में 'प्रेम पचीसी' आदि और 'जलवए ईसार' लिखा। सन् 16 में 'महात्मा शेख़सादी' लिखा। उसी साल सरस्वती में एक कहानी लिखी और तब से ग्यारह साल से बराबर कुछ न कुछ लिखता आता हूँ।

माधुरी के लिए आप कुछ लिखने की कृपा क्यों नहीं करते? क्या आशा करूँ?

भवदीय, धनपत राय।

●●

12 जुलाई 1927

प्रिय पद्मसिंह जी, नमस्ते !

कृपा-पत्र पाकर अनुगृहीत हुआ। क्या कहूँ, आपके इस मिसरे ने दिल को कैसा मसोसा; आपकी प्रेममय अभिन्नता याद करके चित्त गद्गद हो उठता है। ईश्वर ने चाहा तो अगस्त में फिर दर्शन करूँगा।

आपके लेख का आठों प्रहर इन्तज़ार हो रहा है। संग्रह भी कृपया ज़ल्द ही तैयार कीजिए। नवलकिशोर प्रेम उसे बड़े आदर से प्रकाशित करेगा।

आशा है, आप सानन्द हैं।

सप्रेम, धनपत राय।

●●

माधुरी कार्यालय (सम्पादन-विभाग)
हज़रतगंज, लखनऊ, 3-8-1927

प्रिय पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी,

भाई, तुमने अभी तक 'दिल्ली का दलाल' हमारे पास क्यों नहीं भेजा ? जल्द भेजो।

देखने को आँखें तरस रही हैं और मन ललचा रहा है।

यह 'अवतार' समालोचनार्थ भेज रहा हूँ। ज़रा जल्द कृपा करना। आशा है, पुस्तक पसन्द आवेगी। 'माधुरी' के लिए कब कहानी लिखोगे?

भवदीय, धनपत राय।

●●

माधुरी कार्यालय, नवलकिशोर प्रेस (बुक-डिपो)
हज़रतगंज, लखनऊ, 18-8-1927

प्रिय शिवपूजन जी,

आपका लेख मिला, धन्यवाद। वह सादर स्वीकृत है और 'माधुरी' के किसी आगामी अंक में शीघ्र प्रकाशित किया जायगा। कृपा-भाव बना रहे। योग्य सेवा की सूचना दीजिएगा।

भवदीय, प्रेमचन्द (सम्पादक)

●●

लखनऊ, 15 सितम्बर, 1927

प्रियवर,

'मास का प्रश्न' कहानी पढ़ी। चाहता था दे दूँ। पर कहानी उस कोटि की नहीं है जैसी मैं आपके कलम से निकालना चाहता हूँ। इसलिए वापस करता हूँ। क्षमा कीजिए।

भवदीय, प्रेमचंद।

●●

MADHURI KARYALAI, Lucknow, 17-9-27

My dear Anandrao,

Your card, Thanks. You know two of my novels have already appeared in Marathi, 'प्रेमाश्रम and रंगभूमि'. The third is being translated. For these books, I have settled my terms with the publishers. If you bring out Marathi Editions of my stories, your publisher will have to show me the same consideration—that is what I mean. So do not bring out the books unless you can pursuade the publishers to allot me a portion of the expected profits. If the publishers are charitably disposed and publish the stories on charitable grounds, then I too shall not expect anything, but in case they bring out the edition from commercial point of view then I, as author, can by no means give up my portion of the profits, which must be settled beforehand.

Hoping to hear from you.

Yours sincerely, Premchand.

●●

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 19-9-1927

प्रिय पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी,

पत्र मिला। हाँ भई, कला की पूजा वही करे जिसके घर में बाप-दादों की कमाई अच्छी-खासी रक़म हो।

प्रेस के बारे में—बनारस तो आ ही रहे हो, एक दिन सैर करते-करते चले आना और सब-कुछ देख लेना।

मैं प्रेस से ऊब गया हूँ। अब यह बोझ नहीं सँभाला जाता।

भवदीय, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 22-9-1927

प्रिय पद्मसिंह जी,

नमस्ते !

जनाब, आप माशूक़ाना वादे करना खूब जानते हैं ? क्या कहना ! आपका कल तो कभी आता ही नहीं। तीन सप्ताह से अधिक हुए, आपने 'माधुरी' के लिए कुछ लिख भेजने को लिखा था, पर अभी तक ख़बर नहीं ली। यहाँ इन्तज़ार में दम घुट रहा है।

इधर तो इतनी बेएतबारी, और उधर 'सुधा' के एक अंक का सम्पादन भी स्वीकार कर लिया ? क्यों साहब, यही इन्साफ़ है ? दुलारेलाल जी ने जो विज्ञापन दिया है, वह तो आपने देखा ही होगा ? लिखा है, आप 'सुधा' के साहित्यिक अंक का सम्पादन करेंगे। मैंने तो अभी तक इस पर विश्वास नहीं किया, पर कुतूहल अवश्य है। कृपया शंका की निवृत्ति कीजिए।

'माधुरी' का विशेषांक तो देखा ही होगा। उसके विषय में दो शब्द लिख भेजिए। यहाँ लोग अधीर हो रहे हैं। आशा है, आप सानन्द हैं।

आपका, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 17 अक्टूबर, 1927

प्रिय शिवपूजन जी, आदाब।

कृपापत्र मिला। आपने क्यों यह समझ लिया कि आप मेरी माला के लिए कभी कुछ न लिख सकेंगे ? क्या आप ही अपने जीवन के ब्रह्मा हैं ? मैंने तो इसी आशा से आपका नाम डाल दिया था। आप अगर आग्रह करेंगे तो निकालूँगा अन्यथा नहीं।

श्री वाचस्पति पाठक का लेख मैंने पसन्द करके रख लिया है। ज्योंही मौका मिला दे दूँगा। लेख के उत्तम होने में सन्देह नहीं। आपके चित्र जो अप्रकाशित थे लौटा दिये गये हैं।

अपने संबंध में मैं आपको क्या नोट्स दूँ। सिवाय मोटी-मोटी बातों के और क्या जानता हूँ। यह बातें आप मेरे भाई साहब से पूछ सकते हैं। स्वभाव और चरित्र आदि बातें तो सम्पर्क ही से मालूम हो सकती हैं। दो-चार बार आपसे मेरी भेंट हुई है उसी आधार पर आप मुझे जो चाहे रूप दे सकते हैं। मगर कृपा करके कहीं पाठक को उल्लू न बना दीजियेगा।

शेष कुशल है।

भवदीय, धनपत राय।

22-10-1927

प्रिय पद्मसिंह जी, नमस्ते !

कई दिन हुए आपका पत्र मिला था। आप हीले करना खूब जानते हैं। न लिखने का बहाना यह निकाला कि कुछ सूझता ही नहीं। आपकी जिस वक़्त कुछ लिखने की इच्छा होगी, विचार और शब्द हाथ बाँधे हुए आकर खड़े हो जायेंगे।

मैंने 'आज़ाद-कथा' का दूसरा भाग बनारस से मँगाने के लिए पत्र लिखा है। आ जाय तो भेजूँ।

गुरुकुल पर मैं अभी तक लेख न लिख सका। बात यह है कि वह यात्रा-सम्बन्धी लेख होगा और ऐसे लेख के लिए चित्रों का होना ज़रूरी है। मैंने चित्र कोई न लिये। दो-चार चित्र भी होते तो काम चल जाता।

कोई जीवन-चरित्र ही लिख डालिए। आप 'माधुरी' के 'सुभाषित और विनोद' का चार्ज ले लें और हर महीने कम-से-कम 4 पृष्ठ का मैटर भेज दिया करें। बोलिए, यह तो कोई बड़ा भारी बोझ नहीं है !

और तो सब कुशल है !

भवदीय, धनपत राय।

लाजपतराय एण्ड संस, लाहौर, 3-11-1927

श्रीमान जी, नमस्ते !

कृपा पत्र मिला। 'नवाज़ खोलने गये थे रोज़े गले पड़े' के मस्दाक़। मेरा निवेदन था कि नॉविलों पर 'ख़्वाबो-ख़्याल' की तरह रुपया ले लेवें और जनाब ने तहरीर फ़रमाया है कि 'ख़्वाबो-ख़याल' को भी इसी ज़मरा (कतार) में शामिल करें। है ना खूबी-ए-क़िस्मत ! आमदम बसीरे मतलब (मैं अपने मतलब पर आता हूँ) 'ख़्वाबो-ख़याल' का फ़ैसला हो चुका है। उसको छेड़ने की ज़रूरत नहीं। आइन्दा नॉविलों के वास्ते अगर आप मेरी दरख़्वास्त को क़बूल नहीं कर सकते, तो मुझे आपके कहे अनुसार रॉयल्टी मंजूर करने में कोई उज्र नहीं। आप दो सौ सफ़े का नॉविल पहले भेज दीजिए। उसके बाद दूसरा दो सौ का छाप लूँगा। इसके बाद फिर हुक्म की तामील करूँगा। हाँ, रॉयल्टी भी दस और पन्द्रह फ़ीसदी के बजाय पन्द्रह और बीस की रक्खें तो मुनासिव होगा। आख़िर में नाविल का मज़मून भेजते हुए उसके साथ फ़ैसलासुदा शर्त लिख दें। मैं तामील करूँगा।

'ख़्वाबो-ख़याल' की दस कॉपी डाक की ट्रांजिक्शन में ख़राब हो गईं। अब लिखने के लिए भेजी गयी हैं। टाइटिल छप गया है। इस माह में किताब तैयार होगी। इस किताब की बज़रिया इश्तहार उधार-नक़द में आपके काम को Advertise करूँगा। इसलिए भी इस पर रॉयल्टी देने के नाक़ाबिल हूँ। साब्का (पहले) फ़ैसलासुदा शर्त पर अमल होगा। बच्चों की 'रामायण' और 'महाभारत' भेजता हूँ। कहानियाँ आप खुद बच्चों की लिख सकते हैं। वहाँ कितनी ही उर्दू-हिन्दी कुतुब स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली बच्चों के लिए मौजूद होंगी। पहले आप 'रामायण' शुरू कीजिए। अफ़सोस, मेरी सेहत मेरे काम में सख़्त हर्ज़ डाल रही है, वरना जल्दी मैं खुद को आपकी नज़र में अच्छा पब्लिशर साबित करने की कोशिश करता।

मैं अगर अपना कोई प्लाट आपको दूँ तो उस पर नॉविल लिख देंगे, तो इसका आप क्या चार्ज करेंगे ?

आपका, लाजपतराय।

••

Dhanpat Rai Esq., Madhuri Office,
Newul Kishore Press (Book-Depot),
Lucknow

RJagjit Film Co., New Delhi
21st November, 1927

Dear Sir,

Many thanks for your letter dated the 11th instant. It is good of you to have written in connection with our Cinema Enterprise.

Lately we have been busy in the production of a few other stories, and we have not been able to write you in detail.

Our Scenario Department is working at full pressure, and we are afraid we shall have to request you to write scenarios of your own stories for the film production.

We shall be sending a scenario sketch to your address at an early date to explain the different technical points, also we shall submit a rough idea about the rates etc. for this work.

Thanking you,

we are,

Yours faithfully,for Jagjit Film Co.
R.B. Mathur Director

••

Reference No. 4779

'The Chand' Office
Telephone 205, Telegrams 'Chand'
Allahabad, 21.11.1927

My dear Premchand,

I never thought you will raise this question at a time when Marwaries are hot with the 'Chand', you seem to have been bribed by them.

I am amused at your finding. It is a fact the book has occupied much more space than the 'Chand', but I wonder you have deliberately overlooked the fact that it is printed so lavishly in pica abd double laid have been intentionally used to make the book as bulky as you see. My contention is you should not encroach upon the right of the publisher. So far I have been doing my publications in 22 ems instead of 26, as is usually done by others, but I now intend doing in 20 ems. This might annoy you all the more. I remember full well your contributions have all along appeared in small Pica. I have got in files to show that you yourself demanded Rs. 3/8/0 per page for the entire copyright of your writings. I do not remember to have requested you to

reduce a pie in any case and thus I have been paying so far. Why then raise it now ? Is it because the book is neatly printed on thick paper ? What else could make you so greedy ?

I am extremely surprised to see your calculation. You say 1000/- will be the entire cost of printing and 4000/- profit. I say 1000/- will only cost me binding. My calculation is—

Cost of 42 Reams paper @ 12/-	504—0—0
Cost of Printing 20 Forms 2000 copies @ 27/-.........	540—0—0
Full cloth binding and Golding about...	800—0—0
Writing Charges..........	325—0—0
Interest about...........	250—0—0
	Rs. 2419—0—0
Commission 25%......................	1250—0—0
Advertisement..................	500—0—0
	Rs. 4169—0—0
Profit......................	831—0—0
	Rs. 5000—0—0

I hope this statement will satisfy you that I don't ge even 25%.

I have been paying you the highest rate which I have never paid to anybody and am afraid I cannot do anything further. It is hoping agaist hopes.

I have so far did not receive your contribution, perhaps it does not now pay you to write on the old rate.

I have nothing heard about the Benares writer who has sent me Antarang although I requested a very early reply.

23.11.27

Your's as ever, R. Saigal,

••

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 25 नवंबर, 1927

भाईजान,

तसलीम। उम्मीद है आप फ़ैज़ाबाद से आ गये होंगे। मुक़दमे की कैफ़ियत सुनकर मुझे इस वक़्त सख़्त रंज हुआ। मिलने का जी चाहता है। आप किस दिन मौजूद रहेंगे। एक दिन के लिए आऊँगा। फ़ौरन लिखिए।

बुकडिपो के मैनेजर साहब लाइब्रेरी के रुपयों का तक़ाज़ा कर रहे हैं।

आपका, धनपत राय

••

लखनऊ, 10 दिसम्बर, 1927

प्रिय शिवपूजन जी,

आज भाई बलदेव लाल के पत्र से यह शोक समाचार मिला कि आप कोठे से गिर पड़े हैं और आपके एक पैर में कड़ी चोट आयी है। कहाँ तो पं. कृष्णबिहारी जी ने यह शुभ सूचना दी थी कि आप बन्ना बनने जा रहे हैं, कहाँ यह खबर। कैसी चोट है ? क्या हड्डी पर तो ज़रब नहीं पहुँचा है ? ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपको शीघ्र ही चंगा कर दे।

18 ता. को काशी आ रहा हूँ। ईश्वर करे उस वक्त तक आप चलने-फिरने लगें।

मिश्र जी भी आपसे सहवेदना प्रकट करते हैं।

भवदीय, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 21-12-1927

प्रिय सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी, वन्दे !

लेख और पत्र मिले, धन्यवाद। शीघ्र छपेगा। मिश्र जी आपको नमस्कार कहते हैं।

रुपये मैंने अभी नहीं लिये। आपके पास भेज दिए गये। शायद आपको ज़रूरत हो। हिन्दी ड्रामा पर एक लेख क्यों न विशेषांक के लिए लिखने की कृपा कीजिए। उसमें सूर्य, विजय, व्याकुल आदि, मदन, अल्फ्रेड की चर्चा हो और मुख्य ऐक्टरों की विवेचना की जाय। लिखिएगा अवश्य।

भवदीय, धनपत राय।

●●

'माधुरी' कार्यालय (सम्पादन-विभाग)
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 25-12-1927

प्रिय महाशय पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री,

कृपा-पत्र मिला, धन्यवाद !

हम इसी मास से गो-पालन पर 'आर्थिक दृष्टि' नामक लेख अपने 'कृषि-कौशल' स्तम्भ में प्रकाशित कर रहे हैं। आप भी तद्विषयक लेख भेजते रहा करें। सम्पादकीय विचारों में भी हम उसका उल्लेख करेंगे।

परामर्श के लिए साधुवाद !

भवदीय, प्रेमचन्द।

●●

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 18 दिसम्बर, 1927

बरादरम,

तसलीम। कार्ड कई दिन हुए आपका मिला। क़िस्सा लिखने में मसरूफ़ था। दो दिन पीठ में चटक पड़ जाने से कोई काम न कर सका। अब यह क़िस्सा भेजता हूँ। फ़ोटो के लिए मैंने सोचा था, बनारस से मुहइया करूँगा क्योंकि वहाँ कई तसवीरें पड़ी हुई हैं; पर देखता हूँ इधर दो-चार दिन बनारस जाने का इत्तफ़ाक़ न होगा। इसलिए इंशा

अल्लाह कल तसवीर खिंचवाकर भेजूँगा।
और सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।



अक्तूबर, 1927

प्रिय दुलारेलाल भार्गव जी,

हमारे मित्र पं. अवध उपाध्याय तो 'कायाकल्प' को 'इटर्नल सिटी' पर आधारित बता रहे हैं। मि. शिलीमुख ने उनको बहुत अच्छा जवाब दे दिया। मैं अपने सभी मित्रों से कह चुका हूँ कि 'विश्वास' केवल हॉल केन के 'इटर्नल सिटी' के उस अंश की छाया है, जो वह पुस्तक पढ़ने के बाद मेरे हृदय पर अंकित हो गया। मैंने पहले 'चाँद' में यह कहानी लिखी थी। वहाँ से वह 'प्रेम प्रमोद' में आई। मैंने प्रकाशक को अपने पत्र में स्पष्ट लिख दिया था कि यह कहानी 'इटर्नल सिटी' की विकृत छाया है। अपने प्रायः सभी मित्रों से कह चुका हूँ। छिपाने की ज़रूरत न थी, और न है। मेरे प्लॉट में 'इटर्नल सिटी' से बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है इसलिए मैंने अपनी भूलों और कोताहियों को हॉल केन जैसे संसार-प्रसिद्ध लेखक के गले मढ़ना उचित न समझा। अगर मेरी कहानी 'इटर्नल सिटी' का अनुवाद, रूपान्तर या संक्षेप होती, तो मैं बड़े गर्व से हॉल केन को अपना प्रेरक स्वीकार करता। पर 'इटर्नल सिटी' का प्लॉट मेरे मस्तिष्क में आकर न जाने कितना विकृत हो गया है। ऐसी दशा में मेरे लिए हॉल केन को कलंकित करना क्या श्रेयस्कर होता?

'इटर्नल सिटी' प्रसिद्ध पुस्तक है। हिन्दी में उसका अनुवाद हो चुका है। अनुवाद हो चुकने के बाद मैंने कहानी लिखी है। श्री कृष्णदत्त पालीवाल ने ही मुझसे इस पुस्तक की प्रशंसा की थी। अपना अनुवाद भी सुनाया था। उन्हीं से पुस्तक माँगकर मैं लाया था। ऐसी दशा में मोटी बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है कि मैं विज्ञ संसार को धोखा देना नहीं चाहता था। जिस हद तक मैं ऋणी हूँ, उस हद तक मैं लिख चुका। कौन ऐसा आदमी होगा, जो हिन्दी में छपी हुई किताब से मिलती-जुलती कहानी लिखे, और यह समझे कि वह मौलिक समझी जायगी ! फिर भी मेरी कहानी में बहुत-कुछ अंश मेरा है, चाहे वह रेशम में टाट का जोड़ ही क्यों न हो। (इसके बाद कुछ लाइनें ऐसी थीं जिनका इस प्रतिवाद से कुछ सम्बन्ध नहीं।–सु. सं.)



माधुरी कार्यालय, लखनऊ,
14 नवंबर। सन् नहीं है। अनुमानतः 1927

भाईजान,

तसलीम। आप ग़ालिबन् इलाहाबाद से लौट आये होंगे। वहाँ क्या नतीजा हुआ, मुत्तिला फ़रमाइएगा (सूचना दीजिएगा) एक ख़ास बात, मुझे एक मज़मून के लिए बाबू बालमुकुन्द जी गुप्त मरहूम का वह मज़मून दरकार है जो आपने ज़माना में लिखा था। उस माह का रिसाला मौजूद हो तो बराहे नवाज़िश (कृपा करके) भेज दीजिए वर्ना फ़ाइल। कुछ बातें भी करनी हैं। आप तो इस तरफ़ लखनऊ नहीं आ रहे हैं ? या मैं ही हाज़िर

होऊँ ?

आपका, धनपत राय।

●●

A. Mumtaz Ali & Sons
Publishers of 'Tahzib-i-Niswan', 'Phul'

7, Railway Road, Lohore
5-1-1928

मख़दूमी-ओ-मोहतरमी,

तसलीम ! आपके इनायतनामे के जवाब में लिख चुका हूँ कि 14, 15, 16, 17 अवबाब (अध्यायों) की ज़रूरत है। उम्मीद है, आपने मुझसे दरयाफ़्त करने के बाद ही तर्जुमा शुरू कर दिया होगा और अब दो-चार दिन में भेज देंगे। चूँकि यह काम क़ातिब के हाथ में है। मैं चाहता हूँ, इसे ख़त्म करके ही दूसरे काम में लगें।

जैसे एक दफ़े पहले नाकाम कोशिश कर चुका हूँ, फिर ख़याल आ रहा है कि वाज़ कुतुब को हिन्दी में मुन्तकिल (रूपान्तरण) किया जाय। क्या 'गंगा पुस्तकमाला' वाले ये काम आपकी वसातत (माध्यम) से कर सकेंगे ? जिन कुतुब के हिन्दी में लाने की अशद (सख़्त) ज़रूरत है, उनकी तजवीज़ मियाँ इम्तियाज़ करें, तसदीक़ आप करें। 'गंगा पुस्तकमाला' ये वादा करे कि एक मुक़र्ररा मियाद के अन्दर शाया कर देंगे। अपने इख़राज़ात से शाया करें। हमारी रॉयल्टी रखें और सालाना हिसाब हो जाया करे। मुझे यक़ीन है, आप इस सिलसिले में इम्दाद करेंगे।

एक नया क़िस्सा हो गया है। आपके मुख़्तसर अफ़सानों में से यहाँ के एक पब्लिशर ने 'बाज़याफ़्त' वग़ैरा अपने मजमूए में शामिल कर लिये हैं। दीवान में लिख दिया कि बेहतरीन अफ़साने तमाम कुतुब से लेकर मजमूए में शामिल किए जाते हैं। अब शाइक़ीन (शौक़ीन पाठकों) को बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ने की ज़ेहमत न होगी। मैं उन साहब पर दावा करने लगा हूँ। आपको इसका कुछ इल्म हो तो बवापसी डाक लिखिए।

ख़ाकसार, हमीद अली।

●●

लखनऊ, ता. 6-1-1928

प्रिय सूर्यकान्त जी,

लेख मिला, धन्यवाद। आप छतरपुर पहुँचें तो समाचार लिखिएगा। हम लोग सकुशल हैं।

भवदीय, धनपत राय।

●●

Madhuri office, N.K. Book-Depot,
Lucknow, 11-1-1928

....

.......You may take-up some 12 selected stories from all of my stories. I Would advise you to take (1) आत्माराम, (2) बूढ़ी काकी, (3) पंच-परमेश्वर, (4) सुजान भगत, (5) शतरंज के खिलाड़ी, (6) मन्दिर और मस्जिद, (7) रानी सारन्धा, (8) विक्रमादित्य का कटार, (9) क्रामना-तरु, (10) डिग्री के रुपये, (11) बड़े घर की बेटी,

(12) दुर्गा का मन्दिर।

You will find these stories dispersed in all Collections namely 'प्रेम-प्रसून', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-पूर्णिमा', 'सप्त-सरोज', 'नव-निधि' and the file of 'Madhuri'. I am sure this Collection will be welcome by the Marathi reading public.



लाजपतराय एंड संस़, लाहौर, 11-1-1928

श्रीमान जी, नमस्ते !

कृपा-पत्र मिला। बदक़िस्मती से बेवजह कमज़ोरी और बीमारी के और पब्लिकेशन का काम ज़्यादा करने की वजह से मैं चारपाई पर पड़ गया। इस वजह से न तो आपको कुछ लिख सका और न रुपया भेज सका। अब आपको जल्दी चन्द दिनों के अन्दर रुपया भेज दूँगा। दस कापियाँ नवाब इक़बाल से आज भेजने को कह दी गयी है। टैक्स-बुक कमेटी का कल ही सरकुलर आया है कि रुपये के पाँच सौ सफ़े लेते हैं, यानी उन्होंने बज़रिया सरकुलर लेटर ऑर्डर दिया कि 500 सफ़ों की एक रु. क़ीमत है। अगर हम आपको 1000 छापें, जो कि पहली दफ़ा एक हज़ार पक्की छापनी चाहिए, तो लागत दस आने फ़ी किताब बैठती है। मैंने हिसाब कर लिया है और अगर दो हज़ार छापें तो आठ आने के क़रीब और तीन हज़ार पक्की छापनी चाहिए, तो लागत दस आने फ़ी किताब बैठती है। मैंने हिसाब कर लिया है और अगर दो हज़ार छापें तो आठ आने के क़रीब और तीन हज़ार छापी जावें तो साढ़े सात आने के क़रीब। तीनों लागतों में सिर्फ़ पैसा, डेढ़ पैसा का मार्जन है। वो इस सूरत में अगर हमें लिखाई-छपाई में कुछ रियायत मिले, जो अच्छा होने की सूरत में मुश्किल है। इन सब पर ट्राई कलर ब्लॉक होंगे। दुकानदार का कमीशऩ ज़्यादा-से-ज़्यादा होना चाहिए, जो आप मुनासिब समझें। सब वाक़यात आपके सामने रखे जाते हैं। आप एक पुराने और क़ाबिल मुसन्निफ़ हैं, हर पहलू को देख लेंगे।

'रामायण' के बाद बच्चों के लिए सरल कहानियाँ आपको लिखनी होंगी और वो भी ज़रूर मंजूर हो जावेंगी। और कोई सेवा ?

लाजपतराय।



माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 12 जनवरी, 1928

भाईजान,

तसलीम। फ़ोटो तो खिंचवा चुका हूँ लेकिन अभी फ़ोटोग्राफर ने दिया नहीं है। कल शायद मिल जाये। मिलते ही भेजूँगा। आप 17 को आ रहे हैं। इंतज़ार कर रहा हूँ। फ़ोटो का तो ब्लाक कानपुर ही में बनता होगा। 24 घण्टे में बन सकता है। आइए। इस अम्रे ख़ास के मुताल्लिक़ आपसे बहुत-सी बातें करना है। इमसाल अगर कोई लड़का ठीक हो जाये तो अगले साल शादी कर दूँ।

बाकी सब ख़ैरियत।

हिन्दुस्तानी एकेडमी में इनाम के लिए कब तक किताबें भेज दी जायें, मगर यह सब तो मुलाक़ात होने पर।

आपका, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 1-2-1928

प्रिय सूर्यकान्त जी,

कृपा पत्र मिला। मियादी बुख़ार क्या इसीलिए आपकी ताक में बैठा था कि घर से निकलें तो धर दबाऊँ। क़िस्मत ने यहाँ भी आपका साथ न छोड़ा। इस बीमारी ने तो आपको बिल्कुल घुला डाला होगा। पहले ही ऐसे कहाँ के मोटे-ताज़े थे। ईश्वर जल्द आपको चंगा कर दे।

आपकी आलोचना जल्द निकलेगी। बीच में एक महीना गैप पड़ गया। अब की विचार है कि उसका एक अंश ज़रूर दे दिया जाय।

सप्रेम, धनपत राय।

●●

माधुरी कार्यालय, नवलकिशोर प्रेस,
लखनऊ, 16-2-1928

.........Yes, you may translate the stories. I hope you will get a sufficient number of them in 'Madhuri'. You may select some 12 of them and try...If you can get hold of my collections in any library, select पंच-परमेश्वर, हरदौल, दुर्गा का मन्दिर, मन्दिर और मस्जिद, कामना-तरु, सुजान भगत, सती, लैला (Saras wati), बड़े घर की बेटी etc.

Please let me know whether you have selected and Commenced work.

कानपुर, 29 फ़रवरी, 1928

भाईजान,

तसलीम ! आपका मुहब्बतनामा आया। मैं बुख़ार में मुत्तला था। इसके जवाब में देरी हुई। अब अच्छा होने पर जवाब लिख रहा हूँ। बेटी जी का ब्याह तय हो गया, मुझे इस खुशख़बरी को सुनकर बड़ी मुसर्रत हुई। ईश्वर का हज़ार-हज़ार शुक्र है कि जो फ़िकर एक अर्सा से दामनगीन था, उससे आपको निज़ात मिली। घर भी मत्मऊअल (खाता-पीता) और अच्छा है। इस बात को सुनकर और भी खुशी हुई। ईश्वर इसको और इसके मौजूज़ा दूल्हा (होने वाले पति) को हमेशा खुश-ओ-खुर्रम रखे। लड़के के तालीम और घराने के फ़ारिग-उल-बाल (खुशहाल घर) होने की खबर से हमें बहुत मसर्रत हुई है। ईश्वर मुबारक करे।

आपका रुपये के लिए लिखना बिल्कुल ठीक है। मुझे खुद भी आपके लिखे बग़ैर ऐसे मौक़े पर इसकी फ़िकर करना चाहिए। पिछले साल मुकद्दमे में हारने से इन्तज़ामिया

मामलात में कुछ गड़बड़ रही। इस वक़्त भी हालात नागुफ़्ता (अकथनीय) हैं। ताहम जो कुछ मुझसे तैयार हो सकेगा, तैयार करूँगा। आप शादी की तारीख़ से मत्ला करें। ग़ालिबन जून तक होगी। इस वक़्त मैं हत्तूलवसू (यथाशक्ति) कोशिश करूँगा कि कम-से-कम आधा मुताल्बा तो हाज़िर कर ही दूँ। आगे परमेश्वर मालिक है। मुझे उसकी जात पर भरोसा है। मुझे अब आपसे शर्मिन्दगी का मौक़ा ना मिलेगा। आप शादी के लिए तैयारी करें और मेरे लायक़ जो काम हो बतलायें। मसौदा भी तैयार करें और शादी का काम भी कीजिए। शादी बनारस से करने में ही आपको अच्छा रहेगा। मैं ज़रूर आपकी ख़िदमत करूँगा। मस्तूरात (महिलाओं) और दीगर अफ़रात (बच्चों) को नमस्कार।

कुल इन्तज़ाम हो जाते, ख़ैर वहाँ भी सब लोग मौजूद हैं। हाथों-हाथ काम हो जायेंगे। हत्तूलवसू (यथाशक्ति) क़िफ़ायत से काम लीजिए, आपको सकून मिलेगा। अभी 'उर्दू अदब' की तारीख़ के ब्लाकों का हिसाब भी पड़ा हुआ है। ख़ैर, देखा जायगा। हाँ, 'फ़साना-ए-आज़ाद' के हालात का ज़रूर ख़्याल रखिएगा। या तो आप अपनी जिल्द भेज दीजिए, वरना मत्बा (प्रेस) से दिलवा दीजिए। आख़िर में क़ीमत भी देनी पड़े तब भी ले लीजिए। जो दाम आपको देने पड़ेंगे वो मैं दूँगा। एकेडेमी ने तहरीक़ पर गाल्सवर्दी के तीन ड्रामे उर्दू-हिन्दी के तर्जुमे के लिए मुझको और आपको मुश्तर्क़ा दिये हैं। ड्रामे मौजूद हैं, तीसरा और आ रहा है। मैंने बाज़ाप्ता ख़त लिखा है, आ जाये तो उसकी नक़ल भेजूँगा। मैं लखनऊ से होकर अगर आया तो मुफ़स्सल बातें होंगी, नहीं तो 17 मार्च को इलाहाबाद में मुलाक़ात होगी।

बच्चों को बहुत-बहुत दुआ।

आपका, दयानारायण निगम।



मतवाला, 36, शंकर घोष लेन, कलकत्ता | कलकत्ता, 8-3-1928

प्रिय भाई प्रेमचन्द जी, वन्दे !

आशा है होली अंक आपने देखा होगा। आपकी कहानी तो लोगों ने बहुत पसन्द की। बहुतों ने उसकी चर्चा की। लोगों की राय है कि अन्तिम अंश में तो कमाल है। 'काया-कल्प' और 'प्रेम-प्रतिमा' का विज्ञापन आपको पसन्द आया या नहीं ? ऑर्डर आने पर पुस्तकें किससे और कैसे मिलेंगी ? कमीशन क्या मिलेगा ? यदि पुस्तकें आपके पास हों तो दस-दस प्रतियाँ भेज दीजिए। यदि आप स्वयं बेचना चाहें तो मैं आपका ही पता छापा करूँ। जो हो, निःसंकोच लिखिएगा। आप 'मतवाला' पर जैसी कृपा करते हैं उससे मैं आपसे किसी प्रकार बाहर नहीं।

कृपा बनाए रहिये।

भवदीय, महादेवप्रसाद सेठ।



दि मानसरोवर, साधु स्ट्रीट, लाहौर, 30 मार्च, 1928

जनाब भाई साहब,

तस्लीमात ! नवाज़िशनामा आया।...शाह साहब भी उसी वक़्त तशरीफ़ रखते थे।

वो ख़त उन्होंने देख लिया।...कुछ ज़ाइद दिलवाने की मैं कोशिश कर रहा हूँ। आप अपने ख़त में यही लिखते रहें कि कुछ ज़ाइद मिलना चाहिए, मैं ठीक कर लूँगा। रॉयल्टी के लिए मैंने कहा था, पर उनके मुँह से खून लग चुका है। 'निर्मला' की बाबत मैंने कल सोमप्रकाश (लाजपतराय एण्ड संस, लाहौर—गोयनका) से बात की थी, तो यह भी, शाह साहब को ही दे दीजिए। बातचीत मैं कर रहा हूँ, मगर जो लड़के हैं, क़तई नातर्जुबेकार। देखिए, आपके बक़िया रक़म जब मिलेगी, भिजवा दूँगा। आप इत्मीनान रखें।

'मानसरोवर' भेज रहा हूँ और बार-बार तक़ाज़ा करते हुए मुझे शर्म महसूस होती है। इक़बाल वर्मा साहब आये थे। 'मानसरोवर' के जनवरी-नम्बर में मेरी कहानी 'मदन-कला' आपने देखी या नहीं ? कैसी है, आप अपना ख़याल लिखिए। मेरी कहानियों का दूसरा मज़्मुआ तैयार हो रहा है। 'तरो-तीरथ' उसका पहला अफ़साना है। क्या आप उस पर दीवाचा लिखने की तकलीफ़ गवारा फ़रमायेंगे ?

'माधुरी' के लिए एक मज़मून भेजता हूँ। क़ामत (ऊँची कसौट) से क़ीमत का अन्दाज़ा न कीजिएगा। अगर पसन्द हो शाया कर दें, न पसन्द हो वापस भेज दें। अपनी राय लिखें। जिन साहब ने नक़ल की है वो निहायत बदख़त हैं। जहाँ कहीं तरमीम व इज़ाफ़े की ज़रूरत हो, अगर बशौक़ कर सकते हैं।

जवाब से जल्द सरफ़राज़ फ़रमाइयेगा। 'सोज़े-वतन' का कॉपीराइट किसके पास है? लिखिए। सब बातों का जवाब दीजिएगा।

बन्दा, अख़्तर।



MADHURI OFFICE

N.K. Press Book-Depot, Lucknow, 4-4-1928

You may translate 'Agni Samadhi', 'Mantra' or other stories appearing in contemporary periodicals, You have asked me to name 12 of my best stories. Here is a bit—

1. राजा हरदौल, 2. रानी सारन्धा, 3. सौत, 4. पंच-परमेश्वर, 5. आत्माराम, 6. मन्दिर और मस्जिद, 7. दुर्गा का मन्दिर, 8. ईश्वरीय न्याय, 9. नमक का दारोग़ा, 10. सती, 11. कामना-तरु, 12. लांछन, 13. मन्त्र।

In my opinion these are the 13 best of my stories. But of course the selection is not final. It is only off-hand.



न. 25 मारवाड़ी गली, लखनऊ, 4-4-1928

धनपत राय, बी. ए. एस-सी. (प्रेमचन्द)
सदस्य—हिन्दुस्तानी एकादमी, सम्पादक—माधुरी

प्रिय विापन बिहारी श्रीवास्तवजी,

बाबू सत्यदेव नारायण सांही जब यहाँ आये थे, तब उन्होंने आपका नाम मुझे बताया

था और वादा किया था कि जब वह कुछ दिन बाद दुबारा बनारस पहुँचेंगे तब आपसे आपके विवाह के सम्बन्ध में बात करेंगे। ऐसा मालूम होता है कि अपनी विविध गतिविधियों के कारण वह अभी आपसे नहीं मिल पाये हैं। इस बीच मैंने अपने बड़े भाई से निवेदन किया था कि वह आपसे मिलें और आपसे आपका दृष्टिकोण तथा आपकी इच्छाओं को जानें। उन्होंने वैसा ही किया और उनकी रिपोर्ट पर, जो उन्होंने आपसे मिलकर मुझे दी, यह पत्र आपको सम्प्रेषित किया जा रहा है।

मुझे आपको लड़की दिखाने में कोई आपत्ति नहीं। यह इच्छा नितान्त स्वाभाविक है और मैं आपसे पूर्णतः सहमत हूँ। आप यहाँ आ सकते हैं, बल्कि मेरे ही ख़र्च पर एक काल्पनिक नाम के साथ मुझसे मिलें। मेरा पता ऊपर लिखा है और कोई भी इक्का आसानी से स्टेशन से आपको ले आ सकता है। यदि आप सूचित करें कि आप किस गाड़ी से आ रहे हैं तो मैं स्टेशन पहुँच जाऊँगा और आपको ले आऊँगा। किन्तु यह सब-कुछ इस प्रकार होना चाहिए कि लड़की यह न समझने पाये कि उसका कोई निरीक्षण कर रहा है। मैं कड़े पर्दे का मानने वाला नहीं हूँ किन्तु आजकल के सामाजिक परिवेश में मैं जवान लड़के-लड़कियों का उन्मुक्त मिलना पसन्द नहीं करता। यदि फोटुओं से आप सन्तुष्ट हो सकें तो उन्हें बिना किसी कठिनाई के उपलब्ध कराया जा सकता है। यदि माता-पिता और भाइयों की छवि आपको लड़की की छवि का कोई अनुमान दे सके तो आप निरीक्षण करने की पूरी छूट ले सकते हैं। मुझे बताइए कि आप कौन-सा तरीक़ा अख़्तियार करेंगे। मैं सोचता हूँ, सत्यदेव नारायण इस विषय पर आपका मार्गदर्शन करेंगे।

आपकी दूसरी इच्छा को, कि लड़की शिक्षित हो, मैं भी उतना ही सम्मान देता हूँ। मेरी लड़की किसी भी सुशिक्षित महिला से इन अर्थों में उत्तम शिक्षित है, कि वह अपना धर्म, अपना साहित्य, अपना कर्त्तव्य तथा अपने ऋणों से पूर्णतया अवगत है। मैंने स्कूली शिक्षा से उसे बचाया है, क्योंकि मैंने अनुभव किया है कि महिलाओं की वर्तमान शिक्षा-पद्धति हमारे आदर्शों के अनुरूप नहीं है। अधिकतर अध्यापिकाएँ वैसी नहीं है, जैसा उन्हें होना चाहिए। लड़कियों में अवांछित आदतें और उन्मुक्त विचरण की प्रवृत्ति आ जाती है। मैं नहीं समझता कि सामान्य स्थिति का आदमी अपने जीवन-साथी के रूप में किसी उड़ने वाली को पाकर अपना जीवन परेशानी में डालना पसन्द करेगा। हाँ, सम्पन्न लोग भड़कीली, सजी-सँवरी तथा फ़ैशनेबल लड़कियाँ अपना सकते हैं। मैं ऐसी प्रवृत्ति की लड़की को अपनी पुत्रवधू के रूप में नहीं झेल सकता। मेरी लड़की को चेतना-सम्पन्न वातावरण मिलने का लाभ मिला है। वह अंग्रेज़ी कुछ ही सीमा तक पढ़ सकती है, किन्तु उसे हिन्दी साहित्य का अच्छा ज्ञान है। वह सिलाई, बुनाई, कढ़ाई कर सकती है तथा भोजन अच्छी तरह बना सकती है। वह नितान्त आज्ञाकारी, सरल, मूक एवं सहनशील लड़की है। वह भले ही आपके बायरन एवं शैली अथवा सापेक्षता के सिद्धान्त की प्रशस्ति न कर सके, किन्तु आप उसे हिन्दी के लेखकों और कवियों की साहित्यिक उपलब्धि पर चूकता नहीं पायेंगे। वह हम लोगों से अधिक पत्र-पत्रिकाओं के बारे में जानती है और वह अभी मात्र पन्द्रह वर्ष की है, यदि आप उसे तितलीनुमा देखना चाहते हैं तो आप

बहुत आसानी से उसे वह बना सकते हैं। मैं बहुत-सी महिलाओं को जानता हूँ, जो अपने विवाह के बाद भी अपनी पढ़ाई चालू रखे हैं, मिसाल के लिए चन्द्रावती लखनपाल बी. ए., जो एम. ए. करने जा रही हैं। हम लोगों के उनसे पारिवारिक सम्बन्ध हैं, किन्तु कोई कारण नहीं कि अपने को बदले। मैं आपको नितान्त स्पष्ट बता रहा हूँ—एक अत्यधिक शिक्षित किन्तु भ्रमित तथा अनुशासन-रहित औरत वैसी सुखदायी जीवन-साथी नहीं बन सकती, जैसी एक सामान्य शिक्षित तथा आज्ञाकारी, निःस्वार्थी, ईमानदार तथा वफ़ादार लड़की।

जहाँ तक दहेज का प्रश्न है, आप एक शिक्षित आदमी हैं और मैं आपसे सीधे शब्दों में बात करना चाहता हूँ, क्योंकि शिक्षित लोग औचित्यहीन बात नहीं करते। मैं आपके पिता को नहीं जानता और न उनके विचारों तथा सोचने के ढंग को। मैं सदैव आगे बढ़कर आपसे मिलना चाहूँगा। शिक्षित लोगों के बीच ऐसे प्रश्न नहीं उठने चाहिए, अतः सब-कुछ दोनों पक्षों की इच्छा पर छोड़ा जा रहा है। मान लीजिए मैं आपको 5000 रु. दूँ और फिर आपसे अपेक्षा करूँ कि आप उसी राशि के ज़ेवरात लायें तो मेरे विचार से पैसे की बर्बादी हो गई। वधू के हित में ही उपयोग करना दहेज़ का सदुपयोग है। मैं चाहूँगा कि मेरा दामाद अपना बीमा करा ले, माना 5000 रु. का। मैं लड़की के नाम एक राशि बैंक में जमा कर देता हूँ, जिसके ब्याज से बीमे की राशि की किश्त भरी जा सके। क्या यह ठोस और ग्रहणीय प्रस्ताव नहीं है जो दोनों पक्षों को लाभप्रद हो, विशेष रूप से पत्नी को, यदि कोई अप्रत्याशित आपातिक स्थिति आती है ?

अब मैंने वह सब-कुछ कह दिया है जो मैं कहना चाहता था। मैं आपसे विचार-विनिमय करना चाहूँगा। मेरे बहनोई बाबू सोमेश्वरप्रसाद आपके पास जल्द आयेंगे और आपके पिता से मिलेंगे, किन्तु मैं आपसे आशा करता हूँ, कि आप स्वतन्त्र, उन्मुक्त तथा उदार रहेंगे। जैसा कि बूढ़े लोगों में प्रतिकूलता, संकीर्णता तथा तर्कहीनता होने का डर रहता है, वैसा यहाँ कुछ नहीं मिलेगा।

उच्चतम मंगलकामनाओं सहित।

आपका हितैषी, धनपत राय।



पण्डित राधेश्याम (डायरेक्टर) — दिल्ली, 12-4-1928

दि न्यू एलफ्रेड थियेट्रिकल, कम्पनी ऑफ़ बॉम्बे

प्रिय मुंशी जी, जयरामजी की।

आपका ता. 6-4-28 का कृपा-पत्र मिला। बरेली में प्लेग के अधिक बढ़ जाने के कारण सपरिवार मैं पिताजी के पास आ गया हूँ। प्रेस बन्द नहीं किया है। इन्हीं सब कार्यों के कारण आपको पत्र भी नहीं लिख सका।

यह पढ़कर प्रसन्नता हुई कि आपने स्वयं भी एक उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया और अन्य लेखकों से भी लिखवाने का प्रबन्ध कर रहे हैं। सरस्वती प्रेस के सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चय नहीं कर सका हूँ। बरेली पहुँचकर ही कुछ निश्चित रूप से लिखूँगा। अभी तो हम सब बड़ी गड़बड़ में हैं।

पिताजी आपको जयरामजी की लिखवाते हैं। उत्तर यहीं के पते पर दें।

आपका, घनश्याम शर्मा।



धार, 13-4-1928

मान्यवर श्री प्रेमचन्द जी,

सादर प्रणाम। बहुत दिनों से प्रबल इच्छा हो रही है कि आपसे परिचय प्राप्त करूँ। सच मानिए, मेरे मन में आपके प्रति वही श्रद्धा और आदर के भाव हैं जो किसी शिष्य के मन में अपने माननीय गुरु के प्रति हो सकते हैं। कारण यह है कि मेरे मन में हिन्दी भाषा और साहित्य के विषय में जो कुछ प्रेम है उसके प्रधान कारण आप ही हैं। जो कुछ शिक्षा और मनोरंजन मैंने आपकी गल्पों और उपन्यासों के अध्ययन द्वारा प्राप्त किया है, वह कदाचित् हिन्दी की अन्य पुस्तकों से नहीं किया। 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कर्बला' आदि को बार-बार पढ़ा है और प्रत्येक बार अधिकाधिक आनन्द का अनुभव किया। सौ पीछे पंचानवे उपन्यास ऐसे होते हैं जिन्हें एक बार पढ़ लेने पर दूसरी बार पढ़ने को जी नहीं चाहता। पर आपके उपन्यासों की स्वाभाविकता और मौलिकता में कुछ ऐसा विचित्र आकर्षण होता है कि कभी जी ऊबता ही नहीं। हास्यरस भी पर्याप्त मात्रा में हुआ करता है और फिर चरित्र-चित्रण में तो आप मनोविज्ञान के पूर्ण पाण्डित्य का परिचय देते हैं। और भी बहुत-कुछ कहा जा सकता है। यह प्रशंसा नहीं है, सत्य है।

एक अंग्रेज़ मिशनरी महिला मुझे भाई कहती हैं। मैं कट्टर सनातनी ब्राह्मण हूँ (पुरानी लकीर का फकीर नहीं)। मेरी बहिन को भारत-माता और हिन्दी भाषा पर अनन्य प्रेम है। जिस उत्साह और प्रेम से उन्होंने हिन्दी का अध्ययन किया है, उस उत्साह से मैंने किसी हिन्दुस्तानी को भी हिन्दी सीखते नहीं देखा। मेरा विश्वास है कि और भी अनेक विदेशियों को हिन्दी-भाषा और साहित्य से उससे भी कहीं अधिक प्रेम होगा, जितना मेरी बहिन को है, पर खेद इस बात का है कि सहस्रों बल्कि लाखों हिन्दुस्तानी और हिन्दू हिन्दी के कट्टर विरोधी हैं और उसके उन्नति के मार्ग में विरोधी हो रहे हैं। इस विषय में मुझे आपको बहुत-कुछ लिखना है और आप सरीखे विद्वानों की सलाह लेना है। तथापि अभी भी कुछ थोड़ा-सा कहना चाहता हूँ, पर यह प्रकाशित करने के लिए नहीं है केवल आपके और मेरे बीच में है। मैं यहाँ के स्थानीय हाईस्कूल में अध्यापक हूँ। इस साल की वार्षिक परीक्षा में वहाँ की 'नाइन्थ क्लास' में अनुवाद के लिए हिन्दी का जो 'पीस' दिया गया था, वह आपके मनोरंजनार्थ भेज रहा हूँ। ज्योंही पेपर विद्यार्थियों को दिया गया, मैंने हैडमास्टर को जो एक बंगाली सज्जन हैं, उसमें लगभग पचास अशुद्धियाँ बतायीं और विनती की कि इस विषय को मैं पढ़ाता हूँ, आपकी आज्ञा हो तो इसे शुद्ध करके विद्यार्थियों को लिखा दूँ। पर परीक्षक महोदय ने उनसे कहा कि इसकी हिन्दी बिल्कुल शुद्ध है और इनकी बात आप क्यों मानते हैं। ये कोई हिन्दी के 'अथॉरिटी' थोड़े हैं। गर्ज़ कि कुछ लाभ न हुआ। न जाने बेचारे विद्यार्थियों पर क्या बीती। यह सब लिखने का कारण यह है कि इस हिन्दी को आप इस देशी राज्य की स्टैण्डर्ड भाषा समझ लीजिए। स्टेट की कार्यवाही, अदालतों की लिखा-पढ़ी में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाता है। यहाँ के कुछ स्कूलों में इसी प्रकार की भाषा सिखाई जाती है। कुछ इने-गिने सज्जन इस

स्थिति से असन्तुष्ट हैं, पर यह निश्चय नहीं कर सकते कि क्या करें। अधिकारियों से कोई आशा नहीं है। दीवान महोदय से जब मैंने इस विषय में कुछ निवेदन किया तो उन्होंने उत्तर दिया, ''हमारी हिन्दी यही है, हमारे प्रान्त की यही भाषा है, हमें दूसरी हिन्दी नहीं चाहिए।'' महाराजा साहिब नाबालिग़ हैं। यह यहाँ की ही स्थिति नहीं है। एक प्रकार से दीवान महोदय का कहना भी सत्य है। हिन्दुस्तान के मराठी-भाषा-भाषी प्रान्तों में इसी प्रकार की हिन्दी बोली और लिखी जाती है, पर पाठशालाओं में इस प्रकार की हिन्दी क्षम्य नहीं हो सकती। अब बताइए, हिन्दी की उन्नति की यहाँ क्या आशा की जाय ?

इस विषय में और जो कुछ मुझे कहना है वह विशेष करके आपकी पत्रिका में प्रकाशित करने के हेतु से—यदि आप प्रकाशित करें तो—लिख भेजूँगा। अपनी बहिन की बात मैं बिल्कुल भूल गया। हाँ, यह आपको दिखला देना चाहता हूँ कि मेरी बहिन इससे कहीं शुद्ध और अच्छी हिन्दी लिख सकती है। अब कुछ थोड़ा उनके विषय में कहता हूँ। उनका नाम मिस डी. एच. किलपैट्रिक है। अंग्रेज़ी भाषा की तो पूरी-पूरी पण्डिता हैं। हाल ही में आपने केनेडा देश में भगवान रामचन्द्र जी के विषय में एक अंग्रेज़ी पुस्तक लिखी है। इसके पहले 'सरस्वती' में आपका एक लेख प्रकाशित हुआ है और मुझे आशा है कि यदि आपकी इच्छा होगी तो वे 'माधुरी' के लिए भी बड़े प्रेम से लिखेंगी। कुछ माह से आप एक छोटी-सी हिन्दी पत्रिका की सम्पादिका हैं। पत्रिका का नाम है 'भानूदय'। इसका वार्षिक चन्दा 1 रुपये 2 आने है। ग्राहकों की संख्या पाँच सौ से भी कम। पत्रिका का उद्देश्य ईसाई-धर्म का प्रचार हरगिज़ नहीं है। वह विशेषकर हिन्दुस्तान के युवक-युवतियों के लाभार्थ है। उससे अभी तक कोई वास्तविक लाभ हुआ है अथवा नहीं, मैं नहीं कह सकता। तीन-चार महीने पहले मैंने इस पत्रिका का नाम भी नहीं सुना था, परन्तु गत फ़रवरी से मेरी बहिन सम्पादिका हुई हैं और सच्ची लगन से कार्य कर रही हैं। पत्रिका के संचालन के लिए चन्दे की रक़म बिल्कुल पर्याप्त नहीं है। मेरी बहिन पास से भी बहुत-कुछ खर्च करती हैं। तिसपर भी लेख बहुत मामूली हैं और एक-दो भद्दे भी हैं, पर बहिन उन्नति के लिए कुछ नहीं उठा रखतीं।

मेरी बहिन को आपकी रचनाओं से बहुत प्रेम है। एक समय में वे गुरुकुल कांगड़ी में आचार्य रामदेव जी की अतिथि थीं। रामदेवजी ने आपकी पुस्तकों की बहुत प्रशंसा की। जब यहाँ आयीं तो मुझसे आपकी सब पुस्तकों के नाम व पता लिख ले गयीं। उनकी हार्दिक इच्छा है कि आपकी रचनाओं का देश में खूब प्रचार हो और उनके अध्ययन से हिन्दू-समाज लाभ उठावे और उन्नति करे। इसी उद्देश्य से उन्होंने 'भानूदय' के फ़रवरी के अंक में एक सूचना प्रकाशित की है कि जो लेखक 'साहस' पर सर्वोत्तम गल्प लिखकर 'भानूदय' में प्रकाशित करने भेजेगा उसे 'रंगभूमि' की एक प्रति पुरस्कार-स्वरूप दी जायगी। इसी उद्देश्य से फ़रवरी के अंक में आपके प्रसिद्ध उपन्यास 'निर्मला' की संक्षिप्त कहानी प्रकाशित की गयी है। यह लेख आपके इस शिष्य ने ही लिखा है। इस छोटे से लेख में अनेकों दोष हैं, यह मैं भलीभाँति जानता हूँ। जो कुछ कसर मेरी लेखनी से रह गयी थी, वह प्रेस की अशुद्धियों ने पूरी की, जैसे संस्कार के लिए 'सरकार' छाप डाला। अप्रैल माह के अंक में 'प्रतिज्ञा' की संक्षिप्त कहानी प्रकाशित होगी और फिर क्रमानुसार आगामी अंकों में आपके अन्य उपन्यासों पर अत्याचार किया जावेगा। पर मेरा और मेरी

बहिन का एक ही उद्देश्य है वह यह कि आपकी पुस्तकों का अधिकाधिक प्रचार हो। मालूम नहीं हम आपकी सेवा कर रहे हैं या बदनामी। पर मैं तो आपका शिष्य हूँ और जो कुछ कर रहा हूँ भक्ति-भाव से। आशा है, आप मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे। क्या आप अपनी राय लिख भेजने की कृपा करेंगे ? फ़रवरी का अंक आपकी सेवा में भेजा जा रहा है। दया 'भानूदय' को आपके लेखों का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है ?

आपका कृपाभिलाषी और आज्ञाकारी शिष्य,
सीताराम सहारिया 'अनुरक्त' एम. ए.
टीचर, आनन्द हाईस्कूल, धार, (म. प्र.)

●●

Krishna Murari Narayan Singh, Zamindar, Badalpura
Badalpura Estate, 14th April, 1928
P.O. Khagoul, Distt. Patna

My dear Premchand Ji,

It was my desire to write you from a long time about your Novels. You will be glad to learn that almost all your works upto date are available in my library and am pleased to posses them. Your 'Rangbhumi' is the best among them all. But I am sorry to let you know that it is the most pathetic book and requires a strong heart to read it. My mind remained disturbed for a day and I resolved to wrtie you regarding the same. What is the harm if you do not write Tragidy ? As the book has been named 'Rangbhumi', it has been as it ought to be. But my only request to you is to write a comedy equally sucessful as 'Rangbhumi'. A friend of mine told me that Premchand jee cannot be so successful as he has been found in the above mentioned book, which is a tragidy. I have nothing to do with his opinion, but my only request to you is that you cease writing any tragedic book from henceforth and turn your thought towards writing books ending with happiness. Will you ?

I shall be glad if you send me your reply with your opinion regarding the above and for which I shall be much thankful.

Yours Sincerely, K.M.N. Singh.

●●

लखनऊ, 5-5-1928

प्रिय महाशय,

'पन्त जी और पल्लव' शीर्षक समालोचना का 5वाँ भाग मिला। तदर्थ धन्यवाद। वह सादर स्वीकृत है और आगामी अंक में प्रकाशित भी कर दिया जायगा।

कृपा-भाव बनाये रहें। योग्य सेवा सदैव लिखिए।

भवदीय, प्रेमचन्द (सम्पादक)

●●

Dhanpati Rai B.A. Sc.
(Prem Chand)

MADHURI OFFICE,
Lucknow, 18.5.1928

My Dear Kesho Ramji,

I have felt not a little flattered by the many kind things you have said of me. What can be more gratifying to an author than appreciation from men of light and culture. I shall deem it a previlege to be introduced to the Japanese public although I am afraid my presentation of life will hardly be appreciated by them. What has a poor Hindi writer to give to advance Japan. If you think, however, that my works can appeal to Japanese reading public, you have the whole at your disposal. You may translate anything which suits you.

I owe you can apology for this long delay in replying to your letter. I replied to you the very same day I got your letter, but having left for Benaras in the evening I forgot to get it posted. Yesterday, I returned but the letter was missing. I am not sure in my absence some one posted it or what.

I have advised my publishers to send you all my Hindi books with the exception of three you mention. Under works are mere Urdu transformations of my Hindi writings. Urdu literary language being more elastic and polished it has tempted me to adopt it for my smaller stories and you can enjoy them more in their Urdu forms.

Your name has already been enlisted as a subscriber to Madhuri and recent number has been sent to you.

I is much to be regretted that you have not been allowed to join the Vishwa Bharati where you would have been an acquisition.

Please don't forget to inform me of the progress of your questionable enterprise in connection with my stories.

With best wishes,

Yours most Sincerely, Prem Chand

●●

विशाल भारत कार्यालय,
91 अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता, 28 मई, 1928

श्रीमान् प्रेमचंद जी, सादर वन्दे।

'माडर्न रिव्यू' के जून के अंक में जो दो तीन दिन बाद निकल जावेगा, आपकी कहानी छप गयी है। हार्दिक बधाई देता हूँ। मुझे इससे उतना ही हर्ष हुआ है जितना अपनी ही किसी रचना के प्रकाशित होने से होता।

कहानी की भाषा को ठीक कराने के लिए मुझे मि. ऐण्डूज़ को कष्ट देना पड़ा था यद्यपि करेक्शन उन्हें थोड़े ही करने पड़े। पर उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और

बड़ी प्रसन्नतापूर्वक यह कार्य कर दिया। श्री रामानन्द बाबू से भी मैंने यह कह दिया था कि यदि वे ठीक समझें तो छापें, नहीं तो मुझे वापिस दे दें। पहले उनका सन्देश आया था 'प्रेमचंद जी की सर्वोत्तम कहानी हम पहले छापना चाहते हैं और यह कहानी छपने योग्य होने पर भी प्रेमचंद की कीर्ति के प्रति न्याय नहीं करती।' इस पर मैंने यही कहला भेजा कि आप इसे न छापिये दूसरी मैं चुनकर भिजवाऊँगा। रामानन्द बाबू के सुयोग्य पुत्र अशोक चटर्जी ने, जो केम्ब्रिज के बी. ए. हैं, मुझसे कहा है कि मैं स्वयं आपकी गल्प का अनुवाद करूँ और वे (अशोक बाबू) उसे ठीक कर लेंगे। पर मुझे आपकी कहानियों का अनुवाद करने की हिम्मत नहीं पड़ती क्योंकि जैसी बढ़िया हिन्दी आप लिखते हैं मैं उतनी तो क्या उसका दसवाँ हिस्सा अच्छी अंग्रेजी नहीं लिख सकता।

कृपया एक काम कीजिए। 'नवनिधि' इत्यादि कहानियों की अपनी सभी पुस्तकें मुझे भेज दीजिए। श्री राजेश्वरप्रसादसिंह जी का पता भी बतलाइये।

श्री रामानन्द बाबू, अशोक बाबू, 'प्रवासी' के उप-सम्पादकगण इत्यादि सभी सज्जन आपकी रचनाओं को पढ़ने के लिए उत्सुक हैं और मेरी सम्मति में 'बेस्ट स्टोरीज़' का पहले अनुवाद होना चाहिए। इसीलिए मैंने रामानन्द बाबू से कहला भेजा था कि उसे आप पहले न छापें पर फिर उन्होंने स्वयं ही छाप दी। यह भी एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। मैं यह नहीं चाहता था कि मेरी सिफारिश से आपकी रचना छपे। You don't stand in need of my recommendation.

मुझे अत्यन्त खेद होता यदि वे केवल इसी कारण से कि मैं कह रहा हूँ आपकी कहानी छापते।

मैं उस दिन का स्वप्न देख रहा हूँ जब कि किसी हिन्दी गल्प लेखक की कहानियों का अनुवाद रशियन, जर्मन, फ्रेंच इत्यादि भाषाओं में होगा। यदि आप ही को यह गौरव प्राप्त हो तब तो बात हीं क्या है। मेरे हृदय में आपके प्रति श्रद्धा इसलिए है कि आप दूसरी भाषा वालों को कुछ देकर हिन्दी का माथा ऊँचा कर सकते हैं। बँगला इत्यादि से दान लेते-लेते हमारा गौरव बढ़ नहीं रहा।

आशा है कि आप सकुशल हैं।

भवदीय, बनारसीदास चतुर्वेदी

श्री रुद्रदत्त जी के विषय में लिखूँगा।

अकेला होने से काम करते-करते तंग आ जाता हूँ।

मि. एण्ड्रूज़ ने मुझसे कहा था कि प्रेमचंद जी को लिख भेजना कि अंग्रेज़ी में उनकी गल्प के अनुवाद के प्रकाशित होने पर मैं उनका अभिवादन करता हूँ। वे विलायत चले गये हैं।

आप स्वयं अपनी किसी ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली गल्प का अंग्रेजी अनुवाद क्यों न भेजें।

●●

The Vishal Bharat Office
91/Upper Circular Road, Calcutta
Dated the 10.6.1928

My dear Premchand Ji,

Will you please send all your books—I mean novels and short stories—to my friend—

Mr. Tara Chand Roy, Professor of Hindi, Berlin University
Hohenzollerndamm 161 b, Berlin—Wilmersdorf, Germany.

Mr. Roy has got a wonderful command over the German Language. I may add here that he was Tagore's interpreter in Germany throughout his tour. Mr. Roy wants to translate the short stories of the best of our writers and I am asking him to begin with you. What a great delight it would give me to see your stories in German, though I do not understand a word of that language ! Mr. Roy will also require a brief life-sketch of yourself. I do not like Professor Gaur's. There is no personal (touch) behind it. Will you please give me some notes about your life ? Begin from your Maulvi Saheb's room—the Maulvi whom you loved so much. I want some personal anecdotes. I can write the sketch better than many of our writers for I have a liking for that work. I had my notes about you but I have misplaced them. You will therefore have to give me full notes. Mr. Gaur wrote as a learned critic. I haven't got his learning. I want to know you as a man. Please send me a good photograph of yourself. If you have spare copies of your story books and novels please send me one of each—Rangbhumi you gave me at Lucknow.

I have been an humble admirer of your stories since 1916 when I put one of your books Navnidhi as a textbook in Chief's College Indore where I was a teacher for six years. Mr. Roy writes to me that no Hindi book has yet been translated into German language. So your stories will be the first thing! Isn't it a splendid thing ? I am impatient to see your stories in German. None will be more delighted to see them than.

Your humble admirer, Benarsi Das Chaturvedi

Did you receive my last letter ? Mohan Singh's article has not yet come out.

••

विशाल भारत कार्यालय, 91 अपर सरकुलर रोड
कलकत्ता, 10 जून, 1928

प्रिय प्रेमचंद जी,

कृपया अपनी सब पुस्तकें—मेरा मतलब उपन्यासों और कहानियों से है—

मेरे मित्र–

Mr. Tarachand Roy, Professor of Hindi, Berlin University
Hohenzollerndamm 161 b, Berlin–Wilmersdorf, Germany

को भेज दें।

मिस्टर राय को जर्मन भाषा पर अद्‌भुत अधिकार है। यहाँ पर मैं इतना और जोड़ दूँ कि टैगोर की संपूर्ण जर्मनी यात्रा में वही उनके दुर्भाषिये थे। मिस्टर राय हमारे सर्वश्रेष्ठ लेखकों की कहानियों का अनुवाद करना चाहते हैं और मैं उनसे कह रहा हूँ कि आप ही से शुरू करें। आपकी कहानियों को जर्मन में देखकर मुझे कितनी खुशी होगी, गो मैं उस भाषा का एक शब्द भी नहीं जानता। मिस्टर राय को आपके एक संक्षिप्त जीवन-वृत्त की भी जरूरत होगी। प्रोफ़ेसर गौड़वाला मुझको अच्छा नहीं लगता। उसमें आत्मीयता नहीं है। क्या आप मुझे अपने जीवन के बारे में कुछ नोट्स देने की कृपा करेंगे? अपने मौलवी साहब के कमरे से शुरू कीजिये–वही मौलवी जिन्हें आप इतना प्यार करते थे। मैं कुछ निजी ढंग की छोटी-मोटी घटनाएँ चाहता हूँ। मैं बहुत से लेखकों से ज्यादा अच्छा स्केच लिख सकता हूँ क्योंकि मुझे वह काम पसंद है। आपके बारे में मैंने कुछ बातें टाँक रखी थीं लेकिन वह कहीं इधर उधर हो गयी है। इसलिये आपको मुझे पूरे नोट्स देने पड़ेंगे। मिस्टर गौड़ ने विद्वान आलोचक की तरह लिखा है। मेरे पास उनकी विद्वत्ता नहीं है। मैं आपको आदमी के रूप में जानना चाहता हूँ। कृपया मुझे अपना एक अच्छा चित्र भेज दें। अगर आपके पास अपनी कहानी पुस्तकों और उपन्यासों की अतिरिक्त प्रतियाँ हों तो कृपया मुझे सबकी एक-एक प्रति भेज दें। रंगभूमि आपने मुझे लखनऊ में दी थी।

मैं 1916 से ही आपकी कहानियों का एक तुच्छ प्रशंसक रहा हूँ। उस समय मैं चीफ़्स कॉलेज इंदौर में छः साल से अध्यापक था और मैंने आपकी एक पुस्तक 'नवनिधि' पाठ्यक्रम में रखी थी। मिस्टर राय ने मुझको लिखा है कि अब तक किसी हिन्दी पुस्तक का अनुवाद जर्मन भाषा में नहीं हुआ। लिहाज़ा आपकी कहानियाँ पहली चीज़ होंगी ! है न ज़ोर की बात ? मैं आपकी कहानियों को जर्मन में देखने के लिये अधीर हो रहा हूँ। उन्हें देखकर किसी को उतनी खुशी न होगी जितनी कि मुझे।

आपका तुच्छ प्रशंसक, बनारसीदास चतुर्वेदी

आपको मेरा आखिरी खत मिला? मोहनसिंह का लेख अब तक नहीं निकला।

●●

माधुरी कार्यालय, नवलकिशोर प्रेस
लखनऊ, 12-6-1928

I am glad you are proceeding with my stories. You will be glad to see 'Actress' translated in the 'Modern Review' of this month. Some of the stories have been translated in Japanese language.

●●

श्रीमान् शिवपूजनसहाय जी
ज्ञानमण्डल प्रेस, कबीरचौरा, काशी

नवलकिशोर प्रेस (बुक-डिपो),
लखनऊ, 19-6-1928

प्रिय महाशय,

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब लकीर की फ़कीर पर चलने वाली इस संस्था ने भी आधुनिक ढंग से सर्वांग-सुन्दर पुस्तकों को प्रकाशित करने के उद्देश्य से 'साहित्य-सुमन-माला' के नाम से एक सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ-माला के प्रकाशित करने का निश्चय किया है। अतः उसे प्रारम्भ करने के लिए आपके ग्रन्थ-रत्न की आवश्यकता है। यदि आपके पास कोई ग्रन्थ-रत्न तैयार हो, तो शीघ्र भेज दीजिए। यदि आपके पास कोई भी पुस्तक इस समय तैयार न हो, तो कृपया सूचित कीजिए कि आप कब तक हमें अपना ग्रन्थ तैयार कर भेजिएगा।

आशा है, आप शीघ्र हमारी प्रार्थना पर ध्यान दीजिएगा। योग्य सेवा से सूचित करते रहिए।

भवदीय, प्रेमचंद सम्पादक (माधुरी)

●●

नवलकिशोर प्रेस (बुक-डिपो),
लखनऊ, 10 जुलाई, 1928 ई.

प्रिय महोदय,

आपकी सेवा में ता. 19-8-28 को भेजे हुए पत्र का अभी तक कुछ भी उत्तर नहीं मिला। कृपया शीघ्र अपनी कोई-न-कोई पुस्तक हमारी 'साहित्य-सुमन-माला' में प्रकाशनार्थ भेजिए। हम आपकी पुस्तक को अपनी इस माला में शीघ्र निकालना चाहते हैं।

आशा है, आप शीघ्र पुस्तक भेजने की कृपा कीजिएगा। पत्रोत्तर भी भेजने की कृपा कीजिए।

भवदीय, प्रेमचन्द, (सम्पादक माधुरी)

●●

Madhuri Office, Lucknow, 19.7.28

प्रिय प्रवासीलाल वर्मा जी, वन्दे !

कृपा-पत्र मिला। मुझे यह जानकर बड़ा दुख हुआ कि महाशक्ति औषधालय वालों ने आपके साथ विश्वासघात किया। मैंने आपकी पहली पुस्तक देखी थी और उसके रूप-रंग तथा विज्ञापन-कौशल से समझ गया था कि आप अवश्य सफल होंगे। आप अब भार्गव पुस्तकालय से कुछ सहायता चाहते हैं। मैं सहर्ष आपको पत्र लिख दूँगा, लेकिन वे लोग इस मामले में उदार नहीं हैं। क्यों न आप मेरे प्रेस को सँभालने के प्रस्ताव पर विचार करें। मेरे पास इस समय चार पुस्तकें प्रकाशित रक्खी हुई हैं। दो-एक और छापी जा सकती हैं। प्रेस अपना है ही। भाई, आप कोई ऐसा ढंग सोचें जिससे हम और आप अपनी शक्तियों को मिलाकर काम कर सकें, तो मुझे आशा है कि अवश्य सफलता होगी। पं. रामवृक्ष जी शर्मा बहुत जल्द 'युवक' नाम का मासिक पत्र हमारे प्रेस से निकालने जा रहे हैं। पुस्तकें भी प्रकाशित करेंगे। हम तीनों आदमी मिलकर पुस्तकें निकालें। मैं इस काम में कुछ रुपया लगाने को तैयार हूँ। बस, मुझमें दौड़-धूप और विज्ञापनबाज़ी की कमी है। यदि यह कमी

आप पूरी कर सकें और हमारे प्रेस में काम अच्छी तरह आने लगे तो आपको कहीं औ जाने की ज़रूरत ही नहीं है। सच पूछिए तो हमें आप-जैसे एक सहकारी की सख़्त ज़रूरत थी। आप इस प्रश्न पर विचार करें। मैं अपनी पुस्तकें अपने रुपये से निकालूँगा, बेनीपुरी जी भी कुछ रुपये लगायेंगे। आपको केवल प्रेस का प्रबन्ध, काम का आयोजन और पुस्तकों की बिक्री का उद्योग करना पड़ेगा। जो कुछ लाभ होगा, उसे हम-आप मिलकर बाँट लेंगे इस विषय पर विचार करके उत्तर दीजिए। मुझे अपना मित्र समझिए।

और क्या लिखूँ !

भवदीय, धनपत राय

●●

दि रियासत पोस्ट बाक्स 82
. दिल्ली, 23-7-1928

मुकर्रमी,

तसलीम ! याद फ़रमाई का शुक्रिया कबूल फ़रमाइए। 'रियासत' के मज़ामीन की उज़रत की इन्तहाई शरह तीन रुपये फ़ी सफ़ा है, मगर आपको बिलफेल चार रुपये फ़ी सफ़ा नजर कर दिये जायेंगे। आप उर्दू अख़राबात व रिसाइल की हालत से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं और उम्मीद है कि इसका लिहाज़ करते हुए आप चार रुपया फ़ी सफ़े उज़रत मंजूर फ़रमायेंगे।

आप महीने में दो-दो सफ़े के कम-से-कम दो अफ़साने इर्साल फ़रमाने की तकलीफ़ गवारा करें। मत्बूआ मज़ामीन (प्रकाशित रचनाओं) की उज़रत माह व माह इर्साल होती रहेगी। पर्चा आपके नाम पर बाक़ायदा ज़ारी कर दिया गया है। उम्मीद है कि आप ज़रूरी शुक्रिया का मौक़ा इनायत फ़रमायेंगे।

ख़ादिम, डी. डब्लू. एम., एडीटर, रियासत, दिल्ली

●●

माधुरी ऑफ़िस, लखनऊ, 27-7-1928

प्रिय प्रवासीलाल जी,

पत्र के लिए धन्यवाद ! मैं अपने प्रेस का थोड़ा-सा इतिहास सुना दूँ। इससे बड़ी सुविधा होगी। यह प्रेस मेरे एक चचेरे भाई मुं. बलदेवलाल, मेरे एक सगे भाई बा. महताबराय, मेरे एक मित्र बा. रघुपतिसहाय और मेरी संयुक्त सम्पत्ति है। साढ़े 4 हज़ार मेरे, 2 हज़ार रघुपतिसहाय, सवा 2 हज़ार बलदेवलाल के और 2000 महताबराय के लगे हैं। कुल पूँजी 10750 समझिए। इसमें वह ख़र्च भी शामिल है जो पहले-पहल कई महीनों तक कुछ काम न मिलने के कारण हमें अपने पास से देना पड़ा था। सामान में लगभग 8500 ख़र्च हुए थे। सन् 23 में खुला। बा. महताबराय ज्ञानमण्डल प्रेस के मैनेजर थे। मैंने उन्हें वह नौकरी छुड़वा दी और अपने प्रेस में रखा। 2 साल उन्होंने प्रेस को चलाया मगर हमें कुछ फ़ायदा न हुआ। जो कागज़ी फ़ायदा हुआ वह बट्टेखाते में चला गया। तब 2 साल मैंने स्वयं उसे चलाया। मुझे केवल इतना फ़ायदा हुआ कि मैंने 1500 का जो टाइप मँगवाया उसकी क़ीमत निकल आयी। बाबू महताबराय 60 रु. वेतन लेते थे। मैं कुछ न लेता था। तब मैं यहाँ चला आया और अब 11 साल से बाबू बलदेवलाल प्रेस

ो देख रहे हैं। उन्हें भी सिवाय प्रेस का ख़र्च चलाने के कोई फ़ायदा नहीं हुआ। अगर ाज सारा लेहना वसूल हो जाय तो 1000 रु. हमें मिल सकते हैं, पर लेहने कहाँ इतनी ासानी से वसूल होते हैं !

यह प्रेस की स्थिति है। प्रेस किसी तरह जी रहा है। अगर उसे 2 फ़ॉर्म काम रोज़ ोई 20-22 रु. का और 100 रु. मासिक टूडल का काम मिलता जाय तो उसकी आमदनी 00 रु. मासिक हो जायगी। मैंने कितना मासिक काम किया है, यह रजिस्टरों से मालूम ो सकता है। हाँ, काम ऐसा होना चाहिए जो चाहे सस्ता हो पर नक़द हो। यह नहीं क बरसों का झमेला। अच्छा, मान लीजिए प्रेस की आमदनी 600 रु. मासिक होने लगे, समें आप केवल 50 रु. सूद और केवल 4 रु. सैकड़ा घिसाई के निकाल दें तो 40 रु. ए। प्रेस का मौजूद ख़र्चा 300 रु. के लगभग है। आप 350 रु. रख लीजिए। 350 . में 50 रु. सूद के और 40 रु. घिसाई के निकाल दीजिए तो 450 रु. के लगभग ए। 150 रु. बचते हैं। इसमें हम दोनों आधा-आधा ले सकते हैं। आप जितना ही काम धिक प्रेस को दे सकेंगे, उतना ही लाभ होगा। प्रेस सोलहों आने आपके हाथ में रहेगा। ड़े भाई साहब कभी-कभी, जब उनके जी में आवेगा, आ जाया करेंगे। बुढ़ापे में उन्हें स दौड़-धूप से बड़ा कष्ट हो रहा है।

अच्छा, अब प्रकाशन का काम। मेरी एक पुस्तक 'प्रेम-तीर्थ' छप रही है। 12 फ़ॉर्म प रही है। एक दूसरा उपन्यास छपने जा रहा है। दो पुस्तकें पहले ही से छपी रखी । एक का नाम है 'मुरली-माधुरी'। सूर के पदों का संग्रह है। कोई 6 फ़ॉर्म की। दूसरा क फ्रांसीसी उपन्यास का अनुवाद है 'अवतार' बड़ा ही रोचक। ये चार पुस्तकें तो रीब-क़रीब तैयार हैं। हम अपनी, आपकी या और किसी मित्र की लिखी हुई पुस्तकें ाल में 4-5 छाप लिया करेंगे। इसमें लागत और लेखक के 20 रु. सैकड़ा रॉयल्टी के परान्त जो लाभ हो उसमें भी आधा साझा। रुपये मैं लगाऊँगा मगर अभी ज़्यादा नहीं गा सकता।

इस तरह आप देखेंगे कि आपके और मेरे गुज़ारे का साधन प्रेस और प्रकाशन बन कता है। मेरी दोनों पुस्तकें आप साल भर में निकाल सकें तो उसमें ही काफ़ी मिल ाएगा। आप खुद चलती हुई चीज़ें लिखिए या संग्रह कीजिए। शुरू में जब तक काम जमे, आप मुझसे जो सहायता चाहें वह मैं मासिक करने को तैयार हूँ, पीछे से लाभ ोने पर आप उसे मुजरा दे दीजिएगा। मैं केवल यही चाहता हूँ कि आपकी सहायता से मारा कारोबार चलने लगे। आप मेरे प्रेस में जाइए। मैं भाई साहब को पत्र लिखे देता ूँ। वह आपको सब कुछ हिसाब-किताब दिखा देंगे। अगर आपका मन भरे और आपका न कहे कि इस काम में कुछ कमाया जा सकता है तो राम का नाम लेकर शुरू कीजिए। अगर काम चल निकला तो पौ बारह है। नहीं तीन आने (ये शब्द अस्पष्ट हैं—गोयनका) तो कहीं गये ही नहीं।

इस पत्र को आप अपने पास सनद के तौर पर रख लीजिएगा। हमारी लिखा-पढ़ी जो कुछ होगी, वह यही पत्र है।

प्रेस पर क़र्ज़ नहीं है। दूसरों पर उसका लेहना क़रीब 1000 रु. है। जो डूब गया वह गया।

अभी प्रेस की जगह अच्छी नहीं है। 18 रु. किराया देता हूँ। कुछ काम सँभल जावे तो दूसरी जगह ली जा सकती है।

शीघ्र उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा।

भवदीय, धनपत राय।



55/6, Baramandir, Bulanala,
Benares City, 2-8-1928

श्रद्धास्पद बन्धुप्रवर, सप्रेम वन्दे !

आपका कृपा-पत्र यथासमय प्राप्त हुआ। मैंने प्रेस में जाकर हालत देखी। इधर बहुत ख़राब हालत है। मैं समझता हूँ, अगर सतत प्रयत्न किया जाय, तो दो-तीन महीनों के बाद, हालत सुधर सकती है। काम काशी से अधिक नहीं मिल सकता, बाहर का काम मँगाने की कोशिश करनी होगी। कोशिश में केवल परिश्रम और बुद्धि का ही व्यय नहीं होगा—सौ-पचास विज्ञापनबाज़ी में भी ख़र्च करने होंगे। पुस्तकों की निकासी का अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं है। मैं चाहता हूँ, एक फ़ार्म का सूची-पत्र छपवाकर वितरण कराया जाय। बाहर की पुस्तकें देने का भी हम प्रबन्ध करेंगे। इस प्रकार के उद्योग से लाभ उठाया जा सकता है। आपकी सब शर्तें लगभग मुझे स्वीकार हैं। एक निवेदन मुझे करना है। मैं चाहता हूँ कि मेरे ख़र्च भर के लायक़ एक एलाउंस निश्चित कर दिया जाय और वह मुझे प्रतिमास मिले; क्योंकि जब मैं सब काम छोड़कर इसमें लग जाऊँगा, तो मुझे ख़र्च भर के लिए मिलना ही चाहिए। यह एलाउंस हिस्सेदारी में शुमार न हो। हाँ, यह हो सकता है कि एलाउंस देकर आप हिस्सा मुझे आधा न दीजिए, कम कर दीजिए, या एलाउंस प्रेस के ज़िम्मे रखिए और हिस्सेदारी पुस्तकों में कर दीजिए, क्योंकि जब आप ब्याज और टाइप-घिसाई वग़ैरा सब-कुछ लगा रहे हैं, तो मेरा ख़र्च-भर भी उसी में जोड़ दिया जाय। इसमें न आपकी हानि है और न मेरा ही कोई विशेष स्वार्थ। ख़र्चा देना, तो फ़िलहाल आपने स्वीकार किया ही है; पर मैं इस झमेले में नहीं पड़ना चाहता कि मैं इधर जो कुछ लूँ, वह आगे हिसाब में मुजरा लिया जाय। यह ठीक नहीं। मुझे अपने पर विश्वास है, यदि प्रयत्न किया तो दो-तीन मास में बहुत-कुछ काम जम जायगा। मैं बाहर का काम मँगाने की ही अधिक चेष्टा करूँगा। यदि आपको मेरा मन्तव्य स्वीकार हो, तो प्रेस को लिख दीजिए कि वे मुद्रक की जगह मेरा नाम देने की दरख़्वास्त दे दें। आप सब-कुछ बाक़ायदा समझा दें। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या मेरे रहते श्री गुरुप्रसाद भी प्रेस में काम करेंगे ? करेंगे तो कौन-सा काम उनके ज़िम्मे होगा ?

मैं अभी एक झगड़े में पड़ चुका हूँ; अतएव यह नहीं चाहता कि आगे फिर मेरे सामने कोई झमेला खड़ा हो। इसीलिए मैं सब बातें पहले तय कर लेना चाहता हूँ। विलम्ब हो जाय तो चिन्ता नहीं। यह अच्छा नहीं कि बार-बार इधर-उधर के काम हाथ में लेकर जल्दी-जल्दी बदलने पड़ें। मैं अब यह चाहता हूँ कि जिस काम को भी हाथ में लूँ, जी लगा कर करूँ और कुछ करके दिखलाऊँ। अब ऐसे काम में मैं नहीं पड़ना चाहता, जो अस्थायी हो। मैंने खूब सोच-समझकर आपको पत्र लिखा है। आप भी विचार कर लीजिए और उचित उत्तर दीजिए। बेहतर तो यह हो कि आप दो रोज़ के लिए किसी प्रकार आ

जायें, या मुझे ही वहाँ बुला लें तो मामला तय हो जाय। पत्र-व्यवहार में कुछ विलम्ब हो जायगा। मेरी बातें स्वीकार हों, तो लगभग सौ-पचास रु. का विज्ञापन के लिए भी प्रबन्ध कर दीजिएगा। पुस्तकों के आवरण के लिए कुछ ब्लॉक भी बनवाऊँगा। सूची-पत्र छपवाऊँगा, और भी जो-जो उपाय आवश्यक समझूँगा, काम में लाऊँगा। अभी ये ही बातें हैं। आगे जो ध्यान में आयेगा, लिखूँगा। इति।

आपका, प्रवासीलाल वर्मा।



The Japan Times & Mail, Tokyo
August 2, 1928

My dear premchand ji,

I have been too slow in acknowledging receipt of your kind letter and friendly note of May 18, written on the very date I was born 34 years ago, and 13 years that I left the land of my birth. This is the only letter I have been favoured with from you, for which please accept my hearty thanks.

The first short-story of yours that I translated was 'मर्यादा की वेदी' much against my expectations it has been a complete failure. None of the first rate magazines in Japan would like to accept it. It deals a great deal with Indian history and national sentiment in which the Japanese reading public is not interested. The expenses that I had to undergo in translating it amount to some thing like of 50/- (Rs. 70/-). It is not going to be a complete waste of money. I hope to be able to make use of this translation when I am going to put your stories in a book form.

I next tried my luck on 'मुक्ति-मार्ग' has proud to be the literary sensation in Tokyo during the month of June, when it was published in Kaizo (Reconstruction) of Tokyo. Kaizo is the greatest magazine not only in Japan, but it is considered to be one of the best magazines in the world. It is an honour and a great honona, in this country if one's work is accepted by Kaizo. Kaizo, by the ways, is sold to the extent of one lakh copies evety month.

A copy of the Kaizo in which my translation of 'मुक्ति-मार्ग' Appears is being sent under separate cover. It appears on page 110 under the title of 'Seido no michi'. Then comes your name as the auothor of the story, to be followed by my name as the translator. There is an introduction to is by me. Sato Harno, who while introducting me to the readers gives a few details about my personality and my circle of friends, an well as my past antecedents.

Mr. Sato (the Japanese use their family name first) is one of the five great novelists in Modern Japan, and is one of my dearest friends. He it was who, among all my literary friends, was more entnhsiastic in prevailing upon

me to take up this work of translating Indian literary pieces into Japanese.

The story itself has been very well received and favourably commented upon by the critics. Japanese are fond of Tcehoff and Tolistoy, and this little tiff between the farmers which ends so beautifully has, therefore, interested them a great deal. It gives them besides a little insight into rural life and the Indian character as well. Your language is too flowery sometimes which modern writers seem to avoid, and one of my friends complained of it. I think he is right, although you are not to blame for it as everybody is doing that in India.

Zamana's jubilee number has one of your best stories. I have working on 'मन्त्र' a couple of days after I received the Zamana, and while the work of translation was still proceeding, came the 'Vishala Bharata' bearing the same story with a few changes here and there.

I have followed the Urdu text except for these few words : यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी, और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुढ़िया के उठने से पहले घर पहुँच जाऊँ. The words that I have underlined have added some thing like magic to the entire plot. But excuse me for telling you frankly that I do not like the last three paragraphs of the Vashala Bharata version, from जब मेहमान चले गये.....to मेरे सामने रहेगा. My Japanese collaborator who is a writer of no mean abilities also opines that these three paragraphs simply spoil the beauty and exquisitiveness with which the idea expressed in the words underlined above; has been carved. Why not be a bit mystic, and why be so explicit and clear in the end and make it a common place thing ? Excuse me for this criticism. I do it as your younger brother and sincerely.

'मन्त्र' is still lying with my friend Mr. Sato. He has gone through it and perhaps will find room for it in one of the prominent literary magazines of Tokyo soon. He did not find much of mistakes, he told me, when we had dinner last week, and was further more of the opinion that it was a literary masterpiece. I shall send you a copy of the magazine when it is published.

Some of your stories are good for Indian readers, but the Japanese would not be interested in them, as they deal mostly with social evils or historical facts from which Indians alone can derive the desired inspiration or drink deep from their cup of beauty.

As I wrote to you, I have only three of your books with me. Your publishers have not yet sent me the rest of your works which I had been anxiously waiting for all these days. Will you be good enough to ask them to expedite this affair, as I am in a hurry to translate some more of your stories

soon, and strike while the iron is hot. If once the public begins to take interest in your works, it would be the height of foolishness not to go forward and convince them of your superiority as the master artist of our great but undone Hindustan. I am quite prepared to stand all the expenses.

I have received only one copy of 'Madhuri' and found it to be the best of all the half a dozen Hindi magazines that I am receiving regularly through the generosity of Shri Prasad ji Gupta ji of Benares. Unfortunately, the subsequent issues have failed to turn up. The one I have received is for चैत्र, 304 तुलसी संवत्. I shall be obliged if you will make arrangements to have not only the subsequent numbers sent to me soon, but also a copy of it regularly every month.

A Panjabi artist Mr. M.A. Rahman Chughtai of Lahore, who was introduced to me by Dr. James cousins of Madras, asked me to send him some artist brushes from Japan which I did. He owes of Rs. 15/- and I have asked him to remit this sum to you. Kindly be good enough to pay out of it Rs. 9/- as my subscription to 'Madhuri' and hand the balance over to your publishers. I shall gladly send your publishers the rest of the money on receipt of their bill. But they should not delay sending the books to me.

Along with Kaizo, I am sending you a copy of 'A spring case', this is the English translation of my friend and brother Tanizaki Junichiro's novel. It is autographed by him for your sake, as he appreciates your 'मुक्ति-मार्ग' more than all other novelists. He is most enthusiastic of them all. The book itself is a humble present to you from me. I need not say anything about Zanizaki, the translator's note will speak for itself.

I thank you sincerely for all the kind and sympathetic words you have spoken about me, which I appreciate from the core of my heart; and I appreciate moreover the friendship that you have not hesitated to offer me along with permission to translate your works.

Excuse me please for this hastily scribbled letter after a hard days work. I have to work at night also for my livelihood, extra work of course, to keep the wolf away from the door. It is exactly midnight now. नमस्ते।

Very Sincerely yours, K.R. Sabarwal.

●●

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 10 अगस्त, 1928

वरादरम,

तस्लीम। आपने मेरे मज़ामीन किसी कातिब को दे दिये या नहीं। अकबर नंबर के मज़ामीन मिल गये होंगे। उन्हें भी शामिल करना है। किताबत की फिर तरतीब दे

दी जावेगी लेकिन अगर वहाँ किताबत में कोई दिक़्क़त हो तो आप सारे मज़ामीन म
अकबर नंबर के मज़ामीन मेहरबानी करके भेज दें। यहाँ भी बआसानी (आसानी से
किताबत हो सकती है।

और सब ख़ैरियत है।

नियाज़मन्द, धनपत राय



Madhuri Office, Lucknow, 13-8-2

प्रिय प्रवासीलाल जी, वन्दे !

इधर मैं आपको पत्र न लिख सका। हमारे और आपके बीच में अब सारी बा
तय हो चुकीं–

1. आप प्रेस के मैनेजर होंगे। रुपये का सूद और घिसाई और आपका 50 रु
वेतन निकालकर जो कुछ बचे, उसमें 1/3 आपका और 2/3 प्रेस के हिस्सेदारों का।

2. प्रकाशन में सब ख़र्च–विज्ञापन, पुरस्कार, छपाई, विज्ञापन आदि–निकालक
1/2 हमारा और 1/2 आपका।

3. प्रेस के लिए आपके उद्योग से इतना काम मिलेगा कि सब ख़र्च निकलेगा। हम
3 महीने तक आपको 50 रु. मासिक अपने पास से देंगे और इस बीच में आपको काम
का प्रबन्ध करना पड़ेगा।

4. आपका नाम प्रिण्टर में लिख जायगा।

5. 'गुरुराम जी', प्रूफ़-रीडर रहेंगे।

इन शर्तों में अगर कुछ कसर रह गई हो तो आप लिख दीजिए। मैं हस्ताक्षर क
दूँगा। सारी लिखा-पढ़ी तो दिल की है। जब तक आप करना चाहेंगे–करेंगे, न करना चाहेंगे
शर्तें कुछ काम नहीं देंगी। इसलिए ईश्वर का नाम लेकर काम शुरू कीजिए। कोशिश
कीजिए कि शहर से ही कुछ Job work मिलने लगे। Electoral Roll का काम बहुत
जल्द आने वाला है, उसे हाथ से न जाने दीजिएगा।

आशा है, आप सानन्द हैं। ऐसी कोई पुस्तक लिखिए जिसमें साहस और वीरत
का वृत्तान्त हो, या ऐसा जिसमें जंगली जानवरों के शिकार की घटनाएँ हों। ऐसी पुस्तकें
शायद अधिक खपें।

शेष कुशल।

भवदीय, धनपत राय



माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 15 अगस्त, 1928

भाईजान,

तसलीम। मज़ामीन के लिए शुक्रिया। अभी चार मज़ामीन की सख़्त जरूरत है

1. राना प्रताप–जुलाई सन् 1906, 2. राजा मानसिंह–अकबर नंबर, 3. राज
टोडरमल–अकबर नंबर, 4. स्वामी विवेकानन्द–1908 सुफ़हा 389।

इन चार मज़ामीन को जल्द नक़ल कराके रख लीजिए ताकि अबकी जब मैं आऊं

तो तैयार मिलें। इन मज़ामीन के बग़ैर मजमूआ बेकार है। नक़ल करने की उजरत मैं अदा कर दूँगा। ज़रा तकलीफ़ होगी मगर कहूँ किससे ?

आपका, धनपत राय।

●●

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 15 अगस्त, 1928

प्रिय केशोराम सब्बरबाल जी,

आपने मेरे बारे में जो सब अच्छी-अच्छी बातें कही हैं, उनसे मेरा हौसला बहुत बढ़ा। सजग और सुसंस्कृत लोगों की प्रशंसा से अधिक प्रीतिकर किस लेखक के लिए और क्या चीज़ हो सकती है। इसे मैं अपने लिए गौरव की बात समझूँगा कि जापानी जनता से मेरा परिचय कराया जाय पर मुझे भय है कि जीवन का मेरा चित्रण उन्हें शायद ही अच्छा लगे। उन्नत जापान को देने के लिए एक ग़रीब हिन्दी लेखक के पास क्या है। तो भी अगर आप ऐसा सोचते हैं कि मेरी रचनाएँ जापान के पाठक समाज को रुचेंगी तो सभी चीज़ें आपके लिए हाज़िर हैं। जो कुछ भी आपको पसन्द आये, जँचे, आप उसका अनुवाद कर सकते हैं।

आपके पत्र का उत्तर देने में इतना जो विलम्ब हुआ, इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। जिस दिन आपका पत्र मिला था, उसी दिन मैंने उसका जवाब लिख दिया था लेकिन चूँकि मैं उसी शाम को बनारस के लिए रवाना हो गया, मैं उसे लेटरबक्स में डलवाना भूल गया। मैं कल लौटा, मगर वह ख़त गायब था। मैं ठीक से नहीं जानता कि मेरी अनुपस्थिति में किसी ने उस ख़त को डाक में छोड़ दिया या नहीं।

जिन किताबों का आपने ज़िक्र किया है, उनको छोड़कर अपनी और सब हिन्दी पुस्तकें आपके पास भेजने के लिए मैंने अपने प्रकाशकों को कह दिया है। उर्दू कृतियाँ मेरी हिन्दी कृतियों का मात्र उर्दू रूपान्तर है। साहित्यिक भाषा उर्दू अधिक लचीली और मंजी हुई होने के कारण उसने मुझे इतना आकृष्ट किया है कि मैं अपनी छोटी कहानियों के लिए उसको अपनाऊँ और आप उनके उर्दू वेश में उनका अधिक रस पायेंगे।

आपका नाम माधुरी के ग्राहकों में लिख लिया गया है और नया अंक आपको भेज दिया गया है।

बड़े खेद की बात है कि आपको विश्वभारती में नहीं दाखिल होने दिया गया जहाँ आपका होना उसके लिए एक अच्छी बात होती।

मेरी कहानियों के संबंध में आप जो कुछ कर रहे हैं, जिसकी अक़्लमंदी के बारे में मुझे संदेह है, उसकी प्रगति के बारे में मुझको सूचित करना न भूलियेगा।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका, प्रेमचंद।

●●

माधुरी कार्यालय,
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 18-8-1928

प्रिय शिवपूजन जी,

आपके लेख के सात चित्रों के ब्लॉक हमने बनवा लिये हैं। कृपाकर 3 चित्र और

भेज दें तो बड़ी दया हो–

1. बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त का, 2. श्री राय कृष्णदास जी का, 3. प्रो. हरदास माणिक जी का।

अगर उक्त चित्र लौटती डाक से भेज देने का अनुग्रह करें तो बहुत ही अच्छा हो।

आशा है, आप सानन्द हैं।

पुनश्च : श्री पराड़करजी का ब्लॉक भी भेज दें।

भवदीय, प्रेमचन्द (सम्पादक)

●●

नवलकिशोर प्रेस (बुक डिपो),
लखनऊ, 21-8-1928

प्रिय प्रवासीलाल जी,

पत्र के लिए धन्यवाद। आप प्रेस में काम करने को तैयार हो गये, बड़े हर्ष की बात है। विज्ञापन और क्रोड-पत्र जो चाहें छपवाइए। विज्ञापन ऐसे पत्रों में छपवाइए जिन्हें कोई बड़ी रक़म न देनी पड़े। मेरे नाम का भलीभाँति उपयोग कीजिए। 'कर्मवीर', 'प्रताप', 'स्वदेश गोरखपुर', 'मतवाला' आदि पत्रों में अवश्य आपको रियायती दर मिल जायगा। क्रोड-पत्र भी सस्ते में बाँट देंगे।

मैं 'प्रेम-तीर्थ' शीघ्र समाप्त कर दूँगा। इसके बाद 'प्रतिज्ञा' का छपना शुरू हो जायगा। इस वक़्त तो यही दो पुस्तकें हैं। सम्भव है, दिसम्बर तक एक छोटा-सा उपन्यास और हो जाय। उसके बाद कहानियों का एक संग्रह और हो जायगा। मेरी एक पुस्तक प्रेस में लगी रहेगी। आप शहर में रहते हैं। आप शहर के व्यापारियों से मिलकर जॉब का काम ला सकते हैं। बहरहाल प्रेस की सफलता इसी पर मुनहसर है कि अगले दो-तीन महीनों में प्रेस में दो फ़ॉर्म का काम रोज़ होने लगे और जॉब-वर्क भी खूब आने लगे। और सब कुशल है।

भवदीय, प्रेमचन्द

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 29 अगस्त, 1928

भाईजान,

तसलीम। दोनों हैण्डनोट हरसाले ख़िदमत हैं। अगर मुनासिब समझें तो उनकी तजदीद कर दें। अभी बहुत अर्से से मेरी किताबों का भी हिसाब नहीं हुआ। दो साल तो हो ही गये होंगे।

अपनी कहानियों का एक मजमूआ मैंने खुद यहाँ छपवाना शुरू कर दिया है। दस फ़ारम छप गये हैं, शायद एक फ़ारम और हो। उसका नाम रखा है ख़ाके परवाना।

X X X X

आपने मौलाना हसरत के यहाँ से X X न मंगवाया हो तो मंगवा लीजिएगा। उसमें मेरे दो मज़ामीन हैं। राणा प्रताप सन् 1908 में है। इन तीन मज़ामीन के बग़ैर मजमूआ ग़ैर मुकम्मल रहा जाता है। फ़ाइल मंगवा लीजिए तो मैं एक दिन आकर ले आऊं और यहाँ किसी आदमी को रखकर सारे मज़ामीन नक़ल करा लूँ। 8-10 फ़ारम की एक

छोटी-सी चीज़ हो जायगी।

आप इलाहाबाद तो चल ही रहे होंगे। वहीं मुलाक़ात होगी।

घर के लोग आ गये। उम्मीद है आप बख़ैरियत होंगे।

आपका, धनपत राय।



लखनऊ, 29 अगस्त, 1928

प्रिय शिवपूजन सहाय जी,

कृपा पत्र मिला। ब्लाकों का यथासाध्य प्रबंध कर लिया जायगा।

प्रेस पर आपकी कृपादृष्टि होनी ही चाहिए। धर्मखाते का काम है। कुछ मजदूरों की रोटियाँ चलती हैं। आप भी इस यश के भागी हों।

आपको यह सुनकर आनन्द होगा कि मेरी कई कहानियों के जापानी भाषा में अनुवाद प्रकाशित हुए हैं और वहाँ की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। जापानी जनता ने उनका वही सम्मान किया है जो टाल्सटाय और चेख़व की कहानियों का करते हैं। पत्रों में खूब चरचा रही। मेरे पास जो पत्र आया है उसमें लिखा है—Your stories were the sensation in the month of June.

आशा है, आप सानन्द हैं।

भवदीय, धनपत राय।



माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 31 अगस्त, 1928

प्रिय केशोराम जी,

आपके अत्यन्त स्नेहपूर्ण और उत्साहवर्द्धक पत्र के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि 'मुक्ति मार्ग' पसन्द की गयी और यह कि मिस्टर सातो 'मन्त्र' से संतुष्ट हैं। हाँ, कहानी का 'ज़माना' वाला रूप विशाल भारत के बाद लिखा गया था। मैंने वो कहानी एक कहानी-सम्मेलन में पढ़ी थी और स्वभावतः एक नाटकीय स्थल पर पहुँचकर रुक गया। मैंने महसूस किया कि उसको और आगे चलाना श्रोताओं के धैर्य की परीक्षा लेना होगा।

हाशिये में जिन किताबों पर निशान लगा है उन्हें आपको भेजने के लिए मैंने अभी-अभी अपने प्रकाशकों को निर्देश दिया है। वे आपको यथासमय मिल जायेंगी। हाँ आप ऐसी ही कहानियाँ लें जो सभी को पसन्द आयें।

आपका नाम माधुरी की काम्प्लीमेण्टरी लिस्ट में लिख लिया गया है। जब आपको थोड़ा अवकाश हो जापानी चिन्तन और जीवन के किसी पहलू पर कुछ पंक्तियाँ घसीट दिया करें। हमारे पाठक उसका बहुत स्वागत करेंगे। माधुरी का एक विशेषांक 10 सितम्बर को निकल जायगा। उस अंक से माधुरी आपको बराबर मिलती रहेगी।

हिन्दुस्तान का साहित्यिक जीवन बड़ा हौसला तोड़ने वाला है। जनता का कोई सहयोग नहीं मिलता। आप चाहे अपना दिल ही निकालकर रख दें, मगर आपको पाठक नहीं मिलते। शायद ही मेरी किसी किताब का तीसरा संस्करण हुआ हो। कुछ तो अभी पहले ही संस्करण में हैं। हमारे किसान ग़रीब हैं और अशिक्षित हैं और बुद्धिजीवी यूरोपीय

साहित्य पढ़ते हैं। घटिया साहित्य की बिक्री बहुत अच्छी है। मगर न जाने क्या बात है कि मेरी किताबें तारीफ तो बहुत पाती हैं, मगर बिकतीं नहीं। हमारे विशेषांक में आपको मेरी एक कहानी मिलेगी। मैं जानना चाहूँगा कि आपको वह कैसी लगी।

इस प्रान्त में अब तक वर्षा नहीं हुई। अकाल का प्रेत घूर रहा है। बार-बार की बुरी फसल ने हालत और भी खराब कर दी है।

हमारे हृदयों पर महात्मा गाँधी का एकछत्र साम्राज्य है। हम उन पर गर्व करते हैं। मैं नहीं जानता जापानी जनता उनके बारे में क्या सोचती है। इसी समय, साइमन कमीशन के सामने पेश करने के लिए भारत का एक विधान बनाने के सिलसिले में लखनऊ में एक सर्वदलीय सम्मेलन हो रहा है। मेरा ख़याल है, आप भारतीय राजनीति के सम्पर्क में होंगे।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका, धनपत राय।



MADHURI OFFICE,
Lucknow, 31-8-1928

Dhanpat Rai, B.A. Sc. (Prem Chand)
My dear kesho Ramji,

Many thanks for your most affectionate and encouraging letter. I was glad to know that 'Mukti Marg' was well received and that Mr. Sato is satisfied with 'Mantra.' Yes, the Zamana version of the story was contributed after 'Bishal Bharat'. I read the story in a short-story conference and naturally stopped drammatically. I felt it would be trying the patience of the audience with any further narration.

I have just directed my publishers to send you the books marked on the margin. You will get them in due time. Yes, you may take only such stories as have some universal appeal.

Your name has been registered on the complimentary list of the 'Madhuri'. You may just scribble few lines at your leisure on any aspect of Japaneses thoughts and life. That would be highly welcome to our readers. A special annual number of 'Madhuri' will be out by the 10th of September. You will continue to receive it from that issue.

The literary life in India is so discouraging. There is no public response. You may put your heart out, but your readers don't have. Hardly any of my works has seen the third edition. Some are still in the first. Our peasantry is poor and ignorant and intelligentia go in for a ready sale but somehow my writing thought highly praised are hardly purchased.

You will find in our special a story from me. I would like to know what you tnink of it.

I am amused to learn you consider my style flawery. I write the simplest language in Hindi and this is one of my credentials. I shall, however, try to be simpler.

We have yet had no rain in this province. The spectre of a famine is staring in the face. A succession of bad harvests have made the situation worse.

Mahatma Gandhi reigns supreme over our hearts. We are proud of him. I don't know what Japanese people think of him. Just at present an All Parties Conference is being held at Lucknow to draw up a constitution for India to be presented before the Siman Commission. I hope you are in touch with Indian politics.

With best wishes,

Yours most sincerely, Dhanpat Rai

●●

माधुरी कायालय, लखनऊ, 22-9-1928

प्रिय पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी,

आपका पत्र मिला। व्यास जी का पत्र पहले मिला था। अब तक यही सोचता रहा क्या जवाब दूँ। इस तरफ़ मेरी जितनी कहानियाँ निकली हैं वे बहुत थोड़ी हैं। दो तो 'विशाल भारत' में और एक कहीं और। हाँ, उर्दू में 4, 5 कहानियाँ लिखी हैं। 'माधुरी' में छपी कहानियों का राइट नवलकिशोर प्रेस को है। 'विशाल भारत' की 'मन्त्र' नामक कहानी मुझे पसन्द है। उसका तो जापानी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया। 'मन्त्र' की दूसरी कॉपी 'ज़माना' में छपी है। वही पाठ मुझे पसन्द है। एक कहानी और है जो अब तक किसी संग्रह में नहीं है, मगर वह मुझे पसन्द नहीं। 'माधुरी' के विशेषांक में एक कहानी है, उस पर भी 'माधुरी' का राइट है। उर्दू की कई कहानियाँ हैं, पर उनका अनुवाद कौन करे ? व्यास जी पुस्तक एजेंसी या दुलारेलाल या भार्गव बुक डिपो, काशी से ले सकते हैं और क्या लिखूँ !

क्या आप आजकल काशी ही में हैं ?

लाहौर के एक सज्जन कहानियों का एक संग्रह छपवा रहे हैं। उसमें प्रायः सभी की एक-एक, दो-दो कहानियाँ हैं। सेठ जी इसके प्रकाशक क्यों नहीं बन जाते ? ख़र्च सब दूसरा देगा। उन्हें केवल प्रकाशक बन जाना पड़ेगा। बिक्री पर अपना कमीशन काटकर उन्हें जो कुछ मिले, दे दें।

शेष कुशल है।

आपका, धनपत राय।

●●

लाहौर, 24 सितम्बर, 1928

श्रीयुत मुंशी प्रेमचन्द जी, नमस्ते !

ख़त मिला। ब्लॉक के लिए गंगा आर्ट प्रेस को दिशा दिया गया है। हो सके तो

आप भी ज़रा दरयाफ़्त करने की तकलीफ़ गवारा करें। 'राम-चर्चा' की किताब सिर्फ़ तीन कापियाँ रह गयी हैं। उम्मीद करता हूँ कि पिछली तारीख़ को इर्साल (प्रेषित) कर दूँगा। सत्तर कापियाँ 'ख़ाके-परवाना' मोसूल (प्राप्त) हुई। क़ीमत ज़्यादा ही है याकि उस तरफ़ रिवाज़ होता है कि ऊपर जो क़ीमत लिखी होती है, उससे आधी क़ीमत चार्ज करते हैं। मतला करें कि 100 कापियों की फ़रोख़्त पर क्या कमीशन देंगे ? 'ख़्वाबो-ख़याल' की क़ीमत—इसकी लिखाई-छपाई बिल्कुल मामूली और क़ीमत बहुत ज़्यादा है। कम-से-कम पंजाब में तो क़ीमतें कम रखी जाती हैं।

आज इश्तिहार दे दिया गया है। मुफ़स्सल (विस्तारपूर्वक) कमीशन वग़ैरा से मुत्तला (सूचित) करेंगे, ताकि इसकी फ़रोख़्तगी का अच्छा इन्तज़ाम कर सकूँ। क़ीमत इसकी वाक़ई बहुत ज़्यादा रखी गयी है। जवाब से जल्दी मुत्तला करें। बाक़ी ख़ैरियत, ज़्यादा आदाब।

सोमप्रकाश साहनी।



दरियाबाद, बाराबंकी, 28 सितम्बर, 1925

बन्दानवाज़,

तसलीम। आपकी 'चौगाने हस्ती' को ख़त्म किये कई हफ़्ते हो चुके। जी बहुत था कि 'हमदर्द' के लिए खुद ही रिव्यू लिखूँगा लेकिन जिस तफ़सील से लिखने को जी चाहता था उसकी फुर्सत न मिलना थी न मिली। आख़िर आज हारकर एक दास्त के पास भेज देता हूँ कि वह मेरी मर्ज़ी के मुवाफ़िक़ रिव्यू कर दें।

'बाज़ारे हुस्न' की सैर अलबत्ता अभी तक नहीं की। आपसे यह दरयाफ़्त करना भूल गया था कि वह मिलेगी कहाँ ?

एक ड्रामे का मुजमल[1] (संक्षिप्त) प्लाट अर्से से ज़ेहन में है। आपसे बेहतर इसे कौन लिखेगा। ऐसा हो कि स्टेज पर ज़रूर आ सके। आप नाम ही से सारे प्लाट को समझ लेंगे—'तिलिस्मे फ़िरंग' या ज़्यादा सादा व आमफ़हम नाम 'गोरी बला'। बस वही जान सेवकवाला कैरेक्टर ज़रा खूब खोलकर दिखा दिया जाये। नेहरू रिपोर्ट और लखनऊ कान्फ्रेंस के सिलसिले में मुझे पूरी तरह अन्दाज़ा हुआ कि हमारे यहाँ के बड़े-बड़े आज़ादख़याल भी अपनी सारी जंग 'अँग्रेज़' के ख़िलाफ़ महदूद रखना चाहते हैं, न कि 'अंग्रेज़ियत' के ख़िलाफ़ ! अंग्रेज़ को निकालकर खुद अंग्रेज़ियत के रंग में ग़र्क़ हो जाना चाहते हैं। अंग्रेज़ियत के सिस्टम की बुराई अब तक हमारी समझ में नहीं आई है। पांडेपुर वाली तरकीबें और जान सेवक वाले उसूले ज़िन्दगी सारे हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों के हाथों फैलाने की फ़िक्र में लगे हुए हैं ! इस ज़ेहनियत को पूरी तरह expose करना है।

इस रंग के ड्रामे को आपसे बेहतर कौन लिख सकता है और आप चाहें तो बहुत जल्द लिख डाल सकते हैं। ज़्यादा तसलीम।

मौलवी अब्दुल माजिद।



Fategarh, 3-10-1928

Jagat Narain B.A., LLB., M.R.A.S., (Advocate)

My dear Premchandji

Having read most of your Urdu books the other day I had an occasion to read your 'Rang Bhoomi'. I read it once, twice and over again in order to appreciate in my own humble way the greatness of your writings. I do not know, if it will be quite proper for me to make any suggestion to you. The book has acquired a popularity in Hindi which is second to none. But I am of opinion that like the 'Gora' of Rabindra Nath Tagore, it should be translated into English. If only the English translation is published in a periodical like the 'Modern Review', the book will acquire a popularity outside the circle of Hindi reading public also, a popularity acquired by 'Gora' itself. If you permit I might undertake the translation and the publication of the said translation.

With best regards,

Yours as ever, Jagat Narain

P.S.—With the greatest hesitation I beg to offer a criticism of the book. In the concluding portion of the wonderful masterpiece, the death of vinai Singh makes the book unnecessarlty tragic. It would be presumptuous on may part to remind you that the aim of a true poetry or prose-poetry is to translate into words the infinite of human experiences, feelings, desires and ideals. Life appears as a play thing to the child, to the grown up man as a place of work, where he occupies himself with the 'matter of-fact' and sees only the material realities of existence. A time however comes when this 'busy little man' begins to hear the voices from within, and begins to think that what he has been accustomed to regard as the only reality is not really so, and that there are more things in heaven and earth than his narrow philosophy dreamt of. This is the period in which the man, not yet having known the reality, and at the same time burning with an intense longing to search it, and to obtain it, grows gloomy. He begins to doubt himself, his surroundings, his capacities and powers, as also his ultimate destiny. He doubts the existence of the Supreme and ultimate goodness of the universe. He can hardly realise that God is bliss and that there can be no ultimate sorrow. This is the state of extreme restlessness where a man feels that the life is a misery. Tragedy occupies this third stage of a thinker's life. But this is not the condition of a master. This is unreal and is not the work of a man, who has known himself

and his latent powers and who has realised that the culmination of life is not misery, but bliss and that the end is not failure but victory.

It is impossible for a really good man ever to perish. Tragedy is, as you have rightly shown, the outcome of the play of various warring elements in the complex human life, all of which may be working with the best of intentions. But the Supreme power that guides human life, all of which may be working with the best of intentions. But the Supreme power that guides human destiny will not let the really good perish, even in one life time.

Your book at its close leaves such a feeling behind. It leaves an impression of dismay. If only Vinai had been wounded and lived after a prolonged illness to get married to Sophia, I venture to suggest that the effect of the book would have been better and it would be in keeping with the reality and the eternal laws of God. Both could then have been employed with Ranis Janhvi and Indu to do the Seva work, so rightly cherished by you as the ideal of the book.

A friend poins out to me that the death of Vinai is necessary to bring home to the Indian Reader the utter misery and helplessness of Indians under the British Raj. I can not agree to this. Your book is a book not for the guidance and inspiration of contemporary political parties and workers, but comes out of the contemporary political parties and workers, but comes out of the depths of human heart, exploring every avenue of human experience and feeling, and translating them into words, and thus making it a sourse of delight and inspiration for all time to come. It has to remain a true picture of what is human and what is the ideal of humanity, through the varying circumstances and conditions of future generations. Considerations like this can have therefore no place in a book like yours.

Jagat Narain.



लखनऊ, 7 अक्तूबर, 1928

भाईजान,

तसलीम। आज कानपुर आने का इरादा था। इसलिए ख़त न लिखा था। लेकिन चंद ऐसे काम आ पड़े कि आना न हुआ। 'ख़ाके परवाना' का इश्तहार मैंने ज़माना में देखा। अगर रीडिंग मैटर के बीच में एक सुफ़हा छपवाकर सिलवा दें तो शायद ज़्यादा मुफ़ीद नतीजा पैदा हो। आइन्दा जैसी आपकी राय। मैंने एक इश्तहार तैयार किया है। आप अगर उसे मआसिराना[1] ताल्लुक़ात की बिना पर दो चार अख़बार में छपवा सकें तो कहिए उसे भेज दूँ। तीन इंच दो इंच में आ जायेगा। 'चौगाने हस्ती' आ गयी है। आऊंगा तो लेता आऊंगा।

' कोर्ट में मुन्तख़ब[2] हो जाने पर सच्चे दिल से मुबारकवाद। आपने मुझे इत्तला तक न दी। वाह !

अकबर नंबर और राणा प्रताप, यह दो मज़ामीन अभी तक मुझे नहीं मिले। किताबत हो रही है। मौजूदा मज़ामीन जल्द ख़त्म हो जायेंगे। यह दोनों मज़ामीन आप मौलाना हसरत मोहानी से मंगवा लें तो मेरी किताब मुकम्मल हो जाये। वना अधूरी पड़ी रहेगी। नक़्शे क़दम[3] क्या काम देगा लिखिएगा।

आपका तजवीज़कर्दा[4] काग़ज़ रजिस्टर्ड पहुँच गया था। मशकूर हूँ। अब आपकी तबीयत कैसी है। आप तो कान में तेल डालकर बैठ जाते हैं और यहाँ कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि एक आध बार आपका ज़िक्र न आ जाता हो।

आपका, धनपत राय।

1 समसामयिक, 2. चुने जाने, 3. चरण-चिन्ह, 4. प्रस्तावित।



भारत, साप्ताहिक पत्र, लीडर प्रेस,
प्रयाग, 8-10-1928

मान्यवर महोदय,

आपकी भेजी हुई 'बोहनी' के लिए अनेक धन्यवाद। आशा है, आप आगे भी कृपा करते रहेंगे। कृपया अपना फोटो भी ब्लाक बनवाने के लिए भेज दीजिए। नवजात 'भारत' की अभी यह तो सामर्थ्य नहीं है कि वह आपको पुरस्कार दे सके। फिर भी वह अपनी शक्ति के अनुसार सुदामा के चावल की तरह आपकी सेवा करने में अपना गौरव समझेगा। यदि आप यह लिख भेजें कि यह तुच्छ भेंट प्रति कॉलम कितनी होनी चाहिए, तो बड़ी कृपा होगी।

भवदीय, केशवदेव शर्मा (सहायक सम्पादक)



श्रीयुत प्रेमचन्द जी
25, मारवाड़ी गली, लखनऊ

श्री राधेश्याम शर्मा प्रेस, बरेली
9-10-1928

श्रीमान् बा. प्रेमचन्द जी, जय रामजी की।

आशा है कि आप प्रसन्नता से होंगे। बहुत दिनों से आपका कोई कृपा-पत्र नहीं मिला। कई मास हुए, पिताजी ने आपको एक पत्र लिखा था। उसका उत्तर भी आपने नहीं दिया। क्या कारण है ? ऐसी रुष्टता क्यों ?

बरेली जब आप पधारे थे, उस समय जो स्कीम पास हुई थी, उसका कार्य अभी तक कुछ नहीं हुआ है। शीघ्रता करनी चाहिए।

योग्य सेवा से सदैव स्मरण रखिएगा।

कृपा-भाव बनाये रहिएगा।

आपका, घनश्याम शर्मा।



कानपुर, 19 अक्टूबर, 1928

भाई साहब,

कार्ड ग्रामी आया। इस दरमियान मैं अक्सर ग़ैरमौजूँ रहा, मगर अब अच्छा हूं; हालाँकि अब कुछ और ग़ैरदुरुस्त रहूँगा। मगर ख़ैर, यह तो दुनिया का कारखाना है। आप इश्तहार भेज दीजिए, मैं रीडिंग मैटर में दे दूँगा, दूसरे पर्चों में भी भेज दूँगा, जो इस वक़्त किसी एक तरफ़ पूरी तरह से काम नहीं होगा। थोड़ा-थोड़ा बहुत कुछ करना होता है। 'अकबर'-नम्बर और राणा प्रताप की जिल्द का ज़िक्र करता हूँ। कोर्ट की मेम्बरी भी मुफ़्त में क़ायम रही, हालाँकि बाबू रामप्रसाद और बाज़ दीगर अहबाब रह गये मेम्बर। इसके बाबत कुछ खयाल नहीं रहा, माफ़ कीजिएगा। आज आपकी मुबारकबाद का शुक्रिया करता हूँ। आपकी मोहब्बत से जो इत्मीनान क़ल्ब मुझे रहता है, इसका इज़हार ज़बान से नहीं हो सकता। परसों 7 अक्टूबर की सुबह बरखुरदासर के लड़का पैदा हुआ है। मुझसे कहा है कि मैं इसकी ख़बर ज़रूर लिख दूँ। यह इत्तला दे रहा हूँ। वालिद के बाद हममें एक नस्ल आगे बढ़ गया था, मगर मेरा शुमार अब Back में हो गया। कल एक काम के लिए इलाहाबाद जा रहा हूँ। किसी रोज़ लखनऊ आने का इरादा है। अपना नया पता लिखें, ताकि तलाश में ज़हमत न हो। आप जब चाहें, आयें। ख़ुशी होगी।

बच्चों को बहुत-बहुत दुआ।

आपका, दयानारायण।



Vishal Bharat Office, 91 Upper Circular Road,
Calcutta, Dated 10.10.1928

My Dear Prem Chand ji,

I am getting rather impatient. You have not yet sent two copies of your photograph. Nor have you sent me some short story books. You promised to write notes on yourself but you haven't yet sent them ! Now please do all these things. I didn't very much like Prof. Gaur's sketch of yourself. There was no personal touch in it. I want the notes full of personal touches-with aneedotes and stories. I would like to know about your Maulvi Saheb and about your first attempts, about the people who encouraged you, about your conversion from Urdu to Hindi and so many other things. Please note down these things in the way of a letter to me in English so that I may make use of them for Tara Chand Roy also. Do sit down for a couple of hours for me. Surely I deserve as much time from you as Mote Ram Shastri !

By the way I would like to kill Mote Ram as early as possible-I do not believe in killing by violence. I would like to leave him to oblivion and wouldn't advertise him any more.

Please give an early reply with two photographs. I shall go home on 20th Oct. in Durga Puja vacations. Before that I want the material, notes,

photographs etc. I wish we could meet. Can you come to Firozabad just for a day ? It is only 7 hours journey from Lucknow. I wish, I could come to Lucknow, but if I cannot then you should. We shall spend a happy day together.

Yours Sincerely, B.Das

Anand Rao Joshi wants a sketch of yourself. I wish to give a good sketch. There is no use giving Gaur's, though I am sending it to him.

●●

'माधुरी' कार्यालय, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 16-10-1928

प्रिय महाशय,

कृपा-पत्र के लिए धन्यवाद। विशेषांक में प्रकाशित आपके लेख के चित्रों को वापस कर रहे हैं। गत वर्ष के बंगीय रंगमंच के चित्र भी मिलने पर भेज दिये जायेंगे।

श्री वाचस्पति जी पाठक की कहानी स्वीकृत है। यह परिशिष्टांक 4-5 रोज़ के भीतर ही सेवा में पहुंचेगा। विशेष विनय, कृपा बनी रहे।

भवदीय, प्रेमचन्द (सम्पादक)

(पुनश्चः बंगीय रंगमंच के अप्रकाशित चित्र भेजे जा रहे हैं।)

●●

The Modern Review, 91 Upper Circular Road,
Calcutta, 17.10.1928

My dear Prem Chandji,

Many thanks for your letter. I am going home on 20th and will let you know what arrangement would be best for our meeting. I intend to break my journey at Allahabad on my return journey and so it may not be possible for me to come to Lucknow but I shall try.

I am asking Sunderlalji to come to Firozabad for a day. He is a great admirer of your writings and specially likes your non-communal views. You may have noticed that I have not published a single thing in favour of communalism in my paper. Not only that, I have condemned it many a time. In the first number I wrote that communalism is a sin for which there is no प्रायश्चित. I am so glad that we are quite agreed here. Sunderlalji is even stronger on this question. If he agrees to come to Firozabad. I shall request you to come, if not then I shall try to come to Lucknow.

You will have to write one short story for our 'स्वराज्यांक' of January. Please send it within one month. Something in the line of 'प्रेमाश्रम' will be very welcome. But I shall not dictate to you. You are an artist and must be left free to write as you like. Tara Chand Roy liked you story मंत्र very much but he is of opinion that the story should have ended with एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ, and I agree with him. Would you recommend some stories

of Chehkow or some other writer for translation. We are publishing Mumu of Turgenev in this issue.

Yours Sincerely, B. Das.

Nigam's aticle on Guptaji, which was recommended by you, is really excellent—the best that has been written about him.

Can you kindly write reminiscences about some Urdu or Hindi writers or poets ?

Address—Firozabad, Dt. Agra

●●

91 अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता
17 अक्टूबर 1928

प्रिय प्रेमचंद जी,

पत्र के लिये अनेक धन्यवाद। मैं बीस तारीख को घर जा रहा हूँ और आपको सूचना दूँगा कि हमारी मुलाक़ात का सबसे अच्छा तरीका क्या होगा। लौटते वक्त में इलाहाबाद में रुकने का इरादा रखता हूँ, इसलिये शायद मेरा लखनऊ आना मुमकिन न हो पर मैं कोशिश करूँगा।

मैं सुन्दरलाल जी को एक दिन के लिये फ़ीरोज़ाबाद आने को कह रहा हूँ। वे आपकी रचनाओं के बहुत बड़े प्रशंसक हैं और आपके असाम्प्रदायिक विचारों को विशेष रूप से पसंद करते हैं। आपने देखा होगा कि मैंने अपने पत्र में एक भी चीज़ साम्प्रदायिकता के समर्थन में नहीं छापी। इतना ही नहीं मैं बहुत बार उसकी तीव्र आलोचना कर चुका हूँ। पहले अंक में ही मैंने लिखा था कि साम्प्रदायिकता एक ऐसा पाप है जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। मुझे बड़ी खुशी है कि इस प्रश्न पर हम दोनों बिलकुल सहमत हैं। सुन्दरलाल जी के विचार तो इस प्रश्न पर और भी दृढ़ हैं। अगर वे फ़ीरोज़ाबाद आना मंजूर कर लेते हैं तो मैं आपसे भी आने की प्रार्थना करूँगा और अगर आप नहीं आ सकते तो फिर मैं लखनऊ आने की कोशिश करूँगा।

हमारे जनवरी के स्वराज्यांक के लिये आपको एक कहानी लिखनी होगी। कृपया उसे महीने भर के अंदर भेज दें। प्रेमाश्रम के ढंग की कोई चीज़ बहुत अच्छी रहेगी। लेकिन मैं अपनी बात आपके ऊपर लादना नहीं चाहता। आप कलाकार हैं और जो मन चाहे लिखने के लिये आपको स्वतंत्र छोड़ना ही ठीक है। ताराचंद राय को आपकी कहानी 'मंत्र' बहुत अच्छी लगी पर उनका खयाल है कि कहानी 'एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ, के साथ खत्म हो जाना चाहिये थी और मैं उनसे सहमत हूँ। आप क्या चेखोव या दूसरे किसी लेखक की कुछ कहानियाँ अनुवाद के लिये सुझायेंगे। तुर्गनेव का 'मूमू' हम लोग इस अंक में छाप रहे हैं।

आपका, बनारसी दास

●●

दरियाबाद, बाराबंकी, 25 अक्टूबर 1928

करमगुस्तर,[1]

'खाके परवाना' पहुंच गई थी। शुक्रिया अदा करना अलग रहा आज के क़ब्ल रसीद तक लिखने की तौफ़ीक़ न हुई। बहरहाल रसीद व शुक्रिया आज दोनों अर्ज हैं। रिव्यू भी अगर खुदा को मन्जूर है कुछ रोज़ में निकल जायेगा।

'चौगाने हस्ती' मैंने एक मुसलमान नौजवान दोस्त को दे दी थी जो कलकत्ता यूनिवर्सिटी के ताज़ा एम. ए. (हिस्ट्र) हैं और उर्दू अदब का भी अच्छा खासा मज़ाक़ रखते हैं। उनसे और कई किताबों पर भी रिव्यू लिखवा चुका हूँ। आपकी किताब जब उनके पास भेजी तो मुख्तसरन्[2] बाज़ Points लिख दिये थे कि इन पहलुओं को रिव्यू में दिखायें। बदक़िस्मती से उन्होंने किताब के मुताल्लिक़ एक बिल्कुल दूसरी राय क़ायम की और आज खुदा खुदा करके रिव्यू लिखकर भेजा। मैं इस रिव्यू को बिजिसही[3] आपकी ख़िदमत में रवाना कर रहा हूँ। ज़ाहिर है कि मैं इससे मुत्तफ़िक़[4] नहीं और इसलिए इसे शाया भी न कराऊँगा। ताहम मैं चाहता हूँ कि आपके नोटिस में यह बात आ जाये कि मुसलमानों का एक तबक़ा इस किताब को इस पहलू से भी देख रहा है। मैं रिव्यू-निगार के दावे को हरगिज़ तस्लीम नहीं करता। मुझे कहीं भी Anti-Islamism और Aggressive क़िस्म की हिन्दुइयत नज़र नहीं आई (हालांकि मैं रिव्यू-निगार साहब से कहीं ज्यादा fanatic क़िस्म का मुसलमान हूं)। ताहम आपके इल्म में यह ज़रूर आ जाना चाहिए कि एक ज़मात के नज़दीक आपकी इबारत से ऐसा मफ़हूम[5] भी निकलता है।

बाद मुलाहज़ा यह रिव्यू वापस फ़रमा दिया जाये। मैं उन साहब को वापस करके किसी दूसरे साहब से लिखवाऊँगा। खुद लिखने की फुर्सत कहाँ से निकालूँ। ज़्यादा तसलीम।

अब्दुल माजिद।

1. मेहरबान, 2. संक्षेप में, 3. ज्यों का त्यों, 4. सहमत, 5. आशय।



213, दूसरा होस्टल, हिन्दू विश्वविद्यालय
श्रीकाशी, 10-11-28

श्रीमन् !

'रंगभूमि' की सफलता के उपलक्ष्य में आपको बधाई देने में शायद देर की, परन्तु यह केवल इसलिए कि बधाइयों की भीड़ में इन पंक्तियों पर आपकी दृष्टि न जाती। अस्तु...

आशा है कि एक अपरिचित की ओर से यह हार्दिक बधाई आप अब स्वीकृत करेंगे।

मैंने तो 'रंगभूमि' को पहली ही बार पढ़कर इस सम्मान की कल्पना कर ली थी, यद्यपि उस समय हिन्दुस्तानी अकादमी का अस्तित्त्व ही न था। हाँ, मेरी कल्पना हिन्दी के इस अँधाधुंधी के युग में—इतना शीघ्र वास्तविकता का रूप ले सकेगी, ऐसी मुझे आशा न थी, क्योंकि हिन्दी के समालोचकों को तो 'बंग भाषा पाण्डित्य-प्रदर्शन' से अवकाश कम मिलता है न ?

हिन्दी लेखकों की प्रशंसा में वे यदि अपने अमूल्य तथा पवित्र समय का कोई क्षण व्यय कर डालें, तो लोग यह न समझेंगे कि इन्होंने विदेशी साहित्य देखा तक नहीं ?

रईसी का दम भरने वाला यदि बढ़िया-से-बढ़िया इत्र को सूँघकर भी नाक न सिकोड़े, तो लोग उसकी विलासानुभूति पर सन्देह न करने लगेंगे ?

इधर कुछ भारी-भरकम गणितज्ञ 'रंगभूमि' और 'वैनिटी फ़ेयर' में सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास में अपनी प्रतिभा का सदुपयोग किया करें, मानव-चरित्र की जटिलता को समीकरणों की सहायता से सुलझाने की कसरत करते रहें, करने दीजिए–मनोविनोद की यह भी अच्छी सामग्री रहेगी।

बड़े-बड़े निराशावादी कलाविद् साहित्यिक आल्स की चोटी पर चढ़कर कलाबाज़ी किया करें–हर्ष है 'रंगभूमि' पर उन्होंने कलाबाज़ी नहीं दिखाई, अन्यथा दर्शकों का ख़ासा मनोरंजन हो सकता–परन्तु 'रंगभूमि' को तो अपना स्थान मिलना ही था। अब नहीं तो समय आने पर–

हर्ष है कि अकादमी ने अपना कर्तव्य पालन करके अपनी परिमार्जित रुचि का परिचय दिया है।

धृष्टता को क्षमा करके यह भेंट स्वीकृत कीजिएगा।

सविनय, आनन्दमोहन वाजपेयी

●●

प्रिंसिपल ऑफ़िस, यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कॉलेज,
अलीगढ़, 12-11-1928

मुकर्रमी,

तसलीम। मुझे आपसे जाती तौर पर शरफ़ेनियाज़ (परिचय का सौभाग्य) हासिल नहीं है, लेकिन मैं बहुत अर्सा से आपकी दिलनशीं (हृदयंगम) तसानीफ़ (रचनाओं) और अफ़सानों को शौक से पढ़ता रहा हूँ और आपके अदबी ज़ौक (साहित्यिक रुचि) और काबलियत का मद्दाह (प्रशंसक) रहा हूँ। मैंने अभी हाल में अपने मोतरिम दोस्त सैयद सज़्ज़ाद हैदर साहब के तवस्सत (माध्यम) से आपका नया नाविल 'चौगाने हस्ती' पढ़ा। मैं इस तस्नीफ़ पर आपको निहायत ख़लूस और गर्मजोशी से मुबारकबाद देता हूँ। अंग्रेज़ी और दूसरे योरोपियन मुमालिक़ (देशों) के अफ़साने बहुत बड़ी तादाद में पढ़े हैं। मैं बशुक (विश्वास) के साथ कह सकता हूँ कि आपका यह नाविल उनके सफ़े अव्वल के नाविलों से किसी तरह कम नहीं। गुज़श्ता चन्द माह में हिन्दुस्तान की Creative genius ने दो जबरदस्त चीज़ें पैदा की हैं–एक, नेहरू रिपोर्ट और दूसरी 'चौगाने हस्ती'। मेरी ख़्वाहिश और इस्तिदाह (प्रार्थना) है कि आप उर्दू अदब की ख़िदमत और सरपरस्ती को ज़रूरी रखें। अगर आपने इस तरफ़ से अपनी तवज्जो को हटा लिया तो यह न सिर्फ़ उर्दू अदब पर जुल्म होगा, बल्कि ख़ुद अपनी ग़ैरमामूली अदबी काबलियत के साथ नाशुक्री होगी।

उम्मीद है कि आप इस पुरखुलूस और दिली हदियाए तहनियत (हार्दिक बधाई) को कुबूल करेंगे।

नियाज़मन्द, ख़्वाजा गुलाम उल-सैयदेन।

●●

अलीगढ़, 12 नवम्बर, 1928

मुकर्रमी,

तसलीम। मुझे आपसे ज़ाती तौर पर शर्फ़े-नियाज़[1] हासिल नहीं है लेकिन मैं बहुत अर्से से आपकी दिलनशीन तसानीफ़ और अफ़सानों को शौक़ से पढ़ता रहा हूँ और आपके अदबी ज़ौक़ और क़ाबलियत का मद्दाह[2] रहा हूँ। मैंने अभी हाल में अपने मुहतरम[3] दोस्त सैयद सज्जाद हैदर साहब के तवस्सुत[4] से आपका नया नाविल 'चौगाने हस्ती' पढ़ा। मैं इस तसनीफ़ पर आपको निहायत खुलूस और गर्मजोशी से मुबारकबाद देता हूँ। मैंने अंग्रेज़ी और दूसरे योरुपी ममालिक के अफ़साने वहुत बड़ी तादाद में पढ़े हैं और मैं बुसूक[5] के साथ कह सकता हूँ कि आपका यह नाविल उनके सफ़े अव्वल के नाविलों से किसी तरह कम नहीं है। गुज़िश्ता चन्द माह में हिन्दुस्तान की Creative genius ने दो ज़बर्दस्त चीज़ें पैदा की हैं—एक नेहरू रिपोर्ट दूसरी चौगाने हस्ती। मेरी ख़्वाहिश और इस्तदुआ[6] है कि आप उर्दू अदब की ख़िदमत और सरपरस्ती को जारी रखें। अगर आपने इस तरफ़ से अपनी तवज्जो को हटा लिया तो यह न सिर्फ़ उर्दू अदब पर जुल्म होगा बल्कि खुद अपनी ग़ैर-मामूली अदबी क़ाबलियत के साथ नाशुक्री होगी।

उम्मीद है कि आप इस पुरखुलूस और दिली हदियए तहनियत[7] को क़बूल करेंगे।

नियाज़मन्द, ख़्वाजा गुलाम उल-सैयदैन।

1 भेंट-मुलाक़ात, 2. प्रशसंक, 3. आदरणीय, 4. माध्यम, 5. विश्वास, 6. प्रार्थना, 7. श्रद्धांजलि।



ग्वालमण्डी, लाहौर, 20 नवम्बर, 1928

मुक़र्रमी मुहतरमी,

तसलीम। आपके खत का जवाब देर से दे रहा हूँ। मसरूफ़ियत ज़्यादा रही है। आप 50 जिल्दें भेज दीजिए। बाद वज़ा कमीशन किताबें फ़रोख्त करके रक़म भेज दी जायगी। कोई और भी आपकी उर्दू किताब हो तो वो भी साथ भेज दीजिए। मैं हर खिदमत के लिए तैयार हूँ।

यूसुफ़ हुसैन।



रजिस्ट्रार ऑफ़िस, मुस्लिम यूनिवर्सिटी,
अलीगढ़, 21 नवम्बर 1928

मुक़र्रमी, सलाम।

आपका ख़त मिला। यादावरी के लिए शुक्रगुजार। मैंने आपका आफ़साना 'चौगाने हस्ती' पढ़ा। मैं आपको एक ऐसी अज़ीम-उश्-शान (महान्) तस्नीफ़ (रचना) पर सच्चे दिल से निहायत मुअद्दबाना (अदब के साथ) मुबारकबाद पेश करता हूँ। आपकी तसानीफ (रचनाओं) के मुतल्लिक़ कोई राय क़ायम करना छोटा मुँह बड़ी बात है। ये उर्दू का एक वेहतरीन नॉविल है। अगर्चे 'बाजारे-हुस्न' भी आपकी एक मार्के-आला तस्नीफ़ है, लेकिन 'चौगाने हस्ती' से मैं उसे बेहतर तसव्वुर नहीं करता। अगर 'बाज़ारे-हुस्न' एक मखसूस

तबक़ा (प्रमुख वर्ग), एक महदूद जमात (सीमित वर्ग) की इस्लाह (सुधार) और मुफ़ाद (लाभ) के लिए एक कामयाब सई (सफल प्रयत्न) है, तो 'चौगाने हस्ती' एक क़ौम की बहबूद (उन्नति) और बेहतरी के लिए बेहतरीन क़िताब है। इस सिलसिला में लगी-लिपटी कोई चीज़ नज़र नहीं आती, यही आपकी क़लम की खूबी है। आपने आम जिन्दगी और तर्ज़े-माअशरत और उसकी इस्लाह पर बेहतरीन खयालात पेश किये हैं। इसके बाद कोई गुंजाइश इस सिलसिले में लिखने के लिए नहीं छोड़ी। फिर एक मर्तबा मुबारकबाद पेश करता हूँ।

आपने इस नॉविल को लिखकर क़ौम पर एक बड़ा एहसान किया है। मुझे मालूम नहीं कि मैं इसकी तारीफ़ लिखने में हक़मिनजानिब (अधिकारी) हूँ या ग़लत। आपके तमाम अफ़साने, जो नज़र से गुज़रते रहे हैं, आपकी क़लम को चूम लेने को जी चाहता रहा। ख़ुदा आपकी उम्र दराज़ करे !

ख़ाकसाद, जावेद (अस्पष्ट)
(संभवतः रजिस्ट्रार)



मुसलिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, 21 नवम्बर, 1928

मुकर्रमी,

आपका कार्ड मिला। याद फ़रमाने का शुक्रगुज़ार हूँ। मैंने आपके ख़त का इंतज़ार करके सज्जाद हैदर साहब से 'चौगाने हस्ती' आरियतन्[1] लेकर पढ़ी और मैं आपको एक ऐसी अज़ीमुरशान तसनीफ़ पर सच्चे दिल से निहायत मुअद्दिबाना[2] मुबारकबाद पेश करता हूँ। आपकी तसानीफ़ के मुताल्लिक़ मेरा कुछ अर्ज़ करना छोटा मुँह बड़ी बात है लेकिन फिर भी यह अर्ज़ किये बग़ैर नहीं रह सकता कि मुझे उर्दू में बहुत कम ऐसी उम्दा और कामयाब नाविलें पढ़नी नसीब हुई हैं, बल्कि बाज़ हैसियात की बिना पर ग़ालिबन मैं ग़लत नहीं कहता कि यह उर्दू का सिर्फ़ एक बेहतरीन नाविल है। अगरचे 'बाज़ारे हुस्न' भी आपकी एक मार्कत-उल-आरा[3] तसनीफ़ है लेकिन 'चौगाने हस्ती' उससे कहीं ज़्यादा बढ़ी हुई चीज़ है। अगर 'बाज़ारे हुस्न' एक ख़ास तबक़े, एक महदूद[4] जमात के इस्लाह[5] और मफ़ाद[6] के लिए कामयाब सइ[7] है तो 'चौगाने हस्ती' एक क़ौम, एक मुल्क के बहबूद[8] और बेहतरी की राह में एक कोशिश है जो एक तबक़े की इस्लाह से ज़्यादा मुफ़ीद, ज़्यादा बलन्द एक चीज़ है और इस सिलसिले में लगी-लिपटी बातों में मेरे ख़याल में तमाम वो मसायल[9] आपने पेश कर दिये हैं जो हमारी ज़िन्दगी से मुताल्लिक़[10] हैं और हमारी मआशरत के इस्लाह और कामयाबी के लिए अज-बस[11] ज़रूरी हैं। तफ़सीली राय की इस वक़्त गुंजाइश नहीं। लिहाज़ा मैं एक मर्तबा फिर मुबारकबाद पेश करता हूँ। मुझे अफ़सोस इस अम्र का है कि उर्दू ने अपनी ज़बान के इतने बड़े मुहसिन[12] की तरफ़ से ऐसी बे परवाई बरती है। लेकिन मैं मायूस नहीं हूँ और उम्मीद रखता हूँ कि बहुत जल्द उर्दू को इस गुनाह का कफ़्फ़ारा अदा करना पड़ेगा। मैं उस दिन का इंतज़ार कर रहा हूँ जब आप डा० टैगोर के हम-पल्ला[13] होंगे और नोबेल प्राइज़ के मुस्तहक़ समझे जायेंगे।

इसका अफ़सोस है कि आपको मेरा ख़त देर से मिला, लेकिन इसे क्या कीजिए कि मुझे किताब की इशाअत की ख़बर देर से मिली ? बहरहाल जब आप मजबूर हैं तो मैं भी ख़ामोश हो जाऊँगा। "ख़ाके परवाना" और 'ख्वाबो ख़याल" देखने की आरज़ू बाक़ी है।

'असनामे ख़याली' इन्शाअल्लाह जल्द हाज़िरे-ख़िदमत होगी।

ख़ाकसार, ...क़िदवाई

1 उधार, 2. विनीत भाव से, 3. उच्चकोटि की, 4. सीमित, 5. सुधार, 6. हित, 7. कोशिश, 8. उन्नति, 8 समस्याएं, 9. संबद्ध, 10. नितांत, 11. उपकारक, 12. समकक्ष।



अज़ दारापुर, 23 नवम्बर, 1928

जनाब भाई साहब, किब्ला आदाब !

मैं बाबू ख़ैरुद्दीन के यहाँ उस मौक़े पर तो न जा सका, पर दिवाली की छुट्टी में गया था और उस लड़के बाबत सब बातें दर्याफ़्त कीं। लड़का बहुत होनहार और ख़ूबसूरत और तन्दुरुस्त है। बी. ए. में तालीम पाता है, मगर माँ-बाप नहीं हैं। ख़ानदान बड़ा है, चचा और कई भाई अच्छी जगह पर काम करते हैं। चचा वकील हैं। इस शादी के तय हो जाने में कोई दिक़्क़त नहीं है। दूसरे लड़के और हैं। बलिया ज़िला में हैं और वो सब-जज के लड़के हैं और तालीम पाते हैं। उनकी बाबत मैं खैरुद्दीन से कह आया हूँ कि वहाँ जाकर उनसे दर्याफ़्त करे और एक चक्कर गोरखपुर का लगा लें। अगर बड़े दिन की छुट्टी में हो सका तो मैं ही उनके हमराह गोरखपुर जाऊँगा। वालिदा साहिबा होई में ही हैं और ललन वग़ैरा बनारस में। अगर हो सका तो एक-आध महीना में उनको यहाँ लाने की कोशिश करूँगा। भावजा साहिबा की तबियत का हाल कुछ नहीं मालूम हुआ कि अब क्या हाल है, और कोई ताज़ा हाल नहीं है।

बच्चों को दुआ और प्यार !

ख़ादिम, महताबराय।



29, Muir Hostel, Allahabad, 26.11.28

My dear Prem Chandji,

It is really long since I heard anything from you. Perhaps you will let me have a line from you now and them. I am sending herewith translation of a story of Chirikov, the famous Russian realist. The original is a veritable gem. I wonder if I have been able to render it properly. Will you please publish it as early as it may be possible ? My next story would be Turgenev's 'Dream'.

I am yet unaware of the fate of my story 'Kasauti' translated from Stevenson. I have long waited for its publication. I like that story very much and perhaps I will revise or rewrite it. So, may I have the MS. along with

some other translations of mine from Stevension, which are with you ?

I trust you are doing quite well. Are you not coming to Allahabad recently ? When you were here last you didn't come to see me. Remember me to sit. Krishna Behari Misra.

Very sincerely yours, R.C. Tandon

●●

Prof. Tarachand Roy (Lahore) 27.11.1928

Berlin-Wilmersdorf, den
Hohenzollerndamm 161 B III r.

Dear Premchandji,

Pandit Benarasi Das Chaturvedi wrote to me once that he had requested you to favour me with a copy of each of your works. I am sorry to say that I have not heard from you as yet. I have been reading your excellent 'प्रेम-प्रमोद' with my students and they have all enjoyed the wonderful Short-stories in this collection. I shall be highly obliged to you, if you would kindly let me know what the word 'पौरा' on page 144, line 20 means, and how you construe the sentence in the context, I am sorry that I have not been able to find that word anywhere. Swami Satya Deva and Muni Jina Vijaya, whom I have consulted here, have not made out anything either. It is presumably a word current in your province.

I read sometime back in a journal that your works were going to be translated into English. Have the translations been published ? If so, where and by whom ?

I need not emphasize the fact that you are the greatest Hindi writer or modern times. You have interpreted India as she lives, moves and has her being in our days. You have brought your master mind to bear upon the life-and-death problems of our 'Mother country'. May I request you to give us in the near future the story of your own life cast in the mould of artistic expression and apparelled in the robes of poetic brilliance ?

I have been receiving the 'Madhuri' regularly like other Hindi monthlies, but I am sorry, I have not got the 'विशेषांक' up to now. Will you please see to it that the 'Madhuri' is sent to me without break. I am the only pioneer of Hindi and Indian culture in Berlin and will always be thankful for every sort of help I receive from home in this connection.

I have just returned from wiesbaden, one of the most famous sp as a Germany, where I had been invited to address a gathering of 1500 people in a big hail on Indian culture. I am glad to inform you that the lecture was a

great success. In December I have been invited to speak in the Rhineland. I am trying to contribute my mite to the service of our mother land in foreign countries.

Wishing you best health and success and hoping to hear from you soon.

Sincerely yours, Tarachand Roy.

●●

2 हिवेट रोड, लखनऊ, 15 दिसंबर, 1928

भाईजान,

तसलीम। अबकी ज़माना में ख़ाके परवाना का इश्तहार न था। यह बेइल्तिफ़ाती (बेरुखी; अकृप) क्यों। पूरे सफ़े का न सही, पर एक छोटा सा इश्तहार तो कहीं न कहीं रहना ही चाहिए। वर्ना बिकेंगी कैसे। 'रियासत' में भी आप ही इश्तहार दे दें। बस, एक 3X3 काफ़ी होगा। और तो सब हालात साबिक़ दस्तूर हैं।

आपका, धनपत राय।

●●

नागपुर सिटी, 25th Dec. 1928

Dear Premchandji,

I acknowledge the receipt of your kind letter of the 15th inst. I was exceedingly glad to receive the information I asked for in my previous letters. Be it under strong protest or anything else, I think myself fortunate in that I coult exect the necessary information from you for a purpose, the utility and value of which can not be questioned. I am prepared to bear any wrath or displeasure for such a sacred purpose.

You must have received by Book-post a copy of the printed article, I mean 'सुप्रसिद्ध हिन्दी कथालेखक श्री प्रेमचन्द यांचा परिचय' published in the 'महाराष्ट्र' of Nagpur. I wish you could have sent your information when you received my first letter, so that I would have been able to include the same in this 'परिचय'. However I am going to do so in the article 'श्री प्रेमचंद यांचे चरित्र', which I am going to publish along with the stories. I wish you could oblige me with a copy of your recent photographs to be published along with this चरित्र. How I wish that you could send a copy for my personal use-a copy that I would keep with me as a token of personal appreciation and respect for a distinguished novelist of your type.

I do not know exactly whether your collection of stories entitled 'मोटेराम शास्त्री' has been published or not. I am eager to translate the same before I take-up 'निर्मला'. I wish you could advise me in this connection.

I admit I am not so wellversed in Hindi and that I shall be more careful in studying this language.. I would like to assure you that I was not sorry to

receive your kind suggestion and that I am trying my level best to improve th same. As regards the article 'पूना के आन्दोलन', I would like to say that it wa written probably in August, 1927 and since then, I think, I have made considerable progress in this direction. Please see that all words written i Englsih with in the brackets are omitted and that this article is duly improved May i know when would it be published.

I am, Yours Sincerely, Anand Rao Josh

●●

'माधुरी' कार्यालय नवलकिशोर प्रेस (बुकडिपो)
लखनऊ, 31-12-192

प्रिय शिवपूजन सहाय जी, वन्दे !

कुण्डली मिली। इसके लिए अनुग्रहीत हूँ। मैंने यहाँ एक पुराने पण्डित जी क दिखाया। शायद आप भी उन्हें जानते हों—नीलकण्ठ महाराज। उन्होंने तो कहा है वि कुण्डलियों में कोई खटकने वाली बात नहीं है। आगे दैव जाने। मैं तो कुण्डली को ज़ाब की पाबन्दी ही समझता हूँ। भविष्य किसने पढ़ा है और कौन पढ़ सकता है ? अब आप मुझसे इस विषय में बाबू रामधारीप्रसाद जी के कथनानुसार जो चाहें पूछ सकते हैं औ मुझे भी दो-चार बातें बताने का कष्ट आपको उठाना पड़ेगा, सुनिए—

1. बाबू श्याम जी कै भाई हैं ?
2. उनके पिताजी तो हैं ही, माताजी भी जीवित हैं या नहीं ?
3. रेल के स्टेशन से कितनी दूर घर है ?
4. बाबू श्यामजी की शिक्षा कहाँ तक हुई है ?
5. उन्हें कोई बीमारी तो नहीं है ?
6. उनका कोई फोटो आप भिजवा सकते हैं ?
7. स्वभाव के क्रोधी, घमण्डी तो नहीं और आचरण के शुद्ध हैं या नहीं ? घ की स्थिति कैसी है ?

आप कृपा करके ये बातें लिख भेजिएगा। फिर जब सलाह होगी, हम लोग चलक घर को देख आवेंगे। आपके लेख का इन्तज़ार है। प्रेस तो आप ही का है। आपको फ़िक्र न होगी तो किसे होगी ! खेद यही है कि मैं इन उपकारों से उऋण कैसे हो सकता हूँ शेष कुशल है।

भवदीय, धनपत राय

●●

25 मारवाड़ी गली, लखनऊ, 192

बरादरम,

तसलीम। आज एक कार्ड भेज चुका हूँ। इत्तफ़ाक़ से इस वक़्त मेरे दोस्त पण्डित मातादीन शुक्ल एक ज़रूरत से कानपुर जा रहे हैं। अगर आप जुलाई, 1906 की फ़ाइल और सन् 1908 की फ़ाइल दे दें तो आपको नक़्ल कराने की ज़हमत भी न उठानी पड़े राना प्रताप जुलाई, सन् 1906 में है और विवेकानन्द सन् 1908 में। यह दोनों जिल्दे

आपके दफ़्तर में मौजूद हैं। बस सिर्फ़ अकबर नंबर का मुआमला रह जायगा। उसकी एक जिल्द दस्तयाब हो सके तो मुझे और किसी फ़ाइल की ज़रूरत न होगी। मैं यह दोनों मज़ामीन नक़ल कराके फ़ाइल बहुत जल्द लौटा दूँगा। खुद लेकर आऊँगा। और सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।



लखनऊ, सम्भवतः दिसम्बर, 1928

महोदय दशरथलाल,

मैं बनारस के पास एक देहात का रहने वाला, आपकी ही बिरादरी का एक व्यक्ति हूँ। बनारस से चार मील दूर, आज़मगढ़ रोड पर एक गाँव है—लमही, मौज़ा मढ़वाँ, वहीं मेरा मकान है। इन दिनों 'माधुरी' कार्यालय में सम्पादक का काम करके आजीविका चला रहा हूँ। मैं सामाजिक अत्याचारों से सताया हुआ एक व्यक्ति हूँ। इस समय मेरे सामने एक गम्भीर समस्या अपनी लड़की की शादी की है। मुझे ऐसा लगता है कि आपके सहयोग से वह सुलझ सकती है। मेरे कई रिश्तेदार यू. पी. में फैले हुए हैं। मैं चाहता हूँ कि आप चिरंजीव वासुदेवप्रसाद के लिए मेरा प्रस्ताव स्वीकार करें। मेरे विषय में और जो कुछ जानना चाहें, लिखिए, सहर्ष उत्तर दूँगा।

आपका, प्रेमचन्द।



सम्भवतः दिसम्बर, 1928

महोदय,

आपका पत्र मिला। ऐसा पत्र तो सौभाग्य-उदय से ही प्राप्त होता है। आपने अपना पूरा परिचय नहीं दिया है, पर मुझे पता चल चुका है। सूरज को चिराग़ लेकर नहीं देखा जाता।

आप ही की तरह मुझ पर भी एक महान् उत्तरदायित्व है और उससे मुझे उबार लेने के लिए आपका सहयोग भी उतना ही आवश्यक है।

यह अवश्य बता देना चाहता हूँ कि यह देहात है, सामाजिक कुरीतियों का अभाव यहाँ भी नहीं है, यद्यपि मुझे और अनुमानतः मेरी सास साहिबा को भी इसकी ज़्यादा परवाह नहीं है। तो भी इस घर के इतिहास, उसकी प्रतिष्ठा और मर्यादा के प्रकाश में, मेरे कर्त्तव्यपालन में कुछ विशेषताएँ रहेंगी और मुझे आशा है कि आप उसकी सुविधा मुझे देंगे। अतः मुझे पहले से मालूम हो जाना चाहिए कि शादी में आप कितना खर्च करना चाहते हैं और उस खर्च का कितना हिस्सा ऐसा होगा जिससे मुझे व्यावहारिक सहायता मिल सकेगी, और यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह किसी रईस का घर नहीं है। साधारण जमींदारी परिवार है और लड़का अपने घर का आप मालिक है। हाँ, दाल-रोटी का सुख उसे अवश्य प्राप्त है।

आपका, दशरथलाल।

Prof. Tarachand Roy (Lahore)
Berlin Korrespondents 'Vishal Bharat'
Kalkutta Europaischer Korrespondent der
'Tribune', Lahore
Lektor am Indogermanischen Seminar
der Universitia Berlin

Berlin-Wilmersdorf, den
Hohenzollerndamm 161 B
29 January, 1929

My dear Premchand Ji,

My heartiest thanks for your very kind letter and a number of books that I have just received from the Saraswati Press, Benares City, It would be very kind of you if you would request the publishers of your other works to send me a copy of these at their earliest convenience.

I am highly thankful to you for the explanation of the word 'पौरा'. I have notes a few more points in some of your works, but I shall write you about them another time. Since I am in a great hurry at this moment. I am leaving for a town in Eastern Germany within half an hour. I have been invited there to deliver a lecture on my beloved motherland.

May I request you to instruct the office of your paper 'Hans' to send me the journal regularly. I shall be glad to send you something for publication, after I have gone through the issues that have been published up to now.

You will hear from me again a fortnight hence.

With best wishes and kindest regards,

Yours Sincerely, Tarachand Roy

P.S.—I shall be highly obliged to you, if you would request all the editors and publishers of Hindi magazines and books that you know personally to favour me with their journals and new publications regularly—. I may remain in constant touch with—done in this direction at home.



13, बेडन रोड, लाहौर, 30 जनवरी, 1929

मुकर्रमी मुंशी साहब, हदिया-ए-निहाज़ !

मौलाना ताजुर नजीबाबादी का मक्तूब (पत्र) आपकी ख़िदमत में पहुँच चुका है। ये आरीज़ा (प्रार्थना-पत्र) महज़ याद-दिहानी के लिए तहरीर (लिखना) किया जाता है। 'अदबी दुनिया' का पहला पर्चा 15 मार्च को शाया होगा। बारे-इदारत (सम्पादक का बोझ) नियाज़मन्द के दोश (कन्धे) पर ही है। इन्तज़ाम ये किया गया है कि अहले-वतन के सामने मशरिक़ (पूर्व) और मग़रिब (पश्चिम) का जदीदो-क़दीम (नया और पुराना) लिट्रेचर पेश

किया जाय।

आपसे भी इस क़दर अर्ज़ किया चाहता हूँ कि लिल्लाह (ईश्वर के लिए) 'अदबी दुनिया' की इआनत (सहायता) में फ़रमाइश को मद्दे-नज़र न रखिए, क्योंकि फ़रमाइशी मज़ामीन कारिइन की तबियत पर ही बार (बोझ) नहीं होते, बल्कि इनसे मुसन्निफ़ की शोहरत पर भी असर पड़ता है।

इन्कार जो इख़्लास (निष्कपट प्रेम) पर मबनी (निर्भर) हो, हमारे लिए ज़्यादा इज़्ज़त-अफ़्ज़ा है। बनिस्वत इसके कि मजबूरन कुछ लिखकर इर्साल फ़रमायें।

बहअस्सलाम, जवाबे-ख़त का मुतमन्नी।

निहाज़ आइन्द, हनीफ़ हाशिमी।

●●

नवलकिशोर प्रेस (बुकडिपो),
2, हीवेट रोड, लखनऊ, 30-1-1929

प्रिय शिवपूजनजी,

आज पं. रामवृक्षजी के एक पत्र से मुझे बड़ी चिन्ता हो गयी है। उन्होंने बाबू श्यामधारी जी के पत्र का एक टुकड़ा नक़ल करके भेजा है जिसमें श्यामधारीजी ने लिखा है कि 'मुझे व्यक्तिगत रूप से कोई आपत्ति नहीं, लेकिन पिताजी आवें तो।' इससे मुझे सन्देह हो रहा है कि कोई बाधा खड़ी हो गयी। आपका मौन इस सन्देह को और भी दृढ़ कर रहा है। कृपया लिखिए, क्या बात है ? क्या मुझे बाँकीपुर जाने की ज़रूरत है, या निराश हो जाऊँ ? मैंने तो समझा था एक सज्जन मिल गये और मेरी चिन्ताओं का अन्त हुआ, पर जान पड़ता है मामला इतना सरल नहीं है।

मैं आपके पत्र का बड़ी अधीरता से इन्तज़ार कर रहा हूँ। लेख आपने नहीं भेजा।

भवदीय, धनपत राय।

●●

'माधुरी' कार्यालय,
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 31-1-1929

प्रिय बन्धुवर, वन्दे !

पत्र मिला, अनुग्रह। कल एक पत्र लिख चुका हूँ। अब मामला साफ़ हो गया। फ़रवरी तक प्रतीक्षा करूँगा। ब्लॉक बनने को दे दिये गये हैं। लेख का इन्तज़ार है।

भवदीय, धनपत राय।

●●

Dr. Tara Chand, M.A., D. Phil. (Oxon) — Allahabad
The General Secretary, Hindustani Academy — Dated Feb. 6, 1929
United Provinces, Allahabad

To,
B. Dhanpat Rai
Naval Kishore Press, Lucknow,

Sir,

I have the honour to inform you that the Council of the Academy has

elected the following committee of Judges for the Award of Prizes on the best work in Urdu–on general literature. I hope you will kindly accept the membership of the said committee and send me an early intimation of your acceptance.

A copy of the suggestion regarding the award of prizes is here with enclosed.

Members–1. B. Dhanpat Rai, 2. M. Syed Sajjad Haider, 3. M. Rashid Ahmad Siddiqu (convener), 4. M. Norrul Hasan 'Nayyar', 5. M. Niaz Ahmad Khan. Fatehpuri

I have the honour to be,
Sir,
Your most obediant servant
Tara Chand.

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 21 फ़रवरी, 1929

भाईजान,

तसलीम। आपको यह सुनकर मसर्रत (खुशी) होगी कि बेटी की शादी ज़िला सागर के एक मुतमव्विल (सम्पन्न) ख़ान्दान में तय हो गयी है। वह लोग यहाँ आये थे और कल वापस गये हैं। दो चार रोज़ में मैं बरच्छे की रस्म अदा करने जाऊंगा। लड़का बी. ए. में पढ़ता है। जायदाद माकूल है। मगर सर्फ़ा चार हज़ार का है। मेरी भुगत कुल दो हज़ार की है। आप बतला सकते हैं कि आप मार्च के आख़ीर तक मेरी कितनी मदद कर सकते हैं ताकि मैं बक़िया की और कोई फ़िक्र करूं। मैं आपको इस वक़्त मुतलक़ तकलीफ़ न देता मगर वह लोग इमसाल ही शादी करने पर मुसिर हैं। इस वजह से मजबूर हूँ। शादी बनारस से करूंगा।

आज ज़माना मिला। इस माह मैंने ऊधोवाली तसवीर माधुरी में निकलवायी थी मगर आपने तक़दीम (पहल) की। अब यह लोग ब्लाक का दाम किस हिसाब से दें, कैसे हिसाब होगा। लिखिएगा उस तरह से तै कर दूँ। अगर इस माह में आपने न लगायी होती तो ये लोग तसवीर, ब्लाक वग़ैरह का दाम देने पर राज़ी थे। मुझे मालूम न था कि आपने छपवा ली हैं वर्ना आपको मना कर देता कि इस माह में न छापियेगा। मगर ख़ैर। जवाब का मुन्तज़िर रहूँगा।

आपका, धनपत राय।

●●

24-2-1929

मुकर्रमी,

तसलीम ! प्रेम भूलने वाली चीज़ नहीं। मेरा वहुत अर्से से बाजू उतर गया है। सख्त चोट आई थी, जिसके वाइस पाबन्दे-बिस्तर बना हुआ हूँ। दायाँ बाजू उतरा था, जिसके सबब ख़तो-किताबत करना भी मुश्किल हो गया था। ख़त न भेजने की यही वजह थी।

'सोज़े-वतन' मुझे अख़्तर साहब से मिल गया था। 'कर्बला' का मसविदा 'ज़माना'

ने नहीं भेजा। एडीटर 'ज़माना' साहिब की तहरीर से मालूम होता है कि 'कर्बता' के पूरे नम्बर उनके पास महफ़ूज़ नहीं। वो लिखते हैं कि जितने नम्बर दफ़्तर नें महफ़ूज़ हैं वो इर्साल किये जायेंगे। अगर आप मुकम्मल का इन्तज़ाम कर दें तो बड़ी मेहरबानी होगी। 'कर्बला' किताबत के लिए दे दिया गया है। कसीसे 'ख़्वाबो-ख़याल' में 14 आये हैं। ऐसा 'ख़ाके-परवाना' में अगर अफ़सानें-तादारी 14-15 तक हो जायें तो इरसाल फरमावें। फ़रवरी 'ज़माना' नम्बर में इसीं तरह देख सकता हूँ कि आप मुझे इर्साल फ़रमावें। 'किशना' की बाबत आपने नहीं लिखा कि वो मिला या नहीं। अगर हो सके तो वो भी रवाना फ़रमावें, यानी नये क़िस्से, मज़मून 'कर्बला' वाला मुकम्मल फाइल। 'किशना' नॉविल, 'शादी की बाबत' जो आपने तहरीर फ़रमाया है।

बफ़ज़्ले-ताला इमदाद में कोताही न होगी। मैं चलने-फिरने के लायक़ और हाथ क़लम पकड़ने के लायक़ हो गया तो इनकी इशाअत का वन्दोबस्त होगा। इल्तवा का वाइस बस यही शिकायत है फ़िलहाल ज़्यादा-ज़्यादा—उम्मीद है आप बख़ैरियत होंगे।

सैयद इनायत हुसैन 'ज़मानी'

हज़रत सैयद मुबारकअली साहब, मुबर्रिका।



लखनऊ, 28 फरवरी, 1929

भाईजान,

तसलीम। मैंने कल नवलकिशोर प्रेस से बातचीत की। वह 1500 डिमाई साईज़ सेह-रंगी (तिरंगा) के कम से कम 28 रुपये मांगते हैं। इससे कम करने पर राज़ी नहीं हैं। आपको इसमें किफ़ायत मालूम होती हो तो मुझे इत्तला दें। कागज़ भी इसमें शामिल है।

हां, 'जस्टिस' मैंने शुरू कर दिया। 16-17 सफ़हात कर भी डाले। लेकिन अभी उसका हिन्दी का तर्जुमा तो आया नहीं। इसलिए वह सब मुश्किलात जो पहले डिक्शनरियों या मशवरों से हल की थीं फिर आ रही हैं। इसलिए जब तक हिन्दी तर्जुमा न आ जावे उस वक़्त तक के लिए मुलतवी करता हूँ।

दूसरी किताबों के मुताल्लिक़ मैं यही कहूँगा कि आप खुद ही कर लें। मैंने समझा था एक नशिस्त (बैठक) में 7-8 सफ़हात हो जाएंगे। पर अब देखता हूँ तो मुश्किल से चार सफ़हात होते हैं और मेरे पास एक नशिस्त से ज्यादा वक़्त नहीं है। अगर इसे करता हूं तो मेरा 'पर्दए मजाज़' रहा जाता है। सुबह को करता हूं तो 'कर्मभूमि' में हर्ज होता है। और दूसरा कौन-सा वक़्त है ? 'जस्टिस' तो मैं किसी न किसी तरह कर ही डालूँगा, लेकिन बाक़ी दोनों को मेरा इस्तीफ़ा है। इतने ही वक्त में मैं ज़्यादा फ़ायदे का काम कर सकता हूँ।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है। उम्मीद है आप ख़ुश हैं।

आपका, धनपत राय।



The Hindustani Academy, United Provinces,
Allahabad, Feb. 28, 1929

Dear Sir,

I herewith send you under a separate cover a copy of 'Justice' by Galsworthy. The book is to be translated into Hindi. I hope you will be able to send the MSS. of translation by the end of March next.

The Committee has sanctioned a remuneration of Rs. 2/- per page Royal octave size in English plus 10% royalty on the book sold. A copy of 'strife' and 'Silver Box' by the same author will be sent to you for translation as soon as they are received from the book-sellers.

B. Dhanpat Rai B.A. — Yours faithfully,
Naval Kishore Press, Lucknow — Satya Jiwan Verma, Superintendent



उज्जैन, 7-3-29

श्रीमान् बाबूजी, नमस्ते !

आपका कृपा-पत्र व फोटो पहली तारीख को ही यहाँ आकर मिले थे, पर मैं एक सप्ताह के लिए बड़ौदा व सूरत चला गया था। आज ही वापस आया हूँ। यही कारण है कि उत्तर शीघ्र न भेज सका। मुझे खेद है कि आपको कुछ समय तक व्यर्थ प्रतीक्षा करनी पड़ी।

कदाचित् यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने यह चित्र अपने सन्तोष के लिए नहीं किन्तु वासुदेव के लिए मँगाया था। लखनऊ में आपसे बातचीत के प्रसंग में कुछ ऐसी समस्याओं और घटनाओं का उल्लेख सुना था जिन पर वर पक्ष का ध्यान बहुधा बहुत कम रहता है, परन्तु यह समझकर कि आप जैसे महानुभावों के श्रीमुख से निकला हुआ एक शब्द भी निरर्थक नहीं हो सकता, मुझे अपने उत्तरदायित्व का बोझ और भी अधिक जान पड़ने लगा है। इसीलिए मैंने आपसे दूसरी फोटो के लिए आग्रह किया था।

देवरी से आये हुए पत्रों से विदित होता है कि मेरे मित्र की वधू ने आपकी कन्या के साथ कुछ समय एकान्त में भी व्यतीत किया है व प्रायः समवयस्क होने के कारण वे एक-दूसरे के भावों को भली प्रकार समझ भी सकी हैं। मित्र-वधू का अनुमान है कि यदि किसी कारण से यह प्रस्ताव स्थिर न रह सका तो कन्या को अकथनीय कष्ट होगा। मैं बड़े धर्म-संकट में पड़ गया हूँ। मैं न तो कन्या को निराश करना चाहता हूँ, न वर को। मैं उन्हें उस दाम्पत्य प्रेम से परिपूर्ण देखना चाहता हूँ जो प्रत्येक युवक का, युवती का जन्मसिद्ध अधिकार है। आप मेरी परिस्थिति पर विचार कर लें और ऐसी युक्ति निकालें जिसमें वर-वधू दोनों सुखी हों (जो विवाह का मुख्य हेतु है) और आपको शान्ति मिले (तथा मुझे यश)।

यदि आप यह समझ बैठे हैं कि सम्बन्ध पक्का हो चुका तो मेरी ओर से भी पक्का समझिए। केवल मेरी एक बात आपको निबाहनी होगी, जो मैं यहाँ स्पष्ट कर लेना चाहता

हूँ। आशा है कि मेरे संकेतानुसार आपने 4000 रुपये का जो संकल्प किया है, आप उस पर स्थिर होंगे। देवरी से आये हुए पत्रों को देखकर आपको लिखना पड़ता है कि आप तिलक में 2000 रुपये नक़द भेजें व 500 रुपये का दरवाज़ा और 500 रुपये विदाई के निमित्त रखें, अर्थात् बाकी 1000 रुपये में ही दूसरे खर्चों से निपट लें। बात यह है कि एक बार 2000 रुपये का तिलक अस्वीकार किया जा चुका है, इसलिए यद्यपि अम्मा यह नहीं चाहतीं कि आप हैसियत से ज़्यादा खर्च करें तथापि वे यह अवश्य चाहती हैं कि आप उसे इस प्रकार क्यों न खर्च करें कि जिससे अधिक-से-अधिक शोभा, सन्तोष और श्रेय प्राप्त हो। आपकी आर्थिक सुविधाओं का परिचय मैं पहले ही ले चुका हूँ। ऊपर लिखे अनुसार व्यय करने में भी आपको विशेष आपत्ति नहीं हो सकती। मुझे यह मालूम न था कि आपको ज़ेवर कुछ न बनवाना पड़ेगा, सिर्फ़ नथनी बनवानी पड़ेगी। बाक़ी ज़ेवर तो आपके अजीज़ अकारिब अगर देना चाहें तो पैपुजई या विदा के वक़्त दे सकते हैं और न दें तो कोई तक़ाज़ा नहीं है। आपके एक ही लड़की है और निर्धारित सीमा के भीतर ही अर्थ व्यय करने से यदि उसे मनोवांछित वर मिलता है तो मेरी समझ में आपको इस पवित्र कार्य से कृतकृत्य हो जाना चाहिए—शेष भविष्य के हाथ में है।

मैं बहुत जल्दी देवरी पहुँचने की कोशिश करूँगा। यदि ऊपर लिखी व्यवस्था आपको स्वीकार है (अस्वीकार करने का मुझे कोई कारण नहीं जान पड़ता) तो आप पूर्व निश्चित 17 या 18 मार्च तक देवरी आ जावें। मैं इसके पूर्व ही देवरी पहुँच जाऊँगा। आप इस पत्र का उत्तर देवरी भेजें और 17 या 18 मार्च तक या तो झाँसी-बीना-सागर होते हुए देवरी आकर रस्म अदा कर दें और जबलपुर में वासुदेव को देखते हुए इलाहाबाद होते हुए लखनऊ पहुँच जावें अथवा इलाहाबाद होते हुए जबलपुर आइए और वासुदेव को देखकर करेली स्टेशन की राह देवरी आइए और रस्म अदा करके सागर-बीना-झाँसी होते हुए लखनऊ पहुँच जाइए। मेरी समझ में पहले आपको जबलपुर होकर फिर देवरी आना चाहिए, जिससे आपको किसी प्रकार की दुविधा या शंका न रह जावे। आप लड़के को देखकर अपना जी भर लें।

फलदान के लिए यहाँ चाँदी के कटोरे वगैरा का रिवाज नहीं है। सिर्फ़ एक नारियल और जो कुछ नकद आप देना चाहें, उसकी ज़रूरत होगी। आप चाहें तो 111 रुपये दीजिये नहीं तो 5 अशर्फ़ियाँ ठीक होगीं। अशर्फ़ियों का प्रबन्ध न हो सके तो 5 गिन्नियों से भी काम निकल सकता है। यों तो फलदान 5 रुपये से भी होता है, पर ऐसा करना आपकी शान के बाहर होगा। आप जब आवें तो लड़की के हाथ की चूड़ी अवश्य लेते आइए या हाथ का कोई ज़ेवर जो ठीक बैठता हो। शेष शुभ। माँ जी को प्रणाम व बच्चों को प्यार कहिएगा।

मंगलाकांक्षी, दशरथलाल।



उज्जैन, 7-3-29

श्रीमान् बाबूजी,

सादर नमस्ते।

आज ही आपको एक पत्र इसके पहले लिख चुका हूँ। उसमें मुख्यतः दो ही

समस्याओं पर स्वीकृति निर्धारित की गयी है—एक तो स्पष्ट ही है, अर्थात् यह कि आप पूर्व निश्चित 4000 रुपये के व्यय-संकल्प को इस प्रकार विभाजित करें कि 2000 रुपये नक़द तिलक में देवें व दरवाजे में 500 रुपये और विदाई में 500 रुपये, शेष 1000 रुपये में खिलाने-पिलाने और दूसरे खर्चों को निपटा लें। दूसरी समस्या थी वासुदेव की लड़की के विषय में सन्तोष करना। आपको पत्र भेज चुकने के बाद उसका पत्र मिला। उसके पत्र से मुझे बड़ा साहस मिला है और जिस उत्तरदायित्व के बोझ से मैं घबरा रहा था, वह हलका जान पड़ने लगा, मानो टेक मिल गयी। वह चाहता है कि उसकी बहन लखनऊ जाकर लड़की को देख ले। आशा है कि इससे आपको कुछ आपत्ति न होगी। लखनऊ में आपने तो स्वयं कहा था कि माँ जी चाहती हैं कि वासुदेव की माँ खुद आकर लड़की को देख लें, और फिर सब लोग बनारस जायें व गंगा-स्नान करें, इत्यादि। अतएव यदि वासुदेव की माँ के स्थान में बहन आवे तो मेरी समझ से कोई हर्ज़ नहीं है। आगे जैसा आप समझें। शायद माँ जी ने भी राजाराम जी की मामी से कहा है कि जो चाहे सो लड़की को देख ले, मुझे कुछ उज़्र नहीं है।

बस यह दो शर्तें हैं—इनमें से कोई भी ऐसी नहीं हैं जो आपकी सुविधा अथवा सामर्थ्य के बाहर हो। मेरी समझ में तो जब आपकी ओर से सम्बन्ध पक्का हो चुका है, और यदि मेरी मित्र-वधू का अनुमान ग़लत नहीं है, तो कन्या ने भी ऐसा ही समझ रखा है, तो हम लोगों को एक बार सेवा में फिर आने की आज्ञा दीजिए। उसके बाद आप आ सकते हैं और रस्म अदा कर सकते हैं या आप ही पहले लड़के को देख लीजिए। एक दिन के लिए देवरी भी पधारिए। उसके बाद निश्चित समझकर हमारी शर्तें स्वीकृत कीजिए और लखनऊ आने की आंज्ञा दीजिए। जैसा आप समझें करें, मुझे इसमें अधिक भेद नहीं मालूम होता। फलदान जैसा देवरी में हो सकता है, वैसा ही लखनऊ में भी हो सकता है।

कृपया इस पत्र का उत्तर शीघ्र ही देवरी भेज दीजिएगा। निश्चय आपके हाथ में है। मैं केवल अपने उत्तरदायित्व का सम्पादन इस प्रकार करना चाहता हूँ कि वर और कन्या दोनों सुखी रहें और मेरा और आपका उद्योग पूर्णरूप से सफल हो।

मंगलाकांक्षी, दशरथलाल।

●●

लखनऊ, 19 मार्च, 1929

भाईजान,

तसलीम। कर्बला आग़ाज़ से दिसंबर सन् 27 तक लाना न भूल जाइएगा। यह याददिहानी कर रहा हूं। अगर फ़ाज़िल (अतिरिक्त) पर्चे न होंगे तो नक़ल करा लिये जायेंगे।

हाँ Strife और Golden Wing भी ज़रा लेते आइएगा। दोनों गाल्सवर्दी की हैं।

आपका, धनपत राय।

●●

'नैरंग', हेली रोड, लाहौर, 20-3-1929

मुक़र्रमी मुशफ़िकी,

सलामत !

आज एक ड्राफ़्ट 400 रुपया आपको रवाना किया है। उम्मीद है, वसूल पाकर रसीदगी इर्साल बख़्शेंगे। आज बफ़ज़्ला-ताला (ईश्वर की कृपा से), डेढ़ माह से बीमार था, बाहर निकला हूँ, और अपने हाथ से यह कार्ड लिख रहा हूँ। अगर्चे हाथ पूरा-पूरा काम नहीं कर रहा, लेकिन इतना भी ग़नीमत है। 'ज़माना' की तरफ़ से 23 जनवरी, 1929 का कार्ड बराए-इत्तला जल्द करने नम्बर 'ज़माना' के आया हुआ है। मैं अपने फ़र्ज़ से बाख़बर हूँ। मैं भी एक आदमी हूँ। इतने दिनों तक पाबन्दे-बिस्तर रहा था, बाज़ू उतरने का बहाना हो गया। फ़िलहाल ज़्यादा-ज़्यादा।

दुआगो, सैयद मुबारकअली शाह गिलानी
मौलवी-फ़ाज़िल, लाहौर

ख़ैरो-आफ़ियत वाला मामला तो अब उम्र के साथ ही चलता है। आपकी ख़ैरियत मत्लूब (वांछित) हूँ।

●●

काशी-विद्यापीठ, बनारस, मिति 28-3-1929

प्रिय श्री प्रेमचन्द जी,

लगभग 2 सप्ताह होते हैं कि मैंने आपकी सेवा में एक पत्र भेजा था, पर उत्तर से अभी तक वंचित रहा हूँ। मैंने उस पत्र में आपको लिखा था कि श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुत्री के नाम कुछ पत्र अंग्रेज़ी में लिखे थे और पत्रों द्वारा उसको संसार का इतिहास बताने का प्रयत्न किया था। H. G. Wells की Outline of History के ढंग पर बहुत संक्षेप में ये पत्र लिखे गये हैं। कुछ मित्रों ने उनको राय दी है कि यदि इन पत्रों का हिन्दी-उर्दू में अनुवाद हो जाय तो बालकों के लिए बहुत उपयोगी हों। आपसे मैंने पूछा था कि आप यह कार्य कर देंगे या नहीं, और यदि करेंगे तो आपकी क्या शर्तें होंगी?

कृपया उत्तर शीघ्र दीजिए। नेहरू जी का कई बार तक़ाज़ा आ चुका है। आप कहें तो अंग्रेज़ी के पत्र देखने के लिए आपके पास भेज दूँ।

भवदीय, नरेन्द्रदेव।

●●

लाहौर, 31-3-1929

मुहज़्ज़िम व मुक़र्रम जनाब,

तस्लीम ! मिजाज़-शरीफ़ ! आपके मुर्सलाए (प्रेषित) 'क़सम-ओ-कर्बला' (कर्बला की कहानी) मुझे मिल गई, लेकिन जितने क़सस आपने मुझे बतौर याददाश्त लिखकर दिये थे, उनमें ये क़सस मुझे आपने नहीं रवाना फ़रमाये—'इन्तक़ाम', 'ख़ूनी', 'मन्दिर-ओ-मस्जिद', 'इल्ज़ाम'। हाँ, इनके अलावा मैंने दो क़िस्से 'तौबा' और 'राहे-निज़ाद' 'रियासत' में देखे जो मुझे निहायत पसन्द हैं। दूसरा आपने फ़रमाया था कि एक क़िस्सा 'ज़माना' फ़रवरी-नम्बर में उम्दा निकला है, जिसकी बाबत मैंने लिखा था कि वो मुझे आप ही दिलवा सकते हैं। वो भी इर्साल ना फ़रमाया। अगर ये क़सस मुझे मिल जायें तो मैं

मेहरबानी का निहायत ही वद्दहे-मुबालग़ा (अत्यधिक) मशकूर होऊँगा। नीज़ (इसके अलावा) 'कर्बला' के मुताल्लिक़ तबादलाए-ख़यालात (विचार-विनिमय) मतलूब (वांछित) है। अगर आप एक-आध दिन की फुर्सत मेरे लिए निकाल सकें तो मैं हाज़िरे-ख़िदमत होकर तसल्ली करना चाहता हूँ। मैं बूढ़ा बीमार आदमी, अगर मेरे हस्बे-मंशा आप मुझे 20 क़िस्से भी मरेहमत फ़रमा देंगे तो दुआगो को निहायत मसरूर (प्रसन्न) फ़रमायेंगे। मैं ज़ियादा ताक़ीद ऐसे अहसास वाले वजूदए-मसूद को फ़जूल समझता हूँ।

इतना अर्ज़ करना शायद वाइसे-तकलीफ़ न होगा कि 'तौबा', 'राहे-निज़ाद' की बाबत सिर्फ़ इजाज़त काफ़ी होगी। उनके रवाना करने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि वो मेरे लड़के के पास हैं।

फ़क़त दुआगो, मुबारकअली शाह गिलानी।

●●

हिवेट रोड, लखनऊ, 16 अप्रैल, 1929

भाईजान,

तसलीम। आप सुनकर खुश होंगे कि बेटी की शादी तय हो गयी। लड़के की बहन यहां अपने शौहर के साथ आयी थी और देख-भालकर खुश चली गयी। अब मुझे तिलक भेजना है। शादी छठ में होगी। मैं मई के पहले हफ़्ते में दो माह की रुख़सत लेकर आऊंगा। मेरा इरादा इतवार को आने का है। ज़रा मिस्टर बीरालाल खन्ना से मिलना है। अपनी रीडरों के अंग्रेज़ी में रायज (जारी) करने के लिए उनसे कहना है।

मैं गाल्सवर्दी का ड्रामा क़रीब निस्फ़ ख़त्म कर लिया है। बाक़ी इस माह में ख़त्म कर दूँगा। आपने अपने दोनों ड्रामों को शुरू किया या नहीं। कितना कर चुके ?

ऊधोवाली तसवीर के ब्लाक मैंने तीस रुपये पर माधुरी को दे दिये। बीस रुपये अस्ल तसवीर के मुसव्विर (चित्रकार) साहब की नज़र करने थे, बाक़ी दस रुपये मेरे पास हैं।

आपसे यही गुज़ारिश है कि इस वक़्त आप ज़्यादा से ज़्यादा मेरी जितनी इमदाद कर सकते हों कर दें। हिसाब पुराना पड़ा हुआ है। उसे भी साफ़ करा दीजिए।

और क्या अर्ज़ करूं। इतवार को इंशा अल्लाह मुलाक़ात होगी।

आपका, धनपत राय।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 17 अप्रैल, 1929

भाईजान,

तसलीम। कशमकश का यह तर्जुमा इरसाले ख़िदमत[1] है। 'इन्साफ़' भी निस्फ़[2] से ज़्यादा हो गया है। वस्त[3] मई तक ख़त्म हो जायेगा। मैंने कोशिश तो यही की है कि तर्जुमा सही हो और उसके साथ ही मुहावरा हाथ से न जाने पाये। आप इसे देखें।

अबकी कानपुर गया पर आपसे मुलाक़ात न हो सकी। उजलत[4] थी, ठहर न सका। 'शाहकार' तो अब ग़ालिबन् न निकलेगा। आप उनसे मेरा क़िस्सा ले लें और ज़माना में निकाल दें। बक़िया ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. सेवा में प्रेषित, 2. आधा, 3. मध्य, 4. जल्दी।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 23 मई, 1929

बरादरम,

तसलीम। मैं 21 तारीख़ को यहाँ आ पहुँचा। उम्मीद है आपने घड़ी मंगवाने का इन्तज़ाम फ़रमा लिया होगा।

मैंने अर्ज़ किया था कि 'ख़ाके परवाना' की कुछ जिल्दें लाजपत राय एंड संस बुकसेलर्स लाहौर के यहाँ भेज दीजिएगा। अगर अब तक न रवाना की हों तो अब 70 जिल्दें भिजवा दें, ममनून हूंगा। और तो सब ख़ैरियत है। गाल्सवर्दी का 'स्ट्राइफ़' आपने शुरू कर दिया होगा। मेरा तो 'सिल्वर बॉक्स' अब थोड़ा रह गया है। 'जस्टिस' साफ़ भी हो गया। उम्मीद है कि अयाल बख़ैरियत होंगे।

आपका, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 1-7-1929

प्रिय सूर्यकान्त जी,

वन्दे !

आपका पत्र और लेख 'खड़ी बोली के कवि और कविता' प्राप्त हुआ आपका लेख आगामी अंक में ही दिया जा रहा है। पुरस्कार की राशि भी शीघ्र ही भेज दी जायगी।

कृपा-भाव बनाये रखें। सप्रेम,

आपका, धनपत राय।

●●

दफ़्तर माधुरी, लखनऊ, 16 अगस्त, 1929

भाईजान,

तसलीम। आप इलाहाबाद से न मालूम कब लौट गये कि मुलाक़ात न हुई।

एक साहब ने मेरी कुछ किताबें मंगवायी हैं। दो किताबें तो मेरे पास हैं मगर प्रेमबत्तीसी और पचीसी मौजूद नहीं। अगर आप इन दोनों किताबों की एक-एक जिल्द हर दो हिस्सा या पचीसी मौजूद न हो तो सिर्फ़ बत्तीसी हर दो हिस्सा एक-एक बवापसी भिजवा दें तो मैं यह फ़रमाइश पूरी कर दूँ। उम्मीद है कि मुन्नू बाबू को Send of कहने के लिए मैं भी कानपुर पहुँचूँ। आपने तो शायद अब लखनऊ आने की क़सम खा ली। मिर्ज़ा अस्करी ने आपको शायद ख़त लिखा हो। इंडियन प्रेस से यहाँ का मुआमला बेहतर है क्योंकि यहाँ हम भी हर तरह की इमदाद करेंगे। चाहे रायल्टी कुछ कम मिले पर आपको मशक्क़त बहुत कम करनी पड़ेगी।

मेरी रामचर्चा तो आप देख ही चुके। रामनरायन लाल ने बाकमालों के दर्शन भी छाप दिया। आऊँगा तो एक जिल्द नज़र करूँगा। रामचर्चा तो पाँचवीं छठवीं जमात के लिए मज़ीद ख़ान्दगी (अतिरिक्त अध्ययन) के लिए मौजूं है। बाकमालों के दर्शन नवीं दसवीं के लिए मौजूं होगी। कुछ न हो तो इलहाक़ी कुतुब में तो आ ही जाना चाहिए। कुछ उम्मीद है ? किताबें ज़रूर भिजवा दें।

आपका, धनपत राय।

●●

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 2 सितंबर, 1929

भाईजान,

तसलीम। आपके दो कार्ड मिले। अब मैं अमीनुद्दौला पार्क में रहता हूँ। मकान का नंबर कहीं नहीं मिलता। हां, यहया की दूकान पर पूछने से पता चल सकता है। बिल्कुल कांग्रेस के दफ़्तर से मुलहिक़ (मिला हुआ) मेरा मकान इसी लाइन में है। दरवाज़ा अक़ब (पीछे) से है। मेरे मकान के ठीक नीचे पफ़ सोइंग मशीन की एजेन्सी है। चिरौंजी लाल पारचाफ़रोश भी वहीं रहता है। उससे पूछने से पता चल जायेगा।

मैं सनीचर को आने वाला था मगर उसके एक रोज़ क़ब्ल ही से घर में तीन मरीज़ हो गये। धुन्नू की वालिदा के दाँतों में दर्द और बुख़ार, बेटी की उंगली में फुंसी जो विसहर्ग कहलाती है और निहायत दर्द पैदा करने वाली होती है। और धुन्नू की मामी को बुख़ार और पेचिश। कल बेटी की उंगली चिरवा दी। अब दर्द कम है। धुन्नू की मां के दांतों का दर्द अभी बदस्तूर है। हां, बुख़ार बंद हुआ। अब दांत निकलवा देने की सलाह है। और धुन्नू की मामी का बुख़ार भी साबिक़ दस्तूर है। इन वजूह से न आ सका और जिस दिन आपका कार्ड मिला था उसी दिन तक मुझे उम्मीद थी कि आऊँगा। मगर शाम को यहाँ से गया तो मालूम हुआ कि अब नहीं जा सकता। ख़त लिखने का मौक़ा न था। अज़ीज़ मुन्नू के साथ मेरी दुआएँ हैं। बच्चों को दुआ।

आपका, धनपत राय।



Madhuri Office, Lucknow, 3rd September, 1929

Dear Sabarwal,

You must be considering me so ungrateful to swallow all your kindnesses without writing to you even an acknowledgment. I have received copies of Japan Time regularly every month. The annual was particularly welcome being an encyclopedia of all about Japan. Let me thank you most sincerely for these considerations. I read the Times with much interest. It is so lively and informing. Its literary articles are of special interest to me. Don't you invite some noted Indians to contribute to Times as it would go a great deal towards better understanding betv ·en the two nations. One thing is regrettable to me as an Indian. It is so indifferent about India and its struggles for freedom India has every reason to be proud of Japan and naturally looks up to her for sympathy. The proud welcome Japan gave to Dr. Tagore led one to believe that she has not totally lost its interest in India, but such intances are few and far between.

Did you like any of my recent stories printed in 'Madhuri' and 'Vishal Bharat' ? You may not like their purchase, but India can never rise to the highest flights of Art, unless she is murmurring under a foreign yoke. This is where the literature of a subject country is distinguishable from that of a

free nation. Our social and political conditions force us to educate whenever we can and have an opportunity. The greater the feeling the more didactic the work. Young writers are greatest sinners in this respect. In their youthful zeal they forget the principles of art. Are they not excusable ?

I have written two little novels recently—'Nirmala' and 'Pratigya', none claim to be works of Art and are more or less social evils expressed. Would you like to read them ? Le me know please.

Rains have done great havoc this year. Some provinces have been flooded. But if the rains don't keep up during September, the rains we have had up till now would be no good.

With my best wishes,

Yours faithfully, Dhanpat Rai, (Prem Chand)

●●

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 3 सितम्बर, 1929

प्रिय सब्बरवाल,

आप मुझको कितना एहसानफ़रामोश समझ रहे होंगे कि मैं आपकी सारी मेहरबानियाँ डकार गया और आपको ख़त की पहुँच तक न लिखी। मुझे हर महीने बाक़ायदा 'जापान टाइम्स' की प्रतियाँ मिलती हैं। उसका वार्षिकांक विशेष रूप से अच्छा लगा क्योंकि वह जापान के बारे में एक पूरा ज्ञानकोश है। इन कृपाओं के लिए मैं हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ। टाइम्स मैं बहुत रुचिपूर्वक पढ़ता हूँ। वह बहुत जानदार होता है और जानकारी को भी खूब बढ़ाता है। साहित्यिक लेख मेरे लिए विशेष रुचिकर होते हैं। आप किन्हीं जाने-माने हिन्दोस्तानियों को टाइम्स में लिखने के लिए आमंत्रित क्यों नहीं करते, इससे दोनों राष्ट्रों के बीच परस्पर सद्भाव पैदा करने में बहुत मदद मिलेगी। हिन्दोस्तानी होने के नाते एक चीज़ मेरे लिए खेदजनक है। हिन्दोस्तान को जापान पर गर्व करने का कारण है और वह स्वभावतः सहानुभूति के लिए उसकी ओर देखता है। जापान ने डाक्टर टैगोर का जैसा शानदार स्वागत किया, उससे पता चलता है कि उसने हिन्दुस्तान में दिलचस्पी लेना बिल्कुल खत्म नहीं कर दिया, पर ऐसे उदाहरण बहुत कम, भूले-भटके, मिलते हैं।

इधर हाल में मेरी जो कहानियाँ माधुरी और विशाल भारत में छपी हैं उनमें से कोई आपको पसन्द आयी ? हो सकता है, कि आपको उनकी सोद्देश्यता न अच्छी लगी हो मगर हिन्दुस्तान कला के सर्वोच्च शिखरों पर नहीं पहुँच सकता जब तक कि वह विदेशी दासता के जुए के नीचे कराह रहा है। यहीं पर एक पराधीन देश का साहित्य एक स्वाधीन देश के साहित्य से अलग दिखाई देने लगता है। हमारी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ हमें विवश करती हैं कि जहाँ भी हमें अवसर मिले, हम लोगों को शिक्षा दें। भावना जितनी ही प्रबल होती है, कृति उतनी ही शिक्षा-परक हो जाती है। युवक लेखक इस मामले में सबसे बड़े पापी हैं। अपने युवकोचित उत्साह में वे कला के सिद्धांतों को भूल जाते हैं। क्या वे क्षम्य नहीं हैं ?

मैंने हाल में दो छोटे उपन्यास लिखे हैं–निर्मला और प्रतिज्ञा। दोनों में से किसी का भी दावा कलाकृति होने का नहीं है, उनमें कमोबेश समाज की बुराईयों का पर्दाफ़ाश किया गया है। क्या आप उन्हें पढ़ना चाहेंगे ? कृपया बतलायें।

इस साल बारिश से भयानक नुकसान हुआ। कुछ प्रान्तों में बाढ़ आ गयी है। लेकिन अगर यह बारिश सितम्बर में भी नहीं होती तो अब तक जो बारिश हुई है, उससे कोई फ़ायदा नहीं होगा।

शुभकामनाओं के साथ।

आपका, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 6 सितम्बर, 1929

प्रिय व्यास जी,

कृपा पत्र मिला। 'मधुकरी' पहले ही मिल गयी थी। संग्रह अच्छा है। कहानियों का चुनाव सुन्दर, छपाई में अशुद्धियाँ और विरामों का अभाव इस संग्रह की विशेषता है।

आलोचना की दो-एक बातों से मैं सहमत नहीं हूँ, मगर मैं कोई आक्षेप नहीं करता। आपको अपनी राय प्रकट करने में उतनी ही स्वाधीनता है जितनी मुझे या किसी दूसरे को है।

भवदीय, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 10 सितम्बर, 1929

प्रिय व्यास जी, वन्दे।

आपने 'मधुकरी' पर मेरी सम्मति पूछी है। संग्रह सुन्दर हुआ है और कहानियों के चुनाव में सुरुचि से काम लिया गया है। ऐसे सुन्दर संग्रह पर मैं आपको बधाई देता हूँ। मेरे और आपके साहित्यिक आदर्शों में किंचित् अंतर है, पर यह कैसे आशा की जा सकती है कि सभी लोग एक ही जैसे विचार रखते हों। यह भेद स्वाभाविक है। इससे संग्रह की सुन्दरता में कोई बाधा नहीं पड़ती। संग्रह में बनारस वालों के साथ आपने ज़रूरत से ज़्यादा उदारता की है, पर शायद मैं संग्रह करने बैठता तो मैं भी ऐसा ही करता। मेरा 'गल्प समुच्चय' तो एक प्रकाशक के संकेत पर केवल स्कूली कक्षाओं के लिए, उसी के बताये हुए लेखकों से किया गया था। उसमें मैं उन लेखकों को कैसे ला सकता था जिनको प्रकाशक ने स्वयं अलग कर दिया था। स्कूल के लिए जटिल भाषा और जवानी से छलकती हुई कहानियों की तो ज़रूरत न थी। वहाँ तो चरित्र का विचार ही प्रधान रहता है। मेरे विचार में–सभी के विचार में–साहित्य के तीन लक्ष्य हैं–परिष्कृति, मनोरंजन और उद्घाटन। लेकिन मनोरंजन और उद्घाटन भी उसी परिष्कृति के अन्तर्गत आ जाते हैं क्योंकि लेखक का मनोरंजन केवल भाड़ों का नक्कालों का मनोरंजन नहीं होता, उसमें परिष्कार का भाव छिपा रहता है। उसका उद्घाटन भी परिष्कृति का उद्देश्य सामने रखकर ही होता है। हम गुप्त मनोभावों को इसलिए नहीं दर्शाते कि हमें उनको दार्शनिक विवेचना करनी है, बल्कि इसलिए कि हम सुन्दर को आकर्षक और असुन्दर को हेय दिखाना चाहते हैं।

क्षमा करना, क्या से क्या लिख गया।

भवदीय, धनपत राय।

हाँ, संग्रह में अशुद्धियाँ बेशुमार हैं।

धनपत राय।

●●

काशी, 16.9.1929

श्रीमन्, वन्दे !

आपके दोनों पत्र मिले। 'मधुकरी' पर दो तरह की सम्मतियों के लिए धन्यवाद। 'मेरे-आपके साहित्यिक आदर्शों में किंचित् अन्तर है'—यह कुछ समझ न पड़ा। आलोचना की कौन-सी दो-एक बातों से आप सहमत नहीं हैं ? उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ। विशेष कृपा।

सदैव आपका, विनोदशंकर व्यास।

●●

सम्पादक
श्री क्षितीन्द्रमोहन मित्र मुस्तफ़ी
और विजय वर्मा

माया कार्यालय, केसरी-भवन
34, जार्ज टाउन, इलाहाबाद
10.10.1929

महोदय,

आपने पत्रिका के संचालक के बारे में पूछा है क्या लिखूँ ? श्री क्षितीन्द्रमोहन जी ही इसके संचालक हैं। वे धनी आदमी हैं। 'माया' में कितने रुपये लगाना चाहते हैं, किस प्रकार संचालन करना चाहते हैं, अभी कुछ ठीक पता नहीं। क्या आपको जो पत्र लिखा था उसमें यह लिखना रह गया था कि 'माया' से जो कुछ हो सकेगा, वह उसे आप-जैसे श्रेष्ठ लेखक को अवश्य देगी। किन्तु उसे इस समय आप लोगों के आश्रय की आवश्यकता है, स्वयं आश्रय देने की शक्ति उसमें नहीं। अभी तो 'शिशु' की जैसी सेवा की जाती है, वैसी उसकी भी स्नेह के साथ करनी होगी। आशा है समर्थ होने पर वह भी कुछ सेवा कर सकेगी। मुझे विश्वास है कि वह कृतघ्न न होगी—कृतज्ञता के पाश में बँधी रहकर बदले में कुछ-न-कुछ सेवा अवश्य करेगी।

मेरा पत्रिका से क्या सम्बन्ध है ? उसके संचालक ने मुझे पत्रिका का 'प्रधान सलाहकार' बनाना चाहा है और श्री बक्षी जी को 'विशेष सलाहकार'। प्रारम्भ से ही उन्होंने मुझसे काम लेना शुरू कर दिया।

हम लोगों का—विशेषतः मेरा और श्री बक्षी जी का यह विश्वास है कि हिन्दी के क्षेत्र में आप निस्सन्देह 'गल्प-सम्राट्' हैं, आपकी कहानियाँ अच्छे-से-अच्छे लेखकों के मुक़ाबिले में रखी जा सकती हैं। 'माया' का प्रथम अंक बिना आपकी कृपा-दृष्टि के निकल न सकेगा। आपको एक कहानी भेजनी ही होगी। प्रेम-प्रसून के प्रारम्भ में आपने कहानियों के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए हैं मैं उनसे सहमत हूँ। कहानी न भेज सकिए तो कहानी के सम्बन्ध में एक लेख ही भेज दीजिए। सबसे पहले मैं आपकी ही कहानी रखना चाहता हूँ इसीलिए वापसी डाक की बात लिखी थी। यदि इतनी जल्दी सम्भव नहीं, तो

कुछ देर से ही सही; किन्तु 'माया' पर 'माया' करनी होगी। उसके प्रथम अंक में आपक कुछ-न-कुछ लिखा हुआ ज़रूर रहेगा।

आपकी सब पुस्तकों का विज्ञापन भी देना चाहता हूँ। क्या वे सब 'सरस्वती प्रेस से मिल सकती हैं ?

नवलकिशोर प्रेस का कुछ विज्ञापन मिल जाता तो अच्छा था, आज पत्र भिजव रहा हूँ।

विशेष कृपा। योग्य सेवा लिखते रहिए।

सम्पादक, 'माधुरी', श्री प्रेमचन्द जी भवदीय, ब्रजराज

●●

विशाल भारत कार्यालय, 120/2 अपर सरकुलर रोड
कलकत्ता, 15 नवम्बर, 1929

प्रिय प्रेमचंद जी,

प्रणाम। घासलेट साहित्य के विरुद्ध जो आन्दोलन मैं कर रहा था उसकी मैंने अब इतिश्री कर दी है और अन्तिम लेख 'घासलेट-विरोधी आन्दोलन का उपसंहार' विशाल भारत में लिख रहा हूँ। इस अवसर पर मैं आपकी सम्मति इस आन्दोलन के विषय में चाहता हूँ। मैंने सुना था कि आपने 'भारत' में मेरे समर्थन में एक चिट्ठी लिखी थी। क्या उसकी प्रतिलिपि आपके पास है ? मैंने रख छोड़ी थी पर वह खो गई।

श्रीयुत सुन्दरलाल जी से मैं अभी प्रयाग में मिला था। उन्होंने मुझसे कहा 'तुमने इस गन्दे साहित्य के विरुद्ध आन्दोलन उठाकर सचमुच बहुत अच्छा कार्य किया। किसी न किसी को यह कार्य करना ही चाहिए था। यद्यपि इससे प्रारम्भ में घासलेटी लेखकों को कुछ विज्ञापन ज़रूर मिला, फिर भी यह कार्य बहुत आवश्यक था।'

मेरा विश्वास है कि आपकी इस आन्दोलन में मेरे साथ सहानुभूति थी। साहित्यिक दृष्टि से चाकलेटी साहित्य सचमुच अत्यंत भयंकर है। मुझे खेद है कि 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' जैसे राष्ट्रीय पत्रों ने इस आन्दोलन को बिल्कुल ignore किया। कृपया विस्तार पूर्वक अपनी सम्मति इस विषय में भेजिये। मैं उसे अपने लेख में उद्धृत करूँगा।

विनीत, बनारसीदास चतुर्वेदी।

●●

N. K. Press (Book Depot)
Lucknow, 3-12-1929

My dear Kanhji,

Read your letter. 'Madhuri' remmuneration will be sent at an early date. The list has already been got ready and money will soon follow.

As for the magazine, you must have read the advertisement in the 'Bharat' and other papers. They are soon going to publish a full page notice in the same paper as well as 'Pratap'. We want to be fairly sure before we start.

Yes, my aim is also the same, but at the same time I want to enlist the

ay of out university men and give them every scope to write and express theirselves freely in our magazine. Some of the boys write exceedingly beautiful. I shall also make the paper a nationalist organ, devoted to youth movement and other progressive movements.

My idea is to give 5 stories every month—3 original and two translations. One is to be got from some European language and another from Bengali, Marathi or other vernaculars. These 5 stories will fairly cover 4 forms or 32 pages. Then I shall give a serial novel, about 8 pages every month. 8 pages will consist of notes—social, political, educational. There remain 16 pages more. 4 pages will be devoted to the review of any remarkable book. The remaining 12 may be divided in historical, sexual or travel. Anything expected to arouse curiosity or sensation or provoke thought or touching the under-currents of society will find a place here.

So you learn that I have a comprehensive before us. But still there is no guarantee that we shall run on profit. If you are determined fully to adopt this line. I shall be only too glad to have your co-operation. You will have to contribute one original story, one translation from current English magazines and another thing you find time and tendency to give will be quite welcome. If you and I can both manage to write 32 pages per month which is by no means a heavy task, the manager will be able to get in contributions about 32 pages every month. You are not to be a sleeping partner, you have got to be wide awake, energetic and alert. As for myself I have no other interest in life. The magazine will bear my name, but if you like your name too can go on the title page. The venture may be financed equally by us, both working equally and dividing the profits equally, whenever it may be possible to do so. All the accounts will be kept regularly, a special clerk will have to be employed for the purpose, or if you can you may just stay at Benares for a few months. But I want you to understand that I am giving no extravagant hopes and if we lose, no sort of responsibility will rest with me. Both of us will be losers and no one will have the choice of blaming the other for this mistake. Put forth your best, shake off you X X X and proceed with strong hopes.

But, you join in partnership or not, that is your look out, what I want you to do to contribute regularly to the magazine 16 pages or thereabout, one original + one translated and one or two pages of crisp, bold notes. At the end of the year, if fortune smiles upon us, your remmuneration will be paid you according to the profits we earn. I want to make it clear—Suppose you have written 100 pages during the 12 months, the profits are say 1000/-. The

whole number of pages given during the year will come to 64 × 12 or 768. If 768 pages bring 1000/-, your one hundered pages will proportionately bring Rs. 130/- or if you write 200 pages—viz. 16 pages per month, you wages will come to about 260/-. But that is all problematic. The first year may bring no profits at all, then you will have to content yourself with the assurance that the next year will bring better luck. As a joint partner, you will have the same risk. Now you have got to cloose between the two and inform me on full consultation with Bhai Sahib. You may read the letter to him. I don't want to have any loophole for misunderstanding.

The Magazine must be out by Basant Panchmi. So the sooner you set to work and inform me the better.

Yours affectionately, D. Rai.



P.O. Box 104, Tokyo
December 5, 1929

My dear Dhanpat Rai ji,

Letter writing was never a strong point with me, and inspite of all the pious resolutions I make every now and then, I find, to my utter regret that I am becoming too old now to get rid of this bad habit of mine. I am simply ashamed to realize that I have not written to you for almost a year and a half not withstanding that you have been good enough to favour me with two affectionate notes during the interval. Please do not think of me as ungrateful although I am fully conscious of my lack of courtesy towards you for which I beg to offer my sincere apologies.

I thank you for the complementary copies of the 'Madhuri' which through your kindness have been reaching me quite regularly. This year's special number has not yet come. I am expecting it every moment with fond expectations. I find 'Madhuri' to be one of the best magazines in India. It is excellently edited and I assure you that it is not below the standard of any first rate magazine in the world. I find an exceptional pleasure in going through its pages month by month as it is not only instructive but helps me to keep in touch with some of the literary gems of my own mother tongue as well. I have one criticism to make about the make-up of the 'Madhuri' and I trust you will not be angry with me as I am doing it with the best of motives. It is about the artistic side of 'Maduri' which I believe is in the hands of rather an amateur. This criticism of mine, I am sorry to state, can be applied equally to all the Hindi mazazines in the united provinces. The artists who point for 'Madhuri'

are with certain exceptions not upto the standard which Indian art has been reached during the last few decades. Further more they got seem to derive inspiration for their works from Hindu mythology only which makes 'Madhuri' merely a Hindu magazine although it ought to be our earnest endeavour to make Hindi the linguafranca of India, a high class magazine like 'Madhuri' ought to acquire an all India popularity and not cater only to certain colours or creeds.

In am glad you appreciate the 'Japan Times'. I edited the coronation Number with a Japanese friend and am proud to realize that it was appreciated practically every where. The Company made quite a heap of money from this special number, but did not give me or my Japanese colleague even a cent out of their profits. Later on I was working as the Sunday and the Overseas Editor but felt disappointed in a number of ways. There were differences of opinions also and I resigned finally some three months ago. At present I am a free lance journalist, and although I find every now and then that things are not moving very smoothly I can find enough of work to keep the wolf away from the door. I shall contunue sending the overseas edition to you as I have many friends at the Times, who are very kind and send me as many copies as I care to have of the overseas or other editions.

I am sorry to tell you that the translation of 'Mantra' has not yet been published in any magazine. In view of the high quality of your work, I am not prepared to have it. Published in any but the first rate magazines. Me—Sato and other friends also are of the same opinion. 'Kaizo' in which the translation of 'Mukati Marg' was published is not only the greatest magazine in Japan, but is also one of the greatest in the world. I saw the President of Kaizo at the beginning of this year and he promised to find room for the translation of 'Mantra' at his earliest possible convenience. But very soon after out meeting he sent one of his staff members asking me to write an article on Mrs. Sarojini Naidu who was expected here in those days. I did write the article and strange to say it was published when the Newspapers had just given publicity to the news that she had postponed her trip to this country.

In Japn it is almost an honour and privilege for a writer to have his stuff published in any of the two or three first rate magazines. The result is that there is always a sort of struggle between the writers to have their compositions go into print. The magazines on their part have made it a point to have one or two compositions only from one writer in the course of a year. They make exceptions of course, but in the case of very very well-known writers

or specialists. As I had publicity in the middle of this year the Kaizo people have promised to find room for the translation in the beginning of 1930. I shall send you a copy as soon as it is published.

Now as I have enough to time to do the work, I would like very much to translate some seven or eight more of your stories and then bring all the translations out in book form. But the cruse of the situation is that my financial position is not very encouraging now and it requires a great deal of money to pay for the wages of the Japanese gentleman who takes the dictation and polishes the language. Nevertheless, I am now making plans to get rid of this financial difficulty of mine, but what I lack is material.

In your last year's letter you were good enough to assure me that you had instructed your publishers to send me a number of your works. I am sorry to note that none of them ever reached me. I shall be obliged now if you will kindly look into this matter personally and see to it that a complete set of your works autographed by you is send to me by Registered Post at the earliest possible opportunity. I have with me a copy each of—

1. Sapta Saroj 2. Nava Nidhi, 3. Prem Dvadashi

and I would like to have all the other books except these three. Last year I asked my friend Mr. Chughtai of Lahore to send you the few rupees which he owed me and he told me that he did. I shall send you some more money within this month to cover the expenses of all these books.

People in Japan have very high opinion of your writings. It is pity that they have not enough of it to read in their own language and it is my earnest desire to remove their handicap if I can.

Dr. Tagore visited us twice this year, while he was on his way to America and then when he was on his way back home. I was with him practically every day as he has always been exceptionally kind to me. But, in my humble opinion, your books are sure to find more appreciation in Japan than those of Dr. Tagore. In the first place, the Japanese have read too much of Gurudev and they want to know something different from his line, and then you have a peculiar touch which no other writer in India possesses and which appeals to Japanese nature. Gurudev has a world-wide reputation and people buy his books out of curiosity also. Your works if translated may not command a widen sale but they are sure to be commended on will and reach appreciative hands mostly. If there is any income from the sale of your translation I would like very much to send you in the near future.

I read your stories in the 'Vishal Bharat', in fact I am subscribing for

that magazine because of your stories only and am renewing my subscription for the coming year also. Vishal Bharat, I find, is more or less a replica of the Moderns Review. It has pained me to learn that your writings though highly praised throughout the length and breadth of our motherland are not so well patronized by the reading public. As you know well one of the saddist features of our life is that there is practically no appreciation of true art. On the one hand there is the quite...spectre of poverty, on the other hand there is the intelligentsia which has been fed on a very spurious education and is thus inclined to patronize spurious writings. Our people, further more, do not yet know how to create a taste and how to educate the reading public to spend its hard earned money on worth reading books. It is the paramount duty of our publishers to do this as they do in Japan or America.

I have been in the journalistic world for almost fifteen years now and have learnt a great deal from the many vicissitudes of life. I have had to pass through. I wish I could be in India to co-operate with you and popularise not only your writings, but those of other high-class writers of our mother tongue as well of the Indian publishers. The proprietors of 'Chand' magazine only so far as I can judge, are making use of modern methods of publicity of push the sole of their publications, no matter whether they are worth their price or not.

The Japanese public is not so indifferent towards India as you could have inferred from the Japan Times. There is a whole lot appearing in the vernacular press on India always and it is the vernacular press which counts in this country; the English language newspapers are published for the foreign residents only and they enjoy a very limited circulation because the Japanese do not care a fig for them. The vernacular press in Japan is very powerful and some of the newspapers compae favourably with many of the best in any part of the world. Every one subscribes for one or two daily newspapers no matter whether he is a policeman or a street scavenger. The name of Mahatma Gandhi is quite a house hold term in Japan. He commands more respect than any other Indian, or perhaps European figure in the world to-day. It he ever cared to come to Japan, the general public with grow crazy to have his 'Darshan' or autograph. It is a pity that the Indian leaders do not come to Japan; they go always to Europe and America, and, it is very difficult for the Japanese to know Indian unless our people care to come and have heart-to-heart talks with them. A few of us, who live here do all we can to make India known to the Japanese, but our means are more than limited, most especially as we have to eke out a precarious existence also by bone breaking exertions.

The recent floods in India seem to have created quite a havoc in the

north. I learn that my people also suffered a great deal. Had it been in Japan the entire nation would have stood by the sufferers and the governmental machinary as well as coffers would have been taxed to their limits to alleviate not only the sufferings of the populace but to restore their homes and re-establish them in their former lives.

Poor Punjab, which has suffered so much from the onslaughts of nature, now finds itself in a reign of terror created by the police persecutions. It is in Punjab only. I should say in India only that you can beat the undertrial prisoners so as to bring blood out of their bodies and let the police go scot free. In view of the atmosphere, which the police has created, one can only infer that the Viceroy's announcement and the hopes held out by the labour government for a Dominion government in India are the latest effort to throw dust into the eyes of the people and furthermore drive a monkey wrench among the ranks of nationalist workers. It is a great pity that while there is an awakening in the Muslims world everywhere, the Indian Muslims only allow themselves to be made tools of by the foreign rulers of their country and block the progress of their common motherland towards Swaraj.

I would, by the way, request you to write a few short stories on patriotic themes by driving inspiration from the recent struggles which our youngmen has...made to emancipate their down-trodden motherland. The Japanese will be very eager to read their translations which I promise to make as soon as I receive the original stories.

Please be good enough to favour me with one of your latest photographs with your autograph (on the photo itself) and also a short sketch of your life. I would like to write something about you in Japanese.

With best wishes,

Most Sincerely yours, Keshoram Sabarwal.



Lucknow, 12-12-1929

My dear Ramji,

Glad to receive your letter. I have no objection to your volunteering your services abroad, if the prospects are favourable. Rs. 60/- plus board and lodge is not bad offer. Even if you stay 5 years, you can lay by some 3000/-. Here there is no such life. There you will get chances of seeing strange lands, strange people and return home a wiser man.

I am going to start a monthly magazine possibly from Basant Panchami. Kanhaji is going to co-operate. You will have material to write on manners and customs of foreign lands.

I should lose no chance..... (शेष अंश फट गया है—गोयनका)

(राम जी प्रेमचन्द के भतीजे थे, जिन्हें घर के लोगों ने विदेश जाने नहीं दिया।)

●●

लखनऊ, 12 दिसम्बर, 1929

प्रिय राम जी,

तुम्हारा ख़त पाकर खुशी हुई। अगर तुम्हें अच्छी संभावनाएँ दिखायी पड़ती हों तो तुम विदेश भेजे जाने के लिए अपनी रज़ामंदी ज़ाहिर करो, मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है। साठ रुपया और खाना और मकान बुरा ऑफ़र नहीं है क्योंकि अगर तुम पाँच साल रह गये तो क़रीब तीन हज़ार रुपया बचा लोगे। यहाँ पर ऐसी कोई उम्मीद नहीं है। फिर तुम्हें अनजाने देशों के देखने का, नये लोगों से मिलने का मौका मिलेगा और जब तुम घर लौटोगे तो काफ़ी जहाँदीदा आदमी होगे। मैं बहुत करके बसंत पंचमी से एक मासिक पत्रिका निकालने जा रहा हूँ। कान्ह जी सहयोग देने वाले हैं। तुम्हें विदेशों के रस्म-रिवाज पर लिखने के लिए मसाला मिलेगा।

तुम्हें मौक़ा न छोड़ना चाहिए...........

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 14 दिसम्बर, 1929

भाईजान,

तसलीम। मैं इस शब को मजबूरन रह गया। जिस काम के लिए गया था वह न हो सका। दूसरे दिन सुदर्शन जी से मुलाक़ात हुई। 9 बजे। आप इस वक़्त कालेज जाने के लिए तैयार होंगे, इसलिए मैं न हाज़िर हुआ। इसकी तलाफ़ी[1] (क्षति पूर्ति, मार्जन) करूँगा।

जी हां, रिसाला बनारस से निकल रहा है लेकिन मैं बनारस नहीं जा रहा हूँ। कुछ लिखता रहूँगा। मेरे मैनेजर साहब निकालते रहेंगे। ज़माना के लिए कुछ लिखूँगा। हां खूब याद आया, मैंने आपका मुख़्तसर-सा स्केच भारत में भेज दिया है। अब वह मुझसे आपका ब्लाक मांग रहे हैं। कोई फ़ोटो या ब्लाक या तो भारत को भेजिए या मेरे पास। मैं भेज दूँ। मगर जल्द। और सब ख़ैरियत है। रीडरें तो आपने शुरू कर दी होंगी। वस्सलाम।

धनपत राय।

●●

काशी विद्यापीठ, बनारस, 19 दिसम्बर, 1929

प्रिय श्री प्रेमचंद जी, सप्रेम नमस्कार,

आपका कृपापत्र मिला। मैं इधर दस-ग्यारह दिन से बीमार हूँ। इस कारण उत्तर अब तक न दे सका था। क्षमा कीजिएगा। जिस वक्त मैं कानपुर से रवाना होने लगा उस वक्त श्री हीरालाल के नौकर से मालूम हुआ कि आप आये हुए थे। ट्रेन में ही कुछ तबीयत ख़राब हो गयी। मुझको श्वास रोग है। जाड़े में इसका दौरा हो जाया करता है। जब होता है तब दस-पन्द्रह दिन लेता है।

आपका अनुवाद बहुत अच्छा है। मैंने कुछ अंश देखे हैं। अनुवाद शीघ्र ही छपेगा। पुरस्कार के संबंध में जवाहरलाल जी से कानपुर में बातें हुई थीं। प्रकाशक उनको रायल्टी दे रहे हैं। उसी रायल्टी में से आपका भाग होगा। यदि आप रायल्टी न पसंद करें तो एक मुश्त रक़म आप ले लें। प्रेस वाले जवाहरलाल को थोड़ी ही रायल्टी दे रहे हैं। आप विचार करके लिखें। अब कांग्रेस के बाद ही इसका कुछ निश्चय हो सकेगा।

भवदीय, नरेन्द्रदेव

●●

अंजुमन तरक़्क़िए-उर्दू, औरंगाबाद (दक्कन),
20 दिसम्बर, 1929

मुकर्रमी-ओ-मुहज़्ज़िमी,

तसलीम ! एक ज़ेहमत देता हूँ, उम्मीद है कि आप अज़राहे-करम इसे गवारा फ़रमायेंगे। मुझे मिडिल की रीडर के लिए बनारस पर एक सबक़ की ज़रूरत है। हर चन्द मैंने कोशिश की, कोई ऐसा शख़्स तलाश किया जाय जो बनारस शहर से वाक़िफ़ हो और सबक़ लिख दे, मगर मेरे जानने वालों में कोई न मिला। लाचार मुझे आपकी ख़िदमत में दरख़्वास्त करनी पड़ी। आपसे बेहतर कोई नहीं लिख सकता। सिर्फ़ रीडर के 6 सफ़े होंगे। अगर आप ये सब लिख दें तो मैं बहुत मम्नून (आभारी) हूँगा। अगर आपको फ़ुर्सत न हो तो किसी दूसरे साहब से लिखवा दीजिए। मैं इसका मुआवज़ा देने के लिए बख़ुशी आमादा हूँ। मुझे उम्मीद है, आप मेरी यह दरख़्वास्त ज़रूर कबूल फ़रमायेंगे। मैं बेहद मजबूरी में आपको यह तक़लीफ़ दे रहा हूँ, वरना मैं ऐसे काम के लिए आपको कभी तकलीफ़ न देता। क्योंकि इसकी जल्दी है, इसलिए उम्मीद है कि जल्द जवाब से इनायत फ़रमाया जायेगा।

आपका नियाज़मन्द, अब्दुल हक़।

●●

सं. 1582 सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी, 30.12.1929

श्रद्धास्पद भाई साहब, वन्दे !

आपके पत्र यथासमय प्राप्त हो गये। वृत्त विदित हुआ। 'हंस' के ग्राहक बन रहे हैं; पर अभी मामूली तौर पर ही। शायद 'प्रताप' वग़ैरा से कुछ लाभ हो। मैं एक क्रोड़-पत्र 'प्रताप' में बँटवाने की चेष्टा में हूँ; क्योंकि विज्ञापन में दाम भी अधिक लग जाता है और पूरा विज्ञापन भी नहीं हो पाता। क्रोड़-पत्र से अधिक लाभ होने की संभावना है।

व्यास जी ने अभी तक कोई उत्तर नहीं दिया है। मैंने तार दिया था। मामला समझ में नहीं आता। लगभग 150 रु. निकलेगा। बिल उनके पास गया है—बहुत पहले।

'हंस' का विज्ञापन जब हम कर चुके तो अव डरने से काम न चलेगा; पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हानि न हो पायेगी। मैं शतशः प्रयत्न करके ग्राहक बनाऊँगा और नुक़सान नहीं होने दूँगा। प्रथम मास में हमें 200 ग्राहक अवश्य मिल जायेंगे; अर्थात् 200 ग्राहकों का चन्दा प्राप्त हो जायगा। इसी प्रकार 6 अंकों तक 500 ग्राहक हुए समझ लेना चाहिए। नुक़सान से जिस प्रकार आप डरते हैं; उसी प्रकार, बल्कि उससे भी अधिक मैं भी डरता हूँ; पर किसी व्यवसाय को साहस छोड़कर करना पसन्द नहीं करता। व्यवसाय

तो साहस का ही है। यह आपने बहुत ही शुभ किया कि व्यापार का हिस्सेदार खोज लिया। इससे बढ़कर और क्या होता ? पर हिस्सेदार का क्या-क्या रहेगा, ज़रा यह मुझे समझा दीजिए। आज इस हिस्सेदारी की बात पढ़कर मुझे भी एक बात याद आ गयी। कुछ समय हुआ, राय कृष्णदास जी तथा प्रसाद जी वग़ैरा ने भी प्रेस की प्रगति देखकर यह इच्छा बड़े प्रबल रूप में प्रकट की थी कि "अगर सरस्वती प्रेस को लिमिटेड कर दिया जाय, तो बड़ा शुभ हो। हम अपनी सीरीज़ भी उसी में शामिल कर दें, मकान भी उसी में मिला दें और 15-20 हज़ार नक़द ख़र्च करके प्रेस का वृहद् रूप कर दें। प्रेमचन्द जी लिखें, प्रसाद जी लिखें, हम लिखें, आप लिखें और हमारी पुस्तकों का प्रकाशन अपने ही यहाँ से हमेशा हो। एक फौंड्री भी कर ली जाय।" आदि, पर मैंने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। बहुत समय हुआ, भाई साहब से भी ज़िक्र किया था; पर यह सोचा गया था कि कभी यहाँ आयेंगे, तो चर्चा किया जायगा। पर अभी तक अवसर नहीं मिला। इधर भी. बातों में उन लोगों ने इशारा किया; पर लिखने का मुझे अवसर नहीं मिला। राय कृष्णदास जी का कथन था कि लिमिटेड करके 'हंस' को उच्च कोटि का पत्र बनाया जाय। चित्रों का तथा कलात्मक साहित्य का उनके पास अखण्ड भण्डार है, वह सब वे उसमें प्रकाशित करने के लिए देने को कहते हैं। अगर आपकी समझ में यह बात आए, तो लिखिएगा। उनसे विचार किया जायगा। जल्दी नहीं है, न आवश्यक ही है, अगर उचित समझें तो विचार करें।

बैंक वाली बात पर विचार करके मैं इसी निश्चय पर पहुँचा कि आप एक चेक-बुक पर हस्ताक्षर करके तुरन्त भेज दें। मैं रुपया जमा करके उतना ही आवश्यकतानुसार लेता रहूँगा। इस प्रकार कुछ जमा होता रहेगा। आपके पास जो जमा है, उन्हें मैं व्यवहार न करूँगा। इस प्रकार चेक के व्यवहार से प्रेस की पोज़ीशन बढ़ेगी। अस्तु, मुझे पहले भी विश्वास था, अब भी है; पर मैंने या आप ही ने मेरी जैसी स्थिति बना दी है, उसके लिए इस प्रकार का बैंक का हिसाब आवश्यक था। अब यही विधि उत्तम है; न आपको चिन्ता, न मुझे। आपने भाई साहब के बारे में जो कुछ लिखा है, सो ठीक ही है। मेरे अभी तक के कार्यकाल में मैंने कोई बात ऐसी न की जो उन्हें मालूम न हो। मैं तो एक-एक बात पर खूब विचार करके, तब आगे बढ़ता हूँ और उनके सात्त्विक-साधु व्यवहारों के प्रति आपसे अधिक श्रद्धा-भक्ति रखता हूँ। मैं अपना बुजुर्ग ही उन्हें समझता हूँ सच्चे दिल से—इसे मेरे हृदय में पैठकर ही कोई देख सकता है। अस्तु।

हाँ, एक बात की आपको याद दिलाता हूँ। जिस समय आपने यह प्रेस मुझे सौंपा और आपके-मेरे बीच जो ख़त-किताबत हुआ था, उसमें आपने यह तय किया था कि 50 रु. ब्याज, 50 रु. लाभ-हानि वग़ैरह तथा मासिक वेतन ख़र्च और मेरा एलाउंस 50 रु. मासिक वगैरह निकालकर तीन हिस्से होंगे—जिनमें एक मेरा, एक आपका, एक भाई साहब। पर इस समय के पत्र में आपने हिस्सेदारों की संख्या चार कर दी; अर्थात् श्री मेहताब राय जी तथा रघुपति सहाय जी की संख्या बढ़ गई। पहले भाई साहब और आप ही मुख्य प्रेस के हिस्सेदार थे। मुझे आपने लाभ में तृतीयांश देने का वचन दिया था, सो क्या आप उस बात को भूल गये या इस समय आपको ध्यान नहीं रहा ? ज़रा स्पष्ट कर दें। हिस्सेदार आपके साथ दस-हों, मुझे एतराज़ नहीं, मैं तो अन्तिम लाभ में तृतीयांश चाहता

हूँ, गोकि अभी लाभ रखा ही क्या है, फिर भी कुछ-न-कुछ होने की आशा है ही। आज नहीं, तो कल होगा। पुस्तक-व्यवसाय में क्योंकि हमारा साझा है ही नहीं; अतएव इस विषय में कुछ कहना नहीं है। सालाना हिसा़ब अब 8-10 रोज़ में बनाये लेता हूँ। आपके पास भेजूँगा। सर्दी यहाँ अभी तक का़फ़ी पड़ रही है। दो-एक रोज़ से कुछ कम है।

पैड परसों या चौथे रोज़ रवाना करूँगा। इधर कार्याधिक्य से छप नहीं सका। कल छपेगा। विनोदशंकर ने भी एक सीरीज़–'वाणी-विनोद पुस्तकमाला' का आरम्भ कर दिया। वह अच्छी पद्धति से काम करना चाहता है। दो पुस्तकें–(1) 'एक घूँट' (प्रसाद) (2) 'भूली बात' (विनोद) अपने यहाँ से छपी हैं–40 पौण्ड एण्टिक पर। छोटी-छोटी हैं, पर गेटअप ग़ज़ब का है। और किताबें लिखवा रहा है। आपसे एकाध किताब लेने की फ़िक्र में है।

आपने जिस प्रकार का विज्ञापन बनाकर भेजा था, उतनी ही बातों को रखने का विचार ठीक होगा। कहानियाँ तो मुख्य होंगी ही; अन्य विषयों को भी छोड़ना न चाहिए। इससे हमें सब प्रकार के ग्राहक जुटाने में सुविधा होगी। प्रथमांक के लिए गणेश जी का लेख अगर न मिले, तो चिन्ता नहीं। 'हंस' राजनीतिक पत्र ही न होगा यह ठीक है; पर जहाँ तक के लिए आप विचार कर चुके हैं, वहाँ तक तो कुछ-न-कुछ निबाहना ही चाहिए। किसी प्रकार युवक-दल का साथ रहना आवश्यक ही है। sexual विषय भी लोकप्रिय हो सकता है।

शिवपूजनजी बाहर, लहरिया सराय, चले गये हैं। फिर भी उनसे कुछ मिल जायेगा। वे जल्दी ही आयेंगे शायद। बा़क़ी यहाँ के सभी लेखकों से मैं अवश्य ही कुछ-न-कुछ लेता रहूँगा। कुछ लोगों से भेंट हो गई है, कुछ शेष हैं। उनसे मिलकर कुछ लेने की भी चेष्टा करूँगा। आप दृढ़ होकर शुरुआत कीजिए, हिचकने की आवश्यकता नहीं।

हाँ, आपने जो रंगीन चित्र बनवाया है, क्या उसे मैं भी देख सकूँगा ? कवर पर रंगीन चित्र रहा करेगा ? अगर अन्दर भी एक-दो सादे चित्रों का प्रबन्ध हो जाय, तो अचित्र होने का कलंक मिट जाय।

रमेशप्रसाद मिश्र भी तो वैज्ञानिक विषय पर अच्छा लिखा करते हैं। आपसे तो परिचय होगा, उनसे भी कुछ लेने का प्रबन्ध हो।

इधर जनवरी मास आ रहा है। प्रेस के कर्मचारीगण कभी से जान खाये हुए हैं कि वेतन-वृद्धि होनी चाहिए। गोकि अभी सन्तोषजनक स्थिति नहीं है; पर जो कुछ भी है, उसके अनुसार उनकी बात पर ध्यान देना आवश्यक है। आप क्या समझते हैं ? क्या सम्मति है ?

मुझे मालूम हुआ कि आपने भाई साहब को 125 रु. मार्ग-व्यय के रूप में दिया है। मैं चाहता हूँ, इधर भी कुछ दिया जाय–स्थिति तो आपके समय से अच्छी ही है। अभी एकदम देने की परिस्थिति तो नहीं है; पर समय-समय पर किसी प्रकार पूर्ति कर दी जाय। गुरुराम जी से मुझे मालूम हुआ। भाई साहब तो कभी कहने वाले नहीं, उनसे तो मुझे कभी मालूम ही नहीं होता। सब बातों का उत्तर शीघ्र दीजिएगा।

आपका, प्रवासी।

कुम्भ के मेले में दुकान रखना तो झंझट होगा। इसलिए यह विचार किया है कि

कुछ तो नोटिस बँटवा दिये जायेंगे और सब दुकानों पर किताबें बिकने का प्रबन्ध कर दिया जायगा। यही करूँगा।

प्रवासी।

••

कानपुर, तिथि नहीं। अनुमानतः अप्रैल, सन् 1929

भाईजान,

तसलीम। बिला इत्तिला आया और क़रीबन् दो घंटे के इंतज़ार के बाद अब जा रहा हूँ। यह क़िस्सा ज़माना के लिए लिखा है। पसंद आये तो दे दीजिएगा इसमें कहीं अल्फ़ाज़ underlined नज़र आयेंगे। वह हिन्दी मुतर्जिम (अनुवादक) ने बनाये हैं। उनके कुछ मानी नहीं हैं। वस्सलाम।

धनपत राय।

••

25, Marwari Gali, Lucknow
सम्भवतः जनवरी, 1929

My dear pandit ji,

I request to say that although in my previous letter I urged upon an early reply you have paid no attention to my request. Neither I have received the statement nor the money. Are you still thinking that the profits are to be divided when the whole invested amount is finalized ? I don't think so. Our agreement was that the profits were to be divided equally after deducting all the expenses. Does it mean that the whole investment must be realised before the profits are allotted. This is in my opinion an erroneous view. Suppose I would have added one more book to the series this year, which would have required an investment of Rs. 3000/-. Then I should have waited till you had realised this 3000/- as well. Suppose again the next year another book were out, then a fresh investment would have to be made. If you hold this view, the time of allotment of profits would never come, for some of your money will always remain invested in stock and no allotment would ever be possible. And when your total investment is realised what interest you will have in pushing the sale of books. The sale will slacken as the time goes on and you having entirely on the safeside, I shall be first to heavy loss. You know very well that I could have sold off the books and they would have fetched at a very low estimate about Rs. 2200/-. The correction of proofs would not have concerned me. Is this not an investment on my part ? Has my labour no value? This 2200/- would have given me an annual interest of 132/-.

From the schedule you gave me last year, it appeared that there was a profit of Rs. 1700/-. Some of the items were miscalculated, for example 33%

was done off on the entire sale, where as some of the books must have been sold to the customers in retail. Taking into consideration the money invested, a net profit of 850/- is by no means unsatisfactory. The total investment was 5000/- all this was not cash. The paper was purchased on credit. There should be a deduction of 4% as commission on all the paper used. Then the advertisement charges should also be proportionately reduced as some books other than those of the series were included. Taking these facts into consideration and deducting an interest of Rs. 1/- there is still a decent margin, and about a third part of the capital has been realised.

I have already written that this year my dauthter's marriage would be settled. I would require all the profit due to me upto date.

I request you to consider over the matter from both points of view and not hurry up to fill your own pocket. The stock is with you. Is it not a sufficient guarantee ?

I intended to came to Benares on the 6th Feb., but as I have got no letter from you and I doubt if you will pay the amount. I shall wait the money at Lucknow.

A friend of mine Mr. Sudarshan has entered into similar agreement with Macmillan and Co. He is receiving his ½ Profit every sixth month. I fail to see why you should give the agreement different from what is actually is.

Hoping this finds you all right.

Yours, Dhanpat Rai.



सम्भवतः नवम्बर, 1929

(प्रस्तुत पत्रांश पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने लेख 'घासलेट-विरोधी आन्दोलन का उपसंहार' में उद्धृत किया है। यह लेख 'विशाल भारत' के दिसम्बर, 1929 के अंक में छपा था। चतुर्वेदी जी ने प्रेमचन्द को लिखे अपने 15 नवम्बर, 1929 के पत्र में घासलेटी साहित्य के विरुद्ध चलाये गये आन्दोलन पर उनकी प्रतिक्रिया चाही थी। प्रेमचन्द ने जो उत्तर भेजा, उसमें से ही प्रस्तुत अंश उद्धृत किया गया है--गोयनका)

मैं साहित्य में नग्न कुवासनाओं का निदर्शन बहुत ही हानिकारक समझता हूँ। चाकलेट आदि को रोकने के लिए सबसे अच्छा तारीक़ा पैम्फ़लेट छापना है। साहित्य में उसको लाने की ज़रूरत नहीं। अगर कोई आदमी चोरी को रोकने के लिए चोर-कला की व्याख्या करे–यों घर वालों को मिलाया, यों रात को गया, यों ताले को तोड़ा, यों सेंध लगाया, यों घर वालों के जागने पर दुबक गया, फिर सबके सो जाने पर यों माल उड़ाया–तो चोर को चाहे उससे लज्जा आये या न आये, पर ऐसे लोगों को यह कला आ जायगी जो अभी तक चोरी का साहस न कर सकते थे। बहुत से लोग केवल इसलिए वेश्याओं से बचे रहते हैं कि उन्हें उस कूचे की रीति-नीति नहीं मालूम। अगर कोई

वेश्यागामियों को लज्जित करने के इरादे से ही क्यों न हो, उस रीति का रहस्य खोल दे, तो उन लोगों की झिझक दूर हो जायगी और वे खुले खेलेंगे। साहित्य का प्रभाव चरित्र पर बहुत पड़ता है। साहित्य का उद्देश्य ही चरित्र का निर्माण है, इसलिए इस काम में अपने आदर्शों और उद्देश्यों को पवित्र रखना चाहिए। घासलेट साहित्य का आन्दोलन आपने बन्द कर दिया, बहुत अच्छा किया।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, सम्भवतः 1929 का अन्त

प्रिय प्रसाद जी,

आज तो अच्छा हूँ। मैंने आज यह बग़ीचा देखा। लक्ष्मीचन्द जी आये थे, उन्होंने दिखाया। उसके अन्दर एक बारहदरी जैसी है, मगर गुज़र के लायक है। जगह खुली हुई और साफ़-सुथरी है और मुझे पसन्द है। प्रेस के लिए लक्ष्मीचन्द जी बाहर वाले खँडहर पर छत डालने को कहते हैं जिसमें एक हज़ार या कुछ कम ख़र्च पड़ेगा। मैंने किराया पूछा, मगर उन्होंने कुछ बताया नहीं। मुझ पर छोड़ दिया। आप बताइए, मैं उन्हें क्या लिख दूँ ? मुझे बग़ीचे के लिए माली रखना पड़ेगा और सिंचाई का प्रबन्ध भी करना पड़ेगा। अगर ऐसा हो कि आप उनसे तय करा दें तो अच्छा हो, लेकिन इसमें आपको असुविधा होगी। इसलिए आप अन्दाज़ लगाकर बताइए कि मैं उनको क्या आफ़र करूँ। मेरी सीमा 45 रु. से आगे नहीं जाती। 10 रु. का माली भी रखना पड़ेगा। सिंचाई का ख़र्च अलग पड़ेगा।

आपका, धनपत राय।

●●

Hohenzollerndamm
Berlin, Wilmersdorf, Germany
सम्भवतः 1929 का आरम्भ

प्रिय प्रेमचन्द जी,

मेरा पत्र आपको पहुँच गया होगा, परन्तु मुझे उसका उत्तर अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। बनारस कार्यालय से 'हंस' भी नहीं आया। मैंने आपसे प्रार्थना की थी कि आप मुझे 'हंस' बराबर भिजवाते रहिएगा। बनारस कार्यालय से भी मैंने यही विनती की थी, परन्तु अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला। आप मुझे 'हंस' के सब अंक रवाना करवा दीजिये। मैं उनको देखकर 'हंस' के लिए कोई न कोई लेख भेजूँगा। आपका नया उपन्यास 'प्रतिज्ञा' एक बड़ी उत्तम रचना है। पढ़ते-पढ़ते हृदय आनन्द से प्लावित हो गया था।

अब मैंने 'कायाकल्प' पढ़ना शुरू किया है। Please favour me with a short autobiography. 'माधुरी' के लिए भी मैं लेख भेजूँगा।

भवदीय, ताराचन्द राय।

●●

Vishal Bharat, 91, Upper Circular Road,
Calcutta. (सम्भवतः नवम्बर, 1929)

My dear Prem Chandji,

Do come to stay with me. We shall be quite happy. The Editor of the 'Vishal Bharat' will cook for you. Though you may not relish his very simple dishes, there will be real श्रद्धा behind them which connot be found in hotels or public kitchens. I am staying here at the office. Please inform me of your arrival.

I can easily arrange for your ticket. Do not bother about it please. It has almost been arranged.

I have so many things to talk about. I read a letter in the 'Bharat' in my defence. Is it yours ?

Hoping you are quite well.

Please send me a story if you can. We want one story for Dec. and one for January.

Yours Sincerely, B. Das.

●●

'हंस' कार्यालय, सरस्वती प्रेस, काशी, 18-1-1930

प्रिय जनार्दन प्रसाद झा,

तुम्हारा 'हंस' अब घोंसले से निकलने जा रहा है। होली को वह निकलेगा, लेकिन उड़कर वृक्ष तक पहुँचेगा या बीच ही में गिर पड़ेगा, यह हम लोगों के उद्योग पर है। तुम्हारी परीक्षा सिर पर है। यह जानता हूँ, लेकिन फिर भी तुमसे एक कहानी का अनुरोध करता हूँ। जनवरी के अन्त तक भेज दो, ज़रूर ! मेरी इच्छा है कि तुम इसके स्थायी अंग बन जाओ। मुझे विश्वास है, घाटा नहीं रहेगा। मैं चाहता हूँ कि सभी गल्पकार अपनी अच्छी-से-अच्छी कहानियाँ हमारी पत्रिका में दें। इस विषय में हमारी पत्रिका सर्वश्रेष्ठ हो जाय। बोलो, लिखते हो ? कब तक ?

'माँ' तुम्हें पसन्द आई थी। मुझे भी बहुत पसन्द थी।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

गली बताशान, देहली, 19.1.1930

बिरादरे मोहतरिम, आदाबो-नियाज़ !

अपने मजमुआए-क़लाम सौसूमा (नामधारी) 'मतलाए-अनवार' की एक ज़िल्द आपकी ख़िदमते-बाबरक़त में बसबीले रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट इर्साल करता हूँ। उम्मीद है, आप इसकी मुताले से बगायत लुत्फ़-अन्दोज़ होंगे। बराहे-करम 'माधुरी' की किसी क़रीबी इशाअत में उस पर एक बरज़स्ता (तुरन्त) और पुरज़ोर रिव्यू फ़रमाइए। आपको बख़ूबी याद होगा, उस किताब का दीवाचा लिखने के लिए साले-गुज़िश्ता (विगत वर्ष) मैंने आपसे दरख़्वास्त की थी, लेकिन बसबब मसरूफ़ियत और अदमे-फुरसती (फुरसत के अभाव में)

आपने उसे क़ाबिले-इल्तफ़ात (जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक हो) तसव्वुर (विचार) न फ़रमाया। यह फ़र्ज़े-मुक़र्रमी ख़ाँ साहब और असगर साहब ने अदा कर दिया। अब मुझे यक़ीने-वासिक़ (दृढ़ विश्वास) है कि आप 'मतलाए-अनवार' पर एक बसीत और मुदल्लल (विस्तृत और तर्कसंगत) तनक़ीद (समीक्षा) फ़रमाने से पहलूतिही (उपेक्षा) न फ़रमायेंगे। कई रिसालों और अख़बारों में नस्रोनज़्म (गद्य और पद्य) पर रिव्यू आपकी नज़र से गुज़रे होंगे, लेकिन किसी हिन्दी रिसाले में कोई तनक़ीद ताहनुज़ (अब तक) शाया नहीं हुई। इसलिए आप इस कमी को ज़रूर पूरा फ़रमायें। ऐन नवाज़िश होगी। रसीदे-किताब से ममनून फ़रमाइए।

अगर आप ज़रूरी और दुरुस्त ख़याल फ़रमायें तो मैं अपनी तस्वीर का ब्लॉक भी, जो मेरे पास मौजूद है, रिसाले-ख़िदमत कर सकता हूँ।

ख़ाकसार, महाराजबहादुर 'बर्क़' देहलवी।

●●

सल्तनत मंज़िल, सैफ़ाबाद, हैदराबाद (दकन)
21 जनवरी, 1930

मेरे इनायत फ़र्मा,

तसलीम। आपने अज़ राहे करम एक हफ़्ते में बनारस पर मज़मून लिख देने का वादा फ़रमाया था। मैं अब तक उसका मुन्तज़िर रहा। अब याद दिहानी करता हूँ। मुझे उसकी बहुत शदीद ज़रूरत है। इनायत फ़र्माकर जहाँ तक जल्द मुमकिन हो, रवाना फ़र्माइए। बहुत ममनून हूँगा।

नियाज़मंद, अब्दुलहक़।

●●

माधुरी कार्यालय, लखनऊ, 22 जनवरी, 1930

प्रिय हरिहर नाथ जी,

मैंने बड़े चाव से आपकी सुन्दर और अत्यंत आवेगपूर्ण चीज़ पढ़ी। इसमें बहुत आग है और बहुत दर्द, पर कहानी के आवश्यक तत्त्व—कोई विचार, कथानक और चरित्र—इसमें नहीं हैं और इसलिए यह चीज़ गद्य काव्य है, कहानी नहीं। अगर आपकी रुचि इसी ओर हो तो ज़रूर लिखिए, पर थोथी भावुकता से बचिए। सृजनशील मन को सृजन करना चाहिए—किस चीज़ का ? चरित्रों को उजागर करने वाली परिस्थितियों का। युवक को आशावादी भावना से लिखना चाहिए, उसकी आशावादिता संक्रामक होनी चाहिए, जिसमें कि वह दूसरों में भी उसी भावना का संचार कर सके। मेरा खयाल है कि साहित्य का सबसे बड़ा उद्देश्य उन्नयन है, ऊपर उठाना। हमारे यथार्थवाद को भी यह बात आँख से ओझल न करनी चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप 'मनुष्यों' की सृष्टि करें, साहसी, ईमानदार, स्वतंत्रचेता मनुष्य, जान पर खेलने वाले, जोखिम उठाने वाले मनुष्य, ऊँचे आदर्शों वाले मनुष्य। आज इसी की ज़रूरत है। निश्चय ही मानव प्रकृति चुक नहीं गयी। इस तरह की रचनाएँ, मुझे आशंका है, लोकप्रिय नहीं हो सकतीं। माधुरी में तो ख़ैर मैं इसे छापूँगा ही।

मैंने लगभग हफ़्ते भर पहले लिखा था कि हंस क्या है और क्या करने जा रहा

है। मैंने इसके लिए कहानी लिखने और अपनी सुविधानुसार जल्दी से जल्दी भेज देने का अनुरोध आपसे किया था। मेरा लक्ष्य है समालोचनाओं और दूसरे विषयों के अतिरिक्त हर महीने प्रथम श्रेणी की, चुनी हुई, लगभग छः कहानियाँ देना। ज़रूर एक कहानी लिखिए। हिन्दी साहित्य के हमारे नवयुवक लेखकों का भविष्य उज्ज्वल है। लेकिन आप भी जानते हैं कि अपनी ख़ास जगह बनाने के लिए नियमित रूप से, लगन से और धीरज के साथ काम करना ज़रूरी है।

आशा है मुझे आपका आश्वासन मिलेगा कि आप हंस के लिए लिख रहे हैं।

भवदीय, धनपत राय।



Madhuri Office, Lucknow, 22 January, 1930

My dear Hariharnathji,

Your beautiful and intensely passionate piece I read with much interest. This is full of fervour and pathos, but the essentials of story—an idea, plot and character—these are lacking and hence it is a गद्यकाव्य and not a story. If your taste ties that way, do it by all means but avoid sentimentalism. A creative mind should create—what ? Situations to illustrate characters. A young man should write in an optimistic mood, his optimism should be infectious, it should infuse the same spirit in others. I think the highest aim of literature is to uplift, elevate. Even our realism should not lose sight of this fact. I would rather see you creating 'men', bold, honest, independent men, adventurous, daring men and men with lofty ideals. This is the need of the hour. Certainly human nature has not been exhausted. Such pieces, I am afraid, cannot be popular. I shall publish it in Madhuri, of course.

I wrote about a week ago what Hans was and what it was going to do I requested you to write a story for that and send it to me at your earliest leisure. My ideal is to give first class, Choice stories, about half a dozen every month, besides reviews and other subjects. Do write a story. There is a bright future before our young authors in Hindi literature. But you know as well as I that distinction is the fruit of systematic devotion and application and patient work.

Hoping to get an assurance that you are writing for 'Hans'.

Yours Sincerely, Dhanpat Rai.



D.o. No. 24/VC. 30

University of Allahabad,
Senate house, Allahabad, January 23, 1930

Dear Sir,

Your letter of the 21st.

Much as I sympathize with the cause that you have taken up, I think that the only remedy lies in some practical steps that might be devised for bringing home to our young men the futilities of fashionable life. Articles either in newspapers or in magazines are in the first place read by very few people and even those who read them ridicule them and do not derive any benefit. Fashion, to my mind, has to be combatted by fashion and not by any theoretical disquisitions.

As for contributing an article to your magazine, I am afraid that until the summer vacation I shall be unable to do anything serious. Now-a-days I am spending my days on the banks of the Sangam; after that we shall have the rush of the University meetings and of the University-examinations. I hope you will kindly excuse me.

Premchand, Esq. — Yours faithfully,
Sarasvati Press, Kashi, Benares. — Ganganath Jha, Vice-Chancellor

●●

हंस कार्यालय, सरस्वती प्रेस, काशी, 24.1.1930

प्रिय प्रसाद जी,

पहले मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं 'कंकाल' पर आपको वधाई दूँ ! मैंने इसे आदि से अन्त तक पढ़ा और मुग्ध हो गया। आपसे मेरी जो पुरानी शिकायत थी, वह बिल्कुल मिट गयी। मैंने एक बार आपकी पुस्तक 'समुद्रगुप्त' (यह पुस्तक 'स्कन्दगुप्त' थी–गोयनका) की आलोचना करते हुए लिखा था कि आपने इसमें गड़े मुर्दे उखाड़े हैं। इस पर मुझे काफ़ी सज़ा भी मिली थी, पर जो लेखनी वर्तमान समस्याओं को इतने आकर्षक ढंग से जनता के सामने रख सकती है, इस तरह दिलों को हिला सकती है, उसे, फिर वही बात मेरे मुँह से निकलती है, क्षमा कीजिए, पूर्वजों की कीर्ति का भविष्य के निर्माण में भाग होता है और बड़ा भाग होता है, लेकिन हमें तो नये सिरे से दुनिया बनानी है। अपनी किस पुरानी वस्तु पर गौरव करें ? वीरता पर ? दान पर ? तप पर? वीरता क्या थी ? अपने ही भाइयों का रक्त बहाना। दान क्या था ? एकाधिपत्य का नग्न नृत्य और तप क्या था ? वही जिसने आज कम-से-कम 80 लाख बेकारों का बोझ हमारी दरिद्र जनता पर लाद दिया है। अगर 5 रुपये प्रतिमास भी एक साधु की जीविका पर खर्च हो तो लगभग 20 करोड़ हमारी गाढ़ी कमाई के उसी पुराने तप के आदर्श की भेंट हो जाते हैं। किस बात पर गर्व करें ? वर्णाश्रम धर्म पर, जिसने हमारी जड़ खोद डाली ? 'कंकाल' में एक समाज के सच्चे हितैषी की आँखों का गर्म, बड़ी-बड़ी बूँदों वाला आँसू है। घंटी और यमुना दोनों का क्या कहना! मैं 'हंस' में इसकी बृहद् आलोचना करूँगा।

'हंस' का नाम आ गया। आपसे उसके लिए कुछ याचना करूँ ? मैं छोटे-छोटे 'कंकाल' चाहता हूँ या कोई उपन्यास हो तो वह भी बड़े प्रेम और आदर से प्रकाशित करूँगा। काशी से कोई साहित्य की पत्रिका न निकली थी। काशी के लोगों के क़लम

से दूसरे नगरों को फ़ैज़ पहुँचता है और काशी में सन्नाटा ! मस्जिद में दिया जले और घर में अँधेरा ! मैं धनी नहीं हूँ, मज़दूर आदमी हूँ, लेकिन काशी का यह अभाव मुझे लज्जास्पद जान पड़ा और मैंने 'हंस' निकालने का निश्चय कर लिया। धन तो आपसे अभी नहीं माँगता, शायद कभी वह भी माँगूँ, लेकिन आपकी लेखनी की विभूति अवश्य माँगता हूँ। होली तक पत्र निकाल देना चाहता हूँ। सबसे पहला हक़ काशी का है। इसे ख़याल रखिए। पत्र का इन्तज़ार कर रहा हूँ।

भवदीय, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 24 जनवरी, 1930

प्रिय विनोदशंकर जी,

अब की मैं प्रयाग गया तो बाबू राजेन्द्रप्रसाद की बातों से मालूम हुआ कि आप मुझसे नाराज़ हैं और यह इसलिए कि मैंने 'मधुकरी' के लिए आपको कोई गल्प नहीं दी। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने आपसे कह दिया था कि जिन पुस्तकों पर मेरा कोई अधिकार नहीं है उनको छोड़कर आप मेरी जिस पुस्तक से चाहें संग्रह कर सकते हैं। शायद मैंने 'अग्नि समाधि' का नाम भी बतलाया था। आपको वह कहानी अच्छी न लगी लेकिन मेरे कितने ही साहित्यिक मित्रों ने उसे बहुत पसन्द किया।

मैं जो चाहता हूँ वह यह है कि कहानियों के प्लाट जीवन से लिये जायँ और जीवन की समस्याओं को हल करें। कहानी से कविता का काम लेना मुझे नहीं जँचता। यही बात थी जो मैंने किसी पत्र में इशारतन् लिखी थी कि गल्पों के विषय में मेरे और आपके मतभेद हैं। लेकिन इधर आपकी कई कहानियाँ देखकर मुझे मालूम हुआ कि उनके प्लाट अवश्य जीवन से लिये गये हैं–बिल्कुल खयाली, कल्पित नहीं हैं। हाँ, कहानी और गद्यकाव्य में अंतर है, इसे शायद आप भी स्वीकार करेंगे।

गद्यकाव्य हृदय के तारों पर चोट करता है, कहानी से अधिक, क्योंकि वह तो चोट करने के लिए ही लिखा जाता है लेकिन उसकी चोट उस संगीत की ध्वनि के सदृश है जो एक बार कान में पड़कर, एक चुटकी लेकर, ग़ायब हो जाती है। कहानी आपकी आँखों के सामने चरित्रों को खेलते हुए दिखाती है।

खैर, आप 'हंस' के लिए कुछ लिख रहे हैं या नहीं–गद्यकाव्य, गल्प, ऐतिहासिक, कुछ भी हो। उसमें तो सभी चीज़ों की गुंजायश है। आप लिखिए और अपने ही रंग में। 'दीपदान' की-सी चीज़ खूब थी। काशी से निकलने वाली पत्रिका की लाज रखिए।

जवाब जल्द दीजिएगा–होली तक पहला अंक निकाल देना चाहता हूँ।

भवदीय, धनपत राय।



गुरुकुल कांगड़ी (ज़ि. सहारनपुर), 3 फ़रवरी, 1930

मान्यवर प्रेमचन्दजी, वन्दे !

आपका कृपा-पत्र मिला है। इससे पूर्व भी आपकी 'हिमाक़त' का समाचार, यानी नोटिस, किसी अख़बार में पढ़कर मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हुई थी। 'हंस' के लिए यथासम्भव मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा, करने का प्रयत्न करूँगा।

कहानियाँ मैं बहुत थोड़ा लिखता हूँ। जो कुछ लिखता हूँ, उन पर भी 'विशाल भारत' ने एकाधिकार कर रक्खा है। अपने फिजी के अनुभव पर, चतुर्वेदी जी ने एक तरह से मुझे 'शर्तबन्दी कुली-प्रथा' में बाँध लिया है। उससे टूटने की मियाद भी काफ़ी लम्बी है। इसलिए 'हंस' में नियमित रूप से कहानियाँ देने का वायदा तो मैं नहीं कर सकता। हाँ, यदि आप आज्ञा देंगे, तो उसके अन्य कॉलमों की खानापूरी मैं अवश्य कर सकूँगा। सामयिक साहित्य की आलोचना करना मैं बहुत पसन्द करूँगा। साथ ही इधर-उधर का इन्फ़ॉर्मेटिव और मनोरंजक मसाला भी भेज सकूँगा। राजनीतिक टिप्पणियाँ करना भी मुझे पसन्द है।—कहिए, इनमें से मुझे आप क्या करने का आदेश देते हैं। सम्भव हुआ तो कभी-कभी कोई कहानी भी भेजता रहूँगा।

प्रो. रामदास जी गौड़ यहाँ हैं और सही-सलामत हैं।

योग्य सेवा—

विनीत, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार।



Tilak Mahal, Cawnpore.
10 February 1930

भाईजान,

तसलीम। आपके कार्ड और इसरार के जवाब में एक अधूरा मज़मून मशहूर उर्दू शायर 'फ़ानी' पर भेज रहा हूँ। कई माह गुज़र गये जब इसे शुरू किया था। तकलीम (पूर्ति) इसकी अब तक न हुई थी। मगर किसी काम का हो तो पहले नंबर में इसे मज़मून की पहली क़िस्त करके आप शाया कर दें। बक़िया अख़ीर अप्रैल तक भेज सकूँगा। उसके पहले कैसे भेज सकूँगा ?

जो ग़ज़ल मैंने भेजी है, उसका एक शेर शायद छूट गया है। मुमकिन है आपके काम का हो। वो ये है—

है चोट सी चोट मुहब्बत की है दर्द सा दर्द मुहब्बत का
आँखें भी न पड़ने पायी थीं और मुँह पे हवाई छूट गयी।

विवेक जिसका मैं एडीटर था और जो चंद हफ़्तों के बाद बंद हो गया, उसमें मेरे कुछ मज़ामीन हैं। उन्हें ग़ैर-मतबूआ (अप्रकाशित) ही समझना चाहिए। अव्वल तो उसको बंद हुए तीन साल हो गये, दूसरे इसकी इशाअत भी नाम को थी। चलता या चलाया जाता तो अच्छी ख़ासी इशाअत हो जाती। इनमें से कहिए तो कुछ मज़ामीन भेज दूँ। दूसरों के लिखे कुछ दिलचस्प अफ़साने और नज़्में भी हैं जो आपके काम आ सकती हैं।

'हंस' का पहला नंबर कब तक निकल जायगा ? मेरा ख़याल है कि कोशिश क़ायम रही तो जल्द 'हंस' कामयाब और मुनफ़अत-रसाँ साबित होगा। इम्तहान बहुत क़रीब है। और क्या अर्ज़ करूँ। जवाब से ममनून फ़र्माइएगा।

आपका, रघुपत सहाय 'फिराक'।



बंजारा रोड, करीमाबाद हैदराबाद (दकन)
14 फरवरी, 1930

बरादरे मुहतरम, तसलीम।

आपका इनायतनामा मुवर्रिख़ा 21 जनवरी मुझे कल मिला। पर यह औरंगाबाद से होता हुआ यहाँ पहुँचा। आपकी इस इनायत और शफ़क़त का मैं तहे दिल से शुक्रगुज़ार हूँ। काशी का सबक़ आपने बहुत खूब लिखा है। उसे पढ़कर बहुत ख़ुशी हुई और आज ही मैंने लिखने के लिए दे दिया है। अलबत्ता मुअय्यना (निर्धारित) सफ़ात (पृष्ठों) से किसी क़दर बड़ा हो गया था इसलिए कहीं-कहीं से चन्द सतरें कमा कर दी हैं लेकिन इससे उसकी शान में फ़र्क़ नहीं आने पाया।

नियाज़मन्द, अब्दुल हक़।

●●

लखनऊ, 12 फ़रवरी 1930

भाईजान,

तसलीम। आपका कार्ड मिल गया था। 'अलहदगी' ग़ालिबन् फ़रवरी में हो जायगी। क्यों ? आपने मुझे बुलाया है। मैं भी दावत कुबूल करता हूँ और अबकी इतवार को आऊँगा। आज 12 है। 16 को इतवार है। उसी दिन आऊँगा। और दिन भर गपशप रहेगी।

आपने पिछले महीने इक़बाल वर्मा साहब की मदद की। मेरी जानिब से की थी। अभी उनके क़र्ज से मैं सुबुकदोश नहीं हुआ हूँ। मेरी किताबों का पिछला हिसाब तो साफ़ हो गया लेकिन नये साल का हिसाब बाक़ी है। उसे भी ज़रा देख लीजिए। अगर इस माह में पच्चीस रुपये की दूसरी क़िस्त अदा कर दूँ तो फिर सिर्फ़ बीस रुपये और रह जायं। मैं फागुन यानी नये साल से एक हिन्दी रिसाला 'हंस' निकालने जा रहा हूँ। 64 सुफ़हात का होगा। और ज़्यादातर अफ़सानों से ताल्लुक़ रखेगा। है तो हिमाक़त ही, दर्दे सर बहुत और नफ़ा कुछ नहीं लेकिन हिमाक़त करने को जी चाहता है। ज़िन्दगी हिमाक़तों में गुज़र गयी, एक ओर सही। न पहले कभी कामयाबी की सूरत देखी और न अब देखने की उम्मीद है। इश्तहार वग़ैरह दे रहा हूँ। पहला पर्चा नये साल के दिन रवाना हो जायगा। सुदर्शन साहब उर्दू में निकाल रहे हैं, मैं हिन्दी में निकालूंगा। 1 फरवरी के रिसाले में इल्मी जुज़ों (हिस्सों) में इसका एक नोट लिख दीजिएगा। और तो सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 16 फ़रवरी, 1930

भाईजान,

कल आने वाला था। मगर कल ही मेरी समधिन साहिबा, उनके दामाद और उनके साथ दो और औरतें वारिद (आ गयीं) हो गयीं। यह लोग ग़ालिबन् तीन चार रोज़ रहेंगे। इसलिए कल न हाज़िर हो सकूँगा।

मुंशी इक़बाल वर्मा साहब का ख़त आज फिर आया।

अहक़र, धनपत राय।

●●

पहाड़ी धीरज, दिल्ली, 20 फरवरी, 1930

बाबूजी,

आपका पत्र मिला। वह कूचा पातीरामवाला भी बस एक Delivery देर से मुझे मिल गया। कहानी मैंने 14 को शुरू की थी, पर ख़तम अब भी नहीं हुई। शुरू करने के बाद ही मैं तो उलझन में पड़ गया। इधर आपके उलाहने के बाद भी देर लगाना पाप जान पड़ा। ये दो कहानियाँ भेज रहा हूँ। नाथूराम जी प्रेमी (बम्बई) से वापस मँगा ली हैं। 'दिल्ली में' आपके लिए और 'फोटोग्राफी' 'माधुरी' के लिए। इसी से अभी तो संतोष मान लें, ऐसी प्रार्थना है। इच्छा तो थी कोई अपूर्व चीज़ भेजूँ पर इच्छा पूरी न हुई। ख़ैर, आगे देखूँगा। यह भी, अगरचे पूरे मन की नहीं है फिर भी, उम्मीद है बुरी नहीं है। अंतिम (वाला) पैराग्राफ यदि आप सहमत हों तो काट दीजिए। बिल्कुल व्यर्थ है। वास्तव में जोड़ा भी बाद में गया है। आप यदि खासतौर पर उसे रखना चाहें तो बात दूसरी, नहीं तो उड़ा ही दें। उसमें ऐसा लगता है जैसे लेखक जल-भुन रहा है। लेखक की यह Mentality हठात् क्यों प्रकट हो ?

'फोटोग्राफी' मेरी पहली कहानी है। तो भी 'माधुरी' के लिए काफी से ज्यादा ही अच्छी है, ऐसा विश्वास है। न भी पसंद आये तो ख़ेद न होगा।

'मेरी मेग्डलीन' की आपने सिफारिश ही की। मुझे भी ऐसी ही आशा थी। निर्णय का कब तक पता चलेगा।

क्या आप सम्मेलन में जायेंगे ? और क्या मुझे वहाँ जाने की सलाह देंगे ? परिचय का लाभ ही यदि लाभ समझा जाय तो बात दूसरी, नहीं तो सम्मेलन में मेरे लिए क्या है ? उन (सम्मेलनी) लोगों में से किसी के दर्शन की उत्कट चाह हो सो भी बात नहीं है। सलाह दें।

आपका उपन्यास कैसा चल रहा है ? मुझे भी बहुत और बराबर लिखने का मन्तर बताइए न ? जब से आया हूँ, क्या कहूँ, एक कहानी भी न की। शुरू ही न हुई—तबीयत नहीं हाज़िर हुई। कोई इलाज अवश्य बताइए।

विशेष मेरे योग्य सेवा लिखिये।

आपका ही जैनेन्द्र।



लाटूश रोड, कानपुर, 11 मार्च, 1930

भाईजान, नमस्ते !

किताब का मसौदा मिल गया, शुक्रिया। एक-दो दिन में क़ातिब को भेज दूँगा। कापियाँ आप पढ़ेंगे या मैं ही पढ़ लूँगा। मेरे ख़याल में आप ही पढ़ें तो ठीक होगा। किताब की खूबसूरती देखकर आप यक़ीनन खुश होंगे। अब 'शेर-ओ-बकरी' तैयार करनी चाहिए। ये किताब न सिर्फ़ खूब बिकेगी, बल्कि हम दोनों की दूसरी किताबें के लिए भी बहुत मुफ़ीद साबित होगी, क्योंकि इसमें ये ऐलान करने जा रहा हूँ कि जो साहब ठीक-ठीक बतायेंगे कि कौन-सी कहानी कहाँ तक किसकी तहरीरकर्दा (लिखित) है, उसे सौ या डेढ़ सौ रुपया इनाम दिया जायेगा। इस इनामी मुक़ाबले में जो शरीक होना चाहेंगे, उनको हमारी किताबें पढ़नी पड़ेंगी, वरना Style कैसे जानेंगे ? क्या ख़याल है ? मैं किसी दिन

आपसे मिलना चाहता हूँ। कब मिलूँ ?

सुदर्शन।

अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ,
27 मार्च, 1930

प्रिय विनोद जी,

'हंस' तो आपने देखा ही होगा। आपकी कहानी मुझे प्यारी लगी। यहाँ औरों ने भी उसे खूब पसन्द किया। अब दूसरे नम्बर के लिए भी लिखिए।

'भूली बात' मैंने राजेश्वरी से लेकर पढ़ ली थी। आपकी भाषा में चोट होती है और चित्र कुछ ऐसे होते हैं मानो स्वप्न-चित्र हों और इसलिए उनमें रोमानी झलक होती है। पहली कहानी मुझे बहुत अच्छी मालूम हुई। पर हंस वाली चीज़ मुझे सबसे अच्छी जँची। शुभाकांक्षी

धनपत राय।

●●

अमीनाबाद, लखनऊ, 7 अप्रैल, 1930

भाईजान,

तसलीम। हामिले हाज़ा[1] हमीरपुर के एक मुदर्रिस हैं और जब मैं वहाँ था तो इनसे मेरे ताल्लुक़ात महज़ अफ़सरी और मातहती के न थे। यह निगम हैं और इस वक़्त इन्हें एक लड़के की तलाश है। इस फ़िक्र में लखनऊ आये थे। मुझसे मुलाक़ात हुई। यहाँ दो एक जगह इन्होंने लड़के देखे हैं मगर अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ कोई लड़का नहीं मिला। मुझसे इन्होंने कहा कानपुर में आप किसी को जानते हों तो मुझे लिख दीजिए वहाँ जाकर तलाश करूँ। मैंने आपके ऊपर भरोसा करके यह ख़त इन्हें लिख दिया है। अगर इनकी कारबरारी की कोई सूरत निकल सके तो दरेग़ न कीजिएगा। आपको तो वहाँ की निगम बिरादरी का हाल मालूम होगा। मुझे तो कुछ ख़बर नहीं है।

'हंस' पहुँचा या नहीं। अपनी राय लिखिएगा। ज़माना में इसका ज़िक्र भी। और क्या अर्ज़ करूँ। इस 'नमक' ने ख़लजान[2] में डाल रखा है। इत्मीनाने-क़ल्ब[3] रुख़सत[4] हो रहा है।

आपका, धनपत राय।

1. पत्र-वाहक, 2. उलझन, 3. मानसिक शान्ति, 4. विदा।

●●

साहित्य सुमन माला कार्यालय
नवल किशोर प्रेस, बुक डिपो
लखनऊ, 8-4-1930

My dear Kanhji,

You have not written your story yet. I am expecting it hourly. We must bring out the paper by the 1st of May. I have already sent some matter. But original stories are not yet. Mine is ready. But your and Sudarshan's and

Jainendra's stories must be got before the 15th otherwise if would be too late. I have instructed Pravasi Lal to send you 25 copies of 'Hans'. 'Maya's 2nd number is out but we have received no copy yet.

Give my Salams to Bhaisahab.

Yours, D. Rai.



काशी, 23 अप्रैल, 1930

भाईजान,

तसलीम। आपका मुहब्बतनामा कई दिन हुए मिला था। 'प्रेम बत्तीसी' की कीमत आप शौक़ से 1 रुपया 8 आना कर दें। बल्कि मैं तो चाहूँगा कि वह एक ही रुपये में बिके। मगर लाहौरवाले तो कमी करेंगे नहीं, इसलिये 1 रुपया 8 आना मुनासिब है। हमारे पास ऐसी कौन-सी बहुत जिल्दें हैं।

रीडरों की तैयारी में मुझसे आप क्या मदद चाहते हैं। मैं तो आजकल बुरी तरह काम कर रहा हूँ। 'हंस' ने और कचूमर निकाल दिया है। दो क़िस्से हर माह और क़रीब बीस सफ़े एडिटोरियल और दीगर मज़ामीन। इसके अलावा अपना नाविल। फिर प्रेम चालीसी के लिये कहानियों को उर्दू में लाना। और आखिर में रोज़ाना घंटा दो घंटा कांग्रेस के कामों में मसरूफ़ रहना मेरे लिये काफ़ी से ज़्यादा है। मगर मुझसे जो मदद आप चाहें वह अपने सब काम छोड़कर करने को हाज़िर हूँ। आपने तो कुछ कहा ही नहीं। अगर इमसाल किताबें पेश करनी हैं तो अब तवक़्क़ुफ़[1] की गुंजाइश नहीं है। एक नक़्क़ाल रख लीजिये और उससे मज़ामीन नक़ल कराते जाइये। एक किताब मुकम्मल हो जाय तो मुझे बुलाकर मुझसे मशवरा कर लीजिये। बस इस किताब की किताबत शुरू हो जाये, मज़ामीन की नौइयत[2] आपको मालूम ही है।

हाँ, मेरी किताबों का और 'हंस' का इशतिहार 'ज़माना' में एक दो महीने हो जाए तो अच्छा है। यह इशतिहार भेज रहा हूँ। एक सफे में आ जायगा।

'नमक' को आप कब्ल-अज़-वक़्त[3] ख़याल करते हैं। जिस तरह मौत हमेशा क़ब्ल अज़ वक़्त होती है, साहूकार का तक़ाज़ा हमेशा क़ब्ल अज़ वक़्त होता है। उसी तरह ऐसे सारे काम जिन में हमें माली या वक़्ती नुक़सान का अन्देशा हो क़ब्ल अज़ वक्त मालूम होते हैं। इस तहरीक की क़बूलियत[4] ही बतला रही है कि वह क़ब्ल अज़ वक़्त नहीं है।

इस मौके पर फिर साफ जाहिर हुआ कि अगर दो फीसदी अंग्रेज़ी-ख्वाँ[5] असहाब तहरीक के साथ हैं तो 98 फीसदी उसके मुख़ालिफ़[6] हैं। क़ौमी एतबार से यूनिवर्सिटियों और स्कूलों पर क़ौम का जितना रुपया सर्फ़ हुआ वह क़रीबन ज़ाया हो गया। यह लोग सरकार के आदमी हुए, क़ौम के नहीं। ग़ैर-अंगरेजीदां, कारोबारी और पेशावर तबक़ों ही ने इस तहरीक में जान डाली है। अगर तालीम-याफ़्ता आदमियों के भरोसे मुल्क बैठा रहे तो शायद क़यामत तक उसे आज़ादी नसीब न होगी।

जब मालूम है और इसके लिए सबूत और दलील की जरूरत नहीं कि सरकार कोई रिफ़ार्म उस वक़्त तक नहीं करती जब तक उसे यह यक़ीन न हो जाय कि इस तहरीक[7] के पीछे कितनी ताक़त है, तो तालीम-याफ़्ता जमात का इससे किनारे रहना कितना

दिलशिकन है। क़ानूनपेशा, तबीबपेशा,[8] प्रोफ़ेसर और सरकारी मुलाज़िमान—इन सबने जितनी ग़ुलामाना[9] जेहनियत का पता दिया है उसकी मुझे उम्मीद न थी। यह तबक़ा अपनी ख़ैरियत गवर्नमेंट का इक़्तदार[10] क़ायम रहने में समझता है। वह एक लमहे के लिये भी अपनी आसाइश[11] और दुनिया-तलबी[12] को फ़रामोश[13] नहीं कर सकता। ज़र[14] उसका दीन और ईमान है। वह या तो आज़ादी चाहता ही नहीं या उसके लिए कीमत न देकर दूसरों पर तकिया करना ही अपनी शान के मुनासिब समझता है। या वह इस खयाल में मगन है कि आप ही आप आज़ादी भी मिल जायेगी। कांग्रेस के दौरे अव्वल में वह इससे ख़ाइफ़[15] रहा, कांग्रेस के दौरे सानी[16] में भी उसकी यही हालत रही। वह सरीह[17] देख रहा है कि जो कुछ उसे मिला और जिसे अब वह अपना हक़ समझता है वह दूसरों के ईसार[18] व क़ुर्बानी का नतीजा है। फिर भी वह इस ईसार और क़ुर्बानी में शरीक नहीं होता। यही bourgeois फ़िज़ा है और यही नादार[19] फ़िर्के को दार[20] फ़िर्के का दुश्मन बना देता है।

आपने क्या हैदराबाद जाने का इरादा कर लिया ?

यहाँ तो हम लोग अच्छी तरह हैं। 1 मई तक लोग यहाँ से चले ही जायेंगे।

आपका, धनपत राय।

1. ढील, 2. ढंग; प्रकार, 3. समय से पहले, 4. लोकप्रियता, 5. अंग्रेजी पढ़े, 6. विरोधी, 7. आन्दोलन, 8 डाक्टर, 9. गुलामों-जैसी, 10. अधिकार, 11. सुख-सुविधा, 12. सांसारिक लाभ, 13. भूल नहीं सकना, 14. रुपया, 15. भयभीत, 16. दूसरे दौर, 17. साफ, 18. त्याग, 19. ग़रीब, 20. अमीर; वित्तशाली।



Aminuddoula Park, Lucknow, 2-5-1930

Yes, you may now take up the 2nd part. Do you receive 'Madhuri' every month. I think 'घर जमाई', 'घासवाली', 'खूचड़' etc. are decent stories Which collections of mine are with you ? I have recently brought out 'पाँच फूल'—five of my stories, Another collection is 'Prem-kunj'. 'Hans' had my 'जुलूस', which was very much liked here. 'माँ' appeared in 'Madhrui' and was much liked. Is there any library containing all my works? If so, the work of selction would be facilitated. First you may take these 'Madhuri' ones.



102/2, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता, 11 मई 1930

प्रिय प्रेमचंद जी,

प्रणाम। कृपापत्र अभी मिला। मैं आपकी कठिनाइयों से भलीभाँति परिचित हूँ। इसलिये बुरा नहीं मानता। जब कभी आपको अवकाश मिले, 'विशाल भारत' के लिए कोई कहानी लिखिये।

सुन्दरलाल जी वाला स्केच आपको पसन्द आया, यह पढ़कर मुझे हर्ष हुआ। मेरा उनका साक्षात् परिचय तो सन् 1918 में हुआ था पर वैसे अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने

उनके 'कर्मयोगी' से बहुत लाभ उठाया था। मेरे ऊपर उनकी बड़ी कृपा है बल्कि यों कहना चाहिए कि उन्हीं का भेजा हुआ मैं आज यहाँ 'विशाल भारत' में काम कर रहा हूँ।

आपके पत्र के विषय में क्या लिखूँ। अंक आते ही आफिस के अन्य मित्र पढ़ने के लिए ले गये और मुझे अभी तक नहीं मिला। अब पढ़कर अवश्य लिखूंगा।

'हंस' के लिए अवकाश मिलने पर ज़रूर कुछ लिखना चाहता हूँ लेकिन एक शर्त पर, वह यह कि आप अपना चित्र मुझे भेज दें और किसी से biographical notes भिजवा दें। साथ ही इन प्रश्नों के उत्तर भी दें। मैं किसी अंग्रेज़ी पत्र (सम्भवतः लीडर) में आप पर कुछ लिखना चाहता हूँ।

1. आपने गल्प लिखना कब प्रारम्भ किया ?
2. अपनी कौन-कौन-सी गल्प आपको सर्वोत्तम लगती है ?
3. आपकी लेख-शली पर देशी या विदेशी किन-किन गल्प लेखकों की रचना का प्रभाव पड़ा है ?
4. आपको अपने ग्रन्थों से रचनाओं से क्या मासिक आय हो जाती है ?
5 हिन्दी में गल्प-साहित्य की वर्तमान प्रगति के विषय में आपके क्या विचार हैं?
6. आपकी रचनाओं का अनुवाद किन-किन भाषाओं में हुआ है ?
7. आपकी आकांक्षाएँ क्या-क्या हैं ?

मैं एक बार आपकी गल्प पढ़ जाना चाहता हूँ और फिर उसके विषय में अपनी ओर से कुछ लिखना चाहता हूँ। इन प्रश्नों का उत्तर कृपया विस्तारपूर्वक चिट्ठी के रूप में मुझे दीजिये। मैं प्रतीक्षा करूँगा। उत्तर आने पर मैं 'हंस' के लिए कोई लेख आपकी सेवा में भेजने का प्रयत्न करूँगा। शर्त मैंने इसलिए रक्खी है कि आपसे चित्र माँगते-माँगते वर्षों बीत गये पर आपने अभी तक न भेजा, इसलिए हताश होकर दुकानदारी पर उतर आया हूँ।

कृपा बनी रहे।

विनीत, बनारसीदास चतुर्वेदी।

पुनश्च:

एक अपना अच्छा चित्र आप 'विशाल भारत' के लिए specially खिंचवा दीजिए और उसका बिल मेरे नाम भेज दीजिए। चित्र की तीन प्रतियाँ भेजिए। यह arrangement ठीक रहेगा 'कवच' के 26 रु. वि. भा. से भिजवाऊँगा। तक़ाज़ा कर रहा हूँ।

Anand Rao Joshi
Fadnis Pura, Nagpur City

Temporary address for 15 days
C/o भय्याजी सोनवटक्के, पोस्ट–उमरेड,
ज़िला–नागपुर C.P., 14.5.30

Dear Premchandji,

Yours of the 2nd inst. reached me in due time. In it you have asked me to send my quota by the 15th of every month at the latest. But then I received another card from you to the affect that I should hurry up in sending my material for the Marathi section of the 'मुक्ता-मंजूषा'. Accordingly I have sent

you yesterday my quota by Regd. B.P. and I hope it shall reach you in good time. I think, I am not too late in sending my quota.

I came here to attend a thread-cermoney of one of my relatives, and hence this delay in supplying my material. I hope, I shall be able to send it henceforth by the 10th of every month. That would facilitate your work also.

I am in due receipt of the 2nd number of 'हंस'. I am pleased to find that it is getting a hearty support from all quarters.

I don't receive 'माधुरी' every month. It is only when it contains my article that I get it. I am, thankful to you for suggesting me some stories for the II part. I am sorry I have not got your recent publications--'पाँच फूल' व 'प्रेमकुंज'. I have got 'नवनिधि', 'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेमद्वादशी' and 'प्रेमपचीसी'. You remember that you had suggested some stories for the part I of my Marathi book. Some of them are yet to be translated by me. I wish to include them in the II part. But then their sources are not available to me. Would you let me know the sources of the following :

(1) कामना-तरु, (2) सती, (3) लैला, (4) सौत, (5) नमक का दारोगा, (6) लांछन, (7) मन्त्र।

I have already translated 'पश्चाताप' and 'पाप का अग्निकुण्ड' from 'नवनिधि'. I also wish to include two stories meant for children 'रक्षा में हत्या'[1], and 'सचाई का उपहार'. The first one was already published in 'बरजरन' अंक, but it could not be included in part I for want of space.

I have read 'घासवाली'. It is the best of your recent stories. I intend to include all these stories by you. If possible, please send 'पाँच फूल' & 'प्रेमकुंज' on the above temporary address.

Yours Sincerely, Anand Rao Joshi.

1. इस नाम की कोई कहानी उपलब्ध नहीं है–गोयनका



Aminuddoula Park, Lucknow
21-5-1930

'घासवाली' was appreaciated generally. You include it. One or two stories too have been much liked these days. But the collections, I have mentioned and which will reach you, contain enough material for you. 'Hans' is being appreciated but the number of subscribers is not rising as expected. We are not dishearened, however.

.............., ...



कानपुर, 9 जून, 1930

भाई साहब,

तसलीम ! मेरा ख़याल था कि आप बनारस चले गये हैं, वरना मैं आपसे कल ही मिलता, क्योंकि 4 जून को गोंडा गया हुआ था और आते-जाते दोनों दफ़ा लखनऊ ठहरने का जी चाहता था, बल्कि जाते वक़्त बाबू अनन्तप्रसाद साहब के यहाँ गया भी था, लेकिन वो किसी बारात में गये हुए थे। नाचार (मजबूरी में) स्टेशन लौट आया। आपके क़याम का हाल मालूम होता तो ज़रूर आपसे मिलता। गौना हो रहा है, आप इस फ़र्ज़ से भी सुबुकदोष (फ़ारिग़) हो जाते। मुझे अफ़सोस यह है कि आप पेशतर (पहले) से बिल्कुल इत्तला नहीं देते, जिससे मुझे खिफ़्त (शिकायत) का मौक़ा मिलता है। आप यह सुनकर खुश होंगे कि हमने एक पुराना हिसाब पंजाब नेशनल बैंक का माफ़ कर दिया है और दूसरा पुराना हिसाब अवध कमर्शियल बैंक का भी क़रीब-क़रीब साफ़ हो गया है। बस, इस माह मुझे इसको एक सौ पचहत्तर रुपया और देना है, वरना जो रिआयत मुझसे हुई है, हो सका उसका मुस्तहिक़ (योग्य) बना रहूँगा। इस रक़म के लिए मैंने सौ रुपये लिये थे, खत्म हो गये। अब आपका हुक्म पाते ही इसलिए ख़िदमत कर रहा हूँ। ज़्यादा क्या लिखूं, यही बन्दोबस्त है। हिसाब जो कुछ लिखा है, वह मुझे मंजूर है, देखकर लिखूँगा, लेकिन आपने हमेशा से मेरे साथ जो मोहब्बत-आमेज़ बरताब किया, इसके देखते हुए हिसाब का नाम लेते भी मुझे शर्म करनी चाहिए, खसूसन जब कि मैं ऐसा नादिहन्दा (ना देने वाला) रहा हूँ।

आप बनारस कब तक जा सकेंगे और कब वापसी होगी ? लखनऊ का हाल पढ़कर दिल खून हो रहा है। क्या आप भी इस मौक़ा पर मौजूद थे ?

आपके और आपके बच्चों की सलामती के लिए हमेशा दस्तबदुआ (दुआ के लिए हाथ उठना) रहता हूँ। आप अपनी तसानीफ़ की बदौलत ज़िन्दाजाविद (अमर) रहेंगे। आपको जामे-शहादत पीने की ज़रूरत नहीं है। ईश्वर का फ़ज़्लोकरम आपके साथ रहेगा। मैं इस साल पी. सी. एस. के इम्तहान में बैठा था, पर चार नम्बर से रह गया। आइन्दा फिर जा रहा हूँ, देखिए, क्या नतीजा होता है।

रघुपतिसहाय साहब हाल में कानपुर आये थे। अब मालूम नहीं, गोरखपुर में हैं या नहीं।

आपका, श्यामनारायण निगम।



माधुरी कार्यालय, नवलकिशोर प्रेस,
लखनऊ, 12 जून 1928

I am glad you are proceeding with my stories. You will be glad to see 'Actress' translated in the 'Modern Review' of this month. Some of the stories have been translated in Japanese language.

..............., ...



नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 27 जून, 1930

भाईजान,

तसलीम। इधर कई दिन परीशान रहा। इस वजह से ख़त न लिख सका। बेटी की रुख़सत मुल्तवी हो गयी। वह लोग यहाँ आये और हफ़्ते भर मुक़ीम रहे। मगर बेटी को बुखार आने लगा और अब तक आ रहा है। छोटा लड़का भी मीयादी बुखार में मुबतिला हो गया और अब तक अच्छा नहीं हुआ। दवा कर रहा हूँ। उम्मीद है दोनों को सेहत होगी।

बराहे मेहरबानी ज़माना का वह नंबर भेज दीजिए जिसमें मेरी कहानी 'अलग्योझा' शाया हुई थी। मेरा यह नंबर कोई साहब ले गये और मुझे उस कहानी की प्रेम चालीसा के लिए ज़रूरत है। इसे वापसी डाक से भेजिएगा। और तो सब ख़ैरियत है।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

रामगली, लाहौर, 7-7-1930

बाख़िदमते गरामी जनाब मुंशी प्रेमचन्द जी, आदाबर्ज !

गरामीनामा 4 जुलाई, 1930 को लिखा हुआ मिला। कार्ड से क़ब्ल एक मत्बूआ सरकुलर लैटर जनाब की ख़िदमत में बनारस के पते से भेजी गई थी, शायद वो जनाब को नहीं मिली। ख़ैरगर्ज़ तो जनाब की नीम मुलाक़ात की थी, सो हो गयी। अर्ज़ यह है कि मेरा रिसाला तालीमी है। 25 साल से मुल्क की भली-बुरी तालीमी ख़िदमत सर अंजाम दे रहा है। जिस महकमा का यह अखबार या रिसाला है, आप उसकी हस्ती से बेखबर न होंगे। मदर्रसीन (अध्यापक) बेचारे, जो इसके खरीददार होते हैं, वो बहुत कम तनख्वाह दार होते है। लिहाज़ा उसकी क़द्रदानी उन लोगों के हाथ में है। यह रिसाला उन लोगों का वकील है, ज़िनकी हालत बहुत ही क़ाबिले-रहम है। बस इस रिसाला की मालीहालत नुमायाँ हैसियत नहीं रखती। सच तो यह है कि मैं इन दिनों खास क़ुर्बानी और इसार से काम ले रहा हूँ। लिहाज़ा बड़े अदब से गुज़ारिश है कि आप भी इसके हाले-ज़ार (परिस्थितियों से दुःखी) पर रहम फ़रमायें और ख़ास रिआयत और स्पेशल इनायत को मद्देनज़र रखकर ममनून (आभारी) फ़रमायें। रक़म जो आप आमतौर पर ले रहे हैं, ये आपके दिमाग़ की क़द्रो-क़ीमत थोड़ी है। आपके दिमाग़ की क़द्रो-क़ीमत तो जनाब, किसी तरह से पड़ ही नहीं सकती। हम लोग जो हाज़िर कहते हैं वो महज़ दूध-मिठाई हो सकता है, मुआवज़ा-मेहनत का नाम इसे नहीं दे सकते। इसलिए बड़े आदाब से गुज़ारिश है कि आप गरीब 'रहनुमाए-तालीम' की कम-अज़-कम नज़र को क़बूल फ़रमायें और मुझे सरफ़राज़ करें। क़ब्ल-अर्ज़ी (इससे पहले) कभी जनाब को इस बारे में तकलीफ़ नहीं दी गयी, न तआरुफ़ (परिचय) हुआ था। परमात्मा ने चाहा तो यह ताल्लुक मिस्ले-ज़माना पुख्ता-वो-मुस्तकिल क़ायम रहेगा और मैं जनाब की कुछ सेवा-मुत्वातिर करता रहूँगा।

मुझे उम्मीद है कि जनाब भी इस लजाज़तभरी (नम्रतापूर्ण) हक़ीक़ी विनती को क़बूल करेंगे। मुझे अपनी नवाज़िशात (कृपाओं) से बहर-अन्दोज़ (आनन्दित) होने का फ़ख्र बख़्शते रहेंगे। मेहरबानी फ़रमाकर जुबली-नम्बर के लिए जो अफ़साना आप तहरीर

फ़रमाएँगे, वो इस मत्बूआ रिसाले का इख़्लाकी और तालीमी अफ़साना होगा, जिसमें तालीमी हक़ूक़ साबित किया गया हो, और शौक़े तालीमी के जज्बात मौजूद हों, और क़िस्सा बच्चों का हो। एक अफ़साना इस तरह का हो कि एक अदना तबक़ा का आदमी तालीम के ज़रिये क्यूँकर आला दर्जे पर फाइज़ (पहुँचना, सफल) हो सकता है। अफ़साना ऐसी तर्ज़ इबारत के पढ़ने वाले के बदन के रोंगटे खड़े हो जायें और बार-बार इसके पढ़ने का जोश मुक़र्रर हो। आप दाना (बुद्धिमान्) है, भला अहमक़ की क्या हस्ती कि एक माहिरे फ़न के सामने कुछ ज़ाहिर कर सकूँ, मगर हुक्म था, इसलिए शरीद ख़यालात पेश कर दिये गये हैं। उम्मीद है कि जनाब हर दो अफ़साना के साथ अपनी फ़ोटो भी मर्हेमत फ़रमायेंगे, जो जुबली-नम्बर की शान को दोबाला (दुगुना) करने का मुजीब (कारण) होगी और मेरे लिए बाइसे फ़ख्र। ये नम्बर कोई 64 सफ़ों के मुसव्वर (सचित्र) रिसाला का होगा। 20 × 30/8 का साइज़ है। नवाज़िश कोई ख़िदमत ?

ख़ादिम, जगतराम।

अफ़सानों की मिक़दार 20 × 30/8 के कोट 10-10, 12-12 सफ़े हो जायें और उनमें कमोबेश आप मुख़्तारे-कुल (पूर्ण अधिकारी) हैं। ये दोनों अफ़साने आख़िर महीने तक मर्हेमत कर दिये जायें, रिसाला इर्साले-ख़िदमत है। कोई सेवा ! इस ख़त की रसीद तक खुशनवीज़िए मजाज़ के इमा से वापिस शादगीन।

दास, जगतराम।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 12 जुलाई 1930

महाशय,

तसलीम। तकलीफ़ देने की ज़रूरत यह है कि मेरे सन इन लॉ इमसाल बी. ए. पास हुए हैं। वह क़ानून और एम. ए. दोनों एक साथ लेना चाहते हैं ताकि दो साल में निकल जायें। क्या ऐसा कानपुर में मुमकिन है। आगरा यूनिवर्सिटी में इसके ख़िलाफ़ कोई क़ायदा तो नहीं है। वह हिन्दी में एम. ए. करना चाहते हैं।

इलाहाबाद का क्या क़ायदा है, मुझे मालूम नहीं। वहाँ भी दर्याफ़्त करता हूँ। कानपुर में कालिज किस तारीख़ को खुलेंगे।

आपका, धनपत राय।

●●

Notice under section 3(3) of the Indian Press Ordinance, 1930.

To,

The Keeper of the Saraswati Press, Benares.

Whereas it appears to the Governor in Council that the Saraswati Press of which you are the keepr is used for certain of the purpo es described in sub-section (1) of section 4 the Indian Press Ordinance, 1930, Now therefore in exercise of the power conferred by sub-section (3) of section 3 of the said Ordinance the Governor in Council hereby requires you to deposit with the District Magistrate of Benares a security to the amount of Rs. 1000/- (rupees one thousand only) in cahs or the equivalent thereof in securities of

the Government of India within two days from the receipt of this notice by you.

Nani Tal,
Dated July 24, 1930

By order, Jagdish Prasad
Chief Secretary to Government,
United Provinces.

●●

लखनऊ, 25 जुलाई |1930

भाईजान,

तसलीम। कई दिन हुए ख़त मिला था। मैं आजकल मुहल्ला गनेशगंज नंबर 20 में रहता हूँ। आप तो आते आते रह जाते हैं। हैदराबाद जाने का कब तक इरादा है ? दसहरे में न ? यक़ीनी तौर पर ? ख़ैर इसके क़ब्ल तो मुलाक़ात हो जायेगी। मैं सितंबर के पहले हफ़्ते में ज़रूर आऊँगा। उसी वक्त मेरे पास जो गोशए आफ़ियत वगैरह की जिल्दें हैं वह लेता आऊँगा। और तो सब ख़ैरियत है। उम्मीद है आप बख़ैरियत होंगे।

आपका, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 30 जुलाई, 1930

भाईजान,

तसलीम। प्रेस ऐक्ट का वार मुझ पर भी हो ही गया। एक हज़ार की ज़मानत तलब हुई है। कल बनारस जा रहा हूँ। ज़मानत देकर रिसाला हंस निकालना तो मुझे ख़तरनाक मालूम होता है। मैं तो सोचता हूँ रिसाला बन्द कर दूँ और इसके साथ ही प्रेस भी। बनारस जाकर हालात का मुतालआ (अध्ययन) करने के बाद फ़ैसला कर सकूँगा।

आपका मुख़लिस, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 11 अगस्त, 1930

भाईजान,

तसलीम। आप तो लखनऊ आते ही आते रह गये। क्या इरादा मंसूख़ कर दिया ?

नाटकों के मुताल्लिक़ क्या हुआ ? ज़रा तवज्जो[1] कर दीजिए। वर्ना तसाहुल[2] में खुदा जाने कब तक मुआमला खटाई में पड़ा रहे।

मुन्नू बाबू कब तक आ रहे हैं। शायद इसी माह, या सितंबर में तो आयेंगे ?

मुंशी बिशन नरायन मरहूम की रियासत ग़ालिबन् कोर्ट आफ़ वार्ड्स के इक्तदार[3] से निकल गयी। दो चार रोज़ में अहकाम[4] आ जायेंगे। मगर आइन्दा इंतज़ाम के मुताल्लिक़ कुछ ख़बर नहीं क्या होगा।

शाहकार से आपने मेरा क़िस्सा न लिया ? बाक़ी ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. ध्यान, 2. लापरवाही, 3. अधिकार, 4. आदेश।

●●

नवकिशोर प्रेस बुक-डिपो, लखनऊ, 1-9-1930

प्रिय उग्र जी,

पत्र पाकर प्रसन्न हुआ। उसी दिन पं0 रामसेवक जी से कहा। उन्होंने 'माधुरी' भेजने का वचन दिया है। शायद नया अंक पहुँच भी गया होगा। सिनेमा वाले मुझे भी कई पत्र लिख चुके हैं। मगर मैं तो कुछ उस विषय में जानता नहीं, क्या जवाब दूँ ? ऐसी कोई पुस्तक बताओ जिसे देखकर कुछ जानकारी कर लूँ।

आशा है, आप प्रसन्न हैं।

भवदीय, धनपत राय।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 21 सितंबर, 1930

भाईजान,

तसलीम। मजमून टाइप कराके भेज रहा हूँ। एक यहाँ स्पेशल मैनेजर को दे दिया है। आपकी मुलाक़ात का कुछ नतीजा हुआ है। मुझसे पंत और केसरीदास सेठ दोनों ही पूछ रहे थे। आपसे डिप्टी कमिश्नर साहब ने क्या कहा। मैंने कह दिया मेरी उनसे मुलाक़ात ही नहीं हुई। मैंने इस मज़मून में कहीं एकाध लफ़्ज़ रद्दोबदल कर दिया है। आपको जल्द एक बार मेरी ख़ातिर से फिर आना पड़ेगा। बाक़ी हालात बदस्तूर है।

आपका, धनपत राय।

●●

नवलकिशोर प्रेस (बुक-डिपो), लखनऊ, 16-10-1930

प्रिय उग्र जी,

आशा है आप सानन्द हैं।

'भूत' को आपने ऐसा रगड़ा कि वह भी याद करता होगा। यह कहानी 4 साल हुए 'माधुरी' में निकली थी। हाल में देहली के 'रियासत' ने इसका उर्दू-अनुवाद छापा। शायद निर्मल ने उसे नयी कहानी समझकर 'रियासत' से नक़ल कर लिया। मुझे तो ख़बर भी नहीं।

मैंने एक संग्रह गल्पों का किया है। कुल 12 कहानियाँ हैं। एक आपकी भी चाहता हूँ। 'बुढ़ापा' मुझे बेहद पसन्द आया। उसी को ले रहा हूँ। क्या हाथ जोड़कर करबद्ध होकर वरदान माँगू ?

अपनी तस्वीर भी भेजो या कहो तो वही 'मधुकरी' वाली तस्वीर ले लूँ ! लौटती डाक से जवाब दो, क्योंकि समय बहुत कम है और नवम्बर के पहले सप्ताह में किताब मीटिंग में पेश होगी।

अगर जवाब न दोगे तो मैं सीनाज़ोरी से काम लूँगा। फिर मेरा कोई दोष नहीं।

शेष आनन्द।

सप्रेम, धनपत राय।

●●

From, Manilal Shankerlal Thakur 24th October, 1930, Ahmedabad
C/o Kasturbahi Lalbhai Sheth,
Shahibag, Ahmedabad

To, Prem Chand ji, Benares City
Sir,

Recently I received the whole set of your works through my book-seller. On going through it, I found several stories-perhaps written in 1920-21, the days of Non-co-operation, with a particular mission dealing with the fundamental elements of Non-co-operation-viz, 'Zal Fita' and 'Lagdam' in 'Prem-Chaturthi', 'Namaka ka Daroga' and 'Updesha' in 'Sapta-Saroja', 'Satyagraha', 'Premdwadashi', 'Ahinsa Paramo Dharma' and 'Mandir' in 'Prem-tritha' and some more, I propose to supply the Gujarati reading public with a Gujarati version of them issued in a book or two.

I am a Snatak (Graduate) of the Gujarat Vidyapith, Ahmedabad, of about 6 years standing. If I am allowed to undertake the task, I shall do my best to do full justice as you might expect. What I seek to do is a labour of love inspired by a scene of public service in my own humble way, when I cannot risk going to jail by taking active part in the struggle led by Mahatma ji.

I have every hope that you will kindly grant me the permission to prepare a book as described above and ablige.

Yours faithfully, Manilal Shankarlal Thakur



लाजपतराय एण्ड संस, लाहौर, 8-11-1930

श्रीयुत मुंशी प्रेमचन्दजी, नमस्ते !

मेरे ख़त मिलने से पहले मनीऑर्डर मुब्लिग 50 रु. का मिल चुका होगा। मैंने 20 तारीख़ को रुपये भेजने का वायदा किया था, मगर मुझे देहली का एक ज़रूरी काम दरपेश आ गया। देहली से मैं दूसरी तारीख़ को वापस आया, और जनाब के दो कार्ड मिले, जिसके लिए बहुत अफ़सोस हुआ कि जनाब को ख़ामख्वाह की इन्तज़ारी रही। मेरे पहले चालीस रुपये 'खाके-परवाना' के हिसाब में वज़ा (कटौती) कीजिए और मुब्लिग (भेजे गये) पचास रुपये 'रामचर्चा' के हिसाब में। 'रामचर्चा' छापी तो बच्चों के लिए है, मगर जख़ीम (मोटी, बड़ी) हो जाने की वजह से हमारा मक़सद मफ़्कूद (अप्राप्य) हो गया है, और स्कूलों वाले इसी एतराज़ की बिना पर ख़रीदने से झिझकते हैं। चुनांचे मैं इस किताब को तबादले के तरीक़े से ही निकाल रहा हूँ। चुनांचे चार सौ किताबें तबादले में दी गयी हैं, क्योंकि तबादले के हिसाब 1 रुपया 4 आने के हिसाब से दी गयी है, इसलिए इसकी रॉयल्टी भी इसी हिसाब से दी जावेगी, और बाक़ी की किताब जो भी हैं, उसकी रॉयल्टी एक रुपया फ़ी किताब के हिसाब से मिलेगी, क्योंकि किताब की क़ीमत एक रुपया मुकर्रर

की गयी है। 1 रु. 4 आना तो तबादले के लिए है। बाकी हिसाब इस तरह है—

150 रु. की मालियत की किताब व हिसाब तबादला-'एवाशी फ़रोख्त की गयीं—

रॉयल्टी—	32 रु. 13 आने सिफ़र पाई
रॉयल्टी 100 किताब—	17 रु. 8 आने सिफ़र पाई
कुल	50 रु. 5 आना

चुनाँचे मुब्लिग 50 रुपये बज़रिए मनीऑर्डर और आठ आने फ़ीस मनीऑर्डर हिसाब में दर्ज फ़रमाकर मशकूर करें। 'ख़ाके-परवाना' की रक़म हमारी तरफ़ वाजिब आइद मुताल्लिक बयालीस रुपये थी, जिसके एवज़ जनाब को चालीस रुपये नक़द और बेमुजीब जनाब के इर्शाद। 1 रु. 7 आना 9 पाई की कुतुब बाज़ार से खरीदकर इर्साल ख़िदमत की गयीं, और सात आने महसूल डाक यानी कुल 1 रु. 14 आना 9 पाई, यानी कुल हिसाब माफ़ हो चुका। बाक़ी रहा नॉविल के लिए, आपसे कई बार दरख़्वास्त की गयी, मगर जनाब ने हमारा ज़र्रा-भर भी ख़याल न किया। बराये-मेहरबानी यह नॉविल ज़रूर हमारे लिए मख़सूस (ख़ासतौर पर) रखेंगे। नॉविल कब तैयार होगा ? उसकी अदायगी किस तरह की जावे, आप ही बतायें। मेरे लिए लिखें, बिल्कुल उस पर अमल किया जायेगा, और किसी क़िस्म का अदायगी में देरी या वायदाखिलाफ़ी न की जावेगी। किसी क़िस्म की सेवा हो तो लिखें।

सोमप्रकाश।

नोट : मुझे पूरी उम्मीद है कि इस बार मुझे निराश न करेंगे और ज़रूर-ज़रूर मुझे यह किताब देकर मशकूर करेंगे।



Lucknow, 11-11-30

My dear Kanhji,

So you have made up your mind to write nothing at least for 'Hans'. The Saraswati Press has resumed work and 'Hans' is in the Press. The next number will be a special number. The lost (इससे आगे अस्पष्ट है—गोयनका)

But you have taken a row of inactivity. How is it possible to bring out a successful number. Don't you fell that an old man like myself has not got sufficient energy to take the whole burdenè Awaiting your reply anxiously.

Your mousi was arrested on the 9th for picketing a foreign cloth-shop. I saw her in the jail yesterday and found her cheerful as ever. She has beat us and now I am looking small in my own eyes. She has risen in my estimation a hundred fold. But I must shoulder the burden of a household till she relieves me.

With my regards to Bhai Sahib and love to children.

Yours, D. Rai



लखनऊ, 12 नवम्बर, 1930

बरादरम,

नमस्ते। आपने शायद अखबार में देखा हो परसों मिसेज़ धनपत राय पिकेटिंग करने के जुर्म में गिरफ्तार हो गयीं। मैं चार पाँच रोज़ के लिए बाहर गया हुआ था। उस वक़्त घर पर मौजूद न था। वहाँ से आकर यह वाक़या सुना। दूसरे दिन उनसे जेल में मुलाक़ात हुई। अब 30 को उनके मुकदमे की पेशी है। सज़ा तो हो ही जायेगी मगर देखिए कितने महीनों की होती है। और सब ख़ैरियत है।

नियाज़मंद, धनपत राय।

●●

दि सुदर्शन पब्लिशिंग हाउस, लाहौर, 17-11-1930

भाईजान, नमस्ते !

कार्ड मिला, शुक्रिया। मुझे ये ख़याल नहीं कि कहानी हिन्दी में न छपी हो। अंदेशा ये है कि कहीं उसे किसी अख़बार ने तर्जुमा करके न शाया कर दिया हो ! उर्दू अख़बारात में ये आम मर्ज है। ऐसी हालत में 'चन्दन' की किरकरी हो जायेगी। पहले ही पर्चे पर ले-दे शुरू हो जायेगी। मेरी नाचीज़ राय में अब जो कहानियाँ नहीं छपीं, उन पर साफ़ लिख दें—तर्जुमा करने की इजाज़त नहीं। इस तरह मैं जो कुछ 'चन्दन' में लिखूँ उसे वक़्फ़ आम न होने दूँ। इस तरह मेरी चीज़ मेरे काम आ सकती है और बग़ैर किसी डाकाज़नी के अंदेशे के।

मेरी दिली ख़्वाहिश है 'चन्दन' पर आपका नाम भी एडीटर के तौर पर दिया जाये। इससे मुझे भी फ़ायदा पहुँचने का इमकान है, आपको भी। बराएनवाज़िश बाक़ायदा इजाज़त दें, तो अख़बार के लिए जो कुछ भेज रहा हूँ उसमें आपका नाम भी दे दूँ। आपके 'माधुरी' पर्चे के माह अक्टूबर में एक सेरंगी तसवीर : 'जोवन' निकली है। ये तसवीर मुझे बहुत पसन्द है। चाहता हूँ, इसे 'चन्दन' में दे दूँ। क्या आप इसके ब्लॉक मुझे भिजवा सकते हैं ? 2-4 रुपये किराये के माँगें तो हाज़िर हैं। तसवीर छप जाने पर ब्लॉक हिफ़ाज़त से लौटा दिये जायेंगे। ये काम ज़रूर कर दीजिएगा। भाभी साहिबा के मुक़दमे का फ़ैसला क्या हुआ ? लिखिएगा। मिसेज़ सुदर्शन कहती हैं—देखिए, हमारी बारी कब आती है ? बच्चों का प्यार !

आपका, सुदर्शन।

भाईजान, कहानी 25-26 नवम्बर तक भेज दें तो बहुत नवाज़िश हो। पहला पर्चा है, शान से निकल जाये तो लोगों में धाक बन जाये।

●●

लखनऊ, 24 नवम्बर, 1930

भाईजान,

तसलीम। आज फ़ैसला हो गया। डेढ़ माह की क़ैदे महज़ हुई।

मैं तो न आ सका। अब देखूँ कब तक आता हूँ। मेरे साले और उनकी बीवी यहाँ आ गये हैं।

अहकर, धनपत राय।

सरस्वती प्रेस, 25 नवम्बर, 1930

प्रिय मित्रवर,

बंदे। पत्र मिला। सच्चा आनंद हुआ। 'परख' मैंने पढ़ लिया था और पढ़ कर मुग्ध हो गया था। इसकी आलोचना दिसंबर के हंस' में कर रहा हूँ जो विशेषांक होगा। 'परख' के चारों मित्र—सत्य, कट्टो, बिहारी और गरिमा—खूब हुए हैं। सत्य का गंभीर, मानसिक संग्राम। बिहारी का उससे भी पवित्र किन्तु सरल और विनोदमय लगा। कट्टो तो देवी है। आपकी शैली और चरित्र प्रदर्शन का ढंग मुझे बहुत पसंद आया। मैंने सरस्वती वाली आलोचना नहीं देखी, लेकिन आपके उपन्यास की तारीफ तो उन्हें करना ही चाहिए था। मै ऐसी रचना पर आपको बधाई देता हूँ।

अन्य प्रकाशकों की स्थिति इस समय अच्छी नहीं है। मौलिक उपन्यास तो कई अच्छे निकले हैं। प्रसाद जी का 'कंकाल', 'उग्र' जी का 'शराबी,' वृंदावनलाल वर्मा का 'गढ़कुंडार'। 'गढ़कुंडार' तो रोमांस है पर 'कंकाल' बहुत ही सुन्दर है। लेकिन मौलिक उपन्यासों को छोड़कर अनुवादों का बाजार ठंडा पड़ा है। 'मैग्डलीन' खुद अपने प्रेस में छपवाने का इरादा कर रहा हूँ। आजकल मेरा 'ग़बन' छप रहा है, यह निकल जाय तो इसे शुरू करूँ।

'हंस' के छः अक निकल चुके। सितंबर और अक्टूबर में प्रेस और पत्रिका जमानत माँगे जाने के कारण बन्द पड़े रहे। प्रेस के आर्डीनेंम उठ जाने पर फिर निकले हैं।

मेरी पत्नी जी पिकेटिंग के जुर्म में दो महीने की सज़ा पा गई। कल फैसला हुआ है। इधर पन्द्रह दिन से इसी में परेशान रहा। मैं जाने का इरादा ही कर रहा था, पर उन्होंने खुद जाकर मेरा रास्ता बंद कर दिया।

और क्या लिखूँ ? मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि आप गुजरात में स्वस्थ और प्रसन्न हैं। हम लोग भी अच्छी तरह हैं।

एक बार फिर 'परख' के लिए बधाई लीजिए। हिन्दी उपन्यास अब चेतेगा, इसमें सन्देह नहीं। एक साल के अन्दर 'कंकाल,' 'परख,' 'गढ़कुंडार,' 'शराबी' जैसी पुस्तकें निकल चुकीं—यह भविष्य के लिए शुभ लक्षण हैं।

न जाने आप से कब मुलाकात होगी। मालूम होता है युग बीत गया।

भवदीय, धनपत राय।



Lucknow, 26.11.1930

My dear Anandrao,

Thanks, 'Madhuri' is these days in the melting pot. Pt. K.B. Misra has resigned. He was in charge of the general selection of magazines. He has a predilection for critical and literary articles and your article remained unpublished so long. Now I hope to see it through very soon.

I shall certainly bring out the review of 'Gosti' in December no. of 'Hans'.

You do not appreciate my political contributions. You would prefer

literary notes. But I can't help. My whole career has been devoted to politics I have been dabbing in politics for the last thirty years, although not directly. All my works have a political bearing. How can I eschew politics now? You will not be sorry to know that my wife is a whole hogger and has just got 6 weeks S.I. for picketing.

The December no. of 'Hans' is going to be a special no. You will send your quota of the Marathi Survey, no doubt But I also request you to translate from Marathi a first class story, the best that has appeared recently. You may kindly make your own selection. I want to give one from every vernacular, Bengali, Gujarati, Marathi & Urdu. One from English, one from French, one from Russian and if possible one from Japanese.

So it is going to be a representative number. I hope you will not disappoint me.

Expecting the favour of an early reply in the affirmative,

Yours Sincerely, Dhanpat Rai.



स्पेशल जेल, गुजरात (पंजाब), 4 दिसम्बर, 1930

बाबू जी,

आपका खत समय पर मिल गया था। मैंने सोचा कि शायद विशेषांक निकलने में अवकाश हो, एक कहानी लिख डालूं, उसके साथ ही पत्र का जवाब दे दूंगा। लेकिन यहाँ की धूमधाम में कहानी तो लिखी न जा सकी और वह वक्त आ गया कि खत के जवाब को और टालना धृष्टता हो जाती। इससे इतनी देर बाद भी, खाली खत ही भेज रहा हूँ। क्षमा करें।

क्या विशेषांक निकल गया ? एक (मेरी) प्रति शेख मुहम्मद अली साहब मिल ऑनर, गुजरात के पते पर भिजवा दें। मेरा नाम न लिखें। वह मुझे यहाँ पहुँच जायगी। जेल के पते पर भेजे गये अखबार नहीं मिलने दिये जाते। कृपा कर ध्यान रखकर जरूर सूचना बनारस दे दें।

क्या आपकी पत्नी के जेल जाने पर धन्यवाद दूँ ? यह इसलिए भी धन्यवाद का विषय हो सकता है कि आपकी इस तरह जेल आने की राह और आवश्यकता रुक गयी। कितने पतियों ने पत्नियों को रोक रखा है लेकिन वे पति धन्य हैं जिनकी पत्नियाँ आगे बढ़कर जेल में पहुँच गयीं और उनको रुकने को लाचार कर गयीं।

'कंकाल' की अर्द्ध-प्रकाशित प्रति मैंने देखी थी। प्रसाद जी की कृति है, बुरी कैसी होती ? 'उग्र' जी के 'शराबी' का नमूना 'मतवाला' के पृष्ठों में देखा याद पड़ता है। 'गढ़-कुंडार' बिल्कुल ही नया नाम और नया काम मालूम होता है। मैं नहीं जानता, मैं यहाँ किसी से कोई चीज़ मँगा सकता हूँ। हाँ, 'शराबी' और 'गढ़कुंडार' पढ़ना ज़रूर चाहूँगा। आपके पास काहे को कोई प्रति होगी ? अगर 'हंस' के लिए प्राप्त हुई दो प्रतियों में से एक यहाँ (अर्थात् ऊपर दिये पते पर) भेजी जा सकें तो मैं आलोचना 'हंस' में भेज दूँगा।

ऋषभचरण का ख़त मिला कि आप 'परख' को प्रसाद स्कूल के अधिक निकट समझते हैं। आपने लिखा है कि आपको वह पसंद आयी है और आप समालोचना 'हंस' के इसी अंक में दे रहे हैं। 'हंस' मिला तो आलोचना में देखूँगा ही। पर 'परख' में आपके अनुसार कहाँ क्या अधिक और कहाँ क्या कम होना चाहिए था, यह मैं आपसे जाने बिना संतुष्ट न हूँगा। परीक्षक के ढंग से मैं उसे आपको सौंपना चाहता हूँ, अंतर केवल इतना ही कि परीक्षार्थी परीक्षक के नम्बर देने के ढंग को भी समझना चाहता है। ऋषभचरण ने जो स्कूल की बात लिखी उसका भी खुलासा मैं जानना चाहूँगा।

पता चला है कि अवध उपाध्याय जी की आलोचना देवीदत्त जी ने 'सरस्वती' में नहीं छापी। सच बात तो यह है कि वह थी भी इस लायक नहीं। लेकिन आलोचना उन्हें पसन्द नहीं आयी, इतना ही होता तो अचरज की बात न थी। सुनते हैं किताब उन्हें और भी नापसन्द है। एक और मित्र के सम्बन्ध में मालूम हुआ कि उन्हें 'परख' मेरी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं जँची। गोया कि लिखने से पहले ही मेरी लेखनी की प्रतिष्ठा बन गयी थी। इन सब ऊटपटाँग सम्मतियों का क्या बनाया जाय ! और मैं समझता हूँ कि अगर लोग आपको और प्रसाद जी को मंगलाप्रसाद पारितोषिक नहीं देते और फिर भी योग्य व्यक्ति को ही देना चाहते हैं तो वह मुझे ही दे सकते हैं। पारितोषिक का सम्मान इसी में है।

तो 'मेरी मेगडलीन' आप छापेंगे ? यह ठीक है। 'गबन' कब तक ख़त्म होगा ? कितनी मोटी चीज़ है ? कोई 'रंगभूमि' की टक्कर की दूसरी चीज़ भी लिखिये न ? आप और क्या लिख रहे हैं ? न जाने कौन कहता था कि एकेडमी के लिए Galsworthy का अनुवाद करना आपने शुरू किया है ? क्या यह ठीक है ? मुझसे आप पूछें, और नाराज़ न हों तो मैं कहूँगा कि गाल्सवर्दी के अनुवादक तो बहुतेरे निकल आवेंगे, प्रेमचंद इस काम को करते हैं तो हिन्दी का दुर्भाग्य है। गाल्सवर्दी की चीज़ों को मैंने दिल्ली जेल में चख देखा था, विलायतीपन और विलायती भाषा के अजीबपन के आकर्षण को दूर रखने के बाद क्या मैं ज़रा देर के लिए भी गाल्सवर्दी को प्रेमचंद से ऊंचा मान सकता हूँ ? आप कहानियाँ लिखें, रंगभूमियां लिखें, पर मेरा निवेदन है कि गाल्सवर्दी के अनुवाद में फंसकर प्रेमचंद से वंचित रखने का अनुपकार हिन्दी साहित्य पर न करें।

'माधुरी' वालों ने मेरा पुरस्कार घर भेज ही दिया होगा। 'माधुरी' में 'परख' की समालोचना निकली या नहीं ? 'माधुरी' की भी मेरी प्रति शेख महम्मद अली के पते पर भेजने को कह दें तो कृपा हो।

आपसे मिलने को कैसा जी चाहता है ! सदेह साक्षात् और वार्तालाप नहीं होता तब तक पत्र से ही सही।

मैं यहाँ सर्वथा कुशल और आनन्द से हूँ। आपकी बधाइयों पर प्रसन्न और कृतज्ञ हूँ। शायद आप इस बात पर एक और बधाई भेज दें कि अभी कुछ दिन हुए परमात्मा ने मुझे एक पुत्र का पिता बना दिया है।

आपका, जैनेन्द्र कुमार।

●●

नवलकिशोर प्रेस, प्रकाशन विभाग।
लखनऊ, 17 दिसम्बर, 1930

प्रिय जैनेन्द्र जी,

बंदे। पत्र मिला। वाह ! आपने कहानी लिख दी होती तो क्या पूछना। मैंने तो इस वजह से नहीं कहा था कि आपको कष्ट पर कष्ट क्या दूँ। अभी तक समय है, हालाँकि छपाई शुरू हो गयी है। पर आपकी कहानी मिल जाती तो आख़िर वक्त भी दे देता। क्या अब भी मुश्किल है ?

'परख' की आलोचना मैं 'माधुरी' या 'हंस' में करूँगा। मेरे पास दो प्रतियों में से एक भी नहीं बची। एक तो जेल भेज दी थी, दूसरी एक महिला ले गयीं और अभी तक लौटा रही हैं। इसलिए उसका असर जो दिल पर पड़ा था वही लिखूँगा। 'गढ़ कुंडार' तो नई चीज़ है, मगर मेरा मन उसके पढ़ने में न लगा। दो एक चरित्रों का चित्रण उसमें अच्छा हुआ है। उसकी आलोचना भी करूँगा।

'ग़बन' अभी तैयार नहीं हुआ। तीन सौ पृष्ठ छप चुके हैं। अभी एक सौ पृष्ठ और होंगे। यह एक सामाजिक घटना है। मैं पुराना हो गया हूँ और पुरानी शैली निभाये जाता हूँ। कथा को बीच में शुरू करना या इस तरह शुरू करना कि उसमें ड्रामा का चमत्कार पैदा हो जाये मेरे लिए मुश्किल है। पुरस्कारों का विचार करना मैंने छोड़ दिया। अगर मिल जाय तो ले लूँगा, पर इस तरह जिस तरह पड़ा हुआ धन मिल जाय। आप या प्रसाद जी पा जायें तो मुझे समान हर्ष होगा। आपको ज़्यादा ज़रूरत है इसलिए ज़्यादा खुश हूँगा।

पुत्र मुबारक। ईश्वर चिरायु करे। या यों कहूँ, चिरायु हो। मैं तो पुराने ख़याल का आदमी हूँ। दो पुत्रों तक तो बधाई दूँगा, इसके बाद ज़रा सोचूँगा।

'हंस' और 'माधुरी' दोनों ही यथास्थान भेज दी जाएँगी। 'शराबी' और 'गढ़ कुंडार' दोनों ही की एक-एक प्रति मिली थी। वे दोनों भी मैंने पढ़कर जेल भेज दीं। अब तो उनके आने पर किताबें वापस होंगी। आख़िर आप कब तक आवेंगे। 'माधुरी' में दो में से एक भी आलोचना के लिए नहीं आयी।

अब आपके उस प्रश्न का जवाब कि 'परख' को मैं प्रसाद स्कूल के निकट क्यों समझता हूँ। मैं तो कोई स्कूल नहीं मानता, आपने ही एक बार 'प्रसाद स्कूल', 'प्रेमचंद स्कूल' की चर्चा की थी। शैली में ज़रूर कुछ अन्तर है, मगर वह अन्तर कहाँ है यह मेरी समझ में खुद नहीं आता। आपकी शैली में स्फूर्ति–सजीवता–कहीं अधिक है। चुटकियाँ, चुलबुलापन कहीं अधिक है। प्रसाद जी के यहाँ गम्भीरता और कवित्व अधिक है। Realist हममें से कोई भी जीवन को उसके यथार्थ रूप में नहीं दिखाता, बल्कि उसके वांछित रूप में ही दिखाता है। मैं नग्न यथार्थवाद का प्रेमी भी नहीं हूँ। आपसे मिनने पर 'परख' के विषय में बातें होंगी–तब तक ग़बन भी तैयार हो जायगी। आशा है आप प्रसन्न होंगे।

भवदीय, धनपत राय।

P.S.–अगर हो सका तो मैं 'शराबी' और 'गढ़कुंडार' और 'कंकाल' तीनों ही किसी तरह मँगवाकर भेजूँगा। समालोचना अवश्य कीजियेगा, 'हंस' के लिए।

●●

स्पेशल जेल, गुजरात (पंजाब), 17 दिसम्बर, 1930

बाबू जी,

बहुत दिन हुए यहाँ से आपको अमीनुद्दौला पार्क के पते पर एक ख़त डाला था। मालूम नहीं आपको वह मिला भी या नहीं। आपका ख़त न पाने से जान पड़ता है, नहीं मिला।

'परख' हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ने ही छापी है। आपको अवश्य मिल गयी होगी। वह आपको कैसी लगी ? आपकी खुली सम्मति सुनने की बड़ी इच्छा है। नाथूराम जी प्रेमी ने उस पर अवध उपाध्याय जी की विस्तृत समालोचना की एक प्रति मेरे पास भेजी है। वह उपाध्याय जी ने सरस्वती में भेजी थी। मुझे तो अख़बार मिल पाते नहीं इससे मालूम नहीं रहता कहाँ क्या निकलता है। क्या आपने भी उसके संबन्ध में 'हंस' या 'माधुरी' में कुछ लिखा है ? उपाध्याय जी ने तो किताब की बेहद तारीफ कर दी है। आप जानते हैं मुझे उनकी परख पर बहुत भरोसा नहीं है। विज्ञान की तराजू पर तोल कर जो साहित्य पर निर्णय दिया जाता है, उसके मोह में मैं नहीं पड़ना चाहता लेकिन आपकी और दो एक सज्जनों की अच्छी सम्मति मुझे चाहिए ही। आपकी और उनकी निगाहों में पास समझा गया तो यही मेरे लिए सब कुछ है। शेष से तारीफ पाने की इच्छा जैसे या चिन्ता मुझे बिल्कुल भी नहीं है। आपको मैं 'मेरी मेग्डलीन' दे आया था। नौ-दस महीने हुए होंगे। उसके प्रकाशित होने का अब क्या हाल है? जैसे और जहाँ से उचित समझें छपवा दें और पैसा घर भिजवा दें। मैं यहाँ जेल में हूँ घर पर हर ताँबे के पैसे की ज़रूरत है। इस सम्बन्ध में मैं यह भी आपकी मार्फत 'माधुरी' के व्यवस्थापक जी को याद दिलवाना चाहता हूँ कि शायद अप्रैल (या आस-पास के) महीने की 'माधुरी' में प्रकाशित कहानी (दिल्ली में) का पुरस्कार मुझे नहीं मिला है। वह कृपाकर घर भेज दिया जाना चाहिए। थोड़ा कष्ट उठाकर यह काम आप करा सकेंगे तो बड़ी कृपा होगी और 'मेरी मेग्डलीन' का भी ध्यान रखेंगे तो आभार होगा।

आपने इस बीच क्या लिखा है ? नई छपी चीज़ों की एक-एक प्रति अवश्य भिजवा दीजिए। जेल में किताबों की कीमत और ज़रूरत और चाह कितनी रहती है, यह हमीं जान सकते हैं।

और आप कैसे हैं, यह अवश्य लिखें। यहाँ दो एक आपके ज़बर्दस्त मुरीद हैं। जब उन्हें पता चला कि मैं आपसे writing terms पर होने का सौभाग्य रखता हूँ, तो उन्होंने मुझे शतशः अनुरोधपूर्वक आपको उनकी Respects लिख भेजने को कहा। वे आपकी कुशलता सुनने के बड़े आकांक्षी हैं। मैं उन्हें उन आठ-दस घंटों का हाल सुना चुका हूँ जो मुझे अब तक आपके साथ बिताने के लिए मिले हैं। उनकी याद मेरे भीतर बसी है। बड़े मजे की वह याद है। लेकिन वह मैं आपको नहीं सुनाऊँगा।

आशा है आप प्रसन्न और स्वस्थ होंगे और पत्र देंगे।

मैं यहाँ इतनी अच्छी तरह हूँ कि क्या कहूँ। खाना बहुत अच्छा मिलता है, जेल के अन्दर घूमने को और खेलने को खूब मिलता है। बस अख़बार नहीं मिलते, यही ज़रा कमी है। सो यह भी कुछ नहीं, अगर नई-नई किताब मिलती रहें।

विशेष नमस्कार और आदर के साथ.

आपका, जैनेन्द्र कुमार।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 18 दिसंबर, 1930

भाईजान,

तसलीम। आपने ग़ालिबन् फ़ोटो भारत के दफ़्तर में भेज दिया होगा। मुंशी इक़बाल वर्मा साहब अब कानपुर न जायेंगे। आप उन्हें रुपया भेज दें तो बड़ा एहसान करें। मैं तो माज़ूर हूँ वर्ना आपको तकलीफ़ न देता।

आपके लिए एक क़िस्सा लिख रहा हूँ। यहाँ से कोर्स की किताबें भेज दी गयी हैं।

नियाज़मन्द, धनपत राय।

●●

लाजपतराय एण्ड सन्स, लाहौर, 19 दिसम्बर, 1930

श्रीयुत पूजनीय मुंशी जी, नमस्ते !

ख़त मिला, दो हज़ार की एडीशन या एक हज़ार में कोई फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि उर्दू एडीशन चाहे एक हज़ार छपवा लिया जाय, चाहे दो हजार, इसमें कोई फ़ायदा नहीं होता। अलबत्ता हिन्दी एडीशन दो हज़ार ही छपवाने में फ़ायदा होता है। उर्दू एडीशन अमूमन और ख़सूसन एक हज़ार ही छपते हैं। रॉयल्टी की उलझनों में मैं फँसना नहीं चाहता, क्योंकि उसमें आपको भी ख़याल रहेगा और मुझे भी। ख़ामख़्वाह की पाबन्दियों और उलझनों में फँसना पड़ेगा। इसमें ख़ामख़ाह के नुक़्स और शक-ओ-शुबहात का एहतमाल रहता है। रेट के मुतल्लिक़ अर्ज़ है कि पिछली ख़तो-किताबत में एक रुपया छः आने तय हुए थे. जबकि हम एक रुपया नौ आने पर ज़ोर देते थे, मगर मुझे मंज़ूर है। उसकी अदायगी का यह हिसाब होगा—नॉविल आने पर सौ रुपया इर्साल ख़िदमत किया जायगा। उसके छपने पर पूरी रक़म का, जिसकी मियाद एक माह होगी, भेज दिया जायगा। अदायगी में किसी क़िस्म का नुक़्स या ख़िलाफ़-तस्फ़िया कोई काम न होगा। कम-अज़कम पहले भी आपका हिसाब साफ़ रहता है। 'ख़्वाबो-ख़याल की तैयारी में ख़ास वजूहात का सामना था जो कि आप पर रौशन है। मैं कामिल उम्मीद रखता हूँ कि आप मेरी दरख़्वास्त को स्वीकार करेंगे।

जवाब का मुन्तज़िर, सोमप्रकाश।

●●

25, वीडन रोड, लाहौर, 26 दिसम्बर, 1930

मुहतरिम बन्दा,

इसी डाक से एक किताब इर्साले-ख़िदमत है। इस किताब के भेजने से आपकी जियाफ़ते तबा (तबीयत प्रसन्न करने के लिए) नहीं, अपनी इज़्ज़त-अफ़ज़ाई मत्लूब (अभीष्ट) है। उम्मीद है, जनाब शर्फ़े-कुबूलियत (स्वीकार करने का सौभाग्य) बख़्शेंगे।

ख़ाकसार, पतरस।

●●

अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ, संभवतः जनवरी, 1931

प्रिय केशोराम जी,

आपके कृपापत्र का उत्तर देने में जो विलम्ब हुआ उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मैं बनारस गया हुआ था और कल ही लौटा। मेरे प्रकाशक ने जो पुस्तकें उसके पास स्टाक में थीं, आपको भेज दी हैं। दूसरे खण्ड भी अन्य प्रकाशकों से प्राप्त होने पर आपको भेज दिए जायेंगे। अपनी बड़ी पुस्तकों के संबंध में आपकी राय का मैं आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

नये हिन्दू वर्ष से मैंने साहित्य और राजनीति की एक नयी पत्रिका निकालने का निश्चय किया है। उसमें आरम्भ में चौसठ पृष्ठ होंगे, उसका नाम 'हंस' होगा। मैं 'माधुरी' के संयुक्त सम्पादक के रूप में भी काम करता रहूँगा। मेरी नयी पत्रिका बनारस से प्रकाशित होगी। मैं लखनऊ से उसका संपादन करूँगा। यदि आप समय-समय पर कोई मनपसन्द चीज भेजते रहेंगे तो मैं अपने को सम्मानित अनुभव करूँगा। पहले अंक के लिए मैं विशेषरूप से आपसे प्रार्थना करूँगा कि जापान की साहित्यिक क्रियाशीलता के बारे में, विशेषतः कथा-साहित्य के बारे में, एक छोटा-सा लेख लिखें। मुझे विश्वास है कि आप मुझको निराश नहीं करेंगे।

मुझे यह जानकर दुख हुआ कि अब आप जापान टाइम्स में काम नहीं करते। गरज़ कि प्रकाशकों ने आपके अच्छे काम के लिये आपको पुरस्कृत किया है ! आप माधुरी में लिखा करें। वे आपकी रचनाओं का स्वागत करेंगे और पुरस्कार देंगे, यद्यपि व्यावसायिक दृष्टि से भारतीय पत्र-पत्रिकायें बहुत आकर्षक नहीं हैं। मैं इस बात का ध्यान रखूँगा कि आपके लेखों को हमारी क्षमता को देखते हुए अधिक से अधिक पुरस्कार मिले।

आपको पता चला होगा कि इस साल काँग्रेस ने एक क़दम और आगे बढ़ाया है और स्वाधीनता का संकल्प किया है। इस मामले में बहुत गहरा मतभेद है। नरमदली लोग इतनी दूर तक जाने के लिए तैयार नहीं हैं और युवक राजनीतिज्ञ इससे कम किसी चीज़ की बात भी नहीं सुनना चाहते। मैं समझता हूँ कि स्वाधीनता इंग्लैण्ड के दम्भपूर्ण साम्राज्यवाद का ठीक जवाब है। डोमीनियन स्टेटस धोखे की टट्टी है। एक चीज़ जो मेरी समझ में नहीं आती वह कौंसिलों के बहिष्कार का कांग्रेसी निश्चय है। हमको जो कुछ भी थोड़ा-बहुत कहीं से भी मिले, ले लेना चाहिए। कौंसिलों को प्रतिगामी विधान बनाने का अवसर क्यों दिया जाय। स्वाधीनता इतनी सुगम नहीं है कि हम कौंसिलों को और भी एक-दो सत्रों तक शरारत करने दें।

अपनी चुनी हुई कहानियों के एक जापानी संस्करण को देखकर मुझे खुशी होगी। आप अपनी कसौटी के अनुसार जो भी कहानियाँ चाहें चुन लें।

एक बार फिर आपसे 'हंस' में लिखने का अनुरोध करते हुए, शुभकामनाओं के साथ,

आपका, धनपत राय (प्रेमचंद)।

●●

स्पेशल जेल, गुजरात, 7 जनवरी, 1931

श्रद्धेय बाबू जी,

आपका पत्र समय पर मिल गया था। उत्तर आज इसलिए दे रहा हूँ कि जनवरी का एक हफ्ता ख़तम हो जाता है और 'हंस' के लिए कहानी भेजने के ख़याल को पास रखने की गुंजायश भी बिल्कुल ख़तम हो जाती है। बात तो असल में यह है कि कहानियां हो गई हैं पर भेजी नहीं। प्रेस आर्डिनेन्स की ख़बर पाते ही डर हुआ कि 'हंस' का यह अंक निकल भी गया तो आगे नहीं निकलने दिया जायगा। और क्या मालूम विशेषांक भी निकल पाये या नहीं। फिर संभावना भी थी उन कहानियों को जल्दी ही हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर भेजना पड़ जाय। वह संग्रह छापते हैं और कुछ नयां अप्रकाशित कहानियां चाहते हैं। बात जनवरी तक संग्रह के निकल जाने की थी। आपको कहानी भेजी गई और अख़बार बन्द हो गया या विशेषांक में उसके निकलने की संभावना न रही तो इस तरह उसके फिर जल्दी बम्बई जाने में गड़बड़ पड़ जाती। इस तरह जो चार कहानियां इस बीच लिख डाली गयी हैं, मेरे पास हैं। पुरानी प्रकाशित कहानियों को उनसे (नाथूराम जी प्रेमी से) पाने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ताकि उनको एक बार फिर देखकर उनके साथ ही इन नयी को भी रवाना कर दूँ। कृपा कर लिखिये कि आर्डिनेन्स की कृपा आपके प्रेस और पत्र पर तो नहीं हो गई ? पत्र निकलता हो तो कृपाकर मेरी भूल को क्षमा कर दीजिए। पत्र निकले तो, अगर पहले लिखे पते पर न भेजा गया हो तो जेल के पते पर भी भिजवा दीजिएगा। 'माधुरी' भी 'माधुरी' की उस कहानी के मेरे पुरस्कार के बारे में क्या हुआ, सो आपने नहीं लिखा था। 'माधुरी' के नाम पर वह बात भी याद आ गयी है तो आपको भी याद दिला देता हूँ।

'गढ़ कुंडार' और 'शराबी' अगर आपको प्राप्त हो गये हैं तो मैं देखना चाहूँगा। समालोचना, जहाँ लिखेंगे, भेज दूँगा।

'ग़बन' तैयार हो गया ? इसके बाद ही 'मेरी मेग्डलीन' प्रेस में जायगा न ? तैयार हो गया हो तो पिछली किताबों के साथ 'ग़बन' की एक प्रति भी भेजिएगा।

मार्च के अन्त तक मैं छूटूंगा। लिखित नहीं तो सेवा में उपस्थित होकर मौखिक ही आपसे अपनी रचना के सम्बन्ध में आदेश और आलोचना प्राप्त करूंगा।

लेकिन इतना ज़रूर लिखिए कि आपकी राय में 'चुलबुलाहट' कम होनी चाहिए न ? शायद मेरी कृति में यह पर्याप्त से अधिक मात्रा में होती है।

मैंने अभी ठीक पारखी और आलोचक दृष्टि से साहित्य को जांचना और जमाना (Assortment) नहीं सीखा। श्रेणी और 'स्कूल-विभाजन' का काम मैं अपने लिए मन चाहे जैसा कर भी सकूँ दूसरे के लिए और छपने के लिए नहीं कर सकता लेकिन 'प्रसाद-स्कूल' शब्द काशी में सुन पड़ा था। स्वभावतः दूसरा स्कूल आपका ही होगा। ख़ैर जो हो। मैं तो चाहता हूँ यह काम सब अपने लिए कर लिया करें।

मैं बिल्कुल प्रसन्न और स्वस्थ हूँ।

आपका, जैनेन्द्र कुमार।

●●

From
The Secretary,
Punjab Text Book Committee, Lahore.

No. 2008/11
9th January, 1931

Sir,

I have the honour to forward the publication noted below and should be obliged if you would favour me with your opinion as to whether the author deserves an award from the Patronage of Literature Fund for the production of this book. Will you kindly also let me know whether the committee can recommend if for school liberaries or prizes. A copy of the rules governing the award of prizes for good vernacular literature is enclosed herewith.

It would be convenient if your reply could reach me not later than the 5th February, 1931. The book need not be returned.

'Hindi Sahitya Ka Vivechnatmak Itihas' (A History of Hindi Literature) by Surya Kanata with a chapter on Hindi by Dr. Benarsi Das.

I have the honour to be,

Sir
Your most obedient servant,
Sd./-Secretary
Punjab Text-Book Committee



लाहौर, 11-1-1931

श्रीमान् पूजनीय मुंशी जी, नमस्ते !

मेरी अब ख़्वाहिश थी कि एक के बाद दीगरे (दूसरे) सिलसिलावार आपकी कुतुब शाया करता, मगर आपके आमदा (आगत) ख़त से तो ऐसा मालूम होता है कि मेरी ख़्वाहिश पूरी होती नज़र नहीं आती। आपने अपने पहले ख़याल में दो नॉविल मुझे देने की रज़ामन्दी ज़ाहिर की थी। में नहीं कह सकता कि आपको खुद छापने में कहाँ तक कामयाबी होगी। 'ख़ाके-परवाना' की बाबत मुझे पूरी तरह मालूम नहीं, ताहम वही ख़्वाहिश है कि कम-से-कम आपका यह नॉविल, जो आपके हाथ में है, ज़रूर शाया करूँ, अगर आपकी मेहरबानी शामिले-हाल (शामिल) हो तो। मैं ज़िद न करता, मगर ख़ास वजह से बार-बार इसरार कर रहा हूँ, और कामिल उम्मीद करता हूँ कि मेरी दरख़ास्त क़बूल करेंगे। गर्मियों में कलकत्ता जाने का विचार है। ग़ालिबन ज़रूर दर्शन करूँगा। जवाब में देरी हो गयी, माफ़ करेंगे।

जवाब का मुन्तज़िर (प्रतीक्षक), सोमप्रकाश साहनी।



सरस्वती प्रेस, 12 जनवरी 1931

प्रिय जैनेन्द्र जी,

कल पत्र पाकर बड़ा आनन्द हुआ। आपको भ्रम हुआ। आर्डीनेन्स तो फिर जारी

हुआ लेकिन अभी मुझसे ज़मानत नहीं माँगी गयी, इसलिए 'हंस' का विशेषांक छप रहा है। आप यदि अपनी कहानी भेज दें तो तुरन्त छपवाऊँ और आपका लाखों यश मानूँ। फिर तो पत्रिका सज उठे। सुदर्शन जी ने कहानी भेज दी है, राजेश्वरी ने भी भेजी। कौशिक जी आजकल इतना लिख रहे हैं, कि मैंने उन्हें कष्ट देना व्यर्थ समझा। वह बहाना करके टाल जाते। आपकी कहानी आ जाय तो क्या पूछना।

हमारे प्रोप्राइटर बाबू विष्णुनारायण भार्गव का मद्रास में स्वर्गवास हो गया। घुड़दौड़ में गए, प्राणों की बाज़ी हार गए। अब देखना है कि यहाँ कैसे काम होता है, 'माधुरी' बंद होती है या चलती है, मुझे तो इसके चलने की आशा नहीं है।

'ग़बन' के तीन फार्म और बाकी हैं। बेचैन हूँ कि कब छपें और कब आपके पास भेजूँ। 'गढ़ कुंडार' और 'शराबी' आज भेज रहा हूँ। मुझे तो 'गढ़ कुंडार' कुछ (नहीं जँचा)। 'शराबी' अपने ढंग की बुरी चीज़ नहीं। आप इन दोनों की आलोचना कर सकें तो 'हंस' में छाप दूँगा।

हाँ, 'ग़बन' के बाद 'मैग्डलीन' छपेगी। तब तक मेरा दूसरा उपन्यास भी लिखा जा चुकेगा।

हाँ, पत्नी जी तो आ गईं मगर शायद फिर जायँ। अभी उन्हें सन्तोष नहीं। सारा स्वराज्य एकबार ही ले लेगीं। किस्तों में नहीं चाहतीं।

मैंने 'परख' की आलोचना 'हंस' में कर दी है। 'माधुरी' का पुरस्कार तो भेजा जा चुका है। बहुत पहले ही। अब कुछ बाकी नहीं।

और तो नई बात नहीं। आप बाहर आ जाएँ तो फिर बातें होंगी। उस थोड़ी देर की मुलाकात से तो प्यास और भी बढ़ गई थी।

अप्पका, धनपत राय।

हाँ, उपन्यास हो या कहानी, उनमें चुलबुलाहट न हो तो बेचटनी-सा भोजन है। ज़रूर चाहिए। ज़राफ़त तो उंपन्यास की जान है।



लाहौर, 17-1-1931

श्रीयुत मुंशी जी, नमस्ते !

पत्र मिला, शुक्रिया। आपने वादा पूरा करने के लिए तो लिखा, मगर आधे से भी कम, क्योंकि आपको बखूबी याद होगा कि फ़ी सफ़ा बजाय 1 रु. 4 आने के 1 रु. 6 आने पर तसफ़िया (निर्णय) हुआ था; मगर चूँकि अब आप इसी निरख़ पर बज़िद नज़र आते हैं, लिहाज़ा मज़ीद (अधिक) बार-बार लिखना फिजूल है। आपके निरख़ मंजूर हैं, मगंर इसके साथ हमारी बात भी मंजूर करके शुक्रिया का मौक़ा दें। आपने पहले एडीशन का एक रुपया, दूसरे के लिए बारह आने, तीसरे के लिए आठ आने कहे हैं, ठीक। मगर उसके बाद हम इसके पूरे कॉपीराइट के हक़दार हैं। अब तो आपको भी माकूल उजरत मिल गयी, और कोई वजह नहीं कि आप इसे नामंजूर करें। मंजूरी के साथ किताब भी भेज देने की कृपा करें, ताकि साथ-साथ किताबत शुरू हो जाये। किसी क़िस्म का काम हो तो लिखें।

आपका, सोमप्रकाश साहनी।



20 जनवरी, 1931

बाबू जी,

पन्द्रह ता. को मैंने आपको कहानी भेजी थी। रजिस्ट्री से भेजता कैसे, इससे बैरंग भेजी ताकि पैसे वसूल करने की वजह से पो. आफिस को उसे ठीक जगह पहुँचाने की चिन्ता रहे। वह आपको मिल गई न ? वह लिखी तो चौदह को गयी थी लेकिन खत्म नहीं हुई थी। जब आपको भेजी, दोबारा देख भी न पाया। एक जगह एक शब्द सूझ नहीं रहा था इससे Gap छोड़ दिया था। मुझे पीछे उसका ख्याल आया। ख़ैर। जहाँ-तहाँ की गलतियों को आपने सँभाल दिया होगा। 'हंस' कब तक आयेगा, लिखिए। आपकी किताबें अब तक नहीं मिलीं। शायद भेजने में भूल हो गयी, अब तक भेज नहीं पाये।

आपका, जैनेन्द्र कुमार।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 26 जनवरी, 1931

बरादरम,

तसलीम। कार्ड मिला था। मैंने असर साहब का जवाब देखा। वह खुद इतना क़मज़ोर है कि उसके जवाब देने की क़तई ज़रूरत नहीं। माकूल-पसंदों (न्याय प्रेमी लोगों) ने उनके जवाब को शिकस्त (हार) का एतराफ (स्वीकरण) समझा। हज़रत निगार...शायद कोई दन्दांशिकन जवाब लिख रहे हैं। देखिए क्या लिखते हैं।...ने मेरे जवाब को बहुत पंसद किया था। ज़माना के लिए मुंशी बिशन नरायन पर एक स्केच लिखने की फ़िक्र में हूँ। ब्लाक भी मिल जायगा। क़िस्सा भी एक लिखना चाहता हूँ। देखिए क्या कर सकता हूं। अभी ख़ाके परवाना की जिल्दें आपके दफ़्तर में होंगी। यहाँ कुछ जिल्दें नवलकिशोर बुक डिपो को दरकार हैं। बराय मेहरबानी आज ही तीस जिल्दें रेलवे पार्सल से रवाना फ़रमायें और रेलवे रसीद मेरे पास भेज दें। बाक़ी हालात हस्बे साबिक़ हैं।

आपका, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 28 जनवरी, 1931

प्रिय शर्मा जी,

प्रकाशकों के सम्बन्ध में आपने जो बातें लिखी हैं, बहुत उचित लिखी हैं और आपकी पुस्तक के प्रकाशित होने में जो विलम्ब हुआ है उसके लिए मैं कोई सफाई न दूँगा। पुस्तक के मूल लेखक ख्वाजा हसन निज़ामी होने के कारण इस बात का भय था कि हिन्दी पाठक इस आयोजन के प्रति अनास्थाशील हो जायेंगे और हम लोग ज़्यादा अच्छे वक़्त का इन्तज़ार कर रहे थे। फिर सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हो गया और चारों तरफ पस्ती दिखायी देने लगी। अन्ततः संस्था के मालिक के दुःखद देहावसान से बहुत-सी गड़बड़ियाँ शुरू हो गयीं। सब कुछ अभी अस्थिर-सा है और जब तक कि स्थिरता नहीं आती, मुझे डर है कि कोई नया प्रकाशन हाथ में न लिया जायगा। ऐसी स्थिति में मैं अनिश्चित काल के लिए पाण्डुलिपि अपने पास रखना ठीक नहीं समझता और बड़े दुःख के साथ इसे आपको लौटा रहा हूँ।

शिकार के संबंध में आपके सजीव, साहसिक आख्यान मैंने पढ़े हैं। हिन्दी-साहित्य

में शिकार के स्केच नहीं हैं और आप बिल्कुल नयी ज़मीन पर चल रहे हैं। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि आपकी किताब के निकलने पर उसका ज़ोरदार स्वागत होगा। ऐसे रोमांचकारी आख्यान पढ़ने की बड़ी मनोरंजक और स्वस्थ सामग्री होते हैं। उनसे पशु जगत के संबंध में हमारा ज्ञान बढ़ता है। मैंने स्वयं अभी हाल में 'शिकार' नाम की एक कहानी लिखी है, गो मुझे तो सुनी-सुनायी घटना का ही सहारा लेना पड़ा।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका, प्रेमचंद।

●●

लाजपतराय एण्ड संस,
पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स, लाहौर, 1-2-1931

श्रीयुत मुंशीजी, नमस्ते !

ख़त मिला, खुशी हुई। मैं आपसे भी उम्मीद रखता था कि आप मुझ पर नज़रे-इनायत करेंगे। आप देखेंगे कि मैं काम किस खुशउस्लूबी (आचार-व्यवहार की अच्छाई) से करता हूँ। मैं आपकी ख़िदमत में फ़ेहरिस्त भेज रहा हूँ और नयी पब्लिकेशन की लिस्ट, जिससे आप खुद अन्दाज़ा लगा सकेंगे कि पंजाब में किस खुशउस्लूबी से हमारी दुकान काम कर रही है। आप भी हमेशा इस दूकान की सरपरस्ती करते रहेंगे। मुझे आपसे पूरी-पूरी उम्मीद है।

हमारी दुकान के लिए इस वक़्त मुन्तखब (चुने हुए) और पंजाब के माने हुए क़ातिव काम कर रहे हैं। इस बात से आप बेफ़िक्र रहें। आपकी दो किताबों की लिखाई जो की गयी है, उससे आप बखूबी अन्दाज़ा लगा सकते हैं। मसविदा जल्दी भेजकर मशकूर (जिसका शुक्रिया अदा किया जाय) फ़रमावें। मेरे लायक़ कोई सेवा हो तो हुक्म करे।

ख़ादिम, सोमप्रकाश साहनी।

●●

लाजपतराय एण्ड संस,, लाहौर, 5-2-1931

श्रीयुत प्रेमचन्द जी, नमस्ते !

तक़रीबन आधा मसविदा जितना कि आपने भेजा है, मिल गया। मुबल्लेग़ात (प्रेषित रुपये) अगले हफ़्ते में आपकी ख़िदमत में पहुँच जावेंगे, और जितने ज़्यादा-से-ज़्यादा भेज सका, भिजवाऊँगा, नहीं तो बाक़ी आइन्दा कुछ दिनों के बाद। किताब कल क़ातिब को दे दी जावेगी। उम्मीद है, बाक़ी हिस्सा भी जल्द भेजने की कृपा करेंगे। टाइटिल रंगीन हो या कवर पेपर वाला कागज़ लगाया जावे ? ग़ालिबन सुदर्शन साहब की 'ताहिरे-वफ़्ल' देखी होगी। अपनी क़ीमती राय से आगाह करेंगे। मेरे लायक़ कोई ख़िदमत हो तो बयान करें। अभी नवाब इक़बाल वाला क़ातिब आया है और मसविदा दे गया है।

आपका, सोमप्रकाश साहनी।

●●

प्रकाशक
इण्डियन प्रेस लिमिटेड,
जबलपुर ब्रांच, जबलपुर

'प्रेमा' सम्पादक—रामानुज लाल श्रीवास्तव,
परिपूर्णानन्द वर्मा, जालपादेवी, काशी
9-2-1931

मान्यवर,

'प्रेमा' के आगामी अप्रैल का अंक विशेषांक होगा—'हास्य-रस विशेषांक'। इसका सम्पादन मुझे सौंपा गया है। आप लोगों की कृपा का सहारा है।

इसी के लिए मुझे आपका एक छोटा-सा हास्यरसात्मक गल्प चाहिए। यों तो आपकी शैली में हास्य-रस का लाजवाब पुट रहता है, पर यदि विशेष प्रकार से हास्य-रस की ही गल्प होगी तो वह एक नायाब चीज़ होगी। आशा है, आप कृपा करेंगे। सब बातों का ख़याल करते हुए इस गल्प के लिए आप जो कुछ सेवा निर्धारित करेंगे, उसे बिना किसी आनाकानी के हाज़िर कर दूँगा।

आपसे नहीं की आशा नहीं है। फ़रवरी के अन्त तक भी आप भेज देंगे तो काम चल जायगा, क्योंकि शुरू मार्च से छपाई आरम्भ कर देने का विचार है।

कृपया उत्तर शीघ्र दीजियेगा, नहीं तो चिन्ता बनी रहेगी। आशा है, आप प्रसन्न होंगे।

कृपैषी, अन्नपूर्णानन्द।



लखनऊ, 9 फ़रवरी, 1931

प्रिय श्रीराम जी,

आपका पत्र पढ़कर बहुत दुःख हुआ। भूमिका पढ़कर मुझे बहुत आनन्द हुआ। आपकी शैली निश्चय ही आकर्षक है और आप अपने विषय से पूरी तरह परिचित जान पड़ते हैं। विषय पर आपने पूरा-पूरा अधिकार कर लिया है। वर्णन और विस्तृत ब्योरे जाति और श्रेणी से भरे हुए हैं। उनके उदाहरण और छोटी-छोटी डीटेल की बातें बहुत दिलचस्प हैं। ऐसा लगता है, कि आपको ज़िन्दगी में सुख नाम की चीज़ नहीं मिली। चूँकि मैं खुद भी उसी जाति का प्राणी हूँ इसलिए मैं हृदय से आपके प्रति समवेदना रखता हूं। आपने बड़ी मर्दाना हिम्मत से जिस नुकसान को बर्दाश्त कर लिया है, मेरी तो उससे कमर टूट जाती। जो किताब ज़िन्दगी भर की मेहनत का फल है उसे फिर से लिखने के लिए कारलाइल का धैर्य और कर्मठता चाहिए और आप में वह चीज़ है। हाँ, मैं भी सोचता हूँ कि जन्तु शास्त्र पर एक सरल पुस्तक का, जिसमें चित्र हों, कथाएँ हों, ज़िन्दगी और उसके तौर-तरीक़े हों, ज़ोरदार स्वागत होगा। मैं अगर प्रकाशक होता तो अपने वर्ष के प्रकाशनों की सूची में पहली जगह उसी को देता। मगर मेरा ख़याल है कि इण्डियन प्रेस उसको भी दूसरी सब किताबों की तरह ही हाथ में लेगा। लम्बी खिंची हुई बीमारी शिकारी की ज़िन्दगी के साथ कुछ ठीक मेल नहीं खाती। मैं अगर दायमी क़ब्ज़ का मरीज़ हूँ, मुझमें अगर खून की कमी है, अगर पचास पार करने के पहले ही मैं बुड्ढा हो गया हूँ, तो मैं यह कहकर अपने मन को समझा लेता हूँ कि मेरी बराबर बैठे रहने की आदतें ही इसके लिये ज़िम्मेदार हैं और ज़िन्दगी के इस पहर में आकर मेरे लिये अपने आपको बदलना मुश्किल है जब तक कि कोई उद्दाम प्रेरणा मुझको नहीं जगाती। मगर आप तो शिकारी हैं और बाहर खुले मैदानों की ज़िन्दगी पसन्द करते हैं, आपको बीमार होने का

कोई हक़ नहीं है। आप मेरी ज़मीन पर बेजा मदाख़लत कर रहे हैं।

मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि आप मिस्टर ब्रेल्सफर्ड से मिले और उन्होंने आपको 'न्यू लीडर' ये लिखने के लिए आमंत्रित किया। निस्सन्देह हमारे देश के दुखी किसानों के प्रति न्याय की बात उठाने के लिये आपसे अधिक योग्य व्यक्ति दूसरा न होगा।

पण्डित मोतीलाल चल बसे और हम उनके लिए शोक मना रहे हैं। रणनीति का उनसे बड़ा पण्ड़ित हमारे नेताओं में दूसरा नहीं है।

मेरी कितनी इच्छा है कि आपके साथ बैठकर दिल खोलकर बातें करूँ। हो सकता है किसी दिन आप मुझे अपनी कुटिया के दरवाजे पर दस्तक देते पाएं। यह शहरी ज़िन्दगी, जहाँ परिस्थितियों ने मुझको लाकर पटक दिया है, मेरी मानसिक और भावनात्मक हत्या कर रही है। गाँव का शान्त जीवन मेरी अभिलाषाओं का स्वर्ण है। आप जानते हैं मैं खुद एक देहाती आदमी हूँ और मेरे साहित्यिक उद्यम का अधिकांश उस क़र्ज़ को चुकाने में गया है, जो मेरे देहाती भाइयों का मेरे ऊपर है।

इसी विचार को ध्यान में रखकर मैंने हंस निकाला था। मेरी योजना में आने वाली चीजें ये हैं–

घर का शान्त जीवन, थोड़ा-सा साहित्यिक काम, इस पत्र का संपादन और सरल किसानों की सोहबत का मज़ा उठाना। लेकिन पढ़ने वालों की ओर से सहयोग मुझे इतना कम मिला कि मैं प्रायः व्यर्थ ही इस पत्र को चलाये जा रहा हूँ, बस एक इस सुदूर आशा में, जो किसी हालत में नहीं मरती, कि अन्ततः त्याग अपुरस्कृत नहीं रहते।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका, धनपत राय।



उत्तमचन्द कपूर एण्ड संस,, अनारकली, लाहौर, 11-2-1931

जनाब मुकर्रमी मुंशी साहब,

तसलीम ! मैंने उस रोज़ आपकी बहुत इन्तज़ार की और मुझे खुद आपके घर का पता मालूम न था। इसलिए निहायत अफ़सोस के साथ वापस लौट आया। उम्मीद है कि आप बख़ैरियत होंगे।

मुझे उस रोज़ आपसे बहुत बातें करनी थीं और कुछ-न-कुछ फ़ैसला हो ही जाता। मगर अब आइन्दा मुलाक़ात होगी, या अगर आपने ख़तो-किताबत का सिलसिला मेरे ऊपर के प्रिंटिंग पते पर जारी रखा तो मैं खुद ज़रूर अपने ख़यालात से आपको इत्तला दूँगा और शायद यह हमारी मुलाक़ात हम दोनों साहिबों के लिए हमारी आइन्दा ज़िन्दगी में आज़ादी का पयाम (सन्देश) दे और इन सरमायादारों के पंजे से निज़ात दिलाये।

मैं ज़रूर आपको खुल्लमखुल्ला लिख देता, क्योंकि मैं भी अभी तक मुलाज़मत के जंजाल में फँसा हुआ हूँ। तावक़्तेकि (जब तक कि) आप मुझे पूरी-पूरी तसल्ली बज़रिया ख़त न दिलवा दें कि आप मेरे इस मामले के मुताल्लिक किसी से ज़िक्र नहीं करेंगे (और आप यह भी जानते हैं कि 'Business is secret'–तब तक मुझे साफ़ लिखने की जुर्रत नहीं हो सकती।

उम्मीद है कि आप मुझे जवाब इनायत फ़रमा देंगे, ताकि मैं आइन्दा ख़त में वाज़ह तौर पर लिख सकूँ।

दुआगो, सैयद अहमद शाहिद

●●

लाजपतराय एण्ड संस, लाहौर, 18-2-1931

श्रीयुत मुंशी प्रेमचन्द जी, नमस्ते !

बवजह हड़तालों के मत्लूबात (वाञ्छित वस्तुएँ) रवाना न कर सका। परसों से मैं भी बुखार में मुब्तिला हो गया। आज क़दरे-इफ़ाक़ा (आरोग्य-लाभ) है, इसलिए बैंक नहीं जा सका, वरना बैंक में रुपये देकर ड्राफ़्ट भिजवा देता। आदमी जलसों पर गये हुए हैं। कल भगतसिंह-डे पर हड़ताल थी, चैक मुबलिग (प्रेषित) 50 रुपया नं. A-48598 पंजाब नेशनल बैंक का इर्साले-ख़िदमत है। अपने बैंक में इसे दे दें। मजीद रुपया भेजने की कोशिश करूँगा और अनक़रीब इर्साले-ख़िदमत कर दूँगा। किताब बराये-किताबत दे दी गयी है, बाक़ी का मसौदा जल्द भेजकर मशकूर फ़रमायें।

कोई सेवा ?

सोमप्रकाश साहनी।

●●

स्पेशल जेल, गुज़रात, 22 फरवरी, 1931

बाबू जी,

आपका पत्र मिला। उससे एक ही रोज पहले एक कार्ड मैंने लिखा था। 'हंस' की और किताबों की प्रतीक्षा में हूँ। मैं स्वयं आपसे मिलने को भूखा हूँ। आप ही घर पर दिल्ली आ सकेंगे, इससे तो बढ़कर भाग्य ही क्या होगा। मैं अगले महीने की समाप्ति पर छूटूँगा। ठीक तिथि लिखना तो संभव नहीं। 'कल्याण' का विशेषांक कब निकलता है ? मैं अवश्य उसके लिए लिखूँगा लेकिन जान पड़ता है अभी जल्दी नहीं है। आपकी सेवा और आज्ञा पालन के लिए मैं तैयार हूँ ही। जब और जैसी आज्ञा होगी 'हंस' के लिए लिखने का यत्न करूँगा। आपका फरवरी का अंक कब तक निकलेगा क्योंकि उस कहानी की हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर जो मेरा संग्रह निकाल रहे हैं उसके लिए आवश्यकता है। क्या यह हो सकेगा कि उसकी प्रतिलिपि बम्बई पहुँच जाय ?

और आप क्या नवलकिशोर प्रेस से सम्बन्ध तोड़ने का इरादा रखते हैं जो गाँव में बैठ जाने के बारे में लिखते हैं ? 'माधुरी' का क्या हाल है। विशेष सब कुशल है।

विनीत, जैनेन्द्र कुमार।

●●

नवल किशोर बुक डिपो, लखनऊ, 18 फरवरी, 1931

प्रिय जैनेंद्र,

आपकी आलोचनाएँ मुझे पहले ही मिल गई थीं, पर जवाब की ऐसी कोई बात न थी। इससे विलम्ब से लिख रहा हूँ। सभी आलोचनाएँ 'हंस' में जा रही हैं। आपने 'गढ़ कुंआर' को पसंद किया है। मैं तो पढ़ न सका था। कारण यह है कि उसमें आगे चलकर कुछ रस आता है और मैं आदि के दस बीस पन्ने पढ़कर ही अधीर हो गया,

आगे पढ़ने का धैर्य न रहा।

'हंस' अभी तक नहीं आया। शायद आज मिल जाय। इधर काशी में बुधवार से बहुत बड़ा दंगा हो रहा है, सभी कारोबार बंद हैं, प्रेस भी बंद है, यहाँ तक कि X X भी बंद है। शायद दो एक रोज़ में सामान्य स्थिति आ जाय।

इस बीच में निरालाजी की 'अप्सरा' भी प्रकाशित हो गई। यह उनका पहला उपन्यास है, मिलने पर भेजूँगा। आप कब तक बाहर आवेंगे ? एक बार हम लोगों का मिलना ज़रूरी है। मैं दिल्ली आ जाऊँगा। पूज्य बहन जी से भी जल्दी में कुछ बातें न हुईं।

'ग़बन' की एक प्रति भी शीघ्र ही भेजूँगा। इस पर जो कुछ लिखना हो वह 'माधुरी' के लिए लिखिएगा। 'माधुरी' से अब मेरा सम्बन्ध नहीं रहा। मैं बुक डिपो में आ गया। आ तो पहले ही गया था, अब पूर्ण रूप से आ गया। अप्रैल तक शायद यहाँ और रहूँगा, फिर काशी चला जाऊँगा और कहीं देहात में बैठकर कुछ लिखता पढ़ता रहूँगा। 'हंस' तो आपके सिर डाल दूँगा। क्या बताऊँ अभी एक हज़ार भी ग्राहक नहीं हैं। आप लिपट जाएँगे तो छः महीने में दो हज़ार छपेगा। उसके लिए प्रति मास एक गल्प लिखते जाइए और जो कुछ मिज़ाज में आवे लिखिए।

'कल्याण' का कृष्णांक निकल रहा है। कुछ उसमें भी लिखिए। वह पैसे अच्छे देता है, हिन्दी में सबसे ज़्यादा छपता है।

इधर उर्दू की उन्नति देखकर आश्चर्य हो रहा है। लाहौर से एक पत्रिका ने आठ सौ पचास पृष्ठों का विशेषांक निकाला है।

शेष कुशल है।

शुभेच्छु, धनपत राय।



लाजपतराय एण्ड संस, लाहौर, 25-2-1931

श्रीयुत मुंशी प्रेमचन्द जी, नमस्ते !

आमदा कार्ड मिला। कल मैं शादी से वापस आ रहा हूँ। बाहर गया हुआ था। आपने पहले कार्ड में लिखा था कि मेरे पास 50 रु. का इन्तज़ाम हो सका, सो पचास रुपया इरसाले-ख़िदमत कर दिये गये। अब आपको मजीद लिखने पर मुबलिग (भेजा हुआ) एक सौ रुपये का एक और चैक इरसाले-ख़िदमत कर दिया गया है, और इतने का ही इन्तज़ाम हो सका है। उम्मीद है कि इसे कुबूल फ़रमाकर मशकूर करेंगे।

और कोई सेवा ?

आपका, सोमप्रकाश साहनी।



7, Nabin Sarkar Lane, Bagbazar, Calcutta, 26.2.31

Dear Mr. Premchand,

Hope this letter will find you alright. All these days I had been expecting for a letter from you. And before I learn from you finally about the Royal Film Company's affair, I cannot talk with my film concern here. Have

you received a letter from them ? Even if they are not willing to accept my services, please let me know of that as soon as you know it. Of course, I am sure, you will exert all your influence in this matter.

I am sorry to trouble you like this but, I admit, I will be greatly relieved after I receive a letter from you very soon.

Thanking you always,

Yours truly, Debaki Kumar Bose



लखनऊ, 20, गनेशगंज, 28-2-1931

प्रिय उग्रजी, वन्दे !

कृपा-पत्र मिला, 'माधुरी' से तो मेरा अब कोई सम्बन्ध नहीं रहा। मैं अब भी इसी कार्यालय में हूँ, पर केवल पुस्तक-विभाग में। मैंने तब भी त्रिपाठी जी से आपके पास 'माधुरी' भेजने को कहा था। उन्होंने वादा भी किया था, पर न जाने क्यों नहीं भेजा। आज फिर कहूँगा। यदि आप-जैसे लोगों को पत्रिकाएँ न भेंट की जायेंगी तो और किसे की जायेंगी ?

मैंने तो अपना एक छोटा-सा 'हंस' निकाल लिया है। उसी में कुछ थोड़ा-बहुत लिख लेता हूँ। मेरा एक उपन्यास अभी निकला है और आपके पास अवश्य पहुँचेगा। दूसरा भी लिख रहा हूँ। पढ़कर मुझे अपनी राय दीजिएगा। और आपकी इच्छा न होगी तो न छापूँगा, केवल देखना चाहता हूँ।

आप जहाँ रहेंगे, वहीं यश और धन कमायेंगे। प्रतिभा बन्धनों को स्वीकार नहीं करती। 'हंस' आपके पास तो आता ही होगा। यदि कभी-कभी उसकी ओर एक निगाह कर दिया करें तो उसका उपकार हो जायगा।

सिनेमा वाले मुझसे कहानियाँ माँग रहे हैं। मगर अभी तक कहीं से कोई बात तय नहीं हुई।

आशा है, आप सानन्द हैं। ईश्वर आपको अपने उद्योग में सफल करें।

भवदीय, धनपत राय

दानी बिल्डिंग, बालकेश्वर रोड, बम्बई।



कानपुर, 13 मार्च, 1931

भाई साहब,

तसलीम ! आपका ख़त मिला, जवाब में तीन-चार रोज़ की देरी हुई। इसके लिए ख़्वास्तगारे-माफ़ी (क्षमा का इच्छुक) हूँ। आपने पहले से इत्तला देने की कोशिश की, इसके लिए शुक्रिया। लेकिन आख़िर में आपने लिखा है कि आप जवाब मय चेक के मुन्तज़िर हैं। जवाब में देर की असल वजह यही है कि इसके साथ चेक भेजने का ख़याल था। हत्तुलमक़दूर (जहाँ तक मेरी ताक़त थी) तामीले-इरशाद कर रहा हूँ। मैं आपका मसनून-ए-एहसान हूँ और जब आप खुद भी तफ़क्क़ुरात (चिन्ताओं) में गिरफ़्तार हैं तो अपने रूदात

और आने वाले अख़राज़ात का ज़िक्र करके आपको परेशान न करूँगा। मैं ज़रूर आराम से रहता हूँ, लेकिन असल हालात आपसे पोशीदा (छिपे) हैं। बाक़ी माँदा, (बाकी रक़म) आइन्दा नवम्बर में वापस कर देंगे। आने वाले छः माह तक मुझको कोई मदद न मिल सकेगी। लड़के की तालीम की तक़मील (पूरा) में पूरा एक साल बाक़ी है। 1 मई को रामसरन जी की लड़की का...की भानजी का विवाह है। रामसरन जी की लड़की की शादी सीतापुर ही होगी वग़ैरा, वग़ैरा। इस तरह आपकी असल रक़म की अदायगी की शुरुआत उससे पहले नहीं हो सकती। अलबत्ता सूद की रक़म, जो अब तक जमा हो गयी है, और बुक एजेन्सी का हिसाब साफ़ किये देता हूँ। कुल रक़म मिलाकर 325 या इससे कुछ ज़ाइद ही हांगी। अलबत्ता शरह-सूद (सूद की दर) x x के मुतल्लिक़ मैं समझता हूँ कि उज्र बेजा है, क्योंकि आप खुद एक पुराने ख़त में छः फ़ीसदी की माँग कर चुके हैं। सूद मुरक्कब (चक्रवृद्धि ब्याज) न पहले ही कभी दिया और न उल-मर्तबा (आवृत्ति की)। इसके बारे में पहले के ख़त में फ़ीसदी का ज़िक्र जो आपने किया है, वह ठीक नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि आपको सूद का हक़ नहीं है, मगर सूदे-मुरक्कब (चक्रवृद्धि ब्याज) का हक़ नहीं है, मगर एक दफ़ा बात हो जाने के बाद अब तरमीम (संशोधन) दुरुस्त नहीं है। सौ रुपये का चेक पिछले वक़्त ग़ालिबन मैंने पर्चा हिसाब भी भेजा था। इसकी नक़ल मेरे पास मौजूद है। इसमें 30 अगस्त, 1930 तक का हिसाब यह किया गया है–

Interest of 500/- from 2-6-25 to 30-6-28 @ 6%	–	97-8-0
Interest of 300/- from 1-8-25 to 30-8-28 @ 6%	–	55-8-0
Interest of 800/- from 1-9-28 to 30-8-30 @ 6%	–	96-0-0
Total		249-0-0
Less paid by cheque on 9-6-30	Rs.	100-0-0
balance to be paid	Rs.	149-0-0
Add. to this, interest of [illegible] from 1-9-30 to 28-2-31		24-0-0
Total due up to 28-2-1931	Rs.	173-0-0

वह चेक महफ़ूज़ है। मज़्कूरा हिसाब (उपरोक्त हिसाब) से 1 मार्च, 1931 तक का सूद अदा समझिए। आइन्दा से, चूँकि आपने सूदे-मुरक्कब (चक्रवृद्धि ब्याज) का ज़िक्र किया है, इसलिए जब तक कुछ रक़म अदा न हो जाय, छः माह में ही सूद अदा हो जावेगा। आप भी मँगा लिया करें और मैं भी ख़याल रखूँगा। अब तक मुझसे ग़फ़लत और कोताही ज़रूर हुई लेकिन अगर सूदे-मुरक्कब का ज़िक्र मेरे कान में पड़ जाता तो मैं काहिली से काम न लेता। आइन्दा अगर छः माह सूद की अदायगी में देर होगी तो

सूदे-मुरक्कब मेरे जुम्मे हो जावेगा। किताबों का हिसाब कुछ ज़ाइद ही है, सही रक़म से जल्द मतला करूँगा। इस वक़्त मेरे मैनेजर घर गये हुए हैं। अभी तक वापस नहीं आये। उनकी वापसी पर पर्चा-हिसाब, जैसा आप चाहते हैं, जल्द इसलिए होगा और अगले माह तक जल्द रक़म वाजिब-उल-अदा बेबाक़ हो जावेगी। जहाँ तक मेरा ख़याल है, 1929 तक का हिसाब बेबाक़ है। सिर्फ़ 1930 का हिसाब बाक़ी है। एक बात ज़रूर गोश-गुज़ार (कान में डालना) किये देता हूँ, चन्द किताबें बहुत ही ख़राब और बोसीदा थीं। यहाँ भी चन्द को दीमक ने ख़राब कर दिया। इनकी तादाद ज़्यादा नहीं है। मैं नादिम (लज्जित) होकर आपकी वह शर्त पूरी नहीं कर पाऊँगा, मगर रक़म-मत्लूबा (देय राशि) के 325 या इससे कुछ ज़ाइद पहुँच जावेंगे। उम्मीद है, हालत पर ग़ौर करके आप ये न तसव्वुर करेंगे कि मैंने क़स्दन कोताही (जानबूझकर टालमटोल) की है। हत्तूलवसू (जहाँ तक मेरी कोशिश रही है) मैंने यही कोशिश की है जो कुछ अम्कान (सम्भव) हो पेश कर दो। रुक़्क़ा रक़म की तब्दीली के लिए अभी छः माह का अर्सा बाक़ी है, जब चाहिएगा तब्दील कर दूँगा। उम्मीद है कि आप बख़ैरियत होंगे, बच्चों को दुआ। रसीद से मशकूर फ़रमायें।

आपका, दयानारायण निगम।



लखनऊ, 13 मार्च, 1931

प्रिय श्रीराम जी,

ग़रज़ कि आप नहीं आये। मैं कितनी उम्मीद से आपकी बाट जोह रहा था। आप कानपुर तक आये और लौट गये, आपको शायद इस भागमभाग में लखनऊ आना बेकार-सा मालूम हुआ। आप शिकारी हैं और शिकारी लोग स्वभाव से दुर्बलताओं से मुक्त हुआ करते हैं।

आशा है कि आप सकुशल होंगे। मेरी नयी किताब ग़बन निकल गयी है और उसकी प्रति यथासमय आपके पास पहुँचेगी। मैं आपकी स्पष्ट सम्मति की राह देखूँगा।

आपका, धनपत राय।



अजमेर कैम्प काँग्रेस, करांची, 23 मार्च, 1931

श्रद्धेय,

आपका पत्र दिल्ली मिला था। 'ग़बन' भी मिल गया था, पढ़ भी न पाया कि ऋषभचरण उठा ले गया। अब दिल्ली जाकर पढ़ूँगा और अपनी सम्मति लिखूँगा। सम्मति अच्छी के बजाय और कुछ तो होने से रही। कुछ पृष्ठ न पढ़ लेता, इतना तो तब भी कह सकता था। यहाँ कल आया, पहली या दूसरी को बम्बई जाऊँगा। इस पत्र का उत्तर जो आप लिखें बम्बई प्रेमी जी के पते पर दें। 'हंस' का फरवरी का अंक भी वहीं भिजवा दें। आपने 'कंकाल' और 'शराबी' का जिक्र तो किया, भेजा नहीं। मिल जाय तो उन्हें बम्बई भिजवा सकते हैं, रास्ता काटने को कुछ सामान मिलेगा, क्योंकि साथ में मेरे कोई किताब नहीं है।

विशेष कुल है।

यहाँ चहल-पहल है। नौजवानों ने मौका देखा है, उठ रहे हैं और गाँधी जी को बैठा देना चाहते हैं। यह जानते नहीं कि गाँधी मरकर ही बैठेगा। पढ़े-लिखे अहम्मन्य नौजवानों की बात थोड़ा-बहुत तमाशा अवश्य दिखायेगी। देखूँ क्या होता है। विशेष कुशल है।

आपका, जैनेन्द्र।

●●

24 मार्च, 1931

भाईजान,

तसलीम। दोनों चेक मिल गये। मैं ज़रा हंस के लिए क़िस्सा लिखने में मसरूफ़ था इसलिए जवाब न दे सका। इन इनायात का कहाँ तक शुक्रिया अदा करूँ। मैं ज़रा भी कबीदाख़ातिर[1] नहीं हूँ। सूदे-मुरक्कब[2] और सूदे-सादा[3] में ऐसा फ़र्क़ ही क्या होता है। यक़ीन मानिए मैंने आपको सूद का ज़िक्र करके ज़ेरबार किया। मेरे सर को झुकाने के लिए यही एहसास क्या कम है।

कराची का इरादा था मगर आज भगतसिंह की फाँसी ने हिम्मत तोड़ दी। अब किस उम्मीद पर जाऊँ। वहाँ गान्धी का मज़ाक़ उड़ेगा, काँग्रेस ग़ैर-ज़िम्मेदार, शोरिशपसंद[4] तबक़े के हाथ में आ जायेगी और हम लोगों के लिए उसमें जगह नहीं है। आइन्दा क्या तर्ज़े अमल अख़्तियार करना पड़े कह नहीं सकता मगर फ़िलहाल दिल बैठ गया है और मुस्तक़बिल[5] बिल्कुल तारीक[6] नज़र आता है। इधर बनारस, मिर्ज़ापुर, आगरे में जो हालात हुए उनसे गवनर्मेंट का हौसला बढ़ेगा यही मेरा क़यास है। मगर इससे ज़्यादा हिमाक़त कोई गवनर्मेंट नहीं कर सकती थी। तीन आदमियों की सज़ा में तबदीली करके गवनर्मेंट कितना अच्छा असर पैदा कर सकती थी। पर उसके तर्ज़े अमल ने अब साबित कर दिया कि तालीफ़ेक़ल्ब[7] उसने अभी तक नहीं किया और अब भी वह अपनी उसी क़दीम[8] ग़ैरज़िम्मेदाराना रविश[9] पर क़ायम है।

शाहंकार को मैं आज लिखूँगा कि क़िस्सा आपके पास भेज दें।

एकेडेमी वाले सफ़रख़र्च देंगे या नहीं। ख़ुतूत तो मेरे पास भी आये हैं लेकिन जाऊँगा उसी वक़्त जब ख़र्च मिलेगा। ज़रा लिखिएगा। यहाँ साबिक़ दस्तूर चला जा रहा है। मनगे मेहरबान तो है मगर फ़ैसला उसके हाथ में तो नहीं है।

मैं 'इंसाफ़' का तर्जुमा कर रहा हूँ, कोई पचास सुफ़हात हो गये हैं। 'हड़ताल' भी कर दूँगा। 'चाँदी की डिबिया' आप ख़ुद कर लें। जून तक यह सब ख़त्म हो जायेगा।

आपका, धनपत राय।

1. अप्रसन्न, 2. चक्रवृद्धि ब्याज, 3. साधारण ब्याज, 4. उपद्रवी, 5. भविष्य, 6. अँधेरा, 7. हृदय-परिवर्तन, 8. पुरानी, 9. पद्धति; ढंग।

●●

ग्राम–किरथरा, पो. आ. माखनपुर,
ई.आई.आर., जि. मैनपुरी, 26-3-1931

प्रिय बाबू जी, प्रणाम !

'ग़बन' की एक प्रति कल शाम को मिली। इस कृपा, और कृपा से अधिक स्नेह,

के लिए कोरा धन्यवाद क्या दूँ ? आपकी इस कृपा के लिए आभारी हूँ।

पुस्तक पढ़ने में मैं इतना लिप्त हो गया कि उसे समाप्त करके ही छोड़ा और ईख की दो क्यारियाँ भी नहीं गोड़ीं।

अभी-अभी श्रीमती शर्मा ने उसका पढ़ना प्रारम्भ किया है। आज देर तक दीया जलेगा। बिना समाप्त किये वह इस पुस्तक को रखने वाली नहीं।

अपनी सम्मति भेजूँ ? कभी-कभी तबीयत करती है कि एक उपन्यास लिखने का साहस करूँ। पर, कदाचित्, जानते हुए भी सुन्दर चित्र-चित्रण मुझसे न हो सके। 'शिकार' पुस्तक तो लिख रहा हूँ।

आपका, श्रीराम शर्मा।



सुबहे-सन्देश, वंजारा रोड, हैदराबाद (दक्कन)
28 मार्च, 1931

मुकर्रमी और मौज़्ज़मी,

जनाब तसलीम ! मैं आपसे बहुत नादिम (लज्जित) हूँ कि मैंने रीडर के लिए जो सबक़ आपसे लिखवाया है, उसका मुआवज़ा आपकी खिदमत में अब तक न भेज सका। मैं इस ग़लतफ़हमी में रहा कि औरों के साथ आपका मुआवज़ा भी जा चुका है, लेकिन अब जो देखा तो जनाबे वाला का नाम लिस्ट में न था। इससे मुझे बहुत शर्मिन्दगी हुई। उम्मीद है, आप इस ताख़ीर (देरी) को माफ़ फ़रमायेंगे। एक चैक इसमें मंसफ़ है। मेहरबानी करके एक रसीद लिखकर, भेज दीजियेगा। नाम की वजह से मुझे ताम्मुल (शंका) है। दोनों नाम लिख दिये हैं। अगर इसकी वजह से रुपये वसूल करने में दिक़्क़त हो तो चैक वापस भेज दीजिए। मैं मनीआर्डर के ज़रिये भेज दूँगा।

अब्दुल हक़ (सेक्रेटरी)
अंजुमन तरक़्क़िए-उर्दू



उज्जैन, 31 मार्च, 1931

ज़नाबेमन,

तसलीम ! मैं अर्से-दराज़ से आपके फ़साने पढ़-पढ़कर लुत्फ़ उठा रहा हूँ। उर्दू और हिन्दी दोनों जुबानों में कुछ तस्नीफ़ात आपकी पढ़ता रहा हूँ। जब आपने उर्दू से तवज़्ज़े हटाकर हिन्दी में ख़ामाफ़रसाई (लेखन-कार्य) शुरू की तो मुझे उर्दू जुबान की बदक़िस्मती पर वाक़ई अफ़सोस हुआ, लेकिन इसमें आपका क्या कसूर था ? आपने अपनी बेबसी का इज़हार 'प्रेम-बत्तीसी' के दीवाचे में साफ़ अल्फ़ाज़ में सन् 29वीं ईसवी के आगाज़ में ही कर दिया था। हाल में हज़रत नियाज़ की रेशादवानियाँ (साज़िशें, गुप्त प्रयत्न) भी मेरी निगाह से गुज़रीं। मुझे हैरत है कि उन्होंने ऐसी बेहूदा हरक़त किस तरह की कि उनसे बेनियाज़ (आज़ाद) नहीं। भोपाल में जब वो मुलाज़िम थे तो उनसे मुलाक़ात हो जाती थी, लेकिन तास्सुब (धार्मिक पक्षपात एवं कट्टरता) की आग कुछ इन लोगों में होती ही ज़्यादा है।

इस वक़्त एक ख़ास गर्ज़ से आपको तकलीफ़ देता हूँ वो ये कि 'फ़साना-ए-आज़ाद'

की चारों ज़िल्दों में से ज़िल्देसाजी के साथ थोड़ा-सा जुल्म किया गया है, यानी उसके चन्द दिलचस्प अबवाब उठा दिये गये हैं। 1907 के बाद से जो इशाअतें हुई हैं, उनमें बहुत-सा हिस्सा असली एडीशन का ग़ायब है। आपका नवलकिशोर साहब के मतबा (प्रकाशन) पर काफ़ी असर है। क्या आप ये कोशिश नहीं फ़र्मा सकते हैं कि असली एडीशन से मुक़ाबिला करके आइन्दा इशाअत (संस्करण) में कोई हिस्सा भी फ़साने का छोड़ा न जावे। 'अवध अख़बार' में निकला हुआ असली फ़साना अब भी बहुत से बुजुर्गों के पास निकल आवेगा।

दूसरी बात ये है कि अंग्रेज़ी अफ़सानों के तर्जुमे आपने बहुत से किये हैं। ज़रा Maud Diver की किताबें की जानिब तवज्जो कीजिए–1. Lilamani, 2. Far to Seek

ख़ासतौर पर तवज्जो के क़ाबिल हैं। इन मुसम्मा की कोशिश तो ये है कि मग़रिब (पूर्व) और मशरिब (पश्चिम) में एक क़िस्म का समझौता करा दें, लेकिन असली सड़क को ये भी नहीं छूती है। यानी अंग्रेज़ी हीरो है तो हिन्दुस्तानी हीरोइन। आख़िर Kipling का कहना ही मानना पड़ता है कि East is East and west is west, and the two shall never meet.

जब क़िस्सागोई में भी उनको ज़ेरोज़बर (उथल-पुथल) का ख़्याल है तो compromise का सवाल ही बाक़ी कहाँ रहता है। कुछ थोड़ा-सा तो झुके, कहीं ये भी लिख डालती कि किसी Lord की नूरचस्मी (लड़की) ने एक हिन्दुस्तानी से शादी कर ली। बेचारी विक्टोरिया क्रास ने Anna Lombared ने अगर इसी क़िस्म का एक समा दिखा दिया तो अंग्रेज़ी अख़बारों ने उसकी धज्जियाँ उड़ा दीं। मुझे अफ़सोस है कि बेवजह कारे सरकार (सरकार के काम से) इतना वक़्त नहीं निकाल सकता हूँ कि इस क़िस्म का काम अंजाम दे सकूँ और कुछ यह ख़याल होता है कि मुझमें इतनी काबिलियत नहीं। आप अलबत्ता हिन्दोस्तानी पब्लिक पर इस क़िस्से की किताबें लिखकर काफ़ी असर डाल सकते हैं। Mrs. Diver's Desmond's Daughter यही पढ़ने के क़ाबिल है। आईन्दा एक नाविल ऐसा तस्नीफ़ फरमाइए जो इस स्प्रिट के कतई ख़िलाफ़ हो। साथ ही उसमें ऐसे हिन्दोस्तानियों की भी तज़्हीक (हँसी उड़ाई गयी) हो जो बावजूद आला खानदान होने के विलायती shop girls से इज़्दिवाज (विवाह) कर लेते हैं।

समाख़राशी (कष्ट देने) की माफ़ी चाहता हूँ। रिसाला 'हंस' का पर्चा बजरिया वी.पी. रवाना फ़रमाइए, बल्कि माहे जनवरी से कुल पर्चे भेज दीजिए।

फ़क़त बन्दा, गोविन्दनारायण हाकर

Deputy Inspector General, Banks, Dewas gate, Ujjain

●●

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव, बम्बई,

6 अप्रैल, 1931

बाबू जी,

मैं कराँची से परसों यहाँ पहुँचा। 'ग़बन' जब चलने वाला ही था कि दिल्ली में मिला था। कुछ सफे पढ़ पाता हूँ कि ऋषभ उसे उठा ले गया। सम्मति अब दिल्ली से ही लिखूँगा। फरवरी का 'हंस' का अंक मुझे यहाँ मिला। 'परख' की आपकी आलोचना तो

चलती-सी रही जैसे बहुत भीड़ के वक्त लिखी गयी हो। यहाँ से दो-एक रोज़ में चलूँगा। झाँसी भी ठहरने का विचार है। वहाँ सोचता हूँ सीधा वृन्दावनलाल जी वर्मा के यहाँ ही पहुँचूँ और ठहरूँ। जानता नहीं तो क्या। आपकी 'हंस' की कहानी खूब है। आप दिल्ली के पते पर लिखिएगा कि आप दिल्ली कब पधारिएगा। मैं नौ-दस तक दिल्ली अवश्य पहुँच जाऊँगा। विशेष।

आपका, जैनेन्द्रकुमार।



साहित्य सुमन माला कार्यालय,
नवलकिशोर प्रेस बुक डिपो, लखनऊ, 13 अप्रैल, 1931

प्रिय जैनेंद्र जी,

आपका पत्र मिला। मैं लाहौर गया, पर आप दिल्ली न थे इसलिए मैं सीधा लौट आया। आशा है अब आप दिल्ली आ गए होंगे। आपको कहानी का पुरस्कार भेजने के लिए मैंने ताकीद कर दी है। आशा है जल्द पहुँचेगा। 'ग़बन' आप पढ़ लें और मैं कुछ आपकी राय जान लूँ तो मुझे सन्तोष हो। 'परख' की आलोचना जल्दी में तो नहीं की, लेकिन अपनी दानिस्त में मुझे जो कुछ कहना चाहिए था वह कह चुका। मैं समालोचक बहुत खराब हूँ। पुस्तक पर पाठक की दृष्टि से निगाह डालता हूँ। और जो भाव जम जाता है वही लिखता हूँ। X X X X आयी तो थी पर एक साहब लेकर मुरादाबाद चले गए, वह लौटकर आवें तो भेजूँ। आशा है आप (सानन्द) हैं।

भवदीय, धनपत राय।



पहाड़ी धीरज, दिल्ली, 16 अप्रैल, 1931

बाबूजी,

आपका पत्र मिला। मैं यहाँ तेरह तारीख की सुबह पहुँचा। उसी दिन श्री स्वामी आनन्द भिक्षु जी से मिलना हुआ था। उनसे मालूम हुआ था कि आप देव शर्मा जी को लाहौर जाते हुए सहारनपुर के स्टेशन पर मिल गये थे। मैं इससे यह समझता था कि आप अभी लाहौर ही होंगे और लौटते हुए ज़रूर दिल्ली उतरेंगे। और मैं हर रोज़ आपके यहाँ आने की आशा कर रहा था। उसके बदले में मिला आपका खत जिससे मालूम हुआ कि आप लखनऊ पहुँच गए और अब जल्दी इधर आने वाले हैं नहीं। यह तो सब कुछ बात न हुई। मैं यहाँ आपकी सलाह और मदद से कुछ अपनी ज़िन्दगी की समस्याओं को हल करने की सोच रहा था। खैर।

पुरस्कार के बीस रु. मुझे परसों मिल गये। 'ग़बन' अब पढ़ रहा हूँ। कल तक पढ़ चुकूँगा। पसंद न आये यह तो हो ही कैसे सकता है। ज्यादा खत्म करने पर लिखूँगा।

· स्वामी जी, आज मालूम हुआ, लखनऊ ही गये हैं। वह शायद आपको मिलें। उनसे आप जानेंगे कि यहाँ न आकर आपने कैसा अत्याचार किया। मैं आखिर दिल्ली आता था ही। स्टेशन पर ही नहीं तो एक दिन बाद सही, मैं यहाँ हाज़िर हो ही जाता। मेरा आपको देखने को बड़ा जी है।

'परख' की आपकी आलोचना से मैं असहमत हूँ, सो बात नहीं। उस विलक्षण

विवाह के बारे में तो मुझे अब खयाल होता है कि शायद कुछ Extraordinary के मोह में पड़कर, कि पुस्तक जिससे असाधारण जँचे, मैंने वह बात उस तरह लिखी। अब सचमुच लगता है कि वह अयथार्थ मोह था और मेरी कमी थी। और पुस्तक का परिचय देते-देते जो आप पुस्तककार पर कुछ शब्द लिख गये, यह मुझे बड़ा प्रिय लगा। जैसे आप उस लेखक को पाठक के निकट पहुँचा देना चाहते हैं और उनमें आपस में मेलजोल हो जाय। लेकिन पहले कार्ड में जो मैंने लिखा उसका आशय यह था कि पुस्तक पर आपका वक्तव्य इतना संक्षिप्त है कि पुस्तककार, जिसे आपसे उसके गुण-दोषों की समीक्षा और आलोचना सुनने की उत्कण्ठा थी, संतुष्ट नहीं हो सकता। और वह भी वह जो आपसे खरी बात सुनने की ज़िद करने का अपना अधिकार समझने लग गया है। आप चाहें तो 'माधुरी' या और किसी में या उससे भी अच्छा मुझे, समीक्षात्मक अपनी विस्तृत सम्मति भेज सकते हैं और इस 'चलित-चित्र' के बारे में भी अपनी राय लिखें। मेरे मन में हो रहा है न जाने कैसी है कैसी नहीं। दुबारा पढ़ी तो बीच-बीच में कुछ गड़बड़-सी लगने लगती है। आप इस पर समीक्षक नहीं उस्ताद की हैसियत से मुझे कुछ लिखें। आपको याद हो कि उस मुलाकात के वक्त मैंने जब आपसे इस कहानी के भीम का जिक्र किया था तो आपने कुछ संदेह-सा प्रकट किया था। सो ही समझाकर आप मुझे लिखें।

मैं यहाँ बिलकुल स्वस्थ और प्रसन्न हूँ। और माता जी अच्छी तरह हैं। और सब भी कुशल पूर्वक हैं। मेरे योग्य सेवा लिखें।

आपका विनीत, जैनेन्द्र कुमार।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 5 मई, 1931

प्रिय श्रीराम जी,

आपने मुझे निराश किया। मैं बनारस में आपके आने की बाट ही देखता रह गया क्योंकि आपने वादा किया था कि कलकत्ते से लौटते वक्त आप मुझसे मिलने के लिये आयेंगे।

अगर विशाल भारत ग़बन की समालोचना निकाल रहा है, तो आप अपनी समालोचना माधुरी को भेज दें जो उसे सहर्ष प्रकाशित करेगी। इस बार मुझे मत निराश कीजियेगा। आशा है आप सकुशल घर पहुँच गये। सस्नेह।

आपका, धनपत राय।



लखनऊ, 11 मई, 1931

भाईजान,

तसलीम। अर्से से आपका कोई ख़त नहीं आया। नाटक की रसीद भी नहीं मिली। कानपुर गया था, मुलाक़ात भी नहीं हुई। आप एक माह के लिए बनारस जा रहा हूँ। वहाँ मैं 'इंसाफ़' ख़त्म करके भेजूंगा। तर्जुमा कैसा रहा ?

बनारस में मेरा पता होगा : सरस्वती प्रेस, काशी

रिसाला ज़माना का यह नंबर (यानी ताज़ा) मेरे पास से ग़ायब हो गया है। रिसायल की तनक़ीद के लिए इसकी ज़रूरत पड़ेगी। हर माह मैं हिन्दोस्तानी रिसायल की तनक़ीद

करता हूँ। उर्दू, हिन्दी, मराठी, गुजराती वग़ैरह। बराहे करम एक कापी ऊपर के पते से बवापसी भिजवा दीजिएगा। उम्मीद है कि आप बख़ैर-ओ-आफ़ियत हैं।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 1 जून, 1931

बरादर अज़ीज़मन,

बाद दुआ। मैं यहाँ बारह मई को आ गया था। धुन्नू और बन्नू बेटी के साथ पन्द्रह को सागर के लिए रवाना हुए। सोलह को इलाहाबाद पहुँचकर बन्नू को पेचिश हो गयी। मुझे तार मिला। उन्नीस को हम और बन्नू की वालिदा यहाँ से इलाहाबाद गये। बन्नू की हालत ख़राब थी। खून के दस्त आ रहे थे। 27 तक वहाँ रहना पड़ा। 27 को हम बन्नू के साथ घर लौट आये। धुन्नू वासुदेव प्रसाद के साथ सागर गये। यहाँ आकर मैंने दो-तीन दिन प्रेस का हिसाब-किताब देखा। आज फिर जा रहा हूँ। 6 जून को यहाँ से इलाहाबाद होते हुए सोराम जाने का इरादा है। 11 को मुझे लखनऊ पहुँचना है।

कल भाई साहब से बातचीत हो रही थी। उनसे मुझे यह मालूम करके कुछ हँसी गी आयी, कुछ ताज्जुब भी हुआ कि तुम अभी तक उस लफ्ज़ी डुएल को जो आज से छ:-सात साल पहले यहाँ मेरे और तुम्हारे दरमियान हुआ था तमस्सुक की तरह महफ़ूज़ रखे हुए मुझसे अपने रुपये के लिए एक रुपया सैकड़ा ब्याज की उम्मीद रखते हो। यही बात एक बार मुझसे रामकिशोर ने भी कही थी। मगर मुझे उनकी बात का यक़ीन न आया था। मगर भाई साहब की ज़बान से सुनकर अब मालूम होता है कि तुमने उनसे भी कहा होगा और मुझे इस वक़्त इस मामले को साफ़ करना ज़रूरी मालूम होता है।

जिस वक़्त हमारे और तुम्हारे दरमियान वह लफ्ज़ी होड़ हुई थी, न तुम्हारे पास रुपये थे न मेरे पास। तुमने भी, अगर मेरा हाफ़िज़ा ग़लती नहीं करता, नौ हज़ार चार सौ बोली बोली थी। क्या तुम कह सकते हो कि उस वक़्त अगर मैं नौ हज़ार चार सौ पर राज़ी हो जाता तो तुम मेरे और रघुपति सहाय के हिस्से के रुपये इसी परते से अदा कर देते ? हरगिज़ नहीं। न तुम अदा कर सकते थे और न मैं ही इस क़ाबिल था कि तुम्हार एक हज़ार नौ सौ रुपये जो इस परते से होते अदा कर देता। नतीजा यह होता कि प्रेस तुम्हारी ही निगरानी में रहता और जिस तरह काम चलता था उसी तरह चलता रहता। मेरा मंशा प्रेस को अपनी निगरानी में लेकर उससे कुछ नफ़ा करने का था। मुझे यक़ीन था कि मैं नफ़ा कर सकूँगा इसलिए कि मुझे अपन ही रुपये की फ़िक्र नहीं रघुपति सहाय के रुपये की भी फ़िक्र थी। मुझे प्रेस को अपनी निगरानी में रखने की ज़रूरत महसूस होती थी। मुझे यह भी महसूस हो रहा था कि प्रेस से अलहदा होकर तुम अपने लिए इससे बेहतर कोई सबील निकाल सकते हो। प्रेस में पड़े-पड़े न तुम्हारा ही भला हो रहा है और न हिस्सेदारों का। इन ख़यालों के ज़ेरे असर ही मैंने तुम्हारे हाथ से इन्तज़ाम लिया वर्ना तुम भी जानते हो और मैं भी जानता हूँ कि उस वक़्त भी बाज़ार में प्रेस की क़ीमत उतनी किसी तरह नहीं लग सकती थी।

अगर यह मान लिया जाय कि तुम रुपये अदा कर देते और तुम्हारे पास उस वक़्त छः हजार रुपया मौजूद थे (हालाँकि यह ग़ैर-मुमकिन मालूम होता है) तब भी तुमने प्रेस

के लेने और देने की जो फ़र्द पेश की थी और जिसकी बिना पर मैंने तुम्हारे रुपये चुका देने का इरादा किया था वह सही नहीं निकली। उसकी ज़्यादा रक़में ऐसी थीं जो वसूल न हो सकती थीं और न वसूल हुईं और कई रक़में उसमें से ऐसी छूट गयी थीं जो फ़ौरन अदा करनी पड़ीं। मेरा ख़याल है कि इस फ़र्द के मुताबिक़ प्रेस को दो हज़ार दो सौ रुपये मिलने चाहिए थे। मुझे दो हज़ार दो सौ रुपया मिल जाते तो मैं तुम्हें एक हज़ार नौ सौ रुपया देकर बेफ़िक्र हो जाता। मगर इस दो हज़ार दो सौ रुपये में शायद मुश्किल से पाँच सौ रुपया वसूल हुए होंगे। देने में कई बड़ी-बड़ी रक़में निकल आयीं जो अदा करनी पड़ीं। इसलिए जिस बेसिस पर मैं रुपये अदा करने का इरादा कर रहा था वह ही ग़लत निकला। अगर नावसूलशुदा रुपये तुम्हारे नाम डाल दूँ और जो और ज़ायद मुझे तुम्हारे ज़माने के लिए देने पड़े तो तुम्हारा हिस्सा ही ग़ायब हो जायगा। मेरे पास तुम्हारे ज़माने के लेने और देने की सही नक़ल मौजूद है जिसके एतबार से लेना एक हज़ार तीन सौ रुपया ठहरता है और देना एक हज़ार छः सौ पैंतीस रुपया। लेमे में एक हज़ार तीन सौ बीस रुपया भी वसूल नहीं हुए, मुश्किल से पाँच सौ रुपया वसूल हुए होंगे। देने में शायद एक हज़ार छः सौ पैंतीस रुपया से कुछ ज़ायद ही देना पड़ा। इसलिए मुझे ताज्जुब होता है कि तुम किस क़ानून इन्साफ़ से अपने रुपये के सूद के हक़दार हो सकते हो।

यह ज़रूर है कि तुम्हें प्रेस में फँसने और रुपये लगाने का अफ़सोस हो रहा है। मुझे भी हो रहा है। भाई साहब को भी हो रहा है। रघुपतिसहाय को भी हो रहा है। सबके सब सिर पर हाथ धरे रो रहे हैं लेकिन तुमने कम से कम प्रेस से दो साल की तनख़्वाह तो ली, ज़्यादा से ज़्यादा तुम्हारा सूद का नुक़सान हुआ जो आठ रुपये सैकड़े के हिसाब छः साल का सात सौ रुपये के क़रीब होता है। मेरे नुक़सान का अन्दाज़ा करो। मैंने दो साल तक प्रेस से एक पाई लिये बग़ैर काम किया और अपना कम से कम पाँच सौ रुपया उसमें और लगाया जो हिसाब में मौजूद है। उसके बाद से आज तक मैंने हज़ारों रुपये का काम प्रेस को दिया, खुद अपनी किताबें प्रेस में छपवायीं, आज भी अपनी किताबों की बिक्री से प्रेस चला रहा हूँ। अगर मैं अपने सारे नुक़सानात जोड़ूँ तो पन्द्रह सौ रुपया तो ख़ाली तनखाह के हो जायँ, पाँच सौ रुपया जो उधार दिये और जो अब तक वसूल नहीं हुए इस तरह दो हज़ार रुपये, फिर अपनी किताबों की बिक्री के रुपये जो प्रेस में लग गये हैं जोड़ूँ तो तीन हजार रुपया से कम न होंगे। इस तरह मुझे तो अलावा सूद के कोई पाँच हजार रुपया का नुक़सान हो चुका है और सूद भी जोड़ूँ तो एक हज़ार नौ सौ रुपया बढ़ जाते हैं। गोया प्रेस खोलकर मैंने सात हजार रुपया का नुक़सान उठाया और मैं इसे हर्फ़-ब-हर्फ़ सही साबित कर सकता हूँ। हिसाब प्रेस में मौजूद है। तुम्हारा नुक़सान तो सिर्फ़ सूद का हुआ। रघुपतिसहाय को भी इतना ही नुक़सान हुआ मगर अभी तक सब्र से बर्दाश्त किये जाते हैं। भाई साहब भी प्रेस की हालत से वाक़िफ़ हैं और ख़ामोश हैं। सब समझ रहे हैं कि प्रेस खोलना ग़लती थी और अगर तक़दीर में होंगे तो मिलेंगे नहीं डूब गये। मैं अपनी ज़िम्मेदारी को समझकर अब भी हर तरह का नुक़सान उठाता हुआ उसे कामयाब बनाने की फ़िक्र में पड़ा हुआ हूँ। बार-बार दौड़-दौड़ आता हूँ, हिसाब-किताब देखता हूँ क्योंकि मेरे दिल से लगी हुई है कि किसी तरह नफ़ा हो और हिस्सेदारों को कुछ दे सकूँ। मैंने अगर बेईमानी की होती और कुछ खा गया होता

तो हिस्सेदारों को मुझसे बदगुमानी होती लेकिन मैंने तो प्रेस से पान तक नहीं खाया। मेरा कांशन्स बिल्कुल साफ़ है। जब तक मेरी ज़िन्दगी है। मैं अपना नुक़सान उठाता हुआ प्रेस के लिए जान देता रहूँगा और कामयाब होना तक़दीर में लिखा है तो कामयाब हूँगा।

तो अब इसका तसफ़िया कैसे हो ? या तो दीगर हिस्सेदारों की तरह तुम भी ख़ामोशी से मुझ पर एतबार करते हुए बैठे रहो। जब देखो कि मैंने प्रेस से कुछ लिया है तो मेरी गर्दन पर सवार होकर अपना हिस्सा ले लो, अगर देखो कि मैं नुक़सान उठा रहा हूँ तो सब्र से बर्दाश्त करो या खुद प्रेस में आकर कुछ काम उठा लो। गुज़ारे के लिए जो कुछ प्रेस दे सके वह ले लो या प्रेस के लिए दौरा करके काम लाओ, किताबें बेचो और अपनी मुनासिब तनख़ाह ले लो। प्रेस को नफ़ा देने के क़ाबिल बनाने में मेरी मदद करो या आख़िरी सूरत यह कि एक पंच बनाकर प्रेस की क़ीमत आँक लो और तुम्हारा हिस्सा जितना निकले उतना या तो मुझसे इसी वक़्त खड़े-खड़े कान पकड़कर ले लो या मुझे दे दो। पंचों में बाबू सम्पूर्णानन्द, श्रीप्रकाश और नन्दकिशोर को रख लो और या ट्रेडिल और कटिंग मशीन को असली दामों पर समझकर अपने बाक़ी रुपये मुझसे ले लो। इस तरह तुम्हें तस्कीन हो जायगी कि तुमने जितने रुपये लगाये थे, उतने मिल गये क्योंकि अगर इन चीजों को उनकी मौजूदा क़ीमत पर लोगे तो इस हिसाब से सारे प्रेस की क़ीमत घट जायगी। प्रेस में तीन ही चीज़ें तो क़ीमती थीं, उनमें दो का हाल तुम्हारे सामने है। रही मशीन, वह यही साल-दो साल में जवाब दे देगी। टाइप पुराने थोड़े ही रह गये हैं अगर पुराने सामान मय ट्रेडिल और कटिंग मशीन के बाज़ार में रखे जायँ तो मुश्किल से दो-ढाई हज़ार मिलेंगे। कुल प्रेस चार हज़ार रुपये या चार हज़ार पाँच सौ रुपये में बिक जायगा तो लागत के दाम मिलना तो अब ग़ैर मुमकिन है। तुम जिस तरह अपना इत्मीनान कर सको, कर लो, मैं आमादा हूँ। तुम्हें नुक़सान पहुँचाकर या तकलीफ़ में देखकर मुझे मसर्रत नहीं होती और न हो सकती है। तुम्हें खुशहाल देखकर मुझे जितनी खुशी होगी उसका अन्दाज़ा तुम शायद न कर सको। अगर मैं इस क़ाबिल होता कि तुम्हारी ज़्यादा इमदाद कर सकता तो हरगिज़दरेग़ न करता लेकिन मुझे इस प्रेस ने बिल्कुल मुफ़लिस बना डाला। किताबों से मुझे जो कुछ मिल जाता था वह अब प्रेस की नज़र हो रहा है। अब मेरा इरादा हो रहा है कि लखनऊ से आकर फिर प्रेस में डटूँ और जिस तरह भी हो सके उसे कामयाब बनाऊँ। तुम चाहो तो अब भी इस काम में मदद दे सकते हो। यह न मंजूर हो तो प्रेस की मौजूदा हैसियत को देखकर उसकी क़ीमत का अन्दाज़ा करा लो और वह जिस तरह चाहे समझ लो। या तुम्हारे ख़याल में प्रेस से और जो कुछ तुम्हें अपने हिस्से में मिलना चाहिए वह ले लो। मेरे पास प्रेस की हर एक चीज़ का बीजक रखा हुआ है। उस बीजक को देखकर दो हज़ार रुपये की चीज़ें निकाल लो। चीज़ें बेशक पुरानी हो गयी हैं मगर उनका नफ़ा मैंने नहीं उठाया, न तुमने उठाया, यह समझ लो कि कारोबार में नफ़ा-नुकसान दोनों होता है और इसमें नुक़सान हुआ। तुम्हारे दो हज़ार रुपये इस वक़्त तुम्हारें पास होते तो तुम उससे एक छोटा-सा पूरा प्रेस खोल सकते थे। मेरे चार हजार पांच सौ रुपये मेरे होते तो मैं उससे अच्छा प्रेस खोल सकता था। अगर हमने या तुमने बैंक में रख दिये होते तो तुम्हें अब तक एक हजार रुपये के क़रीब सूद मिल गया होता और मुझे भी दो-ढाई हज़ार मिल गये होते। मैंने और जो हज़ारों का नुकसान उठाया, उससे बच गया होता। लेकिन अब इन बातों को याद करके पछताने से क्या

हासिल अब तो गले की ढोल को बजाना ही पड़ेगा। मैं तो इस प्रेस के पीछे बर्बाद हो गया, सिर्फ़ इसलिए कि मैं हिस्सेदारों के नुक़सान को नहीं देख सकता चाहे अपना कितना ही नुक़सान हो जाये। रघुपति सहाय और भाई साहब मुझ पर तकिया किये बैठे हुए हैं। मैं अपने जीते-जी उन्हें नुक़सान से बचाने की कोशिश करता रहूँगा। कामयाबी का होना न होना ईश्वर के हाथ है।

उम्मीद है कि तुम बख़ैरियत हो। बच्चों को दुआ।

P.S. मैं चाहता हूँ कि तुम इन सूरतों में जो चाहे क़बूल कर लो या खुद तसफ़िये की कोई सूरत पेश करो और जल्द। प्रेस की क़ीमत अब आधी भी नहीं रही और तुम्हारे दो हज़ार अब मुश्किल से एक हज़ार रहेंगे। मैं तुम्हारे जवाब का इन्तज़ार करता रहूँगा। मैं निस्फ़ लेने को तैयार हूँ अगर कोई दे। रघुपति सहाय और मेरे हिस्से के छः हजार पाँच सौ रुपये होते हैं, मैं उसे सवा तीन हज़ार पर दे दूँगा मगर नक़द की शर्त है। प्रेस में जो नयी ट्रेडिल आयी है उसका अभी दाम देना बाक़ी है। भाई साहब निस्फ़ पर राज़ी होंगे या नहीं, मैं नहीं कह सकता।

धनपत राय।



Shriyut Premchandji esq., 9th June, 31

C/o The Saraswati Press, Allahabad.

Dear Sir,

We are in receipt to your kind letter dated 4th inst. and are extremely thankful to you for the frankness and kindness of heart shown there in.

You are quite right when you say that the Gujarati public should pay for the labour of others, and much more so for the labour of an author, enjoying all India reputation like yourself. We do not dispute this fact even for a moment and had it been in our power to pay you straights way for translation rights, we would have readily and gladly done so.

In order to explain our position in this matter, we will frankly put before you our circumstances from which you may be able to judge for yourself. Ours is a lady magazine and although it is the only one of its kind in Gujarati, it has hardly even reached a circulation of 2000 during the last 8 years of its existance. That is because many of our readers are not economically independent and the males are indifferent for their advancement.

The result is that we have to manage the magazine most economically. In fact, the management has lost after it about Rs. 1500/- in the first 3 years and thereafter we have been trying our level best to manage its affairs in a way, so as to make it self-sufficient. The edirots, theasstt. editors do not get a single pie out of its income. It is a labour of love for us. The contributors

likewise are not paid anything. The editors house is its office and his servants are its servants. This is how we manage this magazine. Whatever income there is, is spent after it. We have never dreamt of making an income out of it for ourselves.

Under these circumstances, we have requested you for your kind help, in the shape of translation rights of your very popular novel the GHABAN. We hope you will kindly accede to our request and help us thereby in serving the cause of our Gujarati sisters in some what better way.

We intend to publish the novel in a serial form in the magazine. But thereafter from the same compose, we intend to put it in a book-form also. That will mean that the printing of the book will cost less than otherwise. From the sale of this book we will be glad to give you some monetory compensation. Under such circumstances, we generally give the author 50 percent from the net profits. In this case we will leave it to you to fix your quota of the profits. Please let us know if that arrangement will satisfy you and you will be pleased to give us the translation rights.

If you are kindly agreeable, we will leave it to you to decide the number of copies to be printed and also to fix the price of the book for sale as well as the rate of commission for the booksellers.

Awaiting your favourable reply.

Yours very truly, J.N. Varma (Editor)



C/o Mr. Hari Ram Sethi (Managing Director)
Panjab Film Co. Ltd., Manohar Mansion,
66, Jail Road, Lahore, Jan. 13, 1931

Dear B. Premchand,

I hope you remember the evening a few days back when I had the occassion to see you in your 'Madhuri' office with Mr. 'Nirala ji'. Unfortunately I could not talk with you though I very much liked to do so about films. But till I did not know your views about that. The day after I learnt from Mr. D.K. Bose the film director of one local film company there that you want your books to be produced in films. I also learnt that you sent some of your books to be produced in films. I also learnt that you sent some of your books 'Sevasadan' and 'Premashram' in some Bombay studios and they wanted you to send the scenerios of them. Unfortunately I could not get time again to see you for the purpose as I had to leave for Lahore.

I am here in the Panjab Film Co., as an Asstt. Director. To tell you sincerely if you do not want to kill your reputation then please do not send your books to Bombay. I have remained in Bombay and I know what sort of

stiff they produce. I myself was in search of a company who are really able to produce good films. I have joined the Panjab Films only recently and I can see that they are doing something. Till now they have produced three pictures spending about two lakhs over them. They are not yet released. They are worth International market and arrangements being made for that. I have read your 'Premashram' and I can see that there are much screen possibilities in it.

So I should request you to send 'Premashram' to me for scenerio at once without delay. I shall write the scenerio of it. If you want to know more about me you may ask from Mr. Surya Kant Tripathi 'Nirala'. He is my friend. I need not add that you can make a good fortune in having connection with our film co. We have ample funds and we want to spend it in the right way. I would rather ask you to come to Lahore and see our studio and understand what we are doing.

Nothing more for the present. I should rather ask you to send 'Pramashram' very-very very soon. I being a friend of 'Nirala ji' and you two being friends have got legal rights to force you too for the purpose.

Hoping this shall find you in sound health and to hear soon from you.

Yours very sincerely, Shambhu Nath Sharma

B. Premchand, B. A., Editor 'Madhuri'
Nawal Kishore Press, Hazrat ganj, Lucknow

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ,18 जून, 1931

भाईजान,

तसलीम। आपका 7 जून का नवाज़िशनामा मिला। मैं बनारस से 13 जून को लौटा। आपका कार्ड आज वहाँ से यहाँ आया है। चुन्नू बाबू की शानदार कामयाबी पर आपको और चुन्नू को तहेदिल से मुबारकबाद। क्यों, आप क्राइस्ट चर्च कालिज से अलहदा क्यों हो रहे हैं। मैं सोच रहा हूँ कि मौक़ा मिले तो कानपुर आऊँ। बेटी ससुराल गयी है। धुन्नू उसी के साथ गया है। यहाँ सिर्फ़ बन्नू (छोटा लड़का) और हम दो आदमी हैं। यहाँ के मैनेजर एक मिस्टर जगमोहन नाथ भार्गव हुए हैं। अभी उनसे मेरी मुलाक़ात नहीं हुई है। क्या तरमीम होगी इसकी फ़िलहाल ख़बर नहीं। मेरे नाविल 'ग़बन' की कोई जिल्द आपके पास पहुँची या नहीं।

आपका, धनपत राय।

●●

पहाड़ी धीरज, दिल्ली, 26 जून 1931

बाबू जी,

आपके पत्र का जवाब मैंने परसों दिया है या कल। मिला होगा। 'वातायन' वाली कहानी कल ही रवाना कर चुका हूँ। आज 'ग़बन' की आलोचना लिखता था कि नंददुलारे

वाजपेयी का बहुत-बहुत अनुरोध का पत्र आ पहुँचा। 'भारत' के लिए कहानी चाहते हैं। क्योंकि ऐसी आलोचना लिख चुके हैं जो मेरे बहुत अनुकूल न थी इसलिए भी उनके अनुरोध को मानना जरूरी हो गया है, कहीं वह और न समझें। इसलिए अब वहीं लिख रहा हूँ। यह इसलिए आपको लिखता हूँ कि आप 'भारत' में कहानी देखकर मुझे उलाहना न दें। कल आपकी आलोचना और फिर जल्दी ही कहानी लिखूँगा। 'भारत' में आज हिन्दुस्तानी एकेडमी की पुरस्कार सूचना दीख पड़ी। 'परख' और नये छपते हुए संग्रह 'वातायन' की यथावश्यक प्रतियाँ यथास्थान भेजने के लिए बम्बई लिख रहा हूँ। मुझे विश्वास है, यह मेरा दुस्साहस नहीं है। 'वातायन' छपते ही आपके पास आयगा। जल्दी ही छप जायगा। विशेष कुशल है।

विनीत, जैनेंद्र।



Maharaj Mansion,
Sandhurit Road, Bombay, 29th June, 1931

My dear Prem Chandji,

I am writing to you after months. Since my release from jail where I passed 6 months, I was often thinking of writing to you, but almost constantly on the move in the villages, it had to be put-off till now. You when connected with the 'Madhuri' sent me the monthly & books regularly. In jail I came across a copy of the new monthly 'Hansa'. I wonder why you did not place me on list. should certainly like to keep in touch with it. Besides, I have one more request to make to you. Can you make it convenient to collect all your books—new 'Gabun' includes—and send me a complete set. I am fond of works from the masters pen of Premchand. I am sending you separate a copy of the 'Vanguard' & you will find that I have reviewed several Hindi works there. I am in charge of that. I trust you sould jadge it.

Thanking you in anticipation,

With regards,

Yours Sincerely, Rangildas Kapadia



सरस्वती प्रेस, काशी, 4 जुलाई, 1931

भाईजान,

तसलीम। इस काम से फुर्सत मिली। अब कोई मज़मून भी लिखूँगा। मगर ऐसा न हो आप इन किताबों को साल छः महीने के लिए ड्रार में बंद कर दें। एक बार इनकी नज़रसानी कर जाइए। चार पाँच रोज़ लगेंगे। फिर किसी से खुशख़त लिखवा लीजिए। अपनी दानिस्त[1] में तो तर्जुमा बुरा नहीं किया। लेकिन बेहतरी की गुंजाइश हमेशा रहती है। और जुलाई में इसे चलता कीजिए ताकि एक माह में रुपये मिल जायें।

हमारे यहाँ अभी तो साबिक़ दस्तूर काम चल रहा है। लेकिन ज़्यादा उम्मीद नहीं है। मैं तैयार बैठा हूँ। धुन्नू कल बेटी के ससुराल से आ गया है।

'नातन' और 'फ़रेबे अमल' मैं आऊँगा तो लेता आऊँगा, शाहकार के पास मेरा एक क़िस्सा पड़ा हुआ है। सेन बाबू से कहें अपने दोस्त वहशी के बरादरे खुर्द[2] से ये लतायफुलहील[3] माँग लें। शाहकार का इस हुर्रियत[4] के ज़माने में गुज़र ही कहाँ।

जवाहरलाल आजकल कितना ज़हर उगल रहे हैं। इन्क़लाब की तैयारी है।

आपका, धनपत राय।

1. समझ, 2. छोटे भाई, 3. अच्छे बहाने से, 4. जनतंत्र।

●●

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 23 जुलाई, 1931

भाईजान,

तसलीम। ईश्वर करे आप जल्द अच्छे हो जायें। तबीयत की नासाज़ी तो एक मुसीबत है।

यहाँ कोर्ट आफ़ वार्ड का इंतज़ाम है, मगर अभी कोई तबदीली नहीं हुई है। स्पेशल मैनेजर आ गये हैं। इंतजाम साबिक़ दस्तूर है। शायद तख़फ़ीफ़ (छंटनी) होनेवाली है। मगर तहक़ीक़ (ठीक बात) मालूम नहीं। मेरी तो मैनेजर साहब से मुलाक़ात ही नहीं हुई। न उन्होंने बुलाया न मैं गया।

बेटी ससुराल में है। मुन्नू बाबू तो शायद इंग्लैण्ड से अगस्त में आने वाले हैं।

तबीयत यकसू हो तो मुसव्वदों पर ज़रा निगाह डालिए।

शाहकार से मेरा अफ़साना आपने शायद नहीं लिया। गोरखपुर से तो इसी नाम के एक रिसाले का इजरा (आरम्भ) हो गया।

बक़िया हालात साबिक़ दस्तूर हैं।

आपका, धनपत राय।

●●

लाजपतराय एण्ड संस, लाहौर, 29 जुलाई, 1931

श्रीयुत मुंशी जी, नमस्ते !

एक हफ़्ता हुआ, मैं लाहौर वापस आया। क़ब्ल (पूर्व) इसके सरदार साहब ने दो अदद ख़त क़ातिब को लिखे, मगर उनका जवाब मासूल नहीं हुआ था। आपके ख़त मिले थे। मैंने आते ही फिर जम्मू चिट्ठी लिखी। उसके जवाब की इन्तज़ारी तक जान-बूझकर ख़ामोशी अख़्तियार की। आज ही मुझे जम्मू से चिट्ठी मासूल हुई है। वो मज़मून 350 सफ़ाहत का है, 250 सफ़े तक किताबत हो चुकी है। बाक़ी का मज़मून जल्दी भेज दें। मज़मून के साथ किताब का मुख़्तिसर इश्तिहार बनाकर भी देंगे ताकि ज्योंही किताब ख़त्म हो, नयी किताब का इश्तिहार ही कर दिया जावे।

ताक़िदन अर्ज़ है, कोई सेवा मेरे योग्य ? जवाब से जल्दी याद फ़रमावेंगे, क्योंकि मैं काशमीर जा रहा हूँ। क्या आपके पास अपना शायाशुदा कुतुब का स्टॉक मौजूद है ? हो तो लिखेंगे, ताकि उनकी चन्द कापियाँ मँगवा ली जायें। अगर इस किताब के दो हिस्से बनवाने हों तो पहला हिस्सा कहाँ तक हो, ये आप ही लिखें। दो हिस्सों में हो जावे तो

क़ीमत ठीक वसूल हो सकती है। पहले हिस्से की इशाअत अपने हाथ में होगी।

सोमप्रकाश।



लखनऊ, 30-7-1931

प्रियवर कुंवर सुरेशसिंह, वन्दे !

'वानर' मिल गया था। लड़कों को पहले ही से उसका इन्तज़ार था। उसे देखते ही खुशी से उछल पड़े। बच्चों के लिए इसमें विनोद, मनोरंजन और ज्ञानवृद्धि का काफ़ी सामान है। गेटअप बहुत ही सुन्दर। मुझे आशा है कि बालसमाज का इससे कल्याण होगा।

बच्चों के लिए लेख लिखना अत्यन्त कठिन है। बच्चों के मनोविज्ञान का अच्छा परिचय हुए बिना यह काम नहीं हो सकता। पुराने लेखकों में उतनी सजीवता नहीं रहती, शिथिल-से हो जाते हैं। नये लेखकों का मनोविज्ञान से परिचय नहीं होता, मसलन 'कश्मीर' का वृत्तान्त जो आपने दिया है, किसी कुशल अध्यापक के क़लम से कहीं मनोरंजक हो सकता था। इस दशा में तो वह किसी स्कूली पाठ से ज़्यादा रोचक नहीं। 'कबड्डी' का बयान भी कहीं बाल-सुलभ हो सकता था, पर यहाँ वह सूखा-सूखा रह गया है। 'गोरखधन्धा' बहुत अच्छी चीज़ है। लड़कों को उसके उत्तर की कभी से उत्सुकता है, और अगले अंक का इन्तज़ार कर रहे हैं।

मैंने तो चाहा कि कुछ लिखूँ, पर क़लम हाथ में लिया और गम्भीरता का नशा चढ़ा। इसके लिए ऐसे लेखक चाहिए, जो बूढ़े बालक हों। फिर भी कोशिश करूँगा कि अपने को वालक बनाकर कुछ लिखूँ। ऐसी चीज़ चाहता हूँ, जो बालकों को खूब हँसाये और उसके साथ ही सुरुचि पैदा करे। मगर इस वक़्त तो नहीं बनती। शुभ,

भवदीय, धनपत राय।



लाजपतराय एण्ड संस,

पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स, लाहौर, 29-8-1931

श्रीयुत पूज्य मुंशी जी, नमस्ते !

बक़ाया मज़मून की सिर्फ़ नौ कापियाँ बनी हैं। मज़मून बाक़ी का भेज देंगे, क्योंकि किताब ख़त्म होने वाली है। किताबों के लिए अर्ज़ है कि अगर आपने सौ रुपये के माल पर सिर्फ़ 30% ही देना है तो क्यों ना 20-25 रुपये की कुतुब (किताबें) मँगवा ली जावें, चाहे इस पर 25% मिले। दूकानदार ज़्यादा रक़म का माल सिर्फ़ इस शर्त पर उठा सकता है कि जबकि उसे माकूल कमीशन मिले। मुक़र्रर अर्ज़ है कि बाक़ी का मसौदा बवापसी डाक भेजने की कृपा करें। कोई सेवा ?

ख़ादिम, लाजपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 30-8-1931

प्रिय अवस्थी जी, वन्दे !

धन्यवाद। समीक्षा मिल गयी थी और 'हंस' (सितम्बर) में जा रही है। आशा है,

आप प्रसन्न होंगे।

भवदीय, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 30 अगस्त, 1931

भाईजान,

तसलीम। आपके ख़त के इंतज़ार में थक गया। मैंने अर्सा हुआ एक ख़त लिखा था। उसका कोई जवाब न मिला। आप खुद आने वाले थे मगर ग़ालिबन् फुर्सत न मिली।

उन दोनों किताबों के मुताल्लिक़ क्या कार्रवाई हुई। नज़रसानी हो गयी या नहीं। शुरू भी हुई ? अब तो बहुत देर हो रही है।

यहाँ का हाल साबिक़ दस्तूर है। ख़बर है कि रियासत कोर्ट आफ़ वार्ड्स से निकल गयी। लेकिन ख़बर ही ख़बर है। नफ़ाज़ नहीं (हुक्म जारी नहीं हुआ) सरकारी कारखाने हैं। मुमकिन है महीनों लग जायें। और तो कोई नयी बात नहीं। मुन्नू बाबू तो इस माह में आयेंगे। या गोलमेज़ के बाद ?

आपका, धनपत राय।

●●

Captain Buildings, Jodhpur, 5.9.31

Dear Sir,

I am sorry, after leaving 'Abhyudaya', I was not favoured with any letter from you. About a month or so, previously, I had sent you a story headed 'क्रान्तिकारी' for favour of publication in your esteemed nonthly, the 'Hans', but I am astonished to find that no reply has yet been received. Would you be kind enough to let me know whether you intend to publish it or not. If not, I shall feel much obliged if you kindly return it by the return of mail. Hoping it would find you as hail & hearty as it leaves us.

Awaiting your reply,

Very truly yours,
K. Mohan Singh Sengar, Ex-Editor 'Abhyudaya'

●●

कालका भवन, सिगरा, बनारस, 6-9-1931

मेरे आदरणीय मास्टर साहब जी,

आपने अपने कृपा-पत्र में यह नहीं लिखा कि आपके उपन्यास-ग्रन्थों का प्रकाशन किस क्रम से हुआ है, और उनका रचना-क्रम क्या है। मैं समझता हूँ इस तरह है :

1. वरदान, 2. सेवासदन, 3. प्रेमाश्रम, 4. रंगभूमि, 5. कायाकल्प, 6. निर्मला, 7. प्रतिज्ञा, 8. ग़बन।

अगर इस क्रम-विधान में कोई त्रुटि हो तो कृपया सुधारकर शीघ्र बताइए, मैं अब शुरू ही करने वाला हूँ। शेष कुशल।

आपका, ज. प्र. झा

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 8.9.1931

श्र. भाईसाहब,

पिछले पत्रों का उत्तर इस प्रकार है—'हंस' पिछड़ गया; पर इस अनिवार्य विलम्ब का दोष मुझ पर ही नहीं है—यह आपने समझ लिया होगा। फिर युग्मांक होने के कारण उतना पिछड़ा भी नहीं मालूम होता है। सितम्बर का अंक भी 15-20 तक आउट कर दिया जाता है।

प्रेस का हिसाब जो आपके पास भेजा गया, उसमें कुछ भ्रम हो गया। मामूली तौर पर जो साधारण दैनिक आय होती है, वह लिख दी गई है। उसके अनुसार समझने में घाटा मालूम होगा; पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। यह तो साधारण-सी बात है कि काम ख़र्च से अधिक ही होता है। मुनीम जी ने मामूली आमदनी—जो दैनिक है—लिख दी; और ख़र्च लिख दिया। पर, वास्तव में तीन महीनों में जो काम प्रेस ने किया, वह आमदनी है। इस हिसाब से—दैनिक कार्य-विवरण के अनुसार—उन तीन महीनों में 112 फ़ार्म छपे और औसतन 1232 रु. का काम हुआ। 300 रु. का काम ट्रेडिल पर हुआ। लगभग 200 रु. का दफ़्तरीख़ाने का। इस प्रकार कुल काम लगभग 1700 रु. का हुआ। यह ध्यान रहे कि जून का महीना भी इसी में शामिल है, जिसमें बहुत ही कम काम हुआ करता है। इस महीने में अनेक प्रेस प्रायः बन्द हो जाते हैं। अस्तु।

आपने जो 1409 रु. 2 आना समझा है, वह ग़लत है। इसमें लगभग 200 रु. तो स्थायी ख़र्च-खाते का ही है। यह रुपया टाइप, केस, ब्लॉक, हाट प्रेस, टाइपराइटर आदि स्थायी वस्तु ख़रीद-खाते में दिया गया है। असल में, जल्दी के कारण मैं हिसाब समझ नहीं सका और मुनीमजी का बनाया हुआ, ज्यों-का-त्यों भेज दिया। असल ख़र्च तो वेतन, मेरा एलाउंस तथा किराया-मकान है। पोस्टेज ख़र्च खाते में जो 71 रु. 3 आना पड़ा है, वह भी सब प्रेस का नहीं है। इस प्रकार प्रेस का वास्तव ख़र्च 1200 रु. से भी कम तीन मास का रह जाता है। आप फिर से समझ लें। जुलाई-अगस्त में भी ईश्वर-कृपा से इतना अच्छा काम किया गया है। 6-7 सौ मासिक के कम का न उतरेगा। हिसाब आपको भली-भाँति समझाया न जा सका, इससे आपने नुक़सान का ख़याल कर लिया; पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। मेरे पास तीन वर्षों का कार्य-विवरण शुरू से ही बाक़ायदा लिखा हुआ तैयार है, उससे आप हिसाब देखें—गोकि जिस समय आप आये थे, उस समय भूल से आपको कार्य-विवरण न दिखला सका—तो आपको अभी तक वर्षों के काम में लाभ ही लाभ दिखेगा—नुक़सान ज़रा भी नहीं, बात भी दरअसल यही है। पर लोगों पर बाक़ी बहुत है और मेरा तीन साल का अनुभव यह कहता है कि बिना 2-2½ हज़ार रु. लोगों पर बाक़ी रहे प्रेस का काम भी नहीं चल सकता; हाँ, नया पुराना होता रहेगा। पिछला बाक़ी वसूल होगा, तो नया लेना बढ़ता जायगा। आप एक बार आकर भाई साहब बाबू बलदेवलाल जी के साथ बैठकर हिसाब फिर से समझ लें। मेरा निश्चय मत है कि नुक़सान कभी नहीं हुआ, न होगा। समझने का भ्रम है, बस।

आपने वेतन में 20% कमी करने के लिए लिखा है, पर पूर्व निश्चय के अनुसार 15 जून से समय बढ़ा दिया गया। 7 से 8 घण्टे कर दिये गये। इससे अधिक असम्भव है। इतना करने में भी जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई थीं, उन्हें मैं ही जानता हूँ। आपने

उपर्युक्त कम मालूम न होने के कारण ही शायद 20% परसेण्ट की कमी वाली बात लिखी होगी। पर अब उसकी आवश्यकता नहीं। काम बहुत ही कसकर लिया जा रहा है–ऐसा कि जिसमें एक छदाम का भी नुक़सान न हो। काम अधिक-से-अधिक लेने और लोगों को इसके लिए काफी तंग करने के लिए तो दूसरे प्रेस वालों ने मुझे बदनाम-सा कर दिया है। मुझसे बढ़कर कसकर काम लेने वाला भी शायद ही दूसरा कोई हो। यह है काम के विषय में बात। अगर यह भी आपको स्वीकार न हो, तो आप जैसा कहें किया जाय, पर यह निश्चय है कि इससे आगे एक पग भी न बढ़ा जायगा और बढ़ने की चेष्टा की गई, तो अवश्य ही प्रेस बन्द कर देना पड़ेगा। जैसी इच्छा हो, लिखें।

आपने आगे से यानी इसी सितम्बर से पुस्तकालय का रुपया अलग जमा करने को लिखा है, सो ठीक है। मुझे यह स्वीकार है। अभी तक जो पुस्तकालय की आमदनी प्रेस में ख़र्च की जाती थी, या हो गई, सो प्रेस का पुस्तकालय की ओर अभी तक कुछ-न-कुछ बाक़ी ही है, इसलिए रुपया लिया गया। आगे भी जो प्रेस का बाक़ी होगा, वह देना पड़ेगा। आपका और मेरा लाभ गत वर्ष अवश्य ही 'हंस' के नुक़सान में गया। रॉयल्टी आपको कहाँ से मिलती ? जबकि प्रेस का बिल ही चुकता नहीं हुआ। अगर काग़ज़-छपाई वग़ैरह का रुपया प्रेस को नक़द मिलता, तो जो आमदनी प्रेस ने ली या ले रहा है, वह आप ही को पहले मिलती। मुझे खेद तो यह है कि किताबों के मद्दे एक पैसा आपने नहीं दिया और हृदय में इतना दुःख मानते हैं। आपकी रॉयल्टी चौकस है, सही है, वह कहीं जाती नहीं। अब जो किताबें बची हैं, उनसे आप रॉयल्टी लीजिए, नफ़ा लीजिए और मुझे भी नफ़ा दीजिए। इस महीने से मैं पुस्तकालय की आमदनी अलग जमा करूँगा।

ब्याज वाली बात भी ठीक है। गत वर्षों का ब्याज तो पुस्तकालय की मद में ख़र्च हो गया था, अब बच सकता है। पर आगे ब्याज आप प्रति मास चाहते हैं, तो आगे पुस्तकें छपाने के लिए रुपया भी अपने पास से दीजिएगा। समझ लीजिए।

एक बात और। पहले ही से एक ग़लती हो गयी है। 50 रु. मासिक टाइपघिसाई तो लगभग वाजिब है; पर प्रेस का मूल्य 10,000 दस हज़ार क़ायम करके जो आठ आना सैकड़े के ब्याज से 50 रु. मासिक नियत कर लिया गया है, वह कुछ ग़लत और अनुचित ज़रूर है, क्योंकि प्रेस की क़ीमत सब मिलाकर 5000 से अधिक नहीं हो सकती। पर आप ही विचार कर लें–शान्तिपूर्वक। जैसी आपकी राय हो, वह मुझे स्वीकार है। जब हिसाब की दृष्टि से पूछा जा रहा है, तो मैंने भी यह बात लिखी है। वैसे मैंने आज तक इस विषय पर विचार ही नहीं किया था। अब आप जो निश्चित करें, ब्याज प्रतिमास या प्रति त्रैमासिक दिया जाया करे।

एक बात का खेद मुझे भी है और बड़ा है। वह यह कि इतना प्रयत्न करने वाले शख़्स पर भी यह रोष किया जा रहा है कि वह 50 रु. मासिक क्यों ले लेता है। भला यह कहना कहाँ तक उचित है, इसे आप ही सोचें। भला, जिस आदमी ने अपनी जान लड़ाकर आपके प्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ाई हो, सम्पत्ति बढ़ाई हो, वह इतना भी न लेगा, तो क्या कहीं से चोरी करके गुज़र करता ? मैं सच्चे हृदय से ईश्वर को साक्षी करके कहता हूँ कि जिस हृदय से, जिस प्रयत्न से मैंने काम किया है, उतना काम वैसा काम मैं कहीं

भी करता तो 100/150 की आमदनी न गयी थी। फिर भी मुझ पर लांछन है। हिसाब आप पाई-पाई का समझें, जो उचित है; पर यह ज़बर्दस्ती का दोष तो न लगावें कि मैंने प्रेस से इतना व्यर्थ वसूल कर लिया। आप ही अपने न्यायी हृदय से विचार कर देखें। मेरे प्रयत्न को जब सब सराहते हैं, तब मैं अपने आप क्या सराहना करूँ ? ख़ैर।

मैं इस बात को कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि प्रेस में घाटा है। आपने तो कलकत्ता तक यह बात फैला दी है, जो उचित नहीं है। आप मेरे बड़े हैं, आपसे क्या कहूँ, पर यह मेरी समझ ही में नहीं आता कि इतनी तन-तोड़ मेहनत करने पर भी घाटे का नाम क्यों आता है ?

अब रही 'हंस' की बात। 'हंस' से अवश्य घाटा हुआ है। पर, इस वर्ष प्रयत्नतः घाटा से बचने का डौल किया जायगा। इस वर्ष जो भी प्रयत्न किया जा सकेगा, उससे पीछे न हटा जायगा। और विश्वास है, इस साल घाटा न रहेगा।

प्रेस का काम भी सिलसिले से चल रहा है। काम की कमी नहीं है, न रहेगी। काम और भी बढ़ाने का यत्न किया जायेगा। अच्छा हो, आप इधर का सब हिसाब समझकर किसी मास तक हिसाब निकाल लें और आगे के लिए मुझसे भी शर्तें लिखा लें और आप भी लिख दें। वैसे, मैं आपकी ज़बान पर हमेशा एतबार करूँगा, करता रहा हूँ। पर आगे फिर भ्रम न हो, इसलिए कह रहा हूँ।

अगर आपके सहयोग का मुझे गौरव न होता, मैं गौरव न समझता, तो अभी तक यहाँ के निकट मण्डल के फेर में पड़ गया होता और नया प्रेस चलाने लगता; पर मेरा ईश्वर ही जानता है कि मैंने हर बार साफ इन्कार किया है और हर बात में, हर बार आपकी प्रतिष्ठा को ऊँचा रखा और सद्व्यवहार को सराहा है। आज भी लोगों का प्रेस करने का विचार है, लिमिटेड रूप में; पर मैंने बार-बार उन्हें परीशानी समझाकर शान्त किया है। मतलब कि यह मेरा हृदय ही जानता है कि आपके प्रति मेरा विश्वास और श्रद्धा कहाँ तक है। यही कारण है कि मैंने प्रेस को अपना समझकर चलाया है। फिर भी जब मुझे इतनी फटकार सुननी पड़ती है, और व्यर्थ, तो हृदय क्षुब्ध हो जाता है। वैसे अब ईश्वर की कृपा और आपके आशीर्वाद से 100 रु. महीना की आमदनी कर लेना मेरे बायें हाथ का खेल है।

आपके यहाँ आने का ढंग मुझे मालूम नहीं था, अन्यथा मैं नहीं बुलाता। मेरा यह ख़याल था कि आप वास्तव में नौकरी छोड़ रहे हैं; इसलिए जितनी भी जल्दी आ जायें, आयें, पर अब असली हालत मालूम हुई। ऐसी दशा में मैं कुछ नहीं कहूँगा; पर यदि आप यहाँ प्रेस सँभालने के ख़याल से आना चाहें, तो अवश्य आयें, मेरा ख़याल कभी न करें, कुछ न करें। आपके आशीर्वाद से मैं भी कुछ कर ही लूँगा। मुझे अब चिन्ता नहीं है। आप जिस प्रकार खुश रहें, उसी में मुझे खुशी होगी—यह सत्य समझिए। पर, इतना कहने का मुझे अधिकार है कि मेरे तीन वर्षों को मिट्टी में न मिला दिया ज़ाय—इसका ध्यान रहे। मुझे उस पर पूरा मोह है—प्रेस के काम से प्रेम है। प्रेस अगर कोई दूसरा आदमी, सस्ता चला सके, तो उससे भी प्रयत्न करा लीजिए। मैं आपसे सच्ची श्रद्धा रखकर ही सच्चे हृदय से लिख रहा हूँ। जैसी इच्छा हो, आप मुझे सूचित करें। मेरी ओर से आपको कभी दुखित न होना पड़े, यही मैं चाहता हूँ।

मैंने आठ दिनों में आवेश का दमन करके ही यह पत्र शान्त चित्त से, खूब सोच-विचार कर लिखा है, फिर भी कुछ अनुचित लिख गया हूँ, तो छोटा समझ कर क्षमा ही कीजिएगा। शेष शुभ।

'हंस' जा रहा है। वी. पी. थोड़ी-थोड़ी करके भेजने का प्रबन्ध कर रहा हूँ। अबकी बार टिकिट ही बहुत लग जायगा। पत्रोत्तर तुरन्त दीजिए।

'हंस' के दूसरे अंक के लिए कहानी भेजिए। 'मुक्ता-मंजूषा' उर्दू की भेजिए। इस विशेषांक के विषय में अपनी सम्मति दीजिए। अन्य लोगों ने कैसा पसन्द किया, वह भी लिखिए।

प्र. ला. वर्मा।



1, कचहरी रोड, इलाहाबाद, 10 सितम्बर, 1931

भाईजान,

तसलीम। हफ़्तों हुए आपका ख़त मिला था। आपको शायद इसका एहसास भी नहीं कि मुझमें कूवते-इरादी[1] क़रीब-क़रीब बिल्कुल मफ़कूद[2] हो चुकी है और अहबाब[3] की जब कोई फ़र्माइश कुछ भी लिखने पढ़ने की होती है तो एक सदमा[4] होता है। आप तो मुसन्निफ़[5] हैं, मगर जो मुसन्निफ़ नहीं हैं या जिसके दिल-ओ-दिमाग़ को कम अज़ कम तसनीफ़ की मश्क़ या आदत नहीं है और जिसने कभी यूँ ही कुछ लिख-पढ़ दिया हो, खुसूसन जब बेदिली[6] का उस पर अटल तसल्लुत[7] हो चुका हो, वह क्या लिखे पढ़े। इसके अलावा पाँच छः बरसों से सिवा कुछ उर्दू अशआर के हिन्दी के पाँच सतर भी जो दिलचस्पी और इनहमाक[8] से न पढ़ सका हो, ऐसा शख़्स करे तो क्या करे। यक़ीन मानिए अगर मैं खुद हिन्दी में कुछ लिखूँ तो दिल उसे पढ़ने को न उभरेगा। इस मुआमले में मेरी रूहानी मौत हो चुकी है।

फ़िलहाल मेरा हाल यह है कि मुलाज़िमत यहाँ पर अभी मुस्तक़िल नहीं है। ज़िम्मेदारियाँ मेरी मामूली नहीं। तीन अपने बच्चे हैं जो अब बढ़ गये हैं। दो भाई एफ.ए. में हैं जिसकी ज़िम्मेदारियाँ उसकी उम्मीदों और खुशियों या खुशख़यालियों से ज़्यादा हैं। वालिदा, बीबी और मैं खुद। इन सबके अख़राजात।[9] किसी तरह काम चला रहा हूँ और सुकून की तरफ़ से, इत्मीनान की तरफ़ से नाउम्मीद हो चुका हूँ। जो क़र्ज़ा लिया है, उसका ख़मियाज़ा[10] अलग भुगत रहा हूँ। इन्सान यह सब उठा ले बशर्ते कि कोई मरकज़[11] उसकी दिलचस्पियों का हो। यही मरकज़ सहारा होता है। ऐसा बड़ा शायर भी नहीं हूँ कि ज़िन्दगी से मरकर शेर में ज़िन्दा रहने की कोशिश करूँ, या उम्रे-तबीई[12] को बिल्कुल तख़ईली[13] बना डालूँ। इस मिसरे को दुहराया तो गँवार करते हैं लेकिन कितने पते की बात है।

'न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के हुए न उधर के हुए।'

बहरहाल सुकूने-यास[14] को ही ग़नीमत जानकर सब्र किये जा रहा हूँ लेकिन भाई, वक़्त और उम्र का एक अजब असर होता है और एक भयानक और तकलीफ़देह घबराहट अकसर रूह का गला घोंट देती है और साँस रुक जाती है। उम्र भर बेदिल रहने का एक तकलीफ़देह असर यह हुआ करता है कि कहने के लिए नहीं बल्कि दरहक़ीक़त

जीते हुए शर्म आती है। ख़ैर खुदफ़रामोशी[15] की मश्क़ झक मार किये जाता हूँ। इन सुतूर[16] को रस्मी टालमटोल या हमदर्दी हासिल करने का बहाना शायद आप न तसव्वुर करेंगे।

भाईजान, गुप्तजी के क़र्ज़े के लिए दो सौ रुपये साल आप ज़रूर दिये जाइए। आपकी फ़र्जशनासी का बहुत सहारा है। हाँ मुझे अब तक का हिसाब अगर मुमकिन हो तो लिख भेजिए। मुझे बदहवासी में इसका भी पता नहीं कि आपसे कितना मिलना है। और यह भी लिखिए कि दो सौ रुपये कब तक आप भेज सकेंगे।

प्रेस से आपको इतना नुक़सान हो रहा है। क्या निस्फ़[17] नुक़सान उठाकर आप उसे निकाल देना अच्छा नहीं समझते ?

आपके बच्चे कहाँ पढ़ रहे हैं। आपकी मुलाज़िमत कब तक क़ायम रहने की उम्मीद है ? नवलकिशोर प्रेस के लिए आप फ़िलहाल क्या काम कर रहे हैं। खुद क्या लिख रहे हैं। अफ़साने या कोई नाविल।

कभी इलाहाबाद आने की इधर उम्मीद है या नहीं।

देखिए Round Table Conference में क्या होता है। यूँ ही वक़्त मुल्क पर और सारी दुनिया पर नाज़ुक है; कहीं ऐसे में फिर 'इंकलाब ज़िन्दाबाद' हुआ तो कम अज़ कम हम लोगों की ज़िन्दगी भर तो खुदा ही खुदा नज़र आयेगा। और यों तो हिन्दोस्तान सख़्तजान मुल्क है, ज़िन्दा रहेगा और फिर मुमकिन है, बल्कि अग़लब[18] है, कि सुकून के दिन भी अहले-मुल्क[19] को नसीब होंगे। मगर कब ?

आपका, रघुपत सहाय।

1. इच्छाशक्ति, 2. समाप्त, 3. मित्रों, 4. क्लेश, 5. लेखक, 6. उदासीनता, 7. आधिपत्य, 8. लगन, 9. खर्चे, 10. भुगतान, 11. केन्द्र, 12. भौतिक जीवन, 13. काल्पनिक, 14. निराशा की शान्ति, 15. आत्म-विस्मृति, 16. सतरों, पंक्तियों, 17. आधा, 18. निश्चित, 19. देशवालों।



सरस्वती प्रेस, काशी, 11 सितंबर, 1931

भाईजान,

तसलीम। आपका कार्ड कई दिन हुए मिला था। मसौदे आपने अभी तक नहीं देखे। इधर एकेडेमी शायद अब ऐसे तराजिम[1] बेकार समझ रही है। बाबू हरप्रसाद सक्सेना अभी कई रोज़ हुए डाक्टर ताराचंद से किसी काम की तलाश के सिलसिले में मिले थे। उन्होंने उस वक़्त यह ख़याल ज़ाहिर किया कि इन ड्रामों से कोई मुफ़ीद नतीजा नहीं निकला और वह तज़ीहे-औक़ात[2] है। ऐसा न हो, उर्दू तर्जुमों के मुताल्लिक़ यही ख़याल हो और हम लोगों की मेहनत बरबाद हो जाए।

यहाँ कल एक नई बात हो गई। यहाँ मेरे ख़िलाफ़ मुद्दत मे एक जमाअत थी जिसका सरग़ना यहाँ का मैनेजर हरी राम है। साले गुज़िश्ता[3] से उसका एक और मुआविन[4] पैदा हो गया। यह हैं मिस्टर पंत जो यहाँ कनवैसर होकर बुलाए गए थे। मिस्टर पंत यहाँ हावी होना चाहते हैं। इसकी उन्होंने रोज़े अव्वल से कोशिश शुरू की और मुझे अपना रक़ीब[5] समझ कर उन्होंने पहले मुझी ही को रास्ते से हटाना ज़रूरी समझा। किफ़ायत

का मसला यहाँ शुरू से था ही। आपने यहाँ किफ़ायत सोची कि एडीटोरियल अमला बर तरफ़[6] कर दिया जाए और किताबें ज़िम्मेदार बा-असर और कमेटी में रुसूख़ रखने वाले या खुद कमेटी के मेम्बरों से बनवा ली जाएं। इन अहमक़ों को यह न सूझी कि मुझे जो कुछ देते हैं वह एक किताब में वसूल हो सकता है और बा-असर असहाब से किताबें लिखवाने में रायल्टी की बेश-क़दर रक़म देनी पड़ती है। मेरी ज़ात से इन लोगों ने जितना पैदा किया है उसका निस्फ़ भी मुझे न दिया गया हो। अगर पंत दीदा व दानिस्ता[7] महज़ मुझे ज़क[8] देने के लिए मेरी तैयार की हुई किताबों को 'पुश' करने में तसाहुली[9] न करते तो लाखों रुपया बना लेते। मगर इस शख़्स ने महज़ मुझे नुक़सान पहुँचाने के लिए इन किताबों के मुताल्लिक़ कोई कोशिश नहीं की। जब किताबें कमेटी से नामंजूर हो गई तो ज़ाहिरदारी के लिए महीनों खतो-किताबत करता रहा। ख़ैर। मुझे यहाँ से जाना तो था ही। बल्कि मैंने जून में इस्तीफ़ा देने का इरादा किया था। लिखा भी। लेकिन बाज़ दोस्तों के कहने से उसे पेश न किया। मुझे यहाँ से जाने का ग़म नहीं। और ज़्यादा काम करूँगा। लेकिन रक़ीबों को यूँ खुश होते देखकर इन्सानी कमज़ोरियों के बाइस जी जलता है। आपसे मिस्टर मनरो से कुछ राह व रस्म है। नागू यहाँ का स्पेशल मैनेजर है। मालूम नहीं उससे आपकी कुछ मुलाक़ात है या नहीं। मगर मनरो से तो है ही। आप एक दिन के लिए यहाँ आ जाइए और मनरो से मिलकर यहाँ की इस फ़िरक़ेबंदी[10] का हाल उसे समझा दीजिए। इस वक़्त भी कई किताबों की तालीफ़ का मसला पेश है, उर्दू, हिन्दी लिटरेरी रीडरों का। पंत उनके लिए कमेटी के मेम्बरों को तलाश कर रहे हैं। उसे यह मंजूर नहीं कि मैं किताबें लिखूँ और वो कमेटी में पेश हों क्योंकि ऐसा करने में उसे दवा-दविश[11] करनी पड़ेगी। मेम्बरों से किताबें लिखा लेने में खुद कुछ करना नहीं होता। किताबें आप ही आप मंजूर हो जाती हैं। बस सिर्फ़—उनसे ख़तोकितावत करके मुआमला पटा लेना होता है। यही काम उसने अपने ज़िम्मे लिया है और शायद मनरो को या नागू को समझा दिया है कि एडीटोरियल स्टाफ़ की ज़रूरत नहीं। अगर आप आ जाएंगे तो मनरो को यह तो मालूम हो जायगा कि मेरी ज़ात से रियासत का नुक़सान नहीं है। बस मैं इतना ही चाहता हूँ।

इंडिपेंडेंट आदमी के लिए वाक़ई बड़ी मुश्किलात पेश आती हैं और मैं कई बार इसका तावान दे चुका हूँ। लेकिन अब तो वह रविश नहीं छोड़ी जाती जो आदत हो गई है। और सब ख़ैरियत है।

आपका मुख़लिस, धनपत राय।

1. अनुवाद, 2. समय की बर्बादी, 3. पिछले साल, 4. सहयोगी, 5. प्रतियोगी; शत्रु, 6. कर्मचारी अलग कर दिये जायँ, 7. देखते-समझते हुए, 8. नीचा दिखाने के लिए, 9. ढील न डालते, 10. गिरोहबन्दी, 11. दौड़-धूप।



लखनऊ, 24 सितम्बर, 1931

बरादरम,

तसलीम। लिफ़ाफ़ा मिला। मेरा ख़याल है कि आपको एक बार जल्द यहाँ आना चाहिए। यहाँ की फ़ितना-अंगेज़ियों (शरारतों) का कुछ हाल बतला देना ज़रूरी है। मैंने अपनी अर्ज़दाश्त में कुछ इसका इशारा तो कर दिया है। मगर उस पर मुफ़स्सल कहने

की ज़रूरत है। इस वक़्त मुमकिन है मनरो आपके मुआमले में कुछ जवाब दें।

मैं मैनेजर साहब से अभी नहीं मिला। सोचता हूँ वह अफ़सरी जताने लगें तो क्या फ़ायदा। जो कुछ करना होगा वह तो करेंगे ही। मेरे ख़याल में मनरो जो कुछ करेगा वही होगा। उनसे कोई उम्मीद नहीं।

आपका, धनपत राय।

●●

गनेशगंज, लखनऊ, 1 अक्तूबर, 1931

भाईजान,

तसलीम। आपका 22 का ख़त आज मिला। आप उस पर ग़लती से लखनऊ की जगह इलाहाबाद लिख गये थे। और वह हफ़्ते भर मारा-मारा फिरने के बाद आज मिला। यहाँ तब से कोई नयी बात नहीं हुई। इन लोगों ने तै कर लिया है और अब किसी की हक़तलफ़ी[1] (हक मारना), बेइंसाफ़ी या अपने नुक़सान का ख़याल इन्हें अपने इरादे से बाज़ नहीं रख सकता। मुझे अफ़सोस यही है कि आपको नाहक़ तकलीफ़ दी। ख़ैर अभी तो यहीं हूँ, 9 को यहाँ से अलहदा होकर ग़ालिबन् अक्तूबर लखनऊ में काटूँगा। उसके बाद दीदा ख़्वाहद शुद (देखा जायगा)। बराय खुदा ड्रामे तो देख डालिए। महज़ एक सरसरी निगाह की ज़रूरत है।

मुख़लिस, धनपत राय।

●●

गणेशगंज, लखनऊ, 14-10-1931

प्रिय रायकृष्णदास जी,

जैनेन्द्रजी के आदेशानुसार 'मेरी मेग्डलीन' सेवा में रजिस्ट्री पैकेट से भेज रहा हूँ। 102 पृष्ठ हैं। अन्त के दो-एक पृष्ठ या तो मेरे यहाँ से गायब हो गये या जैनेन्द्र जी के यहाँ रह गये। इतना छप जाने पर मूल पुस्तक से मिलाकर अन्त के पृष्ठों का अनुवाद बढ़ा दिया जा सकता है।

मेरे पास तो इस समय कोई छोटा उपन्यास नहीं है। इस समय जो लिख रहा हूँ, वह बहुत बड़ा है—700 पृष्ठों से कम न जायगा। तीन-चार महीने में इसे समाप्त करने की आशा करता हूँ। तब कोई छोटा-मोटा उपन्यास लिखने की चेष्टा करूँगा।

'हंस' में आपका वह उपन्यास क्या अधूरा ही रहेगा, वह तो बहुत मज़े का था!

भवदीय, धनपत राय।

●●

Ganesh Ganj, Lucknow, 15-10-1931

My dear Kanhji,

You must have received 'Hans'. Your story has been very much admired. When are you sending the next ? The Oct. issue is in preparation. If you could send it within a week, it could be inserted. The Oct. No. will be out in this month at any cost.

Your money will be sent to you without delay. I have informed the

manager.

You may write anything, the story on any matter of general interest.

Kindly give my respect to Bhai Sahib.

Yours affly, D. Rai.

●●

ग्राम–किरथरा, पो. आ. माखनपुर,
ई.आई.आर., जि. मैनपुरी, 26-10-1931

प्रिय बाबू जी, प्रणाम !

'गबन' की एक प्रति कल शाम को मिली। इस कृपा, और कृपा से अधिक स्नेह, के लिए कोरा धन्यवाद क्या दूँ ? आपकी इस कृपा के लिए आभारी हूँ।

पुस्तक पढ़ने में मैं इतना लिप्त हो गया कि उसे समाप्त करके ही छोड़ा और ईख की दो क्यारियाँ भी नहीं गोड़ीं।

अभी-अभी श्रीमती शर्मा ने उसका पढ़ना प्रारम्भ किया है। आज देर तक दीया जलेगा। बिना समाप्त किये वह इस पुस्तक को रखने वाली नहीं।

अपनी सम्मति भेजूँ। कभी-कभी तबीयत करती है कि एक उपन्यास लिखने का साहस करूँ। पर, कदाचित्, जानते हुए भी सुंदर चित्र-चित्रण मुझसे न हो कसे। 'शिकार' पुस्तक तो लिख रहा हूँ।

आपका, श्रीराम शर्मा

●●

Ganesh Ganj, Lucknow, 31-10-1931

My dear Kanhaji,

What about your story ? You said you would contribute every month, but Oct. has gone without your contribution. Is Nov. also to go without ? Your money must have reached you. We are not yet in a position to pay as handsomely as we would like. Your interest is closely allied with mine. I am no longer on the N.K. staff and literary work is my only source. If like you are going to ignore who is to support ? Certainly 5 or 6 pages every month is not much.

Yours affly, D. Rai.

●●

गनेशगंज, लखनऊ, 12 नवम्बर, 1931

भाईजान,

तसलीम। आप तो ग़ालिबन् हैदराबाद और बंबई से वापस आ गये होंगे। मुन्नू बाबू आपके साथ आये होंगे। मैं तो दिल्ली चला गया था। वहां दस-ग्यारह दिन लग गये। दीवाली को लौटा। मुन्नू बाबू को मेरी तरफ़ से दुआ और मुबारकबाद कहिएगा।

ज़माना में अक्तूबर में विष्णु दिगंबर का ब्लाक है। हंस में भी दिसंबर नंबर में विष्णु दिगंबर पर एक मज़मून छपा है। आपसे यह ब्लाक आरियतन् (उधार) ले लूँगा।

अब तो गाल्सवर्दी पर तवज्जो करने की ज़रूरत है। शायद सात महीने से ज़्यादा हो गये। इस तरह तो कभी काम ख़त्म न होगा। दस-पांच रोज़ में मुस्तक़िल तौर पर बैठकर काम को निबटा ही डालिए। कहीं ऐसा तो नहीं है कि एकेडेमी ने तर्जुमे को अपने प्रोग्राम से खारिज कर दिया हो। अगर यही कैफ़ियत है तो भी चन्दा अफ़सोस का मुक़ाम नहीं। मैं तो इन किताबों को खुद छपवा डालने को आमादा हूं। आठ आने क़ीमत में बेचकर दाम वसूल किया जा सकता है। बहरहाल कुछ भी हो अब तो इंतज़ार मुश्किल हो रहा है। उम्मीद है आप खुश हैं।

आपका, धनपत राय।



'हंस', गणेशगंज, लखनऊ, 14-11-1931

प्रिय बन्धुवर,

बहुत दिनों से आपको एक पत्र लिखने के लिए दिल मज़बूत कर रहा था, और आज मजबूर हो गया हूँ।

मेरी लड़की का 19वाँ साल है। ढाई साल हुए उसका विवाह भी हो गया है। पर लड़की का स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता जाता है। एक बार कोई साल भर से ज़्यादा हुआ, वह रात को डर गयी थीं। तभी से उसे एक-न-एक शिकायत लगी रहती है। कभी सिर में दर्द है, कभी ज्वर है, कभी पसलियों में दर्द है। दुर्बल भी हो गयी है। कई चिकित्सकों की दवाई भी की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। मुझे कुछ ऐसा भ्रम हो रहा है कि इसमें कोई रहस्य है। इस मकान में दो-तीन किरायेदार दो-दो, चार-चार दिन रहकर ऊबकर चले गये थे। मैं ही छः महीने रहा। कह नहीं सकता वहाँ कोई आसेब था, या क्या बात हुई। पर सन्देह हो रहा है कि ज़रूर कुछ-न-कुछ था और मैं चाहता हूँ कि आप एक बार दया करके लड़की को देख लें। यदि कोई अनुष्ठान हो सके तो बतायें और न हो सके तो जैसी ईश्वर की इच्छा होगी, वह तो होगा ही। आप दिसम्बर की तातील में काशी में होंगे ? अगर उस वक़्त मैं लड़की को लेकर आऊँ तो आपसे भेंट हो जायगी ? मैं 21-11-31 को पटना जा रहा हूँ। वहाँ से मैं एक दिन के लिए काशी ठहरूँगा। क्या आप 23 या 24 को घर पर मिल सकेंगे ? कृपा कर मुझे सूचना दीजिए।

यह तो आपको मालूम ही होगा कि अब मेरा सम्बन्ध नवलकिशोर प्रेस से नहीं रहा, पर लड़कों के कारण मई तक यहाँ रहना पड़ेगा। बीच में उनका नाम कटाना मसलहत नहीं मालूम हुई। मई से स्थायी रूप से देहात में रहूँगा।

कृपया पत्र का उत्तर शीघ्र दीजिएगा।

भवदीय, धनपत राय।



लखनऊ, 25 नवम्बर, 1931

प्रिय सद्गुरुशरण जी,

कार्ड मिला। ज़रा पटना चला गया था। युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के एक उत्सव में बुलावा था।

इस लेख में बहुत से चित्र दरकार होंगे। खास-खास संस्थाओं के, खास व्यक्तियों

के। मैं चाहता हूँ, कम से कम पाँच चित्र तो दिये ही जायँ, कौन-कौन से हों यह मैं छाँटकर लिखूँगा।

'हंस' का जनवरी का अंक 'आत्मकथांक' होगा। आप भी आप बीती कोई घटना या कोई impression या कोई अनुभव लिख भेजने की कृपा कीजिएगा। 15 दिसम्बर से ही मैटर छपने लगेगा। आपके पास पत्र तो कार्यालय से आयेगा ही पर मैं विशेषरूप से आग्रह कर रहा हूँ।

मेरी पुस्तकों में या तो उपन्यास हैं या गल्पों के संग्रह।

उपन्यास मेरे यह हैं–(1) ग़बन, (2) प्रतिज्ञा, (3) कायाकल्प।

गल्प संग्रह यह हैं–(1) प्रेम-प्रतिमा (2) प्रेम-द्वादशी (3) प्रेम-तीर्थ (4) पाँच फूल।

इनका प्रकाशक मैं खुद हूँ। प्रेम-द्वादशी तो रह चुकी। अब यदि प्रेम-तीर्थ आ जाय तो मुझे कुछ लाभ हो सकता है। आपके पास इसकी कापी भिजवाऊँ ? इस विषय में जो ज़ाब्ता हो वह बताइए तो वह कार्रवाई करूँ। आपके पास तो प्रति भेज ही रहा हूँ। इस संग्रह में ऐसी कोई कहानी नहीं है जो आपत्तिजनक हो।

भवदीय, धनपत राय।



लाजपतराय एण्ड संस, लाहौर, 28-11-1931

श्रीमान मुंशी जी, नमस्ते !

कृपा-पत्र मिला। मशकूर हूँ। नॉविल भेजना शुरू कीजिए। साथ-ही-साथ लिखाता जाऊँगा। 'बाल्मीकि रामायण उर्दू' उफ़्क की चाहिए तो मैं भेज सकता हूँ। दूसरी 'रामायण' अब नवलकिशोर प्रेस से देख सकते हैं। 'ख़्वाबो-ख़याल' के रुपये जनवरी के पहले हफ़्ते में भेज सकूँगा, क्योंकि 22 दिसम्बर से जलसा शुरू हो रहा है। बहुत-सी पब्लिकेशन छपाकर रखी हैं, और वह भी बवजह लम्बी बीमारी, और छह मास से दुकान से ग़ैरहाज़िरी। वक़्त के साथ 'ख़्वाबो-ख़यांल' भी फिर दो हफ़्ते और लेट हो गया है। मैं अभी तक दुकान पर काम करने के नाक़ाबिल हूँ।

आपका, लाजपतराय।



अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ, संभवतः जनवरी 1931

प्रिय केशोराम जी,

आपके कृपापत्र का उत्तर देने में जो विलम्ब हुआ उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मैं बनारस गया हुआ था और कल ही लौटा। मेरे प्रकाशक ने जो पुस्तकें उसके पास स्टाक में थीं, आपको भेज दी हैं। दूसरे खण्ड भी अन्य प्रकाशकों से प्राप्त होने पर आपको भेज दिये जायँगे। अपनी बड़ी पुस्तकों के संबंध में आपकी राय का मैं आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

नये हिन्दू वर्ष से मैंने साहित्य और राजनीति की एक नयी पत्रिका निकालने का निश्चय किया है। उसमें आरम्भ में चौसठ पृष्ठ होंगे, उसका नाम 'हंस' होगा। मैं माधुरी के संयुक्त सम्पादक के रूप में भी काम करता रहूँगा। मेरी नयी पत्रिका बनारस से प्रकाशित होगी। मैं लखनऊ से उसका संपादन करूँगा। यदि आप समय-समय पर कोई

दिलचस्प चीज़ भेजते रहेंगे तो मैं अपने को सम्मानित अनुभव करूँगा। पहले अंक के लिए मैं विशेषरूप से आपसे प्रार्थना करूँगा कि जापान की साहित्यिक क्रियाशीलता के बारे में, विशेषतः कथा-साहित्य के बारे में, एक छोटा-सा लेख लिखें। मुझे विश्वास है कि आप मुझको निराश नहीं करेंगे।

मुझे यह जानकर दुख हुआ कि अब आप जापान टाइम्स में काम नहीं करते। ग़रज़ कि प्रकाशकों ने आपके अच्छे काम के लिये आपको पुरस्कृत किया है ! आप माधुरी में लिखा करें। वे आपकी रचनाओं का स्वागत करेंगे और पुरस्कार देंगे, यद्यपि व्यावसायिक दृष्टि से भारतीय पत्र-पत्रिकायें बहुत आकर्षक नहीं हैं। मैं इस बात का ध्यान रखूँगा कि आपके लेखों को हमारी क्षमता को देखते हुए अधिक से अधिक पुरस्कार मिले।

आपको पता चला होगा कि इस साल कॉंग्रेस ने एक क़दम और आगे बढ़ाया है और स्वाधीनता का संकल्प किया है। इस मामले में बहुत गहरा मतभेद है। नरमदली लोग इतनी दूर तक जाने के लिए तैयार नहीं हैं और युवक राजनीतिज्ञ इससे कम किसी चीज़ की बात भी नहीं सुनना चाहते। मैं समझता हूँ कि स्वाधीनता इंग्लैण्ड के दम्भपूर्ण साम्राज्यवाद का ठीक जवाब है। डोमीनियन स्टेट्स धोखे की टट्टी है। एक चीज़ जो मेरी समझ में नहीं आती वह कौंसिलों के बहिष्कार का कांग्रेसी निश्चय है। हमको जो कुछ भी थोड़ा-बहुत कहीं से भी मिले, ले लेना चाहिए। कौंसिलों को प्रतिगामी विधान बनाने का अवसर क्यों दिया जाय। स्वाधीनता इतनी सुगम नहीं है कि हम कौंसिलों को और भी एक-दो सत्रों तक शरारत करने दें।

अपनी चुनी हुई कहानियों के एक जापानी संस्करण को देखकर मुझे खुशी होगी। आप अपनी कसौटी के अनुसार जो भी कहानियाँ चाहें चुन लें।

एक बार फिर आपसे 'हंस' में लिखने का अनुरोध करते हुए, शुभकामनाओं के साथ,

आपका, धनपत राय (प्रेमचंद)

●●

सम्भवतः दिसम्बर, 1931

अज़ीज़ उपेन्द्रनाथ जी,

मैंने आपका 'ताँगा वाला' और 'औरत की फ़ितरत' दोनों कहानियाँ पढ़ीं। मेरे ख़्याल में कोई नयी बात कहने से अच्छा है कि फ़ितरत का कच्चा खाक़ा खींच दिया जाय। मैं तो आपको कोहना-मसक़ (पुरानी उम्र का) अदीब समझे हुए था।

प्रेमचंद।

●●

दिसम्बर, 1931

प्रियवर,

...अरे, मैं नहीं जानता था कि अपना धनीराम ही डॉ. धनीराम 'प्रेम' लन्दन है। तुम्हारी कहानियाँ पढ़कर कुछ खिंचाव होता था, लेकिन यह नहीं समझता था कि इसका कारण यह है।

●●

सम्भवतः दिसम्बर, 1931

प्रिय बनारसीदास जी,

आप आ रहे हैं, बड़ी खुशी हुई। अवश्य आइए। आपसे न जाने कितनी बातें करनी हैं।

मेरे मकान का पता है—बेनिया बाग़ में तालाब के किनारे लाल मकान। किसी इक्के वाले से कहिए, वह आपको बेनिया-पार्क पहुँचा देगा। पार्क में एक तालाब है, जो अब सूख रहा है। उसी के किनारे मेरा मकान है, लाल रंग का छज्जा लगा हुआ। द्वार पर लोहे की फेंसिंग है। अवश्य आइए !

आपका, धनपत राय।



लखनऊ, 12 जनवरी 1932

प्रिय श्रीराम जी,

पत्र के लिए धन्यवाद। मेरी 'शिकार' कहानी के बारे में आपके शिकारी दोस्त की आलोचना देखकर मुझे बहुत मज़ा आया। यह सज्जन सीधे-सादे शिकारी मालूम होते हैं, साहित्यिक रुचि से नितान्त शून्य। इस कहानी को शिकार से कुछ नहीं लेना-देना। उसका उद्देश्य यह दिखलाना है कि रुचियों का साम्य अक्सर प्रेम का रूप ले लेता है। हमारे अधिकांश पारिवारिक झगड़ों के मूल में सहृदयता की वह कमी होती है, जो एक-दूसरे के सुख-दुख में सहानुभूति रखने और हिस्सा बँटाने की प्रेरणा देती है।

मगर इन महाशय ने यह नहीं बताया कि शिकार का जो वर्णन कहानी में किया गया है, वह किस मतलब में दोषपूर्ण है। मैं यह मानता हूँ कि शेर इतने होशियार नहीं होते कि मचान पर सोते हुए आदमी को....पकड़कर घसीट ले जायँ। और निरीक्षण इतना सीमित है, कि आप किसी चीज़ को अनर्गल नहीं कर सकते। हो सकता है, कि आपको और मुझको ऐसे होशियार जानवर से वास्ता न पड़ा हो मगर आप यह नहीं कह सकते कि वे सूझ-बूझ नहीं रखते। आप मुझसे सहमत होंगे कि वास्तविक घटनाएँ अक्सर औपन्यासिक कथाओं से अधिक विचित्र होती हैं।

यह भी उतना ही सच है कि मुझे कभी शिकार देखने का मौका नहीं मिला। यह भी सच है कि मैंने कभी अदालत में किसी मुकदमे की पैरवी नहीं की, न कालेज गया, ने किसी झगड़े में शरीक हुआ, न कोई गाँव खरीदा, न कोई चोरी या क़त्ल किया। अगर कोई लेखक अपने लेखन को उन चीज़ों तक सीमित कर दे जो उसने स्वयं देखी हैं तो शायद एक हत्यारा, अगर उसमें यह शक्ति है, हत्या का वर्णन सबसे अच्छा कर सकता है कि...शिकारियों की तादाद सैकड़ों तक पहुँचती। मैंने पन्द्रह साल के लड़के को शेर का शिकार करते देखा। तो क्या मेरा शेर उस तरह मारा गया जैसे कि कोई लोमड़ी को मारता है ? क्या मेरा वर्णन काफी भयानक नहीं है ? राजा लगभग...हमारी महिलाएँ ? और क्या उनके होश-हवाश ज़रा भी दुरुस्त रहे ? निरी हताशा और आत्मरक्षा की सहज चेतना ने काम किया। कोई भी खुशी-खुशी इस अनुभव के बीच से गुज़रना न चाहेगा। क्या उन्होंने शेर मारे हैं ? जिस तरह वह लिखते हैं उससे पता चलता है कि उन्होंने मारे

हैं। यह अतिमानवीय कार्य उन्होंने कैसे किया ? और अगर वह स्वयं इतने भाग्यशाली थे तो मेरे राजा को वह इस भाग्य से क्यों वंचित करना चाहते हैं ? क्या सिर्फ इसलिए कि उन महाशय को पता है कि मैं शिकारी नहीं हूँ और वह बेधड़क मेरी गोशमाली कर सकते हैं ? मैं कभी उस मुसीबत के बीच से नहीं गुज़रा, मगर मैंने कुछ शिकार-साहित्य पढ़ा है, उसके ख़तरों, रोमांच और भयानकता की कल्पना कर सकता हूँ। तब फिर वह इसे बेसिर पैर क्यों कहते हैं ? बारहसिंगे के शिकार में निश्चय ही बहुत कम जानें जाती हैं। हाथी भालों से मारा जाते देखा गया है।

आपके मित्र का यह सुझाव बिलकुल सही है कि मसूरी की ज़बर्दस्त ऊँचाइयों पर मोटरें काम में नहीं लायी जातीं। मसूरी में अच्छी सड़कें हैं और जब रिक्शे चल सकते हैं तो मोटरें क्यों नहीं चल सकतीं ? हो सकता है कि मोटरों के खिलाफ म्युनिसिपैलिटी का आदेश हो, दुर्घटनाएँ बचाने के खयाल से...किसी चीज़ की सम्भावना। खैर मैं इस हद तक सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ। क्या किसी ने सपने में भी सोचा था कि शिमला में वाइसराय की मोटर के अलावा दूसरी किसी मोटर को भी निकलने की इजाज़त मिलेगी। महात्मा गांधी ने उन परम्परा को तोड़ा। मेरे नायक-नायिका ने उससे कुछ साल पहले मसूरी में इस परम्परा को तोड़ा। किसी भले आदमी की पोशाक में अटपटापन खोजकर निकालना बचपना है। हो सकता है कि उसकी हैट वैसी नहीं है जैसी कि होनी चाहिए, हो सकता है कि उसका कालर या टाई परम्परा का या चलन का अंधा अनुकरण नहीं करती। देखने की चीज़ यह है कि वह भला आदमी नज़र आता है या नहीं। अगर वह इस शर्त को पूरा करता है तो और सब चीज़ें गौण हैं।

मुझ ठीक याद नहीं आ रहा है कि मैंने कहाँ बत्तखों को पेड़ पर बिठाल दिया है।

हंस के लिए अपने जो लेख भेजा है उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। क्या आप कृपया, अगर सम्भव हो, घुटनों के बल बैठकर मेरी ओर से चतुर्वेदी जी से हंस के लिए एक-दो पृष्ठ लिखने को कह सकेंगे ? अब भी समय है और अगर वह हंस को इतना सम्मान दें तो उनकी कोई बुराई इसमें न होगी। हंस विशाल भारत से होड़ करने की बात नहीं सोचता। मैं विशाल भारत में लिखता हूँ इसलिये नहीं कि वह पैसे देता है बल्कि इसलिये कि मेरे मन में उन सज्जन के लिये आदर का भाव है जैसा कि बहुत कम पत्रकारों के लिये है। दूसरे भी पैसा देने के लिये उतना ही तैयार है लेकिन मैंने उनकी तरफ से मुँह फेर लिया। अपने दो साल के जीवन में हंस उनसे एक पंक्ति भी नहीं पा सका। निश्चय ही समयाभाव से अधिक गहरा कोई कारण इसका होगा।

क्या आप मिस्टर कोठारी से मिले ? क्या वह योजना स्थगित कर दी गयी ? मगर मैं आपके ऊपर बोझ डाले जा रहा हूँ। इसलिए परेशान मत हों। हर चीज़ अपने वक्त से होती है। एक दफा झण्डा उठा लेने के बाद फिर पीठ फेरने का निश्चय ही कोई मतलब नहीं होता। अब कोई विकल्प नहीं है। इस बार उद्देश्य सरकार को विवश करना नहीं है बल्कि राष्ट्र को विवश करना है कि वह कांग्रेस को बोलने दे क्योंकि सम्मान का पद त्याग के ज़रिये ही मिलता है, उसी से हमारी ईमानदारी और लगन प्रमाणित होती है। मैं महसूस करता हूँ कि महात्मा जी को अपने तईं काम करने की पूरी आज़ादी नहीं दी

गयी। मामलों को इतनी तेज़ी से आगे बढ़ाया गया कि उनके सामने कोई विकल्प नहीं रहा। गाँधी जी ने वाइसराय से बिना शर्त मुलाकात करने की जो बात कही थी उसको रद्द करके साज़िश को पूरा कर दिया गया।

हम नाकाम रहते हैं तो इसलिये कि स्वयं हममें चरित्र की कमी है। थोड़े से अपवादों को छोड़कर, यह चीज़ यहाँ मुश्किल से मिलती है और भारत को स्थिर होकर शान्ति और समृद्धि का रास्ता पकड़ने में अभी वर्षों लगेंगे।

आपका, धनपत राय।

मेरे रिश्ते के एक भाई 9 तारीख को चल बसे और उनका कुनबा बेसहारा छूट गया। उनकी उम्र 67 साल थी।

●●

गनेशगंज, लखनऊ, 13 जनवरी, 1932

बरादरम,

तसलीम। आपका इनायतनामा और तजरबात मिले। मशकूर हूं। मैंने दूसरा तजरबा (अनुभव) ले लिया है और उसका हिन्दी तर्जुमा करके हंस में दे दिया है।

मैं अभी तक उस पटना वाले मज़मून का उर्दू तर्जुमा नहीं कर सका। इसके लिए नादिम हूं। और कई दिन तक एक फोड़े ने तकलीफ़ दी। अब वह अच्छा हो रहा है। 9 मार्च को मेरे बड़े भाई साहब बाबू बलदेवलाल का कुलंज से इंतक़ाल हो गया। घर में दो बच्चे हैं, बेवा, भाई की बेवा, और एक बेवा बहन। अठारह को दसवां है। मैं 16 या 17 को जा रहा हूं। वहां से 21-22 को वापस आऊँगा। इन अनाथों की परवरिश का कुछ इंतज़ाम भी करना है। भोज भी करना ही पड़ेगा। हाँ अगर एकेडेमी से कुछ पेशगी का इंतज़ाम कर सकें तो इस वक़्त मेरा काम निकले।

हैदराबाद में आपको मेरी याद न आयी, कुदरती बात है। याद तो उनकी आती है जो बार-बार याददिहानी करते रहें। मैंने तो भूले से ज़िक्र कर दिया था। जब तक क़लम और दिमाग़ काम करता है तब तक ग़म नहीं। जब बेकार हो जाऊंगा तब देखी जायगी। तीन महीने और यहां हूं। फिर मेरा देहाती मकान है और मैं हूं। अब तक दौलतमन्द न हो सका तो अब क्या होऊंगा। आदमी की कमज़ोरी है कि ज़रा बेफ़िक्री चाहता है वर्ना कुछ छोड़कर मरे तो क्या और ख़ाली हाथ गये तो क्या।

कोशिश करूँगा कि बनारस से लौटते वक़्त कानपुर होता हुआ आऊं।

और तो सब ख़ैरियत है। यहां की कांग्रेस कमेटी तो बंद हो चुकी। ईजानिब मुस्तसनियात में है (मैं अलग हूं)।

मुख़लिस, धनपत राय।

●●

गनेशगंज, लखनऊ, 25 फ़रवरी, 1932

भाईजान,

तसलीम। इधर मैं भी शिकायत में मुबतिला रहा। चार फोड़े लगातार निकले। इनसे नजात न होने पायी थी कि दांतों में दर्द हुआ। दांत से फुर्सत मिली तो पेट में दर्द शुरू

हुआ और तीन दिन के बाद अब मामूली ख़ूराक पर आया हूँ। एक महीना ख़राब हो गया। पर्दए मजाज़ अभी तक कृश्ना पब्लिशर्स ने नहीं भेजा। कई ख़ुतूत लिख चुका। न राय भेजता है न किताबों, न जवाब देता है। मालूम नहीं बीमार है या क्या। इधर 'ग़बन' का तर्जुमा भी शुरू कर दिया है, एक नया नाविल भी शुरू कर दिया है। मगर सर्दबाज़ारी बलाये जान हो रही है। प्रेस में काम नहीं है, रिसाला घाटे पर चलता है, किताबें की काफ़ी बिक्री नहीं। किसी तरह काम चल रहा है। एक प्रेस के लिए रीडरें लिखने का इरादा है। कुछ काम इस तरह चल जायेगा। आपके यहाँ शादियाँ किन तारीख़ों में है ? हाँ फ़ाइलों के लिए फुर्सत निकालकर देख ही डालिए। मार्च में ख़त्म हो जायें तो एक महीने की बेफ़िक्री हो। मैं अप्रैल में बनारस चला जाऊँगा। देहात में बैठकर लिटररी काम करता रहूँगा ? अगर रीडरें मंज़ूर हो गयीं तो तीन साल तक परीशानी न होगी। ऐसी उम्मीद है। क्या होगा, ईश्वर जाने। अगर मौलवी अबदुल हक़ साहब से कोई तर्जुमा या तालीफ़ (संकलन-संपादन) का काम माकूल मुआवज़े पर मिल जाये तो मेरे लिए हासिल करने की कोशिश क्यों नहीं करते। साल में पाँच सौ का काम भी कर लूं तो फिर मुझे गूना (थोड़ी-सी) बेफ़िक्री हो जाये। नाविल वग़ैरह का बाज़ार बहुत ठण्डा है। बड़ी हिम्मतशिकन हालत पैदा हो गयी है। बक़िया सब ख़ैरियत है।

मुख़लिस, धनपत राय।



गणेशगंज, लखनऊ, 25 फरवरी, 1932

प्रिय बंधु उपेन्द्रनाथ अश्क,

आशीर्वाद। माफ़ करना, तुम्हारे दो ख़त आये। 'भिश्ती की बीवी' मैंने पढ़ा था और बहुत पसंद किया था। तुमने उर्दू का एक छोटा-सा चुटकुला भेजा था, मैं उसे हिन्दी में दे रहा हूँ, मगर हिन्दी में जो चीजें तुमने भेजी हैं उनमें अभी ज़बान की बहुत ख़ामी है। हिन्दी के पत्र देखते रहोगे तो साल छः महीने में ये त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी। कोई कहानी हमारे लिए हिन्दी में लिखो, मगर कहानी हो फ़ैंसी नहीं या अगर किसी महान् व्यक्ति का जीवन-चरित्र हो तो उससे भी काम चल सकता है, मगर मेरी सलाह तो यही है कि अभी बहुत ज़्यादा लिखने के मुकाबले में लिटरेचर और फ़िलासफ़ी का अध्ययन करते जाओ, क्योंकि इस वक्त का अध्ययन ज़िन्दगी भर के लिए उपयोगी होगा।

और तो सब ख़ैरियत है।

शुभैषी, धनपत राय।



गनेशगंज, लखनऊ, 10 मार्च, 1932

बरादरम,

तसलीम। कार्ड मिल गया था। इस कोशिश में था कि किताबें मिल जायें तो भेजूं। मगर हादसा यह हो गया कि नातन का तो कहीं पता नहीं, गाल्सवर्दी के ड्रामे बेदार साहब शाहजहाँपुर उठा ले गये और फ़रेबे अमल मौजूद है। बेदार आजकल पंजाब गये हुए हैं। गाल्सवर्दी तो मिल जायगा लेकिन हाफ़िज़ा मुतलक़ काम नहीं करता कि नातन कौन ले गया। अफ़सर के घर गया, जो साहब यहाँ आते हैं, सबसे पूछ आया, कहीं पता नहीं।

इसके लिए मैं अज़हद नादिम हूँ। बेदार साहब पंजाब से लौट आयें तो गाल्सवर्दी और फ़रेबे अमल भेज दूँ, नातन का तो मर्सिया ही पढ़ना पड़ेगा–

इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलहे राजेऊन[1]
और तो सब ख़ैरियत है। मुबल्लिग़ात[2] का क़हत[3]।
हंस का ख़ास नंबर मिल गया होगा।

मुख़लिस, धनपत राय।

1. जो अल्लाह की तरफ़ से आया है उसे उधर ही जाना है, 2. रुपयों, 3. अकाल।



गणेशगंज, लखनऊ, 15 मार्च, 1932

मुहिब्बी,

तसलीम। 'अनारकली' उर्दू का पहला ड्रामा है जिसे मैंने अव्वल से आख़िर तक एक ही साँस में पढ़ा। यह तो मैं नहीं कहता कि मैंने उर्दू के सब ड्रामे पढ़ डाले हैं। मगर जितने पढ़े हैं उनमें मुझे जितनी कशिश 'अनारकली' में हुई वह और किसी ड्रामे में नहीं हुई। मैं तो इसे अंग्रेजी के बेहतरीन ड्रामों के मुकाबिल रखने को तैयार हूँ। 'दौरे जदीद' उसके एक-एक लफ़्ज में मनकूश है पारसी तर्ज़ की जंजीरों से आपने ड्रामे को यकलख़्त आज़ाद कर दिया। कहीं-कहीं तो आपने नज़ाकतेफहमी का कमाल दिखाया है। 'अनारकली' मुझे बहुत अर्से तक याद रहेगी। अकबर का कैरेक्टर मुझे बेहतरीन मालूम हुआ। बस अगर शिकायत है तो यही कि आपने जहाँगीर के हाथों दिलाराम का क़त्ल करा के मेरे दिल को सख़्त सदमा पहुँचाया, हत्ताकि इस ड्रामावाले जहाँगीर से मुझे नफ़रत हो गई। कोई सच्चा आशिक़ इतना बेरहम हो सकता है, इसे दिल नहीं तसलीम करता। मुआफ़ कीजिएगा। वस्सलाम।

मुख़लिस, प्रेमचंद।



लखनऊ, 16 मार्च, 1932

प्रिय सद्गुरुशरण जी, वंदे।

कृपापत्र। धन्यवाद। आपके पत्र से यह जानकर हर्ष हुआ कि मेरी कोई किताब स्वीकृत हुई। लेकिन यह नहीं मालूम कौन-सी किताब ? बाबू रघुपति सहाय ने भी संशयवाचक शब्दों में पाँच फूल की स्वीकृति का समाचार लिखा था। यहाँ महाशय श्रीधरसिंह ने कहा 'सप्त सुमन' हुआ। वास्तव में कौन किताब हुई, यह आपने भी लिखने की कृपा न की। इंटर के लिए तो मेरी कोई किताब न हुई होगी। द्वादशी के उठने का मुझे खेद नहीं है। वह तीन साल चली। अव दूसरी पुस्तक के लिए स्थान मिलना ही चाहिए।

मैंने पं. नन्ददुलारे जी के लेख का जवाब 'हंस' में दे दिया। छप भी गया। 20 तक आ भी जायगा। साहित्य-समाज पर ऐसे आघात का सहन न किया जा सका, इस अहंकार की कोई हद है। मुझे आशा है मेरा जवाब पढ़कर आप प्रसन्न होंगे।

मैं अप्रैल के अंत तक यहीं रहूँगा, फिर काशी चला जाऊँगा और ग्राम्य-निवास के साथ कुछ लिखता रहूँगा। 'हंस' अभी घाटे में है। उसे स्थायी बनाने का उद्योग करूँगा।

अभी तो वह मेरी पुस्तकों को बिक्री भी खाये जाता है।

आप लखनऊ कब तक आ रहे हैं ?

भवदीय, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 19 मार्च, 1932

प्रिय सद्गुरुशरण जी, वंदे।

कार्ड मिला। मेरी दो पुस्तकें स्वीकृत हुईं। यह बड़े हर्ष की बात है। सप्त सुमन स्वीकार हुआ तो अच्छा ही है। इसमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं।

आपको कहानी मैंने मंगवाकर पढ़ी और भेज दी। कहानी वर्णनात्मक हो गयी। सब कुछ आपने ही कहा, पात्रों को कुछ कहने का अवसर ही न मिला। जिस कहानी में पात्रों के संभाषण से प्लाट चलता है, वही अधिक रोचक होती है। कहानी कुछ लम्बी भी थी। कहीं-कहीं मैंने परिवर्तन कर दिया है। यह प्लाट मैंने Justice Lindsay की किताब में देखा था, लेकिन लिख न सका। इसके बाद आप जो कहानी लिखें उसमें बातचीत अधिक और कथा कम रखने की चेष्टा कीजिएगा।

आपके क्लास में यदि साहित्यिक रुचि के छात्र हों तो उन्हें कुछ लिखने की प्रेरणा करते रहिए। युवक कभी-कभी सुन्दर गल्प लिख जाते हैं, जो हम लोगों से नहीं बन पड़ती। हमारी जीत अभ्यास में है। नवीनता और विचित्रता तो उनके साथ है।

शेष कुशल है।

भवदीय, धनपतराय।

●●

गणेशगंज, लखनऊ, 23 मार्च, 1932

डियर उपेंद्र, आशीर्वाद।

कई दिन हुए, तुम्हारी हिन्दी कहानी मिल गयी। इसके पहले 'फूल का अंजाम' उर्दू की चीज़ मिली थी। मैं इस हिन्दी कहानी में ज़रूरी सुधार करके हंस में दे रहा हूँ, लेकिन तुमने नरेंद्र को बिला काफी कारणों के शादी करने पर आमादा कर दिया। वह शादी से बेज़ार है, विवाहित जीवन का दृश्य देखकर उसकी तबीयत और उदासीन हो जाती है, फिर यकायक वह शादी करने पर तैयार हो जाता है। महज़ इसलिए कि उसकी मँगनी हो गयी है। शादी के बाद का जीवन ज़रूर सुंदर है लेकिन यह कौन कह सकता है कि जिन मियाँ-बीवी को उसने लड़ते देखा था उनका जीवन भी यौवन की पहली मधुऋतु में इतना ही आकर्षक न रहा होगा ? तुम्हें कोई ऐसा सीन दिखाना चाहिए था जिसमें इंसान को अपना अकेलापन असह्य हो जाता या मियाँ-बीवी में जंग होने पर भी उनमें कुछ ऐसा चारित्रिक सौंदर्य होता जो इंसान को शादी की ओर झुकने पर विवश करता। मौजूदा हालत में किस्सा Convincing नहीं है। 'फूल का अंजाम' इससे अच्छा है, उसमें एक नुक्ता है, एक चिरंतन सत्य है लेकिन उर्दू लेकर मैं क्या करूँ।

पढ़ने के लिए लाइब्रेरी में से साइकालोजी पर कोई किताब ले लो, स्कूली या कोर्स की किताब नहीं। अभी एक किताब निकली है The Aspects of a Novel, इस विषय पर अच्छी किताब है। मतलब सिर्फ यह है कि इंसान उदार विचारों वाला हो जाय, उसकी संवेदनाएँ व्यापक हो जायँ। डाक्टर टैगोर के साहित्यिक और दार्शनिक निबंध बहुत ही

आला दर्जे के हैं, रोमाँ रोलाँ का 'विवेकानन्द' ज़रूर पढ़ो, उनकी 'गान्धी' भी पढ़ने के काबिल है, मॉर्ले के साहित्यिक जीवन-चरित्र लाजवाब हैं, डाक्टर राधाकृष्णन् की दर्शन संबंधी किताबें, टाल्सटॉय का What is Art वगैरः किताबें ज़रूर देखनी चाहिए।

अख़्तर साहब से मेरा सलाम कहना। मैं एक हिन्दी क़िस्सा लिख रहा हूँ, वह आपके लिए वक़्फ़ है।

तुम्हारा ख़ैरअन्देश, धनपत राय।

●●

लखनऊ, 10 अप्रैल, 1932

भाईजान,

तसलीम। 22 अप्रैल को शादी है। मैं ज़रूर आऊँगा। मगर तनहा। बेटी को गये आज एक हफ़्ता हो गया। अपनी मौसी के यहाँ इलाहाबाद गयी है। उसकी माँ और धुन्नू कल वहीं जा रहे हैं। एक शादी है। मैं छोटे बच्चे के साथ यहाँ 4 मई तक रहूँगा। उसे भी लेता आऊँगा।

इस वक़्त तो आप दूसरी मसरूफ़ियात[1] में हैं मगर मुझे उम्मीद है आपने ड्रामे के मुसव्वदे की तकमील[2] कर दी होगी। ख़याल कीजिए, साल भर से ज़ायद हो गया। इस काम में मैं और बाबू हर प्रसाद सक्सेना दोनों ही शरीक थे। वह बेचारे जेल में हैं। उन्होंने अपना नाम पोशीदा[3] रखने की ताकीद कर दी थी। इसलिए मैंने कभी ज़िक्र नहीं किया। मगर मैंने महज़ उनकी ज़रूरियात का ख़याल करके उनकी इमदाद ली थी। आज फ़ैज़ाबाद जेल से उनका दर्दनाक ख़त आया है। इसलिए मैं फिर याददिहानी करने पर मजबूर हुआ हूँ। अगर आप इस वक़्त एक सौ रुपये भी पेशगी वसूल कर सकें तो मैं उनकी बीवी को दे दूँ। वह अभी-अभी यहाँ आयी थीं। मेरी हालत इस वक़्त ऐसी नहीं है कि सौ रुपये निकाल कर दे दूँ। मैं अभी बाहर हूँ और मुझे ऐसी शदीद[4] ज़रूरत नहीं। मगर उनकी हालत हमदर्दीतलब है। जो कुछ हो सके जल्द कीजिए। मई में वह रिहा होकर आ जायेंगे। उस वक्त मुझे कितनी नदामत होगी। शायद फिर दो-चार दिन में चले जायेंगे। कम से कम उन्हें यह तशफ़्फ़ी[5] तो हो कि उनके अहबाब ने उनका ख़याल किया। यों तो गवनर्मेण्ट की ज़्यादतियाँ अब नाक़ाबिले बर्दाश्त हो रही हैं। पण्डित जवाहरलाल की ज़ईफ़ माँ के साथ कितनी बिदअतें[6] की गयीं। अब बाहर रहना मुझे भी बेहयाई मालूम हो रही है। हाँ पर्दए मजाज़ का रिव्यू अभी तक नहीं हुआ। इसका इंतज़ार करता रहा। अब याद दिलाता हूँ। ख़ाँ साहब से रिव्यू करवायें। या आप और जिससे मुनासिब समझें। मेरे किसी नाविल का ज़माना में रिव्यू नहीं हुआ। हालांकि पर्दए मजाज़ को लेकर छः हो चुके और सातवाँ भी अनक़रीब तैयार है। नैरंगे ख़याल ने बाज़ारे हुस्न का रिव्यू कर दिया था। और किताबें पड़ी हुई हैं। ख़ैर और किताबें तो पुरानी हो गयीं। पर्दए मज़ाज़ तो नयी चीज़ है, और उसका एक-एक लफ़्ज़ मेरा है। और तो सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. व्यस्तता, 2. समापन, 3. गुप्त, 4. सख़्त, 5. तसल्ली, 6. ज्यादतियाँ।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 3913/7-5-1932

प्रियवर, वन्दे !

कृपा-पत्र के लिए धन्यवाद। 'प्रतिज्ञा' और 'प्रेमा' मेरी ही लिखी हुई हैं। 'प्रेमा' मैंने 1905 में लिखा था। उस वक़्त मैं नवावराय के नाम से लिखता था। उसमें एक विधवा का विवाह कराया गया था, अर्थात् पूर्णा का अमृतराय से विवाह हुआ था। लेकिन आप दोनों पुस्तकों को सामने रख लें तो आपको सिवा बसन्तराय के गंगा वाले दृश्य के और कोई बात न मिलेगी। मैंने विधवा का विवाह कराके हिन्दू नारी को आदर्श से गिरा दिया था! उस वक़्त जवानी की उम्र थी और सुधार की प्रवृत्ति ज़ोरों पर थी। उस रूप में मैं उस पुस्तक को नहीं देखना चाहता था। इसलिए मैंने कथा में उलटफ़ेर करके इसे लिख डाला। आप देखेंगे कि आरम्भ दोनों का भिन्न है, अन्त भी भिन्न। समानता केवल पात्रों के नामों में है। कुछ 'हंस' के लिए लिखिए। आप हमीं से क्यों नाराज़ हैं ?

भवदीय, प्रेमचंद।



लखनऊ, 13 मई, 1932

भाईजान,

तसलीम। मैं आज बनारस जा रहा हूँ। अव से मेरे पास खुतूत सरस्वती प्रेस काशी के पते ही से लिखियेगा। मेरा नाविल 'बेवा' तैयार हो गया है। इसके लिए मुझे यहाँ आठ-दस रोज़ ठहरना पड़ा। इसकी दो सौ जिल्दें मालगाड़ी से भेज रहा हूँ। इश्तहार बनारस से भेज दूँगा। आज़ाद और ज़माना दोनों में दिलवा दीजिएगा। शायद साल-दो साल में बिक जाये। किताब बहुत ख़राव छपी है, मेरी हिमाक़तों (बेवकूफियां) के बाइस (कारण) लेकिन मैंने क़ीमत बहुत कम रखी है। उम्मीद है आप बख़ैरियत हैं। अगर बनारस आपको इत्तफ़ाक़ हो तो मुझे ज़रूर इत्तला दीजिएगा। ड्रामों के बारे में आपने मुनासिब कार्रवाई कर ही ली होगी।

आपका, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 3 जून, 1932

प्रिय भाई साहब, बंदे।

आपका पत्र कई दिनों से आया हुआ है। पहले तो कई बरातों में जाना पड़ा फिर नैनीताल जाने की ज़रूरत पड़ गयी। पहली तारीख को वहाँ से आया तो यहाँ काँग्रेस की उलझनों में पड़ा रहा। शहर पर फ़ौज का क़ब्ज़ा है। अमीनाबाद में दोनों पार्कों में सिपाही और गोरे डेरे डाले पड़े हुए हैं, 144 धारा लगी हुई है, पुलिस लोगों को गिरफ्तार कर रही है और कांग्रेस तो 144 धारा तोड़ने की फ़िक्र में है डंडे की नई पालिसी ने लोगों की हिम्मत तोड़ दी है।

आप मुझसे मेरा चित्र माँगते हैं। एक चित्र कुछ दिन हुए खिंचवाया था। वह लाहौर भेज दिया। वहाँ से ब्लाक मँगवाकर कहानियों के एक संग्रह 'पाँच फूल' में छापा। उसी की एक परत फाड़कर भेज रहा हूँ। अगर इससे काम चल जाय तो क्यों नई तस्वीर खिंचवाऊँ। मैं तो समझता हूँ यह काफी अच्छी है। अगर ज़रूरत होगी तो इसका ब्लाक

भेज दूँगा, हालाँकि ठीक नहीं कह सकता ब्लाक प्रेस में है या नहीं, क्योंकि 'वीणा' ने माँगा था। अगर वहाँ चला गया होगा तो वहाँ से आने पर भेज दूँगा। हाँ, अगर बिल्कुल नई तस्वीर दरकार हो तो मुझे तुरन्त लिखिए, खिंचवाकर भेज दूँ।

मेरे विषय में आपने जो प्रश्न पूछे हैं उसका उत्तर यों है–

1–मैंने 1907 में गल्प लिखना शुरू किया। सबसे पहले 1908 में मेरा 'सोज़े वतन' जो पाँच कहानियों का संग्रह है ज़माना प्रेस से निकला था, पर उसे हमीरपुर के कलेक्टर ने मुझसे लेकर जलवा डाला था। उनके ख़याल में वह विद्रोहात्मक था, हालाँकि तब से उसका अनुवाद कई संग्रहों और पत्रिकाओं में निकल चुका है।

2–इस प्रश्न का जवाब देना कठिन है। दो सौ से ऊपर गल्पों में कहाँ तक चुनूँ लेकिन स्मृति से काम लेकर लिखता हूँ–

1–बड़े घर की बेटी 2–रानी सारंधा 3–नमक का दरोग़ा 4–सौत 5–आभूषण 6–प्रायश्चित 7–कामना तरु 8–मंदिर और मसज़िद 9–घासवाली 10–महातीर्थ 11–सत्याग्रह 12–लांछन 13–सती 14–लैला 15–मंत्र।

'मंज़िले मक़सूद' नामक उर्दू कहानी बहुत सुन्दर है। कितने ही मुसलमान मित्रों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है, पर अभी तक उसका अनुवाद नहीं हो सका। अनुवाद में भाषा-सारस्य ग़ायब हो जायगा।

3–मेरे ऊपर किसी विशेष लेखक की शैली का प्रभाव नहीं पड़ा। बहुत कुछ पं. रतननाथ दर लखनवी और कुछ डॉ. रवीन्द्रनाथ ठाकुर का असर पड़ा है।

4–आय की कुछ न पूछिए। पहले की सब किताबों का अधिकार प्रकाशकों को दे दिया। प्रेम पच्चीसी, सेवासदन, सप्त सरोज, प्रेमाश्रम, संग्राम आदि के लिए एकमुश्त तीन हज़ार रुपये हिन्दी पुस्तक एजेंसी ने दिया। नवनिधि के लिए शायद अब तक दो सौ रुपये मिले हैं। रंगभूमि के लिए अट्ठारह सौ रुपये दुलारेलाल ने दिये। और संग्रहों के लिए सौ दो सौ मिल गये। कायाकल्प, आज़ाद-कथा, प्रेमतीर्थ, प्रेमप्रतिमा, प्रतिज्ञा मैंने खुद छापा पर अभी तक मुश्किल से 600 रुपये वसूल हुए हैं। और प्रतियाँ पड़ी हुई हैं। फुटकल आमदनी लेखों से शायद 25 रुपये माहवार हो जाती हो। मगर इतनी भी नहीं होती। मैं अब 'हंस' और 'माधुरी' के सिवा कहीं लिखता ही नहीं। कभी-कभी 'विशाल भारत' और 'सरस्वती' में लिखता हूँ। बस हाँ, अनुवादों से भी अब तक शायद दो हज़ार से अधिक न मिला होगा। आठ सौ रुपये में रंगभूमि और प्रेमाश्रम दोनों का अनुवाद दे दिया था। कोई छापनेवाला ही न मिलता था।

5–हिन्दी में गल्प साहित्य अभी अत्यन्त प्रारिम्भक दशा में है। कहानी लिखने वालों में सुदर्शन, कौशिक, जैनेन्द्र कुमार, उग्र, प्रसाद, राजेश्वरी यही नज़र आते हैं। मुझे जैनेन्द्र, और उग्र में मौलिकता और बाहुल्य के चिन्ह मिलते हैं। प्रसाद जी की कहानियाँ भावात्मक होती हैं realistic नहीं, राजेश्वरी अच्छा लिखते हैं मगर बहुत कम। सुदर्शन जी की रचनाएँ सुन्दर होती हैं पर गहराई नहीं होती और कौशिक जी अक्सर बात को बेज़रूरत बढ़ा देते हैं। किसी ने अभी तक समाज के किसी विशेष अंग का विशेषरूप से अध्ययन नहीं किया। उग्र ने किया मगर बहक गये। मैंने कृषक समाज को लिया मगर अभी कितने ही ऐसे समाज पड़े हैं जिनपर रोशनी डालने की ज़रूरत है। साधुओं के समाज को किसी ने स्पर्श

तक नहीं किया। हमारे यहाँ कल्पना की प्रधानता है, अनुभूत की नहीं। बात यह है कि अभी तक साहित्य को हम व्यवसाय के रूप से नहीं ग्रहण कर सकते। मेरा जीवन तो आर्थिक दृष्टि से असफल है और रहेगा। 'हंस' निकालकर मैंने किताबों की बचत का भी वारा-न्यारा कर दिया। यों शायद इस साल चार छः सौ मिल जाते पर अब आशा नहीं।

6—मेरी रचनाओं का अनुवाद मराठी, गुजराती, उर्दू, तामिल भाषाओं में हुआ है। सबका नहीं। सबसे ज़्यादा उर्दू में, उसके बाद मराठी में। तामिल और तैलगू के कई सज्जनों ने मुझसे आज्ञा माँगी जो मैंने दे दी। अनुवाद हुआ या नहीं, मैं नहीं कह सकता। जापानी में तीन-चार कहानियों का अनुवाद हुआ है जिसके महाशय साबरबाल ने मुझे अभी कई दिन हुए 50 रुपये भेजे हैं। मैं उनका आभारी हूँ। दो-तीन कहानियों का अंग्रेजी में अनुवाद हुआ है। बस।

7—मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बँगले की मुझे हविश नहीं। हाँ, यह ज़रूर चाहता हूँ कि दो-चार ऊँची कोटि की पुस्तकें लिखूँ पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है। मुझे अपने दोनों लड़कों के विषय में कोई बड़ी लालसा नहीं है। यही चाहता हूँ कि वह ईमानदार, सच्चे और पक्के इरादे के हों। विलासी, धनी, खुशामदी सन्तान से मुझे घृणा है। मैं शांति से बैठना भी नहीं चाहता। साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूँ। हाँ, रोटी-दाल और तोला भर घी और मामूली कपड़े मयस्सर होते रहें।

बस आपके प्रश्नों का जवाब हो गया। मेरे जन्म आदि का ब्योरा आपके ही पत्र में छप चुका है अब आप अपना वचन पूरा कीजिए और 'हंस' के लिए कुछ लिख भेजिउए। वैसा ही स्केच हो जैसा पं. सुंदरलाल जी का था तो क्या कहना।

शेष सकुशल है। आशा है आप भी सकुशल होंगे।

भवदीय, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 7 जून, 1932

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। हाँ मैं लखनऊ था। लेकिन कानपुर न आ सका। परेशानियों में था। फिर कभी इसका ज़िक्र करूँगा। मुआफ़ कीजिएगा।

'बेवा' बेशक बहुत ख़राब छपी। कई प्रेसों में छपी, कई पत्थर टूटे, कई कातिबों ने लिखा। फँस गया था। मजबूरन ख़त्म करना पड़ा। ग़लती रह गई कि प्रिन्ट लाइन न दी जा सकी। अब इसकी चिटें भेज रहा हूँ। तकलीफ़ तो होगी मगर दफ़्तरी से चिपकवा लें और दोनों किताबों 'पर्दए मजाज़' और 'बेवा' का रिव्यू निकलवा दें। बहुत अर्से से मेरी किसी किताब की तनक़ीद 'ज़माना' में नहीं निकली। 'रा॰॰ली' की तनक़ीद मैं लिख दूँगा। बहुत जल्द।

अब नाटकों का ज़िक्र करना ज़रूरी हो गया। बाबू हर प्रसाद सक्सेना जेल से छूट आए और बहुत तंग-हाल हैं। मेरे पास दर्दनाक ख़त लिखा है। क्या जवाब दूँ। मरहला कितना तय हुआ, कितना बाक़ी है, मुझे क्या ख़बर ?

आपने नज़रसानी की या नहीं ? एकेडेमी में क्या पेशगी का सवाल नहीं पेश हो सकता ? और न सही सौ रुपये पेशगी लेकर उनके पास भिजवा दीजिए। बेचारे बड़ी तकलीफ़ में हैं। मैं मजबूर हूँ, हालांकि जानता हूँ यह मजबूरी आरज़ी है। आप ही सोचिए कितनी मुद्दत गुज़र गई। ग़ालिबन डेढ़ साल हो गए। अब तो वायदे भी नहीं करते बनता x x x

और तो सब ख़ैरियत है। अभी शहर में मकान नहीं ले सका। x x x इसलिए मुन्नू से न मिल सका। ज़रा शहर आ जाऊँ तो मिलूँ।

मुख़लिस, धनपत राय।

134 जिल्दें ही गईं। दफ़्तरी ने लाहौर का 'ज़माना' और 'ज़माना' का लाहौर भेज दिया।



सरस्वती प्रेस, काशी, 17 जून, 1932

भाईजान,

तसलीम। मैंने तो नज़्म व नस्र (गद्य) के एक सलस (तिहाई) वाले तनासुब (आपसी सम्बन्ध) को सबक़ों (पाठों) का तनासुब समझा है। और उसी पर अमल किया है। मगर इस वक्त जितने मजमूए हिन्दी उर्दू तैयार हो रहे हैं उनके देखते किसी नफ़े की गुंजाइश मुश्किल है। मैं तो अब कान पकड़ रहा हूँ। अबकी फँस गया हूँ और महज़ बराय नाम। मगर आइन्दा से इस लाइन से सोलहों आना किनाराकश हो जाऊँगा।

मेरा नया नाविल कर्मभूमि छप रहा है। अठारह फ़ार्म छप गये हैं। कोई छः सौ सफ़े की किताब होगी।

अभी तक तो देहात में हूँ मगर जल्द शहर में रहूँगा। मकान ठीक कर रहा हूँ। उम्मीद है कि आप खुश हैं। अनारकली की तनक़ीद तो अभी नहीं लिख सका। इसी रीडर वाली कुतेख़सी में मैं भी मुबतिला हूँ हालाँकि जी बिल्कुल नहीं चाहता मगर राय साहब से वादा कर चुका हूँ, उसका ईफ़ा करना ज़रूरी है।

मुख़लिस, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 18 जून, 1932

प्रिय बनारसीदास जी, वंदे।

लीजिए फ़रमाइश की तामील कर रहा हूँ। जो कुछ याद आया लिखा। उस वक्त जानता कि यह लेख लिखना पड़ेगा तो शर्मा जी का एक-एक वाक्य नोट कर लेता।

'हंस' का स्वदेशांक निकलने जा रहा है। पत्र सेवा में पहुँचेगा। अब की तो निराश न कीजिएगा।

भवदीय, धनपत राय।

सरस्वती प्रेस, काशी, 27 जून 1932

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। पहले इन दोनों किताबों, 'पर्दए मजाज़' और 'बेवा' का रिव्यू

तो करा दीजिए। एक इश्तिहार तो वही है, दूसरा यह भेज रहा हूँ। 'ज़माना' में रीडिंग मैटर के नीचे किसी गोशे में रखवा दीजिए। 'पर्दए मजाज़' पर तो मैं आपकी राय का मुश्ताक़[1] हूँ। इसे मैंने बहुत मेहनत से लिखा था। आप इसे एक बार सरसरी तौर पर पढ़ तो जाएँ। मगर शायद आपको फुर्सत न मिलेगी।

आप किन जमाअतों के लिए उर्दू रीडरें लिख रहे हैं। पाँचवीं, छठवीं, सातवीं के लिए या आठवीं, नवीं, दसवीं के लिए। मुसन्नफ़ीन[2] के मुताल्लिक़ नोट लिखने में एक दुश्वारी यह पेश आती है कि अकसर सबक़ रिसालों से लिये जाते हैं और रिसालों में बसा औक़ात[3] गुमनाम अहले क़लम[4] आ जाते हैं, जिनके तर्ज़े तहरीर[5] या खुसूसियात पर कोई राय क़ायम नहीं की जा सकती। न उनकी तसानीफ़ ही हैं जिन पर कुछ लिखा जाए। अगर यह सोचिए कि मुस्तनद[6] लोगों के मज़ामीन ही लिये जाएँ तो करीकुलम में जो शर्तें इन्तख़ाब[7] के मुताल्लिक़ आयद की गई हैं उनकी पाबन्दी नहीं हो पाती। अहले क़लम तो ख़ास-ख़ास मौजू पर मज़ामीन नहीं लिखते। पाँचवीं, छठवीं और सातवीं में तो मुझे यही दिक़्क़त पेश आई। कोशिश की है कि बड़े-बड़े नामों से ही इन्तख़ाब किया जाए। फिर भी वे-तसनीफ़ नाम आ ही गए हैं। इन पर भी कुछ न कुछ दो चार लाइन लिख ही दिया जायगा।

अब रह गया सवालात के मुताल्लिक़—हिदायतोंवाली तहरीर में इन पर भी तफ़सील इशारे मौजूद हैं। ज़्यादा इत्मीनान के लिए क्राइटोरिया देख लीजिए। मिस्टर फड़के, लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी और अयोध्यानाथ तिवारी बग़ैरा ने किताबें तालीफ़[8] की हैं। उनमें किसी से मिलकर तै कर लीजिए। इन लोगों की किताबों में सवालात बहुत अच्छे हैं। मतबूआ उर्दू किताबों में आपको अच्छे सवालात न मिलेंगे क्योंकि ज़्यादातर लोगों ने तुलबा[9] से मज़ामीन इन्तख़ाब कराके नाम डाल दिये हैं। हाँ अफ़सर का नया इन्तख़ाब अच्छा होगा। हर एक लिहाज़ से। नफ़े-नुकसान की बात मैंने यूँ लिखी थी कि अगर इन किताबों के लिए आपको यकमुश्त रक़म मिल गई है तो ख़ैर, वर्ना रायल्टी मुक़र्रर है। मगर रायल्टी किताबों की बिक्री ही पर तो मिलेगी। अगर दस किताबें एक साथ मंजूर हुई तो एक आदमी के हिस्से में पाँच ही ज़िले तो आए। उनमें उर्दू लड़कों की तादाद कितनी है। मगर पाँच ज़िले मिल जाएं तो फिर भी कुछ आमदनी हो सकती है। एक ही दो ज़िले मिलकर रह गए तो अलबत्ता नुकसान हो जाता है। मालूम नहीं आप किसके लिए लिख रहे हैं। आपका ज़ाती असर यक़ीनन किताबों की मंजूरी और इशाअत[10] में मुआबिन होगा, इसमें शक नहीं।

मेरा मुआमला शायद अड़ा जा रहा है। ताल्लुकेदार प्रेस फ़ाक़ामस्त प्रेस है। उमानाथ बली साहब नाम के ताल्लुक़ेदार हैं। प्रेस के पास असासा[11] कुछ नहीं। अभी तक किताबों की छपाई शुरू नहीं हुई। मुसन्नफ़ीन में दो साहब इलाहाबाद म्योर कालिज के हैं। एक साहब तो मंसूरी में तशरीफ़ रखते हैं, दूसरे साहब रायपुर में या नरसिंहपुर में, तीसरा मैं हूँ। ख़ैर। चूँकि मैं सबसे ज़्यादा ग़रज़मंद हूँ इसलिए मैंने प्रूफ़ वग़ैरा देखने का जिम्मा ले लिया था। मगर अभी तक तबाअत[12] शुरू नहीं हुई। जुलाई में तीनों किताबें तैयार हो जाएंगी, मुझे इसमें शुबहा है।

नाटकों के मुताल्लिक़ मुझे कुछ लिखते डर लगता है। कहीं आप यह न समझें

कितना बे-सबरा आदमी है। लेकिन जब हरप्रसाद साहब की याददिहानी आ जाती है तो मजबूर हो जाता हूँ। इस वक़्त उन्हें सौ रुपये लाख रुपये के बराबर हैं। मेरे लिए भी सौ तो सौ के बराबर नहीं सही, आपके लिए भी ग़ालिबन् सौ पचास के बराबर न होंगे। खुदा करे आपकी रीडरें ख़त्म हों और आप इधर मुतवज्जे[13] हों। कहाँ तक वायदा करूँ।

'हंस' का ख़ास नम्बर निकालने का इरादा है। लेकिन ज़मानत का मसला है। आर्डीनेंस का इआदा[14] होगा और हमारे हाथ-पाँव फिर बंध जायेंगे। देखिए चे मी शवद[15]।

बाल-बच्चे अच्छी तरह हैं। क्या बाबू बिशन नरायन मुस्तिक़ल तौर पर नैनीताल चले गए हैं ?

मुखलिस, धनपत राय।

1. इच्छुक, 2. लेखकों, 3. बहुधा, 4. लेखक, 5. लेखन-शैली, 6. प्रामाणिक; जाने-माने, 7. चुनाव, 8. बनायी हैं, 9. विद्यार्थियों, 10. प्रचार-प्रसार, 11. पूँजी, 12. छपाई, 13. ध्यान दें, 14. पुनरावृत्ति, 15. क्या होता है।



सेन्ट्रल जेल, लाहौर, 16 जुलाई, 1932

बाबू जी,

आपका पत्र मुल्तान में मिला था। ख़्याल था कि जवाब दूँ तो कहानी के साथ दूँ। कहानी जो शुरू की थी, शुरू करते न करते छूट गई। और जब आपका पत्र आया, तब उन कुछ लिखे पन्नों का भी पता न चला। दूसरी कहानी या वही कहानी दूसरी बार लिखने का फिर न मन हुआ न मौक़ा हुआ। यह भी ध्यान हुआ कि नया आर्डिनेंस लग गया है, और अब आपका विशेषांक क्या निकलेगा। क्या विशेषांक निकल रहा है ? और क्या उसमें कुछ देर है ? सूचना मिली, और अंक निकलता हुआ और उसके निकलने और आपके पत्र में काफ़ी से कम वक़्त भी हुआ तो भी यहाँ से कहानी अवश्य भेजूँगा। यहाँ मुल्तान जैसा जमघट नहीं है।

13 ता. को मैं यहाँ आया। राजनैतिक कैदियों को, रिहाई की तिथि निकट आते ही यहाँ भेज देते हैं, मुल्तान में रिहा नहीं करते। यों मेरी तिथि अट्ठारह है पर जुर्माने का और डेढ़ महीना यहीं काटना होगा। सामान कुर्क करके, जुर्माना वसूल कर लिया जाय तो बात दूसरी पर इसकी आशा कम है।

आपका 'कर्मभूमि' कितना हो गया ? जल्दी देखने की उत्सुकता है। आपको जानने वाले हर जगह मिल जाते हैं। पर कृतियों से, दूर-दूर से ऐसा जानते हैं कि यथार्थ ही आपको जानने वाले किसी को सामने पाकर उन्हें हर्षमय विस्मय होता है। तब आपके प्रति उनके आदर भाव का कुछ प्रतिबिम्बित अंश अनायास उस जानहार को भी पाना होता है। इस पर उसे गर्व भी होता है, लज्जा भी। मुफ्त आदर क्या बुरा ? मुफ़्त है, इसलिए क्यों अच्छा नहीं ? पर, मुफ़्त है इसलिए वह कठिन है, भारी लगता है। ऐसे ही एक महाशय अपना लिफ़ाफ़ा और कागज़ पेश करके हठात् मुझसे आपको यह पत्र लिखवा रहे हैं। नवयुवक हैं, बम्ब केस में हैं और आपको जानने के मेरे सौभाग्य के बधाई-स्वरूप मेरे प्रति अत्यन्त सेवोद्यत हो गये हैं। मुझे लिखते हुए अपने पत्र में आप उन्हें अवश्य याद करें। जेल में लिफ़ाफ़ा कीमती चीज़ है और मैं आपको लिख पढ़ रहा हूँ, इसका

तमाम श्रेय उनको है।

अब आप गाँव में रहते हैं, या शहर में, मकान ले लिया है ? दोनों बच्चे कहाँ हैं ? शहर में ही रहना होता होगा उन्हें तो। मगर 'हंस' बंद है तो क्या आप नया कुछ नहीं लिख रहे ?

'मेरी मेग्डलीन' का छपना आरम्भ हो गया ? और मैंने 'स्पर्द्धा' कहानी ठीक करके राय साहब को भिजवायी थी, क्योंकि उन्होंने मुझसे एक बार सानुरोध कहा था। क्या वह उन्हें मिल गयी ? पुछवाकर अवश्य सूचित कीजिएगा। क्योंकि इस काम के लिए एक आदमी की तत्परता के विश्वास पर निर्भर करना हुआ था।

और कुशल समाचार और साहित्य समाचार लिखिएगा। श्री कृपाराम मिश्र की जिस किताब का जिक्र किया था, वह भेज सकें तो अवश्य भेजें। विशेष सब ठीक है।

आपका, जैनेन्द्र।



Daryabad Estate, Barabanki (Oudh), 16-7-1932

My dear Premchandji,

I have seen your two letters last evening addressed to my brother Rai Somnath Bali. The whole position is this. Mr. Ram Kumar Varma has not yet sent one part of the book. Pandit Shree Narain has not yet given the specifications of pitcutres of the 3rd part of the book. The title page design etc. is also not yet settled. The question of types is also yet to be settled with the government. The time is so short that if extention is not given, it will be impossible to print the books in time. I am also tired of the tactics of my Convenor, who wants to do everything himself; and feels shy even to disclose anything to me. He has been quarrelling with my manager on every point. I, therefore, thought that I may also in future keep all my plans secret to him till the books are printed and submitted. He does not look like a servant and he expects me to be always ready to carry out his orders. The attitude of Mr. Ram Kumar Varma was very painful to me and I am sure he has taken this attitude at the instance of Saxena.

Mr. Harrof is coming to Lucknow on 18th and I shall go to see him as I have made an appointment with him. I have 90 p.c. hopes that he will give me one month's extenion of time and if no I shall advise you to start the printing of 5th book. Yours will be printed here by that time. My press will print one more book and third one will be given to Shukla Press, but if the extention is not given, it is impossible to print the entire set. I do not know when Mr. Varma will send the one part which is still with him. In case extension is not given I will submit your book alone. I am exceedingly sorry for all this and no one will be more sad than I, if the entire set is not

submitted. I shall write to you in detail again. I had seen Mr. Harrof on 18th.

Yours Sincerely, Umanath Bali.



19 जुलाई, 1932

आदरणीय प्रेमचंद जी,

मैं आपके उत्तर की प्रतीक्षा में बैठा हूँ। शेयरहोल्डर वाला प्लान ठीक नहीं है। 'जागरण' के सम्बन्ध में अपने विचारों को मैं आपके सम्मुख प्रकट कर चुका हूँ। मैं उसी पर अटल हूँ।

मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि आप उसे प्रकाशित करें। यदि आप पूर्ण रूप से निश्चय कर चुके हों तो कृपया निश्चित उत्तर दीजिए। साथ ही यह भी लिखिए कि आप अधिक से अधिक किस तारीख तक निकालेंगे। इसकी सूचना पत्र में दे देना अत्यन्त आवश्यक है।

मेरा टर्म केवल इतना ही होगा कि पत्र जब तक चाहें आप निकालते रहें। उसकी हानि-लाभ से मेरा कोई सम्बन्ध न होगा। लेकिन जब किसी कारण से आप स्वयं उसे बन्द करना चाहेंगे (भगवान न करे कभी ऐसा हो) तो मुझे अधिकार होगा कि मैं उसके प्रकाशन की व्यवस्था करूँ।

मैं समझता हूँ इसमें आपको कोई आपत्ति नहीं होगी। साथ ही जितने ग्राहक हैं उनके पास पत्र भेजते रहेंगे। विज्ञापन स्टिच करने की कभी आवश्यकता मुझे होगी तो मैं छपाकर दे दूँगा।

कृपा कर आज ही सूचना मुझे दीजिए। आपके उत्तर पर ही 'जागरण' के जीवन-मरण का निर्णय होगा और हर हालत में पत्र में कल अंतिम सूचना प्रकाशित हो जायगी।

मैं उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ।

विनोदशंकर व्यास।

सरस्वती प्रेस, काशी, 19 जुलाई, 1932

प्रिय विनोद जी,

पत्र मिला। संघ का विचार मुझे भी छोड़ना पड़ेगा। एक प्रकार से मैंने उसे छोड़ ही दिया है। मैं अभी यह निश्चित रूप से तो नहीं कह सकता कि किस तारीख से निकाल सकूँगा क्योंकि 'हंस' निकालना है और दो एक परमावश्यक काम और हैं, पर यह तो मेरा ही फ़ायदा है कि जितनी जल्द हो सके उसे शुरू करूँ। आपकी उस शर्त से भी मुझे कोई आपत्ति नहीं कि यदि मैं पत्र बन्द करूँ तो आप उसे निकालें। मैं समझता हूँ 15 अगस्त से पहले पत्र निकालना साध्य होगा लेकिन आप अपने नोट में कोई तिथि न देकर केवल इतना लिख दें कि 'साप्ताहिक शीघ्र ही निकलेगा' तो अच्छा हो। और सब बातें तो हो ही चुकी हैं।

भवदीय, धनपत राय।



सत्यचरण 'सत्य', एम. ए. अलीनगर, गोरखपुर, 25-7-1932

पूज्यवर मुंशी जी,

चरणों में सादर नमस्ते। आपका कृपा-पत्र मिला। अनेक धन्यवाद। पत्र-प्राप्ति के समय मैं खाट पर पड़ा था। इसीलिए पत्रोत्तर में विलम्ब हुआ, आशा है क्षमा करेंगे। मेरे 'माधुरी' के लेखों को देखकर जिस प्रकार आपने मुझे प्रोत्साहन दिया है, उसके लिए मैं चिर कृतज्ञ हूँ। वस्तुतः गम्भीर साहित्यिक लेखों का हिन्दी में प्रायः अभाव-सा ही है। अंग्रेज़ी में कालयिल, इमर्सन और रस्किन की रचनाओं को देखकर हृदय में यह सकरुण भाव उठता है कि हिन्दी में उस जोड़ के गद्य-ग्रन्थों का आविर्भाव कब होगा ? इसी विचार से हिन्दी के गद्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ हूँ। देखें, कहाँ तक शक्ति और कीर्ति का सहयोग मिलता है।

आपने जो लेख-सूची भेजी थी, वह प्रमादवश गुम हो गयी। कृपया दूसरी भेजें। यदि 'स्वदेशांक' के प्रकाशन में विलम्ब हो और यथेष्ट समय हो, तो मैं भी अपनी श्रद्धांजलि आपकी सेवा में भेंट करूँ। स्थानीय डी. ए. वी. स्कूल का हेडमास्टर होने के कारण प्रबन्ध-कर्म विशेष रहता है। जुलाई मास में तो दम लेने का भी अवकाश नहीं मिलता। फिर भी आपकी आज्ञा मिलने पर मैं उसका सहर्ष पालन करूँगा।

आपका कृपाकांक्षी, सत्यचरण।



The 'Guna Sundari'
Ladies Popular Illustrated Magazine, (In Gujarati)
Editor : J.N. Varma

105, Girgaum,
Back Road,
Bombay
26th July, 1932

Sriyut Prem Chand ji
C/o The Sarasvati Press, 195/235, Benares.

Re-sale of 'Gaban'

Dear Sir,

In response to our letter dated 30th June, 1931 and the terms contained therein you were kind enough to give us your permission to translate the same for our magazine serially and then to publish it in book form.

The first 26 chapters of the book are now complete and we have arranged to publish it in book form as first part. The cover picture for the same is prepared by the well-known artist Mr. Kanu Desei. It will be in two colours.

While this is going on we have tried to negotiate with the book-sellers for the sale of the entire edition of the book, if possible. So far the best offer we have received is that the book-seller will give us Rs. 300/- nett for each part, as soon as we hand over the copies of each part. He will pay the press bill of each part direct to the Press. He also wants that each part should be priced at Rs. 1-8-0. The press-bill will come to nearly Rs. 650/-. Our original calculation was that it will come to about Rs. 400/-, but the number of forms

(25 for each part, i.e., 400 pages for each) having increased it will be up to Rs. 650/- or there about. Our original calculation was like this :

2000 copies (1000 of each part)	Rs. An. P.
@ Rs. 1/4/0	2500-0-0
Less 35% Book-sellers Commission	875-0-0
	1625-0-0
Less press-bill	400-0-0
	1225-0-0

Rs. 800/- for yourself

Rs. 425/- for translation

Now that the press-bill has increased the calculation as revised will be like this-

2000 copies (1000 of each part)	Rs. An.P.
@ Rs. 1/0/0	2500-0-0
Less 35% Book-sellers Commision	875-0-0
	1625-0-0
Less press-bill	650-0-0
	950-0-0

Under the circumstances the shares of yourself and the translator will be reduced to Rs. 625/- and Rs. 325/- respectively.

On the other hand, your original demand was 15% royalty on the price of each copy sold. At that rate your share will come to Rs. 375/- if the price is kept Rs. 1/4/0 or Rs. 450/- if it is kept Rs. 1/8/0 as required by the book-seller in question.

We are giving all these calculations to show how much can be realised out of the sale of the book under these two different systems. If we do not give the book-seller the sole selling Agnecy for Rs. 300/- nett for each part then we must sell the copies retail at 35% to several book-sellers. The advantages as well as disadvantages of the two systems are apparent. By giving the sole selling Agency to one Bbok-seller, we realise the profits Rs. 200/- for yourself and Rs. 100/- for the translator (for each part i.e. Rs. 400/- for yourself and Rs. 200/- for the translator on the whole) within a definite time. We can get Rs. 300/- of the first part in September, 1932 and Rs. 300/- of the second part in September, 1933. That is the advantage of getting cash amount within a definite time. It is only Rs. 50/- less than what you originally

demanded by way of 15% royalty.

Now, according to the second system, when all the copies are sold to various book-sellers at the retail rate of 35%, we will be able to realise Rs. 950/- nett or there abouts. It is, however, difficult to say during what period of time these copies will be sold out. It might take about 3 to 4 years at least. So we must wait for 3 to 4 years if we wise to realise higher profits.

It the first system of giving sole selling agency apeals to you as favourable, if you prefer to have cash within a difinite time, we may accept the offer of the book-seller. If, however, you will like to wait and realise higher profits without carring for the indefinite lapse of time, we have no objection in adopting that system.

Plese, therefore, let us know what you prefer. We have asked the book-seller to wait for a few days for our final reply, which depends upon your choice. So kindly let us know your choice if possible by return post or soon there-after.

Yours faithfully, J.N. Verma, Manager.

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 28 जुलाई, 1932

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। शुक्र है आपको इस इंतख़ाब से फ़ुर्सत तो मिली। देखिए कितने सेट होते हैं। मेरा हिन्दी सेट तो अलक़त (कट गया) हो गया। ताल्लुकदार प्रेस किताबों की छपाई का इंतज़ाम न कर सका। कारकुनों (काम करने वालों) में कुछ ऐसी बदमज़गियाँ पैदा हो गयीं कि राय साहब की कुछ न चली और उनका नुकसान भी हुआ। कनवैसर वग़ैरह पहले ही से रख दिये गये थे। एक हज़ार का टाइप भी आ गया था। मगर सब धरा रह गया। साझे की खेती थी, मुअल्लिफ़ों (संकलन-कर्ताओं) में तीन साहब थे, एक बन्दा भी था। और असहाब हवा खाने पहाड़ों पर तशरीफ़ ले गये, मैं रह गया। मैंने भी प्रेस की हालत देखी तो चुपका हो रहा। उर्दू सेट तो मैंने लिया ही नहीं। अपना सेट मुझे देखने को दे दीजिएगा। हाँ और चूँकि अब आपको इस काम के लिए फ़ुर्सत हो गयी है नाटकों वाला मुआमला तो ख़त्म कर दीजिए। मुझे बार-बार याद दिलाते नागवार मालूम होता है। हंस का नंबर निकल रहा है। अब एक हफ़्तेवार निकालने भी जा रहा हूँ। ग़ालिबन 15 अगस्त से निकले। और तो कोई नयी बात नहीं।

आपका, धनपत राय।

●●

'HANS' Office,

Saraswati Press, Benares City, 9-8-32

The collector and Magistrate, Benares

Sir,

I humbly beg to make the following representation for your favourable

cosideration :

1. That I am the proprietor and Editor of a Hindi monthly magazine named 'Hans' issued from the Saraswati Press Benares. It is a social and literary magazine devoted particularly to light literature, occasionally discussing political developments in its columns.

2. That unfortunately one of its Editorial notes published in April 1932, has been objected to by the Government and a security of Rs. 1000/- has been demanded from me under the Press ordinance. Not being in a position to funish the security, I suspended the publication of the magazine in June.

3. That the said ordinance having expired on the 4th July 1932, a declaration was duly filed on the 12th July for the renewal of the magazine, but the permission to republish the magazine has been withhold and the same demand has been renewed in your order dated 2nd August 32.

4. That with the expiry of the first ordinance the demand of security demanded under the ordinance could not hold good, unless a fresh offence was committed. In that case the renewed ordinance should have been applied.

5. That the suspension of the magazine for one month and the delay in bringing out the July issue has already put me to a serious loss and the purpose of the Government to punish has been throughly served. We have also decided to eschew politics from our columns in future.

6. That the note objected to by the Government was written in a spirit of fair criticism and nothing was further from my mind than to set at defiance the authority of the Government or to create a hostile impression against it, violence being totally out of question.

That having given an undertaking in our declaration that politics would be totally eschewed in future, there is no justification, I humbly submit, for a renewal of the demand of security. I therefore respectfully request that the security be withdrawn for which I shall feel sincerely grateful.

I have the honour to be

Sir,

Your most obedient servant

Prem Chand



लाजपतराय एण्ड सन्स,

पब्लिशर एण्ड बुकसेलर, लाहौर, 10 अगस्त, 1932

श्रीयुत मुंशी जी, नमस्ते !

ख़त मिला। हालात से आगाही हुई। वाक़ई देर हो गयी है, लेकिन नामालूम, आपने

बातचीत तोड़कर मण्डल में सरियानन्द को यह लिखने में क्या मलामत समझी जो अपनी हमारी बाबत लिख दी। दरअस्ल इन दो माह में बहुत-कुछ इधर-उधर देता हूँ, सिर्फ़ ख़ानगी मामलात की वजह से। आपने किताब तो 'बेवा' छापी, मगर इस तरह कि जिस तरह बाज़ारी किताब होती है। लोग आपकी इस किताब को देखकर हैरान रह जाते हैं। 'ख़ाके-परवाना' की बाबत जो आपने लिखा, उसकी वजह यह थी कि वो किताब मेरे पास सर्दियों में आनी थी, यह आयी है गर्मियों में, इन दिनों में जब कि बहुत मन्दा होता है। आपकी हिन्दी कुतुब (पुस्तकों) का हिसाब–बबुआ का साहब, अर्जुन की पेशगी–सब रक़म और हिसाब सितम्बर के दरम्यान में मिल जावेगी। आप यह तो कहेंगे कि इतनी देर का वादा। दरअसल जो कुछ मैं लिख रहा हूँ बिल्कुल ठीक। यही उम्मीद कामिल (पूर्णतः) करता हूँ कि 'बेवा' और हिन्दी कुतुब का हिसाब चन्द दिनों में ही तय कर दूँगा। हमारे बाहरी जल्से शिमला-डलहौजी सितम्बर में शुरू होते हैं। तब से हमारा सीज़न शुरू हो जाता है। लिहाज़ा आप बिल्कुल किसी क़िस्म का ख़याल न करें।

कम्पनी का बाक़ी का हिस्सा भी बाद अज़ा (बाद में) अरसाल करेंगे, ताकि इस माह के आखिर में छपाई शुरू कर सकूँ। हिन्दी की कुतुब मँगा लूँगा। क्या बनारस में उर्दू की कुतुब की बिक्री हो सकेगी ? जवाब से याद फरमायेंगे।

खै़रअन्देश, सोमप्रकाश साहनी।



Rai Umanath Bali (Chairman) — Daryabad Estate
District-Board, Bara Banki — Bara Banki (Oudh), Dated 11-8-1932

My dear Premchand ji,

You must have known that your book has been submitted in time and I am doing what I can to get it approved. I have 99 p.c. hopes that it will be approved. I am so sorry that the other 3 books could not be submitted. Our friend Saxena is the chief cause for it and then your colleagues Messers Misra and Varma are partial causes. One year has been wasted for nothing. Any how, we have to look to the future.

I have written a strong letter to Pt. Shree Narain Pandey. He is very lazy and careless but he is very efficient. He is a perfect gentleman and a very good friend. He is my personal friend and I wish I may keep him engaged for he is such a good man that he will be cheated and mislead by others, if he is let to join others. He cannot be put absolutely incharge of anything, for in his laziness and carelessness he will spoil matters as he did this time but we may take out what he has in him and I am sure what he gives out will be appreciated by you, and it will be something useful too. As for Mr. Varma, I have no idea about him. I am told he is a good Hindi writer, but, not being a Hindi critic myself, I cannot say much about him. I have known him through Pt. Shree Narain, but I don't keep very high opinion about him. Then I don't think you need a Hindi scholar for you are yourself a very able and renowned scholar. I wish you may take the charge solely and I shall person-

ally take charge of printing and canvassing. I intend to get the other three books printed for next year. Now that all the approved books will be in your hands after a few months, you can go through them and improve your books. They will surely be approved next year.

I also want you to kindly write Hindi, Urdu and English Primers for vernacular schools. This work may be started and finished soon. Pandit Shree Narain too has got some ideas about them and you can take his help also. After sometime, when you will have dealings with Pt. Ji, you will know what stiff he is made of and you will yourself begin to like him. If you have any other ideas, please let me know.

I am glad to inform you that Mr. Saxena has secured his connection with my Press and there will now be no intrengues. Every thing will now be done somethly and efficiently. He has wasted more than 5000/- of mine for nothing. I have never come across a man like him. You can never know what his interntions are even if you talk to him for the whole day and for weeks together. He is a dangerous man to deal.

I shall try to meet you early next month as I intend to go to see my daughter who is a student in the Theosophical School.

I shall expect a reply to this.

Yours Sincerely, Uma Nath Bali

P.S.—If you know the members of the committee on the reviewers, please exert your influence also over them.

—Uma Nath.



सरस्वती प्रेस, काशी, 15 अगस्त, 1932

प्रिय जैनेन्द्र,

तुम्हारा पत्र कई दिन हुए मिला। मैं आशा कर रहा था देहली पहाड़ी धीरज से आ रहा होगा, पर आया लाहौर से। ख़ैर लाहौर मुल्तान से कुछ कम है। उससे कई दिन पहले मुल्तान मैंने एक पत्र भेजा था। शायद वह लौटकर आ गया हो। अच्छा मेरी गाथा सुनो। 'हंस' पर ज़मानत लगी। मैंने समझा था आर्डिनेंस के साथ ज़मानत भी समाप्त हो जायगी। पर नया आर्डिनेंस आ गया और उसी के साथ ज़मानत भी बहाल कर दी गई। जून और जुलाई का अंक हमने छापना शुरू कर दिया है। पर मैनेजर साहिब जब नया डिक्लेरेशन देने गये तो मजिस्ट्रेट ने पत्र जारी करने की आज्ञा न दी, ज़मानत माँगी। अब मैंने गवर्नमेंट को एक स्टेटमेंट लिखकर भेजा है। अगर ज़मानत उठ गई तो पत्रिका तुरन्त ही निकल जायगी। छप, कट, सिलकर तैयार रखी है। अगर आज्ञा न दी तो समस्या टेढ़ी हो जायगी। मेरे पास न रुपये हैं, न प्रामेंसरी नोट, न सिक्योरिटी। किसी से कर्ज़ लेना नहीं चाहता। यह शुरू साल है, चार पाँच सौ वी. पी. जाते, कुछ रुपये हाथ आते। लेकिन वह नहीं होना है।

इस बीच मैंने 'जागरण' को ले लिया है। 'जागरण' के बारह अंक निकले लेकिन

ग्राहक संख्या दो सौ से आगे न बढ़ी। विज्ञापन तो व्यास जी ने बहुत किया लेकिन किसी वजह से पत्र न चला। उन्हें उस पर लगभग पन्द्रह सौ का घाटा रहा। वह अब बंद करने जा रहे थे। मुझसे बोले, यदि आप इसे निकालना चाहें तो निकालें, मैंने उसे ले लिया। साप्ताहिक रूप में निकालने का निश्चय कर लिया है। पहला अंक जन्माष्टमी से निकलेगा। तुम्हारा इरादा भी एक साप्ताहिक निकालने का था। यह तुम्हारे लिए ही सामान है। मैं जब तक इसे चलाता हूँ फिर यह तुम्हारी चीज़ है। धन का अभाव है। 'हंस' में कई हज़ार का घाटा उठा चुका हूँ। लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। कोशिश कर रहा हूँ कि सर्वसाधारण के अनुकूल पत्र हो। इसमें भी हज़ारों का घाटा ही होगा। पर करूँ क्या। यहाँ तो जीवन ही एक लम्बा घाटा है। यह कुछ चल जायगा तो प्रेस के लिए काम की कमी की शिकायत न रहेगी। अभी तो मुझे ही पिसना पड़ेगा, लेकिन आमदनी होने पर सम्पादक रख लूँगा। अपना काम केवल एडिटोरियल लिखना होगा।

तुम्हारी कहानी 'स्पर्द्धा छप रही है। राय साहिब छपवा रहे हैं। 'मैग्डेलीन' भी छपवाने वाले हैं।

'कर्मभूमि' के तीस फ़ार्म छप चुके हैं। अभी करीब छः फ़ार्म बाक़ी हैं। 'हंस' में हाथ लगा दिया। प्रेस को अवकाश न मिला। इसलिए अब तक पुस्तक तैयार न हुई। अब उसे जल्द समाप्त करता हूँ। सबसे पहले तुम्हारे पास भेजी जायगी और तुम्हारे ममताशून्य फ़ैसले पर मेरी कामयाबी या नाकामी का निर्णय है। दो कहानियों के छोटे-छोटे संग्रह और छापे हैं। पं. कृपानाथ मिश्र की 'प्यास' भेज रहा हूँ। संभव हो तो इसकी आलोचना करना। अब मैं शहर में रह रहा हूँ। लड़के पढ़ने जाते हैं। मैं भी प्रेस में घड़ी-आध घड़ी के लिए चला आता हूँ।

जिन भाई का आपने अपने पत्र में ज़िक्र किया है उन्हें मेरा बड़े प्रेम से बंदे कहिएगा। मेरे हृदय में उनकी सच्ची शुभकामना है। उनका नाम न लिखा। मैं अपना नया उपन्यास उनके पास भेजूँगा।

अभी भी आनन्दभिक्षु सरस्वती का पत्र आया। उन्हें मध्यप्रान्त और ग्वालियर की साहित्य सभाओं की ओर से 'भावना' पर पुरस्कार मिले हैं। 'भावना' है भी तो अच्छी चीज़।

इधर पं. श्रीराम शर्मा का 'शिकार', स्वामी सत्यदेव जी की कहानियों का संग्रह, डा. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'षोडशी' आदि पुस्तकें निकली हैं। बा. वृन्दावनलाल जी का 'कुंडलीचक्र' मैंने बड़े शौक से पढ़ा। लेकिन पढ़कर मन फीका हो गया। कहीं गर्मी नहीं मिली, न चुटकी, न खटक। शायद मुझमें भावशून्यता का दोष है।

और तो सब कुशल है। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुम सुखी रहो।

तुम्हारा सच्चा भाई, धनपत राय।



लाजपतराय एण्ड संस, लाहौर, 24-9-1932

श्रीमान मुंशीजी, नमस्ते !

मैं मोरखा 22-9-32 को यहाँ पहुँचा हूँ। शिमला से देहली वग़ैरा गया था। आपकी तीन चीज़ों का हिसाब इर्साल है। 'ग़बन' का अक्टूबर के मत्बसत (लगभग) एक सौ रुपया इर्साल-ए-ख़िदमत कर दूँगा। अभी तक 'ग़बन' का बक़ाइया हिस्सा नहीं मिला। जितना

आपने भेजा था, आज ख़त्म होकर आ गया है और आज ही आया है। मुब्लिग सौ रुपये का चैक मोरखा 1-10-32 का इर्साले-ख़िदमत है।

		रु.	आ.	पा.
'बेवा'	50 कापी	30	0	0
रामचर्चा	150 कापी	26	4	0
हिन्दी कुतुब		43	12	0
	रु.	100		

मत्बसत अक्टूबर सौ रुपया और भेज दूँगा, बराए-मेहरबानी बक़इया हिस्सा ज़रूर जल्दी ख़त देखते ही भेज दें, और अपने हिन्दी कुतुब की एक मुकम्मल फ़ेहरिस्त भी। क्या आप अपनी तमाम तस्नीफ़कर्दा कुतुब दो-दो अपने स्टॉक में रखना चाहते हैं ? मैं आपकी सब कुतुब सप्लाई कर सकता हूँ। अव्वल तो बनारस में भी फ़रोख़्त हो सकती हैं। दोयम आपके इश्तहार निकलते रहते हैं। रिसालों में, अख़बार में वहाँ इनका इश्तहार देंगे तो यक़ीनन आपको ऑर्डर आवेंगे।

आपका रिसाला अख़बार पंजाब भर में लाइब्रेरियों वग़ैरा में पहुँचता है। कमीशन सेल में फिर भी दे सकता हूँ, इसमें आपका कोई हर्ज़ न होगा।

जवाब से ज़रूर याद फ़रमा देंगे।

सोमप्रकाश।

●●

'हंस', सरस्वती प्रेस,
काशी, 28-9-1932

My dear Nand Kishore ji,

You promised to settle my royalty account by the end of September. As the book season has now closed kindly clear 'Sapta Suman' and 'Prem Kunja' accounts within this month. This is my personal matter and has nothing to do with Press account.

But it would be convenient to renew the press acctt. as well as it is standing since the last six or seven years.

My royalty acctt. should mention the No. of copies printed, sold just in the usual form. For other publishers I have dixed the usual 25% for–(शेष अंश अप्राप्य है–गोयनका)

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 3 अक्टूबर, 1932

प्रिय बनारसीदास जी,

बनारस से बाहर होने के कारण आपके ख़तों का जवाब देने में मुझे देर हो गयी। आप चाहते हैं कि मैं आपके लिए एक कहानी लिखूँ। मैं इन दिनों ख़ुराफ़ात में बुरी तरह फँसा हुआ हूँ। अकेले दम 'जागरण' निकाल रहा हूँ। मेरा सारा वक़्त उसी में चला जाता है। तो भी मैं एक कहानी लिखने की कोशिश करूँगा।

मैंने निराला का लेख नहीं पढ़ा। मुझे लगता है कि आप इन छोटी-छोटी बातों को लेकर ख़ामख़ाह इतना परेशान होते हैं। लोग व्यर्थ ही हमको वाद-विवाद में खींचने की कोशिश करते हैं। अपनी तरफ़ से उन्हें न्योता क्यों दिया जाय ?

आपको 'कंकाल' पसन्द नहीं आया। इसका मुझे खेद है। मैं बड़ी उदार रुचि का आदमी हूँ और आलोचना-बुद्धि मुझमें बहुत कम है। 'कंकाल' में मुझको सच्चा आनन्द मिला। और मैं पुस्तक से भी अधिक उस आदमी का प्रशंसक हूँ ! वह बहुत खुले हुए और स्पष्टवादी आदमी हैं।

अपने कहानी-अंक के लिए आप हिन्दी के जाने-माने लेखकों से चीज़ें माँगिये, जैसे जैनेन्द्र, सुदर्शन, कौशिक, प्रसाद, द्विज, हिन्दू होस्टल प्रयाग के वीरेश्वर सिंह। इनके अलावा आप चाहें तो गुजराती, बँगला, उर्दू और मराठी कहानीकारों को भी अपनी-अपनी भाषा में एक कहानी लिखने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं। फिर उसमें योरप और अमेरिका के आधुनिक कहानीकारों के अनुवाद होने चाहिए। कहानी के मूल सिद्धांतों पर एक लेख भी बेज़ा न होगा।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका, धनपत राय।



24 अक्तूबर, 1932

प्रिय वीरेश्वरसिंह जी,

कार्ड मिला। चाँद में आपकी कहानी पढ़कर बड़ा आनन्द आया। कई जगह तो मन मुग्ध हो गया।

आपकी कहानी मिल गयी है। अब की अर्थात् तीन नवम्बर के अंक में अवश्य जायगी और अंक भी सेवा में पहुंचेगा। मैं आपकी पढ़ाई में विघ्न तो नहीं डालना चाहता लेकिन कभी-कभी कुछ लिखा करें तो एहसान समझूँगा।

सप्रेम, प्रेमचंद।



इलाहाबाद, 25 अक्तूबर 1932

भाईजान,

तसलीम। परसों यहाँ आया और मालूम हुआ कि आप भी एक दिन पहले तशरीफ़ लाए थे। क्या कहूँ, मुलाक़ात न हुई। बहुत-सी बातें करनी थीं। यहाँ से बनारस आप तशरीफ़ ले जाते हैं, मगर ग़रीबखाने की तरफ़ मुखातिब नहीं होते। मैं कानपुर आऊँ और आपसे न मिलूं, यह मुहाल है। आप आते हैं और मुझे ख़बर तक नहीं होती ! इसे क्या समझूँ।

'बेवा' का कोई रिव्यू 'ज़माना' में न छपा। 'पर्दए मजाज़' का भी यही हाल हुआ। आपका मुझमें इतना कम इन्ट्रेस्ट क्यों हो गया है ? क्या 'पर्दए मजाज़' आपने पढ़ा ? आपके किसी दोस्त ने पढ़ा ? या इस क़दर लग्व[1] है कि आपने पढ़ने की तकलीफ़ गवारा नहीं की ? लिटरेरी काम में सिवाय अहबाब की क़द्रदानी के और क्या रखा है। पब्लिशर भी किताब क्यों शाया करे जब कोई उसका पुरसाने हाल न हो। और जब 'ज़माना' जैसा

रिसाला इस क़दर बेएतनाई[2] करे तो दूसरों पर मेरा क्या हक़ है और क्या दावा है ?

'बा-कमालों के दर्शन' यहाँ लालाराम नारायणलाल बुकसेलर ने शाया किया है। यह आपको मालूम है। इसमें इतनी सवानेह-उमरियां हैं–

(1) राणा प्रताप (2) टोडरमल (3) मानसिंह (4) अकबर (5) बदरुद्दीन तैयब जी (6) सर सैयद अहमद (7) वहीदुद्दीन सलीम (8) शरर (9) गैरीवाल्डी (10) रणजीतसिंह (11) विवेकानन्द।

पहले इस मजमूए में मुसलमान मशाहीर[3] न थे। शायद इसी बिना पर कमेटी ने इस पर इल्तफ़ात[4] न किया था। अब वह कमी पूरी कर दी गई है। अकबर तो मैंने अजीज़ मिर्ज़ा से लिया है। वहीदुद्दीन सलीम और शरर भी 'ज़माना' के मज़ामीन से मुक़तबिस[5] हैं। मेरे ख़याल में अब यह स्कूल के क़ाबिल है। अबकी यह किताब फिर पेश की जायगी। मैं आपसे उम्मीद करूँगा कि इसके हक़ में कलमए ख़ैर[6] कहकर इसे दाख़िले इन्तख़ाब करा दें। इसके लिए शुक्रिया न अदा करूँगा।

'हंस' की ज़मानत दाखिल कर रहा हूँ। एक सूरत निकल आई हैं। 'जागरण' हफ़्तेवार में खूब चपत पड़ रही है। मगर हिम्मत किये निकाले जाता हूँ। देखिए ऊँट किस करवट बैठता है।

और तो सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

1. बेकार, रद्दी, 2. उपेक्षा, 3. महान् व्यक्ति, 4. कृपा, 5. उद्धृत, 6. अच्छी बात, भलाई की बात।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 26 अक्तूबर, 1932

भाईजान,

तसलीम। उम्मीद है कि आप खुश हैं। लड़कों से वहाँ के हालात मालूम हुए थे। उन्हें आपकी मेहमानबाज़ी से जो आसाइश (आराम) पहुंची उसके लिए शुक्रिया।

नाटकों के मुताल्लिक़ कुछ पूछना न चाहता था लेकिन जब बाबू हरप्रसाद साहब की याददिहानी आ जाती है तो मजबूर हो जाता हूँ। अब तो पूरे डेढ़ साल हो गये। कुछ उनके छपने की उम्मीद है या नहीं। मैं चाहता हूँ अब यह क़िस्सा तमाम हो जाये। मुझे हरप्रसाद साहब से तो नदामत हुई है वह बहुत दिन याद रहेगी। मैं समझता हूँ एकेडेमी अब इन ड्रामों को शाया नहीं करना चाहती और आप महज़ शर्मिन्दगी की वजह से उन्हें रखे हुए हैं। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि मैं उन्हें दो माह के अन्दर शाया करा लूँगा। या खुद या किसी पब्लिशर से। इसलिए आप बराहे करम मुसव्वदा वापस कर दें। मैं आपका बहुत ममनून होऊँगा।

क्या आप बतला सकते हैं 'बेवा' की कितनी जिल्दें निकल गयी होंगी।

आपका, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 4 नवम्बर, 1932

प्रिय रामकिशोर जी,

मैं अभी प्रयाग गया तो यह सुनकर घबड़ाहट हुई कि तुम बीमार हो गये हो। धुन्नू

की माँ ने कहा कि दुलहिन को बुला भेजना। मुझे बड़ी जल्दी थी। सोचा था मन्ना को भेज दूँगा पर यह समाचार पाकर न भेजा। अब कृपया लिखो कैसी तबीयत है। दुलहिन के स्वास्थ्य का क्या ढंग है ?

हम लोग कुशल से हैं। बेटी देवरी से दिसंबर में आवेगी। शेष कुशल।

सप्रेम, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 14 नवम्बर, 1932

प्रिय बनारसीदास जी, नमस्ते।

कृपापत्र के लिए धन्यवाद। मैंने सदा आपको अपना सबसे सच्चा दोस्त समझा है और आप मेरे साहित्यिक सलाहकारों में से एक हैं जिसकी आलोचना की मैं सबसे ज़्यादा क़दर करता हूँ, क्योंकि वह सहानुभूतिपूर्ण होती है और न्याय-बुद्धि पर आधारित होती है। आलोचकों का मूल्यांकन, जैसा कि आप खुद जानते हैं, लेखकों के लिए बहुत संतोष की चीज़ नहीं होती और वह तो सजग मित्र ही हैं, जिनको कि वह सदा अपनी आँखों के सामने रखता है। आपने जो-जो कुछ मेरे लिए किया है, उन सबका हवाला देने की तकलीफ़ आपने नाहक़ की। मैं उन चीज़ों को सारी ज़िन्दगी नहीं भूल सकता। जब कोई मौक़ा आया है, मैं आपकी तरफ़ से हमेशा लड़ा हूँ। और मैं जिस रूप में आपको देखता हूँ उस रूप में मैंने आपको पेश करने की कोशिश की है। मैं इस बात से इन्कार नहीं करता कि साहित्यिकों में कुछ ऐसे लोग हैं, जो आपकी अवहेलना करते हैं और आपकी सच्ची लगन के लिए आपको अपना उचित प्राप्य नहीं देते। इतना ही नहीं, कुछ लोग उससे भी बहुत आगे चले जाते हैं। मगर किसकी बुराई करने वाले लोग नहीं हैं। खुद मेरे चारों तरफ बुरा-भला कहने वाले लोग जमा हैं जो मुझ पर चोट करने का एक भी मौक़ा हाथ से न जाने देंगे। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे साहित्यिक कर्मियों में विचारों की उदारता और सौहार्द्र का भाव नहीं है। एक श्रेणी ऐसे लोगों की है जिन्हें किसी की कीर्ति का ध्वंस करने में आनन्द आता है, जिस कीर्ति को बनाने में दूसरे आदमी को बरसों लगे हैं। मगर उससे क्या ? हमें अपना अन्तःकरण स्वच्छ रखना चाहिए। और वही असली चीज़ है। ऐसा लगता है कि आप मज़ाक में की गयी छींटेकशी को ज़रा ज़्यादा महत्त्व देते हैं। मैं मानता हूँ कि मैंने ढुंढिराज का लेख नहीं पढ़ा और न ख़ैराती ख़ाँ का। आपको पता ही होगा ख़ैराती ख़ाँ ने 'आज' में मेरी अच्छी खबर ली है। मगर मैंने उसको बड़ी दिलेरी के साथ क़बूल किया। मामला संगीन तब हो जाता है, जब नियत पर शक किया जाने लगता है। यह मैं कभी किसी हालत में बर्दाश्त नहीं कर सकता। साफ़ दिल से की गयी छींटेकशी का आपको बुरा न मानना चाहिए, अगर आप इतने तुनुकमिज़ाज हो जायँगे तो आप अपनी बुराई करने वालों को और प्रोत्साहन देंगे कि वह आपको चुटकी काटें। मुस्कराते हुए चेहरे के साथ उनका सामना कीजिए। एक समय ऐसा था जब किसी की एक अमित्रतापूर्ण चोट से मैं रात की रात जागता रह जाता था, आँखों की नींद उड़ जाती थी। मगर अब वह हालत गुज़र चुकी है और मैं अपने आपको पहले से कहीं ज़्यादा अच्छी तरह जानता हूँ। मतभेद सदा रहेंगे लेकिन उसकी चिन्ता हम क्यों करें। सब लोग मेरी

प्रशंसा नहीं करेंगे और न यही कहा जा सकता है कि मैंने जो कुछ लिखा है, सब का सब निर्दोष है। आपको 'कंकाल' अच्छा नहीं लगता, मुझको लगता है। बात ख़तम। प्रसाद जी बहुत अच्छे आदमी हैं, अनायास उनसे मुहब्बत हो जाती है। अब जब कि मैं उन्हें पास से देख रहा हूँ तो मैं पाता हूँ कि साल भर पहले मैं उनके बारे में जो सोचता था वह उसके काफी विपरीत हैं। ग़लतफ़हमियाँ घनिष्ठ सम्पर्क से ही दूर हो सकती हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपकी ज़्यादा से ज़्यादा क़द्र करता हूँ। कोई चीज़ उसको हिला नहीं सकती। वातावरण में जो ईर्ष्या और संकीर्णता छायी हुई है, उसकी सफाई के लिए मैं क्या कुछ न दे दूँगा। हमें विचारों की उदारता से काम लेना चाहिए। आप इस सिद्धान्त को मुझसे ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं।

'कर्मभूमि'आपको निश्चय ही भेंट की जायगी। दो सौ प्रतियाँ जिनकी जिल्द बँधी थी चली गयीं। नयी प्रतियों की जिल्दबंदी हो रही है। अब बस चन्द दिनों की बात है।

मैं इस महीने के अन्त तक आपको अपनी कहानी दूँगा।

आपकी 'जागरण' वाली समालोचना बहुत अच्छी है। धन्यवाद–

आपका, धनपत राय।



'जागरण' कार्यालय, सरस्वती प्रेस, काशी, 22-11-1932

My dear Janardan,

Your 'Rekha' is creating a sensation and I am afraid you may not be able to enjoy a long repose without your sketch. Gopan is rather insipid. Your literary list may include Sarat, Tilak or Kalkar, Benarsidas ji, Nalin ji or Sarojini Naidu. Do write some thing for the next issue.

Yours, D. Rai.



सरस्वती प्रेस, काशी, 7 दिसंबर, 1932

बरादरम,

तसलीम। उस दिन से मैंने दो बजे तक हुज़ूर का इंतज़ार किया लेकिन समझ गया कि कहीं धर लिये गये। आप मुझे बुला रहे हैं। मैं यही सोच रहा हूँ कि बड़े दिन में आ जाऊँ। क्या वहाँ के मिलों के इश्तहारी महकमे से आपके कुछ ताल्लुक़ात हैं ? लाल इमली वग़ैरह से कुछ इश्तहार मिल सकते हैं ? जनवरी से तो उनका नया साल शुरू होता होगा।

यहाँ 1 तारीख़ को सरस्वती प्रेस और जागरण से दो हज़ार की ज़मानत तलब हो गयी। मिस्टर ममफ़ोर्ड से मिला था। आज लौटा हूँ। ग़ालिबन मंसूख हो जाये। और तो सब ख़ैरियत है।

मुखलिस, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 7 दिसम्बर, 1932

प्रिय जैनेन्द्र, बन्दे।

कार्ड मिला था। सरस्वती प्रेस और 'जागरण' से 26-10-32 को 'उसका अंत' नाम की कहानी के दंड में दो हज़ार की ज़मानत माँगी। बहुत परेशान हुआ, भागा हुआ लखनऊ पहुँचा, वहाँ Chief Secretary से मिलकर कहानी का आशय समझाया और भी अपनी Loyalty के प्रमाण दिये। अब आशा है ज़मानत मंसूख हो जायगी। ज़रा-ज़रा-सी बात में गर्दन पर छुरी चल जाती है।

'कर्मभूमि' तुम्हें बहुत बुरी नहीं लगी, इससे ख़ुशी हुई। इसकी कहीं आलोचना कर दो।

तुम्हारी परेशानियों की कहानी पढ़कर बड़ी चिन्ता में हूँ। इस मास में कुछ भेजूँगा ज़रूर। 'जागरण' बड़ा पेटू है और 'हंस' पैसे खाने में शेर। बच्चों को आशीर्वाद।

सप्रेम, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 16 दिसम्बर, 1932

भाईजान,

तसलीम। ज़मानत की मंसूख़ी की ख़बर चुका हूँ। अख़बार बदस्तूर जारी है।

आपने फ़रमाया था कि आप जागरण के लिए किसी एजेंट से मुआमला करा सकते हैं। फ़िलहाल कानपुर में महज़ 45 कापियाँ जाती हैं। हालांकि मेरा ख़याल है कि अगर कोई चलता हुआ आदमी हो तो इसकी दुगनी कापियाँ आसानी से निकल सकें। ऐसा कोई आदमी निगाह में हो तो बराहे करम लिखिए। जागरण के लिए कुछ इश्तहारों की भी जरूरत है। यों कुछ न कुछ इश्तहारात तो मिल ही गये हैं मगर उनसे पर्चा बेनियाज़ (बेफिक्र) नहीं हुआ। अब भी उसमें कम से कम 400 रुपये माहवार का घाटा है। अगर पचीस रुपये के इश्तहार भी और आ जायें तो ख़सारा कम हो और बर्दाश्त के क़ाबिल हो जाय। अभी तो कचूमर निकला जा रहा है। आपका कानपुर के मिलों के अमलों से और मैनेजरों से कुछ न कुछ राह-ओ-रस्म तो है ही। मसलन् वुलेन मिल्स या फ़्लेक्स वग़ैरह। क्या आपके ज़रिये उनसे कुछ इश्तहारात मिल सकते हैं ? मैंने सुना है ये लोग जनवरी से साल भर के लिए इंतज़ाम किया करते हैं। दौराने साल में कुछ नहीं करते। जनवरी आ रहा है। अगर आप कुछ उम्मीद दिलायें तो मैं उन कारख़ानों से ख़त-ओ-किताबत शुरू करूँ और अपने निर्ख़नामे वग़ैरह भेज दूँ। जागरण की तादाद इशाअत दो हज़ार तक पहुँच चुकी है। मगर जैसा कि आप खुद जानते हैं महज़ कसरते इशाअत से अख़बार नफ़ाबख़्श नहीं होता तावक़्ते कि इश्तहारों की मांकूल आमदनी न हो।

मेरी किताबों का हिसाब दो साल से नहीं हुआ है। अगर किताबों की बिक्री से कुछ रुपये हुए हों तो भिजवाने की इनायत करें। और तो सब ख़ैरियत है। उम्मीद है आप खुश हैं।

मुख़लिस, धनपत राय।



सरस्वती, प्रेस काशी, 17 दिसंबर, 1932

प्रियवर,

'अछूतोद्धार' नामक गल्प मिल गई थी। स्वरक्षित है। मैं चेष्टा करूँगा कि उसे जल्द प्रकाशित करूँ। कार्यालय में गल्पें बहुत आती हैं, इससे कितने ही मित्रों की रचनाएँ पड़ी रह जाती हैं।

भवदीय, प्रेमचंद।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 22 दिसम्बर, 1932

बरादरम,

तसलीम। कल अख़बार में अम्माँ की वफ़ात की ख़बर देखकर दिली सदमा हुआ। उनके लिए तो इससे बेहतर मौत नहीं हो सकती थी, ऐसी ख़ुशनसीब कितनी माँएँ हैं जो अपने पौदों को फलता-फूलता देखकर ख़ुश-ख़ुश रुख़सत हों लेकिन माँ बाप की मौजूदगी में तो लड़के बूढ़े होकर भी लड़के ही रहते हैं। आपको और सारे ख़ानदान को माताजी की वफ़ात से कितना सदमा होगा इसका अंदाज़ा वही कर सकते हैं जो ऐसे सानिहे भोग चुके हों। परमात्मा उन्हें जन्नत में जगह दे। हमारे लिए सब्र के सिवा और क्या चारा है हालांकि सब्र की तलक़ीन करना जितना आसान है सब्र करना उतना आसान नहीं।

मुख़लिस, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 24 दिसम्बर, 1932

प्रिय वीरेश्वर जी,

कहानी मिली। धन्यवाद। पढ़ा और जी खुश हुआ। प्रोपोगंडा से बचें तो अच्छा हो। मैं खुद इस मरज़ में मुबतिला हूँ पर है यह दोष। फिर भी तुमने कहानी में इतना रस भर दिया है कि उसका यह दोष ज़रा भी नहीं खटकता। अंतिम वाक्य moral होकर भी बड़ा ही सुन्दर हुआ है। शब्द-चित्र खींचने में तुम्हें बहुत कम लोग पहुँच सकते हैं।

संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ पढ़ते रहा करो और लिखना तो ईश्वरीय शक्ति है। अभ्यास से इसे चमकाया जा सकता है, लेकिन जहाँ नहीं है वहाँ पूरा पुस्तकालय पढ़ जाने से भी नहीं आता। आशा है सानंद हो। इसे जनवरी के हंस में दे रहा हूँ।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 10 जनवरी, 1933

प्रिय जैनेन्द्र,

प्रेम। पत्र मिला। छोटे दिलीप की बीमारी की बुरी ख़बर सुनी है। सर्दी यहाँ भी जोरों की है। दिल्ली का क्या पूछना। ईश्वर उसे जल्द अच्छा कर दे।

पं. बनारसीदास जी यहाँ रविवार को आ रहे हैं। माखनलाल जी कल यहाँ आए थे। तुम्हारी कहानी मैंने कहीं नहीं भेजी। यहाँ प्रसाद जी से उस पर मेरी बातचीत हुई। एक दल तो उसे अवश्य ही घासलेटी कहेगा। यह लोग उसी दल में हैं। मैंने समझा यदि कोई उस पर कुछ लिखेगा तो उसका जवाब दिया जायगा। अपनी तरफ़ से नाहक क्यों

तूफ़ान खड़ा किया जाय।

हाँ, मैं भी चाहता हूँ 'परख' पर कुछ लिखवाऊँ। मुझे आलोचना नहीं करनी आती। यहाँ आलोचना के लिए (जनार्दनप्रसाद झा द्विज) सबसे अच्छे हैं। वह परीक्षा में लगे हुए हैं और तो मुझे कोई आलोचक नहीं दिखता।

'कर्मभूमि' की आलोचना जल्द निकलनी चाहिए।

सुभद्राकुमारी जी को बधाई तो दे दी थी। 'हंस' में आलोचना कर रहा हूँ।

रुपये नहीं जा सके, मगर दो एक दिन में अवश्य ही जाएँगे। हज़ारों रुपये बाकी पड़े हुए हैं, लेकिन जब तक अपने हाथ में न आ जायँ क्या कहा जाय ? शिवपूजन प्रयाग हैं। ज्योंही आएँगे कहानी ले लूँगा। और सब कुशल हैं।

तुम्हारा, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 13 जनवरी, 1933

प्रियवर,

आपके लेख और पत्र मिले। कविताओं में तो छंद भंग है और कहानी वर्णनात्मक हो गई है। यह तो गल्प न होकर गल्प का सुंदर प्लाट है। आप इसे गल्प के रूप में लेख भेजें। गल्प में संभाषण का भाग (अधिक), वर्णन कम होना चाहिए। खेद है इसे न छाप सकूँगा।

हिस्सार में जागरण का प्रचार किसी मोतबर एजेंट द्वारा करने की चेष्टा कीजिए।

भवदीय, प्रेमचंद।



सरस्वती प्रेस, 17 जनवरी, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

आशीर्वाद। तुम्हारे दोनों पत्र मिले। उसके दो दिन पहले मैंने एक कहानी 'भारत' के लिए लिखी थी। बड़ी मनहूस कहानी निकली। कुछ इसी तरह का उसका विषय था।

बच्चा चला गया। ख़त पढ़ते ही पहले तो कलेजा सन्न हो गया, लेकिन फिर मन शांत हो गया। यही जीवन के कड़वे अनुभव हैं। इन्हें झेले जाओ तो सब कुछ सरल हो जाता है। फिर रोयें भी तो किसके सामने ? कौन देखने वाला है ? किसी को अपना समझें क्यों ? अपना केवल इतने ही के लिए समझो कि उसके प्रति हमारे कर्तव्य हैं। ज्ञान-वान तो मैं जानता नहीं। ऐसे आघातों से कलेजे पर घाव लगता ही है। लेकिन लगना चाहिए नहीं। तुम रोये नहीं, इससे मेरा चित्त बहुत शांत हुआ। तुम यहाँ होते तो तुम्हारी पीठ ठोंकता। यही तो परीक्षा के अवसर हैं।

भगवती और माता जी को बहुत समझाना। देवियों का हृदय कोमल होता है। बच्चा उनके अंग का एक भाग-सा था। होते ही उसी के झगड़ों में लग जाती थीं। अब उन्हें कितना सूना-सूना लगता होगा। माता जी ने दुनिया के सुख-दुख देखे हैं। उनको मैं क्या समझाऊँ। लेकिन भगवती से कहूँगा धैर्य से काम लो। बच्चे को तुमने पाला-पोसा फिर वह तुमसे रूठकर चला गया। उसकी स्मृति क्या उससे कम प्यारी है ? मैं तो समझता वह और भी प्यारा हो गया है, समझो कि अब तुम्हारी गोद में खेल रहा है। बल्कि

तुम्हारे हृदय के अंदर है। कहीं गया नहीं, भीतर जो बैठा है, अब बाहर की गर्मी, सर्दी रोग, व्याधि का इस पर कुछ असर न होगा। फिर क्यों रोते हो ?

चतुर्वेदी भी आये थे। दो दिन खूब बातें हुईं। प्रसाद जी से भी भेंट हुई। मैं समझता हूँ उनमें बहुत कुछ सफ़ाई हो गयी है। कहानी के विषय में मेरी उनसे बातचीत हुई, मैंने उन्हें समझाने की चेष्टा की। वह अपनी तरफ़ से अड़े रहे। लेकिन उसे इधर-उधर भेजकर एक झगड़ा खड़ा करना उन्हें भी पसन्द नहीं है।...

चैक से बीस रुपये भेजता हूँ। रुपये मँगवाने में डाक का समय निकल गया।

अभी शिवपूजन सहाय जी घर से नहीं लौटे। आते ही कहानी ले लूँगा। सुदर्शन जी एक फ़िल्म कम्पनी में छः सौ रुपये पर नौकर हो गये। और तो सब कुशल है।

तुम्हारा, धनपत राय।



जागरण कार्यालय, काशी, 31 जनवरी, 1933

बरादरम,

तसलीम। इधर कई हफ़्तों से 'बेवा' का इश्तहार आज़ाद में नहीं निकल रहा है, न ज़माना में। क्या उसकी सब जिल्दें फ़रोख़्त हो गयीं ? अगर फ़रोख़्त हो गयी हों तो और 100 जिल्दें भिजवा दूँ ?

32 आख़िर हो गया। जनवरी 31 से किताबों का हिसाब नहीं हुआ। क्या आप हिसाब करवा सकते हैं ? 32 के आख़िर तक का हिसाब हो जाना चाहिए।

आप सैनाटोजन, कलज़ाना, पेप्स वग़ैरह के इश्तहारी एजेण्टों का पता दे सकते हैं? मशकूर हूँगा।

आपका, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस बनारस, 13 फरवरी, 1933

प्रिय बनारसीदास जी, पालागन।

आपके अत्यन्त सुखद पत्र के लिए धन्यवाद। आपके साथ जो दिन गुज़रे उनकी मधुर स्मृति मैं सदैव सँजोकर रखूँगा। मेरी कितनी इच्छा है कि ऐसे अवसर बार-बार आयें।

मैंने आपके कहानी अंक की समालोचना लिखी है। लेकिन स्थानाभाव के कारण मुझे उसको छोटा करना पड़ा। आपकी इंटरव्यू मुझको सबसे ज़्यादा पसन्द आयी। और मुझी को नहीं, तकरू, जनार्दन और दूसरों को भी। इसलिए नहीं कि आपने उसमें मेरी तारीफ की है बल्कि इसलिए कि वह सचमुच बहुत अच्छे और सुथरे ढंग से लिखी गयी है। मैंने आपकी 'समाधि' आनन्दपूर्वक पढ़ी। आप साधू को उसमें क्यों ले आये ? कहानी और ज़्यादा अच्छी चलती अगर आप अपने व्यंगात्मक स्वर में, पत्नी की ब्रजभाषा के साथ, एक सम्पादक के जीवन के कष्टों और आपदाओं का चित्रण कर सकते।

आपकी समालोचना पाकर श्रीमती प्रेमचंद को बहुत ही खुशी होगी। साहित्यिक संसार से अब तक उन्हें न्याय नहीं मिला है क्योंकि मैं उनके ऊपर छाया हुआ हूँ या इसलिए कि हो सकता है कुछ अक़्लमन्दों का यह ख़याल हो कि मैं ही उन कहानियों का असल लेखक हूँ। मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि मैं उनके साहित्यिक

बनाव-सँवार के लिए ज़िम्मेदार हूँ, मगर कल्पना और लेखन पूरी तरह उन्हीं का होता है। एक-एक पंक्ति में एक संघर्षपरायणा नारी बोलती है। मेरे जैसे शान्त स्वभाव का व्यक्ति इस प्रकार के भीषण नारीपरक कथानकों की कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं उनका चित्र आपको भेज सकता हूँ। उन्हें कोई आपत्ति न होगी। जहाँ तक उनके हाथ की घड़ी की बात है, जब कोई साहसी पत्रकार उनको पैसे देने लग जायगा वे आप ही उसका बंदोबस्त कर लेंगी या हो सकता है कि कोई उन्हें भेंट में दे दे।

आप जब भी चाहें मैं कलकत्ता आने के लिए तैयार हूँ, कोई मौका होना चाहिए। सिर्फ तमाशबीनी के लिए आना और दूसरों से उसका खर्च उठाने की उम्मीद करना मज़ाक़ की बात है। जब ऐसा कोई अवसर होगा तो आप मुझको सपत्नीक वहाँ पायेंगे।

हज़ार-हज़ार अफ़सोस कि केवल लापरवाही के कारण वे छः स्वदेशांक अब तक नहीं भेजे जा सके। अब पैकेट तैयार है और कल भेज दिया जायगा।

शुभकामनाओं के साथ।

आपका धनपत राय।

पुनश्च :—पंच परमेश्वर ग्रास हापेन की एक कहनी है। आप कृपया हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मे एक प्रति देने के लिए कहें। वे खुश होंगे।

●●

जागरण कार्यालय, काशी, 18 फ़रवरी, 1933

बरादरम,

तसलीम। अर्से से आपके हालात न मालूम हुए। मैंने पंद्रह दिन से ज़ायद हुए एक ख़त भी भेजा मगर उसका कोई जवाब न मिला। क्या ख़त पहुँचा ही नहीं। मैंने पूछा था क्या 'बेवा' फ़रोख़्त हो गयी। उसका इश्तहार नहीं है। अगर फ़रोख़्त हो गयी तो क्या और जिल्दें भिजवाऊँ।

मुख़लिस, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस काशी, 28 फरवरी, 1933

प्रिय वीरेश्वर, आशीष।

आज तुम्हारा 'उंगली का घाव' पढ़कर मुग्ध हो गया। तुम यहाँ होते तो तुम्हारा हाथ चूम लेता। ईश्वर पर विश्वास न होते हुए भी किससे कामना करूँ कि तुम्हारी यह कला दिनोंदिन विकसित हो। बड़ा उज्ज्वल—लेकिन अब तारीफ़ न करूँगा नहीं तुम समझोगे पीठ ठोंक रहा है। मार्च के हंस की शोभा इससे बढ़ेगी।

सप्रेम, धनपत राय।

सरस्वती प्रेस, काशी, 28 फ़रवरी, 1933

भाईजान,

तसलीम। नवाज़िशनामे के लिए शुक्रिया। बेवा तो बदनसीब होती ही है। उसकी इतनी कम जिल्दें फ़रोख़्त हुईं, इसमें उसके सिवा और किसकी ख़ता है। बेवा को जायज़

तौर पर कौन पूछता है। पढ़ना ही चाहे तो आरियतन् मिल सकती है !

आप बराहे करम इसकी 100 जिल्दें मालगाड़ी से

एन. डी. सहगल ऐंड संस

बुकसेलर्स एंड पब्लिशर्स, लोहारी गेट, लाहौर

के पास भेज दें। उनकी एक फ़रमाइश मेरे पास आयी थी। लाहौर में भी इस किताब की अच्छी बिक्री नहीं हो रही है। फिर भी इस सूबे के देखते हज़ार ग़नीमत है।

हाँ रोज़ाना 'जागरण' लखनऊ से निकालने का इंतज़ाम हो रहा है। देखिए कब तक पूरा होता है। हफ़्तेवार के नुक़सान ने रोज़ाना पर आमादा किया है। आपने जो पते रवाना किये हैं उनके लिए शुक्रिया। उम्मीद है आप खुश हैं।

मुख़लिस, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, 4 मार्च, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

मैंने कई दिनों से तुम्हें पत्र नहीं लिखा। कोई बात लिखने की ऐसी थी भी नहीं। तुम्हारा लेख शिवपूजन सहाय जी से मिल गया और छप भी गया, मगर है बहुत नन्हाँ-सा। मेरा लेख भी इतना ही बड़ा होगा।

तुम्हारा उपन्यास चल रहा है, या आराम करने लगा ? मैं समझता हूँ अब तुम हर तरह से स्वस्थ हो।

तीन चार दिन इलाहाबाद रहा और (वहाँ) तुम्हारी खूब चर्चा रही। इंडियन प्रेस वाले तुम्हें पत्र लिखेंगे।

धुन्नू की अम्माँ की किताब को भूलना नहीं। तुम्हारा (लिख देना) ही उन्हें आसमान पर चढ़ा देगा। और तो नई बात नहीं।

तुम्हारा, धनपत राय।

तुम अपना तौलिया यहाँ छोड़ गये जिससे बंदा देह पोंछता है।



सरस्वती प्रेस काशी, 12 अप्रैल, 1933

प्रिय बनारसीदास जी, बंदे।

आपको तो मैंने कलकत्ता पत्र लिखा था। आज जवाब आया कि आप यहाँ हैं। आप ही कुछ लिखेंगे ? दो-एक पृष्ठ सही। जगह रिज़र्व रख छोड़ी है।

गुप्त जी को मेरा नमस्कार कहियेगा।

आपका, धनपत राय।



काशी, 21 अप्रैल, 1933

प्रियवर,

धन्यवाद। आपके लेख छापना तो चाहता हूँ पर जिस रूप में वह हैं उस रूप में नहीं। चाहता हूँ कि कुछ बनाकर छापूँ लेकिन बनाना समय चाहता है और समय का यहाँ बड़ा टोटा है। बहुत खोजता हूँ, वही नहीं मिलता। ईश्वर की भाँति अदृश्य हो गया है।

इतना ही समझ लीजिए कि अच्छी चीज़ पाकर सम्पादक तुरंत छापता है। विलम्ब नहीं करता। जब कोई चीज़ उसे नहीं जँचती तभी वह देर करता है। अच्छी चीजें इतनी ज्यादा नहीं आतीं कि उनको प्रतीक्षा करनी पड़े। और कहानी तो बड़ी मुश्किल से अच्छी मिलती है। बस, और क्या लिखूँ।

सप्रेम, प्रेमचंद।



7, दरियागंज, 7 मई, 1933

बाबू जी,

पत्र मिला। कितनी मुद्दत बाद मिला है। इन्दौर में मैंने पहली बात यह पूछी कि आप आये हैं ? पता लगा नहीं आये। तब सोचा तार दूँ। लेकिन प्रेमी जी, जो स्टेशन पर ही मिल गये थे, बोले—आप आ न सकेंगे, तार देना फिजूल होगा। इससे रह गया। ज़रा भी जानता कि आप इन्दौर जाने के लिए उद्यत बैठे हैं तो ज़रूर आपको बुला ही लिया जाता। वहाँ आपको मिलने को बहुत ही जी भटकता रहा।

हाँ, मुंशी जी वहाँ मिले थे। बातें भी हुई। जो सोचा था वह तो न हुआ। उसका भी इतिहास है। एक सीधा साधा-सा प्रस्ताव अवश्य हुआ है। कमेटी बनी है जिसमें मुंशी संयोजक हैं। अब सब उन पर है।

काम का क्या ढंग हो। आने जाने में खर्च तो बहुत पड़ता है लेकिन पाँच आदमियों को मिल लेना चाहिए तब काम आगे बढ़ सकता है। गांधी जी, मुंशी, कालेलकर, आप और मैं, ये सब लोग वर्धा में ही यथाशीघ्र सुविधानुसार मिल लें लेकिन यह मुंशी पर है। उनका पत्र आया था। लेकिन मैंने इधर उसका जवाब भी नहीं दिया है, अब दूँगा।

यह भी बात हुई थी कि अपना अलग पत्र न निकालकर आपसे 'हंस' ही देने के लिए कहा जाय। मैं समझता हूँ इसमें आपके लिए भी अयुक्त कुछ नहीं है। जब तक इस सम्बन्ध में आगे बातें हों आप 'हंस' में विशेष परिवर्तन न कीजिए।

आपकी काशी छोड़ने की बात तो समझ में आती है। साहित्यिक ग़ज़ब का Egotist होता है। इसमें उस बेचारे का दोष उतना क्यों कहिये क्योंकि वह तो Egotism का शिकार होता है। काशी में मैंने यह देख लिया है। पर प्रयाग में भी ऐसा नहीं होगा ऐसी आशा आपको किस बल पर होती है ? किन्तु फिर प्रश्न है प्रयाग भी यदि नहीं तो क्या किया जाय। इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। दिल्ली—में एकाएक नहीं कह सकता, क्योंकि धुन्नू आदि का भी सवाल है। इन्दौर में मेरे मन में आया था कि प्रेमी जी का कारोबार भी कुछ Institution की शक्ल में नहीं है न आपका ही, तब क्यों न दोनों को मिलाकर एक सम्मिलित (Limited) फर्म की शक्ल में ढाल दिया जावे और चलाया जावे। लेकिन यह सब दौड़-धूप के बिना कैसे हो। वह कौन करे ? मैं इधर बहुत Handicapped हो रहा हूँ, चलना-फिरना भी सरल नहीं होता। फिर भी यह देखता हूँ कि आगे कोई रास्ता नहीं है। जानता नहीं आप बम्बई से कितना पैसा जमा करके लाये हैं। लेकिन जितना भी मुझे दीखता है सब इस कारोबार में ही झुकेगा।

मैंने प्रवासीलाल जी को लिखा था कि मैटर की जब ज़रूरत हो दो रोज़ का नोटिस

देकर मुझे लिख दें। सोलह सफे तक की गारण्टी मैंने दी थी। अब मेरा इसमें दोष नहीं है कि वह वसूल न किया जाय। जब क्लर्क पास हो तो मैटर देने में कठिनाई क्या होनी है। इधर दस दिनों से क्लर्क नहीं था इससे काम सब ठप्प था। अब है तो मैटर की क्या चिन्ता।

कहानी भेज रहा हूँ।

हाँ, साहित्य परिषद् (इन्दौर) में मैं बोला था पर 'भारत' में तो भाषण का कचूमर था। लगभग आध घण्टे तो मैं बोला हूँगा। और 'भारत' में जो था उसका तो अर्थ भी कुछ न बनता था, हाँ ध्वनि उसमें मुझे अवश्य अपनी ही जान पड़ी। जान पड़ता है शार्टहैण्ड की रिपोर्ट उसकी ली गयी है। आप उन्हें लिखिये न कि यदि रिपोर्ट हो तो उसकी प्रति वह आपको भेज दें, मैं भी यहाँ से लिखूँगा। यहाँ सम्मेलन के बारे में एक ने Interview ली थी। वह मैं कल या परसों आपको भिजवा दूँगा।

इलाहाबाद में क्या आपने मकान आदि पक्का कर लिया है ? यदि दिल्ली की बात किसी तरह भी व्यवहार्य जान पड़े और सब बन्दोबस्त Shift का न हुआ हो तो उस पर सोचियेगा। मैं आपका बहुत कुछ, लगभग सभी कुछ बोझ हलका कर सकता हूँ ऐसा मुझे लगता है।

और आप पत्र देने के बारे में ऐसा प्रमाद न किया कीजिये। इस बीच आपके पत्र न पाने से सच जानिये मुझे बहुत सोच रहा। बाकी ठीक ही-सा है।

आपका, जैनेन्द्र।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 9 मई, 1933

प्रिय जैनेन्द्र,

पत्र मिला। मैं सागर गया था। कल शाम को लौटा हूँ। बेटी के बालक हुआ, पर चौथे दिन उसे ज्वर आ गया और प्रसूत ज्वर के लक्षण मालूम हुए। यहाँ तार आया। हम दोनों प्राणी भागे हुए गये। मैं तो लौट आया, तुम्हारी भाभी अभी वहीं हैं। 'हंस' निकल गया। कल रवाना होगा। अब की बड़ी देर हो गयी। तस्वीरों का इंतजार था। तस्वीर तो न आयी, देर हो गई। यह सुनकर खुशी हुई कि 'रंगभूमि' वालों से तुम्हारा मामला हो गया। बड़ी अच्छी बात हुई। मगर भाई 'हंस' को महीने में एक मोती न दोगे तो बेचारा जियेगा कैसे ? यह अंक भी बिना तुम्हारी कहानी के गया।

और तो सब कुशल है। 'जागरण' अभी तक खड़ा नहीं हुआ, घिसट रहा है।

भगवती को मेरा आशीर्वाद कहना और महात्मा जी को प्रणाम। दिलीप को प्यार।

तुम्हारा, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 10 मई, 1933

प्रिय वीरेश्वर, आशीर्वाद।

मैं जबलपुर चला गया था। कल आया हूँ। विलम्ब के लिए क्षमा करना।

हंस का यह अप्रैल का अंक आज रवाना हो रहा है। अबकी बहुत देर हो गयी। तुम्हारे पास पहुँचेगा। मई का अंक प्रेस में दे दिया गया है। यदि तुम अपनी रचना भेज

सको तो बहुत उत्तम हो। शेष कुशल।

'उंगली का घाव' साहित्य का अनूठी चीज़ है।

तुम्हारा, धनपत राय।



10 साउथ रोड, इलाहाबाद, 20 मई, 1933

प्रिय प्रेमचंद जी,

आपने हिन्दी अनुवादक-मंडल के संगठन की योजना के साथ जो पत्र भेजा उसके लिए धन्यवाद। मैंने यह अनुमान किया था कि आपकी योजना का उद्देश्य कुछ दूसरा ही—अर्थात् पुस्तकों का अनुवाद—होगा। पर अब मालूम हुआ कि यहा संवादपत्रों से संबंध रखता है। आपकी यह योजना जिस क्षेत्र तक सीमित है वहाँ तक वह बहुत सुन्दर है, और उसके अन्दर बहुत-सी सद्संभावनाएं निहित हैं। इसे कार्यान्वित करने की चेष्टा अवश्य की जानी चाहिए।

आपने अपने भविष्य को जिस रूप में उपस्थित किया है उससे कहीं अधिक विस्तार के साथ आपने उस पर विचार कर लिया होगा, ऐसा लगता है। आपके लेख में एक विशेष कार्यक्रम की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है, पर उसके संगठन की रूपरेखा के संबंध में उसमें कुछ भी नहीं कहा गया है। क्या आप कृपा करके अपनी योजना के संगठन का स्वरूप मुझे बता सकेंगे ? उसमें काम करने वाले किस प्रकार के कार्यकर्ता प्राप्त हो सकते हैं ? कार्य का सीमा-क्षेत्र क्या रहेगा, कार्यकर्ताओं को पारिश्रमिक क्या मिलेगा और कार्य-विभाजन किस रूप से होगा ?

आपका उत्तर मिलने पर मैं चाहूँगा कि इस कार्य में दिलचस्पी रखने वाले कुछ सज्जनों को एकत्र किया जावे, ताकि आपकी योजना की एक निश्चित रूपरेखा तैयार हो सके। यदि समिति का संगठन हो जावेगा, तो निश्चित योजना के विस्तृत विवरण और कार्यक्रम पर विचार किया जावेगा। मैं और यहाँ के कुछ मेरे मित्र इस कार्य में पूर्णरूप से सहयोग देने के लिए तैयार हैं। कृपया उत्तर में विलम्ब न करें।

इस बीच मैं स्वयं भी आपको योजना की एक रूपरेखा आपके विचार के लिए तैयार कर रहा हूँ। आशा करता हूँ आप सकुशल होंगे।

आपका, रामचन्द्र टण्डन।



सरस्वती प्रेस काशी, 23 मई, 1933

प्रिय भाई साहब,

धन्यवाद। वह योजना हिन्दी के साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों के लाभार्थ—उनकी उपयोगिता, प्रचार तथा महत्त्व बढ़ाने के उद्देश्य से—तैयार की गयी थी। तब मेरे मन में उसका कोई विस्तृत या स्पष्ट स्वरूप नहीं था। पर हमें पहले अपनी संभव शक्तियों का अंदाज़ लगा लेना होगा—एक ऐसा खाका तैयार कर लेना होगा, जिससे यह पता चल सके कि कौन-कौन-सी पत्र-पत्रिकाएँ हमारी योजना को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, कितनी सामग्री की आवश्यकता उन्हें प्रतिदिन, प्रति सप्ताह अथवा प्रति मास पड़ेगी। इस संबंध में पत्र-पत्रिकाओं के नाम का एक प्रचार-पत्र भेज देने से काफ़ी दिलचस्पी पैदा की जा

सकती है। हिन्दी में इस समय पत्रों की संख्या अच्छी है, यद्यपि बहुत से पत्र समुचित ख्याति न पाने के कारण दिन पर दिन क्षीणावस्था को प्राप्त होते चले जा रहे हैं फिर भी यह आशा की जा सकती है कि वे अपने पत्रों को चमकाने के उद्देश्य से, विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टिकोण से, इस योजना के पीछे कुछ रुपया लगाने को तैयार हो जावेंगे। यह मालूम हो जाने पर कि कितने पत्र हमारी योजना से सहमत हैं, तीन आदमियों की एक समिति का संगठन करना होगा। इस समिति का काम अनुवादक के लिए उपयुक्त सामग्री जुटाने का होगा। कुछ पत्र-पत्रिकाएँ या तो खरीदनी पड़ेंगी या किसी दूसरे रूप से प्राप्त करनी होंगी और उनमें से महत्त्वपूर्ण और ज्ञानवर्द्धक सामग्री चुनकर इकट्ठा करनी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त अनुवादकों की एक समिति की भी आवश्यकता है–ऐसे अनुवादक जो अलग-अलग विषयों के विशेषज्ञ हों। प्रबन्ध समिति अनुवादकों को बराबर-बराबर काम बाँट देगी और तब अनुवादित सामग्री को पत्रों में प्रकाशनार्थ भेज देगी। प्रबन्ध समिति को बहुत से काम करने पड़ेंगे। बहुत से पत्रों को पढ़कर उनमें से अनुवाद योग्य सामग्री चुनना कोई आसान काम नहीं है, पर अभ्यास हो जाने से काम बहुत कुछ आसान हो जायगा। यदि सौ पत्र-पत्रिकाएँ भी इस काम के लिए दस रुपया प्रतिमास खर्च करने को तैयार हो जावें, तो काम को आगे बढ़ाने के लिए नींव तैयार हो सकती है। लेखों का चुनाव करने वाली समिति को निश्चय ही पुरस्कार दिया जायगा, यद्यपि पुरस्कार सामान्य ही रहेगा। इस काम के लिए पचास अनुवादक नियुक्त किये जा सकते हैं, जिनके पारिश्रमिक के सम्बन्ध में यह तय कर लेना होगा कि एक रुपये पर कितनी पंक्तियाँ उन्हें लिखनी होंगी। यदि कुछ पत्र एक ही प्रकार की सामग्री चाहने लगें तो वितरण में कुछ गड़बड़ी पैदा हो सकती है। ऐसी हालत में उन पत्रों के वितरण का पूरा भार हम लोगों के हाथ छोड़ देना होगा या और कोई दूसरा उपाय खोज निकालना होगा। मेरा विश्वास है कि इस योजना को बढ़ाया जा सकता है और यदि कोई व्यक्ति लगन के साथ इस पर जमा रहे, तो उसे हमारे पत्रकार-जगत् की स्थिति को ऊँचा करने का श्रेय और संतोष प्राप्त होगा। आप निश्चय ही इस काम के लिए योग्य व्यक्ति हैं। मैं तो एक हरकारा मात्र हूँ, और सदा ऐसे कामों में हाथ डालने की चेष्टा करता रहता हूँ जिनके लिए मैं नहीं बनाया गया। पत्रकार कला से मेरा स्वभावगत विरोध है, पर परिस्थितियों से विवश होने के कारण मैं उसे स्वीकार करने को बाध्य हुआ हूँ। मेरी यह अनुभूति कि मैं किसी क्षेत्र में कोई स्थायी चिन्ह अंकित करने में असमर्थ हूँ, मुझे मूर्खतापूर्ण कामों के लिए उकसाती रहती है। पर अंग्रेज़ी में एक कहावत है–'जियो और सीखो।'

यदि मेरी योजना को कोई योग्य व्यक्ति हाथ में ले ले, तो इससे अधिक प्रसन्नता मुझे और किसी बात से नहीं हो सकती।

आपका भाई, धनपत राय।



10 साउथ रोड, इलाहाबाद, 27 मई, 1933

प्रिय प्रेमचंद जी,

आपके कृपापत्र के लिए धन्यवाद। मैं योजना तैयार कर रहा हूँ, जिसे दो दिन के भीतर मैं आपके पास भेज दूँगा। योजना की सफलता के लिए मुझसे जो कुछ भी हो

सकेगा करूँगा। मुझे विश्वास है कि अंत में निश्चय ही सफलता मिलेगी। पर प्रारम्भ यदि सामान्य भी हो तो हमें घबराना नहीं चाहिए।

मेरे पास हिन्दी के दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों की सूची बहुत अधूरी है। यदि आपके पास कोई सूची हो तो भेजने की कृपा करें, ताकि एक पूरी सूची तैयार की जा सके।

मैं आपके कहे अनुसार पत्रों में प्रचारार्थ एक मसविदा भी भेजूँगा।

आपका, रामचन्द्र टण्डन।

●●

सरस्वती प्रेस, 27 मई, 1933

प्रिय जैनेन्द्र,

कई लेख, आलोचना और पत्र मिले। धन्यवाद। तुम्हारी कहानी अब के ज़रूर रहे।

पुस्तकों का हाल न पूछो। 'प्रेम की वेदी' और 'फाँसी' का महीनों से विज्ञापन हो रहा है, पर मुश्किल से दस आर्डर आये होंगे। यह हाल है पुस्तकों का। एक एजेंट रखा है, पर वह लिखता है पाठशाला और बालकों की पुस्तकों की माँग अधिक है। 'फाँसी' वहाँ किसी बुकसेलर की दुकान पर रख दो, कुछ न कुछ बिकती रहेगी। आजकल पुस्तकों का बाज़ार ठंडा है। संतान शास्त्र कुछ बिकता है, या वह जिससे जीवन का कोई प्रश्न हल होता है।

दैनिक 'जागरण' के विषय में मैं इससे अधिक और कुछ नहीं जानता कि वह लोग उद्योग कर रहे हैं। ज़्यादा परवाह भी नहीं है।

कमला को प्रसूत ज्वर है। धुन्नू की अम्माँ अभी वहीं हैं। एक ख़त से मालूम होता है हालत अच्छी है, दूसरा पत्र आकर चिंता में डाल देता है। चि. दिलीप तो अब स्वस्थ है। मैं समझा था महात्मा जी आ गये होंगे। भगवती को यहाँ भेजोगे ? एक-दो महीना हमें भोजन दे दो। मगर तुम सोचोगे वहाँ क्या होगा ? संसार स्वार्थी है ही। कहानियों की सेल तो आजकल बहुत कम है। मेरी बीस कहानियाँ पड़ी हुई हैं, छापने की हिम्मत नहीं पड़ती। अभी तो 'मैग्डेलीन' निकालने दो। कहानी अवश्य। मई आज तैयार हो गया। मई का मई में ! कितनी तारीफ़ की बात है।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

10 साउथ रोड, इलाहाबाद, 1 जून, 1933

प्रिय प्रेमचंद जी,

मुझे इस बात के लिए खेद है कि मैंने आपको जिस योजना को भेजने का वचन दिया था उसे इसके पहले न भेज पाया। मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और इस बीच मेरा आफिस जाना भी बंद रहा। इस समय भी मैं आपको अनुवादक-मंडल के संगठन से संबंधित वैधानिक मसविदा नहीं भेज रहा हूँ; इस संबंध में मैंने अपने जो विचार नोट कर रक्खे हैं, केवल उन्हीं को भेज रहा हूँ। अंतिम मसविदा तब तैयार किया जायगा जब आप मेरे सुझावों के संबंध में अपनी सम्मति देंगे।

मैं यह पसंद करूँगा कि एजेन्सी का अंग्रेज़ी नामकरण किया जाय, अर्थात् उसका

नाम 'हिन्दी ट्रान्सलेशन बोर्ड' रहे, न कि अनुवादक मंडल।

इसका उद्देश्य हिन्दी के दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों को विभिन्न विषयों पर अनुवादित लेख भेजते रहने का होना चाहिए। संवाद तथा राजनीतिक लेखों से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए। ऐसा होने से मासिक तथा पाक्षिक पत्र भी उक्त एजेन्सी द्वारा लाभ उठा सकेंगे।

बोर्ड का हेड आफिस बनारस में होना चाहिए। उसकी शाखाएँ दिल्ली, इलाहाबाद, लखनऊ, कलकत्ता और जबलपुर में खोली जा सकती हैं। फिलहाल लखनऊ और जबलपुर को छोड़ा भी जा सकता है।

प्रत्येक आफिस, चाहे वह प्रधान आफिस हो या शाखा, किसी एक संचालक के व्यक्तिगत निरीक्षण के अधीन रहे।

संचालक के ऊपर इन बातों का उत्तरदायित्व होगा–1. भारतीय तथा विदेशी संवाद पत्रों तथा मासिक पत्रों से लेख अथवा लेखांशों का चयन करना और उन्हें अपने आफ़िस से संलग्न अनुवादकों को अनुवाद के लिये दे देना, 2. पत्र-व्यवहार द्वारा प्रधान कार्यालय के संसर्ग में रहना, और उसके साथ परामर्श करके अनुवादित सामग्री को प्रत्येक पत्र की विशेष आवश्यकता के अनुसार भेजते रहना, 3. आवश्यकता पड़ने पर अनुवादों का संपादन करना अथवा अपने नोट उनके साथ जोड़ देना, आफ़िस से संबंधित विभिन्न अनुवादकों को जो पारिश्रमिक दिया जाय, उसके बिलों की जाँच करना; किसी एक विशेष शाखा में विशेषज्ञता प्राप्त करना, और एक ऐसी फाइल रखना जिसमें बोर्ड से संलग्न अनुवादकों की योग्यताओं का विस्तृत ब्यौरा रहे।

डाइरेक्टर को कुछ और भी ज़िम्मेदारियाँ सौंपी जा सकती हैं, पर इस समय मैंने केवल उन्हीं बातों का उल्लेख किया है जो बिना किसी प्रयास के मुझे सूझ गयीं।

बोर्ड को निम्नलिखित विषयों को अपने हाथ में लेना चाहिए–1. राजनीति (सैद्धान्तिक), 2. साहित्य तथा शिक्षा, 3. लोक-प्रचलित विज्ञान, 4. स्वास्थ्य-सुधार, 5. कहानियाँ, 6. साधारण ज्ञान।

जो पत्र-पत्रिकाएँ मासिक चन्दा देना स्वीकार करें वे उक्त विषयों में से अपनी आवश्यकता के विषयों को चुन लें।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रत्येक केन्द्र को किसी एक शाखा के संबंध में विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए, यद्यपि प्रत्येक शाखा के अनुवादकों का कार्य एकांगीय होना ठीक न होगा। कुछ विशिष्ट शाखाओं को अपने विशेष विषय-संबंधी सामग्री इकट्ठा करके बोर्ड के ग्राहकों के पास भेजते रहना चाहिए।

संचालकों को पचास रुपया प्रति मास वेतन मिलना चाहिए। उन्हें बोर्ड के लाभांश का अधिकार रहेगा। संचालक समिति की वार्षिक बैठक में इस बात की घोषणा कर दी जायेगी कि बोर्ड को कितना लाभ हुआ है। कार्यालयों को चलाने, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं को प्राप्त करने, तथा डाक-टिकट आदि के लिए संचालकों को प्रतिमास पच्चीस रुपया से लेकर पचास रुपया तक भत्ता दिया जाना चाहिए। प्रधान कार्यालय को पचास रुपया प्रतिमास इसके अतिरिक्त देना होगा। उसे शाखा कार्यालयों को आफिस संबंधी आवश्यक चीज़ें पहुँचाते रहना होगा।

एक लेख में औसतन सात सौ शब्द रहने चाहिए। पाँच सौ से एक हज़ार शब्द तक के लेख चल सकते हैं।

यदि कोई पत्र किसी विशेष विषय पर लेख चाहे तो उसके लिए विशेष दर भी तय की जानी चाहिए।

अनुवादकों को सात सौ शब्दों के लिए डेढ़ रुपये पारिश्रमिक दिया ज़ाना चाहिए। विशेष-विशेष अवस्था में इस दर में परिवर्तन किया जा सकता है।

ऐसे लेखों पर जो आशयमात्र लेकर लिखे गये हैं सात सौ शब्दों के लिए एक रुपया दिया जाना चाहिए।

अनुवादकों की योग्यता सहित उनके नामों की एक सूची प्रत्येक आफिस में रहनी चाहिए। प्रत्येक आफिस के पास बोर्ड के समस्त ग्राहकों की पूरी सूची रहनी चाहिए, जिसमें प्रत्येक ग्राहक की आवश्यकता का भी उल्लेख रहे।

बोर्ड को यह अधिकार होना चाहिये कि वह अपने ग्राहकों को जो कोई भी सामग्री भेजे उसे पुस्तकरूप में संगृहीत कर सके।

छपे हुए लेखों की दो 'कटिंग' प्रधान कार्यालय को भेजी जावें, एक प्रधान कार्यालय के लिए और एक शाखा कार्यालय के लिये।

ग्राहकों को क्रम से तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–तीस रुपया प्रति मास देने वाले ग्राहक, पन्द्रह रुपया प्रति मास देने वाले ग्राहक और दस रुपया प्रति मास देने वाले ग्राहक।

प्रथम श्रेणी के ग्राहकों को प्रति मास आठ लेख ऐसे मिलेंगे जो केवल उन्हीं के लिये अनुवादित किये गये हों, द्वितीय श्रेणी के ग्राहकों को प्रति मास चार लेख ऐसे दिये जावेंगे और तृतीय श्रेणी के ग्राहकों को केवल दो विशेष लेख दिये जावेंगे।

यह आशा की जाती है कि प्रथम श्रेणी के पंद्रह ग्राहक प्राप्त हो जावेंगे, द्वितीय श्रेणी के बीस और तृतीय श्रेणी के पचास ग्राहक प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार बोर्ड को कुल एक हज़ार दो सौ पचास रुपया मासिक आय हो सकेगी।

यह मोटेंतौर पर तैयार की गयी योजना है। मेरी राय है कि आप प्रधान कार्यालय का भार ले लें। इलाहाबाद के कार्यालय का प्रबन्ध मैं कर लूँगा। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी कलकत्ते का, और 'अर्जुन' के प्रोफेसर इन्द्र दिल्ली का भार सम्हाल लेंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए आप स्वयं उन लोगों से पत्र-व्यवहार चला सकते हैं।

यदि आगामी जुलाई से इस कार्य का श्रीगणेश हो सके तो बहुत अच्छा हो, बहुत सम्भव है, प्रारम्भिक व्यवस्था में एक पूरा महीना बीत जावे। पर समय नष्ट नहीं होना चाहिए।

मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ कि मैंने इलाहाबाद आफिस के लिए अनुवादकों की सूची तैयार कर ली है। एक प्रचार-पत्र संचालकों क हस्ताक्षर सहित शीघ्र ही तमाम पत्रों को भेज दिया जाना चाहिए जिसमें योजना समझा दी जावे। प्रचार-पत्र के साथ चंदे का फार्म भी रहे। प्रचार-पत्र तब तैयार किया जाय, जब श्री बनारसीदास जी तथा इन्द्र जी के उत्तर आपको मिल जावें। इस बीच आप–और मैं भी–इस बात पर विचार कर लें कि प्रचार-पत्र में क्या-क्या बातें रहेंगी।

आपने अभी तक मेरे पास हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों की सूची नहीं भेजी।

एक बात अभी तक छूटी रह गयी है, वह है कानून-संबंधी विवेचना। यह तो स्पष्ट ही है कि हम लोगों की संस्था का उद्देश्य चाहे कैसा ही क्यों न हो, वह व्यावसायिक ही होगी, और केवल व्यावसायिक ढंग से उसे चलाया जा सकता है। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार की बहुत-सी एजेंसियाँ हैं। हम लोग एक ऐसा प्रयोग करने जा रहे हैं जो मेरी राय में केवल हिन्दी क्षेत्र के लिये ही नहीं, बल्कि भारत के लिए नया है। कुछ भी हो, आपसे प्रार्थना है कि आप एजेन्सी के कानूनी पक्ष पर विचार करके अपनी सम्मति की सूचना मुझे भी दीजियेगा।

पत्र काफी लम्बा हो गया है। अधिक आपका पत्र मिलने पर।

आपका, रामचन्द्र टंडन।



जागरण कार्यालय, बनारस, 3 जून, 1933

प्रिय भाई साहब,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। आपकी योजना मुझे बहुत उपयुक्त जँचती है। कार्यालय से ही काम चल जायगा। शाखाओं की आवश्यकता ही क्या है ? प्रधान कार्यालय किसी एक ऐसे केन्द्रीय स्थान में होना चाहिये जहाँ अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाएँ आसानी से प्राप्त हो सकें। इलाहाबाद इसलिये आदर्श स्वरूप है। प्रधान कार्यालय में एक संचालक तथा एक या दो क्लर्क रहें। 'अर्जुन' और चतुर्वेदी जी दो छोरों से क्या कर सकते हैं ? संचालक ऐसे व्यक्ति को होना चाहिये जो पठनीय, ज्ञानवर्द्धक और विचारोत्तेजक सामग्री का अच्छा चुनाव करने की योजना रखता हो। वह स्वयं इस बात का निर्णय करेगा कि अनुवाद के लिए कौन-सी सामग्री किस व्यक्ति को दी जावे। वह इस बात पर ध्यान रखेगा कि किस अनुवादक की योग्यता किस हद तक है और कौन इस संबंध में कितनी सहानुभूति रखता है। अनुवादकों के चुनाव का आधार यही होना चाहिये। पक्षपात से बचने के लिये एक प्रकार की वृत्तानुक्रमिक व्यवस्था होनी चाहिये। बाकी सब बातें ठीक हैं। यदि संचालकों की संख्या बढ़ाकर रखी जावे तो प्रारम्भिक भार के निर्वाह का प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। कार्यालय का प्रारम्भिक व्यय प्रतिमास पचास, तीस, बीस, चालीस, दस, पन्द्रह, और एक सौ रुपये से अधिक नहीं होना चाहिये। संचालक को प्रति मास पचास रुपया, दो क्लर्कों को क्रम से तीस रुपया और बीस रुपया, आफिस का किराया चालीस रुपया, एक चपरासी का वेतन दस रुपया, रोशनी पन्द्रह रुपया और एक सौ रुपया पत्र-पत्रिकाओं के लिए। इस प्रकार कुल मिलाकर तीन सौ रुपया का खर्च बैठता है। बाकी रुपया आपकी योजना के अनुसार अनुवादकों में बाँट दिया जा सकता है। अनुवादक विश्वसनीय होने चाहिये। प्रचार-पत्र में अनुवादकों के नामों का उल्लेख रहना चाहिये। यदि हम लोग उर्दू संसार को भी लेवें तो आपकी योजना का क्षेत्र विस्तृत हो जावेगा। किसी लेख का अनुवाद हिन्दी में हो जाने पर उर्दू में वह बड़ी आसानी से रूपान्तरित किया जा सकता है। जो सूची आपने माँगी थी मैं उसे भेज रहा हूँ। वह पूरी नहीं है, पूरी के करीब है। यदि जनता सहयोग दे तो सब कुछ हो सकता है। कुछ बातें सहयोग पर निर्भर हैं। जब कार्यालय

का व्यय तीन सौ रुपया है तो अनुवादकों का पारिश्रमिक एक और पाँच के अनुपात में होना चाहिए। यदि हमें प्रति मास एक हजार रुपया भी प्राप्त हो जायँ, तो योजना बड़े मज़े में चलाई जा सकती है। पाँच सौ रुपया भी कोई निराशाजनक रकम नहीं है। ऐसी हालत में हमें कार्यालय का व्यय घटाना होगा। फिलहाल मकान के भाड़े का कोई प्रश्न नहीं उठेगा। इस सम्बन्ध में कुछ अनुभवी व्यक्तियों जैसे श्री कृष्णाराम मेहता अथवा श्री विश्वनाथ प्रसाद से बात करने में क्या हर्ज़ है ? दो-एक व्यक्तियों ने इस विषय में मुझे पत्र लिखे हैं। प्रचार-पत्र इस रूप में तैयार किया जाना चाहिए जिससे लोगों पर प्रभाव पड़ सके और वे यह अनुभव करें कि उन्हें सेवा के बतौर नहीं बल्कि स्वयं अपने हित में सहयोग देना है। प्रारम्भ में निम्न व्यक्तियों को हमें अपने साथ लेना होगा—1. प्रोफेसर इन्द्र, 2. बनारसीदास जी, 3. डॉ. हेमचन्द्र जोशी, 4. मिस्टर श्रीप्रकाश और, 5. आगरा के श्री पालीवाल जी।

प्रारम्भिक अवस्था में ज़मीन को तैयार करने के लिए बहुत परिश्रम-साध्य काम करना पड़ेगा। व्यय भी काफी करना पड़ेगा, टिकटों का ख़र्च खासतौर से होगा। प्रायः आधे दर्जन योग्य व्यक्ति हमारा साथ देने को तैयार हो जायँ, तो प्रचार-पत्र तैयार करके विस्तृत योजना, सम्मतियों के साथ, समस्त संवादपत्रों के सम्पादकों तथा मालिकों के पास भेज दी जाय व यदि योजना का स्वागत हुआ तो समझ लेना चाहिए कि हम लोगों ने बाज़ी मार ली, अन्यथा नहीं। प्रारम्भ में यदि सामान्य परिमाण में कार्य चलाया जा सके तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।

उर्दू संवादपत्रों की सूची मुंशी दयानारायण निगम से प्राप्त की जा सकती है। मेरा ऐसा खयाल है कि असग़र साहब को सब पत्रों के नाम याद नहीं होंगे। मुंशी दयानारायण तथा और दो-एक सज्जनों की भी सम्मतियाँ इस योजना के संबंध में जान लेनी चाहिए। उर्दू का क्षेत्र काफी बड़ा है और अगर वे लोग सहयोग दें तो यह बधाई का विषय होगा। प्रारम्भिक व्यय के लिए आप मेरा कमीशन काट सकते हैं, जो हिन्दुस्तानी एकेडमी से मुझे प्राप्य है। प्रायः बीस रुपये मुझे पाने हैं। फ़िलहाल इस रक़म से काम किसी तरह चालू किया जा सकता है।

यदि आप समय निकाल सकें तो आपसे अच्छा संचालक दूसरा नहीं मिल सकता। अभी किसी योग्य व्यक्ति को पूरे समय के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता। आप पहले योजना के संबंध में कुछ लोगों से वार्तालाप कर लें। उसके बाद मुझे बुला लें। मैं आपके साथ आपके घर पर भोजन करते हुए योजना के संबंध में विस्तार से बातें करूँगा। इसके लिए मैं एक दिन का समय दे सकता हूँ।

आपका स्नेही, धनपत राय।



10 साउथ रोड, इलाहाबाद, 6 जून, 1933

प्रिय प्रेमचंद जी,

आपके पत्र के लिये बहुत धन्यवाद। मैं आपकी सावधानी से पूर्णतया सहमत हूँ। प्रान्तीय शाखाओं के खोलने के संबंध में मैंने जो प्रस्ताव किया था उससे मेरा उद्देश्य विभिन्न केन्द्रों के कार्यकर्ताओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना था। हम लोग अब उस

स्थिति पर पहुँच गये हैं जब कि इस विषय पर बातचीत करके कुछ निश्चित निर्णयों पर पहुँच सकते हैं। यदि आप अगले सप्ताह के अन्त में इलाहाबाद आ सकें तो रविवार 11 जून को हम लोग योजना को निश्चित रूप देकर कार्यवाही शुरू कर सकते हैं। कृपया अपने आने को सूचना मुझे पहले से दे दें ताकि यहाँ दो-एक व्यक्तियों को भी समय पर सूचना मिल जावे।

आपका, रामचन्द्र टण्डन।

●●

सरस्वती प्रेस काशी, 7 जून, 1933

प्रिय उषा देवी मित्रा जी, वंदे।

आपका पत्र मिला। मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि आपको हिन्दी से प्रेम है और आप हिन्दी साहित्य में आना चाहती हैं। मैं आपका स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ। लेकिन असली चीज़ 'प्रतिभा' है। यदि आपमें वह है तो मैं या कोई दूसरा मनुष्य चाहे आपका स्वागत न करे, वह आप अपना मार्ग निकाल लेगी। आप कृपा कर कुछ लिखें और मेरे पास भेज दें। मैं एक छोटे से पैराग्राफ के नोट के साथ वह लेख छाप दूंगा, यदि वह अच्छा हुआं। अन्यथा आपसे फिर लिखने को कहूँगा। मैं तो दिल से चाहता हूँ कि हिन्दी का क्षेत्र बढ़े। मैं आपकी रचना का इंतज़ार करूँगा।

शुभाभिलापी, प्रेमचन्द।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 22 जून, 1933

भाईजान,

तसलीम। आप भी ख़ामोश और मैं भी दम बखुद। मालूम नहीं मैंने आपको खबर दी थी या नहीं। बेटी एक बच्चे की माँ हुई और साथ ही बीमार भी। ज़च्चाख़ाने में ही बुख़ार दामनगीर हुआ। महीने भर तक ज़नाने अस्पताल में रही। अब घर पर है। यानी अपनें घर पर। कुछ न कुछ टेम्परेचर हो जाता है। दोनों बच्चे और उनकी माँ उसे देखने गये थे और एक माह से ज़ायद हुआ है, अभी लौटे नहीं हैं। आपकी तरफ़ सब फ़ज़्ल है न ?

किताबों के हिसाब के मुताल्लिक़ आपके मैनेजर साहब ने कुछ न लिखा। मेरा हफ़्तेवार अभी तक ख़सारे पर है और मुझे बहुत परीशान कर रहा है। छपता तो दो हज़ार है और बिक भी जाता है मगर इश्तहार न होने के बाइस माहवार डेढ़ सौ की चपत देता है। और तो सब ख़ैरियत है।

आपका, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 6 जुलाई, 1933

प्रिय उषा, आशीर्वाद।

तुम्हारी कहानी पढ़कर चित्त प्रसन्न हो गया। मैं नहीं समझता था तुम इतना सुन्दर गल्प लिख सकोगी। शैली, भाव तथा चरित्र, सभी दृष्टि से कहानी अच्छी है। हाँ, भाषा में कहीं-कहीं अशुद्धि है। वह ठीक हो जायगी। यदि कहानी इतनी लम्बी न होती, आदि

का भाग कुछ कम कर दिया जाता तो अच्छा होता। नाम भी बदलना होगा। 'साकी' तो कोई नाम नहीं है। उसका सकीना कर देना होगा। और सुन्दर प्रसाद की जगह अगर कोई मुसलमान चरित्र ही रहे तो क्या बुरा हो। कहानी का अंत अगर इस तरह होता कि सुंदर की स्त्री मर गयी होती और साकी का प्रेम उसके स्वार्थी हृदय पर विजय पा लेता। लेकिन तुमने जो अंत किया है वह भी अपने ढंग का अच्छा है। मैं उसमें कोई परिवर्तन न करूँगा। ऐसी दस कहानियाँ भी लिख दो तो हिन्दी के गल्प लेखकों में तुम्हारा स्थान सर्वोच्च हो जायगा। यह शैली मुझे पसन्द आयी।

शुभाभिलाषी, प्रेमचंद।



16 जुलाई, 1933

श्रीमान् जी,

मई, 1933 के 'हंस' में मित्रवर पण्डित विनोदशंकर व्यास द्वारा सम्पादित तथा साहित्य मण्डल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित गल्प-संग्रह 'मधुकरी' (द्वितीय भाग) में सम्मिलित 'अन्तर्द्वंद्व' नामक अपनी कहानी पर आपकी समालोचना देखकर आश्चर्य हुआ। आश्चर्य इसलिए हुआ कि आप जैसे सिद्धहस्त तथा सुप्रसिद्ध गल्पकार की लेखनी से ऐसी निर्मूल समालोचना निकली। यदि आपकी आलोचना यथार्थ पर आधारित होती तो यह पत्र लिखने की आवश्यकता न पड़ती, लेकिन उसमें तो असत्य ही असत्य है।

आपकी आलोचना पर लिखने से पहले 'अन्तर्द्वंद्व' का सारांश दे देना आवश्यक है–विवाह होने से पहले कमला दाम्पत्य जीवन के सुखद स्वप्न देखा करती थी। उसका ख़याल था कि ससुराल में उसे ऐश्वर्य प्राप्त होगा, और स्वामी के स्नेह की अधिकारिणी होकर वह गृह-साम्राज्य में एकच्छत्र राज करेगी, किन्तु ससुराल में आकर उसके स्वप्नों की लड़ी बिखर गयी। वहाँ उसे वह सब न प्राप्त हुआ जिसकी उसे आशा थी। उसका प्रति हृदयनारायण ज़िले का सुप्रसिद्ध वकील था और वह कमाता भी यथेष्ट था, किन्तु वह कृपण था और गृह-कार्य में भी कमला को स्वतन्त्रता न देता था। इसलिए कमला के स्वभाव और हृदयनारायण के स्वभाव में युद्ध छिड़ गया। कमला हार गयी, और उसने आत्मसमर्पण कर दिया। गृहस्थी की जर्जर तरी किसी तरह चलती रही। एक दिन हृदयनारायण के साथ दूर के रिश्ते का उसका एक भाई गोपाल आया। गोपाल अविवाहित, फ़ैशन में डूबा हुआ सहृदय युवक था। कमला गोपाल की ओर आकर्षित हुई। उसने उससे दिल खोलकर बातें कीं, और जब विदा होकर घर से बाहर निकला तो वह दरवाज़े की आड़ से उसकी ओर देखने लगी। अपना वादा पूरा करने के लिए दूसरे दिन गोपाल फिर आया, और कमला के लिए बहुमूल्य उपहार लाया। कमला का हृदय कृतज्ञता से भर गया, और गोपाल के प्रति उसका आकर्षण बढ़ गया। दूसरे दिन मध्याह्न के समय आने का वादा लेकर उसने गोपाल को विदा किया। जब दूसरे दिन मध्याह्न के समय गोपाल आया और कमला ने दरवाज़ा खोला तो वह उसे देखकर चकित रह गया। कमला सिर से पैर तक सजी हुई थी। उसके शरीर पर गोपाल की दी हुई साड़ी थी, जैकट था, और कपड़ों में 'यूडिकोलोन' लगा हुआ था। कमला जब गोपाल को शयनागार में लिवा ले गयी तो वहाँ पर उसे अन्य दिनों से अधिक सफ़ाई-सुथराई दिखाई दी। अपने हृदय

की गुप्त भावना से प्रेरित होकर, गोपाल ने पूछा, "क्यों भाभी, आपने आज मुझे इस वक़्त क्यों बुलाया था ?" कमला बड़े असमंजस में पड़ गयी, पर उसे एक उपाय सूझ गया। उसने कहा, "लाला, मैं रामायण कई जगह समझ नहीं पाई, आपने समझाने का वादा किया था, ज़रा बता दीजिएगा।" रामायण लेकर गोपाल उन पंक्तियों का अर्थ करने लगा, किन्तु कमला तो केवल गोपाल के "स्वर और शब्दों का संगीत सुनना चाहती थी, अर्थ से उसे कोई प्रयोजन न था !" टीका-व्याख्या समाप्त हो गयी। कमला ने गोपाल को पान दिया। पान लेते समय गोपाल ने कमला की आँखों में उन्मत्तकारी भावों की छाया देखी। वह तड़प उठा। भावोन्माद उसके हृदय में ताण्डव-नृत्य करने लगा। खड़े होकर स्वर में असीम विनय भरकर उसने पुकारा, "भाभी !" किन्तु "ज़मीन पर आँखें गाड़े, घुटनों को करों से कसकर बाँधे हुए, कमला जैसी की तैसी निश्चल बैठी रही !" गोपाल कई क्षण मूर्तिवत् खड़ा रहा, फिर टोपी और छड़ी लेकर अवरुद्ध कण्ठ से बोला, "जाता हूँ, भाभी !" क्षीण, लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कमला ने पूछा, "फिर कब आइएगा, लाला ?" "कह नहीं सकता ! आदाब अर्ज़ !" उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही गोपाल जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा। कमला अपने स्थान से उठकर पलंग पर गिर पड़ी, और लोटने लगी—जैसे जल से बाहर निकलकर मछली तड़पती है। वह रेशमी साड़ी, वह जैकेट, यू-डि-कोलोन की वे लपटें उसके शरीर में सहस्रों विच्छुओं के समान डंग मारने लगीं, आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी, और कमरे के उस पार मेघाच्छादित आकाश में श्रावण की काली-काली घटाएँ गरज-गरज कर कमला के हृदय में हूक पैदा करने लगीं।"

कहानी यह है। इस पर आप यों आलोचना करते हैं—"राजेश्वरप्रसाद सिंह जी का 'अन्तर्द्वन्द्व' भी यथार्थवाद का बिगड़ा हुआ चित्र है। हृदयनारायण का व्यवहार कहीं ऐसा नहीं दिखाया गया, जिससे उसकी स्त्री को उससे असन्तुष्ट होने का कोई कारण होता। उसकी आमदनी कम है, और वह स्त्री को अच्छे-अच्छे उपहार नहीं दे सकता। क्या इतना अपराध ही स्त्री के मन में गोपाल के प्रति ऐसी भावना उत्पन्न करने के लिए काफ़ी है ? अगर पुरुष या स्त्री इस तरह उपहारों पर लोट-पोट हो जाने लगें तो ग़रीब आदमी की सुख-शान्ति का अन्त ही हो जाय।" इन पंक्तियों को पढ़कर ज्ञात होता है कि या तो आपने कहानी ध्यान से नहीं पढ़ी या किसी अन्य भाव से प्रेरित होकर ऐसी निर्मूल आलोचना लिख मारी। दोनों बातें सही हैं या एक ही, यह तो आप ही कह सकते हैं।

"राजेश्वरप्रसादसिंह जी का 'अन्तर्द्वंद्व' भी यथार्थवाद का बिगड़ा हुआ चित्र है।" इस पंक्ति का वास्तविक आशय क्या है, यह तो आप जानें। किन्तु इससे ये बातें निकलती हैं—या तो आपने 'अन्तर्द्वंद्व' की कथा को अस्वाभाविक समझ लिया है या समाज को गिराने वाला, या दोनों। अस्वाभाविकता के उत्तर में मैं यह कहना चाहता हूँ कि अनेक सच्ची घटनाओं के आधार पर मैंने यह कहानी लिखी थी, और इस पत्र के सहस्रों पाठक कदाचित् मेरी इस बात का अनुमोदन करेंगे कि हमारे समाज में ऐसी घटनाएँ आये दिन हो रही हैं। कमला अपने पति से असन्तुष्ट थी, और सहृदय गोपाल से वह सब पाती थी जिसकी हृदयनारायण में कमी थी। इसके अतिरिक्त प्रणय की क्रिया अज्ञात-रूप से

ही आरम्भ होती है। इसलिए, कमला का गोपाल की ओर आकृष्ट होना अत्यन्त स्वाभाविक था। रही समाज को गिराने वाली बात, 'अन्तर्द्वंद्व' कहानी समाज को गिराने वाली नहीं है, क्योंकि उसमें आदर्शवाद भी है। कमला और गोपाल के हृदयों में एक-दूसरे के प्रति आसक्ति है, किन्तु दोनों अपने मनोभावों को मुख से नहीं निकालते। केवल मूक चित्र-पट के पात्रों की भाँति, दोनों अपना-अपना पार्ट करते हैं। जब कमला आगे बढ़ती है, तो गोपाल पीछे हटता है; और जब गोपाल आगे बढ़ता है, तो कमला पीछे हटती है। इस तरह कमला की, गोपाल की और हिन्दू-समाज की मर्यादा की रक्षा होती है।

"हृदयनारायण का व्यवहार कहीं ऐसा नहीं दिखाया गया, जिससे उसकी स्त्री को उससे असन्तुष्ट होने का कोई कारण होता।" यह बात भी बिल्कुल ग़लत है। 'अन्तर्द्वंद्व' के पहले अध्याय को अगर आप ध्यान से पढ़ने का कष्ट उठाते, तो ऐसा न कहते। पहले अध्याय में देखिए—"विवाह होने से पहले कमला दाम्पत्य जीवन का सुखद स्वप्न देखा करती थी। उसके कल्पना-सम्पन्न मन में जिस भव्य-भवन का निर्माण हुआ था, वह ऐश्वर्यपूरित था, उसकी सभी बातें अनोखी थीं। उसमें रहने वाले जीव संसार के साधारण प्राणी न थे। कमला ने सोचा था, वह उस भवन की स्वामिनी होगी, और स्वामी के अगाध स्नेह और आदर की अधिकारिणी, किन्तु विवाह के बाद ससुराल आकर उसे ज्ञात हुआ कि संसार को नव-यौवन की रँगीली आँखें जैसा देखती हैं, वास्तव में वह वैसा नहीं। उसकी आशाओं और उमंगों पर पानी फिर गया। ससुराल की कोई बात उन स्वप्नों से न मिलती थी, जिनकी सृष्टि में उसने अपनी सारी कल्पना-शक्ति ख़र्च कर दी थी। उसका घर एक साधारण घर था, और उसका स्वामी वह था जिससे मिलने के विचार ही से उसका हृदय घृणा से भर जाता था।" अपने माता-पिता की अकेली बेटी होने के कारण मायके में कमला का विशेष मान था। उसे पूर्ण स्वतन्त्रता थी, उसकी इच्छा-शक्ति पर किसी दूसरे का अधिकार न था, किन्तु ससुराल में परिस्थिति और थी। यहाँ स्वतन्त्रता नहीं, पराधीनता थी।"

"ससुराल में कमला के अतिरिक्त कोई दूसरी स्त्री न थी, फिर भी वह घर की स्वामिनी नहीं थी। पतिदेव की राय के बिना उसे कोई काम करने का अधिकार न था। हृदयनारायण अपने स्वामित्व के अधिकारों से पूरा-पूरा लाभ उठाये बिना कैसे रह सकते थे ? उनकी शास्त्र-नीति में 'कुछ ले, कुछ दे' के सिद्धान्त के लिए स्थान न था। वे ले सब-कुछ सकते थे, दे कुछ नहीं !" जिन स्वप्नों को लेकर कमला ससुराल आई, उन्हें देखते हुए हृदयनारायण से उसे कुछ कम भी मिलता, तो भी शायद कमला सन्तुष्ट रहती। किन्तु हृदयनारायण तो उसे कुछ नहीं देना चाहता था। वह उसे न अच्छा खाने-पहनने को देता था, न गृह-कार्य में स्वतन्त्रता। हृदयनारायण का ऐसा व्यवहार कमला को असन्तुष्ट रखने के लिए क्या पर्याप्त न था ?

"उसकी आमदनी कम है, और वह स्त्री को अच्छे-अच्छे उपहार नहीं दे सकता।" यह बात भी निर्मूल है। हृदयनारायण धनहीन नहीं, कृपण है। पहले ही अध्याय में लिखा है—"यह बात न थी कि बाबू हृदयनारायण दरिद्र हों। नहीं, आपकी गणना ज़िले के सुप्रसिद्ध वकीलों में थी और आप कमाते भी यथेष्ट थे, किन्तु आपके और कमला के विचारों में आकाश-पाताल का अन्तर था। कमला जिन संस्कारों में पलकर बड़ी हुई थी,

बाबू साहब पर उनकी छाया तक न पड़ी थी। कमला ने मायके में एक बात सीखी थी–धन मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र है, किन्तु बाबू साहब इस सिद्धान्त से सहमत न थे; धन की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन ही नहीं, उपासना की वस्तु भी समझते थे।" और–"हृदयनारायण के स्वभाव में सुरुचि का अभाव था। एक वेशभूषा की ही बात ले लीजिए। आपका कोई वस्त्र ऐसा न था, जो अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ न गिन रहा हो। पुराने कपड़े यदि साफ़ हों, तो इतने बुरे नहीं लगते, किन्तु विधि-वाम ने कपड़ों के भाग्य में सुख न लिखा था। वे पसीने से तर हो जाते, उनसे दुर्गन्ध निकलने लगती, किन्तु धोबी का घर देखने का अलभ्य सौभाग्य प्राप्त हाने में विलम्ब होता ही रहता। जब हृदयनारायण की स्वयं अपनी दशा यह थी, तो फिर स्त्री का 'सँवार-सिंगार' आप किन आँखों से देखते ? 'सँवार-सिंगार' में क्या फ़िज़ूलखर्ची नहीं हाती ? सादगी क्या अवगुण है ? फिर, हृदयनारायण अपनी स्त्री को उस मार्ग पर कैसे चलने देते, जिसमें तबाही थी–केवल तबाही थी ? माना कि, वह मायके से यथेष्ट गहने-कपड़े लेकर आई थी, लेकिन रोज़-रोज़ पहनने से क्या वे खराब नहीं होते, फिर उन्हें दुरुस्त कराने में क्या कुछ ख़र्च नहीं होता ?" इन उद्धरणों से सिद्ध है कि हृदयनारायण सम्पन्न था, किन्तु घोर कृपण था। फिर, आपने कैसे अनुमान कर लिया कि हृदयनारायण की आर्थिक दशा अच्छी न थी ? अच्छे-अच्छे उपहार न देकर, सुरुचिपूर्ण सादगी से रखकर भी स्त्री को सन्तुष्ट रखा जा सकता है, किन्तु हृदयनारायण के स्वभाव में तो सुरुचि का ही अभाव था।

"क्या इतना अपराध ही स्त्री के मन में गोपाल के प्रति ऐसी भावना उत्पन्न करने के लिए काफ़ी है ? अगर पुरुष या स्त्री इस तरह उपहारों पर लोट-पोट हो जाने लगें, तो ग़रीब परिवारों की सुख-शान्ति का अन्त ही हो जाय।" ये पंक्तियाँ भी कितनी भ्रमपूर्ण हैं। गोपाल से उपहार पाने के कारण भी उसके मन में उसके प्रति आसक्ति उत्पन्न नहीं होती। आसक्ति की क्रिया उसी समय आरम्भ हो जाती है जब कमला पहले-पहल गोपाल की आवाज़ सुनती है, और आँगन में लौटकर उसकी बात सोचने लगती है। गोपाल को देखने और उससे बातें करने के बाद आसक्ति बढ़ जाती है। उसे उपहार तो गोपाल दूसरे दिन भेंट करता है। जिन कारणों से कमला की आसक्ति में उग्रता आती है, उनमें से गोपाल का उपहार-भेंट एक अवश्य है, किन्तु अन्य कारण हैं–स्वप्नों की धूम के कारण कमला का मानसिक वातावरण, हृदयनारायण के अनुचित दुर्व्यवहार के कारण उसका दाम्पत्य जीवन से असन्तोष, और गोपाल का कमला के आदर्शानुरूप होना।

'अन्तर्द्वंद्व'–कहानी सर्वथा निर्दोष हो या न हो, किन्तु उसमें वे दोष नहीं हैं जो आपने दिखाये हैं। उसमें उस मधुर-कटु भावना की अभिव्यक्ति है जो किसी पुरुष या स्त्री के हृदय में किसी स्त्री या पुरुष को अपने अनुरूप पाकर सदा उठती रही है और सदा उठती रहेगी, और उस भावना की अभिव्यक्ति की गयी है स्वाभाविक तथा संयत ढंग से।

खण्डनात्मक आलोचना का अभिप्राय यदि मण्डनात्मक हो तो वह स्वागत के योग्य है। किसी लेखक को उसकी त्रुटियाँ दिखा देने से उसे लाभ हो सकता है, किन्तु खण्डनात्मक आलोचना जब निर्मूल, निराधार तथा असत्य धारणाओं को लेकर की जाती

है, तो वह हेय तथा अवहेलना के योग्य ही होती है। आपकी आलोचना ऐसी ही है। ऐसी भ्रमात्मक तथा अन्यायपूर्ण समालोचना लिखकर न तो आपने अपना ही उपकार किया हैं, न मेरा, न हिन्दी-संसार का। अतएव न्याय इसी में है कि यदि आपने असावधानी के कारण या भ्रमवश यह आलोचना की हो तो अपनी भूल स्वीकार कीजिए, और यदि इसका कारण कोई अन्य भाव हो तो उसे मन से निकाल दीजिए।

अन्त में इतना मैं आपसे और कहना चाहता हूँ—साहित्य का क्षेत्र सुविस्तृत है, विशाल है। इसमें एक ही नहीं, अनेक साहित्यिकों के लिए गुंजाइश है। इसलिए—'Live and let live !'

भवदीय, राजेश्वरप्रसाद सिंह।



बनारस सिटी, 17 जुलाई, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

आदावअर्ज़। भई वाह ! मानता हूँ। जून गया, जुलाई गया और अगस्त का मैटर भी जाने वाला है। जुलाई बीस तक निकल जायगा। लेकिन हजूर को याद ही नहीं। क्यों याद आये। बड़े आदमी होने में यही तो ऐब है। रुपये तो अभी कहीं मिले नहीं। लेकिन यश तो मिल ही गया है और यश के धनी धन के धनी से क्या कुछ कम मग़रूर और भुलक्कड़ होते हैं !

अच्छा दिल्लगी छोड़ो। यह वात क्या है ? तुम क्यों मुझसे तने बैठो हो ? न कहानी भेजते हो, न ख़त भेजते हो। मैं इधर बहुत परेशान रहा। याद नहीं आता अपनी कथा कह चुका हूँ। बेटी के पुत्र हुआ और उसे प्रसूत ज्वर ने पकड़ लिया। मरते-मरते बची। अभी तक अधमरी-सी है। बच्चा भी किसी तरह बच गया। आज बीस दिन हुए यहाँ आ गयी है। उसकी माँ भी दो महीने उसके साथ रही। मैं अकेला रह गया था। बीमार पड़ा, दाँतों ने कष्ट दिया। महीनों उसमें लग गये। दस्त आये और अभी तक कुछ न कुछ शिकायत बाकी है। दाँतों के दर्द से भी गला नहीं छूटा। बुढ़ापा स्वयं रोग है और अब मुझे उसने स्वीकार करा दिया कि अब मैं उसके पंजे में आ गया हूँ।

काम की कुछ न पूछो। बेहूदा काम कर रहा हूँ। कहानियाँ केवल दो लिखी हैं, उर्दू और हिन्दी में। हाँ, कुछ अनुवाद का काम किया है।

तुमने क्या कर डाला, अब यह बताओ ? 'रंगभूमि' से क्या रहा ?. निभा जाता है या नहीं ? कोई नयी चीज़ कब आ रही है ? बच्चा कैसा है ? भगवती देवी कैसी हैं ? माता जी कैसी हैं ? महात्मा जी कैसे हैं ? सारी दुनिया लिखने को पड़ी है, तुम ख़ामोश हो।

'सरस्वती' में वह नोट तुमने देखा ? आज पं. बनारसीदास जी के पत्र से मालूम हुआ कि यह शास्त्री जी की दया है। ठीक है। मैं तो खैर बूढ़ा हो गया हूँ और जो कुछ लिख सकता था लिख चुका और मित्रों ने मुझे आसमान पर भी चढ़ा दिया। लेकिन तुम्हारे साथ यह क्या व्यवहार। भगवतीप्रसाद बाजपेयी की कहानी बहुत सुंदर थी और इन चतुरसेन को क्या हो गया है कि 'इस्लाम का विष-वृक्ष' लिख डाला ! इसकी एक आलोचना तुम लिखो और वह पुस्तक मेरे पास भेजो। मैंने चतुर्वेदी जी से प्रस्ताव माँगी

है। इस कम्युनल प्रोपेगेंडा का ज़ोरों से मुक़ाबला करना होगा और यह ऋषभ भले आदमी भी इन चालों से धन कमाना चाहता है।

यहाँ एक कवि-सम्मेलन कल हुआ। आज दूसरा है। शीघ्र पत्र लिखो। कहानी पीछे भेजना।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 17 जुलाई, 1933

प्रिय भाई,

मैं अनुमान लगाने की कोशिश कर रहा था कि यह मनीराम कौन हो सकता है और इन सज्जन के बारे में मेरे मन में एक हल्का-सा संदेह था। तो अब बात साफ हो गयी। यह महाशय आजकल कहानियाँ लिख रहे हैं और हिन्दी की दुनिया में एक तहलका मचाने की कोशिश कर रहे हैं। मगर अब तक उनकी कोशिशें नाकाम-सी मालूम पड़ती हैं।

'इस्लाम का विष-वृक्ष' मैंने नहीं देखा है। मगर 'चित्रपट' में उसका जो विज्ञापन निकल रहा है, उससे मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि वह क्या है। यह साम्प्रदायिकता फैलाने की एक बेहद शरारतभरी और नीच कोशिश है और उसका पर्दाफ़ाश करना ही होगा। किताब पढ़ने के बाद मैं खुद उसके बारे में लिखने की सोच रहा था और अब जब कि आपने इस मामले को उठा लिया है, मैं दिलोजान से आपके साथ हूँ। इसकी परवाह मत कीजिये कि हम लोग अल्पमत में हैं। हमारा लक्ष्य पवित्र है। जुलाई का हंस पूरा हो गया है, इसलिए मैं आपका नोट जागरण में दे रहा हूँ। अगर आप मेरे पास किताब भेज दें तो मैं इस मसले पर एक पूरा सम्पादकीय लिखूँ।

एक बात और। मेरे पास आपका एक जीवनवृत्त है और मैं उसे हंस में देना चाहता हूँ। क्या आप मुझे अपना ब्लाक या अगर ब्लाक न हो तो अपनी सबसे नयी तसवीर भेज सकते हैं, बहुत कृतज्ञ हूँगा। सस्नेह।

आपका, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, 1 अगस्त, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

तुम्हारा पत्र मिला। (बच्चे) का हाल सुनकर चिंता हुई। अब तो अच्छा हो रहा होगा। इधर मैं भी स्वस्थ नहीं हूँ, लेकिन काम किये जाता हूँ।

आजकल हिन्दी में अजीब धाँधली है। जिसकी पुस्तक की बुरी आलोचना कर दो वह लड़ने पर तैयार हो जाता है। इसलिए मैंने इरादा किया है कि कहानी और उपन्यासों की आलोचना करना ही छोड़ दूँ। जिसकी तारीफ़ कर सकूँगा, उसकी आलोचना करूँगा, जिसकी तारीफ़ न कर सकूँगा, उसे किनारे रख दूँगा। 'सरस्वती' ने तो वह (लेख) छापा ही था, अब 'सुधा' और 'माधुरी' भी टिप्पणियाँ करते जाते हैं।

पुस्तकों की खपत बहुत कम है। फिर भी 'अज्ञेय' जी की पुस्तकें भिजवा देना। 'हस्त रेखा' की आलोचना अच्छी हो तो करवा देना।

बच्चा अच्छा होगा। भगवती को आशीर्वाद कहना। बेटी अच्छी है, और सभी चले जा रहे हैं।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

वणिक प्रेस, 1, सरकार लेन, कलकत्ता, 3-8-33

प्रिय प्रेमचन्द जी,

'प्रेम-पचीसी' की बाक़ी एक कहानी शीघ्र भेज दें या लिखें कि वह 'माधुरी' के किस अंक में मिलेगी। पुस्तक लगभग छप चुकी है। केवल उसी एक कहानी के लिए एक फ़ॉर्म रुका हुआ है। इसके सम्बन्ध में यदि कुछ और लिखना हो तो लिखकर शीघ्र भेज दें। शेष कृपा। योग्य सेवा लिखें।

आपका, जगदीशनारायण।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 9 अगस्त, 1933

प्रिय बनारसीदास जी

जागरण में जो मज़ाक़िया नोट निकला था उसका मुझे बिल्कुल पता न था। सच कहता हूँ सरस्वती में जो सब खुराफ़ात लिखी गयी थी उस पर मैंने एक क्षण के लिए विश्वास नहीं किया। मैं फ़ौरन समझ गया कि शुरू से लेकर आख़िर तक वह बदमाशी है। उस आदमी ने आपमें और सारी दुनिया में रार पैदा करने की कोशिश की है। मगर माफ़ कीजिएगा। आपको भी चाहिए कि ऐसे बेईमान स्वार्थसेवियों से बच कर रहें। कभी कोई ऐसी बात न कहिये जो आप पूरी संजीदगी से कहना न चाहते हों। मैं इस इंटरव्यू के बारे में 'हंस' में एक नोट लिखने जा रहा हूँ। आपको अदालत में इस मामले को उठाना चाहिए। परिस्थिति का यही तक़ाज़ा है। जब उसने साफ़-साफ़ तौर पर यह नहीं कहा कि वह किसी पत्र के लिए इंटरव्यू ले रहा है और आपको उस इंटरव्यू की कापी नहीं दिखायी तब वह कैसे इस तरह की भयानक बातें आपके मुँह में डालकर आपकी ख्याति को ऐसी अपूरणीय क्षति पहुँचा सकता है।

क्या आप यह चाहेंगे कि मैं उस खत का अनुवाद छाप दूँ, जो आपने लिखा है?

आपका, प्रेमचंद।

●●

बनारस, 16 अगस्त, 1933

प्रिय जैनेन्द्र,

कहानियाँ और पत्र ठीक-ठीक पहुँच गये। धन्यवाद। ठाकुर श्रीनाथसिह जी वाली इंटरव्यू कुरुचिपूर्ण थी और अत्युक्तियों से भरी हुई। मैंने हंस में एक टिप्पणी दी है; यह लोग सस्ती ख्याति के पीछे पड़े हैं और सनसनीखेज़ पत्रकारिता उसके लिए राजमार्ग है। मुझे उम्मीद है कि श्रीनाथसिंह इस शरारत को दोहराएँगे नहीं।

मुझे यह जानकर अफ़सोस हुआ कि तुम्हारे मामले काफ़ी परेशान कर रहे हैं, ऐसा लगता है कि रंगभूमि का कारबार ठीक से नहीं चला। साहित्यिक उद्योग से तुम आशा भी और क्या कर सकते थे ? हर जगह वही पुरानी कहानी है। किताबों की बिक्री इतनी

निराशाजनक है कि भविष्य की बात सोचकर कलेजा थाम लेना पड़ता है। तुम मुझसे जागरण बन्द करने को कहते हो। एक से ज़्यादा मर्तबा उसके बारे में सोच चुका हूँ। लेकिन चूँकि मैं उस पत्र पर करीब तीन हज़ार का घाटा उठा चुका हूँ, उसे बंद कर देने में मुझे कठिनाई हो रही है। साहित्य सृष्टि अनिश्चित-सी चीज़ है। उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अलावा इसके, उसके लिए मानसिक शान्ति और वातावरण की शान्ति अपेक्षित है जो कि वर्तमान स्थितियों में हाथ नहीं आती। प्रेस को चलाना ही पड़ेगा। मैंने अपने भाई का रुपया उसमें लगा दिया है और अपनी ज़िम्मेदारियों से अब नहीं बच सकता। यहाँ पर काम बहुत कम है। थोड़ा-बहुत जो है, वह ज़्यादा सस्ते प्रेस हथिया लेते हैं। प्रेस को काम देना है। जागरण से औसतन क़रीब चार सौ रुपये वसूल होते हैं। इसका मतलब है कि उससे प्रेस का खर्चा निकल आता है। जागरण में जो काग़ज़ इस्तेमाल होता है उसकी कीमत लगभग डेढ़ सौ रुपये होती है। यह रक़म हर महीने हंस से और किताबों की बिक्री से पूरी करनी पड़ती है। बिक्री अगर संतोषजनक होती तो सब ठीक-ठीक रहता। हमने 'फाँसी', 'रूपराशि', 'बिखरे फूल' और 'प्रेम की वेदी' छापी हैं। अब हम 'प्रतिज्ञा' छाप रहे हैं और उसके खतम होते ही 'कायाकल्प' शुरू करेंगे। इस तरह तुम देखोगे कि यहाँ तक असासे की बात है हम नफ़े में काम कर रहे हैं। लेकिन रुपये का सम्पूर्ण अभाव है। कोई भी किताब नहीं विक रही है मेरे एक-दो संग्रह जो स्कूलों में मंजूर हैं, वही किसी तरह स्थिति को सम्हाले हुए हैं। कर्मभूमि भी काफी अच्छी बिक रही है। जागरण बड़े मज़े में मुनाफ़े की चीज़ हो सकती है, अगर मैं धीरज के साथ उसमें लगा रह सकूँ। उससे अगर मुझे महीने में सौ रुपये की भी आमदनी हो जाय तो मैं सन्तुष्ट हूँ। मुझे उम्मीद है कि दूसरे वर्ष के अन्त तक वह मेरे लिए बोझ न रह जायगा।

'कायाकल्प' के खत्म होते ही मैं तुम्हारी 'मैग्डलीन' हाथ में लूँगा। मैं कितना चाहता हूँ कि तुम्हारी सब रचनाएँ प्रकाशित करूँ और तुमको तुम्हारी छोटी-छोटी चिन्ताओं से मुक्त कर दूँ।

तुमने 'यामा' का अनुवाद शुरू किया है, बहुत अच्छी बात है। विश्व का मेरा इतिहास समाप्त हो गया है। अब मैं फिर अपना 'गोदान' उठाऊँगा।

मुझे उम्मीद है कि मैं बहुत जल्द ही तुमको कुछ भेजूँगा। जहाँ तक महावीर की बात है, अगर तुम सोचते हो कि वह अच्छा सेल्समैन हो सकता है, और अच्छा बिज़नेस ला सकता है तो मुझे उसको अपने पास रखकर खुशी होगी। मेज़ पर बैठकर करने लायक़ कोई काम नहीं है। उसको बिहार, राजपुताना, आदि का दौरा करना पड़ेगा। अगर वह अच्छा काम करता है तो कोई वजह नहीं है कि वह क्यों हमारा स्थायी सेल्समैन न बने। शुरू में मैं उसके कच्चेपन के लिए छूट देने को तैयार हूँ और क़रीब छः महीने तक का ट्रायल उसको दूँगा : अगर वह महीने में दो सौ रुपये की बिक्री कर सके या हंस और जागरण के बीस-बीस ग्राहक ला सके और एक सौ रुपये की किताबें बेच सके तो उसकी तनख्वाह और सफर खर्च निकल आयेगा और वह एक कमाऊँ आदमी साबित होगा, बोझ नहीं बनेगा। अगर तुम संतुष्ट हो कि वह इतना सब कर सकता है तो तुम उसको मेरे पास भेज दो या रुके रहो जब तक कि मैं तुमको रुपया नहीं भेजता।

तुम मेरी कुछ मदद क्यों नहीं करते ? साप्ताहिक पत्र को मुनाफे की चीज़ बनाया

जा सकता है और अब भी एक-दो ऐसे पत्र हैं। अगर हम और भी अच्छी सामग्री दे सकें और विज्ञापन हासिल करने के लिए अपना कुछ ज़ोर लगा सके तो हम अपने प्रकाशनों को आगे बढ़ा सकते हैं और फिर प्रकाशकों की टोह में जाने की ज़रूरत न होगी। दुनिया बेधड़क उत्साही लोगों के लिए बनी है जो अपने मौकों का अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं। तुम रोज़मर्रा की चीज़ों पर टिप्पणियों के रूप में कालम दो कालम बड़े मज़े में घसीट सकते हो। बड़े अफसोस की बात है कि इतना सब दिमाग़ रखकर भी हम एक साप्ताहिक को कामयाबी के साथ नहीं चला सकते। तुम मिस्टर बिरला से मिलो और उनको हम लोगों के काम का महत्त्व समझाओ और बतलाओ कि हम कैसी-कैसी परेशानियाँ उठाते हैं। वह एक बड़े विज्ञापनदाता हैं। वह अपनी कपड़े की मिलों, जूट केट उद्योग और बीमे के व्यवसाय का विज्ञापन करते हैं। हमको भी अपना संरक्षण वह क्यों नहीं दे सकते ? अगर तुम सोचते हो कि सुख-सुविधा और धन-सम्पत्ति अपने आप आ जायगी और लक्ष्मी तुम्हारी प्रतिभा के कारण तुम पर इतनी रीझ जायँगी कि आकर तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ेंगी तो तुम धोखे में हो। या तो संन्यासी हो जाओ और सांसारिक अभिलाषाएँ त्याग दो। गृहस्थ होकर जब कि एक परिवार का बोझ हमारे कंधों पर है, हमें कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। जब मेरे जैसा एक टूटा-फूटा बुड्ढा आदमी, जिसके सर पर घर कि तुमसे ज़्यादा बड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं, अकेले दम इतना सब कर सकता है तो फिर तुम्हारे जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति तो चमत्कार कर सकता है।

शुभकामनाएँ लो। हम सब कुशलपूर्वक हैं। सस्नेह—

तुम्हारा, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 18 अगस्त, 1933

प्रिय बनारसीदास जी,

कृपापत्र के लिए धन्यवाद। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि 'विशाल भारत' अपनी मुसीबतों से उबर आया और अब उसे कोई खतरा नहीं है। बधाई !

मैंने 'हंस-वाणी' में एक टिप्पणी लिखी है। एक-दो रोज़ में आपके पास पहुँचेगी। डिस्पैच कल से शुरू होगा। आपको पसन्द आयेगी। मैंने पूरी सच्चाई और सद्भाव से लिखा है। आपको उसका स्वर पसन्द आया या नहीं, लिखियेगा।

बड़े दुख की बात है कि अब तक मेरी चलायी हुई कोई चीज़ अपने पैरों पर नहीं खड़ी हो सकी। 'हंस' पर मुझे बहुत खर्चा नहीं आता मगर 'जागरण' असह्य होता जा रहा है। मैं सोच-सोचकर हैरान हुआ जाता हूँ कि कैसे इस परिस्थिति से बाहर निकलूँ। हर महीने मुझे कोई दो सौ रुपये का घाटा आता है। यह चीज कब तक चल सकती है ? एक बार उसको शुरू करने की ग़लती कर चुकने पर अब उसको बन्द करने के रास्ते में अपना अहम् आड़े आता है। लोग कैसे हँसेंगे और खिल्ली उड़ायेंगे ! अगर मुझे कछ अच्छे विज्ञापन मिल जाते तो मैं घसीट ले जाता। इसमें आप मेरी कुछ मदद कर सकते हैं ? बंगाल केमिकल खूब इश्तहार कर रहा है। 'जागरण' में विज्ञापन देने के लिए उनसे कहा जा सकता है। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा अगर आपका कोई मित्र यह

विज्ञापन हमारे लिए हासिल कर सके। फिर बिरला बन्धु हैं और उनकी जूट की चीज़ें हैं। वे भी खूब विज्ञापन करते हैं। उनसे आप मेरी ओर से प्रार्थना कर सकते हैं। अगर मुझे सिर्फ सौ रुपये महीने की आमदनी हो जाय तो स्थिति सम्हाली जा सकती है। अपनी निजी आवश्यकताओं की मुझे चिन्ता नहीं है। अपनी पुस्तकों और लेखन से मुझको खाने भर को मिल जाता है। मगर इन पत्रों को कैसे चलाऊँ, यही समस्या है। अगर मुझमें यह साहस होता कि इनको बंद कर सकता तो मैं इन सारी परेशानियों से वच जाता मगर वह साहस नहीं जुटता। यह अपनी अयोग्यता की एक दुखद स्वीकृति होगी जिससे मैं अपनी शक्ति भर बचना चाहता हूँ। मैंने आपको दोस्त जानकर अपना दिल आपके सामने खोल दिया है और मुझे आशा है कि यह बात आप ही तक रहेगी। अगर आपको ऐसा कुछ खयाल हो कि मैं आप पर बहुत भारी बोझ डाल रहा हूँ तो आप कोई चिन्ता न करें। आशा है आप सानन्द हैं।

आपका, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 19 अगस्त, 1933

प्रियवर,

Journalism पर बाबू रामानन्द चैटर्जी के विचार मिले। 29 अगस्त के जागरण में जायगा।

हाँ, आप शान्तिनिकेतन के समाचार और अन्य विषय पर समय-समय पर लिखते रहें। मैं सहर्ष छापूँगा। पर जो कुछ लिखो काफी छानबीन के बाद।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 24 अगस्त, 1933

प्रिय भाई,

धन्यवाद। आप अपने लेख के लिए तीन-चार-पाँच पेज ले लें। उसकी कोई बात नहीं है। आप अपनी बात कहिये, इस क़ैद को ख़याल में मत लाइये। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि हम लोग जो काम उठाने जा रहे हैं, आप उसके विस्तार क्षेत्र को समझ रहे हैं।

आपके अत्यन्त मैत्रीपूर्ण परामर्श के लिए मैं सचमुच आपका कृतज्ञ हूँ। उस आदमी के ख़िलाफ मेरे मन में ज़रा भी बुराई नहीं है। सच तो यह है कि मुझे उसके लिए दुख है। लेकिन हिन्दी पाठक इतने उथले और आलोचना-बुद्धि से रहित हैं कि वे ऊटपटाँग से ऊटपटाँग बात को, जो बार-बार उनके कान में डाली जाती है, मान लेने के लिए हरदम तैयार रहते हैं। मगर आगे से मैं अपने ऊपर अधिक संयम रखूँगा।

'भविष्य किनका है' एक बड़ा विषय है और मैंने कभी उसके बारे में सोचा नहीं। इतने लिखने वाले हैं कि उनमें से कुछ को विशेषरूप से गिनाने के लिए चुनना ज़रा कठिन है। साहित्य केवल कहानी नहीं है। उसमें नाटक है, कविता है, आलोचना है, कहानी है, उपन्यास है, निबन्ध है। हमको उन्हें इस तरह विषयानुसार लेना पड़ेगा। माधुरी के दो अंकों में, साल भर से ज़्यादा हुआ, उमर ख़य्याम पर जो लेख निकला था उससे अधिक

सुन्दर आलोचना हिन्दी में मेरे देखने में नहीं आयी। लेखक का नाम शायद रामदयाल तिवारी था। जिन दिनों मैं सम्पादक था, उन दिनों भी माधुरी में एक बड़ी उदात्त आलोचना कालिदास के 'ऋतुसंहार' पर निकली थी। लेखक का नाम मैं भूल गया हूँ लेकिन वह वही सज्जन हैं तो आजकल मथुरा म्युज़ियम के क्यूरेटर हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी में भी अद्भुत व्याख्यात्मक-विश्लेषणात्मक शक्ति है। नाटक हमारे पास बहुत ही कम हैं। रोमाण्टिक स्कूल के प्रसाद हैं, बुद्धिवादी स्कूल के पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र हैं, हास्यरस के श्री जी. पी. श्रीवास्तव हैं। सबसे नया आदमी इस लाइन में भुवनेश्वर है जिसने हाल ही में अपने छोटे-छोटे एकांकियों का संग्रह 'कारवाँ' के नाम से छपाया है। मेरे देखने में भुवनेश्वर सबसे अधिक प्रतिभा-सम्पन्न है, अगर वह अपनी प्रतिभा को आलस्य, बेसिर-पैर के सपने देखने, सिगरेट पीने और इश्क़बाज़ी में बर्बाद न कर दे ! उसमें अभिव्यक्ति की अद्भुत शक्ति है, आस्कर वाइल्ड और शॉ का रंग लिये हुए। मिश्र जी को मैं पसन्द नहीं कर सका। उनके पास विचार हो सकते हैं मगर अभिव्यक्ति की क्षमता और शक्ति नहीं है। मिलिन्द और हरिकृष्ण प्रेमी हैं, दोनों में नाटकीय शक्ति है, पर नाटक की आधुनिक पकड़ और सूझ-बूझ नहीं है।

उपन्यासकारों में—वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, निराला, सियारामशरण गुप्त, प्रसाद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि हैं। मैं समझता हूँ कि इनमें वृन्दावनलाल वर्मा सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं, गो उन्होंने अब वकालत शुरू कर दी है और लिखना शायद बन्द कर दिया है।

कहानीकारों में चुनाव और भी अधिक कठिन है—जैनेन्द्र सबसे अलग अपनी एक हस्ती रखते हैं। नये लोगों में अज्ञेय, चन्द्रगुप्त, कमला देवी, सुभद्रा, ऊषा मित्रा, सत्यजीवन, भुवनेश्वर, जनार्दन झा, जनार्दन राय नागर, अंचल, ओझा, राधाकृष्ण, वीरेन्द्र कुमार (जिन्होंने हंस में 'चूनड़ी के अंचल में' लिखा था) और भी बहुत से लोग हैं। इनमें अज्ञेय, वीरेन्द्र कुमार, सत्य जीवन में सबसे अधिक संभावनाएँ हैं।

हास्य-रस के लिखने वालों में अन्नपूर्णानन्द बेजोड़ हैं मगर वह बहुत ही कम लिखते हैं। जनार्दन झा भी योग्य लेखक हैं मगर उनमें प्रतिभा की स्फूर्ति या अन्तर्दृष्टि बहुत नहीं है। साहसिक आख्यानों के क्षेत्र में पं. श्रीराम शर्मा अकेले हैं।

सृजनशीलता ही असल चीज़ है, मूल स्रोत। सृजनशील प्रतिभाएँ हमारे यहाँ बहुत कम हैं, कहानीकारों में जैनेन्द्र मैदान सम्हाले हुए हैं। दूसरी क़तार में बहुत से लोग हैं।

जहाँ तक निबन्धों की बात है, पं. रामचन्द्र शुक्ल सम्राट हैं। हेमचन्द्र जोशी ने कुछ सुन्दर निबन्ध लिखे हैं।

आपके मित्र बाबू ब्रजमोहन वर्मा भी हास्य-व्यंग के बड़े प्यारे लेखक हैं, और द्विवेदी ग्रंथ में उनका 'शेख' मास्टरपीस था।

यह सरकारी रायें हैं जिनसे आपको नयी कोई बात न मालूम होगी, लेकिन मैं समीक्षाबुद्धि-सम्पन्न पाठक भी तो नहीं हूँ। सच तो यह है कि मुझमें आलोचनाबुद्धि तनिक भी नहीं है।

आपने जो विषय चुना है उसका विस्तार साहित्य का पूरा क्षेत्र है लेकिन इसमें आप कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकते। जिनमें आज सबसे अधिक संभावनाएँ दिखायी पड़ती

हैं। हो सकता है कि वे बिल्कुल बोदे साबित हों और जो बोदे नज़र आते हैं वे चमक उठें।

आपका, धनपत राय।

पुनश्च :–

आप अपना घर क्यों नहीं बसाते, संन्यास ले रहे हैं जब कि आपको गृहस्थ होना चाहिए ! भला हो विधवा-विवाह का, आपको अपने लिए कन्या पाने में कोई कठिनाई न होगी। संयम एक वरदान है मगर हत्या करना अभिशाप। एक थोड़ी बहुत पढ़ी-लिखी सुसंस्कृत, अधेड़ महिला आपके लिए आदर्श होगी। तब आपको यहाँ-वहाँ, झुकी हुई, शर्मायी हुई, भीख-सी माँगती हुई नज़रें डालने की ज़रूरत न रहेगी ! वह मानसिक और भावात्मक दोनों रूपों में आपकी रक्षा करेगी।



जागरण कार्यालय, 1, सितम्बर, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

तुम्हारा पत्र मिला। हाँ भाई, तुम्हारी कहानी बहुत देर में पहुँची। अब सितम्बर में तुम्हारी और 'अज्ञेय' जी की, दोनों ही जा रही हैं। जुलाई में 'क्रांतिकारी की माँ' नाम की कहानी 'हंस' में छपी थी, उस पर सरकार ने ज़मानत की धमकी दी।

आजकल इतनी मंदी है कि समझ में नहीं आता काम कैसे चलेगा। मज़दूरों को वेतन चुकाने में कठिनाई पड़ रही है। इसलिए तुम्हारे पास कुछ न भेज सका। जिनके ज़िम्मे बाकी है वह साँस ही नहीं लेते। रुपये मिलते ही महावीर के ख़र्च के लिए भी रुपये भेजूँगा और तुम उन्हें ताकीद कर देना कि मेरठ और दो-तीन शहरों का दौरा करते और एजेंटों से बातचीत करते हुए आवें। यहाँ आने पर मैं उन्हें बिहार की ओर भेजूँगा। 'मेग्डेलीन' तुम्हारे आदेशानुसार कार्यालय में पहले ही लगाये देता हूँ।

मेरा जी इतने छोटे से काम में हार नहीं मानना चाहता। 'जागरण' अब तक नफ़ा देता यदि मैं 'हंस' और सुंदर निकाल सकता, इसकी सामग्री और सुंदर बना सकता, इसमें दो-चार चित्र दे सकता। लेकिन धन का काम अब समय से लेना पड़ेगा। मैं चाहता हूँ कि तुम यह समझो कि तुम्हीं यह पत्र निकाल रहे हो और इसके नुकसान में नहीं नफे में भी उतने ही शरीक हो जितना मैं। मैं तो चाहता हूँ कि यहाँ कार्यालय इतना सम्पन्न हो जाये कि हमें किसी प्रकाशक का मुँह न देखना पड़े। हम दोनों मिलकर इसे सफल न बना सके तो खेद की बात होगी। 'स्टेट्समैन', 'नेशनल काल' और कितने ही अँग्रेज़ी पत्र यहाँ मिल सकते हैं, उनमें से Informative सामग्री दी जा सकती है। दो चार नोट लिखना मुश्किल नहीं। हाँ, इच्छा होनी चाहिए। मैटर अच्छा होने पर इस पर जनता की निगाह जमेगी। मैं एक पृष्ठ चित्रों के देने की फिक्र में भी हूँ। पुस्तकें लगातार लिखते रहना अपने बस की बात नहीं है। कभी-कभी महीनों काम नहीं होता और न पुस्तकों से इतने रुपये मिल सकते हैं कि उन पर depend किया जा सके। यह भी तो चिन्ता रहती है कि कोई ऊटपटाँग चीज़ न लिख दी जाय। समाचारपत्र तो दूकान है। एक बार चल निकले तो उससे थोड़े परिश्रम में आमदनी हो सकती है, और तब पुस्तक भी लिखी जा सकती है। यह (ठीक बात) है कि मेरी उम्र एक नये व्यवसाय में पड़ने की नहीं है, लेकिन

मैं उम्र को और स्वास्थ्य को बाधक नहीं बनाना चाहता। तुम कम से कम दो कालम का एक लेख अवश्य दे दिया करो। किसी मामले पर टिप्पणियाँ करना चाहो तो वह भी बैरंग बृहस्पत तक मुझे दे दो।

समाचारपत्रों की आमदनी का दारोमदार विज्ञापनों पर है। मैंने बिड़ला से मिलने को कहा था। अपनी ग़रज़ से मत मिलो, मेरी ग़रज़ से मिलो, पत्र दिखाओ, उसकी चर्चा करो। और उनसे ख़ैरात तो कुछ माँगते नहीं। विज्ञापन दिला देने का अनुरोध करो। यह कह सकते हो, कि इस पत्र को घाटा हो रहा है, और थोड़े से सहारे से यह बहुत उपयोगी हो सकता है। उनके पास कई मिलें हैं, एकाध पृष्ठ का विज्ञापन उनके लिए तो कुछ नहीं है, लेकिन मेरे और तुम्हारे लिए वह बावन रुपये महीना का सहारा है। भाई, यह संसार चुपके से रामभरोसे बैठने वालों के लिए नहीं है। यहाँ तो अंत समय तक (खटना) और लड़ना है। उनसे कुछ मदद पा सकते हो। यहाँ झेंपू और मेरे जैसे शर्मीले आदमियों का गुज़ारा नहीं। उनके लिए तो कोई स्थान ही नहीं। तुम अपने में यह ऐब न आने दो। है भी नहीं। मैं तो कौड़ी दाम का नहीं हूँ। अखबार निकालना मेरी (हठधर्मी) है। कुछ (ज़िद्दी) हूँ और हार नहीं (मानना) चाहता। खेती करता तो उसमें भी इसी तरह चिमटता।

यहाँ वर्षा कम हुई। घर के और सब लोग मज़े में हैं। दिलीप तो अच्छा है। भगवती से मेरा आशीर्वाद कहना।

भवदीय, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, 3 सितम्बर, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

पत्र मिला। कहानी फिर न भेजी। जून का अंक छप रहा है। तीन दिन के अंदर कहानी आ जानी चाहिए।

'चित्रपट' देखा। अच्छा है। बेटी अच्छी हो रही है। दस दिन में यहाँ आ जायगी। X X X तैयार हो रहा है। बड़े हर्ष की बात है। कब देखूँगा ? 'प्रेम की वेदी' की जिल्द बन रही है। सोमवार को भेजा जायगा।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

K.P. Dhar (Manager)
Allahabad Law Journal Press,
5, Prayag street, Allahabad, 6.9.1933

Syt. Premchand, Editor 'Hans',
Saraswati Press,
Benares, Dear Sir,

As desired by Pt. Jawahar Lal Nehru, we send you a cheque for Rs. 52-12-0 being 1/3 of the royalty payable to him on account of sales of 'Pita ke

Patra Putri ke Nam' up to the end of 1932.

Yours very truely, K.P.Dhar (Manager)

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 6 सितम्बर, 1933

भाईजान,

तसलीम। मेरे पास एक मज़मून राजा राममोहन राय पर आया हुआ है। मुझे याद है आपके यहाँ उनका ब्लाक मौजूद है। बराहे करम रवाना कर दें तो दे डालना। इसी माह में ग़ालिबन् उनकी बरसी है। इसलिए ज़्यादा मोहलत नहीं है।

आज़ाद में एक मेरी कहानी और एक अहलिया साहिबा की कहानी निकलीं। मालूम नहीं आपने किस रसाले से लिया। किसी का नाम न था। लाहौरी पर्चे की यह अदना (घटिया; ओछी) हरकत है।

उम्मीद है आप खुश हैं। किताबों के हिसाब और मुबल्लिग़ात का, अगर कुछ विक्री हुई हो, मुन्तज़िर हूँ।

अहक़र (विनीत) धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 13 सितम्बर, 1933

भाईजान,

तसलीम। हद दर्जा ममनून।

आपसे मैंने इस्तदआ की थी कि राजा राम मोहन राय का ब्लाक भिजवा दें। आपके ख़त में इसका ज़िक्र नहीं है। शायद वह ख़त नज़रअंदाज़ हो गया। बराहे करम वह ब्लाक बवापसी भिजवा दें। इसी माह में वह मज़मून छपवाना चाहता हूँ। और आज 13 हो गयी।

बड़ा लड़का तो अभी सेकण्ड इयर में है, छोटा आठवीं में। लड़की अच्छी तरह है।

मुख़लिस, धनपत राय।

●●

Commissioner, Benares Division, September 19, 1933

Dear Mr. Dhanpat Rai,

I am glad to get your letter of September 15 about the Kashi number of the 'Hans'. As you know, I have very little spare time at my disposal and therefore it is difficult to write anything worth publishing, but if you are keen, I can write a very short note on Kashi and Sarnath with special reference to the new Mulgandh Kuti Vihar, which has recently been built at Sarnath or I can write about the advent of Sri Krishna Chaitanya at Benares. I did not know that you were here all th.s time. I had an idea some how that you had gone away to Lucknow otherwise why I have not seen you all these months? Why not come over one after-noon and have a talk about things in general.

Yours Sincerely, Panna Lal

सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी, 27 सितम्बर, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

तुम बिगड़ रहे होगे कि पत्र क्यों नहीं लिखा। मैंने सोचा था महावीर के लिए ग्राहक सूची से एक प्रोग्राम बनाकर कुछ रुपये के साथ पत्र लिखूंगा। पर न सूची देखने का अवसर मिला न रुपये कहीं से आये और मैं एक सप्ताह के लिए प्रयाग चला गया। वहाँ से आया तो घर के लोग प्रयाग चले गये। मैं प्रेस न आ सका। 'चाँद' के लिए एक कहानी लिखनी थी, इधर-उधर के झंझट। रह गया। महावीर आ गये हैं। अभी मेरा विचार है उन्हें आसपास के शहरों में भेजने का। ज़रा बाहर जाने का अभ्यास हो जाय तो सी. पी., विहार की ओर भेजूँ। आजकल न जाने क्यों पुस्तकों की बिक्री बंद है। अब अजमेर में जो मेला लगने वाला है, उसके कारण दो एक X X X मिले हैं। 'हंस' का काशी अंक निकल रहा है। सितम्बर के अंक में फिर देर हो गयी। अब अक्टूबर के पहले सप्ताह में जायगा। दो दिन से प्रेस बंद है। अज्ञेय की यह कहानी बहुत अच्छी थी। उनकी कविताओं के विषय में यहाँ यह राय है कि भाव तो उत्कृष्ट हैं, पर हाथ मँजा हुआ नहीं है। लोग कहते हैं कविताओं से उनकी कहानियाँ और गद्यकाव्य बढ़कर हैं।

धनपत राय।



अमीनउद्दौला पार्क, लखनऊ, 30 सितम्बर, 1933

भाईजान,

तसलीम। कार्ड के लिए शुक्रिया। प्रेमबत्तीसी हिस्सा अव्वल मंजूर हुई, मसर्रत की बात है। अब शायद बक़िया जिल्द निकल जायें। जल्वए ईसार के निकल जाने का मुझे अफ़सोस नहीं। मुझे तो उसके दाख़िल होने पर ही ताज्जुब हुआ था। हाँ अगर बाकमालों के दर्शन मंजूर हो जाये तो अपना फ़ायदा है क्योंकि उस पर मेरी रायल्टी है। देखिए कमेटी क्या करती है। मैंने दो ड्रामों के तर्जुमे भेज दिये थे, सिलवर बाक्स और जस्टिस। इन तर्जुमों में मुझे बड़ी जिगरसोज़ी (मेहनत) करनी पड़ी। एक तरफ़ यह ख़याल कि संस्कृत अल्फ़ाज़ न आने पायें। इसके साथ फ़ारसी के ग़ैर-मानूस (अपरिचित) अल्फ़ाज़ से मोतरिज़ (बचने) रहने का ख़याल। एक एक जुमले के लिए घंटों सोचना पड़ा। इस पर भी डाक्टर साहब को पसन्द न आये तो मजबूरी है। अभी स्ट्राइफ़ मेरे पास ही है। ख़त्म कर चुका हूँ, नज़रसानी कर रहा हूँ। आपसे डाक्टर साहब से इस मसले पर कुछ गुफ़्तगू नहीं हुई ? कैसी ज़बान हो ? आप कब तक भेजने का क़सद करते हैं ? या भेज दिया ?

बक़िया सब ख़ैरियत है। बच्चों को दुआ।

नियाज़मन्द, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 1 अक्टूबर, 1933

प्रिय उषा देवी मित्रा जी,

'हंस' में तो आपकी कहानी कब की निकल गयी। क्या आपने पढ़ी नहीं। खेद यह है कि वह अंक यहाँ कार्यालय में बचा भी नहीं। मैं तो समझता था आपके पास

'हंस' जाता होगा। व्हीलर के स्टाल पर शायद वह अंक मिल जाय। अगस्त अंक में कहानी छपी थी। कोई दूसरी कहानी लिखिए।

शुभाभिलाषी, प्रेमचद।



सरस्वती प्रेस, काशी, 15 अक्टूबर, 1933

प्रिय बहादुरचंद जी, बंदेमातरम।

यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि आप लाइडेन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। आप लोगों को धन्य है जो विदेशों में भारत का नाम रौशन कर रहे हैं। मैं यहाँ से 'हंस' नामक एक मासिक पत्रिका निकालता हूँ। यदि अवकाश मिले तो कभी-कभी वहाँ का कुछ हाल उसके लिये लिखने की कृपा कीजियेगा। सचित्र हो तो और भी अच्छा।

यदि डच प्रेमियों को मेरी कहानियाँ कुछ अच्छी लगती हों तो आप बड़ी ख़ुशी से जिन कहानियों का अनुवाद करना चाहें करें। हाँ, उनकी भाषा किसी डच साहित्य प्रेमी को दिखा लीजियेगा जिसमें आपकी और मेरी अपकीर्ति न हो। मेरी भाषा बोलचाल की होती है और उसका अनुवाद तो कठिन न होना चाहिये। मेरी यही कामना है कि आप अपने उद्योग में सफल हों और मुझे भी यश मिले।

कभी-कभी पत्र लिखते रहा कीजिये।

भवदीय, प्रेमचंद।



जागरण कार्यालय, 24 अक्टूबर, 1933

प्रिय जैनेन्द्र,

मालूम नहीं महावीर नें तुम्हारे पास कोई ख़त लिखा था या नहीं, यहाँ तो उनकी कोई ख़बर नहीं। जिस दिन यहाँ से गए उसके तीसरे दिन प्रयाग से ख़त आया था, फिर कुछ न मालूम हुआ वहाँ से गए या वहीं हैं। आज चौबीस दिन हो गए, कपड़े-लत्ते सब यहाँ हैं। पुस्तकें जो वह दिल्ली से लाए थे सब यहाँ रखी हुई हैं। विचित्र आदमी हैं। अगर, ईश्वर न करे, कहीं बीमार हो गए तो एक कार्ड तो लिख देना था। मुझे तो मालूम होता है वह सफल न हुए, और शर्म के मारे चुप साधे बैठे हैं। इस काम में सफल होने के लिए बड़े अनुभव और बेहयाई की जरूरत है और आदमी भी ऐसा चाहिए जो गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास सह सके। इतना बड़ा कार्यालय तो है नहीं कि अपने एजेंटों को अच्छा अलाउंस या वेतन दे सके, और जितना वह दे सकता है उससे रोज़ परदेश में नहीं रहा जा सकता। होटल तो छोटे शहरों में होते नहीं और अकसर पूरियों पर गुजारा करना पड़ता है। महावीर का स्वास्थ्य शायद इन दिक्कतों को न झेल सके।

तुमने कई बार रुपये के लिए लिखा है। मैं दिल मसोसकर रह गया। जो कुछ आमदनी होती है वह ऊपर उड़ जाती है। वेतन तो पूरा नहीं पड़ता। काग़ज़ के कई सौ रुपये बाकी पड़े हुए हैं। खर्च पाँच सौ रुपये महीने का, आमदनी कुल मिलाकर चार सौ रुपये से ज्यादा नहीं। मैं अपनी ख़ामियों को समझ रहा हूँ। अपनी ग़ल्तियों को देख रहा हूँ। पर यह आशा है कि शायद कुछ हो जाय। हिम्मत बाँधे हुए हूँ। इधर एक महाशय फिर एक मिलिटेड प्रकाशन संघ खोलने का विचार कर रहे हैं। मैं भी शरीक हो गया।

कुछ लोगों ने हिस्से लेने का वचन भी दिया। मगर वह ऐसे ग़ायब हुए कि कुछ पता ही नहीं कहाँ हैं। अक्टूबर का 'हंस' काशी अंक होगा। मगर बीस फार्म का निकालना पड़ा और नवम्बर का अंक भी उसमें मिलाना पड़ेगा। इन दोनों अंकों से नाक में दम है। मगर प्रथा ऐसी चलती है कि मोटों के साथ दुर्बल भी पिसे जा रहे हैं। 'चाँद' और 'सरस्वती' विशेषांक निकाल सकते हैं। 'हंस' में दम नहीं है, पर फिर भी शहीदों में शामिल होना चाहता है। मैंने सोच लिया है जनवरी तक और देखूँगा। अगर उस वक्त 'जागरण' कुछ ढंग पर न आया तो इसे बंद कर दूँगा। जी तो चाहता है कि 'हंस' का दाम बढ़ाकर पांच रुपये कर दूँ और एक सौ पृष्ठों का निकालूँ और तुम उसका सम्पादन करो। मैं अलग बैठकर पुस्तकें लिखूँ। ज्यादा काम भी तो नहीं कर सकता। लेकिन शायद मेरी कामनाएँ सब यों ही रह जायँगी। मुश्किल तो यह है कि व्यवसाय में जितना मैं कच्चा हूँ उतने ही तुम भी कच्चे हो ! वरना क्या बात है कि ऋषभचरण तो सफल हों और हम लोग असफल रहें। उपन्यास लिखता था वह भी बंद है। लेकिन अब ज्यादा प्रतीक्षा न करूँगा। जनवरी तक और देखता हूँ। तुम्हारी सलाह न मानी, वरना इतना घाटा क्यों उठाता। लेकिन कोई काम बंद करते बदनामी होती है और वही लाज ढो रहा हूँ।

'हंस' का विशेषांक निकल रहा है। शायद कुछ रुपये बच जायँगे। उस वक्त जो भी कुछ हो सकेगा तुम्हारे पास भेजूँगा। मैं तुमसे सच कहता हूँ प्रेस और पत्रों पर मैं मरा जा रहा हूँ। कुछ लेखों से, कुछ रायल्टियों से, कुछ उर्दू पुस्तकों से अपना गुज़र कर रहा हूँ। लेकिन बहुत देख चुका, अब यह तमाम बंद करूँगा।

घर में सब लोग कुशल से हैं। 'कर्मभूमि' का उर्दू अनुवाद जामिया मिल्लिया से शायद निकल जाय।

और क्या लिखूँ। आशा है तुम प्रसन्न हो।

सप्रेम तुम्हारा, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 28 अक्टूबर, 1933

प्रिय श्रीराम जी,

आशा है, आप मज़े में होंगे और बहादुरी के साथ अपने मेदे से लड़ रहे होंगे।

यह ख़त मैंने आपके छोटे भाई के पास से पाया है, आपको पहुँचा देने के लिए क्योंकि आपका मौजूदा पता उनको मालूम नहीं।

मैंने शायद आपको यहाँ पर बतलाया था कि हम लोग अक्टूबर में हंस का काशी अंक निकालने जा रहे हैं। सस्नेह,

आपका, धनपत राय।



बनारस, 1 नवम्बर, 1933

प्रिय इन्द्र वसावडा,

तुम्हारा पत्र मिला। अभी-अभी तुम्हारा 'मुनीर खाँ' पढ़ रहा था। अच्छा है। छापूँगा। लेकिन बात यह है कि इतने मित्रों की रचनाएँ आती हैं और उनका ऐसा आग्रह होता है कि अक्सर अच्छी रचनाएँ भी देर से छपती हैं। हरेक डाक से दस-बीस लेख आ जाते

हैं और उन सबको पढ़ना मुश्किल हो जाता है। मुनीर का चित्र सुन्दर और स्वाभाविक है। मैंने भी ऐसे बुड्ढे देखे हैं। शेष कुशल।

तुम्हारा, प्रेमचंद।

●●

हंस आफिस, काशी, 11 नवम्बर, 1933

प्रिय उषा देवी मित्रा जी,

'पिउ कहाँ' मिली। मुझे बड़ा खेद है कि अगस्त की एक कापी भी कार्यालय में नहीं बची। आपका लेख उसी में था। अब एकाध महीने में व्हीलर के स्टालों से कुछ कापियाँ लौटेंगी। मैं उस वक्त आपके पास अवश्य वह कापी भेजूंगा। या आप व्हीलर के स्टाल से मंगा सकें तो मंगा लें। शायद अभी स्टाल पर मिल जाय। कार्यालय की भूल से आपके पास अंक न भेजा जा सका। क्षमा कीजिए।

प्रेमचंद।

●●

सरस्वती प्रेस, 28 नवम्बर, 1933

प्रिय जैनेन्द्र,

तुम्हारा पत्र अभी मिला। प्रयाग से तुमने क्या बाद में पत्र लिखा था। बात यह है कि मैं कई दिन प्रेस नहीं आया, काम प्रायः बंद था। अब सब काम ठीक हो गया है।

'जागरण' का भार मेरे सर से उतरा जा रहा है। यहाँ से बा. सम्पूर्णानन्द जी उसे अर्ध-साप्ताहिक रूप में निकालने जा रहे हैं। आशा है दो-तीन दिन में सब बात तय हो जायगी। 'हंस' के भी अब तीन फार्म और रह गए हैं। अब यदि हम अंक को छः रुपये की वी. पी. करें तो भय होता है कि बहुत से पत्र वापस आवें। इस अंक पर लगभग आठ सौ रुपये से अधिक खर्च हो गए। 'जागरण' के ग्राहक तो अब 'हंस' में मिलने से रहे, 'हंस' के ग्राहकों पर ही संतोष करना पड़ेगा। मगर एक हजार पाठकों में से आधे निकल गए तो मुश्किल पड़ जायगी। इसलिए मैं फिर दुविधा में पड़ गया हूँ। प्रसाद जी की राय है कि 'जागरण' के आकार का अर्ध-मासिक निकाला जाय और छः रुपये दाम रखा जाय। इसमें तुम्हारी क्या राय है। यहाँ लोगों की राय में बिना चित्रों का पत्र बड़ी मुश्किल से चलेगा। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। नुकसान से जी डरता है, सहने की शक्ति नहीं रही। अगर 'जागरण' मेरा पल्ला छोड़ता है तो अभी 'हंस' रह जायगा। उसमें थोड़े से और पृष्ट बढ़ाकर ज्यों का त्यों निकालता रहूँगा।

जैसी तुम्हारी राय है वैसी ही मेरी राय है। लेकिन जनता की राय शायद ऐसी नहीं। वह तो चित्र चाहती है। साहित्यिक पाठकों की संख्या इतनी है या नहीं जो हमारे पत्र का आदर करें, इस विषय में बड़ा मतभेद हो रहा है। जो कुछ भी हो मैं एक सप्ताह के अन्दर निर्णय कर सकूँगा। इस विषय पर फिर जल्द ही लिखूँगा।

धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी, 12 दिसम्बर, 1933

प्रिय जैनेन्द्र,

कल एक पत्र लिख चुका हूँ। प्रसाद जी के एक मित्र यह जानने के लिए बड़े उत्सुक हैं कि 'घावर्षण' निकल रहा है या नहीं और यदि नहीं निकल रहा है तो क्यों ? पहले अंक में उसका कैसा स्वागत हुआ ? क्या उसके संचालक उसे निकालना चाहते हैं ? अगर किसी कारण से वे न निकालना चाहते हों तो क्या वे उसके निकालने का अधिकार किसी दूसरे को देंगे ?

कृपा करके इसका जवाब लौटती डाक से देना। वह महाशय दिल्ली से एक पत्रिका निकालने की बात सोच रहे हैं और 'घावर्षण' मिल जाय तो उसे ही ले लेंगे।

भवदीय, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, 16 दिसम्बर, 1933

प्रिय जैनेन्द्र,

तुम्हारा पत्र कई दिन हुए मिल गया था। उसके पहले वाला इलाहाबाद का पत्र भी कागज़ों में खोजने से मिल गया।

'जागरण' साबिक दस्तूर चल रहा है। बा. सम्पूर्णानन्द को शायद उनके मित्रों ने मदद नहीं दी। अब मैं उसको बन्द करने की फिक्र में हूँ। उसके पृष्ठ घटा दिये हैं। इस रूप में शायद इससे ज्यादा नुकसान नहीं है। फिर भी झंझट तो है ही।

'हंस' की तुम्हारी स्कीम साहस चाहती है, और जो इस वक्त हालत है उसमें वह स्कीम बड़ी मुश्किल से चलेगी। कागज़ वालों के काफ़ी रुपये बाकी हैं और कोई (नयी) चाल चलने की हिम्मत नहीं पड़ती। नयी स्कीम के अनुसार तुरन्त ही तीन हजार रुपये महीने का खर्च बढ़ जाता है। पहले से पाठकों को कुछ कहा भी नहीं गया, और एक बार के कहने से कोई असर भी न पड़ेगा। बार-बार कहने की ज़रूरत है। इसलिए इन छः महीनों में तो हमें ज़मीन तैयार करनी चाहिए। अभी मुझे कोई स्कीम पेश करने का मुँह भी तो नहीं है। अक्टूबर-नवम्बर का संयुक्त अंक अभी नहीं निकला, आज छः दिसम्बर भी हो गई, अभी पाँच-छः दिन से कम न लगेंगे। ऐसी दशा में पाठकों से सहानुभूति-सहयोग की आशा मैं नहीं करता। आधे वी. पी. कहीं लौट आवें, भय तो यह है। सारा दारोमदार वी. पी. पर है। अगर इससे कुछ बोझ हलका होगा तो फिर साहस बढ़ेगा। दिसम्बर का अंक अधिक से अधिक दस तक निकाल देना चाहता हूँ। यह सब हो जाय तो अप्रैल से आकार बढ़ाने की बात चले।

महावीर अभी पटने में ही है। उसने पुस्तकों के आर्डर भेजे थे पर सब बाहर की पुस्तकें हैं और कितनी ही यहाँ मिलती भी नहीं। और उन पर कमीशन भी बहुत कम मिलता है। मैंने उनसे पूछा है क्या कमीशन देने का वचन दे चुके हैं। जवाब आने पर पुस्तकें जमा करके भेजी जायँगी।

'सेवासदन' के विषय में तुमने पूछा। बम्बई की एक कम्पनी ने कुछ बातचीत की थी। उसी का यह तूमार बाँध दिया। उन्होंने मुझे सात सौ पचास आफ़र भी किया था। मैंने सात सौ पचास ही बहुत समझा, मंजूर कर लिया, लेकिन रुपये नहीं मिले।

'कर्मभूमि' के अनुवाद के चार सौ रुपये एक गुजराती प्रकाशक से तय हुए थे। दीवाली के बाद रुपये भेजने का वायदा था। मगर वह भी चुप साध गया। दो ख़त भी लिखे, जवाब नदारद।

और भी कई जगह से रुपया मिलने की आशा थी। पर कहीं से कोई खबर नहीं है। इससे कोई Risky काम करते और भी हिचकता हूँ।

और तो कोई नई बात नहीं है। सटर पटर चला जाता है।

तुम्हारा, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 20 दिसम्बर, 1933

प्रिय मणिक लाल जोशी जी महोदय,

आपका पत्र और 'कौमुदी' की प्रति मिली। मेरे और 'कर्मभूमि' के बारे में जो लेख निकला है, उसकी विषयवस्तु का मुझे पता चला। हर लेखक को आज़ादी है कि वह किसी लेखक की तारीफ करे या उसे नीचे गिराये और मुझे इस संबंध में कुछ नहीं कहना है। मिस्टर किशनसिंह की कदाचित् यह धारणा है कि मैंने ही स्वयं उपन्यास सम्राट की उपाधि हथिया ली है। मुझसे ज़्यादा कोई भी इस उपाधि से घृणा न करता होगा और मैंने कभी किसी को प्रेरित नहीं किया कि वह मुझको इस नाम से पुकारे और मैं खुद नहीं जानता कैसे यह उपाधि मेरे नाम के साथ जुड़ गयी और क्यों इसे बार-बार इतना दुहराया जाता है। तुलनाएँ हमेशा बहुत झगड़े की चीज़ होती हैं और मिस्टर किशन सिंह का कहना बिलकुल सही है कि जो मेरी तुलना गाल्सवर्दी और टाल्सटाय और साहित्य-संसार के दूसरे महान व्यक्तियों से करते हैं, वे निश्चय ही मेरे साथ अन्याय करते हैं। अपने संबंध में ऐसी मूर्खता की धारणा रखने वाला मैं अंतिम व्यक्ति हूँ। मगर ऐसी चीज़ें मैं रोकूँ भी तो कैसे ?

मिस्टर किशनसिंह की यह राय बिल्कुल सही हो सकती है कि मेरी ज़्यादातर कहानियाँ बहुत पिटी-पिटायी हैं और उनमें कोई सौन्दर्य नहीं। शायद जो कहानियाँ उन्होंने अनुवाद के लिए चुनीं, वे अपवाद-स्वरूप हैं। इसके बारे में मैं क्या कह सकता हूँ ? ऐसे भी पाठक हैं जो विक्टर ह्यूगो और टाल्सटाय को भी बर्दाश्त नहीं कर पाते। मैं विनयपूर्वक इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने वही किया है, जो कि अपनी प्रतिभा को देखते हुए अच्छे से अच्छा कर सकता था और इससे बड़ी किसी चीज़ के लिए मेरा दावा नहीं है।

मिस्टर किशन सिंह की मुख्य आपत्ति यह जान पड़ती है कि 'कर्मभूमि' राष्ट्रीय आन्दोलन को पृष्ठभूमि में रखकर लिखी गयी है। वह इस बात को भूल जाते हैं कि लगभग सब महान उपन्यासों का कोई-न-कोई सामाजिक उद्देश्य होता है या कोई न कोई महान आन्दोलन उसकी पृष्ठभूमि में रहता है। टाल्सटाय का 'वार एण्ड पीस' मास्को पर नेपोलियन की चढ़ाई के इतिहास के अलावा और क्या है ? मगर उसने अपने पन्नों में उस संघर्ष को ज़िन्दा कर दिया है। उसने ऐसे चरित्र और ऐसी घटनाएँ प्रस्तुत कीं जिनसे मानव प्रकृति में उसकी आश्चर्यजनक अन्तर्दृष्टि का पता चलता है। सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु चरित्रों का विकास है। अगर लेखक को इसमें सफलता मिली है, तो फिर उसे आलोचकों से डरने का कोई कारण नहीं। क्या लेखक सुकुमार और गम्भीर भावों

को उभार सका है ? अगर वह ऐसा करता है तो उसकी पृष्ठभूमि चाहे जो हो, वह शाश्वत सत्यों को लेकर कारबार कर रहा है और उसे बहुत दिनों तक जीवित रहने का अधिकार है।

मिस्टर रँगीलदास कापड़िया ने कुछ दिन हुए मुझको लिखा था कि उन्होंने मेरी रचनाओं पर 'कौमुदी' के लिए एक लेख लिखा है। पता नहीं उस लेख का क्या हुआ। मेरे कई गुजराती मित्र हैं जिन्होंने 'कर्मभूमि' की खूब प्रशंसा की है। मराठी पत्रों ने उसकी अच्छी समालोचना की है, 'केसरी' ने खुलकर प्रशंसा की थी। मैं नहीं समझता कि उन्होंने सिर्फ मेरी चापलूसी करने के खयाल से मेरी तारीफ की थी। मगर जैसा कि मैंने शुरू में ही कहा है, हर आदमी को अपनी राय रखने और उसको व्यक्त करने का अधिकार है और कभी कोई अच्छी कृति नहीं रही जिसकी बुराई नहीं हुई। मुझे विश्वास है कि कोई न कोई गुजराती साहित्यकार मेरे प्रति न्याय करेगा और मुझे गुजराती जनता के सामने ज़्यादा अच्छी रोशनी में पेश करेगा। हिन्दी में एक-दो पत्रों ने मेरे खिलाफ आन्दोलन शुरू कर दिया है। बड़े खेद की बात है कि साहित्य का क्षेत्र भी व्यक्तिगत राग-द्वेष से क्षत-विक्षत हो रहा है। अनेकाअनेक दल और गिरोह हैं और अगर आप उनमें से किसी एक दल की प्रशंसा करते हैं तो विश्वास रखिये कि दूसरा दल इस वर्जित प्रदेश में घुस आने के लिए आपको दण्ड दिये बिना न रहेगा। इलाहाबाद की 'सरस्वती' ने मेरे खिलाफ एक लेख लिखा है और ऐसा लगता है कि मिस्टर किशनसिंह उसी लेख से अनुप्रेरित हुए हैं। 'कर्मभूमि' का अनुवाद करने के लिए आप मिस्टर किशनसिंह को चुनिये और तब हो सकता है कि वह शान्त हो जायँ। काफी सम्भव है कि उन्हें यह बात बुरी लग रही हो कि यह काम उनको नहीं सौंपा गया।

अच्छा विज्ञापन सफलता का प्राण है और आपको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि 'कर्मभूमि' जैसे ही निकले कई पत्र-पत्रिकाएँ और साहित्यकार उसकी समालोचनाएँ लिखें। जैसा कि आपने स्वयं ही अनुभव किया होगा, यह क़दम उठाने से आपका गृह उद्योग निश्चय ही सफल होगा।

आपका, प्रेमचंद।



सम्भवतः 1933

प्रियवर,

अरे भाई, कहीं यह हो सकता है कि इतने खेल खेलकर तुम साहित्य से आसानी से नाता तोड़ लो ? मैं इस बात का अनुरोध करता हूँ कि तुम कम-से-कम दो घण्टे साहित्य को अवश्य दो।



सम्भवतः 1933

प्रियवर,

जनाब, मैंने तो समझा था कि आप फ़ारग-उलबाल होकर अदब की ज़्यादा ख़िदमत कर सकेंगे, मगर मेरा ख़याल ग़लत निकला। अब महीनों गुज़र जाते हैं, आपका कोई क़िस्सा अख़बार में नज़र नहीं आता। चार नहीं दो सही, दो नहीं एक सही, लेकिन

कुछ-न-कुछ तो हर महीने लिखते रहिए ! इससे तो वह तंगदस्ती ही अच्छी थी, जो आपसे थोड़ा-बहुत लिखवा लेती थी।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 9 जनवरी, 1934

भाईजान,

तसलीम। मुहब्बतनामा मिला। मैं आज ही आपको लिखने जा रहा था। अज़ीज़ बृजनारायण की कामयाबी पर तहे दिल से मुबारकबाद। मैं गुज़श्ता नवम्बर में जिस वक़्त लखनऊ गया हुआ था, तो मुझसे मास्टर कृपाशंकर साहब से मुलाकात हुई थी जो डाक्टर साहब के चचेरे भाई हैं। उस वक़्त उन्होंने कहा था कि डाक्टर साहब अपनी साहबज़ादी को बी. ए. तक ले जाना चाहते हैं। तब से न मैं लखनऊ गया न कोई मौक़ा आया। अब मैं किनायतन्[1] माम्टर कृपाशंकर से दरयाफ़्त करके आपसे अर्ज़ करूँगा। वाह ! आप भी क्या कहते हैं। मैं इस तरह ज़िक्र करूँगा जिसमें किसी तरह का गुमान न हो।

मेरी हालत साबिक़ दस्तूर है। 'हंस' का काशी नम्बर तो आपको मिल गया है ? आप ज़रा इसकी तनक़ीद करवा दीजिएगा। इस नम्बर पर मेरे तक़रीबन् 1200 रुपये खर्च हो गए। 400 रुपये का तो काग़ज़ लग गया। 200 रुपये के ब्लाक और साढ़े चार सौ छपाई। महसूल डाक वग़ैरा में 200 रुपये ख़र्च हो गए। ख़याल था कि इस नम्बर से पर्चे की इशाअत में माकूल इज़ाफ़ा होगा। अन्दाज़ा था कि दो ढाई सौ ख़रीददार बढ़ जाएंगे। मगर नतीजा बिल्कुल बर-अक्स। 500 वी. पी. गए थे, उनमें 300 वापस आ गए। दफ़्तर में ख़स्ताहाल रिसालों का ढेर लगा हुआ है। 700 रुपये मिले, मगर काग़ज़ वालों के 2000 रुपये बाक़ी थे। ब-मुश्किल 500 रुपये दे सका। 1500 रुपये काग़ज़ का बाक़ी पड़ा हुआ है। बस यूँ समझ लीजिए कि बधिया बैठ गई। बड़ी करारी चपत पड़ी। चुंधिया गया हूं। लीडर प्रेस वालों से गुफ़्तगू कर रहा हूँ कि वह मेरे सारे कारोबार को अपने में शामिल कर लें। दो दफ़ा रायकृष्ण जी से मिल भी चुका हूँ। हिम्मत पस्त हो गई है। इस चार साल में दोनों रिसालों के पीछे 4000 रुपये से ज़्यादा नुक़सान उठा चुका। मेहनत जो सर्फ़ की वह अलग, प्रेस को जो ख़सारा हुआ वह अलग।

बात यह है कि मैं इस काम में बिला सोचे-समझे कूद पड़ा। जहां से रुपया मिल सका वह लगा दिया। बाबू रघुपति सहाय से रुपये लिये थे। अभी तक उनके 400 रुपये मुझ पर आ रहे हैं, जिसका वो सख़्त तक़ाज़ा कर रहे हैं। अजीब परेशानियों में मुबतिला हूँ। इसलिए जिस तवज्जो से काम करना चाहिए वह न दे सका। घर पर लिटरेरी काम करता ही हूँ। इस काम को तफ़रीह के तौर पर करता रहा और तफ़रीह तो ख़र्च की चीज़ है ही। तिजारत तो दिल व जान दोनों चाहती है। कई बार जी में आया कि आपको तकलीफ़ दूँ लेकिन महज़ इस ख़याल से कि आप खुद अपनी परेशानियों में मुबतिला हैं, जुरत न हुई। लेकिन अब अपने वसाइल[2] की आख़िरी सीढ़ी पर हूँ और मुझे इन्तहाई मजबूरी की हालत में लिखना पड़ता है कि मेरी ज़रूरत को इतना ही शदीद[3] समझिए जितना आप खुद अपनी ज़रूरत को समझते हैं। आइन्दा अक्टूबर में आप रुपए देंगे ही। अगर जनवरी, फरवरी में 500 रुपये ही दे सकें तो मैं शर्मिन्दगी से बच जाऊँ। बाकी अक्टूबर में दे दीजिएगा। आप इस हालत में हैं कि आप कुछ इन्तज़ाम कर सकते हैं,

कि आप का क्रेडिट अब बदर्जहा ज़्यादा हो गया है। मेरा कहीं क्रेडिट नहीं। मुझ पर तो चिरंजी लाल की डिग्री हो चुकी है, जिसकी इत्तिला मैं दे चुका हूँ। इसी काशी नम्बर पर टालता आता था। मगर वह नम्बर आया और निकल गया, मगर रुपयों की बारिश तो क्या ओस भी न टपकी। कुल मिलाकर ग़ालिबन 1000 रुपये से ज़ाइद का मामला है। अगर इस वक़्त निस्फ़ भी मिल जाता तो चार-पांच महीने के लिए मोहलत मिल जाती। इस दरमियान में शायद लीडर प्रेस से मुआमला हो जाए। मगर उस हालत में भी तो मुझे अपने मुतालबात[4] अदा करने ही पड़ेंगे। मैं यह नहीं मान सकता कि आप मेरी मदद करना चाहें तो न कर सकें। हां, मेरी ज़रूरत को महसूस ही न करें तो दूसरी बात है।

और क्या अर्ज़ करूँ ? बेटी यहीं है। दिसम्बर की छुट्टियों में उसका शौहर आया था, मगर हम लोगों ने उसे रुख़सत नहीं किया, ग़ालिबन मार्च में जायगी।

बड़े साहबज़ादे अबकी एफ. ए. का इम्तिहान दे रहे हैं। लेकिन औसत दर्जे में हैं। ज़ेहनियत की कोई ख़ास अलामत नज़र नहीं आती। छोटा ज़्यादा ज़हीन है, मगर अभी आठवीं में है।

आप लड़कियों के एतबार से पिदरीयत के जिस दर्जे में हैं, मैं लड़कों के एतबार से उसी दर्जे में हूँ। इस वक़्त मुझे इन ख़रख़शों[5] से निजात मिल जाना चाहिए था, ताकि किसी गोशे में व इत्मीनान पड़ा हुआ कुछ लिखा-पढ़ा करता, मगर यहां अभी बच्चे पाल रहा हूँ। जो काम चालीस की उम्र में होना चाहिये था, वह अब पचपनसाले में हो रहा है, जब आदमी पेंशनर हो जाता है।

उम्मीद है आप मेरी इस दास्ताने ग़म पर आँसू की दो नन्हीं बूँदें गिरा देंगे।

उम्मीद है आप बख़ैरियत हैं, दाँत-वाँत में दर्द नहीं हो रहा और बच्चे खुश हैं।

अहक़र, धनपत राय।

1 इशारे से, 2. साधनों, 3. तीव्र, 4 माँगें, 5 झमेलों।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 12 जनवरी, 1934

प्रिय बनारसीदास जी,

धन्यवाद। मैंने वह टुकड़ा 'जागरण' में दे दिया है जो कि परसों सनीचर के दिन निकलेगा।

निर्मल जी को जवाब देते हुए मैंने 'जागरण' में जो लेख लिखा था, क्या आपने उसको देखा ? यह निर्मल बिल्कुल सिद्धान्तहीन आदमी है। जिन दिनों पाक्षिक 'जागरण' बाबू शिवपूजन सहाय के हाथों में था, मेरे और 'जागरण' के बीच एक विवाद उठ खड़ा हुआ। पं. नन्ददुलारे वाजपेयी ने कुछ लिखा था उसी को लेकर यह झगड़ा खड़ा हो गया। उस समय निर्मल ने 'जागरण' में एक लेख लिखा था जिसमें मेरे साहित्यिक कार्य का मूल्य गिराया गया था और मुझको सलाह दी गयी थी कि अब मैं और कुछ न लिखूँ। क्योंकि मेरे दिन बीत चुके और अब मैं पुराना पड़ गया। शिवपूजन सहाय ने इस लेख को नहीं छापा। कुछ समय बाद जब 'जागरण' मेरे हाथ में आया, तो इसी निर्मल ने एक लेख मेरी तारीफ़ में ज़मीन और आसमान के कुलाबे मिलाते हुए लिखा जिसको मैंने छाप दिया। इससे पता चलता है कि वह आदमी किस धातु का बना है। उसने मुझपर यह

दोष लगाया है कि मैं ब्राह्मण वर्ग का द्रोही हूँ सिर्फ इसलिए कि मैंने इन पुजारियों और महंतों और धार्मिक लुच्चे-लफंगों के कुछ पाखंडों का मजाक उड़ाया है। उनको वह ब्राह्मण कहता है और ज़रा भी नहीं सोचता कि उनको ब्राह्मण कहकर वह अच्छे-भले ब्राह्मणों का कितना अपमान करता है। ब्राह्मण का मेरा आदर्श सेवा और त्याग है, वह कोई भी हो। पाखंड और कट्टरता और सीधे-सादे हिन्दू समाज के अन्धविश्वास का फायदा उठाना इन पुजारियों और पंडों का धंधा है और इसीलिए मैं उन्हें हिन्दू समाज का एक अभिशाप समझता हूँ और उन्हें अपने अधःपतन के लिए उत्तरदायी समझता हूँ। वे इसी क़ाबिल हैं कि उनका मख़ौल उड़ाया जाय और यही मैंने किया है। यह निर्मल और उसी थैली के चट्टे-बट्टे दूसरे लोग ऊपर से बहुत राष्ट्रीयतावादी बनते हैं मगर उनके दिल में पुजारी वर्ग की सारी कमज़ोरियाँ भरी पड़ी हैं और इसीलिए वे हम लोगों को गालियाँ देते हैं जो स्थिति में सुधार लाने की कोशिश कर रहे हैं।

मैं कुछ समझ नहीं सका कि आप किस चीज़ में पंच बनने जा रहे हैं और मेरे ख़िलाफ़ फ़र्दे जुर्म क्या है। क्या वे कहानियाँ जिनमें मैंने इन पाखंडियों का मख़ौल उड़ाया है ? बराय मेहरबानी उन्हें पढ़ जाइये। बहुत नहीं हैं। मख़ौल की असल चीज़ बात को बढ़ा-चढ़ाकर नमक-मिर्च लगाकर कहना होता है। और यही मैंने किया है। मगर यह काम मैंने साफ दिल से, हँसी-दिल्लगी के रंग में किया है। वह द्वेष और विष से पूरी तरह मुक्त है।

मेरी हालत बहुत अच्छी नहीं है। इस साल मुझे कोई दो हज़ार रुपये का घाटा हुआ। उसने मेरी कमर तोड़ दी है। मैं यह सब प्रेस और प्रकाशन और पत्र लीडर प्रेस को सौंप देने के लिए वातचीत कर रहा हूँ। देखूँ इसका क्या नतीजा निकलता है।

आशा है, आप मज़े में हैं।

आपका, धनपत राय।

●●

बनारस सिटी, 22 जनवरी, 1934

प्रिय उषा देवी,

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्न हुआ।

'पिउ कहाँ' दिसंबर के हंस में निकल गयी। उसकी एक प्रति भेजी जा रही है।

मुझे आशा है कभी-कभी इसी तरह दया करती रहोगी।

'पिउ कहाँ' के दृश्य बड़े ही सुन्दर थे।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 14 फरवरी, 1934

प्रिय उपेंद्रनाथ जी,

आशीर्वाद। एक मुद्दत के बाद तुम्हारा खत मिला जिसे पढ़कर दूनी चिन्ता पैदा हो गयी। लेखकों के लिए यह बड़ी आज़माइश का ज़माना है, ख़ासकर जब सेहत खराब हो जाये। हिन्दी में अख़बारों की हालत उर्दू से बेहतर नहीं है। मैं खुद दो अख़बार निकाल रहा हूँ और दोनों में बराबर घाटा आ रहा है, यहाँ तक कि अब जी बेज़ार हो गया है

और चाहता हूँ कि किसी तरह खूबसूरती से नजात पा जाऊँ। आपको मैं इसके सिवा और क्या मशविरा दे सकता हूँ कि दस-पाँच अफ़साने हिन्दी में निकल जाने दीजिये, इसके बाद ग़ालिबन् आपसे एडिटर साहिबान अफ़साने माँगने लगेंगे और शायद कुछ मिलने भी लगे, मगर हालत निहायत हौसलापस्त करने वाली है। बुकसेलरों का तजुर्बा आपको जैसा कड़वा हुआ उससे ज्यादा कड़वा मुझे हो रहा है। वह तीरथराम मेरे डेढ़ सौ रुपये दबाये बैठा है, पचास रुपये महज़ अख़बारात के उसके ज़िम्मे निकलते हैं, मगर देने का नाम नहीं लेता। एक दूसरा बुकसेलर लाहौर ही में मेरे क़रीब सात सौ रुपये हज़म करना चाहता है। अख़बारात का यह हाल है और बुकसेलरों का यह हाल, बेचारा लेखक क्या करे। मैंने तुम्हारा अफ़साना 'हंस' में दिया है, कहीं-कहीं जबान की इसलाह करनी पड़ी, मगर दस-पाँच अफ़साने निकले बग़ैर किताब के निकलने में भी दिक़्क़त होगी। और क्या लिखूँ, मुझसे तुम्हारी जो कुछ इमदाद हो सकती है, उसके लिए हाज़िर हूँ।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।



जागरण आफिस, 14 फरवरी, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

नहीं जानता तुमसे किन शब्दों में क्षमा माँगू और अपनी चुप्पी का क्या बहाना करूँ। काशी अंक निकला, चार सौ वी. पी. गये, एक सौ पचहत्तर वसूल हुए, दो सौ पच्चीस वापस आये। बस बधिया बैठ गयी। मेरा अन्दाज़ा था कि तीन सौ वी. पी. ज़रूर वसूल होंगे। इस वापसी का नतीजा यह कि कागज़ वाले को तेरह सौ में कुल तीन सौ दे सका। एक हज़ार पूरे उसके सर पर सवार हैं। 'जागरण' के कागज़ वाले का भी एक हजार रुपये में कुछ ऊपर ही चढ़ा हुआ है, जो-जो बातें सोची थीं, वे सब गायब हो गईं। ऐसी माली हालत में क्या कोई प्रोग्राम बाँधूँ, क्या करूँ। तुम्हें मालूम होगा कुछ दिनों से लीडर प्रेस वालों से इस सारे संकट को मिटा देने का प्रस्ताव था। बीच में वह प्रस्ताव स्थगित कर दिया था। पर जब ऐसी परिस्थिति आ पड़ी है तो अब इसके सिवा कोई राह नहीं है कि किसी तरह इस झगड़े से गला छुड़ाकर भाग निकलूँ। लीडर को एक प्रस्ताव लिख भेजा है, वे यहाँ 18 को आने वाले हैं। आशा करता हूँ कि उस दिन यह मामला तय हो जायगा। पहले इरादा था कि 'हंस' उन्हें दे दूँ और प्रेस चलाता रहूँ। लेकिन सारी विपत्ति की जड़ तो यह प्रेस है। न जाने किस बुरी साइत में उसकी बुनियाद पड़ी थी। दस हज़ार रुपये और ग्यारह साल की मेहनत और परेशानियाँ अकारथ हो गयीं। इसी प्रेस के पीछे कितने मित्रों से बुरा बना, कितनों से वायदा ख़िलाफ़ी की, कितना बहुमूल्य समय जो लिखने-पढ़ने में कटता, बेकार प्रूफ देखने में कटा। मेरी ज़िन्दगी की यह सबसे बड़ी ग़लती है।

महावीरप्रसाद ने कुछ किताबें बेचीं। 130 रुपये लाये भी थे, फिर पटना वापस गये और इधर कुछ हाल-हवाल नहीं लिखा। मालूम हुआ दिलीप के काम में शरीक हैं। तीन सौ की नयी किताबें बुकसेलरों को दे चुके हैं। वसूल भी कर पाते हैं या वह भी डूबता है, राम जाने।

लाहौर में मेरे लगभग 1000 रुपये उर्दू किताबों के बाकी थे। बरसों के तक़ाज़े के बाद अब मालूम हुआ कि उनसे रुपये वसूल नहीं हो सकते। नालिश करने पर शायद

कुछ निकले।

एक खुशख़बरी यही है कि सेवासदन का फिल्म हो रहा है। उस पर मुझे 750 रुपये मिले। अगर इस तंगी में यह रुपये न मिल जाते तो न जाने क्या दशा होती, ईश्वर ही जाने। लेकिन तंगी में जब कोई रकम हाथ आ जाती है तो वे सारी जरूरतें जो मुँह दवाये पड़ी थीं यकायक चीख मारने लगती हैं। किसी के पास कपड़े नहीं हैं, किसी के पास जूते नहीं हैं। किसी की लड़की की शादी के लिए कुछ देना चाहिए। ग़रज़ वह रुपये दो-चार दिन में हवा हो जाते हैं। वही यहाँ हो रहा है। उसी में तुम्हारा भी थोड़ा-सा हिस्सा है।

लीडर से अगर बातचीत तय हो गयी तो मैं प्रस्ताव करूँगा कि वह तुम्हें 'हंस' का एडिटर बना दें। वे लोग इसे ज्यादा शान के साथ निकाल सकेंगे और तुम्हें अपने विचारों को कार्यरूप में लाने का अवसर मिल जायगा। मैं एकान्त में बैठकर कुछ थोड़ा-बहुत लिख लिया करूँगा। इस झमेले में तो लिखना एक तरह से बन्द ही हो गया। तब तुम्हारी पुस्तकें झट से निकलेंगी और उन पर रायल्टी मिलेगी।

और क्या लिखूँ। बारह दिन बम्बई रहा। प्रेमी जी से मिला। उनके यहाँ भोजन किया। बेचारे बहुत वीमार थे। मर कर जिये। अब भी बहुत कमज़ोर है। इसके वाद जो पत्र लिखूँगा उसमें यहाँ के development का पूरा वृत्तान्त होगा। भुवनेश्वर जी ख़ूब लिखते हैं और साहित्य के रसिक हैं।

तुम्हारा, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 20 फरवरी, 1934

प्रिय इन्द्र,

कृपापत्र के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। तुमको शायद हिन्दी के बाज़ार का हाल नहीं मालूम। हिन्दी-भाषी जनता संख्या में ज़रूर बड़ी है लेकिन उसमें ज़्यादातर ग़रीब लोग हैं। मैं अपने अनुभव से तुमको बतला सकता हूँ कि किसी पुस्तक के एक संस्करण की दो हज़ार प्रतियाँ बेचने में पूरे चार बरस लग जाते हैं। एक नये लेखक के लिए, उसकी पुस्तक कितनी ही अच्छी क्यों न हो, क्षेत्र और भी कहीं संकुचित हो जाता है। मैं कोई प्रकाशक नहीं हूँ, हाँ एक मासिक और साप्ताहिक और किताबें छापता हूँ मगर एक-दो मित्रों को छोड़कर मैंने और किसी लेखक की कोई किताब नहीं छापी है। मेरे लिये यह व्यवसाय कमोबेश एक तरह का पागलपन है। मेरी किताबें ज़रूर विकती हैं लेकिन उनकी आमदनी पत्रों का पेट भरने में चली जाती है। तुम्हारी किताव मुझको बहुत पसन्द आयी है और मुझे तुम्हारे अन्दर सम्भावनाओं के बीज दिखायी पड़ते हैं इसलिए मैं तुम्हारे लिए एक प्रकाशक ढूँढ़ने की कोशिश करूँगा और यह भी कोशिश करूँगा कि तुमको अच्छी से अच्छी शर्तें हासिल हों लेकिन मुझे डर है कि किसी सूरत में वह रकम ज़्यादा कुछ न हो सकेगी। जो शर्तें मुझे हासिल होंगी मैं तुमको लिखूँगा और अगर तुम मंजूर करोगे तो किताब प्रकाशक को दे दी जायगी। अगर यह किताब चल जाती है, जैसी कि मुझे उम्मीद है, तो अगली किताब के लिए मुमकिन है ज़्यादा अच्छी शर्तें हासिल हो सकें। दूसरे बाज़ारों की तरह यह बाज़ार भी धीरे-धीरे बनाना पड़ता है। हिन्दी जनता के सामने

ज़्यादा से ज़्यादा आने की कोशिश करो। यही एक उपाय है कि जो मैं भी तुम्हें सुझा सकता हूँ। मैं तुम्हारे सदुद्देश्य को महत्त्व देता हूँ और मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम पहली पंक्ति में आ जाओ।

तुम्हारा, प्रेमचंद।

●●

200, Hindu Hostel, Allahabad; 1.4.1934

My dear Munshi Prem Chandjee,

Excuse me for writing to you in this red ink to which I've taken a fancy these days. I have sent to you a poem only the other day and I am very sorry sending to you a short novel or a big story. Will you kindly see that I receive a little money as I am quite reedawn in finance.

Yours, Bhuvaneshwar Prasad.

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी, 16 अप्रैल, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

पत्र लिखने ही जा रहा था कि तुम्हारा ख़त मिल गया। मैंने X X X X जी को पत्र लिखा था और जिस रूप में उन्होंने स्कीम को मेरे सामने रखा था वह मुझे इस वजह से पसंद आयी थी कि उसमें X X X की कोई परेशानी नहीं थी। जमा-जमाया काम था। केवल ज़िम्मेदारी मेरे सर से हट जाती थी, लेकिन उनका जो जवाब आया है वह कुछ संतोष के लायक नहीं है। ख़ैर। मैं तो (इस काम) से तंग आ गया हूँ और कोई सहयोगी खोज रहा हूँ। केवल साहित्यिक सहयोगी नहीं, बल्कि कारोबारी सहयोगी भी। अगर तुम्हें साहित्यिक और किसी बिज़नेसमैन या कारोबारी का सहयोग प्राप्त हो जाय तो मैं अपने सर से बोझ टालकर हट जाऊँ। अगर वात्स्यायन जी भी मिल जायँ तो और भी अच्छा। डरता यही हूँ कि यहाँ से (भागकर) दिल्ली पहुँचूँ और वहाँ भी यही रोना रहे तो अफ़सोस हो कि नाहक आये।

देशबन्धु जी वाले प्रोपोजल को क्यों तुमने अस्वीकार कर दिया। अगर पक्के (काग़ज़) की शर्तों पर काम किया जाय तो कोई वजह नहीं कि हमें धोखा हो। किसी की Personality से क्यों झिझक ? हमें तो काम करने के लिए सहयोग चाहिए। वह जहाँ से भी मिले उसे ले लो। देशबन्धु बिज़नेसमैन है, इसमें तो सन्देह है ही नहीं।

लीडर वालों ने अभी तक कोई जवाब नहीं दिया। यही 20 तारीख उनके फैसले की है। अगर डाइरेक्टरों ने अनुकूल राय दी तो काम हो जायगा। इसीलिए अभी तक मैंने अप्रैल का 'हंस' प्रेस में नहीं दिया। उनका जवाब मिल जाने पर 'हंस' प्रेस में जायगा।

अलीगढ़ में दावतें खाने के सिवाय और कुछ न हुआ। हमारी स्कीम को लोगों ने पसंद तो बहुत किया मगर उन दिनों यूनिवर्सिटी बन्द थी और Old Boys Association के जल्से हो रहे थे। इससे कुछ बोलने का अवसर न मिला। उन लोगों ने जिस तरह मेरा स्वागत किया, उससे मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे आश्चर्य हुआ कि वहाँ कितनी ही मुस्लिम लड़कियाँ परदा नहीं करतीं और वे सब मेरी नयी से नयी उर्दू प्रकाशित किताब

'ग़बन' पढ़ चुकी थीं। मैंने पुलाव और गोश्त खाया, उन्हीं के दस्तरख्वान पर और यहाँ आकर दो-तीन दिन चूरन खाना पड़ा। और क्या लिखूँ, काम चला जा रहा है। 'हंस' के लिए कुछ लिख भेजो। अगर यहाँ से निकला तो दे दूँगा। प्रयाग से निकला तो वहाँ भेज दूँगा।

महावीर प्रसाद का कोई पत्र नहीं आया। चार महीने हो गये। कई सौ की पुस्तकें इधर-उधर डाल दी हैं। न कुछ पता लिखा, कि याद देहानी करता। कुछ किताबें पटने में डाल दी है, कुछ कहीं। उन्हीं किताबों के लिए पटने से यहाँ आये थे। यहाँ से प्रयाग गये थे। फिर पटने गये थे। जल्दी-जल्दी किताबें जमा कीं, लेकिन वह ख़ामोश हो गये। रिलीफ वर्क तो बहुत अच्छा है, लेकिन कुछ अपनी ज़िम्मेदारी का ख़याल भी तो होना चाहिए। मेरे रुपये 'चाँद' पर आते हैं, कुछ उनसे तक़ाज़ा करता, लेकिन अब उल्टे मैं उनका देनदार हूँ। तुम उन्हें एक पत्र लिखकर ताकीद कर दो कि जो पुस्तकें न बिक सकी हों, उनका हिसाब लिख भेजें। हिसाब बड़ा गोलमाल है। 300 रुपये से ऊपर की पुस्तकें उनके पास होंगी। आशा थी कुछ उधर से आयेगा तो काग़ज़ का बिल कम होगा, मगर व्यर्थ।

लाजपत राय को मैंने ख़त लिखा। उसने जवाब नहीं दिया। मैंने यहाँ तक लिखा था कि थोड़ा-थोड़ा दे दो, लेकिन जब कोई पत्रों का जवाब ही न दे तो क्या किया जाय। अगर तुम जाओ तो पत्र दिखाकर उनसे साफ़-साफ़ जवाब लेना, वह किस तरह सफ़ाई चाहते हैं। 800 रुपये का मामला है। यहाँ मेरे सर पर क़र्ज़ है और वहाँ एक-एक आसामी इतनी-इतनी रकमें दबाये बैठा है। क्या वह यही चाहता है कि हम लोग अदालत में आमने-सामने खड़े हों। भला आदमी ख़त का जवाब नहीं देता। मजबूर होकर रजिस्टर्ड नोटिस देना पड़ेगा। शेष कुशल।

तुम्हारा, धनपत राय।



हंस आफ़िस, 30 अप्रैल 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

तुम्हारा पत्र ऐन इन्तजार की हालत में मिला। तुमसे सलाह करने की एक ख़ास ज़रूरत आ पड़ी है। अभी न बताऊँगा। जब आओगे तभी इस विषय में बातें होंगी। मगर अब तुम्हें क्यों Suspense की हालत में रखूँ। बम्बई की एक फ़िल्म कम्पनी मुझे बुला रही है। वेतन की बात नहीं, कंट्रैक्ट की बात है। 8000 रुपये साल। मैं उस अवस्था को पहुँच गया हूँ जब मेरे लिए हाँ के सिवा कोई उपाय नहीं रह गया कि या तो वहाँ चला जाऊँ या अपने उपन्यास को बाज़ार में बेचूँ। मैं इस विषय में तुम्हारी राय जरूरी समझता हूँ। कम्पनी वाले हाजरी की कोई कैद नहीं रखते। मैं जो चाहे लिखूँ, जहाँ चाहे लिखूँ, उनके लिए चार-पाँच सीनरियो तैयार कर दूँ। मं सोचता हूँ, क्यों न एक साल के लिए चला जाऊँ। वहाँ साल भर रहने के बाद कुछ ऐसा कंट्रैक्ट कर लूँगा कि मैं यहीं बैठे-बैठे तीन चार कहानियाँ लिख दिया करूँ और चार-पाँच हज़ार रुपये मिल जाया करे। उससे 'जागरण' और 'हंस' दोनों मजे से चलेंगे और पैसों का संकट कट जायगा। फिर हमारी दोनों की चीजें धड़ल्ले से निकलेंगी, लेकिन तुम यहाँ आ जाओगे तो कतई राय

होगी। अभी तो मन दौड़ा रहा हूँ।

तुम्हारी स्कीम मुझे बिल्कुल पसन्द है। खूब पसंद है। लीडर से जवाब मिल गया, वे लोग हिन्दी काम को नहीं बढ़ाना चाहते। उनके जवाव के इंतजार में अप्रैल का 'हंस' 22 तक रुका रहा। 24 को जवाब मिला तब लेख जुटाये गए और अब अप्रैल और मई का 'हंस' एक साथ छप कर 15-20 मई तक रवाना होगा।

लीडर वालों से बातचीत इस आधार पर थी कि 'हंस' का और पुस्तकों का मूल्य जोड़ लिया जाय और उतने हिस्से मुझे लीडर कम्पनी में मिल जायँ। 'हंस' के लिए मैंने दो हज़ार माँगे थे, हालाँकि इस पर मैं 4000 रुपये से ज्यादा भेंट कर चुका हूँ। पुस्तकों का मुआमला साफ़ है। पुस्तकों की असली लागत निकाल ली जाय। 'जागरण' को चलाना मंजूर हो तो इसे चलाया जाय। अच्छा सोशलिस्ट पत्र बना दिया जाय। रहा यह प्रेस, यहाँ रहे या कहीं और, मुझे इसमें कोई एतराज नहीं। हाँ, काम ऐसे हाथों में हो जो महज़ dreamers न हों, जैसा मैं हूँ और तुम हो, वल्कि कुछ व्यावसायिक बुद्धि भी रखते हों। काशी में भी सुभीता है, क्योंकि प्रेस चला-चलाया है। यहाँ लोगों से बड़ी आसानी से सहयोग मिल सकता है। कुछ बँधे-बँधाए ग्राहक भी हैं। संभव है धन आते देखकर यहाँ कुछ लोग भी रुपये लगाने पर तैयार हो जायँ। अगर हम तीन आदमी और कृष्णचंद्र जी ही मिल जायँ तो क्या कहना। मैं हर तरह से सहयोग देने को तैयार हूँ। शेष कुशल है, बच्चे मज़े में हैं।

बच्चों को आशीर्वाद,

तुम्हारा, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, 8 मई, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

भले आदमी, मकान छोड़ा था तो डाकिए से इतना तो कह दिया होता कि मेरी चिट्ठियाँ फ़लाँ पते पर भेज देना। बस बोरिया-बिस्तरा सँभाला और चल खड़े हुए। मैंने तुम्हारे जवाब में एक बड़ा-सा Detailed ख़त लिखा था। वह शायद मुर्दा चिट्ठियों के दफ़्तर में पड़ा होगा। लीडर वालों से सौदा ठीक नहीं हुआ। वे लोग हिन्दी का काम लाभ की बात नहीं समझते, और कारोबार बढ़ाना नहीं चाहते। 'हंस' को (रोके) रहा। मगर अब अप्रैल और मई का (संयुक्त अंक) निकल रहा है। तुम्हारी कहानी का इंतजार है।

मैं वात्स्यायन जी के प्रस्ताव को दिल से स्वीकार करता हूँ। अगर 5000 रुपये और वात्स्यायन जी और तुम आ मिलो तो बहुत बड़ा काम हो जाय। मैं हर तरह से तैयार हूँ। यही चाहता हूँ कि जो काम शुरू किया गया है वह बंद न हो, उसकी उपयोगिता बढ़े और वह एक संस्था बन जाए। तुमने आने की बात लिखी थी। बहुत जरूरी है। लिखा-पढ़ी से तय न होगी। मेरी तरफ़ से बिल्कुल हिचक नहीं है। हाँ, अगर काशी से काम चले तो कई तरह से सुभीता है। यहाँ प्रेस चला-चलाया है। कुछ पत्रों का प्रचार बढ़ जाय, और आमदनी ज़्यादा हो जाय तो प्रेस को बाहरी काम करने की ज़्यादा फुरसत ही न रहेगी और प्रेस को बढ़ाना पड़ेगा। 'हंस' अगर 2000 छपे और 'जागरण' 4000 तो प्रेस को और कोई काम करने की ज़रूरत नहीं। अपनी किताब साल भर में 50/60

फार्म छाप लेगा। हाँ, बिजली लगा दी जाय तो ज़्यादा काम हो सकेगा। यहाँ सहयोग भी काफी मिल सकता है। बस एक Private Limited Company बना लो। हम तीनों अपने-अपने हिस्से का काम करें। अवस्थानुसार काम बाँट दो। मैं इसमें जीत में रहूँगा। आओ जल्द। लेकिन कुछ निश्चय हो गया हो तब। मुफ़्त में किराया देने के पक्ष में मैं नहीं हूँ। मुलाकात तो पत्रों से ही हो जाती है और पत्र न भी आये तो भी मैं तुम्हें अपने समीप पाता हूँ।

मुझे एक बम्बई की कम्पनी बुला रही है। क्या सलाह है। मुझे तो कोई हरज नहीं मालूम होता, अगर वेतन सात-आठ सौ मिले। साल-दो साल करके चला आऊँगा। मगर अभी मैंने जवाब नहीं दिया है। उसके दो तार आ चुके हैं। प्रसाद जी की सलाह है आप बम्बई न जायँ। तुम्हारी भी अगर यही राय है तो मैं न जाऊँगा। जौहरी जी कहते हैं ज़रूर जाइए और चिरसंगिनी दरिद्रता भी कहती है, चलो। जीवन का यह भी एक अनुभव है।

महावीर का कोई पत्र नहीं। एक बंबई के सज्जन भी X X X से यहाँ आए थे। महावीर से उनका सम्पर्क रहता था। वह तो उनसे कुछ Impressed नहीं हुए।

मुझे कल बुखार आ गया। आज भी थोड़ा है। मगर यों चंगा हूँ। चिन्ता की बात नहीं।

और तो कोई नई बात नहीं। X X ने सलाह-मशविरा X X उस मुआमले को तूल दिया। खैर, तुम्हारी X X मुझे पंसद आई।

तुम्हारा, धनपत राय।



बनारस, 14 मई, 1934

प्रिय उषा देवी मित्रा जी,

'पथिक' के लिए धन्यवाद। पढ़ लिया। सुंदर है।

संग्रह के लिए क्या कहानियाँ काफी हो गयी हैं ? अगर कोई प्रकाशक तैयार हो जाय तो बड़ा सुंदर।

शुभाभिलाषी, प्रेमचन्द।



दोपहर, 21 मई, 1934

आदरणीय प्रेमचंद जी,

आपका कृपा-पत्र मिला। 'जागरण' में मेरा एक हज़ार का घाटा हुआ या चार हजार का अथवा आपके एक गये या चार, इससे मुझे और आपको दोनों ही को कुछ लेना-देना नहीं है। आपने लिखा है कि–'आपने लंबे चौड़े वादे किये थे, वह आपने एक भी पूरे न किये। मैं आपके चकमे में आ गया।' यह कहाँ तक सत्य है, आप ही विचार कीजिए। मेरा तो यह विश्वास है कि आप मुझसे किसी तरह का सहयोग लेना ही नहीं चाहते थे।

आप जैसे कुशल कलाकारों की लेखनी से 'चकमा' शब्द शोभा नहीं देता। मैंने आपको 'जागरण' दिया और आपने उसे निकाला। मैंने स्पष्ट शब्दों में आरम्भ में ही आपको लिख दिया–मेरा टर्म केवल इतना ही होगा कि पत्र जब तक चाहें निकालते रहें। उसकी हानि-लाभ से मेरा कोई सम्बन्ध न होगा। लेकिन जब किसी कारण से आप स्वयं

उसे बंद करना चाहेंगे (भगवान न करे ऐसा कभी हो) तो मुझे अधिकार होगा कि मैं उसके प्रकाशन की व्यवस्था करूँ।

आपने 19 जुलाई, 1932 के पत्र में उसे टर्म को स्वीकार करते हुए लिखा है—आपकी उस शर्त से भी मुझे कोई आपत्ति नहीं कि यदि मैं पत्र बंद करूँ तो आप उसे निकालें।

आपने यह टर्म स्वीकार करते हुए भी 'जागरण' के बंद करने की सूचना निकालने के पहले मुझसे केवल पूछना तक उचित नहीं समझा, और अनिश्चित काल के लिए 'जागरण' बंद कर दिया गया।

अब आप लिखते हैं—'लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं दो साल का परिश्रम और चार हज़ार का घाटा यों ही निकल जाने दूँ।'

इन बातों को एक साधारण अपढ़ आदमी भी भलीभाँति समझ सकता है, और आप तो महारथियों में हैं, आपको कौन समझा सकता है ? आप ही विचार कीजिए कि अपने स्वार्थ की छाया में आप कहाँ तक न्याय कर रहे हैं। रही साझे की बात, वह इस जीवन में न मैंने किसी से किया है और न करूँगा।

आदरणीय प्रसाद जी की उस स्कीम पर कि पुस्तक मंदिर, सरस्वती प्रेस और भरती भण्डार मिला दिया जाय—जब मैं सहमत नहीं हुआ तो अब साझा करना असम्भव है।

मैं विशेष कुछ न लिखकर एक बार फिर आपसे अनुरोध करता हूँ कि इस सम्बन्ध में आप अपना निश्चित उत्तर स्पष्ट शब्दों में दें।

मैं उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ।

आपका, विनोदशंकर व्यास।

●●

21 मई, 1934

प्रिय विनोद जी,

पत्र मिला। मैंने 'जागरण' बन्द नहीं किया है और न करूँगा। स्थगित किया है। समाधि के बाद वह पुनर्जीवन लाभ करके उठेगा और इससे अच्छे रूप में निकलेगा। कब तक वह शुभ मुहूर्त आवेगा यह मैं नहीं बता सकता। रुपये जब जमा हो जायेंगे तब निकलेगा। मैं बम्बई जा रहा हूँ। जब मैं 'जागरण' को सदा के लिए बन्द कर दूँगा तब आप उसका शव उठा ले जाइएगा। समाधि तो मौत नहीं है।

भवदीय, धनपत राय।

●●

जागरण कार्यालय, सरस्वती प्रेस, काशी, 21 मई 1934

प्रिय उषा देवी मित्रा जी,

आशीर्वाद। तुम्हारा एक छोटा-सा सपना मिला। उसे दे रहा हूँ। लेकिन एक कहानी की ज़रूरत है। अगर एक कहानी लिख भेजो तो बड़ी दया करो। मेरे पास अच्छी कहानियाँ बहुत कम रह गयी हैं इसलिए हारकर तुम्हें कष्ट दे रहा हूँ। क्षमा करना।

शुभाभिलाषी, प्रेमचंद

●●

21 मई, 1934

आदरणीय प्रेमचंद जी,

'जागरण की समाधि' शीर्षक अग्रलेख पढ़कर अत्यन्त दुख हुआ। मुझे विश्वास ही नहीं होता था कि 'जागरण' इतनी जल्दी में बंद किया जायगा। पता नहीं आपने इसे इतनी शीघ्रता में बंद करके क्या लाभ सोचा है।

पत्र में चार हज़ार का घाटा मैंने दिया और पाँच-छः हज़ार से कम आपका भी नहीं हुआ होगा। ऐसी स्थिति में उसे एकाएक बंद करना कहाँ तक उचित था, यह मेरी समझ में नहीं आया। यह ठीक है कि पत्र अब जल्दी ही 'सेल्फ़ सपोर्टिंग' हो जाता।

मैंने 'जागरण' आपके हाथों में देते हुए अपनी एक प्रार्थना आपसे स्वीकार करा ली थी—कि कभी 'जागरण' आप बंद करें तो मैं ही उसकी व्यवस्था करूँगा, क्योंकि 'जागरण' से मुझे भी कोई व्यावसायिक लाभ की संभावना न थी और न है।

मेरा उद्देश्य केवल साहित्य-सेवा का ही है। मैं किसी तरह भी यह नहीं देख सकता कि 'जागरण' का अंत हो।

अनिश्चित काल के लिए बंद करने के पहले आपको मुझे सूचना देनी थी, क्योंकि पत्र आपके बंद करने के पहले मुझे अधिकार है कि मैं उसके प्रकाशन की दूसरी व्यवस्था करूँ।

'अनिश्चित काल' से कुछ समझ नहीं पड़ता और मेरे-आपके टर्म के अनुसार यह सर्वथा अनुचित है।

कृपा करके आप मुझे आज्ञा दें कि मैं उसका नया प्रबन्ध करूँ अथवा उसे बंद ही कर दूँ। यह अधिकार मुझे है, आपको नहीं।

उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ।

आपका,
विनोदशंकर।

Ajanta Cinetone LTD
Producers and Distributors of
High class Talking Pictures
Dear Babu Prem Chand,

30, Govt. Gate Road.
Parel, Bombay-12
23rd May, 1934

I hope you have received my letter dated 12th May, 1934 I am sorry I have not received a reply from you.

The matter is urgent from my point of view, because negotiations are going on with some other people also. I would however very much like you

to join us. You need not be afraid by the number of stories, because I will only want you to give me as many stories or dialogues as may be required by me for actual production.

Please let me have a reply immediately so that I may know where I stand.

With kind regards,

Yours Sincerely, M. Bhavnani

●●

अजंटा सिनेटोन लि. परेल, बम्बई, 15 जून, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

कार्ड मिला। मैं कुछ ऐसा परेशान रहा कि इच्छा होने पर भी पत्र न लिख सका। I को आ गया, मकान ले लिया, दादर में होटल में खाता हूँ और पड़ा हूँ। यहाँ दुनिया दूसरी है, यहाँ की कसौटी दूसरी है। अभी तो समझने की कोशिश कर रहा हूँ, इस विषय की किताबें पढ़ रहा हूँ। लिखा कुछ नहीं। जुलाई में घर के लोग, धुन्नू को छोड़कर, आ जायेंगे। साल भर किसी तरह काटूँगा, आगे देखी जायगी।

तुमने तो जैसे लिखने की कसम खा ली। 'हंस' में कुछ न लिखा। महीने में दो तीन कहानियाँ लिखना तुम्हारे लिए क्या मुश्किल है। एक 'हंस' को दे दो, एक 'भारती' को दे दो और एक 'चाँद' या 'विशाल भारत' को। भाई ! आइडिया लिस्ट बनने से काम न चलेगा। चिड़ियाँ उड़ती आसमान पर हैं, लेकिन भोजन के लिए धरती पर ही आती हैं। जुलाई के लिए कहानी अवश्य भेजो। यहाँ वर्षा हो गई और बड़ा अच्छा मौसम है।

हाँ ! 'हंस' के लिए कुछ साहित्यिक नोट क्यों नहीं लिख दिया करते। हिन्दुस्तान टाइम्स में सारी दुनिया की पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं उनमें साहित्योत्तेजक चीज़ें मिल सकती हैं। छः-सात पृष्ठों की कहानी, तीन-चार पृष्ठों की टिप्पणियाँ। इतना 'हंस' के लिए करते जाओ और माहवार हिसाब साफ़ कर दिया करूँगा। आज नहीं तो कल, यह पत्र तुम्हारे हाथ में जायगा ही। शेष कुशल।

धनपत राय

●●

अजंता सिनेटोन लि., बंबई, 25 जून, 1934

भाईजान,

तसलीम। दैर-ओ-हरम पढ़ा। मेरा ही अफ़साना है मगर शायद उर्दू में किसी और नाम से छपा था। हाँ, 'ज़िन्दगी' ने नक़्ल करने में अस्ल का खून किया है। और आज़ाद के कातिब साहब ने मुए पर और दुर्रे[1] लगाये हैं। मगर इस मज़मून में किसी को शिकायत का क्या मौक़ा है। फिरक़ापरस्तों की ज़ेहनियत का पर्दा फ़ाश किया गया है। बिला किसी रू-रियायत के। एक तरफ़ हिन्दू पंडितों और पुजारियों की मज़हबपरवरी का नज़्ज़ारा है। दूसरी ज़ानिब मुल्लों की मजहबपरवरी का। दोनों मज़हब के पर्दे में अपनी-अपनी नफ़सपरस्ती[2] के शिकार हो रहे हैं। अगर कुछ लोगों को बुरा लगता है तो मेरा क्या अख़्तियार है।

लड़के कायस्थ पाठशाला होस्टल में हैं। वहीं जहां हिन्दोस्तानी एकेडमी है। बीस नंबर के कमरे में रहते हैं। एक का नाम धुन्नू या श्रीपत राय दूसरे का बन्नू या अमृत राय। अभी दोनों आये थे। 22 को गये हैं। आप तो एकेडमी आयेंगे ही, उन्हें भी दर्शन दे दीजिएगा। मैं तो यह लंबा सफ़र करने से रहा। 27 घंटे लगते हैं। मरन हो जाती है।

मैंने मैनेजर हंस को ताकीद कर दी है कि जब मेरा अफ़साना छपे वह उसका प्रूफ़ ज़माना को भेज दिया करें और हंस में लिख दिया करें। उर्दू तर्जुमे का हक़ ज़माना के लिए महफ़ूज़[3]। साल में पाँच छः से ज़ाइद नहीं लिखता। हां सहर साहब इस काम के लिए बहुत मौज़ूं हैं। और सब ख़ैरियत है।

मुखलिस, धनपत राय।

1. कोड़े, 2. पेट पालना, 3. झमेला।



अजंटा सिनेटोन लि., परेले, बंबई-12, 1 जुलाई, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

पत्र मिला था। आशा है तुमने अपनी ओर 'अज्ञेय' जी की कहानियाँ भेज दी होंगी। अगर नहीं भेजी हों तो अब जुलाई, नंबर के लिए जल्द से जल्द भेज दो। विलम्ब भी उन कारणों में एक है जो 'हंस' को उठने नहीं देते।

मैं मजे में हूँ। एक स्टोरी लिख डाली। जा रही है। दूसरी शुरू कर रहा हूँ। तुम्हारे ज़ेहन में कोई प्लाट हो तो एक खुलासा भेज दो। यहाँ कई डाइरेक्टरों से जान-पहचान हो गई है। संभव है कहीं निकल जाय। बहुत से सड़ियल लोगों की चीज़ें निकलती हैं तो फिर तुम्हारी क्यों न निकलेंगी ?

रात-दिन वर्षा। नाकों दम है। महावीर पहुंच गया या नहीं ? प्रवासीलाल ने लिखा था, कोई हिसाब नहीं दिया। ज़रा याद दिला देना। क़ाग़ज़ का पेट तो भरना ही चाहिए।

सप्रेम, धनपत राय।



अजंटा सिनेटोन, परेल, बम्बई-12, 3 अगस्त, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

पत्र मिला। मैं 23 को बनारस गया था। 31 को वापस आया। बेटी और उसकी माँ को लेता आया। लड़कों को प्रयाग कायस्थ पाठशाला में भरती करा दिया। तुम्हारा लेख, कहानी, 'अज्ञेय' जी की कहानी और मेरी कहानी सब छप रही हैं।

सिनेमा के लिए कहानियाँ लिखना मुश्किल हो रहा है, लेकिन ज़रूरत ऐसी कहानियों की है जो खेली भी जा सकें, जो ऐक्टरों के लिए सुलभ हों। कितनी ही अच्छी कहानी हो, अगर योग्य पात्र न मिलें तो वह कौन खेलेगा। अद्भुत की ज़रूरत मैं नहीं समझता। मेरी दोनों कहानियाँ साधारण हैं। अगर तुम (कोई) चीज़ लिखो तो यहाँ (कुछ प्रबंध) हो सकता है। पहले सिनापसिस ही लिख भेजो। उससे कहानी के प्लाट का अंदाजा हो जायगा।

'जागरण' (सोशलिस्ट) पेपर हो गया है। काशी में बा. सम्पूर्णानन्द से जो बातें हुईं उनसे मालूम हुआ कि वह एक (पत्र) निकालना चाहते हैं। बड़ा अच्छा है किसी तरह

(निकल) जाय, तो मेरे सर से एक बला टले। तुमने 'अज्ञेय' जी के साथ पत्र निकालने का विचार क्यों छोड़ दिया।

मैं सकुशल हूँ।

तुम्हारा, धनपत राय।



अजंता सिनेटोन लि., बंबई, 11 अगस्त 1934

भाईजान,

तसलीम। मैं सच्चे दिल से कहता हूँ कि उस ख़त से मेरा मक़सूद आपकी दिल-आज़ारी[1] न थी। अगर आपको सदमा हुआ तो मुझे इसका मलाल है और मैं आपसे मुआफ़ी का ख़्वास्तगार हूँ। आपने सितंबर में कुछ भेजने का वादा किया है। अगर आप बग़ैर किसी ख़ास तरद्दुद के भेज सकते हों तो भेज दें वर्ना क़र्ज़ लेकर न भेजें। मुझे यह गुमान न था कि आप अब भी उसी चपक़लश में हैं जिसमें मैं हूँ। मैंने तो समझा था इसका बाइस मेरी मुशकिलात का एहसास न होना है। अगर आपकी हालत इतनी ही ख़राब है जैसी मेरी तो आप उसे और ख़राब न करें। मैंने आपका चेक बराहे रास्त रघुपतिसहाय को भेज दिया। अब वह ख़ामोश रहेंगे। निरंजनलाल को भी मैं बइक़सात[2] यहां से भेजता रहूँगा। बात यह है कि मैं कभी बिज़नेसमैन नहीं रहा। आप भी नहीं रहे। मगर मैंने आपसे कुछ सबक़ न सीखा और न जाने क्योंकर यह हिमाक़त सवार हो गयी कि जहाँ आप नाकाम रहे वहाँ मैं कामयाब हो जाऊँगा। हंस फ़तबख़्त चार पांच हज़ार का घाटा दे चुका है। इस पर शामत सवार हुई एक हफ़्तेवार भी निकाल बैठा। इस पर भी तीन हज़ार का घाटा दे चुका था। मक़सद यह था कि थोड़ी-सी मुस्तक़िल आमदनी होती रहे और मैं अपने गोशए आफ़ियत[3] में बैठकर कुछ थोड़ा-सा लिटररी काम कर लिया करूँ। लेकिन पीर आये और घर से भी ले गये। दो में एक पर्चा भी कामयाब न हुआ। प्रेस और कुतुब की सारी आमदन। उनके इजरा[4] में सर्फ़ हो जाती है। उस पर रु. क़ाग़ज़ के दो हज़ार रुपये सर पर सवार हो गये। आख़िर मुझे यहां भागकर आना पड़ा। यहाँ साल-दो साल रह गया तो शायद क़र्ज़ से सुबुकदोश हो जाऊँ। मगर क़िस्मत ऐसी नहीं है कि ज़्यादा क़याम कर सकूँ। जागरण की बाबत उम्मीद है कि सोशलिस्ट पार्टी वाले उसे ले लें। आजकल इसे बाबू सम्पूर्णानन्द निकाल रहे हैं और वह सोशलिस्ट अख़बार है। अगर वह इधर चल गया तो डेढ़ सौ की माहवार चपत पड़ रही है वह बन्द हो जायेगी। फिर अकेला हंस रह जायेगा। उस पर अगर साल में पांच सात सौ का ख़सारा हुआ भी तो मुज़ायक़ा नहीं। किताबों का इश्तहार तो होता ही है। अगर आप स्क्रीन के क़ाबिल कोई सिनेरियो लिख सकें, ओरीजिनल न हो किसी अंग्रेज़ी नाविल से ही माख़ूज़[5] हो मुज़ायक़ा नहीं मैं यहाँ कम्पनियों में उसकी निस्बत गुफ़्तगू कर सकता हूँ। स्क्रीन की ज़रूरियात क्या है यह आप मुझसे बदर्जहा ज़्यादा जानते हैं क्योंकि आप सिनेमा के शायक़ीन[6] में हैं। मैंने तो यहाँ आकर कुछ सीखना शुरू किया है। ऐसा कोई क़िस्सा न भेजिए जिसमें कापीराइट का कज़िया[7] हो। पुरानी किताबों में भी बहुत कुछ मिल सकता है या कोई तारीख़ी अफ़साना हो मगर सोशल हो तो बेहतर क्योंकि आजकल सोशल

क़िस्तों की तरफ़ आम रुझान है। आपके क़लम से जो सिनेरियो निकलेगा वह लाजवाब होगा। पहले आप जो क़िस्सा लिखना चाहें उसका एक खुलासा लिखें। उसी पर सारा दारोमदार है। अगर वह कम्पनी ने पसंद कर लिया तो सीक्वेन्स और सिनेरियो लिखना मुशकिल नहीं। एक बार यहाँ आइए। मौसम खुशगवार सिर्फ़ रेल का ख़र्च। दस पांच रोज़ यहाँ घूमघामकर सिनेमा कंपनियों से बातचीत की जाये। मुमकिन है कोई मुस्तक़िल सूरत निकल आये। मगर दो एक सिनाप्सिस के बग़ैर ख़ाली गुफ़्तगू से कुछ न होगा। यह लोग लिटररी शोहरत से मरऊब[8] नहीं होते। गौरी शंकर अख़्तर यहाँ मुक़ीम[9] हैं और चार पांच सौ माहवार फटकार लेते हैं। अगर आप दो अफ़साने भी साल का किसी से कन्ट्रेक्ट कर सकें तो हज़ार डेढ़ हज़ार वहीं बैठे-बैठे आदमनी में इज़ाफ़ा हो सकता है। और दो अफ़साने से ज़्यादा से ज़्यादा दो महीने का काम है।

और क्या अर्ज़ करूँ। मैं फिर आपसे मुआफ़ी माँगता हूँ। वह महज़ परीशान और मुज़तरिब[10] दिल का उबाल था। इश्तहार वालों की बदमुआमलिगी[11] का मुझे बहुत तल्ख़[12] तर्जुबा हुआ है। जागरण के तक़रीबन् आठ सौ रुपये दो साल के दौरान में डूब गये। बज़ाहिर मुश्तहिर साहब मोतबर[13] आदमी मालूम होते थे लेकिन जब महीने दो महीने इश्तहार निकलने के बाद बिल गया तो ख़ामोश और ख़ामोशी भी ऐसी जो टूटना नहीं जानती। दो साहब कलकत्ते के हैं, तीन साहब बंबई के हैं। यहां उनका पता लगाना चाहा मगर मालूम हुआ बोगस थे; एक दिन मिस्टर ज़ियाउद्दीन बरनी साहब तशरीफ़ लाये थे। आपको बहुत याद करते थे। अब तो मिस्टर सीतलवाद भी दो कंपनियों के मालिक हैं। उनसे तबर्रुफ़[14] हो जाये तो आपके लिए फ़ायदे की बहुत अच्छी सूरत हो सकती है। मैं तो उनसे नहीं मिला क्योंकि मैं इस कंपनी के साल भर के कंट्रेक्ट में हूँ और इस दौरान में और कहीं फ़िल्म के लिए नहीं लिख सकता। मुआविज़ा[15] तो अच्छा नहीं है लेकिन यहां इंतख़ाब का मौक़ा कहाँ था। डूबते को सहारा मिला। चल खड़ा हुआ।

आप अगर बिना किसी ज़ोर के सितंबर में ईफ़ाये वादा कर सकें तो मैं मशकूर हूँगा लेकिन तरद्दुद हो तो मैं तो आपको परीशान करना न चाहूँगा। ज़िन्दगी में कभी फ़राग़त नसीब न हुई, अब क्या नसीब होगी। जब ख़ानानशीनी का ज़माना है तो यहाँ बंबई में हूँ। नाकाम ज़िन्दगी (माली एतबार से, दीगर एतबारों से तो मैं इसे बुरी नहीं कह सकता) का इससे बढ़कर और क्या फ़ेट हो सकता है। बेफ़िक्री में कुछ अमली क़ौमी ख़िदमत करता मगर वह आरज़ू न पूरी हुई न होगी। आप परीशान हुए तो क्या और मैं परीशान हूँ तो क्या, एक ही बात है।

मुख़लिस, धनपत राय।

1. दिल दुखाया, 2. क़िस्तों में, 3. एकान्त, 4. जारी करने, 5. लिया गया, 6. शौक़ीनों, 7. झगड़ा, 8 रोब में नहीं आते, 9. स्थित, 10. बेचैन, 11. बेईमानी, 12. कड़वा, 13. विश्वसनीय, 14. परिचय, 15. तन्ख़्वाह।



एस्प्लेनेड रोड, बम्बई, 7 सितम्बर, 1934

प्रिय इन्द्रनाथ जी,

अब मैं आपके प्रश्नों पर आता हूँ।

(1) अपने घर की मेरी बचपन की स्मृतियाँ बिल्कुल साधारण हैं, न बहुत सुखी न बहुत उदास। मैं आठ साल का था तभी मेरी माँ नहीं रहीं। उसके पहले की मेरी स्मृतियाँ बहुत धुँधली हैं, कैसे मैं बैठा अपनी बीमार माँ को देखता रहता था, जो उतनी ही मुहब्बती और मौक़ा पड़ने पर उतनी ही कठोर थीं जितनी कि सब अच्छी माँएं होती हैं।

(2) मैंने उर्दू साप्ताहिकों में और फिर मासिकों में लिखना शुरू किया। लिखना मेरे लिए बस एक शौक़ की चीज़ थी। मुझे सपने में भी ख़याल न था कि मैं आख़िरकार एक दिन लेखक बनूँगा। मैं सरकारी मुलाज़िम था और अपनी छुट्टी के वक़्त लिखा करता था। उपन्यासों के लिए मेरे अन्दर एक न बुझने वाली भूख थी, जो कुछ मेरे हाथ लगता है, मैं चट कर जाता, उसमें कोई भले-बुरे का चुनाव करने की तमीज़ मेरे अन्दर न थी। मेरा पहला लेख सन् 1901 में और मेरी पहली किताब सन् 1903 में छपी। इस साहित्य-रचना से मुझे अपने अहंकार की तुष्टि के अलावा और कुछ न मिलता था। पहले मैं समसामयिक घटनाओं पर लिखता था फिर अपने वर्तमान और अतीत वीरों के चरित्रों के स्केच। 1907 में मैंने उर्दू में कहानियाँ लिखना शुरू किया और सफलता से प्रोत्साहित होकर लिखता रहा। 1914 में दूसरों ने मेरी कहानियों के अनुवाद किये और वह हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। फिर मैंने हिन्दी सीख ली और सरस्वती में लिखने लगा। उसके बाद मेरा 'सेवासदन' निकला और मैंने अपनी नौकरी छोड़ दी और स्वतन्त्र साहित्यिक जीवन बिताने लगा।

(3) नहीं, मेरा किसी से कोई प्रणय नहीं हुआ। ज़िन्दगी बहुत उलझाने वाली थी और रोटी कमाना इतना कठिन काम किया उसमें रोमांस के लिए जगह न थी। कुछ बहुत छोटे-छोटे मामले थे जैसे कि सबके होते हैं, पर मैं उन्हें प्रेम नहीं कह सकता।

(4) स्त्री का मेरा आदर्श त्याग है, सेवा है, पवित्रता है, सब कुछ एक में मिला-जुला—त्याग जिसका अंत नहीं, सेवा सदैव, सहर्ष और पवित्रता ऐसी कि कोई कभी उस पर उंगली न उठा सके।

(5) मेरे दाम्पत्य जीवन में रोमांस जैसी कोई चीज़ नहीं है। बिल्कुल साधारण ढंग की चीज़ है। मेरी पहली स्त्री का देहांत 1904 में हुआ, वह एक अभागी स्त्री थी, तनिक भी सुदर्शन नहीं और यद्यपि मैं उससे सन्तुष्ट नहीं था तो भी बिना शिकवा-शिकायत निभाये चल रहा था जैसे कि सब पुराने पति करते हैं। वह जब मर गयी तो मैंने एक बाल विधवा से विवाह किया और उसके साथ काफी सुखी हूँ। उसमें कुछ साहित्यिक अभिरुचि आ गयी है और वह कभी-कभी कहानियाँ लिखती है। वह एक निडर, साहसी, समझौता न करने वाली, सीधी-सच्ची स्त्री है, दोष की सीमा तक दायित्वशील और अत्यधिक भावुक। वह असहयोग आन्दोलन में शरीक हुई और जेल गयी। मैं उसके साथ सुखी हूँ, ऐसी कोई चीज़ उससे नहीं माँगता जो वह नहीं दे सकती। टूट भले जाय पर आप उसे झुका नहीं सकते।

(6) ज़िन्दगी मेरे लिए हमेशा काम रही है, काम, काम, काम। मैं जब सरकारी नौकरी में था तब भी अपना सारा समय साहित्य को देता था। मुझे काम करने में मज़ा आता है। पस्ती के क्षण आते हैं जब पैसे की समस्या आ खड़ी होती है वर्ना मैं अपने भाग्य से बहुत संतुष्ट हूँ, अपने प्राप्य से अधिक मुझे मिला। आर्थिक दृष्टि से मैं असफल

हूँ, व्यवसाय मैं नहीं जानता और तंगी से मुझे कभी छुटकारा नहीं मिलता। मैं कभी पत्रकार नहीं रहा लेकिन परिस्थितियों ने मुझे जबरन बनाया और जो कुछ मैंने साहित्य में कमाया था, जो कि बहुत नहीं था, सब पत्रकारिता में गँवा दिया।

(7) कथानक मैं इस दृष्टि से बुनता हूँ कि मानव चरित्र में जो कुछ सुन्दर है, मर्दाना है वह उभरकर सामने आ जाय। यह एक उलझी हुई प्रक्रिया है, कभी इसकी प्रेरणा किसी व्यक्ति से मिलती है या कभी किसी घटना से या किसी स्वप्न से लेकिन मेरे लिए ज़रूरी है कि मेरी कहानी का कोई मनोवैज्ञानिक आधार हो। मैं मित्रों के सुझावों का सदैव सहर्ष स्वागत करता हूँ।

(8) मेरे अधिकांश चरित्र वास्तविक जीवन से लिये गये हैं, गो उन्हें काफी अच्छी तरह पर्दे में ढंक दिया गया है। जब तक किसी चरित्र का कुछ आधार वास्तविकता में न हो तब तक वह छाया-सा अनिश्चित-सा रहता है और उसमें विश्वास पैदा करने की ताक़त नहीं आती।

(9) मैं रोमें रोलां की तरह नियमित रूप से काम करने में विश्वास करता हूँ।

(10) हाँ, मेरा गोदान जल्दी ही प्रेस में जा रहा है। वह लगभग छः सौ पृष्ठों का होगा।

आपका, प्रेमचंद।

●●

अजंटा सिनेटोन, परेल, बंबई-12, 18 सितम्बर, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

आशा है तुम कुशल से हो। आजकल क्या कर रहे हो ? लिखने पढ़ने की क्या ख़बर है। मैं तो जैसे (अपाहिज़) हो गया हूँ। 'हंस' के लिए एक चीज़ लिखना भी मुश्किल है। तुमने अपनी कहानी और मि. अज्ञेय की भेज दी होगी। सितम्बर का अंक 15 तक निकाल देने का इरादा है। एक दिन प्रेमी जी के बेटे हेमचन्द आए थे। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के बहुत सस्ते एडिशन निकालने की स्कीम सोच रहे हैं। चार-पाँच आने में दस फार्म की किताब देंगे और दस हज़ार के एडिशन निकालेंगे। देखें, स्कीम पूरी होती है या यूँ ही रह जाती है। मैंने सुना है जोशी बन्धुओं ने 'विश्वमित्र' से संबंध तोड़ लिया है।

अगर तुमने अपनी कहानी न भेजी हो तो अब अवश्य भेज दो।

और तो कुशल है।

आपका, धनपत राय।

●●

अजन्ता सिनेटोन लि., बम्बई-12, 9-9-1934

प्रिय बन्धुवर,

आज दो दिन बाद स्टूडियो आया। आपका पत्र मिला। इस परिस्थिति में सिवा इसके कि प्रेस बन्द कर दिया जाय, मैं और क्या सलाह दे सकता हूँ। बन्द कर दीजिए। 3 महीने की मजदूरी 1000 रु. से कम न होगी, उधर निरंजनलाल का तगादा आया, 900 रु. उनका भी बाकी है, 900 रु. काशी पेपर स्टोर का बाकी है। उसका भी तगादा आ

चुका है। इस तरह आपके ऊपर 3000 रु. का देना है। स्टॉक भी लगभग 5-6 हज़ार का होगा। आपके पास जो 250 रु. हैं, उनमें से 200 रु. कागज़ वाले निरंजनलाल को दे दीजिए। उसने नालिश कर दी तो 1000 रु. की डिग्री हो जायेगी। 'हंस' किसी दूसरे प्रेस में छपवा कर चलता कीजिए। एक-दो महीने चाहे प्रेस बन्द रहे। 'हंस' छपने की व्यवस्था न हो तो उसे भी बन्द कीजिए। 'जागरण' भी बन्द हो रहा है। इस खिट-खिट से लगभग 10 हज़ार की हानि हो गयी। अब यह तमाशा ख़त्म हो जाय, यही अच्छा है। मकान का किराया भी मैं यहाँ से भेज दिया करूँगा। आप 200 रु. दे देंगे और अब की मैं 200 रु. या 150 रु. दे दूँगा, तो कागज़ का 350 रु. पहुंच जायेगा। 500 रु. और रह जायेंगे। वह मैं पुस्तकें बेचकर दे दूँगा। काशी पेपर स्टोर के रुपये भी पुस्तकें बेचकर अदा करूँगा। आप भी अपने लिए कोई मार्ग निकालने का प्रयत्न कीजिए, क्योंकि जब कोई काम ही नहीं रहेगा तो आप बैठे क्या करेंगे ? 'हंस' के ग्राहकों में मुश्किल से छमाही चन्दा बाक़ी होगा। उसके बदले में पुस्तकें दे देनी होंगी। प्रेस मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल थी और उसके पीछे मुझे अपने समय और धन का बहुत नुकसान उठाना पड़ा। यह अच्छा अवसर आया है। इससे लाभ उठाकर किनारे हट जाइए। आपके लिए कहीं-न-कहीं कोई स्थान मिल ही जायगा। मैं किसी-न-किसी तरह अपनी रोज़ी कमा ही लूँगा। प्रेस न रहेगा तो निश्चिंत रह सकूँगा। रही मजदूरों की मजदूरी, वह तो अब अदालती फ़ैसले से ही दी जायगी, जब वे कार्यालय की हानि का तावान भी देंगे। ऋषभचरण जैन मेरा सारा कार्यालय और प्रकाशन लेने को तैयार हैं। आपको भी रखना चाहते हैं। क्योंकि यह बखेड़ा सिर से टाल दिया जाय। उनसे कुछ रुपये मिल जायेंगे। वह कागज़ वालों को देकर गला छुड़ा लिया जायगा। या कहिए तो 'चाँद' वालों से बातचीत करूँ ? 'चाँद' वाले राज़ी हो जायें तो ज़्यादा अच्छा है। मगर कुछ भी हो, प्रेस तो बन्द ही कर दीजिए और रुपये निरंजनलाल को देकर उसे ठण्डा कीजिए, वरना जो थोड़ा-बहुत स्टाक बचा है वह भी कुर्क हो जायगा, और कौड़ियों के मोल। फिर सारा तावान मुझे मजूरी करके चुकाना पड़ेगा। अगर बाबू सम्पूर्णानन्द कानपुर से कुछ तय करके आये तो शायद कुछ रुपये दे सकें और मजूरों की मजूरी एकाध महीने की निकल आवे, लेकिन वह असफल हुए तो फिर मजूरों की मजूरी तभी मिलेगी जब पुस्तकें किसी को दी जायेंगी और उससे कुछ रुपये मिल सकेंगे।

शेष क्या लिखूँ—'हंस', 'जागरण' और प्रेस में एक भी कार्य सफल न बना सका। दुर्भाग्य !

भवदीय, धनपत राय।



लाजपतराय एण्ड संस, शिमला, 10-9-1934

श्रीयुत मुंशी प्रेमचन्द जी, नमस्ते !

आपका नवाज़िशनामा लाहौर से रिटर्न होकर मुझे यहाँ मिला। आपका ख़त आता या न आता, इन दिनों मैंने कुछ-न-कुछ जो भी बन पड़ता, आपको भेजना था, क्योंकि आज ही आर्यसमाज का जल्सा ख़त्म हुआ। यहाँ दो समाजों के जल्से एक-एक हफ़्ता छोड़कर होते हैं। दो-तीन दिन सेल हो जाती है, मगर अब के दोनों समाजों के जल्से इकट्ठे

हुए हैं। Dull Market है। दूसरे, उन्होंने जलसे इकट्ठा कर लिये हैं, जिसकी वजह से सेल ख़ासतौर पर कम हुई है। मुबलिक सौ रुपये का चैक इर्साल-ए-ख़िदमत है, और जल्द ही सौ रुपये की दूसरी क़िस्त इर्साल करूँगा। मैं आपको किस तरह यक़ीन दिल सकता हूँ कि मेरी नीयत बदनीयती में तबदील हो गयी है (या नीयत साफ़ है)। इसका इलाज तो एक ही है कि आपका रुपया अदा हो जाता, वरना दूसरी सूरत में तो लाज़मी तौर पर बदनीयती का इल्ज़ाम आयद हो सकता है। इसकी वजह क़िसारबाज़ारी (मन्दा) है, न कि मेरी बदनीयती। ज़्यादा क्या लिखूँ, नज़रेइनायत करेंगे और जिस तरह भी कोशिश हो सकेगी, आपका रुपया जल्द-से-जल्द अदा करने की कोशिश करूँगा।

सोमप्रकाश।

●●

अजन्ता सिनेटोन लि., बम्बई-12, 21-9-1934

प्रिय बन्धु,

मुझे यह सुनकर हार्दिक खुशी हुई कि हड़ताल समाप्त हो गयी। आदमियों से ऐसा मित्रवत् व्यवहार रखिए कि अगर वेतन देर में भी मिले तब भी उनकी सहानुभूति आपके साथ बनी रहे। घुड़कियों का ज़माना अब नहीं रहा, यह तो आप समझते ही हैं। आदमियों से मेरी तरफ़ से कह दीजिए कि मैं उन सभी को अपना भाई समझता हूँ और उनकी तकलीफ़ देखकर मुझे दुःख होता है, लेकिन मजबूर हूँ कि काम जैसा चाहिए वैसा नहीं चल रहा है। अगर ईश्वर कभी वह समय लाया कि काम सफल हो गया तो मैं पेशगी दूँगा, बाक़ी रखने की बात ही क्या ! हाँ, जब तक वह दिन नहीं आता तब तक लज्जित भी होना पड़ता है और गालियाँ भी खानी पड़ती हैं। मैंने हमेशा इस हानि को इसी ख़याल से बरदाश्त किया है कि इतने भाइयों की रोटी का सवाल है। मुझे नहीं कुछ मिलता, न सही।

चेक सही करके भेज रहा हूँ। बाबू सम्पूर्णानन्द से 'जागरण' की बातचीत तय हो गयी ? अगर आप एक दिन के लिए प्रयाग चले जायें तो सारा काम बन जाय। दो सौ रुपये अगर अभी दे दिये जायें तो मैं अक्टूबर में 200 रु. और दे दूँगा। मगर वे 900 रुपये बताते हैं। मुझे ख्याल आता है कि मई में 700 सात सौ रु. का लेखा आया था।

मैं अपनी और भुवनेश्वर की कहानी कल अवश्य भेज दूँगा। घर पर है। मैं अजन्ता में बैठा लिख रहा हूँ। शेष कुशल !

भवदीय, प्रेमचन्द।

इस महीने मैंने 150 रुपये रघुपतिसहाय को और 50 रुपये मुंशी नन्दकिशोर को भेजा है। यह सब प्रेस का क़र्ज़ है, यह आप जानते ही हैं।

●●

अजन्ता सिनेटोन लि., बम्बई-12, 23-9-1934

प्रिय बन्धु,

पत्र का जवाब दे चुका हूँ। अभी आपका पत्र मिला। लाजपराय[1] ने एक ड्राफ़्ट 100 रुपये का भेजा है, उसे भेज रहा हूँ। निरंजनलाल को दे दीजिए 100 रुपये का चैक। मैंने 'चाँद' को पत्र लिखा है। आप वहाँ जाकर उनसे रुपये ले आ सकें तो बड़ा उत्तम।

कटरे में उनकी दुकान है।

'जागरण' में अगर ऐसी बातें छपें जिनसे प्रेस की और हमारी बदनामी हो तो उसको बन्द कर देना ही अच्छा। हमने तो समझा था, बँध हुआ काम मिल जायगा, इससे सम्पूर्णानन्द को उसे दे रहा था। अगर वह उसके द्वारा हमारी ही जड़ खोद रहे हैं तो उसे बन्द ही कर दीजिए। हम खुद तो उसे अब किसी तरह नहीं छाप सकते।

'हंस' का मैटर भेज रहा हूँ। हाँ, उसका कवर ज़रूर बदल दीजिए।

व्हीलर वालों का चैक अब भी बहुत थोड़ा रहा। हमें अब प्रकाशन पर ज़ोर देना है। अगले महीने मैं कुछ रुपए भेजूँगा। आप कागज़ लेकर 'कायाकल्प' शुरू कर दीजिएगा। इसके बाद मैं हर महीने अगर ज़रूरत हुई तो 100 रुपये कागज़ वालों को देता रहूँगा और आप 'मानसरोवर' कहानियों का संग्रह निकालिएगा। उसके पीछे 'गोदान' निकलेगा। तब तक तो शायद मैं आ ही जाऊँगा। मेरा स्वास्थ्य यहाँ कुछ ठीक नहीं रहता है।

झाँसी वालों पर नालिश करनी होगी। लाजपतराय ने भी 100 रुपये दिसम्बर और दूसरे महीने में 100 रुपये देने का वायदा किया है। शायद उस पर अभी नालिश न करनी पड़े।

काशीप्रसाद सिंह जी ने ऑर्डर भेजा है। कांग्रेस-सप्ताह में अच्छी बिक्री होने की आशा है। किताबें जल्द भेजने का प्रवन्ध कीजिए। शेप कुशल।

अगर 'जागरण' बन्द किया गया तो कुछ आदमी भी घटाने पड़ेंगे। ये लोग यह तो न समझेंगे कि हम बदला ले रहे हैं और फिर हड़ताल कर बैठें। मगर जिसको जवाब दीजिए, उसकी पूरी मजूरी देकर और नोटिस के बाद।

आपका, धनपत राय।

1 लाहौर के उर्दू प्रकाशक लाजपतराय एण्ड संस।



विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला मेक्लेगन रोड, लाहौर, 15-9-1934

सम्पादक : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

मान्यवर भाई जी,

आपकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों को हम लोगों ने अब अपनी सीरीज़ में ही प्रकाशित कर दिया है। पुस्तक की एक कापी आपकी सेवा में अवलोकनार्थ भेज रहा हूँ। यह Binding बहुत जल्दी में करवाई गयी है। शेष कापियों की binding इससे भी बहुत सुन्दर करवाई जा रही है, मगर सिर्फ 50 कापियों में, जिन्हें Punjab University में submit करने के लिए जल्दी में, अच्छा कागज़ न मिलने पर, छपवा दिया गया था। बाकी किताबें इससे बहुत बढ़िया रहेंगी। अस्तु।

अब के इस पुस्तक को हमने Matric तथा Hindi Board दोनों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कृपया आप Registrar, Punjab University के नाम Senate hall, Lahore के पते पर निम्नलिखित declaration लौटती डाक से, रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़े में भिजवा दें—

To, The Registrar, University of Punjab, Senate Hall, Lahore.

Dear Sir,

I, the author of 'Premchand ki Sarashreshth kahanian' have given the said book to 'Vishwa Sahitya Granth-Mala' of Lohore on roylaty basis, and I have no portion secret or otherwise in my royalty.

Yours faithfully.

कृपया यह काम बहुत शीघ्र करवाने का कष्ट कीजिएगा। यह अत्यावश्यक है।

शेष सब कुशल है। मैं पिछले दिनों बनारस भी गया था। वहाँ मालूम हुआ था कि बम्बई जाकर आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। क्या यह ठीक है ? आशा है, आप आनन्द से हैं। आपका कृपा-पत्र मिलने पर फिर लिखूँगा।

विनीत, चन्द्रगुप्त।



'भारत' सम्पादक के नाम पत्र

प्रियवर,

आपने अपने सम्मानित पत्र के 22 सितम्बर के अंक में सरस्वती प्रेस की हड़ताल के विषय में प्रेस कर्मचारी संघ की शानदार फतह का जो हाल छापा है उसके बारे में मैं भी कुछ निवेदन करने की आपसे अनुमति चाहता हूँ और मुझे आशा है आप मुझे निराश न करेंगे। सरस्वती प्रेस के प्रोप्राइटर होने के नाते हड़ताल की कितनी जिम्मेदारी मुझ पर आती है उससे स्पष्ट करना आवश्यक है ताकि आपके पाठकों को उससे मेरे बारे में जो गलतफ़हमी हो सकती है वह दूर हो जाय।

सरस्वती प्रेस लगातार कई साल से घाटे पर चल रहा है। पहले 'हंस' निकला और उससे तीन साल तक बराबर घाटा होता रहा। अब भी कुछ न कुछ घाटा ही है। इसके बाद प्रेस में काम की कमी को पूरा करने और जाति की कुछ सेवा करने के लिए मैंने 'जागरण' निकालने का भार भी ले लिया। यद्यपि काम मेरे बूते का न था लेकिन इस आशा से कि शायद यह उद्योग सफल हो जाय और प्रेस में धनाभाव का जो रोग लगा हुआ है वह दूर हो जाय मैंने यह भार भी सिर पर ले लिया और दो साल अपने समय का बहुत बड़ा भाग खर्च करके उसे चलाता रहा लेकिन तो भी बराबर घाटा ही रहा यहां तक कि प्रेस पर कोई चार हज़ार का ऋण हो गया जिसमें कर्मचारियों का देना और काग़ज़ वालों का बक़ाया दोनों शामिल हैं। फिर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी और जब अपनी बिगड़ी आर्थिक दशा से तंग आकर मैं काशी से चलने लगा तो मैंने 'जागरण' का सम्पादन-भार बाबू सम्पूर्णानन्द को सौंपा जिसे उन्होंने सहृदयता के साथ स्वीकार किया। मगर घाटा बराबर होता रहा। मेरी पुस्तकों की बिक्री के रुपये भी प्रेस के खर्च में आते रहे, फिर भी खर्च पूरा न पड़ता क्योंकि इधर पुस्तकों की बिक्री भी घट गयी है। बाबू सम्पूर्णानन्द जी के हाथों में 'जागरण' ने सोशलिस्ट नीति की जैसी जोरदार वकालत की वह हिन्दी संसार भली भाँति जानता है। मैं खुद सोशलिस्ट विचारों का आदमी हूँ और मेरी सारी ज़िन्दगी ग़रीबों और दलितों की वकालत करते गुज़री है। हिन्दी में 'जागरण' एक ऐसा पत्र था जिसने घाटे की परवाह न करते हुए वीरता के साथ सोशलिज़्म का प्रचार किया। जब प्रेस की आमदनी का यह हाल था तो कर्मचारियों का वेतन कहाँ से पाबंदी के साथ

दिया जा सकता था ? मेरी किताबों से जो कुछ आमदनी होती है वह इतनी भी नहीं है कि उससे मेरा निबाह हो सकता। न मुझमें यह फ़न है कि धनिकों से अपील करके कुछ धन संग्रह कर सकता, ऐसी दशा में प्रेस कर्मचारियों और काग़ज़ वालों दोनों ही से मुझे मज़बूरन वादाख़िलाफ़ी करनी पड़ी। मुझे ऐसी दशा में 'जागरण' को अवश्य बंद कर देना चाहिए था, जैसा मेरे अनेक मित्रों ने कहा, लेकिन दुनिया उम्मीद पर क़ायम है और मैं बराबर यही सोचता रहा कि शायद अब पत्र का प्रचार बढ़े। उसके पीछे कई हज़ार का नुक़सान उठा चुकने के बाद उसे बंद करते मोह आता था। मेरे कई मित्रों ने प्रेस को ही बंद करने की सलाह दी, क्योंकि प्रेस के बंधन से मुक्त होकर मैं अपनी पुस्तकों और लेखों से लस्टम-पस्टम अपना निर्वाह कर सकता हूँ। कम से कम उस दशा में मुझ पर किसी का क़र्ज़ तो न रहता। लेकिन मुझे यही संकोच होता था कि ये 25-30 आदमी बेकार होकर कहाँ जायँगे। बला से मुझे कुछ नहीं मिलता; मेहनत भी मुफ़्त में करनी पड़ती है, मगर इतने आदमियों की रोज़ी तो लगी हुई है। महज़ इस ख़याल से मैं हर तरह की ज़ेरबारी उठा कर प्रेस और पत्र चलाता रहा। दिल में समझता था, कर्मचारियों को प्रेस का ज्ञान है ही, क्या वह मेरी मजबूरी नहीं समझते ? जब उन्हें मालूम है कि मैंने आज तक प्रेस से एक पैसे का लाभ नहीं उठाया और जायज़ कमाई से कम से कम दस हज़ार रुपये प्रेस और पत्रों के पीछे फूँक दिये तो उनको मेरे नादिहन्द होने की कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए। मैं तो उलटे अपने को उनकी हमदर्दी का पात्र समझता था। मैं मानता हूँ कि ग़रीबों को समय पर वेतन न मिलने से बड़ा कष्ट होता है, लेकिन क्या ये खुद ही इस प्रेस के मालिक होते तो वे भी मेरी ही तरह सिर पीटकर न रह जाते ? उन्हीं कर्मचारियों में कितने ही किसान हैं। क्या उन्हें किसानी में घाटा नहीं हो रहा है और वे प्रेस की मजदूरी करके लगान नहीं अदा कर रहे हैं ? कर्मचारी को मालिक से असंतोष तब होता है जब मालिक खुद तो आमदनी हज़म कर जाता है और उन्हें भूखा रखता है। जब उन्हें मालूम है कि मालिक खुद बेगार में रात-दिन पिस रहा है. उसकी जेब में एक पाई भी नहीं जाती तो उनको मालिक से शिकायत करने का कोई जायज़ मौक़ा नहीं है। फिर भी इन परिस्थितियों पर ज़रा भी विचार न करके प्रेस संघ ने प्रेस में हड़ताल करवा दी। मैंने खबर पाते ही संघ के सभापति महोदय का सारा हाल समझा दिया और निवेदन किया कि मैं कर्मचारियों को exploit नहीं कर रहा हूँ बल्कि खुद उनके द्वारा exploit किया जा रहा हूँ, और प्रेस में जो कुछ आयेगा वह कर्मचारियों को दिया जायेगा, मैंने खुद न प्रेस से कभी एक पैसा लिया है, न अब लूँगा, लेकिन उन्हें तो अपनी शानदार फ़तेह की पड़ी थी, मेरी गुज़ारिशों पर क्यों ध्यान देते ? उन्हें यहाँ तक विचार न हुआ कि इस प्रेस को साहित्य या समाज की सेवा ही के कारण यह घाटा हो रहा है, और यही प्रेस है जो मजदूरों की वकालत कर रहा है, और इस लिहाज़ से मज़दूरों की हमदर्दी का हक़दार है, ऐसी कोशिश करें कि वह सफल हो, और ज़्यादा एकाग्रता से उनकी वकालत कर सके। उनके सोशलिज़्म में ऐसे तुच्छ विचारों के लिए स्थान ही नहीं था। वहाँ तो सीधा-सादा खुला हुआ सिद्धान्त था कि प्रेस ने मज़दूरी बाक़ी लगा रखी है इसलिए हड़ताल करवा दी। मैं अब भी प्रेस को बंद कर सकता था क्योंकि मैं पहले ही कई बार कह चुका हूँ कि प्रेस से मुझे कोई आर्थिक लाभ नहीं है, बल्कि हमेशा कुछ न कुछ घर

से देना पड़ता है, लेकिन फिर यही ख़याल करके कि इतने आदमी उसी प्रेस से कुछ न कुछ पा रहे हैं उसे बंद कर देने से उन्हीं का नुकसान होगा, और उन्हें अपने बाक़ी वेतन के लिए कई महीनों का इंतज़ार करना पड़ेगा, प्रेस को जारी कर दिया। यह है उस शानदार विजय का वृतान्त जो संघ को सरस्वती प्रेस पर प्राप्त हुई है। अपने वकील का गला घोंटना अगर विजय है तो बेशक उसे विजय हुई, क्योंकि इस झमेले में 'जागरण' बंद हो गया। जिन मज़दूरों के लिए वह सैकड़ों का माहवार घाटा सह रहा था, जब उन्हीं मज़दूरों को उस पर दया नहीं आती तो फिर उसका बंद हो जाना ही अच्छा था।

रह गईं अन्य शर्तें। वे सब अच्छी हैं और मैं हमेशा से उनकी पाबंदी करता आया हूँ। मेरे कर्मचारियों में से किसी का साहस नहीं है कि वह मेरे विरुद्ध अपशब्द या डाँट-डपट का आक्षेप कर सके। मैं खुद, मज़दूर हूँ और मज़दूरों का दोस्त हूँ। उनके साथ किसी तरह का अन्याय या सख्ती देखकर मुझे दुःख होता है। और मेरे मैनेजर ने मार-पीट की थी तो कर्मचारियों को मुझसे कहना चाहिए था, अगर मैं मैनेजर की तम्दीह न करता तो उनका जो जी चाहता वह करते। लेकिन संघ ने अपनी शानदार फ़तेह की धुन में मुझे सूचना देने की ज़रूरत न समझी और हड़ताल करके प्रेस का नुक़सान और बढ़ाया। प्रेस की 13 दिन की कमाई मज़दूरों के मुँह से छीन ली। इन शर्तों में एक भी ऐसी नहीं है जो मैं सच्चे हृदय से न मान लेता, बल्कि मैं तो मज़दूरों को आधे महीने की पेशगी देने की शर्त भी मानता, अगर कोष में रुपये होते। मैं खुद चाहता हूँ कि वह समय आवे जब मज़दूरों को (जिनमें मैं भी हूँ) कम से कम काम करके अधिक से अधिक मज़दूरी मिले, खूब छुट्टियाँ मिलें, और जितनी सुविधाएँ दी जा सकें दी जायँ, मगर शर्त यही है कि आदमनी काफी हो। घाटे पर चलने वाले उद्योग को बड़ी-बड़ी सदिच्छाएँ रखने पर भी बदनाम होना पड़ता है और उस पर कोई भी बड़ी आसानी से शानदार फ़तेह पा सकता है।

अजंता सिनेटोन, परेल, बम्बई प्रेमचंद।
25 सितम्बर, 1934



अजन्ता सिनेटोन लिमिटेड, परेल, बाम्बे-12
27 सितम्बर 1934

प्रिय बनारसीदास जी,

दोनों पत्रों के लिए धन्यवाद, एक डाक से और दूसरा हम दोनों के दोस्त के ज़रिये।

जैसे ही प्रिण्ट मिलेंगे मैं आपके आदेश का पालन करने की कोशिश करूँगा। अब तक वह मिले नहीं।

यहाँ की हालतें मेरे लिए काफ़ी ठीक हैं क्योंकि इस उम्र में अब मेरे बहकने का कोई डर नहीं है। इसके विपरीत, हो सकता है कि मेरा इस लाइन में रहना कुछ रोक-थाम करे।

आशा है, आप मज़े में हैं। शुभकामनाओं के साथ,

आपका, धनपत राय।



अजन्ता सिनेटोन लिमिटेड, परेल, बाम्बे-12, 27 सितम्बर, 1934

प्रिय बनारसीदास जी,

दोनों पत्रों के लिए धन्यवाद, एक डाक से और दूसरा हम दोनों के दोस्त के जरिये।

जैसे ही प्रिंट मिलेंगे मैं आपके आदेश का पालन करने की कोशिश करूँगा। अब तक वह मिले नहीं।

यहाँ की हालतें मेरे लिए काफ़ी ठीक हैं क्योंकि इस उम्र में अब मेरे बहकने का कोई डर नहीं है। इसके विपरीत, हो सकता है कि मेरा इस लाइन में रहना कुछ रोक-थाम करे।

आशा है, आप मजे में हैं। शुभकामनाओं के साथ,

आपका, धनपत राय।

●●

अजंटा सिनेटोन बम्बई-12, 29 सितम्बर, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

अभी तुम्हारा पत्र मिला। जवाव दे दिया है। नाहक पैसे ख़राब किये। मैं तुम्हारी राय के बग़ैर कभी यह सौदा न करता। बात यों है कि प्रेस में घाटा तो है ही। तीन महीनों की प्रेस वालों की मज़दूरी बाकी पड़ी है। जून की तो अगस्त में दे रहे थे। और जुलाई अगस्त के लिए अक्तूबर का वायदा था जब हंस के वी. पी. जाएंगे। इसी बीच में प्रेसवालों ने प्रेस कर्मचारी संघ का ज़ोर पाकर हड़ताल कर दी। मैंने सोचा तीन महीने की मज़दूरी 1000 रुपये से कम न होगी। काग़ज़ वालों के भी 2000 रुपये देने हैं। क्यों न हंस और स्टाक किसी को देकर उससे रुपये ले लो, और सब बकाया चुकाकर प्रेस से हमेशा के लिये पिंड छुड़ा लो। तभी दो-तीन जगह पत्र लिखे। एक पत्र ऋषभ जी को भी लिखा। स्टाक लेना तो सबने स्वीकार किया पर हंस पर कोई न खड़ा हुआ। इस बीच में हड़ताल टूट गयी। एक महीने का वेतन लेकर सब काम करने आ गये। अब दो महीने का नवम्बर में लेंगे। काग़ज़ वालों को भी कुछ रुपये दे दिये। 'जागरण' बन्द कर दिया। अव आशा है काम साधारण तौर पर चलता रहेगा। 'हंस' के 450 वी. पी. जाएंगे। अगर 300 वसूल हो जायँ तो मजूरी पाक हो जाय और कुछ काग़ज़ वालों को भी दे दूँ। 'जागरण' ने कम से कम 4000 रुपये की चपत दी। मेहनत छोड़कर। 'हंस' का अक्टूबर अंक निकल रहा है; तुम्हारी और 'अज्ञेय' जी की कोई कहानी अब तक नहीं आयी। क्यों ? जल्द से जल्द भेजो तो इस साल 'हंस' को ठीक करके अगले साल से 6 रुपये का कर दूँ। दाम बढ़ाने के पहले साल भर तक पत्र को ठीक समय पर और अच्छे रूप में निकालना चाहिए। अगर एक हज़ार ग्राहक 5 रुपये के हो जायँ तो फिर उधर से निश्चिंत हो जाऊँ। दिल्ली में कई महिलाएँ भी लिखती हैं। एकाध से 'हंस' के लिए लेख लो।

यहाँ काँग्रेस में आ रहे हो न ? काँग्रेस तो अब बजान-सी चीज़ होती जा रही है। मगर तमाशा तो रहेगा ही।

एक दिन हिमांशु राय से मिला था। वह कोई स्टोरी चाहते थे। पौराणिक हो या सामाजिक। अगर कोई स्टोरी ख़याल में हो तो उसका दो पेज का Synopsis लिख भेजो।

मैं उनसे जाकर मिलूँगा और दे दूँगा। अगर जँच गयी तो बड़ा काम हो जायगा।

शेष कुशल। बच्चों को प्यार। भगवती देवी से मेरा आशीर्वाद कहना। और कहानी ज़रूर बिल ज़रूर लिखना। प्रसाद जी से भी कहानी माँगी है। शायद दे भी दें।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला
सम्पादक : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

मेक्लेगन रोड, लाहौर
29-9-1934

मान्यवर भाई जी,

आपका 27 सितम्बर, 1934 का कृपा-कार्ड मिला है। मुझे आश्चर्य है कि आपने 'विश्व साहित्य ग्रन्थमाला' को Northern India Publishing House की शाखा या पूँछ कैसे समझ लिया ? यह मेरा और प्रो. वेदव्यास का साँझे का firm है। हम दोनों ने इसमें money invest किया है। इस firm का सम्पूर्ण कार्यभार मुझ पर है। प्रो. वेदव्यास तो इस firm के एक तरह से sleeping partner हैं। मुझे मालूम नहीं कि 'गल्प-रत्न' वाला मामला क्या है, परन्तु वह चाहे जो कुछ भी हो, उसके लिए मुझे किसी भी तरह से ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। आप विश्वास कीजिए, विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला श्री वेदव्यास जी का खिलौना हरगिज़ नहीं है। आपका मेरे साथ जो Agreement हुआ था, वह अक्षरशः पालन किया जायगा, आप पूरी तरह से निश्चिन्त रहें। मैं इसके लिए ज़िम्मेदार हूँ।

अब के उन कहानियों को हमने विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला की ओर से प्रकाशित किया है। इस माला में हम लोग तीन-चार अन्य श्रेष्ठ कहानी-लेखकों की सर्वश्रेष्ट कहानियाँ भी प्रकाशित करने जा रहे हैं।

पिछली बार, जब यह पुस्तक आपकी ओर से submit की गयी थी, स्वीकार नहीं हो सकी थी। हमारे साथ आपका पहले जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसके आधार पर इस पुस्तक को अबके हमने अपनी ओर से प्रकाशित किया है। पुस्तक यदि एक वर्ष अस्वीकार हो जाय तो अगले वर्ष पुनः नये सिरे से, उतनी ही कापियों के साथ, submit करनी पड़ती है। Author का declaration आना भी आवश्यक है, अन्यथा पुस्तक इसी objection पर स्वीकार न हो सकेगी। अतः कृपया निम्नलिखित declaration बहुत शीघ्र रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़े में रजिस्ट्रार के नाम भिजवा दें–

To, The Registrar, University of the Punjab, Senate Hall, Lahore.

Dear Sir,

I, the author of 'Premchand ki Sarvashrashth kahanian', declare that I have given this book Vishwa Sahitya Granth-Mala of Lahore on royalty basis and I have no portions, secret or otherwise in the rate of the said book.

आशा है, आप सकुशल होंगे।

विनीत, चन्द्रगुप्त

●●

अजन्ता सिनेटोन लि.,
30, गवर्नमेंट गेट रोड, परेल, बम्बई-12
29-9-1934

प्रिय बन्धुवर,

कम लेखों का पुलिन्दा मिला। 'हंस' भी मिले। यह अंक लेखों के एतबार से बड़ा सुन्दर है। अक्टूबर-अंक के लिए कुछ लेख और मँगाने की ज़रूरत है। मैंने जिन लेखों को छपने योग्य समझा है, उनको लौटा रहा हूँ। शेष फिर लौटा दूँगा। उषादेवी का उपन्यास अभी मैंने नहीं पढ़ा। नये अंक के लिए जयशंकर जी की एक कहानी होना बहुत जरूरी है। उन्हें घेर-घार कर लिखाइए, गौड़ से भी। दो-तीन लेखिकाओं से भी लिखाइए। चन्द्रावती और सुशीला आग़ा और अन्य लेखिकाओं के पास पत्र भेजिए। हैटल अवश्य बदलिए। अक्टूबर-अंक सुन्दर होना चाहिए। नोटों के लिए मैंने मसाला ज़मा कर लिया है। यह ख़याल रखिए कि लेखों की पहुँच ज़रूर स्वीकारी जाय और शिकायती पत्रों का जवाब डाक-व्यय का ख़याल न करके अवश्य दिया जाय। तब आपकी पत्रिका का प्रचार बढ़ जायेगा।

आप पुरस्कार के लिए कहते हैं। मेरी समझ में अगर हम लोग दे सकेंगे तो 20 रु. महीना पुरस्कारों में ग़रीब लेखकों को देना चाहिए, जैसे पं. आनन्दराव जोशी, जैनेन्द्र या श्यामनारायण कपूर या भुवनेश्वरप्रसाद अथवा राधाकृष्ण। जैनेन्द्र को हम 2 रु. पृष्ठ देते ही हैं। इन सज्जनों में जिसका लेख छपे, उसे एक रुपया पृष्ठ देना चाहिए। 50 रु. का एक पुरस्कार साल भर में 'हंस' की सबसे सुन्दर कहानी पर देना चाहिए।

मैं रुपये मिलते ही 100 रु. का चेक काग़ज़ के लिए भेजूँगा। 'कायाकल्प' शुरू कर दीजिएगा। 'अछूत', 'हृदय की लहर' और जनार्दनराय का उपन्यास ये तीन उपन्यास भी छापने योग्य हैं। जैसे-जैसे रुपये मिलें, इन पुस्तकों को निकालें। जनार्दनराय की पुस्तक बहुत बड़ी है, यही भय है।

'जागरण' के लिए जैसा आपने फ़ैसला किया है, वह बिल्कुल ठीक है। हमारा स्वार्थ इतना ही है कि हमारे प्रेस में छपे और हमें 1/2 पेज़ का विज्ञापन मिले। लाभ होने पर जो कुछ वे दे दें, 1/4, 1/5 या 1/6 मुझे मंजूर होगा।

काशीप्रसाद सिंह की पुस्तकें भेजिएगा। शायद सुरेन्द्र वालूपुरी अपनी 'विधा' पत्रिका आपके प्रेस में छपायेंगे। नक़द सौदा रखिएगा, चाहे रेट कम ही हो। मगर इन्हें जाने न दीजिएगा। मैंने अभी जैनेन्द्र जी को लेख के लिए लिखा है। प्रसाद जी को भी आप ठीक कीजिए।

भवदीय, धनपत राय

●●

अजन्ता सिनेटोन लि., बम्बई-12, 1-10-1934

प्रिय भाई साहब, वन्दे !

मैं कुशल से हूँ और आशा करता हूँ आप भी स्वस्थ हैं और बाल-बच्चे मज़े में हैं। जुलाई के अन्त में बनारस गया था, दो दिन घर से चला कि आपसे मिलूँ, पर दोनों ही दिन ऐसा पानी बरसा कि रुकना पड़ा। जिस दिन बम्बई आया हूँ, सारे रास्ते भर

भीगता आया और उसका फल यह हुआ कि कई दिन खाँसी आती रही।

मैं जब से यहाँ आया हूँ, मेरी केवल एक तस्वीर फ़िल्म हुई है। वह अब तैयार हो गयी है और शायद 15 अक्टूबर तक दिखायी जाय। तब दूसरी तस्वीर शुरू होगी। यहाँ की फ़िल्म-दुनिया देखकर चित्त प्रसन्न नहीं हुआ। सब रुपये कमाने की धुन में हैं, चाहे तस्वीर कितनी ही गन्दी और भ्रष्ट हो। सब इस काम को सोलहों आना व्यवसाय की दृष्टि से देखते हैं, और जन-रुचि के पीछे दौड़ते हैं। किसी का कोई आदर्श, कोई सिद्धान्त नहीं है। मैं तो किसी तरह यह साल पूरा करके भाग आऊँगा। शिक्षित रुचि की कोई परवाह नहीं करता। वही औरतों का उठा ले जाना, बलात्कार, हत्या, नक़ली और हास्यजनक लड़ाइयाँ सभी तस्वीरों में आ जाती हैं। जो लोग बड़े सफल समझे जाते हैं, वे भी इसके सिवा और कुछ नहीं करते कि अंग्रेज़ी फ़िल्मों के सीन नक़ल कर लें और कोई अण्ट-सण्ट कथा गढ़कर उन सभी सीनों को उसमें खींच लायें।

कई दिन हुए मि. हिमांशु राय से मुलाक़ात हुई। वह मुझे कुछ समझदार आदमी मालूम हुए। फ़िल्मों के विषय में देर तक उनसे बातें होती रहीं। वह सीता पर कोई नयी फ़िल्म बनाना चाहते हैं। उनकी एक कम्पनी क़ायम हो गयी है और शायद दिसम्बर से काम शुरू कर दें। सीता पर दो-एक चित्र बन चुके हैं, लेकिन उनके ख़्याल में अभी इस विषय पर एक अच्छे चित्र की माँग है। कलकत्ता वालों की 'सीता' कुछ चली नहीं। मैंने तो नहीं देखा, लेकिन जिन लोगों ने देखा है उनके ख़्याल में चित्र असफल रहा। अगर आप सीता पर कोई फ़िल्म लिखना चाहें तो मैं हिमांशु राय से ज़िक्र करूँ ! मेरे ख़्याल में सीता का जितना सुन्दर चित्र आप खींच सकते हैं, दूसरा नहीं खींच सकता। आपने तो 'सीता' देखी होगी। उसमें जो कमी रह गयी है, उस पर भी आपने विचार किया होगा। आप उसका कोई उससे सुन्दर रूप खींच सकते हैं तो खींचिए। उसका स्वागत होगा।

प्रेस का हाल आपको मालूम ही है। मैंने 'जागरण' बन्द कर दिया। घाटा तो मेरे सामने ही कम न था, पर इधर उसकी बिक्री बहुत घट गयी थी। अब मैं 'हंस' को सुधारना चाहता हूँ। जैसी कि आपसे कई बार बातचीत हो चुकी है, इसका दाम 5 रु. कर देना चाहता हूँ और 100 पृष्ठ का मैटर देना चाहता हूँ। मगर अभी साल भर पाबन्दी के साथ वक़्त पर निकालकर पाठकों में विश्वास पैदा करना पड़ेगा। 'जागरण' के कारण इसकी ओर ध्यान देने का अवसर ही न मिलता था। अब कोशिश करूँगा कि इसकी सामग्री इससे अच्छी रहे, कहानियों की संख्या अधिक हो और बराबर वक़्त पर निकले। आप अक्टूबर के लिए एक कहानी लिखने की अवश्य कृपा कीजिए। हाँ, मैंने 'तितली' नहीं देखी। उसकी एक प्रति भिजवा दीजियेगा।

मेरा स्वास्थ्य तो कभी अच्छा न था, अब और ख़राब हो रहा है। क़ब्ज़ की शिकायत बढ़ती जाती है। सुबह को सोकर उठता हूँ तो कमर बिल्कुल अकड़ी रहती है। सीधा खड़ा नहीं हो सकता, झुकना तो दूर रहा। पेट में वायु भरी रहती है, जब दो-तीन मील चल लेता हूँ तो वायु कम हो जाती है, कमर सीधी होती है और तब शौच जाता हूँ। मेरा विश्वास होम्योपैथी पर ही है, पर यहाँ होम्योपैथी को कोई नहीं जानता। दो-एक डॉक्टर हैं तो वे मेरे घर से छः मील पर रहते हैं जहाँ जाना मुश्किल है। यदि आप डॉक्टर सिन्हा से कोई चीज़ तजवीज़ कराके मेरे पास वी. पी. द्वारा भिजवा दें तो आपका थोड़ा-सा

एहसान मानूँगा, अगर आपकी इच्छा होगी। अपनी जो तरकीबें थीं, उनको आज़मा कर हार गया। वज़न भी दो पौण्ड घट गया है। जो देखता है पूछ बैठता है—आप बीमार हैं क्या ? एक बड़े डॉक्टर से कंसल्ट किया। उसने कोयले का बिस्कुट खाने की सलाह दी। एक टिन खा गया, कोई लाभ न हुआ। हींग, अजवाइन, सौंठ सब देख चुका हूँ। कभी-कभी तो रात को नींद खुलती है तो कमर में दर्द होता पाता हूँ और लेटना तकलीफ़देह हो जाता है। तब कमर पकड़कर धीरे-धीरे टहलता हूँ। आप डॉक्टर साहब से ज़रूर कुछ भिजवाइये।

और क्या लिखूँ ? बम्बई सुन्दर है, अगर स्वास्थ्य ठीक हो, ज़्यादा महँगा भी नहीं, बहुत-सी चीज़ें तो वहाँ से भी सस्ती हैं। चमड़े की चीज़ें, कम्बल, विलायती सामान वहाँ से बहुत सस्ता। बिजली 4 आने यूनिट। खाने-पीने की चीज़ों में भी घी और मक्खन ख़राब, दूध बुरा नहीं, शाक-भाजी सस्ती और इफ़रात। आप चार पैसे में मीठा अभी तक ले लीजिए। सन्तरे रुपये के बीस-पच्चीस, केले बहुत सस्ते, मटर वहाँ के सेर से 4 आने सेर। यहाँ सेर केवल सात गण्डे का है।

शेष कुशल है। गौड़ जी से मेरा आदाब अर्ज़ कहिएगा। चक्कर तो लगते ही होंगे। और मेरी तरफ़ से और अपनी तरफ़ से भी 'हंस' के अक्टूबर-नवम्बर के लिए कोई हँसाने वाली चीज़ लिखने के लिए आग्रह—

भवदीय, धनपत राय।



विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला
सम्पादक : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

मेक्लेगन रोड, लाहौर
4-10-1934

सेवा में,
श्री प्रेमचंद जी
अजन्ता सिनोटोन कम्पनी, बम्बई-12
मान्यवर महोदय,

आपका 20 अक्तूबर, 1934 का कृपाकार्ड मिला। उत्तर में निवेदन है कि—

1. प्रो. वेद व्यास जी के व्यक्तिगत के account के लिए न विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला ज़िम्मेदार हो सकती है, और न मैं ही। फिर भी उनसे मैंने इस सम्बन्ध में पूछा है। वह स्वयं अपने साथ हिसाब-किताब साफ़ कर लेने को उत्सुक हैं। पिछले अगस्त मास के अन्तिम सप्ताह में वह एक दिन के लिए बम्बई गये थे और आपके साथ हिसाब-किताब साफ़ कर लेने की इच्छा से आपके निवास-स्थान (दादर) पर भी गये थे; परन्तु आप उस समय वहाँ नहीं थे। उनका कथन है कि अवसर मिलते ही आपसे मिलकर वह हिसाब करेंगे। आपने भी तो (बक़ौल उनके) उन्हें अभी तक कोई हिसाब नहीं भेजा।

2. 'प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' उनकी नहीं, विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला की सम्पत्ति है। इस पुस्तक का हिसाब ठीक-ठीक आपको मिलता रहेगा, यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ। विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला के सम्पूर्ण कार्य की देखभाल मैं स्वयं करता हूँ।

3. 'प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' नामक पुस्तक आपने हमें रॉयल्टी basis पर

दी हुई है। आपसे लिखित अनुमति लेकर ही हमने इसका प्रकाशन किया है, बल्कि इस पुस्तक का तो idea भी मैंने ही आपको दिया था। आपका वह सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार हमारे पास मौजूद है। इस दशा में, अब यह तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता कि आप उक्त पुस्तक का प्रकाशनाधिकार हमें दें या न दें।

4. जैसा कि आपको सूचित किया जा चुका है, यह पुस्तक इस वर्ष हम लोगों ने Punjab University के Sanskrit and Hindi Board तथा Matric Board के सम्मुख पेश की हुई है। पंजाब युनिवर्सिटी के नियमों के अनुसार पुस्तक-लेखक का Declaration इस आशय का आना ज़रूरी है कि उसकी रॉयल्टी का कोई Portions secret or otherwise है या नहीं। आपसे यही declaration भेजने की प्रार्थना पिछले तीन पत्रों में की जा चुकी है। यह declaration 10 अक्तूबर, 1934 तक Registrar के office में अवश्य पहुँच जाना चाहिए; अन्यथा इस पुस्तक पर विचार ही न किया जायगा।

5. अतः आपसे पुनः अनुरोध है कि कृपया उक्त declaration, जिसका रूप मैं अपने पिछले 2 अक्तूबर के पत्र में लिख चुका हूँ, आप मेरे पास अथवा रजिस्ट्रार, पंजाब युनिवर्सिटी के नाम Registered लिफ़ाफ़े में अवश्य भेज दें, अन्यथा पुस्तक पर विचार न होगा।

6. यदि आप उक्त declaration यथासमय नहीं भेजेंगे तो उससे हमें जो loss होगा, उसका उत्तरदायित्व आप ही पर होगा। उक्त declaration मेरे पास अथवा रजिस्ट्रार के पास 9 अक्तूबर, 1934 तक अवश्य पहुँच जाना चाहिए। यदि आप declaration रजिस्ट्रार के नाम पर भेजें तो उसकी सूचना मुझे भी अवश्य दे दीजिएगा।

7. मैं आपको पुनः विश्वास दिलाता हूँ कि हिसाब आदि के सम्बन्ध में आपको विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला से किसी क़िस्म की शिकायत न होगी।

भवदीय, चन्द्रगुप्त व्यवस्थापक।



धनपत राय बी. ए. (उर्फ़ प्रेमचन्द) बम्बई, 5-11-1934

प्रिय बन्धुवर,

कहानी भेज रहा हूँ। टिप्पणियाँ 8 को भेजूँगा। 10 को पहुँचेगी और 15 तक आप पत्रिका रवाना कर सकेंगे। जब तक वी. पी. न वसूल हो, आप सबके पास भेज भी तो नहीं सकते। जिनके रुपये आ जायेंगे, उन्हीं के पास तो भेजिएगा।

सहगल के पास बिल भेज दिया होगा। 75 रु. काटकर बाक़ी का तक़ाज़ा कीजिए। 75 रु. आपको मिल चुके हैं।

मंगलसिंह से भी तक़ाज़ा कीजिए।

लाहौर के सहगल से भी सख़्त तक़ाज़ा हो। जौहरी के ज़िम्मे आपके रुपये आते हैं। 40 रुपये उन्होंने मेरे नाम काट लिये थे। इसकी रसीद दे चुके हैं। शेष का बिल उनसे वसूल कीजिए। बिल फ़ौरन बना लेना चाहिए और वसूल करना चाहिए।

वासुदेवप्रसाद, बेटी—सब परसों गये।

पुस्तकों की बिक्री में इधर हमारे नियम कुछ अनिश्चित-से हो गये हैं। कांग्रेस के अवसर पर बम्बई वालों को हमने 33% और भाड़ा दे दिया। आगे से ऐसी कोशिश करनी

चाहिए कि नक़द खरीदने वालों को विशेष सुविधा दी जाय। जो लोग साल भर में कम-से-कम 500 रु. की पुस्तकें उठा लें और नक़द खरीदते जायें उन्हें फ्री डिलीवरी न देकर 35% दे सकते हैं। 500 रु. से कम के ऑर्डर पर 30% से अधिक न दीजिए। साल में यदि 500 रुपये हो जायें तो 35% काट दीजिए। यह शर्त रहे कि अभी आपको 30% देते हैं। अगर आप साल भर में 500 रुपये की पुस्तकें उठा लेंगे और नक़द ख़रीदते रहेंगे तो हम 35% के हिसाब से काट देंगे। कमीशन सेल पर किसी को मत दीजिए, हाँ, जिन पर पूरा विश्वास हो कि इनसे जब चाहें रुपये मिल सकते हैं, उन्हें दे सकते हैं और 25% कमीशन दे सकते हैं। इधर जयनारायण, महावीर आदि को पुस्तकें देकर धोखा खाया। यहाँ अयोध्यासिंह जी आये थे। आपके पास भी जायेंगे। उनसे भी यही नियम रखना होगा।

मैंने जौहरी जी को अस्वीकृत लेखों का एक बण्डल दे दिया है। आप उनसे मँगवा लीजिएगा। ग़लती से केसरीकिशोर का लेख और एक और लेख, जो मैंने पढ़ा नहीं था, उसमें चले गये हैं। केसरीकिशोर का पत्र भी उसी में है। वह पत्र और लेख मेरे पास भेज दीजिएगा। उन्हें जवाब देना है। शेष कुशल है।

भवदीय, धनपत राय।



अजंता सिनेटोन, बम्बई, 13 नवम्बर, 1934

मकर्रम बन्दा, तसलीम।

'निगारिस्तान' में जनाब का मज़मून 'हिन्दुस्तानी' फ़िल्मों में बतदरीज[1] इस्लाह[2] बड़े शौक़ से पढ़ा और मुस्तफ़ीद हुआ। मुझे आपके ख़याल से लफ्ज ब लफ्ज इत्तफ़ाक़[3] है। मगर जिन हाथों में फ़िल्म की क़िस्मत है वह वदकिस्मती से इसे इंडस्ट्री समझ बैठे हैं। इंडस्ट्री को मज़ाक़[4] और इस्लाह से क्या निस्बत ? वह तो एक्सप्लाइट करना जानती है और यहाँ इन्सान के मुक़द्दसतरीन[5] जज़बात[6] को एक्सप्लाइट कर रही है। बरहना[7] और नीम-बरहना[8] तस्वीरें, क़त्ल-ओ-खून और जब्र की वारदातें, मारपीट, गुस्सा और ग़ज़ब और नफ़सानियत[9] ही इस इंडस्ट्री के औज़ार हैं और इसी से वह इन्सानियत का खून कर रही है। उम्मीद है आप यूँ ही अपने बेशबहा ख़यालात से पब्लिक को फ़ैज पहुँचाते रहेंगे।

नियाज़मन्द अहक़र, प्रेमचंद।

1 क्रमशः, 2 सुधार, 3. सहमति, 4. रुचि, 5 पवित्रतम, 6 भावनाओं, 7. नग्न, 8. अर्द्ध-नग्न, 9. वासना।



अजंता सिनेटोन, परेल, बम्बई-12, 28 नवम्बर, 1934

प्रिय जैनेन्द्र,

इधर बहुत दिनों से तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला। आशा है अब तुम स्वस्थ हो गये हो। प्रवासीलाल जी से मालूम हुआ तुम्हारी कोई कहानी 'हंस' के लिए आयी है। बड़ी खुशी हुई।

साहित्य सम्मेलन वालों ने मुझसे उपन्यास कला पर एक लेख लिखने को कहा है, जो साहित्य परिषद् में पढ़ा जाय। मैंने तो लिख दिया, मुझे ऐसे लेखों की उपयोगिता में

विश्वास नहीं। जिनमें प्रतिभा है वे आप लिखने लगते हैं, जैसे बतख का बच्चा तैरने लगत है। जिनमें प्रतिभा नहीं उन्हें लाख कला का उपदेश कीजिये कुछ नहीं कर सकते।

रुद्रनारायण अग्रवाल को तो जानते हो। वही युवक जो दिल्ली में कई बार मुझसे मिलने आया था, जिसके घर एक दिन मैं न्योता खाने भी गया था। परसों उसका पत्र मिला। तपेदिक हो गया और लखनऊ के टी. बी. अस्पताल में पड़ा है। कोई सहायक नहीं, कोई हमदर्द नहीं। ऐसे मेहनती और प्रतिभा के धनी आदमी कम होंगे। वार एंड पीस, रिज़रेक्शंन, वेनिटी फेयर आदि पुस्तकों के अनुवाद कर डाले, लेकिन रिज़रेक्शन के सिवा कोई पुस्तक न छपी, प्रकाशकों के पास पड़ी हुई हैं, और आज वह ग़रीब मर रहा है। यह है अभागे साहित्यसेवियों का हाल।

प्रयाग में 'लेखक संघ' का विवरण तुम्हें मिला होगा। बहुत से साहित्यिक उसमें मिल गये हैं, लेकिन कोई दिमाग़ वाला आदमी अभी नहीं नजर आता। यूँ हमारे यहाँ दिमाग़ वाले आदमी हैं ही कितने। तुम इस संघ में आ मिलो और ऐक्टिव इंट्रेस्ट लो तो शायद कुछ हो। मेरा नाम सभापति के लिए पेश किया गया है। मेरे जैसा सभापति जिस संस्था का हो वह क्या होगी। मैंने डॉ. भगवानदास, पं. वेंकटेशनारायण तिवारी या पं. नरेन्द्रदेव जी का नाम प्रोपोज़ किया है।

फ़िल्मी हाल क्या लिखूँ। 'मिल' यहाँ पास न हुआ। लाहौर में पास हो गया और दिखाया जा रहा है। मैं जिन इरादों से आया था, उनमें एक भी पूरे होते नज़र नहीं आते। ये प्रोड्यूसर जिस ढंग की कहानियाँ बनाते आये हैं उसकी लीक से जौ भर भी नहीं हट सकते। वल्गैरिटी को यह लोग एंटरटेनमेंट वैल्यू कहते हैं। अद्भुत ही में इनका विश्वास है। राजा-रानी, उनके मंत्रियों के षड्यंत्र, नक़ली लड़ाई, बोसे-बाजी यही इनके मुख्य साधन हैं। मैंने सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं, जिन्हें शिक्षित समाज भी देखना चाहे लेकिन उनको फ़िल्म करते इन लोगों को संदेह होता है कि चले या न चले। यह साल तो पूरा करना है ही। क़र्ज़दार हो गया था। क़र्ज़ा पटा दूँगा। मगर और कोई लाभ नहीं। उपन्यास के अंतिम पृष्ठ लिखने बाकी हैं, उधर मन ही नहीं जाता। यहाँ से छुट्टी पाकर अपने पुराने अड्डे पर जा बैठूँ। वहाँ धन नहीं है मगर संतोष अवश्य है। यहाँ तो जान पड़ता है कि जीवन नष्ट कर रहा हूँ।

सेठ गोविन्ददास जी यहाँ आये हुए हैं। उनकी भी सिनेमा कम्पनी खुली है। महावीर कहाँ हैं ? और सब कुशल है।

सप्रेम, धनपत राय।



30 गवर्नमेंट गेट रोड, परेल, बम्बई-12
4 दिसम्बर, 1934

प्रिय रामचन्द्र जी. बंदे।

पत्र का कटिंग मिला। इसके लिये धन्यवाद। मेरे ख़याल में लेखक संघ का एक कर्त्तव्य यह भी होगा कि वह लेखकों के स्वत्वों की रक्षा करे, प्रकाशकों को ज्यादा न्याय का व्यवहार करने पर मजबूर करे। मगर जब तक प्रकाशकों और पत्र निकालने वालों की दशा ऐसी न हो कि वे लेखकों का पारिश्रमिक दे सकें तब तक आप उन्हें मजबूर करके

इसके सिवा और क्या कर सकते हैं कि वे पत्र का प्रकाशन बंद कर दें। जहाँ तक मेरा खयाल है साहित्यिक प्रकाशकों में कोई भी नफ़े से अपना काम नहीं कर रहा है। अधिकांश ऐसे हैं जो नफ़े के खयाल से प्रकाशन का काम शुरू करके अब केवल इसलिये पड़े हुए हैं कि उनका बहुत-सा धन प्रेस और पुस्तकों में फँस गया है और वे उसे छोड़ नहीं सकते। हाँ, स्कूली पुस्तकें छापने वालों की बात अलग है। इधर प्रायः सभी प्रकाशकों ने साहित्य की पुस्तकें छापनी बन्द कर दी हैं। यही कारण है कि पुस्तकों की खपत नहीं होती। कागज़ और छपाई नहीं निकलती तो लेखक को कहाँ से दें। हाँ, जिन प्रकाशकों को लाभ हो रहा है उन्हें संघ इसकी प्रेरणा करेगा कि वे लेखकों के साथ न्याय करें और जब ऐसा समय आवेगा कि हिन्दी में पत्रों और पुस्तकों के प्रकाशन से नफ़ा होने लगेगा तो संघ इस प्रश्न को अवश्य हाथ में लेगा। मैं आपसे विल्कुल सहमत हूँ कि संघ को लेखकों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए लड़ना पड़ा, पर पहले यह समय तो आवे। लेखकों ही का यह काम होगा कि वह उस समय को जल्द निकट ला सवें।

कुछ समय हुआ हमने (आपने और मैंने) हिन्दी में अच्छे लेखकों के अनुवाद की एक योजना बनायी थी। क्यों न संघ में वह योजना भी शामिल कर दी जाय।

रूस में भी सोवियत राइटर्स यूनियन है। और देशों में है या नहीं मुझे मालूम नहीं। लेकिन मुझे लेखकों को केवल कलमी मजूर समझने में कष्ट होता है। लेखक केवल मजूर नहीं बल्कि और कुछ है--वह विचारों का आविष्कारक और उत्तेजक और प्रचारक भी है। जिस तरह आप उपदेशकों और प्रचारकों को संघ के रूप में नहीं ला सकते उसी तरह आप लेखकों को भी उस रूप में नहीं बाँध सकते। हाँ, संघ यह कर सकता है कि लेखकों और प्रकाशकों के बीच में भक्ष्य और भक्षक के व्यवहार को बन्द करने का उद्योग करे, लेखकों में ऊँचे आदर्श, ऊँचे आचरण और कला की उन्नति की व्यवस्था करे।

मैं इस विषय में मिलने पर आपसे बातें करूँगा। आशा है, आप प्रसन्न हैं। मैं तो टेले जाता हूँ।

भवदीय, धनपत राय।



बम्बई, 14-12-1934

प्रिय वीरेन्द्र कुमार जैन,

तुम्हारी 'कहानी' मिल गयी थी। उसे 'हंस' में ज़ल्द ही दूँगा।

शुभाकांक्षी, प्रेमचन्द।



168, सरस्वती सदन, दादर बंबई-14, 26 दिसंबर, 1934

प्रिय श्री इन्द्रनाथ,

आपका 16 तारीख का ख़त पाकर ख़ुशी हुई। आपके सवालों के जवाब उसी क्रम से नीचे देने की कोशिश करता हूँ--

(1) मेरी राय में 'रंगभूमि' मेरी कृतियों में सबसे अच्छी है।

(2) मेरे हर उपन्यास में एक आदर्श चरित्र है जिसमें मानव दुर्बलताएँ भी हैं और गुण भी पर मूलतः आदर्श। प्रेमाश्रम में ज्ञानशंकर है, रंगभूमि में सूरदास है। उसी तरह

कायाकल्प में चक्रधर है, कर्मभूमि में अमरकान्त है।

(3) मेरी कहानियों की कुल संख्या लगभग ढाई सौ है। अप्रकाशित कहानियाँ मेरे पास एक भी नहीं हैं।

(4) हाँ मेरे ऊपर टाल्सटाय, विक्टर ह्यूगो और रोमे रोलाँ का असर पड़ा है। जहाँ तक कहानियों की बात है, शुरू में उनकी प्रेरणा मुझे डाक्टर रवीन्द्रनाथ से मिली थी। पीछे मैंने स्वयं अपनी शैली का विकास कर लिया।

(5) मैंने कभी संजीदगी से नाटक लिखने की कोशिश नहीं की। मैंने एक-दो कथानकों की कल्पना की जो कि मेरे विचार में नाटक के लिए अधिक उपयोगी हो सकते थे। नाटक का महत्त्व समाप्त हो जाता है अगर उसे खेला न जाय। हिन्दुस्तान के पास रंगमंच नहीं है, विशेषतः हिन्दी और उर्दू के पास। रंगमंच के नाम पर मुर्दा पारसी स्टेज है जिसके नाम से मुझे हौल होता है। इसके अलावा मैं कभी नाटक की टेकनीक और रंगमंच की कला के सम्पर्क में नहीं आया। इसलिए मेरे नाटक सिर्फ पढ़े जाने के लिए थे। क्यों न मैं अपने उपन्यासों से ही चिपका रहूँ जिनमें मुझे नाटक से कहीं ज़्यादा गुंजाइश अपने चरित्रों के उद्‌घाटन के लिए मिलती है। इसीलिए मैंने अपने विचारों के वाहन के रूप में उपन्यास को पसन्द किया है। अब भी मुझे उम्मीद है कि एक-दो नाटक लिखूँगा। जहाँ तक आर्थिक सफलता की बात है, हिन्दी या उर्दू में यह जिन्स ढूँढ़े से नहीं मिलती। आप बदनाम हो सकते हैं पर आर्थिक रूप से स्वतन्त्र किसी प्रकार नहीं। हमारी जनता में किताबें खरीदने की कमज़ोरी नहीं है। एक तरह की मुर्दनी, उदासीनता, सुस्ती और बौद्धिक आलस्य छाया हुआ है।

(6) सिनेमा साहित्यिक व्यक्ति के लिए कोई जगह नहीं है। मैं इस लाइन में यह सोचकर आया कि इसमें आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो सकने का कुछ मौक़ा था लेकिन अब मैं देखता हूँ कि मैं धोखे में था और मैं वापस अपने साहित्य को लौटा जा रहा हूँ। सच तो यह है कि मैंने लिखना कभी बन्द नहीं किया, उसको मैं अपने जीवन का लक्ष्य समझता हूँ। सिनेमा मेरे लिए वैसी ही चीज़ है जैसी कि वकालत होती, अन्तर इतना ही है कि यह अधिक स्वस्थ है।

(7) मैं कभी जेल नहीं गया। मैं कर्मक्षेत्र का आदमी नहीं हूँ। मेरी रचनाओं ने कई बार सत्ता का आक्रोश जगाया है। मेरी एक-दो किताबें ज़ब्त हुई थीं।

(8) मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ, हमारा उद्देश्य जनमत को शिक्षित करना है। क्रान्ति ज़्यादा समझदार उपायों की असफलता का नाम है। मेरा आदर्श समाज वह है जिसमें सबको समान अवसर मिले। विकास को छोड़कर और किस ज़रिये से हम इस मंजिल पर पहुँच सकते हैं। लोगों का चरित्र ही निर्णायक तत्त्व है। कोई समाज-व्यवस्था नहीं पनप सकती जब तक कि हम व्यक्तिशः उन्नत न हों। कहना सन्देहास्पद है कि क्रान्ति से हम कहाँ पहुँचेंगे। यह हो सकता है कि हम उसके ज़रिये और भी बुरी डिक्टेटरशिप पर पहुँचें जिसमें रंचमात्र व्यक्ति-स्वाधीनता न हो। मैं रंग-ढंग सब बदल देना चाहता हूँ पर ध्वंस नहीं करना चाहता। अगर मुझमें पूर्व-ज्ञान की शक्ति होती और मैं समझता कि ध्वंस के ज़रिये हम स्वर्गलोक में पहुँच जायेंगे तो मैं ध्वंस करने में भी आगा-पीछा न करता।

(9) सर्वहारा वर्ग में तलाक़ एक आम चीज़ है। तथाकथित ऊँचे वर्गों में ही इस समस्या ने ऐसा गम्भीर रूप ले लिया है। अपने अच्छे-से-अच्छे रूप में विवाह एक प्रकार का समझौता और समर्पण है। अगर कोई दम्पति सुखी होना चाहते हैं, तो उन्हें एक-दूसरे का लिहाज़ करने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसे भी लोग हैं जो कि अच्छी-से-अच्छी परिस्थितियों में भी कभी सुखी नहीं हो सकते। योरप और आज़ादी के साथ एक-दूसरे से मिलने-जुलने के। पति-पत्नी में से किसी एक को झुकने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा। मैं यह मानने से इनकार करता हूँ कि केवल पुरुष ही दोषी हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ स्त्रियाँ झगड़ा पैदा करती हैं, तरह-तरह की शिकायतों की कल्पना कर लेती हैं। जब यह निश्चय नहीं है कि तलाक़ से हमारे वैवाहिक जीवन की बुराइयों का इलाज हो जायगा तो ऐसी हालत में मैं उस चीज़ को समाज पर लादना नहीं चाहता। यह ठीक है कि ऐसे भी केस हैं जहाँ तलाक़ अनिवार्य हो जाता है। मगर 'मेल न बैठना' मेरी समझ में नकचढ़ेपन के अलावा और कुछ नहीं। तलाक़ जिसमें बेचारी पत्नी के लिए कोई व्यवस्था नहीं है—यह माँग केवल रुग्ण व्यक्तिवाद की ओर से आ सकती है। समता पर आधारित समाज में इस चीज़ के लिए कोई जगह नहीं है।

(10) पहले मैं एक परम सत्ता में विश्वास करता था, विचारों के निष्कर्ष के रूप में नहीं, केवल एक चले आते हुए रूढ़िवादी विश्वास के नाते। वह विश्वास अब खंडित हो रहा है। निस्सन्देह विश्व के पीछे कोई हाथ है लेकिन मैं नहीं समझता कि उसको मानव व्यापारों से कुछ लेना-देना नहीं। हमने अपने आपको जो महत्त्व दे रक्खा है उसके पीछे कोई प्रमाण नहीं है।

मुझे उम्मीद है कि फिलहाल इतना काफी होगा। मैं अंग्रेज़ी का पंडित नहीं हूँ इसलिए मुमकिन है कि मैं जो कुछ कहना चाहता था उसे व्यक्त न कर सका होऊँ लेकिन उस पर मेरा कोई वश नहीं है।

आपका, प्रेमचंद



168, SaraswatiSadan, Dadar, Bombay 14.
26th December 1934.

Dear Mr. Indarnath,

Glad to receive your letter of the 16th. The answers to your questions are herewith attempted in their order.

(1) Rangabhoomi is in my opinion the best of my works.

(2) I have in each of my novels an ideal character, with human failings as well as virtues, but essentially ideal, In Premasram there is Premshankar, in Rangabhoomi there is Surdas. Similarly in Kayakalp there is Chakradhar, in Karmabhoomi there is Amarkant.

(3) The total number of my short stories reaches an approximate figure of 250. Unpublished stories I have got none.

(4) Yes, I have been influenced by Tolstoy, Victor Hugo and Romain

Rolland. As regards short stories I was inspired originally by Dr. Rabindranath. Since, I have evolved my own style.

(5) I never seriously attempted drama. I have conceived of one or two plots which I thought might be better utilised in a drama. Drama loses its importance when not staged. India has not got a stage, particularly Hindi and Urdu. What passes for stage is the effete Parsi stage, for which I have a horror Then, I never came in touch with drama technique and stagecraft. So my dramas were only meant as reading dramas. Why should I not stick to my novel where I have greater scope to reveal my characters, than I can possibly have in a drama. This is why I have preferred novel as a vehicle of my thought. I still hope to write one or two dramas. As far as financial success (is concerned) this commodity is rare in Hindi or Urdu. You may get notorious, but by no means financially independent. Our people have not the weakness of buying books. It is apathy, dull-headedness and intellectual lethargy.

(6) Cinema is no place for a literary person. I came in this line as it offered some chances of getting independent financially, but now I see I was under a delusion and am going back to my literature. In fact I have never ceased contributing to literary work, which I regard as the aim of my life. Cinema is only what pleadership might have meant for mw, only healthier.

(7) I have never been to jail. I am not a man of action. My writings have several times offended Power, one or two of my books were proscribed.

(8) I believe in social evolution, our object being to educate public opinion. Revolution is the failure of saner methods. My ideal society is one giving equal opportunities to all. How is that stage to be reached except by evolution. It is the people's character that is the deciding factor. No social system can flourish unless we are individually uplifted. What fate a revolution may lead us to is doubtful. It may lead us to worse forms of dictatorship denying all personal liberty. I do want to overhaul, but not destroy. If I had some prescience and knew that destruction would lead us to heaven I would not mind destroying even.

(9) Devorce is common among the proletariat. It is only in the so-called higher classes where this problem has assumed a serious shape. Marriage even at its best is a sort of compromise and surrender. If a couple mean to be happy, they must be ready to make allowances, while there are people who can never be happy even under the best of circumstances. In Europe and America, divorces are not uncommon, in spite of all courtship and free intercourse. One

of the couple must be ready to bend, male or female does not matter. I refuse that only males are to be blamed. There are cases where ladies create trouble, fancy grievances. when it is not a certainty that divorce will cure our nuptial evils, I don't want to fasten this on society. Of course there are cases when a divorce becomes a necessity. But 'misfit' is in my opinion nothing but fastidiousness. Divorce without any provision for the poor wife—this demand is only made by morbid individualism. There is no place for it in a society based on equality.

(10) Formerly I belived in a supreme deity, not as a result of thinking, but simply as a traditional belief. That belief is being shattered. Of course there is some hand behind the universe; but I don't think it has anything to do with human affairs, just as it has nothing to do with the affairs of ants or flies or mosquitos. The importance which we have given to our own selves has no justification.

I hope that will be sufficient for the present. Not being an English scholar, I may have failed to express what I wished to say, but I can't help it.

Yours truly, P. Chand.



10, South Road, Allahabad, 31.12.34

My dear Premchandji,

When you were here last you had taken away certain books from me. I would particularly wish one of these—'Recollections of a Bookman'—to be returned to me. I do not know, if you have it with you at Bombay. If not, you may kindly ask your charged' affairs at Benares to send it to me

I had hoped to discuss with you personally the question of Lekhak Singh, if and when we met at Lahore. The sammelan is yet some way off, and you have been treating the public with your views through the columns of the 'Hans'. I have just concluded in the press a controversy on the subject with Pandit Ramnaresh Tripathi and have no wish to enter into another of all persons with you. But you will let me express my wholehearted dis-agreement with your views. Authors, who have also turned publishers, have it would unfortunately seem, lost their capacity to sympathise with their former fellow professionals. You have taken up the typical publisher's attitude. You forget that for his failures a publisher has to thank his own bad knowledge of the business and poor authors are in no way to blame. Moreover, I have advocated the royalty system, which is fair both to the publisher and the author. There is no use publishers crying out that business is slack. They pay

all other items of expenditure all right; when it is a question of paying the author, well, 'how the business is going down.' I ask, is it honest ? Do you deny that there are sharks among the publishers ? It would be good day both for the author and the publisher when a fair relationship came to be established between them. And I look up to you to help, rather than to hold a brief for the publisher.

It is unfortunately not possible for me to join the Lekhak Sangh as it would not seem prepared to come to a grip with realities. But it cannot escape it for long and in the meantime we can only educate it into a sense of earnestness.

How do you do ? With all good wishes for the New Year,

Yours sincerely, Ram Chandra Tandon

●●

सम्पादक 'नैरंगे-खयाल' के नाम

सरस्वती प्रेस, बनारस, फरवरी, 1934

मेरे किस्से अक्सर किसी-न-किसी मुशाहिदे (अनुभव) या तजर्बे पर मबनी (आधारित) होते हैं। उसमें मैं ड्रामाई कैफियत पैदा करने की कोशिश करता हूँ, मगर महज वाकये के इजहार के लिए मैं कहानियां नहीं लिखता। मैं उसमें किसी फलसफियाना या जज्बाती हकीकत का इजहार करना चाहता हूं। जब तक इस किस्म की कोई बुनियाद नहीं मिलती, मेरी कलम ही नहीं उठती। जमीन तैयार होने पर मैं कैरेक्टरों की तखलीक (सृजन) करता हूँ। बाजऔक़ात तारीख के मताले से भी प्लाट मिल जाते हैं, लेकिन कोई वाकेआ अफसाना नहीं होता, वातक्ते (जब तक) कि वो किसी नफ्सियाती (मनोवैज्ञानिक) हकीकत का इजहार न करे।

मैं जब तक कोई अफसाना अव्वल (आरम्भ) से आखिर तक जेहन में न जमा लूं, लिखने नहीं बैठता। कैरेक्टरों का इख्तिराअ (आविष्कार) इस एतबार से करता हूं, कि उस अफसाने के हस्बे-हाल (हालत और दशा के अनुरूप) हों। मैं इसकी जरूरत नहीं समझता कि अफसाने की बुनियाद किसी-किसी पुरलुत्फ वाकिये पर रखूं। अगर अफसाने में नफ्सियाती क्लाइमैक्स मौजूद हो, तो खाह (चाहे) वह किसी वाकिये से तअल्लुक रखता हो, मैं परवा नही करता।

अभी मैंने हिंदी में एक अफसाना लिखा है जिसका नाम है 'दिल की रानी'। मैंने तारीखे-इस्लाम में तैमूर की जिन्दगी का एक वाकिआ पढ़ा था, जिसमें हमीदा बेगम से उसकी शादी का जिक्र है। मुझे फौरन इस तारीखी (ऐतिहासिक) वाकिये के ड्रामाई पहलू का खयाल आया। तारीख में क्लाइमैक्स कैसे पैदा हो, इसकी फिक्र हुई। हमीदा बेगम ने बचपन में अपने बाप से फने-हर्ब (युद्ध-कला) की तालीम पायी थी और मैदाने-जंग में कुछ तजर्बा भी हासिल किया था। तैमूर ने हजारहा तुर्कों को कत्ल कर दिया था। ऐसे दुश्मने-कौम से एक तुर्क औरत किस तरह मानूस (आकर्षित, प्रेमिका) हुई ? ये उक्दा

(गुत्थी) हल होने से क्लाईमैक्स निकल आता है। तैमूर वजीह न था इसलिए जरूरत हुई कि उसमें ऐसे अखलाकी और जज्बाती मुहासिन पैदा किये जायें जो एक आली नफ्स खातून (कामरूप स्त्री) को उसकी तरफ माइल (आकर्षित) कर सकें। इस तरह वो किस्सा तैयार हो गया।

कभी-कभी सुने-सुनाये वाकिआत ऐसे होते हैं कि उन पर अफसाने की बुनियाद आसानी से रखी जा सकती है, लेकिन कोई वाकिआ महज लच्छेदार और चुस्त इबारत में लिखने और इंशापर्दाजाना (गद्य-लेखन) कमालात (की बहुत सी खूबियों) की बिना पर अफसाना नहीं होता। मैं उसमें क्लाईमैक्स लाजमी चीज समझता हूं और वो भी नफ्सियाती (मनोवैज्ञानिक)। ये भी जरूरी है कि अफसाने में मदारिज इस तरह कायम किये जायें कि क्लाइमैक्स करीबतर (निकटतम) आता जाय। जब कोई ऐसा मौका आता है, जहां जरा तबीयत पर जोर डालकर अदबी या शायराना कैफियत पैदा की जाती है तो मैं उस मौके से जरूर फायदा उठाने की कोशिश करता हूं। यही कैफीयत अफसाने की रूह है।

मैं सुस्त-रफ्तार भी हूं। महीने-भर में शायद मैंने दो अफसाने से जाइद नहीं लिखे। बाजऔकात तो महीनों कोई अफसाना नहीं लिखता। वाकिआ और कैरेक्टर तो सब मिल जाते हैं, लेकिन नफ्सियाती बुनियाद (मनोवैज्ञानिक आधार) बमुश्किल मिलता है। ये मसला (समस्या) हल हो जाने पर अफसाना लिखने में देर नही लगती। मगर इन चन्द सुतूर (पंक्तियों) से अफसानानवीसी के हाकाइक (हकीकतें) नहीं बयान कर सकता। ये एक जेहनी अम्र (मानसिक कर्म) है। सीखने से भी लोग अफसानानवीस बन जाते हैं, लेकिन शाइरी की तरह इसके लिए भी और अदब के हर शोबे के लिए कुछ फितरी मुनासिब्त (नैसर्गिक अनुकूलता) जरूरी है। फितरत आपसे प्लाट बनाती है, ड्रामाई कैफियत पैदा करती है, तासीर लाती है, अदबी खूबियां जमा करती है। नादानिस्ता (अनजाने) तौर पर आप ही आप सब-कुछ होता रहता है। हां, किस्सा खत्म हो जाने के बाद मैं उसे खुद पढ़ता हूं। अगर उसमें मुझे कुछ नुद्रत (नवीनता), कुछ जिद्दत, कुछ हकीकत की ताजगी, कुछ हरकत पैदा करने की कूवत का एहसास होता है तो मैं उसे कामयाब अफसाना समझता हूं, वरना समझता हूं फेल हो गया। हालांकि फेल और पास दोनों अफसाने शाया हो जाते हैं और अक्सर ऐसा होता है कि जिस अफसाने को मैंने फेल समझा था, उसे अहबाब (मित्रों) ने बहुत ज्यादा पसन्द किया। इसलिए मैं अपने मेयार (मापदण्ड) पर ज्यादा एतबार नहीं करता।

प्रेमचंद।



तिथि व स्थान अंकित नहीं, सम्भवतः जुलाई, 1934

प्रियवर,

'वेश्या की बेटी' फरवरी, 33 में छपी है। मेरे पास वह नम्बर है, पर उसमें से वह कहानी मैंने काट ली है। मेरा ख़याल है कि उन्हीं कटिंग में होगी जो मैंने दी थीं। 'वफ़ा का जाल' किसी और नाम से 35 में निकला है। तब से मेरी शायद कोई कहानी नहीं निकली। उसकी आप चिन्ता न कीजिए। वह 35 में है और अन्त तक मिल जाएगी।

'चमत्कार' भेज रहा हूँ।

मकान का प्रश्न तय कर डालना चाहिए। शहर के अन्दर दो-तीन साल से खोज रहा हूँ, कोई मकान नहीं मिलता। आपने कहा है, टाउन-हाल के पीछे कोई मकान है, मगर मालूम नहीं कब तक ख़ाली हो। नतीजा यह होगा कि फिर इसी मकान में यह साल गुज़र जाएगा और इसकी नहूसत ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। लक्ष्मीपति का मकान ख़ाली हो गया है। आज रविवार है। आप उनसे बातचीत पक्की कर लें तो अच्छा हो। शर्त यही होगी कि कम-से-कम दो साल तक वह किराया बढ़ायेंगे नहीं और हमसे मकान नहीं ख़ाली करायेंगे।

हम अपनी तरफ़ से यही शर्त करेंगे कि साल भर तक हम मकान न छोड़ेंगे। मगर हमें किसी शेड की ज़रूरत हुई तो वह बनवा देंगे। पेशगी केवल एक महीने का किराया दिया जाएगा।

किराया वही 45 रु. या बिल्कुल न मानें तो एकाध रुपया और। बाम्हन हैं न!

धनपत राय।

●●

सम्भवतः 1-7 अगस्त, 1934

प्रियवर,

'चमत्कार' भेजता हूँ।

मकान अगर गोदोलिया और बुलानाला तक मिल जाय तो क्या पूछना, मगर कहीं है नहीं। रामसिंह वाला मकान एक-तला है, मालूम नहीं कब ख़ाली होगा, क्या किराया है, कितनी जगह है, रहने के लिए और प्रेस के लिए काफ़ी जगह है या नहीं और दूरी के लिहाज़ से दोनों मकान बराबर हैं। रामसिंह वाला ज़्यादा दूर है और जब अग्रवाल प्रेस और नेशनल प्रेस और भूखली बाज़ार तक में प्रेस चल रहे हैं तो लक्ष्मीपति का मकान तो कबीर-चौरा के पिछवाड़े है, और 1 को खाली हो जाएगा। फिर उठ जाने पर यही परेशानी होगी। मुझे 25 रु. किराये के अगस्त से मिलेंगे उसे क्यों छोड़ें ! रह गयी प्रेस उठाने की दिक़्क़त, यह तो आप जब प्रेस उठावेंगे तभी होगी। तो क्या हमेशा इस डर से उसी सड़ियल मकान में पड़े रहें जो शायद बैठ भी जाय और जिसमें बैठना भी बुरा लगता है ! मैं समझता हूँ, मुस्तैदी से काम लिया जाय तो एक सप्ताह में असबाब–पहले कम्पोज़िंग उठवाइए। नये मकान में कम्पोज़िंग होती रहे। मशीन के फ़िट होने में जै दिन लगें, लगने दीजिए। अगर फ़रमे तैयार होंगे तो दूसरे प्रेस से छपवा लिये जा सकते हैं। काग़ज़ का स्टाक हफ़्ते भर के लिए रक्खा जा सकता है। रोज़ मँगवाने की ज़रूरत नहीं। महीने-भर में जितना काग़ज़ ख़र्च होने का हिसाब हो, उतना एक दिन मँगवा लिया जायगा। एक साइकिल रख ली जाएगी और उस पर आदमी डाकख़ाने आ-जा सकेगा। बैलगाड़ी रख ली जाएगी और उस पर सामान दुलवा लिया जाएगा। अगर 'हंस' में आप 10 को भी हाथ लगावें तो 14 फ़ार्म अधिक से अधिक 16 दिन में छप जायेंगे और 1 सितम्बर तक डिस्पैच हो जाएगा। दो साल तक इस नये मकान में रहने के बाद फिर आगे क्या होगा, कौन जाने ! इसलिए अब ज़्यादा सोच-विचार में यह घर भी हाथ से न खोइए, नहीं, मैं शहर न आ सकूँगा और काम जितनी खूबी से मैं चलाना चाहता हूँ, न चल

सकेगा। गुरूराम भक्त को मैंने 'हंस' का हिसाब-किताब, प्रूफ़, पत्र-व्यवहार आदि में सहायता देने के लिए ता. 1 से रख लिया है। 'हंस' से 25 रु. इनको दिया जाएगा। ये 50 रु. मिलते हैं, तो क्यों न लें ?

धनपत राय।

●●

सम्भवतः दिसम्बर, 1934

इतना ख़सारा बर्दाश्त करना अब मेरी ताक़त से बाहर है, लेकिन हिम्मत और सब्र से सहे जा रहा हूँ। ग्राहकों की तादाद बढ़ाने से इस नुक़सान के पूरा होने का भरोसा नहीं। हाँ, इश्तेहार काफ़ी तादाद में मिल जायेंगे तो बोझ हल्का हो जाय।

प्रेमचंद।

●●

तिथि एवं स्थान अंकित नहीं, सम्भवतः 1934

प्रिय वर्मा जी,

मुझे मालूम नहीं, क्या समय है। दस से काम शुरू होता है और 5.30 पर ख़त्म होता है। यह मुझे याद है। एक बार कुछ यह तय हुआ था। अगर आपने 7 घण्टे रक्खा है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप 10 बजे ज़रूर ही आ जायँ, लेकिन ऐसा कुछ होना चाहिए कि 10 बजे ठीक काम शुरू हो जाय। अगर आप अभी नहीं आ सकते तो चलने दीजिए। मैं आया जाता हूँ तो इसकी देखभाल कर लूँगा। तब तक ऐसा कीजिए कि रामप्रसाद से कह दीजिए या मुनीम को ताक़ीद कर दीजिए कि आपके यहाँ से 10 बजे के पहले, अर्थात् 9.30 पर, कुंजी ले लिया करे जिसमें 10 पर काम शुरू हो जाया करे। और जब तक मैं नहीं आ जाता, उस वक़्त तक यही इन्तज़ाम चलने दीजिए। छतें टपकने लगी हैं। उनकी मरम्मत करानी पड़ गयी है। नहीं अब तो पानी खुल गया है। आ जाता। दो-तीन दिन और लग जायेंगे।

आपका धनपत राय।

●●

मद्रास, 1-1-1935

हिन्दी एसोसिएशन ने हिन्दी प्रचार-सभा के वार्षिकोत्सव पर जनता को 'दुर्गादास' नाटक और 'चन्द्रगुप्त मौर्य' के चार सीन दिखाये। यद्यपि एसोसिएशन ने पहले से विशेष तैयारी न कर पाई थी, फिर भी इन दृश्यों को देखकर मुझे ऐसा लगा कि हमारे यहाँ साधारणतः जो अमेच्योर लोग ड्रामे खेलते हैं, उनकी अपेक्षा इन लोगों के अभिनय में कुछ स्वाभाविकता ज़्यादा थी। उच्चारण तो जैसा चाहिए वैसा न था, लेकिन अभ्यास से यह ऐब दूर हो सकता है। और लोगों के ऐक्टिंग में तो खूबी थी ही, लेकिन अभ्यास से यह ऐब दूर हो सकता है। और लोगों के ऐक्टिंग में तो खूबी थी ही, लेकिन श्री उन्नावा राजगोपाल कृष्णय्या ने चाणक्य का जो पार्ट खेला, वह इतना स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी था कि मैं उसे देखकर मुग्ध हो गया। जहाँ जिस तरह के भाव-प्रदर्शन की ज़रूरत थी, वहाँ उन्होंने वैसा ही किया। व्यक्ति का, जो पारिवारिक और वैयक्तिक विपत्तियों

से ईश्वर और सत्य और धर्म में अपना विश्वास खो चुका हो, और जिसकी आत्मा प्रतिशोध के लिए तड़प रही हो, उसका इतना सुन्दर चित्रण करने पर मैं आपको बधाई देता हूँ !

मद्रास, प्रेमचंद।



बम्बई, 2 जनवरी, 1935

'निशानियाँ' लिखने पर तुम्हें बधाई देता हूँ ! बहुत अच्छी चीज़ है। इसी महीने 'हंस' में दे रहा हूँ। 'सरस्वती' में तुम्हारी कहानी 'प्रेम की वेदी' पढ़ी। तुमने उसमें ख़ाह-म-ख़ाह हिन्दी इल्फ़ाज़ ठूँसने की कोशिश की। मेरे ख़याल में लफ़्ज़ चाहे हिन्दी, उर्दू, अरबी-फ़ारसी कहीं से भी क्यों न लिया जाय, देखना चाहिए कि ख़यालात का तसल्सल (तारतम्य) और तहरीर (लेखन) की रवानी क़ायम रहे।

रही सिनेमा की बात ! भई, मैं तो इस ज़िन्दगी से उकता गया हूँ। यहाँ डाइरेक्टरों की ज़ेहनियत ही अनोखी है। अपने सिवा किसी की सुनते ही नहीं। 'बाज़ारे-हुस्न' की मिट्टी पलीद कर दी। हाँ 'मिल' कुछ अच्छी रही है, लेकिन सच पूछो तो भाई, मुझे अपना वह 'गोशाए-आफ़ियत' ही ज़्यादा पसन्द है। जल्द ही बम्बई से नज़ात हासिल कर लूँगा और बनारस चला जाऊँगा।

भवदीय, प्रेमचंद



विश्व-साहित्य ग्रन्थ-माला,
सम्पादक–चन्द्रगुप्त विद्यालंकार,
मेक्लेगन रोड, लाहौर, 2-1-1935

मान्यवर भाई जी,

आपका 27-12-34 का कृपा-पत्र मिला है। धन्यवाद। उत्तर में निवेदन है कि–

1. 'सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' इस वर्ष Matric में स्वीकार हो सकती थी। सभी मेम्बरों ने उसे खूब पसन्द भी किया था, परन्तु board में यह सिद्धान्त मान लिया गया कि कहानियों की selection representive होनी चाहिए अतः वहाँ नहीं हो सकी, और किसी परीक्षा में कहानियों की किताव इस साल बदली ही नहीं।

2. यू. पी. में इस पुस्तक के chance हैं, वहाँ हम कोशिश कर रहे हैं।

3. अभी General sale शुरू ही नहीं की गयी। अब शुरू की जायगी।

4. रॉयल्टी का बाक़ायदा शर्तनामा Stamp paper पर लिखकर भेजने में हमें कोई एतराज़ नहीं, परन्तु एक बात आपने नयी (हमारी दृष्टि में) खड़ी कर दी है। मुझे अच्छी तरह से याद है मैंने 15 (पन्द्रह) प्रतिशत रॉयल्टी आपसे बनारस में तय की थी। अव आप 25 (पच्चीस) लिख रहे हैं, जो हमारे लिए सर्वथा अमान्य है। मैंने आपका यह पत्र आने पर, file निकालकर देखी है। पिछले पत्र में जो आपने सितम्बर, 1934 में भेजा था, रॉयल्टी की मात्रा अंग्रेज़ी अंकों में लिखी थी। वह ऐसी है, जिसे 15 और 25 दोनों

पढ़ा जा सकता है। इसका मतलब यह है कि तब आपने शायद 25 लिखा होगा, परन्तु हम लोगों ने उसे 15 पढ़ा और हमारा यह पढ़ना हमारे पिछले पत्र-व्यवहार की दृष्टि से बिलकुल ठीक था, क्योंकि मैं आपको सन् 1933 के पत्र-व्यवहार में यह स्पष्ट लिख चुका था कि इस पुस्तक पर हम लोग आपको 15% royalty देंगे। मौखिक भी हमारी यही बातचीत हुई थी। आपने शुरू में लिखा था, जो रॉयल्टी आप देंगे, मुझे मंजूर होगी। आपका वह पत्र हमारी फ़ाइल में मौजूद है।

अब आप आज्ञा दें तो 15% रॉयल्टी के आधार पर शर्तनामा 12 आने के Stamp paper पर लिखकर आपकी सेवा में भेज दिया जाय।

विनीत, चन्द्रगुप्त

●●

बम्बई, 11 जनवरी, 1935

प्रिय बंधुवर, वंदे।

आपका पत्र मुद्दत दराज़ के बाद मिला। बड़ी खुशी हुई। मैं मद्रास गया था। हिन्दी प्रचार सभा का दीक्षान्त भाषण था। वहाँ से बंगलौर, मैसूर की सैर करता हुआ कल तीसरे पहर यहाँ पहुँचा; इसलिये उत्तर में देर हुई। यह सफाई दे चुकने पर विलम्ब का अपराध तो आप न लगायेंगे।

बालक का भारतेन्दु अंक निकल रहा है। अच्छी बात है। वर्मा जी हंस का भारतेन्दु अंक निकालने का प्रस्ताव कर रहे हैं। देखिए क्या होता है।

बालकों के लिए मेरा यही संदेश है कि हमारा घर ही हमें मनुष्यता सिखाने की सबसे बड़ी पाठशाला है। स्नेह और त्याग और क्षमा और शालीनता की भावनाओं के विकास के जितने सुन्दर अवसर घर में मिल जाते हैं उतने और कहीं नहीं मिल सकते। बालकों के सामने यही आदर्श होना चाहिए कि वे अपने घरों को स्वर्ग बना दें अपने प्रेम से, विनय से, सद्व्यवहार से। इसी पाठशाला में कामयाब होकर वे संसार के विशाल क्षेत्र में यश और आत्म-संतोष लाभ करेंगे।

आशा है आप सपरिवार सानंद हैं।

प्रेमचंद।

●●

Vishwa Sahitya Granth mala.
Maclagan Road,
Lahore, 15-1-1935

मान्यवर भाई जी,

आपका 12 जनवरी का कृपा-पत्र मिला है, हार्दिक धन्यवाद। आपका निर्देश बिल्कुल ठीक है। व्यवहार में सफ़ाई रहनी ही चाहिए। आपकी सेवा में शर्तनामे की दो Stamped कापियाँ शीघ्र ही भेज दूँगा। एक आप अपने पास रख लीजिएगा और दूसरी, अपने हस्ताक्षर करके लौटा देने की कृपा कीजिएगा।

शेष सब कुशल है। क्या आप अपने Bombay के impressions लिखने की कृपा

करेंगे ? वहाँ आपका स्वास्थ्य तो ठीक रहता है न ?

विनीत भाई, चन्द्रगुप्त।

श्री प्रेमचंद, 168, सरस्वती-सदन, दादर, बम्बई-14

●●

सरस्वती सदन, दादर, बम्बई-14, 26 जनवरी, 1935

प्रिय बंधुवर, वंदे।

मेरी दो तस्वीरें खिंची हैं। एक तो बम्बई में, दूसरी मैसूर में। एक आपके पास भेजूँगा। मँगवा रहा हूँ।

बालक बड़े शौक से पढ़ूँगा और हंस में पीठ ठोकूँगा।

मेरा भाषण आया तो है, लेकिन आप हंस में पढ़ियेगा। दो-एक दिन में हंस भी पहुँचेगा।

उग्र जी से मेरी मुलाकात कभी न हुई और ईश्वर करे न हो। जो आदमी माँ-बहन की गाली देता है उसे मैं इन्सान ही नहीं समझता। हैं, किसी तरह अपना निबाह किये जा रहे हैं। उनका कोई सिनेरियो तो इधर नज़र नहीं आया। मगर सुनता हूँ बुरा हाल है। मुझे तो यह लाइन पसन्द नहीं आई। तीन-चार महीने किसी तरह और कट जायँ तो घर की राह लूँ।

हंस में क्यों कोई दो पेज का सिलसिला शुरू नहीं करते ?

भवदीय, धनपत राय।

●●

Dhanpat Rai, B.A., (Alias Premchand)

168, Saraswati Sadan, Dadar, Bombay-14, 28-1-1935

प्रिय हिरण्मय जी,

आपका पत्र मिला। हाँ, मैं बैंगलूर में तीन दिन रहा और दीवान साहब[1] से भी मिला। हिन्दी के विषय में उनसे देर तक बातें हुईं, लेकिन रुख़ से ऐसा मालूम हुआ कि वह सरकारी तौर पर कुछ करना नहीं चाहते। जब तक जनता में खुद हिन्दी के प्रति काफ़ी प्रेम न हो जाय और यह माँग उसकी तरफ़ से न हो, वह अपनी तरफ़ से कुछ न करेंगे। उर्दू में उन्होंने बहुत अच्छी तरह बातें कीं और साधारण शिक्षित मुसलमानों की तरह उर्दू की प्रगति का भी उन्हें ज्ञान है। आपका हिन्दू बड़ा आदमी हिन्दी में कोरा रहता है। आप सत्यमूर्ति के पास जाइए और हिन्दी के किसी अच्छे लेखक का नाम लीजिए, वह आपकी तरफ़ इस तरह ताकेंगे, मानो आपने किसी विचित्र जन्तु का नाम ले लिया। मैंने मालवीय जी को देखा, जवाहरलाल जी को देखा और कितनों को ही देखा, ये लोग कुछ जानते ही नहीं कि उनके साहित्य में क्या हो रहा है। मुसलमान आमतौर पर उर्दू-साहित्य से परिचित होता है, चाहे वह कनाडी या तमिलभाषी ही क्यों न हो। शिक्षित मुसलमान से मेरा मतलब है।

आपने मुझसे सन्देश माँगा है। इस पत्र में भी याद दिलाया है। तुमने जो नोट मुझे दिया था, उस पर तो एक लेख होगा। सन्देश के विषय में चन्द पंक्तियों का क़ायदा है। क्या करूँ, एक लेख लिखूँ ? मैं फुलस्केप के दो पेज लिख चुका हूँ और अभी

कम-से-कम दो पेज और होंगे। कहो तो यही लेख भेज दूँ ! इसी को सन्देशा समझ लेना, हालाँकि बड़ा लम्बा सन्देश होगा।

फोटो अभी नहीं आया। शायद स्टूडियो के पते से भेजा हो। मैं कई दिन से स्टूडियो नहीं गया। हम लोगों की अलग-अलग भी तो एक सज्जन ने तस्वीरें ली थीं। वे क्यों नहीं भेजीं ? क्या बिगड़ गयीं ? मेरे पास कई लोगों का तक़ाज़ा है। मैंने समझा था, उसी को भेज देने पर काम निकाल लूँगा। अगर वह न मिलेगी तो मुझे खिंचवानी पड़ेगी।

कुछ पुस्तकें प्रेमी जी द्वारा भेजी गयी थीं। मिली होंगी।

तुम्हारा जवाव आने पर सन्देश-रूपी लेख या लेख-रूपी सन्देश भेज दूँगा। और सब कुशल है। वर्मा जी, कृष्णमूर्ति जी आदि मित्रों को मेरा नमस्कार सुनाना। आप लोगों की अतिथि-सेवा मुझे हमेशा याद रहेगी।

तुम्हारा, प्रेमचंद।

अभी-अभी तुम्हारा पत्र देवी जी के नाम मिला। हमें तो तुमने और तुम्हारे सहकारी बन्धुओं ने जितना सेवामय सम्मान दिया, उसके लिए हम तुम्हारे हमेशा एहसानमन्द रहेंगे।

प्रेमी जी ने तो जो पुस्तकें मिल सकीं, शिवप्रसाद जी द्वारा रेल से भेजी हैं। अब तक पहुँच जानी चाहिए। मेरी और पुस्तकें मैं बनारस से भिजवाने का प्रबन्ध कर रहा हूँ। यहाँ नहीं हैं। देवी जी तुम सबको आशीर्वाद कहती हैं। इस वक़्त खाना पका रही हैं।

प्रेमचंद।

1. दीवान सर मिर्जा इस्माइल जो इन दिनों मैसूर रियासत के दीवान थे।



सरस्वती सदन, दादर, वम्बई 14, 3 फरवरी, 1935

प्रिय बन्धु,

पत्र के लिए और उन कतरनों के लिए जो आपने कृपापूर्वक भेजी हैं, धन्यवाद। डॉ. सप्रू का लेख मैं पढ़ चुका था और उसमें बहुत तुक की बातें कही गयी हैं। उसमें एक भी ऐसा शब्द नहीं है जिस पर कोई आपत्ति कर सके। लेकिन मिस्टर धीरेन्द्र के विचार पृथकतावादियों के हैं और मैं उनका समर्थन नहीं कर सकता। शायद आपने इस विषय पर गारसों द तासी के लेख पढ़े हों। 'उर्दू', अंजुमन तरक़्क़िये उर्दू का मुखपत्र, उन्हें क़िस्तों में छाप रहा है। हाल में प्रकाशित लेखों में से एक मैंने पढ़ा। उसमें इतनी ताज़गी और साफ़गोई और दूरन्देशी पाकर मुझे ताज्जुब हुआ। कौन जाने मिस्टर वर्मा ने उसको पढ़ा है या नहीं। उसने इस समस्या का समाधान बहुत उस्तादी ढंग से किया है। उसकी राय है कि लिपि को छोड़कर हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा हैं। उनमें केवल लिपि का भेद है। कहाँ पर भाषा उर्दू की सीमा को लांघकर हिन्दी के क्षेत्र में पहुँच जाती है, रेखा खींचकर बतलाना असम्भव है। उर्दू वाले जितना मन चाहे अरबी और फारसी से लें। हिन्दी वाले भी उनका अनुकरण करें। उनकी भाषा प्रान्तीय उर्दू और हिन्दी बनी रहेगी। हमारी हिन्दुस्तानी जनता के रास्ते पर चलेगी और ज़बान जैसे बोली जाती है वैसे लिखने की कोशिश करेगी। जनता से मेरा मतलब स्वभावतः वे लोग हैं जो लिख-पढ़ सकते हैं और जिनके पास साहित्यिक संस्कार हैं।

हिन्दुस्तानी एकेडमी का काम इसी समस्या से जूझना था। ऐसे ही मेम्बर लीजिये

जो एक मिली-जुली भाषा में आस्था रखते हों। उसे मिली-जुली भाषा में अलग-अलग लिपियों में एक पत्रिका निकालनी चाहिए थी। यह एक सच्ची सेवा होती। सम्प्रति उसकी कार्रवाइयाँ साम्प्रदायिक हैं और उसने अपने अस्तित्व को चरितार्थ नहीं किया।

निस्सन्देह हिन्दुस्तानी अपने रूप और वैभव और शब्द सम्पदा में साहित्यिक भाषा नहीं है। साहित्यिक भाषा बोल-चाल की भाषा से अलग समझी जाती है। मेरा ऐसा विश्वास है कि साहित्यिक अभिव्यक्ति को बोल-चाल की भाषा के निकट से निकट पहुँचना चाहिए। कम से कम नाटक, कहानी और उपन्यास साधारण बोल-चाल की भाषा में हम लिख सकते हैं, इन्हीं में हम जीवनी और यात्रा-वर्णनों को भी शामिल कर सकते हैं और साहित्य की ये शाखाएँ सम्पूर्ण साहित्य का तीन चौथाई ठहरती हैं और ऐसा तीन चौथाई जो सचमुच महत्व रखता है। आपका विज्ञान और दर्शन संस्कृत में लिखा जाय या प्राकृत में, मुझे कोई परवाह नहीं। जैसा कि गारसों द तासी कहता है, 'हिन्दी को उसके पुराने आधारों के पास खींचकर ले जाना एक वैसी ही बेकार कोशिश है जैसी कि नदी की धारा को मोड़कर वापस उसके उद्‌गम स्थल पर ले जाना।'

किताबों के बारे में मैंने अपने लड़के को लिखा है कि वह आपको जाकर बतलाये कि वह किताबें उसने किसके पास जमा कीं। आपको शायद पता न हो, मेरे दोनों लड़के कायस्थ पाठशाला इण्टरमीडिएट स्कूल में हैं और उसी इमारत में रहते हैं जिसमें हिन्दुस्तानी एकेडमी है। लेकिन दोनों बेहद झेंपू हैं, जो गुण उन्होंने शायद मुझसे लिया है, यानी अगर ये मान लें कि मैं उनका बाप हूँ। उसका नाम श्रीपत राय है, अगर आप उसे बुला लें और उससे पूछें तो वह आपको बतलायेगा कि उन किताबों का क्या हुआ।

लेखक संघ। मेरी राय में उसका एकमात्र उपयोगी काम सहकारी प्रकाशन है जिसमें कि हर लेखक जो उसका सदस्य है तीस से लेकर चालीस फ़ी सदी रायल्टी पाने के लिए आश्वस्त हो जाय। हिन्दी का बाज़ार इतना मंदा है और लेखक अपनी पुस्तकें छपवाने के लिए इतने आतुर हैं कि वे प्रकाशकों के साथ कोई भी समझौता कर लेंगे। वे अगर अपनी शर्तों पर अड़े रहें और प्रकाशक उनकी पुस्तकें प्रकाशित करने से इनकार कर दे तो फिर बेचारा कहीं का न रह जायगा। यह चीज़ वैसी ही जैसी कि लोगों को वर को दहेज देने से रोकना। लेकिन जब युवकों की कमी और कन्या का पिता तुरन्त अपनी कन्या का विवाह कर देने के लिए आतुर हो तब फिर दूषित दहेज प्रथा के आगे घुटना टेक देने के अलावा कोई चारा नहीं। वह तने तो किस विरते पर। लेकिन सहकारी प्रकाशन के लिए रुपया चाहिए और संगठन चाहिए और स्टाफ चाहिए और यह काम तभी हाथ में लिया जा सकता है जब संघ के पास आवश्यक प्रभाव और प्रतिष्ठा हो। लेकिन कोई कारण नहीं है कि वह लेखकों की, जब प्रकाशक अनुचित रूप से उनका शोषण करते हों, सहायता न करे। हमारी वर्तमान आवश्यकता सदस्यता को बढ़ाना है ताकि संघ साहित्यिक काम करने वालों की ओर से उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बोल सके। हमें उसको परवान चढ़ाना है और उस जगह पर पहुँचाना है, जहाँ वह असर कर सके। आप भीतर रहकर उसे जिस रूप मे चाहें विकसित कर सकते हैं या जिधर चाहे ज़्यादा असानी से मोड़ सकते हैं। जब उसके बहुत से सदस्य होंगे तब हर आदमी के लिए यह मुमकिन होगा कि वह जनमत को संगठित करके उसमें जैसी रद-बदल चाहें कर सके। ध्वंसात्मक

आलोचनाओं से केवल अलग-अलग पक्षों की कट्टरता और भी बढ़ती है।

मुझे रूसी कहानियों का आपका संग्रह नहीं मिला। मुझे यक़ीनन उनमें मजा आयेगा और मैं उनकी समालोचना करूँगा।

बराय मेहरबानी मेरा आदाब मौलवी असग़र हुसैन साहब से अर्ज़ कर दें।

आशा है कि आप पूर्ण स्वस्थ होंगे।

आपका, धनपत राय।

पुनश्च—

मैं शायद मिस्टर वर्मा के विचारों का खंडन करते हुए हिन्दुस्तानी में एक छोटा लेख लिखूँगा।

अशफ़ाक़ हुसैन।



मेरठ कालेज, अजमेर, 3 फ़रवरी, 1935

बरादरम, तसलीम।

आपका ख़त मय खुतबे[1] के मिला। खुतबे में आपने जिन ख़यालात का इज़हार किया है उनसे मुझे क़रीब-क़रीब पूरे तौर पर इत्तफ़ाक़ है, और मैं समझता हूँ कि अगर इसका तर्जुमा उर्दू रसाइल[2] मे शाया किया जाये तो बेहतर होगा। मेरी नज़र में दो रसाइल हैं और आखिरी ख़त जो मैंने आपको लिखा था उसकी ग़रज यही थी कि यह तहरीक इन रसाइल के ज़रिये उठाई जाये—(1) जामिया है (2) मालूमात। मालूमात को, शायद आपको मालूम हो, मियाँ वाली ने फिर से ज़िन्दा किया है। दिमंबर में वाली से लखनऊ में बातचीत भी हुई थी। उनकी राय हुई थी कि वह गश्ती ख़त 'मालूमात' को भेज दूँ और वह उस पर अपनी राय ज़ाहिर करके दूसरों को दातव देंगे कि वह भी अपने ख़यालात का इज़हार करें। इन दो रसालों के अलावा अगर राय हो तो किसी पंजाबी रसाले को भी शामिल कर लिया जाये। यह ख़यालात थे आपके खुतबे की ख़बर से पहले। अब ग़ालिबन यही बेहतर हो कि पहले आपके खुतबे का उर्दू तर्जुमा इन रसालों को भेजा जाये और उसके बाद वह गश्ती ख़त। आपकी क्या राय है ?

सिनेमा के बारे में मैं आपसेइत्तफ़ाक़ नहीं करता हूँ। आजकल जो हमारे सिनेमा की हालत है वह यक़ीनन नफ़रतअंगेज़ है, मगर साथ ही इसका ख़याल रखने की ज़रूरत है कि इसका असर हमारी मआशरत[3] पर बहुत वसीह[4] और गहरा होगा। वह असर बुरा हो या भला, यह उन लोगों पर मुनहसर है जो सिनेमा चलाते हैं। यह ज़ाहिर है कि यह काम तिजारत का है। कारोबारी आदमी की नज़र रुपये पर होगी और रुपया लोगों को खुश करने से ही हासिल हो सकता है। फ़िलहाल जबकि अवाम की तालीम और तरबियत[5] इतनी गिरी हुई है उनका मज़ाक़[6] भी भोंडा होगा। मगर इसी सिनेमा से वह मज़ाक़ बहुत कुछ दुरुस्त भी किया जा सकता है। अब अगर तमाम माकूल लोग जो इसमें शामिल हैं माहौल[7] की गंदगी के ख़याल से अलहदा हो जायें तो फिर अवाम का मज़ाक़ सुधारने वाला या उनके ख़यालात दुरुस्त करने वाला कौन होगा। एक इतनी अहम चीज़ सिर्फ़ खुदग़रज़ जाहिलों के हाथ रह जायेगी। खुद जो काम इस वक़्त आपके पेशे नज़र है उसमें सिनेमा से बेहद मदद मिल सकती है। इतनी ही ख़िदमत क्या कम होगी। मेरी तो राय

यह हरगिज़ न होगी कि आप आजिज़ होकर छोड़ दें। आप रफ़्ता-रफ़्ता एक ख़ासा बड़ा काम भी कर सकेंगे। यह मेरी राय है मगर आप हालात से मेरी बनिस्बत कहीं ज़्यादा वाकिफ़ हैं और मुझसे बेहतर राय क़ायम कर सकते हैं।

इस खुतबे का उर्दू तर्जुमा जल्द भेज दीजिए। या तो खुद बराहे रास्त रसालों को भेज दीजिए या (एक और ख़याल आता है) वह गश्ती ख़त और यह खुतबा मुझे भेज दीजिए। वह ख़त बतौर इस खुतबे के ज़मीमे[8] के मैं अपनी तरफ़ से साथ ही भेज दूँ जैसी आपकी राय हो।

आपका मुखलिस, अशफ़ाक़ हुसैन

1. भाषण, 2. पत्रिकाओं, 3. जीवन-प्रणाली, 4. व्यापक, 5. संस्कार, 6. रुचि, 7. वातावरण, 8 परिशिष्ट



186, सरस्वतीसदन, दादर, बम्बई-14, 7 फ़रवरी 1935

प्रिय जैनेन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। हाँ, इधर मैंने तुम्हें कोई पत्र न लिखा। ऋषभ जी आये थे। उनसे तुम्हारी ख़ैरियत का हाल मिल गया था। कुछ ऐसा व्यस्त तो नहीं रहता। हाँ, काम नहीं करता। सात बजे उठता हूँ। साढ़े आठ पर घूम कर आता हूँ। नाश्ता करता हूँ। नौ बजे अख़बार पढ़ता हूँ। कभी घन्टा भर कभी इससे ज़्यादा समय लग जाता है। कभी कोई मिलने आ जाता है। ग्यारह बज जाता है। नहा-खाकर स्टूडियो जाता हूँ। कुछ काम हुआ तो किया नहीं उपन्यास पढ़ा। पाँच बजे लौटता हूँ। हिन्दी के पत्रों-पत्रिकाओं को उलटता-पलटता हूँ। चिट्ठी-पत्र लिखता हूँ, खाता हूँ, और सो जाता हूँ। यही दिनचर्या है। एकाध कहानी महीने में लिखता हूँ और दो-एक पृष्ठ के नोट 'हंस' के लिए। बस।

'मज़दूर' तुम्हें पसन्द न आया। यह मैं जानता था। मैं इसे अपना कह भी सकता हूँ, नहीं भी कह सकता। इसके बाद एक रोमांस जा रहा है। वह भी मेरा नहीं है। मैं उसमें बहुत थोड़ा-सा हूँ। 'मज़दूर' में भी मैं इतना थोड़ा-सा आया हूँ कि नहीं के बराबर। फ़िल्म में डाइरेक्टर सब कुछ है। लेखक कलम का बादशाह क्यों न हो, यहाँ डाइरेक्टर की अमलदारी है और उसके राज्य में उसकी हुकूमत नहीं चल सकती। हुकूमत माने तभी वह रह सकता है। वह यह कहने का साहस नहीं रखता, 'मैं जनरुचि को जानता हूँ।' उसके विरुद्ध डाइरेक्टर ज़ोर से कहता है, आप नहीं जानते, मैं जानता हूँ, जनता क्या चाहती है और हम जनता की इसलाह करने नहीं आए हैं। हमने व्यवसाय खोला है, धन कमाना हमारी गरज़ है। जो चीज़ जनता माँगेगी, वह हम देंगे।' इसका जवाब यही है ...'अच्छा साहब। हमारा सलाम लीजिए। हम घर जाते हैं।' वही मैं कर रहा हूँ। मई के अंत में काशी में बन्दा उपन्यास लिख रहा होगा। और कुछ मुझ में नयी कला न सीख सकने की भी सिफ़त है। फ़िल्म में मेरे मन को संतोष नहीं मिला। संतोष डाइरेक्टरों को भी नहीं मिलता, लेकिन वे और कुछ नहीं कर सकते, झख मारकर पड़े हुए हैं। मैं और कुछ कर सकता हूँ, चाहे वह बेगार ही क्यों न हो, इसलिए चला जा रहा हूँ। मैं जो प्लाट सोचता हूँ उसमें आदर्शवाद घुस आता है और कहा जाता है उसमें Entertainment Value नहीं होता। इसे मैं स्वीकार करता हूँ। मुझे आदमी भी ऐसे मिले जो न हिन्दी जानते हैं और न उर्दू। अंग्रेजी में अनुवाद करके उन्हें कथा का मर्म समझाना पड़ता है और काम

कुछ नहीं बनता। मेरे लिए अपनी वही पुरानी लाइन मज़े की है। जो चाहा लिखा।

'हंस' बदस्तूर चला जाता है। जून से अब तक 800 रुपये प्रेस की नज़र कर चुका हूँ। व्यापार जानता नहीं, खोल बैठा दुकान, घाटा आप होगा। न किसी ऐसे आदमी का सहयोग ही पा सका जो व्यापार जानता हो।

ऋषभ जी आये थे। वह ऐसी कोई आयोजना बना रहे हैं जिसमें तुम, हम वह और अन्य कुछ लोग मिलकर एक लिमिटेड फ़र्म बना लें। ऐसे ही एक सज्जन कहते हैं, मैं अपनी दुकान उठाकर प्रयाग लाऊँ। मेरी समझ में कुछ नहीं आता। जैसे चलता है वैसे चला जाता हूँ।

लेखक संघ की नियमावली तुम्हें मिली होगी। काम की बात कोई नहीं। सहयोग सिद्धांत पर प्रकाशन किया जाय और साहित्य का प्रचार बढ़ाया जाय तभी लेखकों को रोटी मिल सकती है। जब तक प्रचार नहीं बढ़ता, न प्रकाशक ही पनप सकेगा, न लेखक ही। मगर Cooperative Publication के लिए धन कहाँ है। अगर संघ यह न कर सके तो कुछ न कर सकेगा।

तुम्हारी कई चीज़ें पढ़ीं। 'ग्रामोफोन का रिकार्ड' तो हाल में पढ़ा है। वह दिमाग में है। पुरानी शराब चमंकदार शीशी में ज़्यादा मोहक हो गयी है। मगर वह औरत घर क्यों चली गयी, यह मेरी समझ में नहीं आया। शायद वह बेपढ़ी लिखी थी। मगर बेपढ़ी-लिखी औरतों को समय काटने का रोग नहीं होता। यह रोग तो उन अंग्रेज़ी या नयी रोशनी की देवियों को है, जिनके लिए जीवन में रात दिन कुछ न कुछ कंपन और सनसनी चाहिए, जो क्षण भर भी घर में नहीं बैठ सकतीं। अगर इस तरह सभी औरतों का समय काटना दूभर हो जाय और मनमोदन की बैरिस्टरों की दुनिया में कमी है ही नहीं, तब तो सभी आत्माएँ विश्वात्मा में मिल जायँ और कहीं वह (मर्यादा) रहे ही नहीं जो मनुष्य को मनुष्य बनाये हुए है। खुलासा यह है कि इस कहानी का क्या मतलब है, यह मैं न समझ सका। शायद कोई मतलव समझने की बात हो। मेरी भूल है। एक युवती के मनोभावों का गहरा सजीव चित्रण है। बस।

मद्रास गया था, वहाँ से मैसूर और बंगलौर भी गया। अपना यात्रा-वृत्तांत लिख रहा हूँ। कुछ नोट तो किया नहीं। जो कुछ याद है वही लिखता हूँ। हिन्दी का प्रचार बढ़ रहा है, यह देखकर खुशी हुई। जो लोग राष्ट्र की ओर कोई सेवा नहीं कर सकते, वे इसी ख़याल में मगन हैं कि वे राष्ट्र भाषा सीख रहे हैं। मुझे वह प्रदेश बड़ा सुन्दर लगा। गाने बजाने का घर-घर प्रचार है। मोहल्ले-मोहल्ले स्त्रियों के समाज हैं और प्रायः सभी में हिन्दी की क्लासेज़ हैं। मैं बुद्धू की तरह माला पहनकर रह गया। बोल न सकने की कमी उस वक्त मालूम हुई। जनता समझती है कि हिन्दी का एक बडा लेखक है; जाने क्या-क्या मोती उगलेगा और यहाँ है कि कुछ समझ में नहीं आता क्या कहूँ। ख़ैर। ट्रिप अच्छा रहा। प्रेमी जी भी साथ थे। वे बेचारे भी इसी मरज़ में मुबतिला हैं।

और क्या लिखूँ, मेरा जीवन यहाँ भी वैसा ही है, जैसा काशी में था। न किसी से दोस्ती, न किसी से मुलाकात। मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक। स्टूडियो गये घर आ गये।

हिन्दी के दो-चार प्रेमी कभी-कभी आ जाते हैं। बस।

भगवतीदेवी को मेरा आशीर्वाद कहना।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

अजंता सिनेओन, बम्बई, 14 फरवरी, 1935

मकर्रम बन्दा, तसलीम।

आपका ख़याल सही है। फ़िल्म को लायक़ अदाकारों की ज़रूरत है और यहाँ ऐसे मुबाक़ा[1] भी मिल सकते हैं कि दो-चार साल में आप किसी कम्पनी के डाइरेक्टर हो सकें। लेकिन इसके लिए आपको खुद आकर सिलसिला-जुम्बानी[2] करनी पड़ेगी। अच्छे आदमियों की हमेशा ज़रूरत रहती है। मेरी कम्पनी तो इस वक़्त नाज़ुक हालत में है। इसकी तस्वीर एक भी मक़बूल न हो सकी। और इधर ऐक्टरों के मातूब[3] हो जाने से और भी नुकसानात हुए हैं। चुनांचे उनके आज़मूदाकार ऐक्टर, ज़ैराज, बिब्बो, ताराबाई वग़ैरा किनाराकश हो गये...

मैं तो ज़िन्दगी में एक नया तजुर्बा हासिल करने के लिए यहाँ साल भर के लिए आया था। मई में वह मुद्दत ख़त्म हो जायेगी और मैं अपने वतन बनारस लौट जाऊँगा और हसबे-साबिक़[4] अदबी मशग़िल[5] में बक़िया ज़िन्दगी सर्फ़ कर दूँगा। बम्बई की आबोहवा और फ़िज़ा दोनों ही मेरे मुआफ़िक नहीं।

आप यहाँ आयेंगे तो आपसे मिलकर बड़ी खुशी होगी। एक अपना हमनवा[6] तो मिलेगा। यह तो दुनिया ही नई है।

नियाज़मन्द, प्रेमचंद।

1. मौक़, 2. सिलसिला बैठाना, 3. रुष्ट, 5. पहले की तरह, 6. साहित्यिक कार्यों।

●●

7 दरियागंज, 1 मार्च, 1935

बाबू जी,

पत्र का उत्तर देना जान-बूझकर टालता रहा। उसका कारण था। एक जगह से कुछ सुनने की आशा थी, और सोचता था वहाँ से पत्र आ जाय, तभी आपको लिखूँ। अब सुना है आपकी कम्पनी टूट गयी और अब इस पत्र को यदि पाएँगे भी तो आने की तैयारी में। ऐसी क्या बात हुई यह शायद आप खुलासा लिखेंगे ही। क्या आप वर्धा जा रहे हैं ? क्या वहाँ से इस ओर आवेंगे ? मेरी कल्पना है कि बनारसीदास जी आपको उस ओर मिलेंगे। वह फिर शान्ति निकेतन में उसी तरह का जमाव करने की धुन में हैं, क्या आप जावेंगे।

हंस से एक कहानी (एक रात) आपको मिली होगी। जरा लंबी हो गयी। लेकिन गौर से पढ़ें और मुझे अपनी राय लिखें। और वह छपनी भी चाहिए।

आपके पत्र में 'ग्रामोफ़ोन का रेकार्ड' कहानी का ज़िक्र था। उस स्त्री के फिसलने के चारों ओर जो एक वायव्य और वातावरण कहानी में भर दिया गया है उसमें क्या स्त्री की ओर से Self-deception की गंध आपको बिल्कुल नहीं मिली ? उसे वहाँ से बिल्कुल अनुपस्थित करने का मेरा अभिप्राय न था। बल्कि मुझे मालूम होता है वह ध्वनि है। वह ध्वनि न हो तो संपूर्ण कृत्य नितांत Justified ठहरता है। लेकिन वह मेरा अभिप्राय नहीं

है। मेरा तो इष्ट मात्र इतना है कि हम कहानी में उस नारी के स्खलन पर घृणा से न भर जायँ प्रत्युत हमें करुणा हो, और वह नारी हमारी सहानुभूति से सर्वथा वंचित न हो जाय। 'विश्वात्मा' आदि-आदि बातों के समावेश की इतनी ही सार्थकता है। कहानी में यह तो स्पष्ट ही है कि नारी में अपराध-चेतना Guilty Conscience हो जाती है। फिर यह Guilty Conscience ही उसे अपने पति के प्रेम और संरक्षण की छाया के नीचे से हटकर चले जाने को लाचार करती है। लेकिन क्या वह अपना ग्लानि भरा हृदय बाहर की ओर खुलने दे ? यह वह नहीं कर सकती, इसी से पति से झगड़ा मोल लेने को उतावली और तत्पर वह दिखायी देती है। मैं समझता हूँ इन मेरी ऊपर की बातों के प्रकाश में वह कहानी आपको असंयम का समर्थन करती न जान पड़ेगी जैसी कि इस समय आपको लगी है।

ख़ैर आप अपने सम्बन्ध में खुलासा लिखियेगा। अभी तक किसी भी भाँति 'हंस' के बारे में वे पुरानी बातें सोचना नहीं छोड़ सका हूँ। मैं अब भी यही सोचता हूँ कि 'हंस' का सम्पादन आप बिल्कुल मुझ पर छोड़ दें। एक Organ को बड़ी सख़्त ज़रूरत जान पड़ती है। कहानी महीने में कितना खप सकती है, मुश्किल से तीन। तीन कहानियाँ मेरा कुछ भी समय नहीं भरतीं और न तीन कहानियों का Production कोई मन में Purpose की भाँति जम पाता है। उस Purpose को सामने पा लें, उसी के सहारे कोई बड़ी किताब उपन्यास आदि हाथ में ली जा सकती है अन्यथा खाली खाली-सा लगता है। अभी यों भी जितने हिन्दी में पत्र हैं, मन कोई भी नहीं चढ़ता। एक बढ़िया, ठोस, स्टैण्डर्ड पत्र की कमी हिन्दी में खलती ही है।

मैं इधर मध्य मार्च में आपकी ओर ज़रा सैर करने के मंसूबे बनाने में लगा था कि आप ही चल दिए।

वर्धा जायं और गान्धी जी से मिलें तो मेरा प्रणाम हिएगा और कहिएगा कि जैनेन्द्र को आपका पत्र मिला है और वह साहस संग्रह कर लेगा तब उन्हें उत्तर लिखेगा। पत्र दीजिएगा।

आपका, जैनेन्द्र



168 सरस्वती सदन, दादर, बम्बई, 19 मार्च, 1935

वरादरम, तसलीम।

ईद मुबारक। मेरा तस्फ़िया हो गया। मैं पच्चीस तारीख़ को बनारस अपने वतन जा रहा हूँ। आजन्टा कम्पनी अपना कारोबार बन्द कर रही है। मेरा कंट्रेक्ट तो साल भर का था और अभी तीन महीने बाक़ी हैं। लेकिन मैं उनकी ज़ेरबारी में इज़ाफ़ा नहीं करना चाहता। महज़ इसलिए रुका हुआ हूँ कि फ़रवरी और मार्च की रक़म वसूल हो जाये और जाकर फिर अपने लिटरेरी काम में मसरूफ़ हो जाऊँ।

मेरी दो किताबें जामिआ मिल्लिया देहली के एहतमाम से छप रही हैं। एक का नाम 'मैदाने अमल', दूसरी का नाम 'वारदात' है। तीसरी ज़ेरे 'तसनीफ़'[1] है। मेरे लिए वही काम ज़्यादा मौज़ूँ है। सिनेमा में किसी इस्लाह की तवक़्क़ो करना बेकार है। यह सनत[2] भी उसी तरह सरमायादारों के हाथ में है जैसे शराबफ़रोशी। इन्हें इससे बहस नहीं कि

पब्लिक के मज़ाक़ पर क्या असर पड़ता है। इन्हें तो अपने पैसे से मतलब। बरहना रक़्स[3], बोसा-बाज़ी और मर्दों का औरतों पर हमला। यह सब उनकी नज़रों में जायज़ हैं। पब्लिक का मज़ाक़ इतना गिर गया है कि जब तक ये मुख़रिब[4] और हयासोज़[5] नज़ारे न हों, उस तस्वीर में मज़ा नहीं आता। मज़ाक़ की इस्लाह का बीड़ा कौन उठाये ? सिनेमा के ज़रिये मग़रिब की सारी बेहूदगियाँ हमारे अन्दर दाखिल की जा रही हैं, और हम बेबस हैं। पब्लिक में तंज़ीम[6] नहीं न नेक-ओ-बद का इम्तियाज़[7] है। आप अख़बारों में कितनी ही फ़रियाद कीजिए वह बेकार है, और अख़बारवाले भी तो साफ़गोई से काम नहीं लेते। जब ऐक्ट्रेसों और ऐक्टरों की तस्वीरें धड़ाधड़ छपें और उनके कमाल के क़सीदे गाये जायें तो क्यों न हमारे नौजवानों पर इसका असर हो। साइंस एक बरकते एज़दी[8] है मगर नाअहलों[9] के हाथों में पड़कर लानत हो रहा है। मैंने खूब सोच लिया और इस दायरे से निकल जाना ही मुनासिब समझता हूँ।

मुख़लिस, प्रेमचंद।

1. लिखी जा रही, 2. उद्योग, 3. नंगे नाच, 4. घातक, 5. निर्लज्ज, 6. संगठन, 7. पहचान, 8. दैवी वरदान 9. अयोग्य लोगों।



हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग़, पो. गिरगाँव, बम्बई, 19-3-1935

मान्यवर, प्रणामाः !

अब के रविवार को मैं आपकी सेवा में उपस्थित न हो सका, इसीलिए यह पत्र लिख रहा हूँ।

उस दिन आपकी कहानियों का संग्रह छपाने के सम्बन्ध में और सब बातें तो क़रीब-क़रीब तय हो चुकी थीं, परन्तु साझा कैसा रहेगा, यह स्पष्ट नहीं हो सका था। मेरी समझ में वह इस प्रकार होगा–

1. पुस्तक की छपाई, कागज़ आदि में जितनी रक़म लगेगी, उसे दोनों बराबर-बराबर लगावेंगे।

2. पुस्तक की दो हज़ार प्रतियाँ छपेंगी और दोनों पर प्रकाशक के तौर पर आपका (सरस्वती प्रेस का) और हमारा (हि. ग्र. र. का.) नाम एक साथ रहेगा।

3. पुस्तक पर उसकी निश्चित की हुई क़ीमत पर आपकी 20 रु. सैकड़ा रॉयल्टी होगी जो हर छठे महीने बिक्री में से आप ले लिया करेंगे।

4. पुस्तक की बिक्री दोनों के पास से होगी और सम्पूर्ण पुस्तकें, आख़िरी पुस्तक तक, दोनों को साझे में बेचनी होंगी।

5. एक एडीशन समाप्त हो जाने पर दूसरा एडीशन भी इसी तरह इन्हीं शर्तों पर छपाया जा सकेगा।

6. दोनों अपने ग्राहकों या बुकसेलरों को दोनों की सम्मति से निश्चित किए हुए कमीशन से अधिक कमीशन न दे सकेंगे।

उस दिन तो आपने साझे में ही छपाने की बात कही थी, परन्तु उसके पहले जब मैं आपके यहाँ गया था तब आपका अभिप्राय मैंने यह समझा था कि आप अपनी रॉयल्टी

रखकर हमें ही छपाने को देना चाहते हैं। मैं भी यही चाहता हूँ कि आप मुझे ही अपने पूरे खर्च से इसे छपाने दें। हाँ, यह छपाई आपके ही प्रेस में जायेगी। इसमें मेरा एक विशेष उद्देश्य है और वह यह है कि मैं जो सस्ती मनोरंजक ग्रन्थ-माला निकालना चाहता हूँ, यह संग्रह उसका अग्रिम ग्रन्थ बनाया जाय और उस दशा में यह साझेदारी ठीक न बैठेगी—उसमें बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी।

यदि आप केवल मुझे ही छपाने देंगे तो मैं इतना और कर सकता हूँ कि आपकी जो इस पुस्तक पर सम्पूर्ण रॉयल्टी होगी, उसका चतुर्थांश पेशगी ही—काग़ज़ और छपाई के मूल्य के साथ—दे दूँगा। जिससे आपको बिक्री के लिए अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़े।

आशा है आप मेरी इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार कर लेंगे। इससे मेरी सस्ती ग्रन्थमाला की स्कीम सफल होने में बहुत सहायता मिलेगी। आपके इस संग्रह के साथ ही मैंने दो-तीन पुस्तकें छपाने का और भी प्रबन्ध कर लिया है। उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा। क्या आपका ता. 25 को जाना निश्चित हो गया है ?

भवदीय, नाथूराम।



शान्तिनिकेतन, 26 मार्च, 1935

भंजन्मोहमहान्धकार वसींत सद्वृत्तमुच्चैर्भजन्
वैदग्ध्यं प्रथयन् सुसज्जनमनोवारांनिधिं ह्लवदयन्।
ध्वान्तोद्भ्रान्तजनान् दिशन्ननुदिशं ध्वान्तप्रियान् क्षोभयन्
चन्द्रः कोऽपि चकास्त्यवासभिनवः श्री प्रेमचंद्रः सुधीः।।
प्रेमचंद्रश्च चन्द्रश्च न कदापि समावुमौ।
एकः पूर्णकलो नित्यमपरस्तु यदा कदा।।

मान्यवर, उस दिन पं. बनारसीदास जी के साथ गुरुदेव (कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर) से मिलने गया था। बातों ही बातों वर्तमान हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध में चर्चा चली। ऐसे अवसरों पर आपका नाम सबसे पहले आता है। उस दिन भी आपके रचित साहित्य की चर्चा बड़ी देर तक चलती रही। हम लोगों की इच्छा थी कि नव वर्ष के अवसर पर आप जैसे आदरणीय साहित्यिकों को निमंत्रित करें और गुरुदेव से परिचय करावें। गुरुदेव ने हम लोगों के विचार का उत्साह के साथ स्वागत किया। इसलिए हम लोगों ने निश्चित किया कि स्थानीय हिन्दी समाज का वार्षिकोत्सव नव वर्ष (14 अप्रैल, 1935) को मनाया जाय। उस दिन गुरुदेव का प्रवचन होता है। उसके पहले दिन भी, जिस दिन वर्ष समाप्त होता है, उनका व्याख्यान होता है। कुछ और भी समारोह रहता है। गुरुदेव और आश्रम की ओर से निमंत्रण तो यथासमय जायगा ही, इसके पहले ही हम हिन्दी समाज की ओर से आपको निमंत्रित करते हैं। इस बार आप ज़रूर पधारें। हमारे आग्रहपूर्वक निमंत्रण को आप अस्वीकार न करें। आपको गुरुदेव से मिलाकर हम गर्व अनुभव करेंगे।

आपके साहित्य ने हिन्दी को समृद्ध किया है और हिन्दीभाषियों को दुनिया में मुँह दिखाने लायक। इसीलिए आपके यश को हम लोग निर्विचार बाँट लिया करते हैं। जब हम रंगभूमि या कर्मभूमि को दूसरों को दिखाते हैं तो मन ही मन गर्वपूर्वक पूछा करते हैं—है तुम्हारे पास कोई ऐसी चीज़ ! और इस प्रकार का गर्व करते समय हमें प्रेमचंद

नामक किसी अज्ञात अपरिचित व्यक्ति की याद भी नहीं रहती—मानो सब कुछ हमारी ही कृति है ! आज उस व्यक्ति को पत्र लिखते समय, उसकी अनुमति के बिना उसके सम्पूर्ण यश को स्वायत्त कर लेने के अपराध के लिए जो हम क्षमा नहीं माँगते, वह भी गर्व का ही एक दूसरा रूप है।

आत्मीयता का इससे बड़ा प्रमाण हम क्या दे सकते हैं ?

आप हमारा आदर और अभिनन्दन ग्रहण कीजिए।

आपका, हजारी प्रसाद द्विवेदी।

●●

Cawnpore, April 9th, 1935

My dear Brother,

I received a letter from Bombay. I have been so much worried and preoccupied of late that I could not write to you earlier. At times I feel so worried and miserable that I have left no zest for life, but fortunately this mood passes off and I begin plodding as of old.

I hope you have now come-back from Bombay. I saw your impressions regarding the Cinema Trade in some of the Urdu Magazines. I wish you could write a long article on eht whole question for me. I promise to secure its circulation through out the country. I wish you views were widely known.

You had written to me about sending advance proofs of your stories in 'Hans'. I am sorry I have not received any story of yours in this way. I wish you could arrange for it now that you ar at Benares.

It is ages, we have not met. My son, Brij Narain's marriage takes place with Dr. K.S. Nigam's daughter at Lucknow on April 29th and 30th. I wish you could also come and join the function for at least a couple of days. If you come direct to Cownpore on 28th or 29th, it will be all the better. We shall then proceed together to Lucknow. You may bring the elder boy, who will be free by that time from his examination. I do not suppose the yougner boy's examination will be over by the end of April. Formal invitation will reach you in due course. I am writing this ltter to you only by way of previous notice.

Hoping this find you and the family in the best of health and with kind regards,

Yours sincerely, Daya Narain Nigam

●●

सागर, सी. पी., 11 अप्रैल, 1935

भाईजान,

तसलीम। मैंने 4 अप्रैल को बम्बई को ख़ैर-बाद कह दिया और सी. पी. के अज़ला

की सैर करता हुआ 10 को सागर आ गया। यहाँ से निकलकर बनारस चला जाऊँगा और देवी जी को वहाँ पहुँचाकर 17 को इन्दौर साहित्य सम्मेलन के जलसे में शरीक होने के लिए रवाना हो जाऊँगा। मैंने इन्दौर सम्मेलन में पढ़ने और तक़सीम[1] करने के लिए यह मज़मून लिखा है और चाहता था कि अपने ख़यालात उर्दू दुनिया के सामने भी रख दूँ। हिन्दोस्तानी की तहरीक में जब तक उर्दू और हिन्दी दोनों न शरीक हो जायें, काम में रख़्ना[2] पड़ेगा। मैंने अपने कई मुसलिम दोस्तों से इस मुआमले में तबादलए ख़यालात किया है। वह मुझसे मुत्तफ़िक़[3] मालूम हुए। आप भी अपनी राय से मुझे मुत्तिला कीजिएगा। मैं इन्दौर से लौटकर आपके ख़त का इन्तज़ार करूँगा। या मुमकिन हुआ तो कानपुर होता हुआ बनारस जाऊँगा। इस मज़मून को आप जल्द से जल्द शाया कराने की इनायत करें। मुमकिन है इसका कोई साहब जवाब दें और मुझे फिर जवाब दें और मुझे फिर जवाब-उल-जवाब लिखना पड़े। देखिए इन्दौर में मेरी तजवीज़ को लोग मानते हैं या नहीं। हां अगर इस मज़मून की बीस कापियाँ अलहदा निकलवा दें तो दीगर अख़बारात में छपवाऊँ। उम्मीद है आप खुश हैं।

मुख़लिस, धनपत राय।

1. वितरण, 2. विघ्न, 3. सहमत।



Ajit Kumar Bose, C/o S.K.Roy Esq.
Aliganj Bazar, Aliganj, Lucknow, 12.4.35

My dear Babuji,

You must have received one post card which I had posted from Rothin's place. Babuji, you know everthing of our family history. How I am struggling for bread since the expiry of my father along with my poor widow mother and sister. My life's ambition, energy and whatever the high thoughts I had in my life, am loosing one after another. Of course, my marriage is settled totally against my desire and now, it is too late to change idea for the respect of my mother and brother-in-law. I have no confidence on my lottery business, as the reason is behind it is the General manager who had engaged me is retiring with in a short time. There is no vacancy for a permanent post there, as there are already three painters working permanently since a long time and there can no post be created according to budget. At any time my contract system my be broken. Now you can easily understand what will be my situation in near future. I would not have much cared if it would have been a permanent service. Moreover pottery business is sinking day by day for Japan. However whatever difficulties I have placed before you, I know very well that there is no body in this world to whom I shall consult and who will tell me the right way.

This is my best efford in my life which I am going to try and if I don't get a scope and a help in it, count me one of the street beggars. My aim was

in my life, to become a screen actor. I had never left to learn any art which will help me in the film industry side by side with my service life. I can't help to make a handsome face for it is not in any human's hand. However now I have left the idea. Still I hope, if I get a scope to learn the technics of a Cameraman, I can stand at my heels in no time, as well as I can learn to produce the cartoon pictures as Prabhat and New Theatres have produced. In any way, if you can help me to keep in Ajanta's or any where you have got influence as an unpaid apprentice, I am ready to learn. I shall manage to stand my expenses for six months after that I shall make out some other sources. My elder and younger brother both are earning something by which they can manage to maintain the family for sometime. If I leave this opportunity none I can get in future. If you request rather press Mr. Bhavanani, hope he will pity to help a young ambitious man. I must think that you are temping for your eldest son.

Nothing more I can write. Your reply will decide my rise or fall.

My pranam to you.

Yours, Ajit.



आर्यसमाज मन्दिर, ग्वाल मण्डी, लाहौर, 21-4-1935

मुकर्रमी जनाब मुंशी साहब, आदाब व नियाज़।

नवाज़िशनामा मिला था, मगर जवाब लिखने में ताख़ीर (देर) हुई, माफ़ फ़रमायेंगे। ख़्याल था कि सोमप्रकाश से मिलकर कुछ फैसला कर लूँ, तब जवाब लिखूँ, मगर ये हज़रत अभी तक लाहौर वापस नहीं आये। अब मालूम हुआ कि 15 अप्रैल के बाद आयेंगे। पहले नौचन्दी गये, अब गुरुकुल कांगड़ी। कांगड़ी के जल्से में विराज़मान हैं। दूसरे-चौथे उनकी दुकान पर हो आता हूँ। कम्पनी के साथ मुकदमेबाज़ी की ख़बर पढ़कर अफ़सोस हुआ। दीवानी दावे ज़रा लम्बे होते हैं। अगर आपको ज़्यादा अर्से भी ठहरना पड़े तो क्या करेंगे, मुफ़्त की ज़ेरबारी। निर्मल पहले से अच्छा है, लेकिन तबीयत अभी बिल्कुल साफ़ नहीं हुई। मैंने मकान तब्दील कर लिया है, पता नोट कर लीजियेगा। हाँ, खूब याद आया, मिस्टर ज़ेबा (श्रीमान्) एडीटर 'सितारा' कल और परसों तशरीफ़ लाये थे, कायस्थ हैं, और निहायत समझदार नौजवान। उनकी जबरदस्त ख़्वाहिश है कि आपका नाम बतौर Advisory Editor 'सितारा' पर दें। आपको कोई एतराज़ तो ना होगा ? 'सितारा' देखकर आप अन्दाज़ा लगा सकेंगे कि मज़ामीन कैसे हैं। दादा की कहानी जनाब बहुत अच्छा लिखते हैं। जिस क़दर मज़ामीन पढ़े, तक़रीबन सबको ठोस और बुलन्द पाया। आपको करना-धरना कुछ नहीं होगा, अलबत्ता वो आपके नाम का फ़ायदा उठा सकेंगे। बम्बई तो आजकल काफ़ी गर्म होगा। यहाँ अब मौसम ने पलटा खाया है। देवीजी और बच्चे आपको और माताजी को प्रणाम कहते हैं।

आपका ख़ादिम, केदारनाथ।

'ज़माना', कानपुर, 25 अप्रैल, 1935

भाई साहब, तसलीम !

अब तो आप इन्दौर से आ गये होंगे। नवेद (न्यौता) मिला होगा। मुकर्रर जवाब भेज रहा हूँ कि वह गुम न हो गया हो, बहरहाल इस मौक़ा पर मौजूदगी ज़रूरी है। इस बहाना से मुलाक़ात हो जावेगी। बच्चों को भी साथ लेते आयें। ऐसा न हो कि आप न आयें।

दयानारायण निगम

●●

रिसाला 'साक़ी', दारुल इशाअत
खारी बावली, दिल्ली, 25-4-1935

मुकर्रमी व मोहतरमी,

तसलीम ! 'साक़ी' का अफ़साना-नम्बर अनक़रीब शाया होने वाला है। आपसे इस्तदुआ (प्रार्थना) है कि इसके लिए एक अफ़साना लिख दीजिए। उर्दू रिसाइल की माली हालत का आपको अन्दाज़ा है ही। आपके अफ़साने का मुआवज़ा तो नहीं, अलबत्ता बतौर नज़राना 'साक़ी' कुछ गुज़रान (पेश) कर सकेगा।

बराये-मेहरबानी जवाब से मुत्तला फ़रमाइए।

ख़ाकसार, शाहिद (सम्पादक)

●●

सरस्वती प्रेम, बनारस, 27 अप्रैल 1935

प्रिय इन्द्र,

तुम्हारा ख़त पाकर बहुत खुशी हुई। तुम्हारी किताब पूरी हो गयी है। मैं आज उसकी प्रशंसात्मक भूमिका लिख रहा हूँ। अगर तुम भी कोई आमुख देना चाहो तो जल्द से जल्द भेज दो। किताब दो सौ सत्ताईस पन्ने की हुई है। तुम्हारा मनीआर्डर मुझे बम्बई में मिल गया था, मगर चिट्ठियाँ नहीं मिलीं और मैं तुम्हें जवाब नहीं दे सका क्योंकि मुझे तुम्हारा पता मालूम नहीं था। हम लोग 3 अप्रैल को वहाँ से चले और इधर-उधर घूमते-घामते 24 तारीख को यहाँ पहुँचे। मैं परीक्षा में तुम्हारी सफलता के लिए प्रार्थना करता हूँ। अगर तुम प्रस्तावना हफ्ते भर के अन्दर भेज दो तो किताब पन्द्रह दिन में तुम्हारे पास पहुँच जायगी। तुम्हारी खैरियत हमेशा हमारे दिलों में रहेगी। मैं तुम्हें अपने ही बच्चों में से एक समझता हूँ। अगर मैं किसी तरह तुम्हारी मदद कर सकूँ तो बड़ी खुशी से करूँगा। तुम्हारी माता जी तुम्हें आशीर्वाद देती हैं। सस्नेह

तुम्हारा, प्रेमचंद।

हंस के मार्च अंक में तुम्हारा लेख है।

●●

हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
(प्रकाशक और विक्रेता) हीराबाग, पो. गिरगाँव,
बम्बई, 28-4-1935

मान्यवर,

आपका पत्र ता. 24 को मिला। पहले पिताजी का इरादा लाहौर, इलाहाबाद आदि

होते हुए इन्दौर जाने का था, परन्तु पीछे से परिस्थितियों के वश उन्हें यह इरादा बदलना पड़ा और वे पहले इन्दौर होकर फिर लाहौर गये हैं। उनके साथ मैं भी इन्दौर तक गया था।

इन्दौर में लोग आपकी बहुत राह देखते रहे, पर आप नहीं आये।

यदि समय बचेगा तो पिताजी का बनारस जाने का भी इरादा है। यदि वहाँ जायेंगे तो वे अवश्य आपसे मिलेंगे। पिताजी 7 मई तक बम्बई अवश्य लौटकर आ जायेंगे। जब आपको यह पत्र पहुँचेगा उस समय वे दिल्ली में होंगे।
उनका पता–C/o जैनेन्द्र कुमार, दरियागंज, दिल्ली है।

आपका आज्ञाकारी, हेमचन्द।

●●

तिथि व स्थान अंकित नहीं, सम्भवतः अप्रैल, 1935

बन्धुवर,

मकान वाले मामले में–मुझे याद नहीं कि हमने उससे कोई किरायानामा लिखा है। वकील से सारी परिस्थिति बताइए–राय साहब को छपाई के रूप में किराया दिया जाता था। इस मालिक ने आकर यक़बारगी किराया बढ़ा दिया और चूँकि हमें कोई दूसरा घर न मिला इसलिए हम ख़ाली न कर सके। यह भी बताइए कि आपने एक बार एक चैक भेजा था, उस पर उसने उसे नहीं लिया और यह कहा कि हम सब यकबारकी लेंगे। अदालत में भी यही कहना होगा। अगर मिलकर उससे मामला तय कर लीजिए तो अच्छा हो। प्रोनोट लिख दीजिए।

पाँच-छह महीने में शायद हमारी दशा सुधर जाय।

धनपत राय

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 4 मई, 1935

भाईजान,

तसलीम। मुझे इस तक़रीबे सईद (शुभ उत्सव) में शरीक न होने का और लुत्फ़े सोहबत खो देने का अफ़सोस है। मगर यहाँ बड़े लड़के धुन्नू को चेचक निकल आयी है और 27 से हम सब यहाँ इलाहाबाद में हैं। कल ग़ालिबन् उसे यहाँ से बनारस ले जायें, अगर जाने क़ाबिल हो सका। हालांकि चेचक हल्की क़िस्म की थी, मगर अभी तक दाने बिल्कुल मुन्दमिल (मरे नहीं) नहीं हुए हैं और अगर डाक्टर की राय न हुई तो दो तीन दिन यहां और रहना पड़ेगा। मैंने फ़ैसला कर लिया है कि जुलाई से इलाहाबाद में ही रहूँ और यहीं प्रेस और कारोबार उठा लाऊँ। देखिए क्या होता है।

मुबारकबाद के साथ रुख़सत,

मुख़लिस, धनपत राय।

●●

प्रयाग, 4 मई 1935

प्रिय जैनेन्द्र,

मैं तो इंदौर जाते-जाते रह गया। सबसे वायदे कर लिये थे, एक भी पूरा न कर

सका'। इस उम्मीद से कि तुमसे इंदौर में गपशप होगी, तुम्हें ख़त भी नहीं लिखा। जब पूरा भोजन मिलने की आशा हो तो पानी पी-पीकर क्यों भूख को दुर्बल बनाया जाय। लेकिन कुछ तो प्रेमी जी के न आने और कुछ नातेदारियों में जाकर मिलने-मिलाने के कारण सारा प्रोग्राम भ्रष्ट हो गया। अब धुन्नू को चेचक निकल आयी हैं, और 27 से वह पड़े हुए हैं। हम भी उसके साथ हैं यात्रा करने के लायक हो जाय तो सात को यहाँ से उसे ले कर चले जायँ। चेचक हल्की है। यही कुशल है। दाने मुरझा गए हैं। मगर अभी सफ़र करने में गर्मी लगने से मुमकिन है उनके अच्छे होने में ज़्यादा समय लग जाय।

परसों श्री कन्हैयालाल मुंशी के पत्र से मालूम हुआ कि सम्मेलन ने राष्ट्र साहित्य-बोर्ड-निर्माण के संबंध में एक प्रस्ताव पास किया है। यह तो मुश्किल न था, मगर उस प्रस्ताव को कार्य रूप देने का भार किस पर सौंपा गया ? मुंशी साहब से तुम्हारी क्या वातचीत हुई और कार्यक्रम का क्या ढंग रहेगा ? 'हंस' तो इस काम के लिए यहाँ तक तैयार है कि अन्य प्रान्तीय लेखकों से पत्र-व्यवहार करके उनसे हिन्दी में लेख और कहानियाँ लिखवा कर छापे, मगर क्या इतना ही उस संस्था को सजीव बनाने के लिए काफ़ी होगा ? (विस्तार से) लिखना। मैंने 'भारत' में तुम्हारे भाषण की रिपोर्ट पढ़ी, बहुत अच्छी है।

मैंने इरादा किया है कि जून से हंस को और प्रेस को प्रयाग लाऊँ और खुद भी यहीं रहूँ। काशी में न तो काम है और न साहित्य वालों का सहयोग। यहाँ जितने हैं, वह सभी सम्राट हैं कोई कवि-सम्राट, कोई आलोचना-सम्राट, कोई प्रहसन-सम्राट। यह गौरव तो काशी ही को है कि वहाँ सभी सम्राट मौजूद हैं, मगर सम्राटों की सम्राटों से पटेगी ? शिष्टाचार की बात और है, हार्दिक सहयोग की बात और। मुझे डर लग रहा है कि कहीं तुम भी साल छः महीने में सम्राट हो जाओ तो मेरा काम ही तमाम हो जाय ! फिर तुमसे कोई लेख माँगने का साहस भी न कर सकूँ। इसलिए अब प्रयाग आ रहा हूँ जहाँ सम्राट कम हैं।

अगर कोई कहानी भेज सको तो बहुत अच्छा, मगर उस आखिरी कहानी की तरह पूरा उपन्यास नहीं।

और क्या लिखूँ। प्रेमी जी तो नहीं आए थे। हाँ, सम्मेलन पर अपने Impressions लिख दो तो 'हंस' में निकाल दूँ। तुम्हारी क्या सलाह है, 'हंस' की बिलकुल कहानी पत्र बना दूँ, और आधी अनुवादित और आधी मौलिक कहानियाँ दिया करूँ ?

माता जी को मेरा प्रणाम कहना और भगवती को आशीर्वाद।

तुम्हारा, धनपत राय।



5 मई, 1935

बाबू जी,

पत्र मिला। मैंने तो समझा था कि आपने चिट्ठी लिखी है इससे तुरन्त ही कहानी की ज़रूरत होगी सो भेज दी थी। डर है वह अगले महीने तक पुरानी न हो जाय क्योंकि बम्बई से छपने वाले संग्रह में भी उसे भेजना है।

'हंस' कहानियों का ही हो इसमें क्या बुरा है बल्कि एक Specialization की दिशा ही बनेगी लेकिन इतनी अच्छी कहानियाँ मिलेंगी ? और तब जब कि 'हंस' की हालत पैसा देने की नहीं है ? न 'हंस' स्टाफ ही अच्छा रख सकता है। मेरा तो ख़याल है कि मुंशी की स्कीम कुछ बने तो 'हंस' छोड़कर आप छूटिये। छूटना मात्र झंझट से होगा। क्योंकि तब भी पत्र तो सम्पादन के लिहाज़ से आपका ही होगा। मुझसे पूछें तो मेरे मन में यह भी है कि कहूँ कि 'हंस' का सम्पादन मुझे दे दें।

इलाहाबाद जा ही रहे हैं, तो जाकर देखिये। मुझे तो वहाँ का ज़्यादा भरोसा नहीं होता। भारतीय जी को मैं नहीं जानता। अच्छा ही है कि उनसे आपको सहायता मिले। बम्बई से पाये पैसे में से इतना भी बचा कि एक तजुर्बा किया जाय तो क्या बुरा है। वहाँ कहाँ जमने का ठीक किया है।

इस चेचक से मुझे बड़ा डर लगता है। अब बन्नू की क्या हालत है जरूर लिखियेगा। क्या Acute case है ? यों तो सात-आठ रोज में दाने मुरझा आते और झड़ने लगते है, क्या वहाँ Epidetemic हो पड़ा था क्या चेचक का ?

यहाँ यों सब ठीक-ठाक हैं। इधर आप मुद्दत से नहीं आये। कभी दो रोज़ की छुट्टी निकाल सकेंगे कि यहाँ आयें ? गर्मी खूब पड़ने लगी है। पहाड़ याद आता है लेकिन जाना कहाँ होता है। अम्मां जी को मेरा प्रणाम।

आपका, जैनेन्द्र।



अलीगढ़, 11 मई, 1935

बरादरम प्रेमचंद साहब,

आपका 26 तारीख़ का कार्ड मिला। अच्छा किया आपने बंबई को खैरबाद (अंतिम नमस्कार) किया। मेरा तो ख़याल है आप ताजिरों (व्यापारियों) से निभा न सके। मुझे इसकी खुशी हुई क्योंकि यह सबूत है इस बात का कि अभी आप में अदब और फ़न का एहतरामं बाक़ी है। मैंने यहाँ 'ज़माना' की तालश की लेकिन वो पर्चा न मिला जिसमें आपका मज़मून है। ऐसे बाज़ और साथी भी हैं जिनसे मैंने आपके ख़त का तज़करा किया। वो लोग भी मज़मून देखने के आरज़ूमंद हैं। मुझे निगम साहब को लिखना है। वो भेजें तो फिर कार्रवाई शुरू हो। स्पेशल नम्बर में इंशा अल्लाह इस पर तफ़सीली तौर पर बहस होगी। आप मुतइन रहिए, हम सबसे आपको जो तबक़्क़ो है वो पूरी की जायगी। खुदा न करे वो दिन भी आये जब हिन्दू मुसलमान नौकरी और नशिस्तों के अलावा शेर-ओ-अदब (साहित्य) को भी म्यूनिसपिल्टी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड क़रार दे देंगे।

आपका, रशीद।



सं. 2921 एच

सरस्वती प्रेस, काशी, ता. 12-5-1935

प्रिय वीरेन्द्र, आशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र, कविता और कहानी मिली। मैंने तुम्हारा लेख इसलिए नहीं दिया था कि मैंने तुम्हारे ऊपर कोई कृपा की थी। मैं इस विषय में कठोर हूँ। मैं तो तुम्हारी

कहानियों में छलकता पुरुषार्थ, उबलता हुआ. आशावाद देखना चाहता हूँ। 'कवि-हृदय' एक कवि का बड़ा मार्मिक चित्रण था। यहाँ तो लोगों ने यह मशहूर कर दिया कि वह शान्तिप्रिय जी द्विवेदी पर लिखा गया है। मैं कितना ही कहता हूँ ऐसा नहीं है, क्योंकि इसका लेखक शान्तिप्रिय को जानता भी नहीं। मगर लोग मुझसे कहते हैं, आपको नहीं मालूम, इसका निशाना उन्हीं पर है। बस, ऐसी ही कोई चीज़ लिखो जिसमें केवल भावुकता और कल्पना न हो, बल्कि तथ्य भी हो जिसे पढ़कर जीवन में बल उत्पन्न हो। यह कहानी केवल एक युवक हृदय की लहर है। कोई नयी बात नहीं। कोई सुन्दर कहानी लिखो। आजकल तो छुट्टियाँ होंगी, समय भी है। ग़लत मस्ती के चक्कर मे न पड़ो। सच्ची मस्ती जीवन को कर्मशील और आत्मा को बलवान बनाती है। मैं प्रतीक्षा करूँगा।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।



Sacred Heart College,
Shembaganur, Madura, Dt. 13.5.1935

To,
Mr. Premchand, Editor of 'Hans'
From
J.C. Thokoth, S.J., S.H. College, Shembaganur,
My dear Premchand,

Wtih delight I read the review of some of your works by Rw. Fr. P. Dent in the very first issue of the 'New Review', Even after I was keen on reading the works of Mr. P. Chand, the beloved of the readers of Hindi (sorry to say that till now I could not get a single work of yours). Fortunately as a result of my enquiry I found a recent book with a criticism about Mr. P. Chand. But to speak the truth I was a bit disappointed. For though I could find appreciations like 'वर्णन की अपूर्व शक्ति प्रेमचंद जी को मिली है। इस कार्य में वे संसार के बड़े-बड़े उपन्यासकारों के समकक्ष हैं' still I could not taste a little of your sweet style even from the pen of a Hindi criticism like श्यामसुन्दरदास.

Then again when I was reading the article 'A National Language for India', in the April issue of the'New Review' my eyes were attracted by a long footnote referring to 'hans' and its verdict on the above mentioned subject 'राष्ट्रभाषा'. But I could not get a single issue of your 'Hans.' and thus came into contact with your views and style. Perhaps you know that we in the south, who wish to become हिन्दी प्रेमी सज्जन महाशय by coming into close relationship with आधुनिक हिन्दी साहित्य और सुविज्ञ लेखक, have not much facility for the same. So if you can freely help us with your 'Hans' then we may know more of modern Hindi Literature and tendency more. My compan-

ions and I in particular shall be greateful to you.

Lastly wishing you a brilliant future in your literary persuits.

I remain,

Yours sincerely, J.C. Thokoth, S.J.

●●

रामप्रसाद, बुकसेलर एण्ड पब्लिशर,
लाहोरी गेट, लाहौर, 13-5-1935

श्रीमान जी, नमस्ते !

निवेदन है कि बहुत देर से दिल में ख़्वाहिश थी कि आपसे लिखवाकर कोई किताब शाया की जाय। मगर आपको ख़त लिखने का पूरा पता मालूम न हो सका। अब एक मेहरबान से आपका एड्रेस दरियाफ़्त करके ख़त लिख रहा हूँ। जब आपकी सेवा में ख़त पहुँच जाय, जवाब में मशगूर फ़र्मा दें, ताकि मुझे तसल्ली तो हो कि ख़त आपको मिल गया।

आजकल मार्केट में बहुत-सी किताबें मसलन 'हिदायतनामाए-खाबिन्द', 'कामशास्त्र', 'प्रेमशास्त्र, 'बीवी', 'सुहागरात' या इसी क़िस्म की दीगर किताबें निकली हैं। बहुत अच्छी फ़रोख़्त होती है, हालाँकि मज़मून के लिहाज़ से कोई भी मुकम्मिल नहीं। अब विचार है कि अगर आप इसी मज़मून पर हमें कम-से-कम 300 या 400 सफ़े की एक किताब लिख दें, तो बहुत मेहरबानी होगी। कम-से-कम जितनी उजरत आप चाहें लें, मगर किताब हर लिहाज़ से मुकम्मिल लिख दें और जिस क़दर रुपया आप पेशगी लिखें, आपको बज़रिया मनीऑर्डर रवाना कर दिया जायेगा। किताब उर्दू, हिन्दी, गुरुमुखी—तीनों ज़बानों में शाया की जायेगी। काग़ज़, लिखाई, छपाई बहुत ही बढ़िया होगी। उम्मीद है, आप ज़रूर ही इस मज़मून पर क़लम उठायेंगे। अगर कोई नॉविल या कहानियों की किताब तैयार हो तो वह भी लिखें। उम्मीद है, आप जवाब जल्द देकर मशगूर फ़रमावेंगे।

आपका शुभचिन्तक, रामप्रसाद।

●●

सरस्वती प्रेस, 14 मई, 1935

प्रिय जैनेन्द्र,

तुम्हारी कहानी, छपा हुआ भाषण और सम्मेलन पर प्रश्नोत्तर सब मिले। धन्यवाद। पत्र तैयार हो गया है। अगले महीने काम आएँगे।

बम्बई से क्या लाया ? कुल 6300 रुपये मिले। इसमें 1500 रुपये लड़कों ने लिये, 400 रुपये लड़की ने, 500 रुपये प्रेस ने। दस महीने में बम्बई का खर्च बड़ी किफ़ायत से भी 2500 रुपये से कम न हो सका। वहाँ से कुल 1400 रुपये लेकर अपना-सा मुँह लिये चले आये। अब ये यहाँ से प्रेस के उठाने में खर्च हो जायेंगे। प्रयाग में शायद यहाँ से अच्छी तरह काम चले। लेखक संघ के दो-एक सज्जन कुछ मदद करेंगे। एकेडमी से कुछ काम मिल जायगा और बाहर का कुछ काम मिलने की उम्मीद है। अगर वह विचार पूरा हो गया तो वह बला सर से टल गयी। इसके सिवा मुझे तो कोई दूसरा उपाय नहीं सूझता। अगर दो एक साझेदार मिल जायँ जो दस-पाँच हज़ार रुपये लगायें और काम

अपने हाथ में ले लें, मुझसे केवल ऊपरी सलाह का काम लेते रहें, तो और भी अच्छा। नहीं लिमिटेड ही सही। इन सभी बातों के लिए प्रयाग अच्छा क्षेत्र है। बनारस तो केवल X X X जानता है। अगर ऐसी कोई सूरत निकल आये तो मेरी हार्दिक इच्छा है कि हम लोग साथ रहते। अभी तो यह हाल है कि आज प्रेस पर मकान के किराये की नालिश हुई है। 3000 रुपये बाकी हैं। जिस कार्यालय में मज़दूरों की मज़दूरी और मकान का क़िराया भी न निकल सके, उसकी हालत का अनुमान कर सकते हो। किसे दोष दूँ ? प्रवासीलाल जी से जो हो सकता है करते हैं। इससे ज़्यादा एक आदमी और क्या कर सकता है ? अगर वह ज़्यादा दौड़-धूप कर सकते तो शायद दशा इतनी ख़राब न होती। लेकिन जो काम उनसे नहीं हो सकता तो शायद उन्हें उसके लिए मज़बूर भी तो नहीं किया जा सकता।

मैंने मि. के. एम. मुंशी को पत्र लिखा है। देखो। क्या ज़वाब देते हैं।

इधर धुन्नू को चेचक निकली थी। उन्हें प्रयाग से यहाँ लाये। यहाँ बन्नू को भी निकल आई, और छः दिन से यह पड़ा हुआ है। मैं तो शहर गया भी नहीं। घर बैठा-बैठा केवल चिट्ठी-पत्र लिख लेना हूँ।

प्रयाग से मुझे कुछ सभाओं की राय है कि हंस केवल कहानियों का पत्र बना दिया जाय। तुम्हारी क्या राय है ? इस विषय में शायद हमारी बातचीत हो चुकी है। लेकिन याद नहीं आता कि तुमने क्या राय दी थी।

शेष कुशल है।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

हिन्दी-प्रचार सभा, नप्पू हाल,
माटुंगा, बम्बई, 15.5.1935

मान्य प्रेमचंद जी,

वहाँ पहुँचने पर आपने एक भी चिट्ठी नहीं लिखी।

सम्मेलन में भी आप नहीं आये। K.M. मुंशी जी आये थे। जिस रूप में अब साहित्य परिषद् का प्रस्ताव पास हुआ है, उसके बारे में आपकी क्या राय है ? मुंशी जी आजकल पँचगनी रहते हैं। उनसे भी पत्र-व्यवहार कीजिए।

हमारे लिए 'हंस' की एक प्रति भेजने की कृपा करें। देवी जी को मेरा प्रणाम !

आपका, शशांक।

●●

266/2 36, Chakrabaera Road (South)
Bhawanipur, Calcutta, 16 May 1935

भाई जान,

नमस्ते। कुछ दिन हुए मैंने सुना था कि आप बंबई छोड़कर बनारस चले आये हैं। परमात्मा करे, यह ग़लत हो। बिला शुबहा, हमारे निगारख़ानों (फिल्म कंपनियों) की फ़िज़ा इस क़ाबिल नहीं कि वहाँ कोई खुद्दार और क़ाबिल आदमी ज़्यादा देर रह

सके। लेकिन मैंने भवनानी साहब की निस्बत ज़्यादा तारीफ़ सुनी थी। इसलिए यक़ीन नहीं आता कि आपको उन लोगों ने छोड़ दिया हो। इधर लिटरेचर का भी बुरा हाल है।

मैं आजकल न्यू थिएटर्स में हूँ। इसका मालिक बेहद शरीफ़ वाक़िअ हुआ है। काम भी कम है। पैसा भी मिलता है। लेकिन जो मज़ा घर में बैठकर अफ़साने लिखने में था, वह यहाँ नहीं। पर वहाँ पैसा नहीं है। क्या करें। अख़राजात (खर्चे) किसी बीमार बुड्ढे की कमज़ोरी की तरह बढ़ते चले जाते हैं। मज़बूरन।

मिसेज़ प्रेमचंद को नमस्ते। मिसेज़ सुदर्शन बीमार हो गयी थीं। पहाड़ पर भेज दिया है। हम कलकत्ते की गर्मी में झुलस रहे हैं।

सुदर्शन।



हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
(प्रकाशक और विक्रेता)
हीराबाग़, पो. गिरगाँव, बम्बई, 16-5-1935

मान्यवर मुंशीजी,

लाहौर से लौटते ही ता. 4 को मैंने आपकी सेवा में एक पत्र भेजा था। उसके उत्तर की प्रतीक्षा अभी तक की, परन्तु अब धैर्य छूट गया और यह पत्र लिख रहा हूँ। मालूम नहीं, ऐसा क्या कारण हुआ जो उत्तर नहीं दिया। यह भी चिन्ता हुई कि कहीं आप मेरे पत्र-व्यवहार से असन्तुष्ट तो नहीं हो गये हैं। काग़ज़ के बारे में मैंने तलाश किया तो मालूम हुआ कि यहाँ से भेजने में 7-8 पाई प्रति पौंड ख़र्च पर जायँगा और इसीलिए यहाँ से भेजने में कोई लाभ नहीं। मैं समझता हूँ कि बनारस के काग़ज़ के व्यापारी अच्छा ग्लेज़ काग़ज़ भी रखते होंगे या ऑर्डर देने पर कलकत्ता से मँगा देते होंगे और वह वहाँ भी यहीं के भाव मिल जाता होगा। मैं सिर्फ़ यह चाहता हूँ कि काग़ज़ कुछ अच्छा लगे। नहीं तो फिर वही लगाइए जो 'कायाकल्प' में बिल्कुल सफ़ेद लगाया गया है। अब मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा न करके इस पत्र के साथ पाँच सौ रुपयों का चेक भेज रहा हूँ। आशा है कि रुपया मिलते ही आप 'मानसरोवर' का काम शुरू करा देंगे। टाइप तो आप नया लगावेंगे ही।

श्री जैनेन्द्र कुमार जी के पत्र से मालूम हुआ कि शायद आप इलाहाबाद गये हैं। क्यों गये हैं और वहाँ कब तक रहेंगे, यह कुछ मालूम नहीं हुआ।

आपने उर्दू के 5-6 हास्य-रस के लेखकों की एक-एक कहानी चुन देने के लिए कहा था। जब आपको अवकाश मिले, यह काम कर दीजिए। मैं बाबू रामचन्द्र वर्मा से अनुवाद करा लूँगा। इस समय उन्हें फुर्सत है। उनके लेखकों से आज्ञा भी आपको ही दिलानी होगी।

आपके पत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

भवदीय, नाथूराम।



K.M. Munshi 'Girivilas', Panchgani, 16th May, 1935

Me dear Premchand ji,

Please excuse my writing in English. It enables me to express myself better.

I am in due receipt of your letter. The Hindi Sammelan has appointed Girdhar Sharma, Harihar Sharma and myself as the conveners to organise the Inter-provincial Sahitya Parishad. I cannot do this work unless I have your whole hearted co-operation. I would, therefore, request you to editorially write about this in the coming issue of the 'Hans'.

My idea about 'Hans' is that we should start propaganda in its columns. I am also arranging with literary men in different provinces to give us every month a survey of the literary activities in their provinces and some excellent literary articles in their vernaculars. This would be published in the 'Hans' every month. This arrangement will take sometime. I will only be able to do it in the middle of June when I go to Bombay. If in the meantime you come to Bombay please make it a point to come over to Panchgani and spend a few days with us. I have also written to Gandhiji that you are willing to help us with you 'Hans'.

The Sammelan has given us authority to co-opt. men from other provinces and I am in correspondence with weveral leading literary men in different provinces, whether they would co-operate with us in this object. I uderstand that you know Benarsidas Chaturvedi of Calcutta very well. Will you please let him know about this scheme and invite his co-operation. I will address a formal letter to different editors when I go to Bombay and I trust you will see that it is published in 'Hans' and other papers within the sphere of your influence.

With kind regards,

Yours Sincerely, K.M.Munshi



हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

हीराबाग़, पो. गिरगाँव, बम्बई, 17-5-1935

मान्यवर मुंशी जी, प्रणामः !

आपका ता. 12 का कृपा-पत्र आज मिला। शायद दो-तीन दिन लिखा हुआ पड़ा रहा। कभी आपको एक पत्र लिख चुका हूँ और उसके साथ 500 रु. का चैक भी भेज चुका हूँ। यदि उस नाम से चेक का रुपया न मिले तो उसे लौटा दीजिए, मैं तत्काल ही दूसरा चेक श्री धनपत राय जी के नाम भेज दूँगा, परन्तु मैं समझता हूँ उस नाम से भी आपको मिल जाना चाहिए, जबकि आप स्वयं मौजूद हैं।

'कर्मभूमि' वाला काग़ज़ सफ़ेद नहीं है। उससे अच्छा तो 'कायाकल्प' के एक अंश का काग़ज़ सफ़ेद है। 'कर्मभूमि' की अपेक्षा मुझे वह अधिक पसन्द है, फिर आपकी मर्ज़ी,

जो ठीक समझें वह लगा लें। अब अधिक विलम्ब न होना चाहिए।

जैनेन्द्र जी की कहानियों का छपाना मैंने यहीं शुरू कर दिया है। उनका जल्दी छापने का तक़ाज़ा था। अब मैं उसे सस्ती ग्रन्थमाला में न निकालूँगा और थोड़ी संख्या में छपाऊँगा।

एक और उपन्यास ड्यूमा का मेरे पास पड़ा है। उसे आपके यहाँ छपाऊँगा। उसकी भाषा ठीक करनी है। इस समय हाथ में कई काम पड़े हैं, इसलिए उसके ठीक करने में दो महीने लग जायेंगे। तब एक 'मानसरोवर' से आपको भी अवकाश मिल जायगा।

जैनेन्द्र जी का आज एक पत्र और आया है। उन्होंने लिखा है कि आप बनारस छोड़कर इलाहाबाद रहना चाहते हैं। क्या यह ठीक है ? कब तक वहाँ चलने का विचार है ?

मेरे कल के पत्र का उत्तर भी दीजिए। यहाँ सब कुशल-सा है। चि. हेमचन्द्र प्रणाम कहता है।

अपनी सहधर्मिणी जी से मेरा प्रणाम निवेदन कर दें।

यदि दूसरा चेक भेजना आवश्यक हो तो किस नाम से हो ? श्री धनपत राय जी बी. ए. इतना ही हो ?

भवदीय, नाथूराम।



The Leader and the Bharat
Proprietors : Newspapers Litd., Leaer Buildings,
3-4, Leader Road, Allahabad, May 17, 1935

My dear Premchand ji,

I acknowledge receipt of your note of may 13,1935. Mr. Bhuvaneshwar Prasad gave you a substantially correct gist ofmy conversation with him only,either he did not correctly follow my meaning or he was unable to explain to you correctly the 'scope' of my suggestion. So far as the publications are concerned, I am at all times willing to take them over on the same terms as in the case of the Bharti Bhander, viz.,

1. All the stock be placed in our charge.
2. We will render account of sales every six months.
3. We will be paid a commission of 35 percent which will include commission to be given by us to Book-sellers as well as cost of advertising which will include issue of catalogues.
4. If necessary, we will be prepared to advance a sum to be determined by mutual negotiation free of interest upon the stock of books placed with us in order to enable you to discharge you existing liabilities, assuming there are any.

Theses terms are the same as those which are in operation in case of the

Bharti Bhander as well.

As regards our mode of dealing and punctuality of payment, you can refer to the experience of the Bharti Bhander. Then there is the magazine, I perosnally view it as a promising proposition. I cannot, however, tell what view my Board will take of this matter, but in any case it is highly improbable that the Board will in any even agree to take over the press on any terms. We already have a fairly big plant for job printing work for it. This plant was rendered idle by the installation of rotary printing machinery and is now dependent only upon job printing work, the newspaper printing being done on the rotary press.

In all that I have said above, I am speaking only for myself and not for my Board.

I will be in Benares on Sunday and Monday. Rai Krishna Dass men know my house, but if you yourself want me to meet you, you may kindly fix up an engagement with Dr. Jagannath Prasad, M.B.B.S., who has his dispensary in Chowk in the neighbourhood of the Benares Bank Limited, in the same premises of which the ground floor is occupied by messers. Jagannath Dass Balbhadra Dass,

With kind regards, I am,

Premchand Esq. Yours sincerely,

Sarswati Press, Benares City. ....



सरस्वती प्रेस, बनारस, 18 मई, 1935

प्रिय इन्द्र,

तुम्हारा पत्र। पचास प्रतियाँ रेलवे पार्सल से तुमको भेजी जा रही हैं। एक प्रति बड़ौदा के पते पर रवाना की गयी है। इन दिनों मैं अपने गाँव में हूँ। चेचक का दौरा मेरे घर में हुआ है। पहले बड़ा लड़का गिरफ़्तार हुआ, उसके बाद छोटा। वह अब भी बिस्तर में है।

'घर की राह' मेरी भूमिका के साथ छपी थी। तुम्हारी प्रस्तावना देर में पहुँची और नहीं दी जा सकी, लेकिन तुम्हारा समर्पण मुझको अच्छा नहीं लगा। तुम्हारी किताब मेरे बच्चों ने, पत्नी ने, मित्रों ने पसन्द की है। जिसने भी पढ़ी, तारीफ़ की। समालोचना के लिए उसे पत्रों के पास भेज रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि समालोचनाएँ उत्साहवर्द्धक होंगी। कुल दो हज़ार प्रतियाँ छपी हैं। बिकी हुई प्रतियों पर हर बार तुमको पन्द्रह फ़ी सदी रायल्टी मिलेगी।

मैं अपना प्रेस और कार्यालय इलाहाबाद ले जा रहा हूँ और इसमें भारी खर्च लगेगा। वर्ना मैं तुमको पेशगी कुछ भेजता। तुम्हें पूरी संज़ीदगी के साथ अपनी कोशिश जारी रखनी चाहिए। अगर तुम इस तरह की सिर्फ़ तीन किताबें लिख लो तो अपनी जीविका भर के लिए काफी कमा लोगे। तुम्हारे भीतर वह चीज़ है मेरा मतलब बौद्धिक सामग्री से है।

संकल्प की तुममें कमी है। उसको लगाओ।

तुम्हें हंस में बराबर लिखते रहना चाहिए और मैं अपनी शक्ति भर तुमको पुरस्कार देने की कोशिश करूँगा। तुम दूसरे पत्रों में भी ज़रूर लिखो। मगर कम-से-कम पैसे लेकर अपनी अच्छी-से-अच्छी चीज़ हंस को भेजो, इसे उसकी इज़ारेदारी समझो।

मैं नये वातावरण में जा रहा हूँ, इस उम्मीद में कि शायद मैं वहाँ पर कुछ बेहतर हालत में हो सकूँ। अगर मैं पनपता हूँ तो मेरे साथ तुम भी पनपोगे।

यह. किताब कोटा में लगवाने के लिये ज़्यादा से ज़्यादा कोशिश करना।

हम लोग अच्छी तरह हैं, बस यही चेचक का झमेला है। तुम्हारी अम्माँ जी तुम्हें याद करती हैं और तुम्हें आशीष देती हैं। सस्नेह,

तुम्हारा, प्रेमचंद।

'Girivilas' Panchgani, 18th May, 1935

My dear Premchandji,

I am sending here with a draft of a letter which I propose to circulate to few leading literary men in all the provinces. It gives an idea of how 'Hans' is to be utilized.

Please let me know by wire, whether you approve of the idea. If you do I will immediately release the letters to those gentlemen.

Yours Sincerely, K.M. Munshi

●●

Dear Sir,

At the last Hindi Sammelan, which was held at Indore under the Presidentship of Mahatma Gandhi, I suggested that an effort might be made to bring together the leading representatives of different Indian languuages through the medium of Hindi, so that in course of time an All India Inter-Provincial Sahitya Parishad may come into existence. The idea met the approval of Mahatmaji and also of the Sammelan, which passed the following resolution :

"With a view to bring about a contact with literary men working through the provincial language in the country and with a view to obtain their co-operation in the evolution of the Hindi language this conference appoints a committee of the following gentlemen with power to co-opt members when necessary. Syt. Kanaialal Munshi (Bombay); Syt Girdhar Sharma, (Jhalrapatan); Syt Harihar Sharma (Hindi Prachar sangh, Madras)."

Before the committee can co-opt members representing different Indian languages and start work it is necessary that the underlying idea should be discussed through the medium of the provincial languages. I have, therefore,

to request you to discuss the necessity of this activity in your provincial language through any journal likely to sympathise with this work. I have every little doubt that most of the nationalist journals in our provincial languages will welcome this idea.

Syt. Premchandji. the wellknown novelist in Hindi, is in whole hearted agreement with this idea and has been good enough to offer the columns of his monthly journal 'Hansa' for doing the spade-work. It is proposed that a section of 'Hansa' should be reserved for each provincial language and that every month literary men representing each provincial language should send to me certain articles for being rendered into Hindi and published in the section. The articles should be as short as possible, written by the best available authority and of the following nature :

(1) An article dealing with some aspect of the modern literature in the language, for instance Fiction, Drama, History, Essay.

(2) An article dealing with the literary out put in the provincial language during the month.

(3) (a) Short summary of a novel or a drama, and (b) a poem or two published in the vernacular journal during that month.

(4) Short reviews of good works published in the language during the month.

I hope to be here for my holidays till the middle of June. When I return to Bombay, I hope to put up a kind of office which will transalate these articles where necessary into Hindi, as luckily we have representatives of most of the provincial languages. These articles then will be translated into Hindi and submitted to Syt. Premchandji for publication in the 'Hansa'. I hope from the August number 'Hansa' will be to some extent a journal of inter-provincial literatures.

I have, therefore, to request you to get in touch with literary men likely to work out this idea in your language and let me know as early as you can (a) whether you would actively work for this idea and (b) undertake to send me the article every month.

Hoping to be excused for the trouble.

Yours Sincerely, K.M. Munshi

P.S. : An early reply is requested as I propose to make an early report of it to Mahatmaji.

●●

हाली पब्लिशिंग हाउस
किताब घर, देहली, पोस्ट बॉक्स, 130,
18 मई, 1935

मोहतिरम जनाब मुंशी प्रेमचंद साहब,

तसलीम ! पेशतर इसके कि मैं जनाब की ख़िदमत में अपना मक़्सद अर्ज़ करूँ, अपना तआरूफ़ ज़रूरी ख़्याल करता हूँ। मेरा नाम अज़हर अब्बास है। मैं ख़्वाजा गुलाम-उल-सैयदेन साहब, प्रिंसिपल, ट्रेनिंग कॉलेज, अलीगढ़ का भाई हूँ। डॉक्टर सैयद आबिद हुसैन साहब, प्रोफेसर जामिया मिल्लिया मेरे बहनोई हैं और जनाब के दोस्त सैयद अश्फ़ाक़ हुसैन बी. ए. (ऑक्सन) मेरे मुरब्बी (सरपरस्त) और दोस्त हैं। मुझे जनाब से सैयद अश्फ़ाक़ हुसैन के यहाँ अलीगढ़ में निहाज़ हासिल हुआ था। अर्ज़ मतलब ये है कि हाली पब्लिशिंग हाउस का क़याम अभी चन्द रोज़ से देहली में शुरू किया है। बुक डिपो एक माह के अर्से में क़ायम हो जायेगी। मौलाना हाली मरहूम मेरे पड़नाना (यानी मेरे हक़ीक़ी नाना के वालिद) होते थे। इस वजह से इस दारूल इशाअत का नाम ये रक्खा गया है। इरादा ये है कि मुल्क के आला और सरबरआवरा (सम्मानित) असहाब (साहिबों) के अश्हाते क़लम (श्रेष्ठ एवं रुचिकर रचनाओं) को उम्दा क़िस्म से तबा (प्रकाशित) कराया जाय और उनको एक ख़ास साइज़ में छापकर मुल्क़ के सामने पेश किया जाय। क्या ज़नाबेआला इसमें हमारी मदद फ़रमायेंगे ? अर्ज़ ये है कि मैंने आबिद साहब से सुना है कि जनाब के पास Short Stories जैसा कि 'प्रेम-पचीसी', 'बत्तीसी', 'चालीसी' 'बाज़ारे हुस्न' वग़ैरा शाया हुई हैं। वो अगर जनाब इनमें से कुछ हमें इनायत कर दें तो हम इनको तबा करायें और अपने दारूल इशाअत का नाम रोशन करें। अगर जनाब इनको मुरत्तब (संगृहीत) करके इनायत कर सकें तो ऐन नवाज़िश होगी। रहा कारोबारी मामले का सवाल तो मैं इसको जनाब पर ही छोड़ता हूँ। जो कुछ जनाब तय फ़रमायें, हमारे इस नये काम को मद्देनज़र रखकर वो हमें मंजूर होगा। अगर तक़रीबन 20 X 30/16 के साइज़ की तकरीबन 150 सफ़आत का मसाला आप इनायत करेंगे तो हम उनको उम्दा लिखाई और छपाई के साथ इसको शाया करेंगे। मैं जनाब के वालानामा का बेचैनी से इन्तज़ार करूँगा।

फ़क़त ख़ाकसार,
आपका ख़ैरअंदेश, ख़्वाजा अज़हर अब्बास



हंस आफ़िस, बनारस, 21 मई, 1935

मुहब्बी व मुख़लसी, तसलीम।

यादआवरी का ममनून हूँ। मैं बम्बई से आकर अपने तसनीफ़ व तालीफ़ में मसरूफ़ हो गया। मेरा माहवारी रिसाला 'हंस' तो निकलता ही था। इसका मकसद आप पर मुंदर्जा-बाला[1] उनवान[2] से वाज़े[3] हो जायगा। यानी वह हिन्दी रस्मुलख़त[4] के ज़रिये हिन्दुस्तान की सभी जबानों की अदबियात[5] से बेहतरीन नवादे[6] फ़राहम[7] करके पब्लिक को देगा, और इस तरह क़ौमी अदब की बुनियाद डालेगा जिसमें हर एक जबान के मुसन्निफ़ और अदीब मौजूद होंगे। फ़िलहाल एक ज़बान वालों को दूसरी ज़बान वालों से एक बेगानगी-सी होती है। बंगला वालों को गुजराती की कुछ ख़बर नहीं और न मरहठों

को बंगला की कुछ ख़बर होती है। सूबेजाती अदबियात में क्या-क्या जवाहर भरे होते हैं, और रोज़ ब रोज़ पैदा होते जाते हैं, इसकी तरफ किसी की तवज्जो नहीं। 'हंस' ने यह ख़िदमत अपने ज़िम्मे ली है। इसमें तेलुगु, कनाडी, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू, मलयालम वग़ैरा जबानों के बाकमालों के तख़लीक़ी कारनामे रहते हैं, और कोशिश की जाती है कि सभी जबानों के अदीबों से हम वाक़िफ हो जायें। जबान की हुदूद[8] के बाइस[9] किसी बाकमाल बुज़ुर्ग़ की अदबियात से फ़ैज़[10] उठाने से हम क्यों महरूम[11] रहें। उर्दू के लिए भी एक हिस्सा वक़्फ़ है। पहले नम्बर के लिए हमने डाक्टर इक़बाल, डाक्टर ज़ाकिर हुसैन साहब और सय्यद मुहीउद्दीन क़ादरी साहब ज़ोर के मज़ामीन शाया किये हैं। मैं यह तफ़सील इसलिए दे रहा हूँ कि बंबई से आकर बेकार नहीं बैठा और तफीते[12] औक़ात[13] नहीं कर रहा हूँ।

अगर मौलाना अबुलकलाम आज़ाद मुकालमे[14] लिखें तो फ़िल्मों में जान पड़ जाए मगर आप तो जानते हैं फिलम की क़दर दर्जा पंजुम के तमाशाइयों पर है, और यह अच्छे मुकालमे की कदर नहीं कर सकते। मगर ख़ैर यह लोग कदर न करें समझने वाले तो करते हैं।

इस इनायत और करम के लिए आपका तहे दिल से शुक्रिया।

मुख़लिस, प्रेमचंद।

1. उपरोक्त, 2. शीर्षक, 3. स्पष्ट, 4. लिपि, 5. साहित्य, 6 सामग्री, 7 एकत्र, 8. सीमाओं, 9. कारण, 10. लाभ, 11. वंचित, 12-13. समय की बर्बादी, 14. बातचीत, डायलाग।



स्थान अंकित नहीं; 22-5-1935

बन्धुवर,

मैं जल्दबाज़ी नहीं कर रहा हूँ। पाँच-छह महीने से विचार कर रहा हूँ। यहाँ 8 साल तक आपने जी-जान से काम किया, मगर उसका जो नतीजा निकलना चाहिए, वह न निकला। आपको ही क्या फ़ायदा हुआ ? किसी तरह जीवन व्यतीत हुआ। मैं तो यह सारा झंझट इसीलिए कर रहा हूँ कि हम और आप दोनों जीविका की फ़िक्र से मुक्त हो जायें। आख़िर आदमी स्टॉक ही तो नहीं बढ़ाना चाहता, पैसे चाहता है जिससे उसकी गृहस्थी चले। स्टॉक का बढ़ना तो तब अच्छा लगता है जब कुछ पैसे भी मिलते जायें। मैं अब और क्या करूँगा ? पत्र निकालना, पुस्तक लिखना, जब इनसे कुछ मिले ही नहीं, केवल स्टॉक बढ़े तो जिऊँ कैसे ? मेरी और कौन-सी आमदनी है ? इसी प्रेस और पत्र और पुस्तकों ही पर तो जीवन का आधार है। इसलिए अच्छे भविष्य की आशा में एक बार उद्योग करना पड़ेगा। अगर प्रयाग में भी यही दशा रही तो आप स्वयं यही निश्चय करेंगे कि इस खटखट को बन्द कीजिए।

आप अप्रैल का वेतन दे ही रहे हैं। अभी कुछ आमदनी होगी ही। अगर मई का वेतन हम लोग प्रेस से देंगे तो फिर लादने-फाँदने का ख़र्च 500 रु. से अधिक न होगा तख़मीना ठीक करना होगा।

मकान वाले मुआमले में यह कीजिए कि या तो कोर्ट से क़िस्त पर रुपये अदा करने का मुआमला हो जाय, या हैण्डनोट लिखकर गला छूटे। यह नतीजा है काशीवास का वि

मकान का किराया तक अदा करने की हममें सामर्थ्य नहीं। 500 रु. प्रेमी जी ने भेजे हैं, लेकिन इन्हें मकान वाले को दे दूँ तो प्रेस कैसे लदेगा ? न हो, मकान वाले से मिलकर हैण्डनोट का मामला तय कर लीजिए। मुंशी के नाम यह तार भेजिए, 'हंस' शायद चमके।

आपका, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 25 मई, 1935

प्रिय बनारसीदास जी,

आपको उस प्रस्ताव का पता चला होगा जो साहित्य सम्मेलन ने एक अन्तर्प्रान्तीय साहित्यिक संघ बनाने के सम्बन्ध में पास किया है जिसका काम राष्ट्रभाषा के माध्यम से साहित्यिक भाई-चारा पैदा करने के तरीकों और रास्तों पर विचार करना होगा ताकि धीरे-धीरे हिन्दुस्तान के पास अपना एक राष्ट्रीय साहित्य और अपनी एक राष्ट्रभाषा हो सके। जैसा कि आप देख ही सकते हैं इस प्रस्ताव में बड़ी सम्भावनाएँ हैं और आवश्यक है कि आपकी तरह के लोग इस लक्ष्य के समर्थन में जनमत तैयार करें। मई के अंक में मैंने इस विषय पर अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा है। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि अगर आपने अब तक नहीं किया है तो अब अपने सम्पादकीय में इस चीज़ के बारे में अपने सुझाव और टिप्पणियाँ दें। श्री मुंशी ने मुझको सुझाव दिया है कि 'हंस' परिषद् का मुखपत्र बना दिया जाय और मैंने सधन्यवाद इस सुझाव को मान लिया है। वे दूसरे प्रान्तों के साहित्यकारों को इस आन्दोलन में दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित कर रहे हैं और अगर अच्छा समर्थन मिला तो आगामी वर्ष एक अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन वास्तविक रूप ले सकेगा।

आशा है आप हमेशा की तरह प्रसन्न हैं।

आपका, धनपत राय।

●●

मैनेजिंग डायरेक्टर
ख़्वाजा अज़हर अब्बास

हाली पब्लिशिंग हाउस,
किताब घर, दिल्ली, 25 मई, 1935

मुकर्रम बन्दा,

तसलीम ! वालानामा (पत्र) आज मिला। जनाब की इनायत का बहुत-बहुत शुक्रिया। कहानियों का कुल मुसव्विदा लेने के लिए तैयार हूँ। मैंने बिरादरम् ख़्वाज़ा गुलाम-उल-सैयदेन को लिख दिया है कि वो आपकी ख़िदमत में बराहरास्त हमारी सिफ़ारिश करें। जैसा कुछ आपके और उनके दरम्यान तय होगा, वो मंजूर होगा। जनाबेआला अगर यह तहरीर (लिखना) फ़र्मा दें कि कहानियों के नाम क्या हैं, कहाँ-कहाँ छपी हैं और ग़ैर मत्बूआ (अप्रकाशित) कहानियाँ किस क़िस्म की हैं तो ऐन नवाज़िश होगी। इंशाअल्ला हाली पब्लिशिंग हाउस से आपको वो तल्ख़ तजुर्बा, जो पहले हो चुका है, वो न होगा। ईमानदारी और दियानत (सत्य निष्ठा) के साथ काम होगा।

कारोबारी निरख़ के मुताल्लिक़ भी जो आप और सैयदेन साहब हुक़्म देंगे वो बसरोचश्म (सहर्ष) मंजूर होंगे। नीज़ (इसके अलावा) यह भी राय दीजिए कि 250 सफ़े

के मज़मुए को 2 ज़िल्द में शाया करना मुनासिव है या एक ज़िल्द में ? नीज़ जनाब ये भी तहरीर फरमायें कि आपकी किताबें किन कुतुब फ़रोश से (या आपसे बराहेरास्त) सबसे माकूल कमीशन पर मिल सकती हैं।

ख़ाकसार नियाजमन्द, अज़हर अब्बास

●●

हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग़, बम्बई-4, 26-5-1935

मान्यवर, प्रणामाः !

आपका ता. 23 का कृपा-पत्र मिला। मुझे ऐसी कोई जल्दी नहीं है। बरसात शुरु होने पर ही काम शुरू कराइएगा। मुझे यही चिन्ता थी कि कहीं मेरे कारण आपको न रुकना पड़े।

उर्दू की कहानियाँ भी आप सुभीता होने पर संग्रह कर दीजिएगा। अनुवाद करने के लिए क्या आपके पास कोई दूसरे सज्जन हैं ? नहीं तो बाबू रामचन्द्र वर्मा कर देंगे। उन्हें अवकाश भी है।

सुना है, आप इलाहाबाद जा रहे हैं। इस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा।

चेक का रुपया मिल गया होगा। दूसरे नाम से भेजने की ज़रूरत तो नहीं है ? 'हंस' के पिछले अंक में पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र के व्याख्यान पर आपने जो नोट लिखा है वह मुझे बहुत ही अच्छा मालूम हुआ।

यहाँ सब कुशल है।

भवदीय, नाथूराम।

●●

'Girivilas' Panchgani, 28th May, 1935

My dear Premchandji,

Your telegram and the letter to hand on my return to Panchgani from Bombay. I had been there to see Mahatmaji about this idea. I discussed with him the scheme of starting our activities through 'Hans'. He likes the scheme, but has asked me to get the following informations from you about 'Hans', so that there may not be any misunders tanding in the future :

(1) Who is at present the owner of the magazine ?

(2) How many subscribes it has ?

(3) Is it run at a profit or loss ?

(4) If it is running at a loss how much money will be required to make it up.

(5) Would you have objections to delete any advertisements if it is considered objectionable by Mahatmaji ? (He has been good enough to agree not to insist on the removal of all advertisements.)

(6) What arrangements should be made between us so that the editorial

work may be co-ordinated ? As things are for collecting articles and getting them translated, I will have to set up an office in Bombay.

(7) Whether any arrangement is possible by which the public may know that the magazine has become the organ of a particular movement ?

(8) Whether it would be possible to make certain changes in the cover etc., and if so what additional expense it would require ?

(9) Would you continue to act as an editor alone or you will like to have some one else association ?

I hope you will forgive me for making these enquiries, but I must know the nature and extent of our commitments. We must settle these matters definitely so that it may be possible to continue the arrangement for some length of time. Mahatmaji is as anxious as ourselves to see that the movement takes definite shape at an early date.

After I receive a reply from you, I shall submit a report to Mahatmaji. I will be going to Bombay by about the 15th June. In the meantime I am in correspondence with leading literary men in different provinces and will let you know the result as soon as I am in a position to give it.

With regards,

Yours Sincerely, K. M. Munshi.

I have made a slight change in the circular, as pending the final approval of mahatmaji, it won't be proper to let the letter stand it was.



रामप्रसाद, बुकसेलर एण्ड पब्लिशर, लाहौरी गेट, लाहौर, 29-5-1935

श्रीमान जी, नमस्ते !

कृपा-पत्र मिला, शुक्रिया। मैं मानता हूँ कि इस किसाद-बाज़ारी (महँगाई) के ज़माने में, जबकि मार्किट का बहुत बुरा हाल है, इस क़द्र उज्रत बहुत ज़्यादा है। उम्मीद है, मार्केट का हाल आपसे भूला हुआ नहीं होगा। फ़रोख़्त का बाज़ार दिन-ब-दिन गिर रहा है। ताहम भी पब्लिशर के लिए नयी किताब शाया करना ज़रूरी है। जब तक कोई नयी किताब शाया न की जाय, पुरानी किताबों को भी कोई नहीं पूछता, इसलिए कुछ-न-कुछ ज़रूर शाया करना पड़ता है। लाहौर समाज के सालाना उत्सव पर आपकी यह किताब छप जाय, जोकि माह नवम्बर में होने वाला है, तो बहुत अच्छा होगा। उम्मीद है, आप बहुत जल्द तैयार करेंगे। उज्रत के मुतल्लिक़ सब हालात को मद्देनज़र रखते हुए आप एक रुपया फ़ी सफ़ा उर्दू और एक रुपया फ़ी सफ़ा हिन्दी, इससे ज़्यादा हालात इजाज़त नहीं देते। तीन सौ सफ़े की किताब पर छः सौ रुपया हक़्क़-ए-तस्नीफ़ बहुत ज़्यादा बार (बोझ) है। इस वास्ते हम दोनों ज़ुबानों में छः सौ रुपया अदा करेंगे। उम्मीद है, आप इसे मंज़ूर फ़रमावेंगे। आप-जैसे लायक़ और नामवर मुसन्निफ़ों को उज्रत के मुतल्लिक़ कमोबेशी के लिए कहना ही मुनासिब नहीं, मगर आजकल ऐसी किताबों के क़द्रदाँ बहुत कम रह गये

हैं। उम्मीद है, हर दो जुबानों—यानी उर्दू और हिन्दी—के लिए आप फ़ी सफ़ा एक रुपया मंजूर फ़रमा देंगे।

किताब के मुतल्लिक़ यूँ तो आपका नाम ही काफ़ी है, फिर भी किताब इस क़द्र दिलचस्प हो कि हाथों-हाथ पब्लिक इसका स्वागत करे। किताब के लिए कोई उम्दा-सा नाम भी तजवीज करें। आप मसौदा तैयार करके मुझे जिस वक़्त भी इत्तला देंगे, उसी वक़्त निस्फ़ रक़म (आधी राशि) पेशगी इर्साल कर दी जावेगी, तसल्ली रखें। कहानियाँ शाया करने का अभी विचार नहीं है। किताब का हुजम (कुल पृष्ठ) तीन सौ सफ़े से कम हो जाय तो कोई हर्ज़ नहीं। उम्मीद है, आप किताब लिखनी शुरु कर देंगे। आपको कभी भी नाराज़गी का मौक़ा ना दिया जावेगा। इसके बाद तीन-चार नॉविल हिन्दी में आपके लिखे हुए शाया करूँगा।

जवाब का मुन्तज़िर,

नियाज़मन्द, रामप्रसाद।

आपके स्टॉक में कौन-कौन-सी किताबें हैं ? जिस क़दर किताबें आपने शाया की हैं, उनके नाम और कमीशन लिखें तो कहीं थोड़ी-सी सेल के लिए मँगवायी जायें।

●●

सम्भवतः मई-जून, 1935

प्यारे रामकुमार,

निहायत अफ़सोस है कि मैं दिनभर घर से ग़ायव रहा। मुझे यक़ीन है कि मेरी आदत को जानते हुए तुमने पुलिस में रपट न लिखायी होगी। मेरे वक़्त पर न आने से तुम्हें और बहू रानी को बेहद तकलीफ़ हुई होगी। लाचार था। रात दो बजे लौटकर आया, तुम लोग सो गये थे। जगाना ठीक नहीं समझा। देखा, कमरे में बहू रानी ने खाने की थाली परोस कर रख दी है। बढ़िया खीर थी, लेकिन इलाहाबाद की गर्मी में सुबह की बनी हुई खीर का दूध फट गया था। गो एक जगह खाना खा चुका था, लेकिन खीर तो मैंने खा ही ली। इस डर से कि फटे हुए दूध की खीर छोड़ देने से कहीं बहूरानी का दिल मेरी ओर से फट न जाये। ख़ैर, उनको बहुत-बहुत आशीर्वाद। वह खुश रहें।

फ़ौरन जा रहा हूँ! चारे बजे की गाड़ी पकड़नी है। भाई बुरा मत मानना। बग़ैर मिले जा रहा हूँ।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

रामकृपाल मेहता को

मई, 1935

....

फ़िल्म में अकेला लेखक कुछ भी नहीं। जिन्हें हिन्दी साहित्य का रस लेना हो, उन्हें सिनेमा को दूर से ही सलाम करना चाहिए। उन्हें तो अपनी कुटी में बैठकर ही साहित्य का आनन्द लेना चाहिए।

प्रेमचंद।

●●

1-6-1935

बन्धुवर,

कल मेरी सम्पूर्णनन्द जी से मुलाक़ात हुई। वह तैयार हैं। आप Declaration दाख़िल कीजिए। अगर बड़ी ज़मानत माँगी गयी तो मुश्किल पड़ेगी। हल्की ज़मानत हुई तो शायद वह लोग कुछ प्रबन्ध करें। एडीटर का नाम बताने की ज़रूरत नहीं। आप कह सकते हैं शायद प्रेमचंद जी खुद एडिट करेंगे, या किसी को अपना सहकारी बना लेंगे।

मकान के विषय में–परिपूर्णानन्द जी वही बुला वाला मकान अपनी बीमा कम्पनी के दफ़्तर के लिए ले रहे हैं। वह नीचे का पूरा हिस्सा देने को तैयार हैं। शायद 30 रु. में तय हो जाय। ऊपर तीसरे मंज़िल पर रहने की जगह भी है। सत्यनारायण जी ने मुझसे कहा था कि मैं वर्मा जी से कहला भेजूँगा कि कल आप मकान देख सकते हैं। उनका आदमी आपके पास आये तो आप उस मकान को देख लीजिए और मुझे सूचित कीजिएगा कि आपकी ज़रूरत के लिए काफ़ी है या नहीं, और ऊपर मेरे रहने के लिए कितनी जगह निकलेगी। तब मैं भी आकर उसे देख लूँगा। गुर्जर पाठशाला पीछे गिरा दी गई है और केवल आगे है। पीछे की दीवार म्युनिसिपलटी ने गिरा दी है। अभी वह दीवार बनी नहीं है। उसका किराया भी अब 40 रु. से ज़्यादा न होगा, लेकिन बुला वाला उससे बहुत अच्छा है और मेरी तबीयत इसी पर जमती है।

लैटर पेपर और लिफ़ाफ़े छपवाने की फ़िक्र कीजिएगा। उस दिन आपने जो लैटर छापा था उसके लिए 100 लिफ़ाफ़े और भिजवा दें।

आपका, धनपत राय।



Kalidas Kapur, M.A., L.T.
Head Master

Kalicharan High School,
Lucknow, 5.6.1935

My dear Premchand ji,

I heard sometime ago that you had returned from Bombay and the other day friends told me at Allahabad that you were shifting you Press to that town.

Have you finally decided to shift to Allahabad or is there a chance of your considering the claims of Lucknow ? Recently a few friends including myself, have develop a scheme of a starting a Press with a daily paper. If possible our scheme will mature immediately if you decide to participate with your press. You ought to know that from all points of view there will be a greater field for the Press at Lucknow than at Allahabad.

We shall develop detailed negotiations on hearing from you.

I am
Yours Sincerely,
Kalidas Kapur

हिन्दूसमाज-सुधार कार्यालय,
सआदतगंज रोड, लखनऊ 7-6-1935

श्रीयुत बा. प्रेमचंद्र जी, सरस्वती प्रेस, बनारस
माननीय महोदय,

बहुत दिनों से आपका कोई पत्र नहीं मिला, पर आपका समाचार समय-समय पर दूसरों द्वारा मिलता रहा।

मैंने गतवर्ष लखनऊ से एक हिन्दी दैनिक निकालने के सम्बन्ध में एक पत्र आपको दिया था, परन्तु अनेक कारणों से उस उद्योग में सफलता नहीं हुई थी। परन्तु मैं निरन्तर प्रयत्न में लगा रहा, और अब सिद्धि के कुछ लक्षण दिखायी देते हैं। वह सब कथा पत्र में लिखने की आवश्यकता नहीं।

आपके पास श्रीयुत बा. कालीदास जी का पत्र आया होगा, या आजकल में आवे। आप यदि, जैसा ज्ञात हुआ है, अपना प्रेस अब तक प्रयाग ले न गये हों, तो उस विचार को स्थगित करके कपूर साहब का पत्र पाकर स्वयं दो-तीन दिन के लिए लखनऊ पधारिए—अकेले आइए, और आकर, मेरे विचार में, कपूर साहब के पास ही कालीचरण हाईस्कूल, ठाकुरगंज रोड में ठहरिए।

अपने पधारने की सूचना एक कार्ड द्वारा मुझे भी दे दीजिए, ताकि बिना बुलाये ही मैं ठीक समय पर उपस्थित रहूँ। कुछ बातें आपको कपूर साहब के पत्र से ज्ञात हो जायेंगी, शेष का ज्ञान और उनके सम्बन्ध में अपना निश्चय आप यहाँ पधारकर करेंगे। योग अच्छा है।

आपको विदित हो कि अमीनाबाद से मैंने अपनी दूकान उठा डाली है, और अब सआदतगंज में, घर ही पर रहता हूँ।

आपका, चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु।



सं. 726/74

सन्त कार्यालय,
प्रयाग 8-6-1935

बुजुर्गवारम, तसलीम, बसद ताज़ीम !

मुअद्दबाना इल्तमास (सविनय निवेदन) है कि रिसाला 'धौलगिरि पर्वत' बाज़बाने-उर्दू, माह जुलाई, 1935 ज़ेरे-एडीटरी महर्षि शिवव्रत लाल जी, इलाहाबाद से शाया हुआ करेगा। निस्फ़ (आधा) हिस्सा वो खुद किया करेंगे, निस्फ़ हिस्सा का भार मेरे ऊपर है, ताकि इस आम मज़ाक़ (सुरुचि) के मज़ामीन दाख़िल हो सकें और रिसाला मक़बूले-आम हो। यह मेरा अपना ख़याल है, इसके लिए उन्होंने इजाज़त भी दे दी है। मुसलमानों के मज़ामीन एक भी दाख़िल न होंगे। आप-जैसे बुजुर्गवार रुकन के होते हुए मेरा यक़ीन है कि मैं ज़रूर कामयाब हूँगा और आपको मेरे इस काम में हमदर्दी भी होगी। लिहाज़ा मेरी ये इस्तदुआ (प्रार्थना) है कि एक मज़मून, जो आप मुनासिब ख़याल फ़रमायें, इस रिसाला में देकर इमदाद फ़रमायें। मैं अपनी ख़ादिमाना ख़िदमत के लिए हर वक़्त तैयार हूँ। इस नम्बर के लिए कमज़कम एक क़िस्सा, अगर मुमकिन हो तो 'धौला पर्वत' पर तहरीर हो। आप मुनासिब समझें ज़रूर भेजकर मशकूर फ़रमायें और आइन्दा के लिए जैसा आप

मुनासिब समझें, मत्ला फ़रमायें।

खादिम-उल-तहरीर, दीवान बंसीलाल धर

●●

कूचा चेलान, दिल्ली, 13 जून, 1935

मुकर्रमी, तसलीम !

ड्रामा मिला। मैं कई माह पहले अगर पर्चा मुरत्तिब (संग्रह, तैयार) न कर लिया करूँ तो वक़्त पर शाया होना बहुत मुश्किल है। दूसरे मज़मून का कई रोज़ इन्तज़ार किया। आख़िर वही अफ़साना छपने भेज दिया। अब सालगिरेनम्बर की छपाई ख़ात्मे के क़रीब है। आप फ़रमायें तो छपे हुए फ़र्मे अलीगढ़ भेज दूँ।

यह ड्रामा आइन्दा शाया हो जायगा। इनायत का दिली शुक्रिया।

ख़ैरतलब, राज़िक़-उल-ख़ैरी (एडीटर)

●●

The Chand Press Limited, 28, Edmonstone Road,
Chandralok, Allahabad, 13th June, 1935

My dear Mr. Premchand,

Thank for your letter of no date with the manuscript of one act drama entitled 'Grih Niti'. The drama has been passed on to the Editor for necessary action. Your remuneration of the previous story will be sent soon. Kindly excuse for the delay.

I hope you are O.K.

With best regards..

Sincerely yours, R. Saigal
(General Manager)

●●

The Ideal Films, Limited
22, Abbott Road, Lucknow
Phone 159
Telegram—Pictures, 18th June, 1935
Our Reference F-1/1041
Mr. Prem Chand,
Saraswati Press, Benares.
Dear Premchandji,

Please excuse me for breaking my silence after a very long time, this is due to the fact that everything was in its making, hence I could not give you the details of the working of my Film Company. I am very desirous of meeting you as I want to discuss with so many things. Will you please find some time to come over to Lucknow at your earliest. An immediate visit will greatly oblige me. You are requested to let me know the details of your arrival so that I may be on the Station. I would suggest the 22nd of this month.

Yours Sincerely, R. Singh

●●

111, Esplanade Road,
Fort, Bombay, 22nd June, 1935

My dear Premchandji.

Your letter to hand. I could not write to you earlier because of my inability to come to any decision. I have written to Gandhiji and I am expecting a reply in a day or two, when I will definitely write to you.

I also heard that you are thinking of stopping 'Hansa'. Is there any truth in it ?

The idea is that we must have a magazine solely devoted to this idea of an All India literature. If you place the whole magazine at the disposal of this idea, my concrete suggestions are these :

(1) 'Hansa' should be made into a hundred page magazine.

(2) It should be solely devoted to this idea.

(3) You should associate with yourself some appointed by the committee as a co-editor. Perhaps it may be me.

(4) You should own and manage the magazine as now. I will at my cost maintain here an office for collecting articles from different places and for sending them to you. Our Hindi here will have to be retouched by some one from there.

(5) The subscription should be raised from Rs. 3-8-0 to Rs. 5/-.

(6) At the end of one year I will meet the deficit not exceeding one thousand rupees. If there is any profit your keep it to yourself.

(7) At the end of the year we shall revise the terms.

Yours Sincerely, K.M. Munshi



सरस्वती प्रेस, बनारस, 30 जून, 1935

भाईजान,

तसलीम। आपका ख़त मिला। अज़ीज बिशननारायण जी अब रू-ब-सेहत हैं और दो-चार रोज़ में चलने-फिरने के काबिल हो जायँगे। शुक्र है, टाइफाइड बड़ा मूज़ी बुख़ार है।

भाई, मैं तो तालीम-याफ़्ता लड़कियों की जानिब से खुदा जाने क्यों बदगुमान हूँ। अभी तक तो लड़कों की लापरवाइयों के बावजूद गृहस्थी चलती रहती थी, क्योंकि लड़कियाँ आमतौर पर गृहस्थी का पालन करती थीं, लेकिन जब दोनों एक ही रंग में रँग गये तो फिर खुदा ही हाफ़िज़ है। लड़कों को देखता हूँ तो जः चाहता है कि यह यूनिवर्सिटी में न पढ़ते तो अच्छा होता। मुदम्मिग़,[1] बदतमीज़, कजखुल्क़[2], मिज़ाज में हद दर्जा रऊनत[3], नाहमदर्द[4], खुदपसंद और ख़ुदसर[5]। यह आम रविश है। मुसतसनियात[6] भी हैं, लेकिन बहुत कम। लड़कियों में भी यह नक़ाइस[7] नुमायाँ हैं। आख़िर उन्होंने अपने भाइयों ही से तो सबक़ लिया है। और मैं उन्हें मुत्तहम[8] नहीं करता। वह भी सैलाब में बह रही हैं

तो उन ग़रीबों का क्या क़सूर है। एक तरफ़ यह सदा है कि उन्हें शौहरों से इक़्तसादी[9] आज़ादी हासिल होनी चाहिए। ख़ैर जी, हम लोग तो चंद दिन के मेहमान हैं। दुनिया अपनी रफ़्तार जायगी। दो-चार पुराने ख़याल के लोग सर पीटा करें। मगर क़राईन[10] बतला रहे हैं कि आने वाला ज़माना गृहस्थी के लिए क़ातिल होगा।

जुबान के मुताल्लिक़ मेरे ख़याल से आपको इत्तफ़ाक़ है, यह बाइसे इत्मीनान है। अभी कल लखनऊ गया था। वहाँ ज़फ़रुलमुल्क साहब से मुलाक़ात हुई। उन्हें इस ख़याल से इख़्तलाफ़[11] है। उनका ख़याल है कि अब उर्दू और हिन्दी अपनी अपनी शख़्सियतों का इस क़दर इरतक़ा[12] कर चुकी हैं कि अब उनमें इत्तिहाद[13] की कोई सूरत पैदा नहीं हो सकती। इस ख़याल में सदाक़त[14] है, इसमें शक नहीं।

डाक्टर निगम की साहबज़ादी की निस्बत मैंने जो सुना है वह तो यह है कि वह बहुत ही मतीन[15], फ़रख़ुंदासीरत[16] लड़की है, मगर दुलारे घर की बेटी है और मुतमव्विल[17] बाप की नूरे नज़र[18]। और आपके घर में उसे जो आसाइशें मिल सकेंगी वह मुक़ाबिलतन कम होंगी। अगर उसमें कुछ फ़िरासत[19] है तो घर बिहिश्त हो जायगा। वर्ना कौन जाने। मैं अपने एक दोस्त को जानता हूँ जिनकी बीवी एम. ए. है। वह खुद बी. ए. भी नहीं हैं, मगर हैं बड़े ही tactful. उनकी इज़दिवाजी[20] ज़िन्दगी देखकर मुझे रश्क आता है। ऐसी मुनकसिर[21] मिज़ाज सेवा भाव से भरी हुई पाकीज़ा औरतें पढ़ी-लिखी मैंने बहुत कम देखी हैं। उससे आप free love और इम्तहानी[22] शादियों पर बे-तकल्लुफ़ बहस कर सकते हैं। वह अपने ख़यालात का आज़ादाना इज़हार करती है। मगर फ़लसफ़ियाना अल्हदगी के साथ। यह मसाइल उसके लिए महज़ इल्मी मसाइल हैं जिनका ज़िन्दगी से फ़ी ज़माना कोई ताल्लुक़ नहीं है।

धुन्नू तो अब की थर्ड इयर में गया है। छोटा दसवीं में आया है। मैं खुद इलाहाबाद जा रहा हूँ। गो प्रेस वग़ैरा यही रहेंगे। इस जंजाल से किसी तरह रिहाई नहीं होती। इस कमबख़्त 'जागरण' ने मुझे कोई छ-सात हज़ार के पंजे में डाल दिया। अब भी मुझे कोई पन्द्रह सौ रुपये देने हैं। प्रेस से मुझे अब तक कोई पन्द्रह हज़ार का नुक़सान हो चुका है। मगर क्या करूँ, गले में जो ढोल पड़ गयी है उसे बजाए जाता हूँ।

और क्या लिखूँ। इलाहाबाद आने पर मुलाक़ात की सूरतें आसान हो जायँगी। अब की सितम्बर से 'हंस' को 120 सफ़हात का कर रहा हूँ। देखूँ क्या होता है। यह भी एक तजरुबा है। कल बम्बई जा रहा हूँ। एक महीने में लौटूँगा।

आपका, धनपत राय।

1. घमंडी, 2. दुःशील, 3. उद्दण्डता, 4. सहानुभूतिशून्य, 5. उजड्ड; अक्खड़, 6. अपवाद, 7. दोष, 8 दोष नहीं देता, 9. आर्थिक, 10. लक्षण, 11. विरोध, 12. विकास, 13. एकता, 14. सच्चाई, 15. गंभीर, 16. सुशील, 17. संपन्न, 18. दुलारी; आँखों की ज्योति, 19. समझदारी, 20. दाम्पत्य, 21. विनम्र, 22. प्रयोगात्मक; एक्सपेरिमेण्टल।



रामप्रसाद
बुकसेलर एण्ड पब्लिशर

इंसाइड लाहौरी गेट, लाहौर,
जून, 1935

श्रीमानजी, नमस्ते !

कृपा-पत्र मिला। ख़ैर, आप अपने फ़ैसले पर फिर ग़ौर करें, क्योंकि एक तो

फ़िसाद-बाज़ारी, दूसरे इतनी उज्रत बहुत ज्यादा है। दूसरे बुकसेलर के साथ आपका फ़ैसला एक रुपया में हुआ था, जिसका मैंने पहले ख़त में हवाला दिया था। यह नहीं कह सकता कि उसने कुछ दिया है या नहीं। अब भी आप हमसे वही रेट मंजूर फ़रवा दें। एक-आध क़िताब शाया करके तो फ़ायदा न होगा, लगातार आपसे पाँच-छः कुतुब लिखायी जावेंगी और शाया की जावेंगी, जिससे आपको काफ़ी फ़ायदा होगा। मगर पुख़्ता फ़ैसला पहले हो जाना बेहतर है, ताकि बार-बार का झगड़ा न रहे। एक रुपया उर्दू के लिए और हिन्दी के लिए डेढ़ रुपया लगायें, यह किसी भी हालत में कम नहीं है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आपकी क़लम से लिखा हुआ एक-एक शब्द नायब है। इसकी कोई क़ीमत अदा नहीं कर सकता। इस वजह से आपको बार-बार लिखते हुए भी ख़याल होता है कि उज्रत ये ले लो या वो ले लो। ख़ैर, आपने एक अव्वलीन (पहले का) हिसाब बतलाया है कि मुझे इतना रुपया मिल जायगा। जनाबेआली, हमारा भी तो ख़याल रक्खा जाता कि पब्लिशर को कितना फ़ायदा होगा–

300 सफ़ा, 19 कापी, उज्रत आपके हिसाब से		
ढाई रुपया फ़ी सफ़ा–		750-0-0
काग़ज़ 19 कापी के लिए फ़ी रीम 10 रुपया, 38 रीम	380-0-0	240-0-0
छपवाई, 19 कापी के लिए हिन्दी–		500-0-0
एडवरटाइज़मेंट, रिव्यू वग़ैरा के लिए 4 आने फ़ी कापी		30-0-0
दफ़्तरी, ब्लाक, डिज़ाइन, टाइटिल-छपवाई, काग़ज़ का ख़र्चा वग़ैरा		200-0-0
दो हज़ार रुपया का दो साल का ब्याज अगर किताब दो साल में बिक जाय		240-0-0
	टोटल	2340-0-0

ख़याल फ़रमावें एक कापी एक रुपया तीन आने में पड़ी। इसके अलावा दो रुपया क़ीमत पर 33 रुपया प्र. श., (11 आने फ़ी कापी) कमीशन ताज़राना (व्यापारी कमीशन) से क्या कम होगा ? अब आप विचार करें कि पब्लिशर को क्या फ़ायदा हुआ ? हालाँकि हिन्दी में छपी हुई किताबों पर हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता वाले 40 प्रतिशत कमीशन सौ रुपये की किताब ख़रीदने पर दे देते हैं। इस वास्ते आप बराह मेहरबानी मंजूर फ़रमा दें जिससे जल्द काम शुरू हो।

दुबारा ग़ौर फ़रमायें। जवाब का मुन्तज़िर–

रामप्रसाद।



लाहौर, जून, 1935

श्रीमान जी, नमस्ते !

पत्र आपका मिला। मैंने तो यह बतलाया था कि लाहौर के एक दुकानदार के साथ आपका 'नजात' नामी किताब के लिए एक रुपया फ़ी, सफ़ा उज्रत दायमी कॉपीराइट का मुक़र्रर हुआ था। यह मुझे पता नहीं, उसने आपको कुछ दिया या नहीं। अगर उसने नहीं दिया तो आप क़ानूनी चारागोई करके एक दिन में वसूल कर सकते हैं। आपकी भेजी हुई किताब 'बेवा' भी उसके पास थी। शायद उसने आपसे ख़रीद की होगी या कमीशन

सेल पर फ़रोख्त के लिए मँगवायी होगी। उसका भी कुछ न दिया हो तो आपकी ग़फ़लत है। क़ानून का दरवाज़ा खुला है। आप उससे वसूल कर सकते हैं। बनारस में ही दावा कर दें और डिग्री लेकर लाहौर हमारे पास चले आयें। फ़ौरन से पेशतर वसूल होता है या नहीं। अगर वह ख़त का जवाब ही नहीं देता तो यह उसका कमीनापन है। अपनी मेहनत के दाम आप पूरे वसूल करें। सीधी तरह ख़तो-किताबत से वह देगा नहीं। आप यह तरीक़ा करें, दस रुपया ख़र्च होगा ज़रूर, मगर आइन्दा के लिए किसी दूसरे बुकसेलर को यह हिम्मत न होगी कि आपसे ऐसा करे। दरगुज़र नहीं करना चाहिए। अपने इरादे से मुझे मतला (सूचित) करें। अगर आप पहले नोटिस दे देवें तो बहुत अच्छा है। उम्मीद है, नोटिस आते ही शायद फ़ैसला हो जाय। इसको प्राइवेट ख़याल फ़रमावें।

नियाज़मन्द, रामप्रसाद।



हाली पब्लिशिंग हाउस,
किताब घर, दिल्ली
पोस्ट बॉक्स-130, जून, 1935

जनाब बन्दा, तसलीम !

बजवाबे वालानामा मुहर्रिखा 3 जून, 1935 नं. 2648 पी अर्ज़े-ख़िदमत है कि मैं जनाब का किस ज़बान से शुक्रिया अदा करूँ कि आपने मेरी दरखास्त पर अपने जवाहरात मुझे देने मंजूर कर दिये। जब जनाब का मस्विदा वसूल हो जायेगा तो Agreement लिखवाकर जनाब की ख़िदमत में भेज दूँगा, ताकि जनाब उसको मुलाहिज़ा फ़र्माकर दस्तख़त कर दें और मुझे वापस दे दें।

दूसरी किताब के मुताल्लिक यह अर्ज़ कि जल्द ही ख़्वाज़ा गुलाम-उल-सैयदेन और डॉ. आबिद हुसैन साहिब से मश्वरा करके (जैसे कि मुझ पर फर्ज़ है) जनाब की ख़िदमत में मुत्तिला करूँगा। मस्विदा के साथ उसका नाम भी तज़बीज़ फ़र्माकर लिख दीजिए।

दीवाचा के मुताल्लिक़ यह अर्ज़ है कि आप खुद ख़्वाजा-गुलमा-उल-सैयदेन को लिखें तो बेहतर होगा। मैं तो इस सिलसिले में उनसे इस क़दर काम ले चुका हूँ, मेरा कहना मुमकिन है टाल दें, लेकिन ज़नाब के कहने को हर्गिज़ नहीं टालेंगे। उम्मीद है कि जनाब का मिजाज़ बख़ैर होगा।

फ़क़त खाकसार,
आपका ख़ेरअंदेश, अज़हर अब्बास

क्या जनाब सुदर्शन, मज़नूँ गोरखपुरी और अली अब्बास हुसैनी के पते मुझे भेज सकते हैं ?



जून, 1935

श्रद्धेय प्रेमचंद जी,

'लेखक' में आपका लेख 'फ़िल्म और साहित्य' पढ़ा। इस चीज़ को लेकर 'रंगभूमि' में अच्छी-ख़ासी Controversy चल चुकी है। 'रंगभूमि' के वे पत्र आपको भेजे भी गये

थे। पता नहीं, आपने उन्हें देखा कि नहीं। अस्तु।

आपने सिनेमा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह ठीक है। साहित्य को जो स्थान दिया है, उससे भी किसी का मतभेद नहीं हो सकता। निश्चय ही सिनेमा ताड़ी (?) साहित्य और दूध (?) है; पर इस चीज़ को Generalise करना ठीक न होगा–सिनेमा के लिए भी और साहित्य के लिए भी, साहित्य भी इस ताड़ीपन से अछूता नहीं है। सिनेमा को मात करने वाले उदाहरण भी उसमें मिल जायेंगे–एक नहीं, अनेक; और ऐसे व्यक्तियों के, जिन्हें कि साहित्यिक संसार में Recognise किया है और तो और, पाठ्य कोर्स तक में जिनकी पुस्तकें हैं। अपने समर्थन में महात्मा गांधी के वे वाक्य उद्धृत करने होंगे क्या, जो कि उन्होंने इन्दौर-साहित्य-सम्मेलन के सभापति की हैसियत से कहे हैं ? लेकिन प्रत्यक्षे किम् प्रमाणम्। यही बात सिनेमा के साथ है। सिनेमा के साथ तो एक और भी गड़बड़ है, वह यह कि वह बदनाम है। आपके ही शब्दों में भिखमंगे साधु, वेश्याओं से अच्छे न होते हुए भी श्रद्धा के पात्र हैं, इसलिए Tolerable हैं या उतने विरोध के पात्र नहीं जितनी कि वेश्याएँ। इसी तर्क-शैली को लेकर आप सिद्ध करते हैं कि मिनेमा ताड़ी है और साहित्य दूध ? ताड़ी ताड़ी है, और दूध दूध। आपने इन दोनों के दरम्यान एक well marked & well defined line of difference खींच दी है।

मेरा आपसे यहाँ सैद्धान्तिक मतभेद है। मेरा ख़याल है कि यह विचारधारा ही ग़लत है, जो इस तरह की तर्कशैली को लेकर चलती है। कभी ज़माना था, जब इस तर्क-शैली का ज़ोर था, सराहना थी; पर अब नहीं है। इस चीज़ को हमें उखाड़ फेंकना ही होगा।

एक जगह आप कहते हैं कि साहित्य का काम जनता के पीछे चलना नहीं, उसका पथ-प्रदर्शक बनना है। आगे चलकर आप साधु और वेश्याओं की मिसाल देते हैं। साधु वेश्याओं से अच्छे न होते हुए भी जनता की श्रद्धा के पात्र हैं। यहाँ आप जनता की इस श्रद्धा को अपने समर्थन में आगे क्यों रखते हैं ?

आपने जो साहित्य के उद्देश्य गिनाये हैं, उन्हें पूरा करने में सिनेमा साहित्य से कहीं आगे जाने की क्षमता रखता है। Utility के दृष्टिकोण से मिनेमा साहित्य से कहीं अधिक ग्राह्य है; लेकिन यह सब होते हुए भी सिनेमा की उपयोगिता कुपात्रों के हाथों में पढ़कर दुरुपयोगिता में परिणत हो रही है। इसमें दोष 'सिनेमा' का नहीं, उनका है जिनके हाथ में उसकी बागडोर है। इनसे भी अधिक उनका है, जो इस चीज़ को बर्दाश्त करते हैं। बर्दाश्त करना भी बुरा नहीं होता, यदि इसके साथ मजबूरी की शर्त न लगी होती।

गले में जयमाल पड़ने वाली बात भी बड़े मज़े की है–"कितने ही साहित्यिकों ने निशानें लगाये; पर शायद ही कोई मछली बेध पाया हो। जयमाल गले में कैसे पड़ती ?" बहुत खूब ! जिस चीज़ के लिए साहित्यिकों ने सिनेमा पर निशाने लगाये, वह चीज़ क्या उन्हें नहीं मिली–अपवाद को छोड़कर? आप या कोई साहित्यिक यह बताने की कृपा करेंगे कि सिनेमा में प्रवेश करने वाले साहित्यिक यह बताने की कृपा करेंगे कि सिनेमा में प्रवेश करने वाले साहित्यिकों में से ऐसा कौन-सा है, जिसके सिनेमा-प्रवेश का मुख्य उद्देश्य सिनेमा को अपने रंग में रँगना रहा हो ? क्या किसी भी साहित्यिक ने Sincerely इस ओर कुछ काम किया है ? फिर जयमाल गले में कैसे पड़ती ? माना कि साहित्य-संसार में जयमाल और सम्राट् की उपाधियाँ टके सेर मिलती हैं; लेकिन सभी जगह तो इन चीज़ों

का यही भाव नहीं है। पहले सिनेमा-जगत् को कुछ दीजिए, या यों ही जयमाल गले में पड़ जाये ? या सिर्फ़ साहित्यिक होना ही गले में जयमाल पड़ने की Qualification है।

आप बम्बई में रह चुके हैं। सिनेमा जगत् की आपने झाँकी भी ली है। आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं कि हमारे साहित्यिक भी, अपनी फ़िल्मों में निर्दिष्ट रुचि का समावेश करने में किसी से पीछे नहीं रहे हैं। या कहें कि आगे ही बढ़ गये हैं। औरों को छोड़ दीजिए, वे साहित्यिक भी, जो कि एक तरह से कम्पनी के सर्वेसर्वा हैं, अपने फ़िल्म में 200 लड़कियों का नाम रखने से बाज़ न आये। जो कि बज़िद थे कि तालाब से पानी भरने वाले सीन में हीरोइन अण्डरवीयर न पहने रही हो आये, उससे छेड़ाखनी करे और उसका कड़ा छीन कर उस पर डाल दे। बदन पर अण्डरवीयर नहीं, वस्त्र भीगें, बदन से चिपकें और नग्नता का प्रदर्शन हो। यह सूझ उन्हीं साहित्यिकों में से एक की है, जिनके कि आपने नाम गिनाये हैं।...लेकिन मुझे कहना चाहिए कि इसमें साहित्यिक का दोष ज़रा भी नहीं है।...और ऐसी Black sheep majority में, साहित्यिक क्या, और सिनेमा क्या सभी जगह मिल जायेंगी।

आपने अपने लेख में होली, कजरी और बारहमासे की पुस्तकों का ज़िक्र किया है। इन चीज़ों को साहित्य नहीं कहा जाता या साहित्यिक इन्हें Recognise नहीं करते, यह ठीक है; लेकिन उनका अस्तित्व है और जिस प्रेरणा या उमंग को लेकर अन्य कलाओं का सृजन होता है, उन्हीं को लेकर यह होली, कजरी और बारहमासे आये हैं; लेकिन आपका उन्हें अपने से अलग रखना भी स्वाभाविक है (utility के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से)। इसी तरह क्या आपने कभी यह जानने का कष्ट किया है कि सिनेमा-जगत् में Classes & Masses–दोनों की ही ओर से कौन-कौन सी कम्पनियों, कौन-कौन से डायरेक्टरों और कौन-कौन सी फ़िल्मों को recognise किया जाता है ? भारत की मानी हुई या सर्वश्रेष्ठ कम्पनियाँ कौन-सी हैं, यह पूछने पर आपको उत्तर मिलेगा–प्रभात, न्यू थियेटर्स और रणजीत। डायरेक्टरों की गणना में शान्ताराम, देवकी बोस और चन्दूलाल शाह के नाम सुनाई देंगे। तब फिर आपका या किसी भी व्यक्ति का, जो भी फ़िल्म या कम्पनी सामने आ जाये, उसी से सिनेमा पर एक slashing फ़तवा देना कहाँ तक संगत है, यह आप ही सोचें। यह तो वही बात हुई कि कोई आदमी किसी लाइब्रेरी में जाता है। जिस पुस्तक पर हाथ पड़ता है, उसे उठा लेता है। और फिर उसी के आधार पर फ़तवा दे देता है कि हिन्दी में कुछ नहीं है, निरा कूड़ा भरा है। क्या आप इस चीज़ को ठीक समझते हैं ?

अब दो-एक शब्द आपके मादक या मतवालावाद पर भी। पहली बात तो यह कि केवल Utilitarian-Ends की दृष्टि से लिखा गया साहित्य ही साहित्य है, ऐसा कहना ठीक नहीं। ऐसी रचना करने के लिए साहित्यिक से अधिक Propagandist होने की ज़रूरत है। इतना ही नहीं करना, इन Ends को पूरा करने के लिए अन्य साधन मौजूद हैं, जो साहित्य से कहीं अधिक प्रभावशाली हैं। तब फिर साहित्य के स्थान पर उनका साधनों को Preference क्यों न दिया जाये ? इसे भी छोड़िए। Utilitarian Ends को अपनाने में कोई हर्ज़ नहीं। उन्हें अपनाना चाहिए ही; लेकिन क्या सचमुच में Sex appeal उतना बड़ा 'हौआ' है जितना कि उसे बना दिया गया है। क्या सेक्स-अपील से अपने

आपको, अपनी रचनाओं को, पाक रखा जा सकता है ? पाक रखना क्या स्वाभाविक और सजीव होगा ? अपवाद के लिए गुंजाइश छोड़कर मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि आप किसी भी ऐसी रचना का नाम बतायें, जिसमें Sex appeal न हो ? Sex appeal बुरी नहीं है। वह तो होनी ही चाहिए। लोहा तो हमें उस मनोवृत्ति से लेना है, जो Sex appeal और Sex-preversion में कोई भेदभाव नहीं समझती।

अब सिनेमा-सुधार की समस्या पर भी। यह समझना कि जिनके हाथ में सिनेमा की बागडोर है, वे Initiative लें, भारी भूल होगी। यह काम प्रेस और प्लेटफ़ार्म का है; इससे भी बढ़कर उन नवयुवकों का है जो सिनेमा में दिलचस्पी रखते हैं। चूंकि मैं प्रेस से सम्बन्धित हूँ और फ़िलहाल एक सिनेमा-पत्रिका का सम्पादन कर रहा हूँ, इसलिए मैंने इस दिशा में क़दम उठाने का प्रयन्न किया। लेखकों तथा अन्य साहित्यिकों को Approach किया। कुछ ने कहा कि सिनेमा-सुधार की ज़िम्मेदारी लेखकों पर नहीं। (अपने लेख पर दिये गये 'लेखक' के सम्पादक का नोट ही देखिए)। कुछ ने इसे असम्भव-सा बताकर छोड़ दिया। सिनेमा-सुधार की आवश्यकता को तो सब महसूस करते हैं, सिनेमा का विरोध भी जी खोलकर करते हैं; पर क्रियात्मक सहयोग का नाम सुनते ही अलग हो जाते हैं सिर्फ़ इसलिए कि सिनेमा बदनाम है और यह चीज़ हमारे रोम-रोम में धँसी हुई है कि 'वद अच्छा बदनाम बुरा'। क्या यह एक विडम्बना नहीं है ? इस चीज़ को दूर करने में क्या आप हमारी सहायता न करेंगे ?

यह सब होते हुए इस सिनेमा-सुधार के काम को आगे बढ़ाना चाहते हैं। नवयुवक लेखकों के सिनेमा-ग्रुप की योजना के लिए ज़मीन तैयार हो चुकी है, विस्तृत योजना भी शीघ्र ही प्रकाशित कर रहे हैं। इसके लिए ज़रूरत होगी एक निष्पक्ष सिनेमा-पत्र की। जब तक नहीं निकलता, तब तक काफ़ी दूर तक 'रंगभूमि' हमारा साथ दे सकती है। मेरा यह निश्चित मत है और मैं सगर्व कह सकता हूँ इस लिहाज़ से 'रंगभूमि' भारतीय सिनेमा-पत्रों में सबसे आगे है। मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप 'रंगभूमि' की आलोचनाएँ ज़रूर पढ़ा करें। पढ़ने पर आपको भी मेरे-जैसा मत स्थिर करने में ज़रा भी देर न लगेगी, इसका मुझे पूर्ण निश्चय है।

आशा है कि आप भी सिनेमा-ग्रुप को अपना आवश्यक सहयोग देकर कृतार्थ करेंगे।

आपका, नरोत्तमप्रसाद नागर, सम्पादक—'रंगभूमि'



'चित्रपट' मैगज़ीन
बाज़ार सीताराम, दिल्ली, 2-7-1935

श्रद्धेय प्रेमचंद जी, सादर वन्दे !

'हंस' में आपने मेरा प्रतिवाद और अपना उत्तर छापने की कृपा की है। इसके लिए कृतज्ञ हूँ। चूँकि मैं अब पहली जुलाई से 'रंगभूमि' से 'चित्रपट' में आ गया हूँ, अतः आपका लेख, अपना प्रतिवाद, आपका उत्तर तथा अपना प्रत्युत्तर 'चित्रपट' के इसी अंक में दे रहा हूँ। आपकी विचारधारा और सिद्धान्त जिन निर्णयों पर पहुँचते हैं, वहीं पर मैं

भी पहुँचता हूँ, लेकिन असली काम तो वहाँ पर पहुँचने के बाद शुरू होता है। आपके कथनानुसार यदि चला जाये तो हम एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकते। आप कलंक को हेय मानते हैं, उसके प्रति आपके हृदय में घृणा है, और जिसके माथे पर यह धब्बा है, वह कभी इससे बरी नहीं हो सकता; तब कोई करे ही क्या ? करे भी तो उसे 'ग़नीमत' समझें, उड़ते हुए से रूप में...। 'कलंक' के प्रति यदि सब ही इतना सहानुभूतिहीन attitude अख़्तियार कर लें, तो 'सुधार' जिसे कहते हैं, उसे इस संसार से विदा होना पड़े। जो भी हो, इस चीज़ पर विस्तृत रूप से 'चित्रपट' में लिख रहा हूँ। आशा है कि आप उस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की कृपा करेंगे।

एक बात और ! 'चित्रपट' का पिछला अंक आपको मिल गया होगा। उसमें मेरा एक लेख है—'सुनीता और जैनेन्द्र जी'। कृपया लिखिए कि आप उसे पढ़कर सुनीता और जैनेन्द्र जी के बारे में कुछ जान जाते हैं कि नहीं ? कुछ लोगों का कहना है कि मैं बहुत swift लिखता हूँ, details पर ध्यान नहीं देता। फलतः average reader मेरे साथ दौड़ने में कुछ पीछे रह जाता है। इसीलिए मैं आपसे यह पूछा चाहता हूँ।

पत्रोत्तर अवश्य दें। शेष कृपा।

आपका, नरोत्तमप्रसाद नागर।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 12 जुलाई, 1935

प्रिय बहन,

पत्र और कहानी के लिए धन्यवाद। माधुरी में तुम्हारी कहानी बड़ी सुन्दर थी। अभी यह कहानी नहीं पढ़ सका। तुम्हारा उपन्यास कल प्रेस में जा रहा है। अगस्त के अंत तक छपकर तैयार हो जायगा।

शुभाभिलाषी, प्रेमचंद।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 14 जुलाई, 1935

भाईजान,

तसलीम। मैंने एक ख़त लिखा था और हंस के लिए आपसे इस्तदआ[1] की थी और कुछ अदीबों के पते दरियाफ़्त किये थे। आपने तवज्जो न फ़रमाई। क्या मेरा ख़त नहीं पहुँचा। हंस 1 अक्तूबर से अदबियात का रिसाला हो जायगा और इसमें सभी ख़ास-ख़ास ज़बानों के ख़ास-ख़ास अहले कमाल लिखेंगे। आपसे मैंने इस्तदआ की थी कि उर्दू के माहाना लिटरेचर पर आप हंस के लिए एक सफ़े का नोट लिखना क़बूल करें। मैंने इन असहाब के पते पूछे थे :

डॉ. इक़बाल, पं. ब्रजमोहन नाथ दत्तात्रय 'कैफ़ी', मिर्जा सलीम जाफ़र

और चंद और असहाव जिन्हें आप समझते हैं कि उर्दू के मुख़्तलिफ़ शोबों (विभिन्न अंगों) पर लिख सकते हैं ताकि मैं उनसे ख़त-किताबत करूँ।

मुख़लिस, धनपत राय

111, Esplanade Road,
Fort, Bombay, 15th July, 1935

My dear Premchandji,

You must have received the dummy sent by me. Will the Saraswati Press print the 'Hansa' in that size ? Please send me the exact size of the cover page immediately so as to enable me to get a block prepared accordingly.

Yours, K.M. Munshi

P.S. : The Co. will be registered in a few days. No definite reply from Gandhiji yet.

••

16-7-1935

बन्धुवर,

उस दिन मैं आपसे कहना भूल गया। मकान वाला डिग्री इजरा करावेगा तो दस-पाँच रुपये और ख़र्च पड़ेंगे और वह हमारे सिर ठुकेंगे। इससे तो यही अच्छा है कि डिग्री को आने न दिया जाय। रोज़-रोज़ डिग्री का आना कोई गौरव की बात तो नहीं है। आपने 200 रु. कागज़ वाले को दिये हैं। 60 रु. टाइप वाले को। अभी उन 500 रु. में से हमारे पास 200 रु. बचे हैं। यह 200 रु. मकान वाले को दे आइए और आगे से यह ख़याल रखिए कि इस तरह काम न चलेगा। मुझे कुछ न मिले, न सही, लेकिन प्रेस का ख़र्च तो निकलना ही चाहिए। अगर आप प्रेस को 8 साल तक चलाने के बाद मकान का किराया तक नहीं दे सकते तो यह दुर्भाग्य की बात है। दो बीमा-कम्पनियाँ हैं। इनसे ऐसा राह-रस्म रखिए कि फुटकल काम आपके यहीं लगातार आता रहे। जब प्रेस दिवालियेपन की दशा में है तो हम निश्चिन्त होकर नहीं बैठ सकते। यह तो वही कर सकते हैं जिनका कारोबार मज़े से चल रहा है और उन्हें काम की फ़िक्र नहीं है। अगर मकान का किराया चुकाने के लिए हमें किसी के द्वार पर दस बार दौड़ना भी पड़े तो दौड़ना चाहिए, रेट घटाकर भी काम करना पड़े तो कोई हरज नहीं। जब अपने पास काम रहेगा, तो हम ऊँचे रेट पर भी काम करेंगे, लेकिन इस दशा में तो सब-कुछ करना पड़ेगा। सोचिए, ये 500 रु. मैं न लाता तो आपको काग़ज़ न मिलता, मकान वाला डिग्री कराकर आपकी मशीनें नीलाम करा लेता, बस, सारा उद्योग शान्त हो जाता। 'हंस' को चलाने की यह आख़िरी कोशिश कर रहा हूँ। अगर अब भी न चला तो फिर प्रेस और 'हंस' सब-कुछ बन्द करना पड़ेगा। आख़िर कब तक नुक़सान और अपमान और चिन्ता में प्राण देता रहूँगा ?

मेरे पास थोड़े से सादे लिफ़ाफ़े भिजवाइए। यहाँ जो दो-चार प्रकाशक हैं उनसे बराबर मिलते रहिए, काम ठीक समय पर दीजिए। जिस रीति से अब तक काम हुआ है, उसमें सुधार होना ज़रूरी है, नहीं तो यह सब बैठ जायगा।

प्रेमचंद

••

सरस्वती प्रेस, बनारस, 16 जुलाई, 1935

भाईजान,

तसलीम। मैं अभी बंबई गया था। शायद आपको इत्तला दे चुका हूँ। यह तय किया

गया है कि अक्तूबर से 'हंस' को इस मक़सद की तकमील के लिए वक़्फ़ कर दिया जाय जिसका मैं ज़िक्र करूँगा। कुछ अर्से से यह तहरीक हो रही थी कि हिन्दी में, जो अब रफ़्ता रफ़्ता क़ौमी ज़बान का दर्जा हासिल करती जा रही है, एक ऐसा रिसाला शाया हो जाये तो हर एक सूबे की अदबियात से हिन्दी-शनास अशख़ास[1] को आशना[2] कर दे। अभी तक हिन्दोस्तान का कोई क़ौमी अदब नहीं है। हर एक सूबा फ़र्दन फ़र्दन[3] अपने अदब की तरक़्क़ी के लिए कोशां[4] है। चुनांचे एक सूबे के लोग दूसरे सूबे के बाकमालों से बिल्कुल ग़ैरमुतअर्रिफ़[5] हैं। उर्दू में बहुत कम असहाब को मालूम है कि बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल, कनाडी वग़ैरह ज़बानों में क्या है। अला हाज़ा इन सूबेजात में भी उर्दू से इतनी ही लाइल्मी है। हम अंग्रेज़ी बाकमालों से वाक़िफ़ हैं; जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड के अदीबों के असमाये गरां[6] हमारी नोके ज़बान पर हैं लेकिन हिन्दोस्तान में सूबेजाती ज़बानों में कौन से बाकमाल पड़े हुए हैं इसकी हमें बिलकुल ख़बर नहीं। इसी बेगानगी को दूर करने और हिन्दोस्तान भर के अदीबों में बरादराना रब्त-ज़ब्त पैदा करने और उन्हें एक दूसरे की तसानीफ़[7] से रूशनास[8] कराने के लिए एक अंजुमन की बुनियाद डाली जा रही है जिसका पहला क़दम इस रिसाले को शाया करना है। जिससे पब्लिक में क़ौमी अदब का एहसास हो जाये और अदबी ख़ादिमों को कम-से-कम सारे हिन्दोस्तान में कुबूलियत और शोहरत हासिल हो और दूसरे सूबे के लोग भी इनके ख़यालात और कैफ़ीयात[9] से फ़ैज़याब[10] हों। इस रिसाले की इमदाद के लिए मैं चन्द चोटी के मुसलिम अदीबों के नाम और पते चाहता हूँ। बराहे करम आप भिजवा दें। अगर आपके पास वक़्त हो (हालांकि मैं जानता हूँ आपके पास बिलकुल वक़्त नहीं है) और आप चोटी के उर्दू रसायल में छपनेवाले इल्मी और तनक़ीदी मज़ामीन पर कुछ नोट लिखकर हर माह भेज दें तो वह एक अदबी ख़िदमत होगी। दो सुफ़हात से ज़ायद की तो गुंजाइश नहीं है। हर एक ज़बान के लिए दो-दो सुफ़हात दिये जायेंगे तो भी सोलह-सत्रह सुफ़हात पूरे हो जायेंगे। आपके पास रिसाले तो सभी आते हैं, उनमें से चार पांच रिसालों के चार पांच मज़ामीन के मुक़द्दमे[11]और इक़्तबासात[12] जैसे माडर्न रिव्यू में होते हैं और जैसे हंस में दिये जाते हैं कर दिये जायें तो काम चल जाये। आप मुझे उन हज़रात के पते लिख दें तो मैं उनसे भी इस्तदआ करूँ और आपको सुबुकदोश कर दूँ। हालांकि आप चाहें तो इस उनवान[13] से हर माह सारे हिन्दोस्तान के बाकमालों को अपना ममनून[14] बना सकते हैं।

1. डॉ. इक़बाल। 2. पं. ब्रजमोहन नाथ दत्तात्रेय कैफ़ी। 3. डॉ. मुहम्मद हबीब। 4. डॉ. ज़ाकिर हुसैन। 5. मौलाना सुलेमान नदवी। 6. साहिबे गुले रानां। 7. मि. रामबाबू सक्सेना।

आपका भाई, धनपत राय।

1. हिन्दी जानने वाले लोगों, 2. परिचित, 3. अलग-अलग, 4. प्रयत्नशील, 5. अपरिचित, 6. भारी भारी नाम, 7. रचनाओं, 8. परिचित, 9. समाचारों, 10. लाभान्वित, 11. भूमिकाएँ, 12. उद्धरण, 13. शीर्षक, 14. अनुगृहीत।

30-7-1935

बन्धुवर,

हाँ, जगह तो जैसी चाहिए वैसी नहीं है, लेकिन सभी बातें तो बड़ी मुश्किल से मिलती हैं। देखिए, इरादा तो है कि टेलीफ़ोन भी लगा लिया जाय और रोशनी भी। इससे बड़ी सुविधा हो जायगी। एक साइकिल चढ़नेवाला आदमी दरकार होगा। साइकिल अभी नहीं है, मगर गुरूराम की रहेगी। उस पर चढ़ कर डाकख़ाने या शहर जितनी बार चाहें, जाया जा सकता है। छपाई का काम तो अपने पास ही काफ़ी है। केवल किताबों की निकासी का प्रबन्ध करना पड़ेगा। इसके लिए कभी-कभी आपको, कभी मुझे, कभी गुरूराम को छोटे-छोटे दौरे करने पड़ेंगे। आप आज मालिक-मकान को किराया देकर रसीद ले लीजिए। 1 तारीख़ को चैक ले लीजिए। परसों गाड़ियों का प्रबन्ध कर लिया जायगा। यहाँ से ईटें लेकर जो गाड़ियाँ जाती हैं, वह बारह-एक बजे तक प्रेस में आ जायेंगी। एक-एक गाड़ी दो-दो तीन खेप कर लेगी। मशीन ठेले पर लानी होगी। गाड़ी का किराया मैं दे दूँगा, और क्या ख़र्च होगा ? पुराने मकान का किराया इधर कई महीने का बाक़ी है। उससे चाहे माहवार क़िस्त कर लेना होगा या वह चाहेगा तो प्रोनोट दे देंगे।

उर्दू में यह लेख भेजता हूँ। लेख पर पत्र का पता दर्ज है। रजिस्टर्ड भेज दीजिएगा। आज चला जाना चाहिए।

और तो कोई नयी बात नहीं।

धनपत राय।

●●

सम्भवतः जुलाई, 1935

भाई साहब, तसलीम !

'हंस' पर एक मज़मून हस्बेवायदा रवाना-ए-ख़िदमत है। मज़मून नामुकम्मिल है। अभी एहसास मज़मून भी पूरा नहीं शाया हुआ। जब वो पूरा हो जायेगा तो इसका दूसरा हिस्सा भेज दूँगा। ख़त लिख रहा हूँ, ज़रूर रवाना करूँगा। अगर जब ठीक से ख़त्म होगा। अब की 'आज़ाद' नहीं आया, मालूम नहीं, क्या बात है ? इससे पहले जो ख़त और मज़मून भेज चुका हूँ, वो पहुँचे होंगे। 'प्रेम-पच्चीसी' हिस्सा दोयम क़ातिब के पास गयी या नहीं ? और क़िस्से ढूँढ़ने की तक़लीफ़ आपको उठानी होगी। बाक़ी सब ख़ैरियत है। उम्मीद है आप भी बख़ैरियत होंगे।

उलराक़म, धनपत राय।

●●

हंस कार्यालय, बनारस, 2 अगस्त, 1935

प्रिय बनारसीदास जी,

आपका पत्र पाकर कृतज्ञ हूँ और आपको अपने काम में इतन दिलचस्पी लेते देखकर कृतज्ञ हूँ। मगर जब तक कि मुझे कोई योग्य अनुवादक नहीं मिल जाता, फ़ादर ऐण्ड्रज़ को ख़ामख़ाह तकलीफ़ देना ठीक नहीं। अब तक शायद वक्त नहीं आया। जब

वक्त आयेगा, मददगार उठ खड़े होंगे।

जहाँ तक तुलसी जयन्ती की बात है, मैं इस काम के लिए सबसे कम योग्य व्यक्ति हूँ। एक ऐसे उत्सव की अध्यक्षता करना जिसमें मैंने कभी कोई रुचि नहीं ली, हास्यास्पद बात है। मुझे अपने भीतर आत्मविश्वास की कमी जान पड़ती है, डर लगता है। सच बात तो यह है कि मैंने रामायण भी आदि से अन्त तक नहीं पढ़ी है। यह एक लज्जाजनक स्वीकारोक्ति है, मगर बात ठीक है।

सम्प्रति मैं बहुत व्यस्त हूँ। मैं अपना कार्यालय और निवास एक नये मोहल्ले में ले जा रहा हूँ और मेरी उपस्थिति बहुत वांछनीय है। कृपया मुझे क्षमा करें। चीज़ जब चल निकलेगी तो संभव है कि मैं आऊँ।

आपको मेरा पत्र मिला होगा। मैं 'हंस' के लिए आपकी ओर से किसी साहित्यकार जैसे कि पं. पद्मसिंह शर्मा के स्केच की उम्मीद लगाये हूँ। पहला अंक पहली अक्टूबर को निकलेगा। आप कृपया अपनी रचना इस महीने के अन्त तक भेज दें।

आपका, प्रेमचंद।

●●

दफ़्तर हंस, बनारस, 6 अगस्त, 1935

मेहरबाने बन्दा,

तसलीम। ममनून हूँ। 'शाहकार' का अब तक मुन्तज़िर हूँ। मैंने तो समझा था आपने वह इरादा तर्क कर दिया। मैं ग़ालिबन पन्द्रह अगस्त तक अपना अफ़साना ख़िदमते आली में ज़रूर-बिल-ज़रूर हाज़िर करूँगा। मैं तो मुन्तज़िर था और शायद एक बार दर्याफ़्त भी किया था कि रिसाला इजरा हुआ या नहीं। 'हंस' अब आल-इंडिया लिटरेरी रिसाला होने जा रहा है जिसमें गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू कनाड़ी, बँगला–सभी ज़बानों के अदीब अपने मज़ामीन भेजेंगे। चूँकि इसमें एक हिस्सा उर्दू के लिए लॉज़िमी तौर पर मख़सूस है और निहायत मुमताज़ हिस्सा, इसलिए मैं चंद मुन्तख़ब और मुस्तनद उर्दू रिसाइल से 'हंस' का तबादला करना चाहता हूँ। आप 'शाहकार' से 'हंस' का तबादला मंजूर फ़रमायें और अगस्त का पर्चा भेज दें। मैं भी अगस्त का पर्चा रवाना कर दूँगा। इसके साथ ही वह पैम्फ़्लेट रवाना करता हूँ जो आलइंडिया अदबी तहरीक की जानिब से अंग्रेज़ी में शाया हुआ है। और इसके साथ यह ख़त भी और आपसे यह इस्तदआ करूँगा कि आप इस आल-इंडिया तहरीक में शिरकत फ़रमायें और इसमें अमली हिस्सा लें। तहरीक के अग़राज़[1] और मक़ासिद[2] इस पैम्फ़्लेट से जनाब पर वाज़े[3] हो जायँगे। इसके साथ अलहदा एक ख़त इरसाल है जिसकी नक़्ल उर्दू के अदीबों की ख़िदमत में दावत के तौर पर इरसाल की गयी है। मुझे उम्मीद है कि जनाब इस क़ौमी, अदबी ख़िदमत में न जाती तौर पर बल्कि अपने असर से भी इमदाद फ़रमायेंगे।

अहक़र, प्रेमचंद।

1. लक्ष्य, 2. उद्देश्य, 3. स्पष्ट।

●●

Prop. & Editor I. A. K.
Ishrat Rahmani
Ref. No. 786

The Nairang
an Urdu Monthly of Art &
Literature for Cultured Taste
Dated 13.8.1935

मुकर्रम,

तस्लीम और नियाज़ मिज़ाजेगरामी,

इसके अर्ज़ करने की ज़रूरत ग़ालिबन नहीं कि उर्दू रिसालों का और उनका, जिनमें ज़माने की रफ़्तार के मुताबिक़ रतबोयास (आशा-निराशा, ऊँच-नीच) न समा सकता हो, आजकल ज़िन्दा रहना किस क़दर दुश्वार है। अब सिर्फ़ अर्ज़ करना यह है कि अपने रिसाले का एक ख़ास नम्बर 'अफ़साना एडीशन' इस तरतीब से शाया कर रहा हूँ कि दुनिया भर की तमाम जुबानों के अफ़साने इसमें शामिल हों और ख़ुदा का फ़ज़ल है कि नम्बर की तरतीब में बहुत-कुछ कामयाबी नसीब हो रही है। ग़ैरमुल्की मुसन्निफ़ीन (लेखकों) के ताज़ा अफ़साने भी हासिल कर लिये हैं। इनके ख़ास तराजिम (अनुवाद) शाया कर रहा हूँ। उर्दू अफ़सानों में ओरिजिनल क़िस्से अल्लामा राशिद-उल-ख़ैरी, ख़्वाजा हसन निज़ामी और मुंशी प्रेमचंद के शाया करके इस एडीशन को आलातरीन (सर्वश्रेष्ठ) बनाने का आरजूमन्द हूँ। अव्वल-उल-ज़िक्र हर साहब से हासिल कर चुका हूँ। अब आपकी ख़िदमत में इल्तिमास (प्रार्थना) है कि क़दीम नियाज़मन्दी का लिहाज़ फ़रमाकर जिस तरह भी मुमकिन हो एक कहानी अव्वलीं फुर्सत में मर्हेमत (मेहरबानी, कृपा) फ़र्मा दीजिए। अब क़ामयाबी का इनहिसार (निर्भरता) आपकी तवज्ज़ो पर है, और आपकी तवज्जो का मुन्तजिर हूँ, मायूस न कीजिए।

नियाज़मन्द, इशरत रहमानी।



हंस कार्यालय, जगतगंज, बनारस कैंट, 17 अगस्त, 1935

प्रिय बनारसीदास जी,

कृपा पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ। मैं खुद ऐसे झगड़ों में पड़ना पसन्द नहीं करता लेकिन जब कोई गुण्डा आपका गला दबा रहा हो तो आपको अपनी रक्षा करनी ही पड़ेगी, चाहे आप दार्शनिक ही क्यों न हों। अब मुझे पक्का विश्वास हो गया है, कि उस आदमी का दिमाग़ अति-भावुक है, भावुक नहीं द्वेषपूर्ण। शायद उसको लगता है कि दुनिया से उसको अपना प्राप्य नहीं मिल रहा है और इसलिए उसको जब-तब अपने आपको आगे लाना चाहिए और अपनी श्रेष्ठता की घोषणा करनी चाहिए। मैंने तो जो कुछ महसूस किया, सीधे-सीधे शब्दों में लिख दिया और अगर वह चुप नहीं हो जाता तो मैं उसका सिर तोड़ दूँगा। ज़रा उसकी धृष्टता तो देखिये !

मैं वहाँ नहीं आ सका इसके लिए आप मुझे गालियाँ न दीजियेगा। अगर आपने तुलसी उत्सव मेरे ऊपर न लगा दिया होता तो मैं आता। लेकिन एक ऐसे व्यक्ति का तुलसी जयन्ती में सभापतित्व करना, जिसने कभी उन्हें पढ़ा नहीं और जो उनके संबंध में कही जाने वाली अतिमानवी बातों में विश्वास नहीं करता, हास्यास्पद है। उन्होंने राम और हनुमान को देखा और वह बन्दर वाली घटना, सब खुराफ़ात। मगर क्या तुलसी-भक्त

लोग मेरी काफिरों जैसी बात पसंद करेंगे ? इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि वह विक्रम सम्वत् दस में पैदा हुए या बीस में या चालीस में ? क्यों अपनी बुद्धि ख़ामख़ाह इसके पीछे बर्बाद करो जबकि और भी न जाने कितनी चीज़ें करने को पड़ी हैं। वह एक महान कवि थे, उनकी व्याख्या करो, दार्शनिक व्याख्या, मनोवैज्ञानिक व्याख्या, प्राणिशास्त्रीय व्याख्या, शरीरशास्त्रीय व्याख्या, जो चाहे करो, मगर उन्हें ईश्वर काहे बनाते हो।

'हंस' अब एक कंपनी के हाथ में दे दिया गया है और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और मैं इसके अवैतनिक सम्पादक हैं। देखिये यह व्यवस्था कैसी चलती है। इस विचार को हमें सफल बनाना ही होगा। क्या आप नहीं सोचते कि सभी (भारतीय) साहित्यों को हिन्दी के माध्यम से उपलब्ध करना एक ऐसा विचार है, जिसे परीक्षा करके देखना चाहिए ? यह ठीक है कि जब-तब हमारी पत्रिकाओं में बँगला, मराठी, उर्दू के अनुवाद निकलते रहते हैं। कुछ अच्छे और योग्य उर्दू लेखकों और बंगालियों को सामने लाकर 'विशाल भारत' ने एक उल्लेखनीय सेवा की है। हमारी सारी शक्ति इसी काम में लगेगी। अकेला सवाल यह है कि अच्छी सामग्री हमें कैसे मिले। पारिश्रमिक हम दे नहीं सकते और केवल अनुवादों का सहारा लेना नहीं चाहते। हम ऐसे मौलिक लेख चाहते हैं जो पहली बार 'हंस' में छपें। कोशिश करके देखें कि यह विचार हमारे साहित्यिक नक्षत्रों को कैसा पसन्द आता है। बंगाली और मराठे और कुछ मुसलमान हो सकता है कि हिन्दी को यह स्थान दिये जाने पर नाक-भौं सिकोड़ें मगर शरत बाबू और रवि बाबू दोनों को यह विचार पसन्द आया है। उर्दू लेखकों ने मेरे निमंत्रणपत्र का उत्तर बड़ी तत्परता से और सौजन्य से दिया है। और इधर हिन्दी महारथियों को लिखे गये तमाम पत्रों में से शायद ही किसी पत्र का उत्तर आया हो। बाबू मैथिलीशरण जी अकेले आदमी हैं जिन्होंने जवाब दिया है। दूसरों ने पत्र की प्राप्ति को स्वीकार भी नहीं किया। यह है हमारे हिन्दी लेखकों की मनोवृत्ति। अगर सम्भव हो तो आप पहली सितम्बर तक पद्म सिंह जी का स्केच भेज दें। संक्षेप में लिखियेगा—दो पृष्ठ काफी होंगे।

अगर पहले अंक के लिए आप, शुक्ल जी, जैनेन्द्र और मैं लिखूँ और और भी कुछ लोग, तो जगह भर जाती है। हिन्दी के लिए हमारे पास 20 पृष्ठ से अधिक नहीं है।

तुर्गनेव की जो चीज़ आपने बड़ी मेहरबानी से नक़ल की है, मैं उसका अनुवाद करूँगा और उसे प्रकाशित करूँगा।

आपका, धनपत राय।



हंस कार्यालय, बनारस कैंट, 18 अगस्त, 1935

प्रिय इन्द्र,

जानकर खुशी हुई कि तुम्हें काम मिल गया, अस्थायी ही सही, आगे चलकर स्थायी हो जायगा। एक बन्धु ने अभी हाल में तुम्हारी पुस्तक की एक प्रशंसात्मक समालोचना लिखी है। जहाँ तक दूसरी समालोचनाओं की बात है, उनमें से कोई भी काटकर रखने क़ाबिल न थी। हमने उनमें से एक-दो अच्छे वाक्य निकालकर अपने विज्ञापन में डाल दिये हैं। लोग उसे पसन्द कर रहे हैं लेकिन अब तक आर्डर बहुत कम आये हैं। पुस्तक विक्रेताओं को हम तैंतिस प्रतिशत देते हैं। अगर तुम इस पुस्तक के आर्डर ले सको तो

हम दोनों मुनाफे को बाँट सकते हैं। उसकी लागत पच्चीस प्रतिशत है। तुमको हम पन्द्रह प्रतिशत देंगे, पुस्तक विक्रेताओं को तैंतिस प्रतिशत। विज्ञापन मद्धे पाँच प्रतिशत। अठहत्तर प्रतिशत इस प्रकार निकल गया। हमारे पास बस बाइस प्रतिशत बचा, उसके साथ पैसा फँस जाने का खतरा लगा हुआ। इस बाइस प्रतिशत में से मैं तुमको कोई भी हिस्सा दे सकता हूँ। जितने आर्डर तुम्हारी मार्फत मिलें, उन पर तुम पचपन प्रतिशत ले सकते हो जिसमें तुम्हारी रायल्टी भी शामिल होगी। तैंतिस प्रतिशत तुम व्यापारियों को दे सकते हो और पन्द्रह प्रतिशत अपने रायल्टी का रख सकते हो। और सात प्रतिशत और। तैंतालिस प्रतिशत जो बचे, उसमें से तीस प्रतिशत छपाई और बिक्री के खर्चों में निकल जायगा और प्रकाशन संस्था के पास मुमकिन है पन्द्रह प्रतिशत बच रहे। इससे ज़्यादा खरी कोई बात हो सकती है ? जैसा कि मैंने तुमसे कहा था, मैं पेशेवर प्रकाशक नहीं हूँ और मैं कुल स्टाक तुम्हीं को पचपन प्रतिशत पर दे देने के लिए तैयार हूँ। जितने आर्डर ले सको, लो। एक-दो प्रतियों से काम नहीं चलेगा। छोटे आर्डरों पर हम ज़्यादा कमीशन नहीं देते।

'शक्ति-पूजा' तुम्हारे पास भेजी जायगी। पता नहीं मैनेजर ने अब तक क्यों नहीं भेजी। शायद उस अंक की अतिरिक्त प्रतियाँ नहीं हैं।

'जलतोरी' बहुत सुन्दर है। मगर जैसा कि तुम जानते हो, अब मेरे पास हिन्दी के लिए बहुत कम जगह है। अगर मुमकिन हुआ तो मैं उसे पहले ही अंक में दे दूँगा वर्ना बाद के किसी अंक में।

तुम्हारी माता जी ठीक हैं।

तुम्हारा, प्रेमचंद।



22-8-35

प्रिय श्रीराम जी,

आप इस विषय पर लेख लिखकर हिन्दी लेखको का परदा क्यों खोल रहे हैं ? मैं खुद लेखक भी हूँ, और एक पत्र का प्रोप्राइटर भी हूँ, लेकिन बहुत इच्छा रहने पर भी मैं लेखकों की कोई सेवा नहीं कर सकता। जो आमदनी होती है, वह इतनी भी नहीं होती कि कागज़ और छपाई का पूरा ख़र्च निकल आवे। लेखों पर मुझे अधिक-से-अधिक एक लेख पर 30 रु. मिले होंगे, और लेखों से मेरी औसत आमदनी 30 रु. महीने से ज़्यादा कभी न हुई। साल का औसत इतना भी शायद नहीं पड़ता। 'हंस' से कुछ मिलता नहीं। 'माधुरी', 'सरस्वती', 'विशाल भारत' में मैंने चार साल से कुछ लिखा ही नहीं। बस,...से तीसरे-चौथे महीने पच्चीस-तीस रुपये मिल जाते हैं, और उर्दू वालों से भी साल में 100 रु. मिल जाते होंगे। कुल मिलाकर 300 रु. सालाना से किसी हालत में ज़्यादा नहीं, इससे कम होना बहुत सम्भव है। पुस्तकों की बिक्री 200 रु. मासिक की है, मगर वह सब प्रेस और 'हंस' के घाटे की भेंट हो जाता है, और मुझे इधर-उधर नौकरी करके पेट पालना पड़ता है। मैं तो असफल लोगों में हूँ, और लोग शायद मुझसे अच्छे हों...

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट

भवदीय, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 26-8-1935

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर प्रणाम !

सविनय निवेदन है कि अभी तक हमारी जून मास की तनख़्वाह नहीं मिली। इसका कारण यह है कि श्रीमान् मैनेजर साहब (प्रवासीलाल वर्मा) कहते हैं कि हमने एक विज्ञापन हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय का दिया था, जोकि जून मास में छपने वाला था, किन्तु मैं विश्वासपूर्वक कह रहा हूँ उन्होंने मुझे विज्ञापन नहीं दिया। मगर उनके कहने पर तथा अपना अफ़सर समझकर व्यर्थ झगड़ा बढ़ने के ख़याल से स्वीकार कर लिया कि शायद आप दिये होंगे। इस पर श्रीमान जी ने 5 रु. जुर्माना कर दिया है, जिससे अभी तक हिसाब रुका है। अगर मान लीजिए कि हमारी भूल है तो भी ऑफ़िस का ख़याल करके आप लोगों को क्षमा करना चाहिए। भूल मनुष्य से अक्सर हो ही जाती है। यदि एक मामूली भूल पर क्षमा न किया जायगा, तो हम ग़रीबों का किस तरह से निर्वाह होगा। मैनेजर साहब से हमने क्षमा करने के लिए प्रार्थना किया; किन्तु इससे वंचित रहा। इसलिए आपसे विनय कर रहा हूँ कि आप हम लोगों के मालिक तथा पोषक हैं। इस पर अवश्य ही उचित विचार करेंगे। एक धृष्टता मैं आपसे भी कर रहा हूँ कि अक्टूबर माह की तनख़्वाह न मिलने से हमने छोटे भाई की फ़ीस जमा करने के लिए, पिता के अनजाने में एक सज्जन से लोन लेकर काम चला लिया था, जिसका कि आज तक सूद दे रहा हूँ; किन्तु प्रेस की स्थिति देखकर माँग न सका, क्योंकि यह आँखों देख रहा हूँ कि इधर स्थिति खराब है। यह देखकर खुद ही माँगने में संकोच होता है। आशा है आप इस पर पूर्णरूप से विचार कर फ़ाइन माफ़ करने की उचित कृपा करेंगे।

प्रार्थी, राजमोहनलाल।

(पत्र पर प्रेमचंदजी का नोट है। लिखा है–इनका फ़ाइन क्षमा कर दीजिए–धनपत राय)



'हंस' आफिस, बनारस कैंट, 27-8-1935

प्रिय वीरेन्द्र कुमार, आशीष !

तुम्हारी कहानी मिली। यह तो बड़ी 'सेण्टीमेण्टल' हो गयी है, और पता नहीं चलता, किस मनोवैज्ञानिक सत्य का चित्रण करना चाहते हो। कहानी की सबसे मुख्य वस्तु वह गुजराती पत्र है, मगर मैं उसका आशय न समझ सका। उसका हिन्दी अनुवाद हो जाने से कदाचित् कहानी में कुछ तत्व आ जाय। सभी के बचपन में प्रायः ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं। उसका हमारे जीवन पर क्या प्रभाव होता है, हमें यह देखना है। युवती के पत्र से उसके मनोसत्य तो प्रकट हो जायेंगे, लेकिन नायक के जीवन ने आगे चलकर इस प्रेम के फलस्वरूप क्या रंग पकड़ा ? आखिर इस प्रेम की कथा क्यों सबको सुनायी जाय, जब तक उसमें कोई ख़ास बात या विशेषता या नयापन न हो। अगर हम सभी अपनी जवानी की प्रेम-कथाएँ लिखने बैठें तो सोचो, कितना बड़ा दफ़्तर हो जाय।

तुम पहले गुजराती पत्र का अनुवाद भेज दो।

1 अक्टूबर को 'हंस' नये रूप में निकल रहा है, यह तो तुम्हें मालूम है।

श्री प्रभाकर माचवे ने तुम्हारी दोनों प्रकाशित कहानियों की सराहना की है।

शुभाभिलाषी, प्रेमचंद।



हंस कार्यालय, बनारस,
31 अगस्त, 1935

जनाब मुकर्रमे बंदा,

तसलीम। 'दकन की उर्दू शायरी' के लिए शुक्रिया। चूँकि बम्बई में दफ़्तर में कोई उर्दूख्वां आदमी नहीं है, उर्दू मज़ामीन के तर्जुमे की ज़िम्मेदारी मुझ पर आयद की गयी है। मैं बहुत जल्द मज़मूनेहाज़ा का हिन्दी तर्जुमा आपकी ख़िदमत में भेज दूँगा। खयाल यही है कि देर न हो जाय क्योंकि पहली सितम्बर से पर्चे की तबाअत शुरू हो जायगी। अगर मुझ पर एतबार कर सकें तो मैं इसका ज़िम्मा ले लूँगा कि आपके मज़मून का बेहतरीन तर्जुमा होगा और अस्ल से किसी तरह इनहराफ़ न होगा। हाँ, अस्ल की खूबियाँ तर्जुमे में आनी मुश्किल हैं जो शायद आप खुद तसलीम फ़र्माएँगे।

हंस ने अदब के इस वसीह मैदान में क़दम रखने की जुर्रत की है, देखें उसे कहाँ तक कामयाबी होती है।

प्रेमचंद

●●

सरस्वती प्रेस, काशी,
1246/31-8-1935

प्रिय जनार्दन,

मुझे विश्वास नहीं आता कि तुम्हें मेरा पत्र मिला और 'हंस' की नयी आयोजना की सूचना मिली, फिर भी तुमने न उत्तर दिया, न अपना लेख भेजा। यह महत्त्वपूर्ण स्कीम है और भारत के बड़े-बड़े दिमाग़ इसमें सहयोग कर रहे हैं। पहले अंक के लिए महात्माजी भी एक लेख दे रहे हैं। मेरे मित्रों का लेख इस अंक में न हो, ऐसा सोचकर निराशा होती है। तुम हिन्दी ड्रामा के विकास पर या वैसा ही एक शब्दचित्र, जैसा तुमने 'जागरण' में लिखा, लिख दो और विलम्ब न करो। अगर 10 तारीख़ तक भी तुम्हारा लेख आ जायगा तो मैं दे दूँगा। तुम अपनी रचनाओं के लिए क्षेत्र बढ़ा रहे हो, यह सोच लो। मैं अगर इस स्कीम को व्यर्थ समझता तो खुद क्यों पड़ता ! लिखो, जल्द लिखो।

तुम्हारा,
प्रेमचंद।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी,
31-8-1935

प्रिय भाईसाहब,

मैं तो आपसे हार गया। मुंशी जी[1] बार-बार लिखते हैं, खण्डवा के पीर से अवश्य लेख मँगवाइए और खण्डवा के पीर बेपीर हो रहे हैं। न याचना पर ध्यान देते हैं और न यह समझते हैं कि हिन्दी की लाज कौन निबाहेगा। काका जी[2] और महात्मा जी[3] आदि महानुभावों के लेख आ गये। डॉ. इक़बाल तक ने लेख भेजा, पर जिनके नाम पर हम

उछलते थे वह मालूम नहीं क्यों नाराज़ हैं। अरे भैया ! कुछ तो लिखो, कोई कहानी ही सही, प्राकृतिक वर्णन ही सही, भावात्मक गद्य ही सही !

भवदीय,
प्रेमचंद।

1. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, जो उस समय प्रेमचंद के साथ 'हंस' के सम्पादक थे, 2. काका कालेलकर, 3. महात्मा गांधी।

●●

सरस्वती प्रेम, काशी,
9 सितम्बर, 1935

प्रियवर, धन्यवाद।

आपके यहाँ से लेख का अनुवाद में देर हो जाने के कारण मैंने उसे 'आज' के मुंशी कालिकाप्रसाद से करा लिया। सुन्दर अनुवाद हुआ है। वह हंस का पहला लेख था और उसका सात को प्रेस में जाना जरूरी था, नहीं हमारे लिये बिना किसी सहकारी सम्पादक के अकेले 120 पृष्ठ की पत्रिका निकालना कठिन हो जाता।

आप Quarterly भेजवा दें। मैं उसकी बड़े शौक़ से आलोचना करूँगा।

भवदीय,
प्रेमचंद।

●●

'हंस' कार्यालय, बनारस,
15-9-1935

प्रिय प्रभाकर माचवे,

मैं तुम्हें कई दिनों से पत्र लिखने का इरादा कर रहा था, पर तुम्हारे पहले पत्र में तुम्हारा पता नहीं था। कल तुम्हारे दोनों लेख मिल गये हैं। मैंने श्री खांडेलकर जी की कहानी पढ़ी। वास्तव में बहुत सुन्दर चीज़ है। हाँ, अन्त में या तो अनुवाद में कुछ रह गया है या और कोई बात है। जमना में ताज का प्रतिबिम्ब कैसे कुछ और हो गया, यह मैं न समझ सका। मगर इस कहानी को छापने के लिए मुझे श्री खांडेलकर जी से अनुमति लेनी पड़ेगी। मुझे उनका ऐड्रैस मालूम नहीं। तुम लिख दो तो मैं उन्हें पत्र लिखूं। यदि वह अनुमति न देंगे तो कैसे छपेगी ? 'मराठी के तीन उपन्यासकार' मार्मिक आलोचना है। वह मैं अक्टूबर के अंक में दे रहा था। तुम्हें धन्यवाद दूँ तो गोया यह मेरा काम होगा, तुम्हारा काम नहीं। इसलिए धन्यवाद न दूँगा, पर तुम्हारा काम सराहनीय है। दूसरे-तीसरे महीने 'हंस' के लिए कुछ दिया करो। मैं तो समझता हूँ, अगर अनुवाद करके तुम मराठी के अच्छे उपन्यासों की विस्तार से आलोचना कर दिया करो तो वह एक चीज़ हो जायगी और सम्भव है पुस्तक बन जाय। मि. फड़के, देशपाँडे और खांडेलकर तीनों मास्टरों की सर्वोत्तम कृतियों की आलोचना तीन महीने में कर डालो। इसमें तुम्हें परिश्रम कम पड़ेगा और तुम्हारी पढ़ाई में बाधा न पड़ेगी।

तुम्हारा कहानी 'दूध का पानी' मुझे बहुत अच्छी लगी, लेकिन तुम जानते हो, मैं ख़ाली भावुकता नहीं चाहता, कहानी में कुछ मतलब की बात भी चाहता हूँ।

वीरेन्द्र कुमार ने अभी एक और संस्मरण भेजा है। किसी गुजराती युवती की प्रेम-कथा है। मेरा विश्वास आत्मलग्न में नहीं है। विवाह एक काण्ट्राक्ट सही, लेकिन अब कण्ट्राक्ट पूरा हो गया तो बिना विशेष कारण के उसकी उपेक्षा को मैं बेईमानी समझता हूं। उसका हृदय से पालन होना चाहिए। मगर उनका आग्रह है कि कहानी अवश्य छपे। इसलिए छापूँगा।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।



बनारस, 17 सितम्बर, 1935

भाईजान,

तसलीम। उम्मीद है आप खुश होंगे। मेरे इस मज़मून ने तो ख़ासी चहल-पहल पैदा कर दी।

हंस का अक्तूबर नंबर यानी पहला नंबर ज़ेर-ए-तबा[1] है। पहली अक्तूबर को मुकम्मल हो जायगा ऐसा यक़ीन करता हूँ। हिन्दुस्तान के मुख़्तलिफ़ हिस्सों से मज़ामीन आ रहे हैं और उम्मीद है कि कोशिश सरसब्ज़ होगी। उर्दू में अभी डाक्टर ज़ाकिर हुसेन, मुहीउद्दीन ज़ोर और मुहम्मद आक़िल साहब के मज़ामीन आये हैं जिनमें सिर्फ़ दो की गुंजाइश निकल सकी। डाक्टर इक़बाल की एक नज़्म भी आयी है। डाक्टर टैगोर का भी एक मज़मून आया है जो हिन्दी में मुतरजिम[2] होकर निकल रहा है। महात्मा गान्धी का मज़मून भी अनक़रीब आने वाला है। मज़मून क्या होगा, दुआ-गो पैग़ाम होगा। हज़रत जोश मलीहाबादी ने भी याद फ़रमाया है। मैंने सोचा है इस नयी अदबी तहरीक के मुताल्लिक़ उसके लिए कुछ लिख दूँ। हमें तो इस तहरीक को मक़बूल-ए-आम बनाना है। अब आपकी इमदाद की ज़रूरत दरपेश है। बस कुल दो सफ़हात का एक उर्दू रिसालों का तबसरा[3] चाहता हूँ। बिल्कुल माडर्न रिव्यू के ढंग का। मेरे पास ज़माना के अलावा और कोई रिसाला बइल्तिज़ाम[4] नहीं आता। तबादला करूँगा। नये हंस से। अभी तो किसी रिसाले की ज़रूरत न महसूस होती थी, इसलिए तबादले की ज़रूरत न समझता था। जो आ गया उसे पढ़ लिया, न आया तो चंदाँ ग़म नहीं। मगर अब मँगवाकर पढ़ना मज़ामीन का, ज़रूर कर दें। हिन्दी मैं करूँगा। बंगला गुजराती, मराठी, कनाड़ी, तामिल, तेलुगु, मलयालम वग़ैरह का बम्बई में इंतज़ाम हो गया है। आपके सिवा और किसे सताऊँ।

मुख़लिस, धनपत राय।

1. यंत्रस्थ, 2. अनूदित, 3. समीक्षा, 4. नियमपूर्वक।



बनारस, 27 सितम्बर, 1935

प्रिय जैनेन्द्र,

तुम्हारा कार्ड मिला। चिन्ता हो रही थी कि क्यों कोइ पत्र नहीं आ रहा है। माता जी बीमार हैं, यह तो बुरी ख़बर है। अब तो तुम वहाँ पहुँच गये। शीघ्र लिखना उनकी तबियत का क्या हाल है।

क्लर्क का रोग तुमने बुरा पाल लिया। दिल्ली के लेखकों को ही मुश्किल पड़ रही

है, क्लर्कों के लिए कहाँ से प्रबन्ध हो ! मेरी आमदनी तो समाचार-पत्रों से प्रायः बन्द हो गई। छः महीने में कुल 35 रु. का काम किया। 'चाँद' में एक कहानी लिखी, मगर रुपये वह भी नहीं दे रहे हैं। कहते हैं 'चाँद' की माली हालत ख़राब है, और मैंने कहीं कुछ नहीं लिखा। हंस तो अपना है, और अपने तो लेते हैं, देते कभी नहीं।

रुपये के विषय में मैं क्या लिखूँ। तुमने कुछ टेढ़ा-सीधा काम किया भी। मैं तो पाँच महीने में एक पैसा भी न कमा सका। बम्बई से थोड़े से पैसे लाया था, वह पाँच महीने में ख़ा गया और कुछ कर्ज़ चुका दिया। और ऐसा था ही क्या। अब इसी चिन्ता में घुल रहा हूँ कि आगे क्या होगा। 'कर्मभूमि' और 'ग़बन' दोनों करीब-करीब समाप्त हैं। मुझे कौड़ी न मिली। उन्हें दोबारा छपवाने की चिन्ता अलबत्ता हो रही है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम यहाँ आकर 'जागरण' को पाक्षिक रूप में निकालो और वह वास्तव में 'जागरण' के नाम को चरितार्थ करे।

मेरा ख़याल है बत्तीस पृष्ठों का पाक्षिक पत्र जिसका दाम एक आना हो और तुम्हारे सम्पादकत्व में निकले तो 6 महीने में उसमें कुछ न कुछ निकलने लगेगा। मैंने जो तख़मीना किया है उसके हिसाब से प्रति संख्या 100 रु. खर्च पड़ेगा और आमदनी का अनुमान 130 रु. प्रति संख्या है। 1000 छपेगा। अगर 6 महीने चल जाय तो आशा है कि उससे 60 रु., 70 रु. माहवार निकलने लगें। जब प्रचार बढ़ेगा और 2000 तक पहुँच जायगा, तब तो और भी मिल सकते हैं। मुझे केवल काग़ज़ और पोस्टेज खर्च करना पड़ेगा। इतनी आमदनी विज्ञापनों से हो सकती है।

लेकिन अभी तो तुम परेशान हो, माता जी अच्छी हो जायँ तो इस विषय पर कुछ सोचना पड़ेगा। पत्रों से आमदनी के भरोसे पर तो एकादशी के सिवा और कुछ नहीं है। 'भारत' की दशा अच्छी नहीं है। 'चाँद' का हाल कह ही चुका। अब रहे, 'विशाल भारत', 'माधुरी' और 'सरस्वती'। इनसे 20 रु. महीना मिलना भी मुश्किल है।

'हंस' शायद पहली तक तैयार हो जाय।

भवदीय, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, काशी, 9 अक्टूबर, 1935

प्रिय देवी जी, वंदे।

अनेक धन्यवाद।

मेरी शुभेच्छाएँ स्वीकार कीजिए।

हंस का नया अंक मिल गया होगा, या मिल जायगा। उसके लिए विजय दशमी का उपहार भेजो।

पत्र पसंद आया ?

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।



हंस कार्यालय, बनारस, 14 अक्टूबर, 1935

प्रिय ललिताशंकर जी,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। मैंने श्री नेहरू जी का लेख प्रताप में देखा था पर

उनका पता मालूम न होने के कारण उनके पास हंस न भेज सका था। आपके पत्र से पता मालूम हो गया और हंस उनके पास भेज दिया गया। पैम्फ्लेट आपने भेज दिये थे। मैंने भी भेजवा दिये।

हंस में मैंने विश्वभारती की आलोचना कर दी है। आपने देखी होगी।

श्री चंदोला जी का अनुवाद वापस भेज रहा हूँ। कई दिन देर में पहुँचा नहीं अवश्य छापता। अनुवाद मुझे बहुत अच्छा लगा। कालिकाप्रसाद जी ने शाब्दिक अनुवाद किया है, चंदोला जी ने भावानुवाद किया है। मैंने दोनों अनुवादों को मिलाया। कहीं यह अच्छा मालूम हुआ, कहीं वह। मुझे इसके न छाप सकने का खेद है।

आशा है, आप प्रसन्न हैं।

आप यहाँ तक आकर चले गये और मुझसे न मिले, इसका आपसे शिकायत करने का अधिकार आप मुझे देना स्वीकार करें तो अवश्य करूँगा। आगे इतनी गलती न कीजिएगा। बनारस पुराने ढंग का केन्द्र है। बाहर से प्रकाश मिलता रहता है तो मालूम होता है हम भी ज़िन्दा हैं।

भवदीय, प्रेमचंद



सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट, 20 अक्टूबर, 1935

प्रिय बहन,

पत्र मिला। हंस तुम्हें पसंद आया यह जानकर प्रसन्नता हुई। तुम्हारी कहानी का इंतजार कर रहा हूँ। उपन्यास भी छापने जा रहा हूँ पर थोड़ा-सा भाषा संबंधी काम था, उसके लिए अवकाश नहीं मिल रहा। अकेला ही तो यह सब कर रहा हूँ।

बंगाली लेखकों ने अभी तक कृपा नहीं की। मेरा किसी से परिचय भी नहीं है। चाहता हूँ कोई सज्जन बंगला साहित्य पर कुछ लिखें—उसके साहित्य का इतिहास, साहित्य के विभिन्न अंगों की आलोचना, सुलेखकों के चरित्र, मगर कोई ऐसा व्यक्ति नज़र नहीं आता। तुम्हारे परिचितों में अगर कोई साहित्यप्रेमी सज्जन हों तो प्रेरणा करो और अगर तुम खुद लिख सको तो क्या कहना। सोचता हूँ एक बार बंगाल जाकर परिचय प्राप्त करूँ।

भवदीय, प्रेमचंद।



भारतीय साहित्य का मुख्य पत्र 'हंस'
सम्पादक—प्रेमचंद, कन्हैयालाल मुंशी
प्रकाशक—दि हंस लिमिटेड,
सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट, 27-11-1935

प्रिय जनार्दन,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनों के बाद मिला। मालूम हुआ तुम मुझे बिल्कुल नहीं भूले। क्या करता, प्रेमी न मिले तो उसकी स्मृति से ही मन को समझाना पड़ता है।

हाँ, अवश्य वह माला शुरू करो। ऐसा हो कि हिन्दी का गौरव बढ़े। अब की (दिसम्बर में) दो जीवन-चरित्र जा रहे हैं। हमारा स्टैण्डर्ड उनसे ऊँचा रहना चाहिए।

तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि हमारी आयोजना का आदर हो रहा है। और तुम्हें उसकी सहायता करने का अवसर भी है। हमने तीन-चार मित्रों के लिए पुरस्कार की भी अनुमति ले ली है, जिनमें एक तुम हो।

मुझे तो विद्वत्ता-भरा लेख लिखना ही नहीं आता।

सप्रेम, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 1 दिसम्बर, 1935

प्रिय बनारसीदास जी,

आपका कार्ड मुझे मिला था, उसके लिए धन्यवाद। मेरी कितनी इच्छा है, काश कि मैं नोगूची के व्याख्यान सुन सकता मगर मजबूर हूँ। घर वालों को कैसे छोड़ूँ, यही समस्या है। लड़के इलाहाबाद में हैं और मैं चला जाऊँगा तो मेरी पत्नी बेहद अकेला और बेबस महसूस करेंगी। अगर मैं उनको भी अपने साथ लेता आऊँ तो इसके लिए अच्छी ख़ासी रक़म ख़र्च करने के लिए चाहिए। इसलिए अच्छा है, कि घर ही पर पड़े रहो, बजाय इसके कि पैसे की तंगी महसूस हो। और जहाँ तक जवान बने रहने की बात है, वह एक स्वभाव की बात है। बहुत से नौजवान हैं, जो मुझसे बुड्ढे हैं और बुढ्ढे हैं जो कि मुझसे जवान हैं। लेकिन मैं तो सोचता हूँ कि मैं रोज़-ब-रोज़ जवान होता जा रहा हूँ। परलोक में मेरा विश्वास नहीं है इसलिए अध्यात्म का विचार जो कि यौवन का सबसे बड़ा घातक है, मेरे पास नहीं फटकता। हाँ यह ज़रूर है कि एक चीज़ स्वस्थ यौवन होती है और दूसरी उन्मत्त यौवन। स्वस्थ यौवन जीवन के प्रति एक प्रगतिशील और आशावादी दृष्टिकोण में होता है, और उसके साथ गड्ढों से बचता है। उन्मत्त यौवन का मतलब है बिना सोचे-विचारे कुछ कर बैठना और अपनी क्षमताओं और स्वप्नों को बढ़ा-चढ़ाकर देखना। मैंने सपने देखना बन्द नहीं किया है और थोड़ा-बहुत जल्दबाज़ भी हूँ, बिना सोचे-विचारे कुछ कर बैठता हूँ। लेकिन खुशी की बात है कि अतिरंजना की प्रवृत्ति चली गयी है। इस तरह पागलपन का भी बड़ा हिस्सा मेरे पल्ले पड़ा है। मैं समझने लगा हूँ कि संतुष्ट पारिवारिक जीवन एक बड़ा वरदान है। और बड़े-बड़े दिमाग़ों की दुनिया में कमी नहीं है, ढेरों पड़े हैं। सच्ची महानता और नक़ली महानता में फ़र्क़ कर सकने के लिए बड़ी न्यायबुद्धि चाहिये। मैं ऐसे महान आदमी की कल्पना ही नहीं कर सकता जो धन-संपत्ति में डूबा हुआ हो। जैसे ही मैं किसी आदमी को धनी देखता हूँ, उसकी कला और ज्ञान की सब बातें मेरे लिए बेकार हो जाती हैं। मुझको ऐसा लगने लगता है कि इस आदमी ने वर्तमान समाज व्यवस्था को जो अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण पर आधारित है, स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार कोई भी बड़ा नाम जो लक्ष्मी से असंपृक्त नहीं है, मुझको आकर्षित नहीं करता। यह बहुत सम्भव है कि मेरे मन के इस ढाँचे के पीछे जीवन में मेरी अपनी असफलता हो। हो सकता है कि बैंक में अच्छी रकम रखकर मैं भी औरों जैसा ही हो जाता—उस लोभ का संवरण न कर पाता। लेकिन मैं खुश हूँ कि प्रकृति और भाग्य ने मेरी मदद की है और मुझे गरीबों के साथ डाल दिया है। इससे मुझे मानसिक शान्ति मिलती है।

आप कितनी ही बार मोग़लसराय से गुज़रे मगर कभी यह तकलीफ़ नहीं की कि

एक दिन के लिए यहाँ चले आते। और फिर आप मुझसे उम्मीद करते हैं कि मैं यहाँ से कलकत्ते तक का सफ़र करूँ और अपनी बीवी को नाराज़ कर लूँ। आन्तरिक शान्ति मेरा सिद्धान्त है !

आपका, धनपत राय।



Hans Karyalaya, Benares, 1st December, 1935

My dear Benarsi Das ji,

I had your card and thank you for it. How I wish I could attend Noguchi's lectures but can't help. How to leave the family is the problem. The boys are at Allahabad and when I go my better half must feel so lonely and helpless. If I take her with me, I must have a decent amount to spend. So it is better to be tied down to home, than feel the pinch of money. And to keep young is a question of temperament. There are youths older than myself, and elderly people younger than myself. But I hope, I am growing vounger every day. I have no faith in the other world and so the idea of otherworldliness, which isthe greatest killer of youth, does not approach me. Of course there is a healthy youth and a mad youth. Healthy youth consists of a progressive and optimistic view of life, at the same time avoiding the pitfalls. Mad youth consists of rashness and exaggeration of one's own capacities and dreams. I have not ceased dreaming and am a bit rash as well. The exaggeration has happily gone. So even of madness I have the better part. I have come to realise that a contented family is a great blessing. And great minds, there are heaps of them. It requires a great deal of judgment to know real greatness from imitation. I cannot imagine a great man rolling in wealth. The moment I see a man rich, all his words of art and wisdom are lost upon me. He appears to me to have submitted to the present social order which is based on exploitation of the poor by the rich. Thus any great name not dissociated with mammon does not attract me. It is quite probable this frame of mind may be due to my own failure in life. With a handsome credit balance I might have been just as others are—I could not have helped me and my lot is cast with the poor. It gives me spriritual relief.

You have passed Moghalsarai so many times without taking the trouble to break for a day. And you expect me to come all the way, making my wife angry. Peace within is my motto.



हंस कार्यालय, बनारस, 9 दिसम्बर, 1935

प्रिय जैनेन्द्र,

कल तुम्हारा पत्र मिला। मुझे यह शंका पहले ही थी। इस मर्ज़ में शायद ही कोई

बचता है। पहले ऐसी इच्छा थी कि दिल्ली आऊँ, लेकिन मेरे दामाद तीन दिन से आये हुए हैं, और शायद बेटी जा रही है। फिर यह भी सोचा कि तुम्हें समझाने की तो कोई बात है ही नहीं। यह तो एक दिन होना ही था। हाँ, जब यह सोचता हूँ कि वह तुम्हारे लिये क्या थीं, और तुम उनके काल में आज भी लड़के से बने फिरते थे, तब जी चाहता है तुम्हारे गले मिलकर रोऊँ। उनका वह स्नेह। वह तुम्हारे लिए जो कुछ थीं, वह तो थीं ही, मगर उनके लिए तो तुम प्राण थे। आँख थे। सब कुछ थे। बिरले ही भाग्यवानों को ऐसी माता मिलती है। मैं देख रहा हूँ तुम दुःखी हो, और चाहता हूँ, यह दुःख आधा-आधा बाँट लूँ अगर तुम दो। मगर तुम दोगे नहीं। इसे तो तुम सारे का सारा अपने सबसे निकट स्थान में स्वरक्षित रखोगे।

काम से छुट्टी पाते ही अगर आ सको तो ज़रूर आ जाओ। मिले बहुत दिन हो गये। मन तो मेरा भी आने को चाहता है, लेकिन मैं आया तो तीसरे दिन रस्सी तुड़ाकर भागूँगा। तुम–मगर अब तो तुम भी मेरे जैसे हो, भाई। अब वह बेफ़िक्री के मज़े कहाँ !

और सच पूछो तो मेरी ईर्ष्या ने तुम्हें अनाथ कर दिया। क्यों न ईर्ष्या करता, मैं सात वर्ष का था जब माता जी चली गयीं। तुम 27 के होकर माता वाले बने रहे। यह मुझसे कब देखा जाता। अब जैसे हम वैसे तुम। बल्कि मैं तुमसे अच्छा हूँ। मुझे माता की सूरत भी याद नहीं आती। तुम्हारी माता तुम्हारे सामने है और बोलती नहीं, मिलती नहीं।

महात्मा जी तो वहाँ होंगे ?

और तो सब ठीक है। चतुर्वेदी जी ने कलकत्ते बुलाया था कि आकर नोगूची जापानी कवि का भाषण सुन जाओ। यहाँ नोगूची हिन्दू यूनिवर्सिटी आये, उनका व्याख्यान भी हो गया, मगर मैं न जा सका। अक़्ल की बातें सुनते और पढ़ते उम्र बीत गयी। ईश्वर पर विश्वास नहीं आता, कैसे श्रद्धा होती। तुम आस्तिकता की ओर जा रहे हो। जा नहीं रहे पक्के भक्त बन रहे हो। मैं संदेह से पक्का नास्तिक होता जा रहा हूँ।

बेचारी भगवती अकेली हो गयी।

'सुनीता' जाने कहाँ रास्ते में रह गयी। यहाँ कहीं बाज़ार में भी नहीं। चित्रपट के पुराने अंक उठाकर पढ़े, पर मुश्किल से तीन अध्याय मिले। तुमने बड़ा ज़बरदस्त Ideal रख दिया। महात्मा जी के एक साल में स्वराज्य पानेवाले आन्दोलन की तरह। मगर तलवार पर पाँव रखना है।

तुम्हारा, धनपत राय।



15-12-1935

प्रिय वर्मा जी,

आपने कोई जवाब नहीं दिया। इतने दिनों तक आप मेरे साथ रहे, मैंने आपके कारण बदनामी सही, हानि उठाई, लेकिन आप पर विश्वास किया। उसका मुझे यह पुरस्कार मिल रहा है ! मैं अब भी नहीं चाहता कि शहर में आपकी बदनामी हो, मैं सारा मुआमला दबा रक्खूँगा, लेकिन आप मेरे एक हज़ार रुपये अदा कर दें, अन्यथा मुझे विवश होकर आपके साथ सम्बन्ध तोड़ना पड़ेगा और उसके साथ ही आपको और भी हानि

उठानी पड़ेगी। मैं नहीं चाहता, आपका अपमान हो और आप अपने मातहतों की नज़र में गिरें। लेकिन जब मैंने प्रेस से कभी एक पैसा नहीं पाया तो मैं यह सहन नहीं कर सकता कि मेरे एक हज़ार रुपये मुझे बेवकूफ़ बनाकर ले लिये जायें। आपके पास रुपये हैं। यह रुपये आपने जमा कर रक्खे हैं। मैं आपको कल तक का समय देता हूँ। सोच लीजिए और मुझे बेमुरौवती करने के लिए मजबूर न कीजिए।

भवदीय, धनपत राय।

●●

हंस कार्यालय, बनारस कैंट, 15 दिसम्बर, 1935

प्रिय सद्गुरुशरण जी,

आशा है, आप प्रसन्न हैं। उन पुस्तकों की आलोचना आपने अभी तक भेजने की कृपा नहीं की। मिश्र जी का तकाजा है और काव्यांग कौमुदी की आलोचना भी इस जनवरी के अंक में जानी चाहिए। अब तो आपको म्युनिसिपल चुनाव से फुरसत मिल गयी होगी।

आपका आलोचना संबंधी लेख जनवरी अंक में जा रहा है।

भवदीय, धनपत राय।

●●

16-12-1935

प्रिय वर्मा जी,

आपका पत्र पढ़ा। मैं यह कब कहता हूँ कि आपने कोशिश और दिलचस्पी से काम नहीं किया, लेकिन जहाँ तक नफ़े का सवाल है, वहाँ तक तो आपकी कोशिश मेरे किसी काम न आयी। आपकी कोशिश ने कुछ-न-कुछ तो आपको दिया। मैंने प्रेस से या प्रकाशन से क्या पाया ? जब प्रेस में वेतन न मिलने पर हड़ताल हो, जब वेतन न देने पर दावे हों और डिग्रियाँ हों, जब मकान या काग़ज़ का दाम न देने पर नालिश और डिग्री हो और मुझे ख़र्च के साथ भरना पड़े और आपके हाथ में रुपये हों, तो मैं किस धैर्य से शान्त हो जाऊँ ? प्रेस की आमदनी वही लिखी गयी है जो हुई। ज़्यादा नहीं लिखी जा सकती। ख़र्च भी आप रोज़-का-रोज़ देख लेते हैं। फिर यह रक़म क्यों दबी ? जब मैंने बम्बई से काग़ज़ के लिए रुपये भेजे तब भी आपके पास 500 रु. से अधिक थे। मई, 33 में आपके पास 12 रु. थे। मई, 34 में आपके रोकड़ में 700 रु. से अधिक थे। साल भर में इतने रुपये क्या ख़र्च में कमी दर्ज होने के कारण हुए ? एक महीने में यह भूल हो सकती थी, मगर लगातार तो ऐसी ग़लती नहीं हो सकती। मैं इस भ्रम में पड़ा हुआ हूँ कि प्रेस में एक पैसा भी नहीं है। अपनी किताब दूसरों को बेचकर प्रेस के लिए रुपये लाता हूँ और प्रेस के पास रुपये बचत में पड़े हुए हैं तो कैसे मुझे बुरा न लगे ? मैंने क्यों प्रेमी जी को 'मानसरोवर' में साझीदार बनाया ? इसीलिए कि मैं जानता था प्रेस में रुपये नहीं हैं। और आपके पास रुपये थे। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आपकी बेएहतियाती हो सकती थी; मगर बेएहतियाती मान लूँ तो आमदनी के दर्ज करने में भी बेएहतियाती माननी पड़ेगी और मैं उस भ्रम को और बढ़ाना नहीं चाहता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि व्यापार में हिसाब पाई-पाई का साफ़ रहना चाहिए। आपकी ईमानदारी

किस काम की जब उसका यह नतीजा हो ? आख़िर ईमानदारी न होती तो इसके सिवा क्या होता ? कितने दुख की बात है कि मैं भाई साहब की विधवा स्त्री को 10 रु. माहवार भी न दे सका जिसके 2000 रु. प्रेस में लगे। और प्रेस में एक हज़ार रुपये बट्टे खाते में चले जायें ! सोचिए, मुझे दुख होता है तो क्या आश्चर्य की बात है। अगर प्रेस से मैंने आपके पुरुषार्थ से दस-पाँच हज़ार पाया होता तो समझता, एक हज़ार यों ही सही। मगर प्रेस से पाने का तो क्या ज़िक्र, मैंने 34 और 35 में प्रेस को 600 रु. अपने पास से दिये। ऐसी दशा में प्रेस की एक पाई रक़म भी कहीं दब जाय तो मेरी दृष्टि में वह अक्षम्य है। इसी साल मैंने बाबू रघुपतिसहाय के हिस्से के 244 रु. दिये जो मेरे चैकबुक में दर्ज हैं और आज भी उनका ख़त अपने बाकी 160 रुपयों के लिए कल आया है जिसे आप देख सकते हैं। ऐसी दशा में प्रेस की एक-एक पाई का हिसाब मुझे मिलना चाहिए, और उसके न मिलने पर मुझे दुख भी होता है और सन्देह भी होता है।

आप साझे की बात कहते हैं। साझे की व्यवस्था यही थी कि प्रेस का 50 रु. सूद निकालकर प्रकाशन और प्रेस में आधा-आधा हम-आप ले लेंगे। वह बात कहाँ रही ? मुझे 4200 रु. तो 11 रु. सैकड़े सूद के हिसाब से सूद के ही मिलने चाहिए। उतना सूद मिले तो ऊपर से 4000 रु. और मिलने चाहिए जो आपको 7 साल में मिले।

प्रकाशन में मुझे 3000 रु. तो 'ग़बन' और 'कर्मभूमि' पर ही मिलना चाहिए। उनकी थोड़ी प्रतियाँ स्टॉक में रह गई हैं। 'प्रतिज्ञा' का एक एडीशन बिक गया। उस पर भी 400 रु. हुए। 'प्रेम-द्वादशी' 6 एडीशन हुई उस पर भी 1000 रु. से कम रॉयल्टी नहीं हुई। 'गल्प-समुच्चय', 'प्रेम-तीर्थ', 'पाँच फूल', 'प्रेरणा', 'गल्प-रत्न' आदि पर भी मुझे कम-से-कम 1500 रु. और मिलने चाहिए। इस तरह मेरी रॉयल्टी के 6000 रु. होते हैं। मुझे 14000 रु. मिल जायें तो प्रकाशन में मैं आधा नफ़ा देने को तैयार हूँ, लेकिन जब आप जानते हैं मुझे प्रकाशन से अभी तक 1000 रु. से ज़्यादा नहीं मिला और इतना मैं प्रेस को अपनी जेब से ऋण के रूप में दे चुका हूँ तो आप कैसे साझे की बात कह सकते हैं ? वह तो ख़त्म हो गई और फिर तभी उठ सकती है जब मेरे घाटे पूरे करने का कोई ज़िम्मेदार हो। स्टॉक में कुल 14000 या 15 हज़ार की पुस्तकें होंगी, जिनका इस समय अगर मुझे 5 हज़ार भी मिल जाय तो मैं देने को तैयार हूँ। इसी स्टाक में मेरे प्रेस का सूद, प्रेस का नफ़ा और रॉयल्टी सब मिले हुए हैं अर्थात् अपने 14000 रु. में मुझे 14000 का स्टॉक मिलता है जिसकी मौजूदा क़ीमत 5000 रु. से ज़्यादा नहीं। तब भी मुझे 9000 रु. का घाटा है। इसलिए आप ज़्यादा से ज़्यादा 'वृक्ष-विज्ञान' की रॉयल्टी का मुतालबा कर सकते हैं। उसमें आप कुछ ले चुके हैं। जो अभी बचे, उसे आप अपने नाम ख़र्च में डलवा लीजिए। कुछ तो आपका भार कम हो।

आप कहते हैं आपके पास केवल 100 रु. हैं। 100 रु. उस दिन मैंने लिये थे। 1191 रु. में 200 रु. निकालकर 991 रु. रह जाते हैं। इसमें से आप 'वृक्ष-विज्ञान' की रॉयल्टी, जितनी प्रतियाँ बिक चुकी हों, उस पर ले लीजिए। शेष आप 20 रु. माहवार के हिसाब से अपने वेतन से कटवाते जाइए। जिस दिन मुझे प्रेस से 50 रु. सूद माहवार और पुस्तकों की बिक्री के पूरे रुपए मिलने लगेंगे, मैं आपको तरक़्क़ी दे दूँगा; लेकिन

जब कारोबार में घाटा हो तो तरक़्क़ी का सवाल नहीं रहता। और आज से रोज़ाना शाम को आप मुनीम के हाथ रोज़ की आमदनी मेरे पास भेज दिया करें जिसमें भविष्य में ऐसी सम्भावना न रहे। नफ़े या प्रकाशन में आपका साझा टूट गया, क्योंकि उसकी शर्तें पूरी नहीं हुई, और आपके ऊपर मैं वह भार न रक्खूँगा। आपका यह कहना कि प्रकाशन में लाभ हुआ है, ठीक नहीं है। प्रकाशन में लाभ यही हुआ है कि मेरे 14000 नक़द रुपये के बदले 14000 रु. के छपे हुए फ़ार्म पड़े हुए हैं जिनमें से आधे कौड़ियों के मोल भी न बिकेंगे। इन परिस्थितियों में मैं इससे अच्छा और सम्मानपूर्ण समझौता नहीं कर सकता। भवदीय, धनपत राय

1. जुर्माने का तरीक़ा बन्द कीजिए। (1 या 2) माहवार जुर्माने की रक़म से प्रेस धनी नहीं होता। आदमियों को समझा दीजिए या मेरे पास भेज दीजिए।

2. जिस तारीख़ को वेतन का ऐडवांस देना हो, उसके एक दिन पहले हिसाब बनाकर मुझे दे दीजिए। मैं बैंक से रुपसे मँगवाकर बाँट दिया करूँगा।

3. फुटकल ख़र्च के लिए आप मुनीम के पास 10 रु. रख दीजिए। जब वे ख़र्च हो जायें तो मुझे दिखाकर और ले लें।

धनपत राय।



हंस कार्यालय, बनारस, 17 दिसम्बर, 1935

प्रिय महोदय,

कृपापत्र के लिए धन्यवाद। मुझे बड़ा खेद है कि हंस की अक्टूबर संख्या बिल्कुल समाप्त हो गयी है। हमने बहुत-सी प्रतियाँ नमूने के तौर पर भेजीं। अब हमें वह अंक ग्राहकों को भेजने में, जो हमेशा पहले अंक से शुरू करना चाहते हैं, दिक़्क़त हो रही है। हमारी अकेली उम्मीद अब यह है कि व्हीलर एण्ड कंपनी की काफ़ी प्रतियाँ बिना बिकी लौटा दें। जैसे ही यह प्रतियाँ मिलेंगी, मैं एक आपके पास अवश्य भेजूँगा।

इन दिनों मैं अपने उपन्यास में व्यस्त हूँ जिसे मैंने तीन साल हुए शुरू किया था, मगर दूसरी मसरूफ़ियतों की वजह से ख़तम नहीं कर सका। इसके अलग हो जाने पर मुझे उम्मीद है कि मैं दो महीने में कम से कम एक कहानी लिख सकूँगा। मैं हिन्दी का अकेला कहानी-लेखक नहीं हूँ। कम से कम आधे दर्जन लोग और हैं जो मुझसे अच्छा लिखते हैं और मेरा कोई इजारा नहीं है। आपको मेरी जो भी कहानी सबसे अच्छी लगे, उसका आप बंगला में अनुवाद कर लें। हंस के लिए मैं आपसे बंगला साहित्य पर लिखने के लिए प्रार्थना करूँगा, या तो साहित्यिक स्केच या आलोचनात्मक लेख। बड़े दुख की बात है कि बंगाली साहित्यकार मेरे परिचित नहीं हैं और मैं खुद उन तक नहीं पहुँच सकता। साधारण परिपत्रों का कोई जवाब नहीं आया। हमें उम्मीद है कि हंस धीरे-धीरे सचमुच वैसा हो जायगा जैसा कि उसके सामने आदर्श है, भारतीय साहित्य का एक प्रतिनिधि पत्र। शुभकामनाओं के साथ,

आपका, प्रेमचंद।



18-12-1935

प्रिय वर्मा जी,

(1) 'हंस' के लिए मुझे कोई हिस्सा नहीं मिला। महात्मा जी (महात्मा गांधी–गोयनका) ने स्वीकार नहीं किया। मुझे बग़ैर मुआवज़े के 'हंस' देना पड़ा। आप श्री मुंशी से पूछ सकते हैं।

(2) प्रेस पर हमारी लागत 10 हज़ार पड़ी। आपके हाथ में जिस वक़्त वह आया, 6 हज़ार उसका मूल्य आँका गया था। मैंने 10 हज़ार पर आठ आना का ब्याज लगाया है, इसलिए कि मूल्य वास्तव में ज़्यादा था। 6 हज़ार पर तो बारह आना का ब्याज लगाना पड़ेगा। आठ आना पर कोई व्यापारी रुपया नहीं लगाता। बारह आना भी कम-से-कम ब्याज है। इस हिसाब से 7 वर्ष का ब्याज लगभग 4 हज़ार होता है। घिसाई 5% के हिसाब से 3000 रु. होती है। प्रेस में जो चीज़ें बढ़ी हैं, 3 हज़ार से ज़्यादा की किसी तरह नहीं ट्रेडल 1200 रु. की ज़रूर आई है। दूसरे सामान कितने के हैं मैं नहीं कह सकता, मगर किसी तरह एक हज़ार से ज़्यादा का नहीं है। नफ़ा भी 4 हज़ार होता ही है। इस तरह प्रेस से मुझे 8000 मिलने चाहिए थे। उसके बदले मुझे क्या मिला ? अगर यह 8 हज़ार का प्रकाशन में समझ लूं तो 'हंस' और 'जागरण' दोनों गये, अब केवल 12 हज़ार का अधिक-से-अधिक स्टॉक है जिसकी बाइण्डिंग में सैंकड़ों ख़र्च करने पर भी वह रुपये के रूप में कब आयेगा, कौन जाने। प्रेस से–

1700	ग़बन बिका	5100 रु.	1200	गल्प-समुच्चय	3000 रु.
1700	कर्मभूमि बिका	5100 रु.	2000	प्रेम-तीर्थ	3000 रु.
1100	प्रतिज्ञा बिकी	1650 रु.	2000	गल्प-रत्न	2000 रु.
5000	प्रेम-द्वादशी	3750 रु.			

अन्य पुस्तकें भी 500 रु. से कम की न बिकी होंगी। इस तरह कुल बिक्री 24000 रु. की हुई जिसमें से ¼ कमीशन काट दीजिए, तब भी 18 हज़ार रुपये होते हैं। 18 हज़ार रुपये न रखकर आप 16 हज़ार रुपये भी रख लें तो मुझे 4 हज़ार रुपये रॉयल्टी देकर भी प्रेस के पास 12 हज़ार रुपये का नफ़ा होना चाहिए। मगर हमारे पास 12 हज़ार रुपये का स्टॉक है जो 5-6 साल में शायद पाँच-छः हज़ार रुपये दे सके। अभी तो रद्दी है। इसे आप नफ़ा समझते हैं !

प्रेस की इस हालत में आपको अपना गुज़ारा मिलता जाता था, वही बहुत था। आपको उस पर सन्तुष्ट होना चाहिए था, मगर आपने वह रक़म अपने ख़र्च में ले ली जो इस वक़्त काग़ज़ वालों की जेब में होनी चाहिए थी।

मैंने प्रेस से 1000 रुपये पाया है अवश्य, मगर 600 रुपये लौटा भी चुका हूँ। मेरे हाथ कुल 400 रुपये आये। प्रेस का लेना सम्भव है एक हज़ार हो, तो देना भी इससे कुछ ज़्यादा ही है।

अभी आप यहाँ हैं ही। जब मुझे 4000 रु. सूद के, 4000 रु. नफ़े के, 4000 रु. रॉयल्टी के मिल जायें तो प्रेस के पास जो नफ़ा होगा, उसमें आप शरीक हो सकते हैं। मगर इस 12 हज़ार रु. के घाटे के होते हुए केवल स्टॉक को, जो 12 हज़ार रु. से ज़्यादा का नहीं है, कैसे नफ़ा समझ लूँ ?

साझे की जो भी बातें थीं, वह पूरी नहीं हुईं और मुझे अकेले ही सारी हानि उठानी पड़ी, फिर उसका ज़िक्र ही बेकार है।

मैंने आपके 'वृक्ष-विज्ञान' की रॉयल्टी पूरी 25% के हिसाब से दे दी है। शेष 20 रु. माहवार के हिसाब से आप लेते जायें। अगर मेरे जीवन में कभी मुझे प्रेस और प्रकाशन से 12 हज़ार रु. मिल जायेंगे तो मैं आपको एक हज़ार दे दूँगा।

16 ता. को आपके रोकड़ में 982 रु. थे। इससे 168 रु. 12 आने आपके 'वृक्ष-विज्ञान' की रॉयल्टी का शेषांश है। वह निकालकर आपके नाम 813 रु. साढ़े चार आना निकलता है। हिसाब को सीधा करने के लिए मैंने 13 रु. साढ़े चार आने आपके वेतन में डाल दिया है। यह 800 रु. किस तरह बही में दिखाया जाय, मेरी समझ में नहीं आता। अगर आप एक प्रोनोट 800 रु. का लिख दें, तो यह रक़म उधार-खाते दिखा दी जाय। दूसरी कोई सूरत आपको ठीक जँचे तो वह बताइए। बट्टेखाते में तो इतनी बड़ी रक़म डाली नहीं जा सकती और न फ़र्ज़ी रोकड़ दिखाने से कोई लाभ है। वह रक़म आपसे ख़र्च हुई है और आपको प्रोनोट लिख देने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। अगर यह रक़म बट्टेखाते में डाल दी जाय तो प्रेस में ही नहीं, प्रेस के हिस्सेदारों में कुहराम मच जायगा जो अभी तक केवल इसलिए ख़ामोश हैं कि प्रेस में कोई नफ़ा नहीं है, इसका उन्हें विश्वास है। अगर यह खुलेगा कि 800 की रक़म यों ही उड़ गयी, तो मेरी आबरू ख़तरे में पड़ेगी। बाहर भी और प्रेस में भी मैं तो बदनाम हो चुका, लेकिन घर के लोग मुझे ईमानदार समझते हैं। तब तो सभी मुझ पर सन्देह करने लगेंगे और यह तो मोटी-सी बात है कि जो फ़र्म मज़दूरों की मजरूी नहीं दे सकता, काग़ज़ के दाम नहीं दे सकता, मकान का किराया नहीं दे सकता, दूसरों के देने नहीं चुका सकता, वह घाटे में है। ऐसे कार्यालय में एक पैसे का भी गड़बड़ न होना चाहिए। अगर आपने मुझे सूद और नफ़े के 8 हज़ार की जगह 6 हज़ार भी दिये होते, तो वह मेरे पास 30,000 रु. के स्टॉक के रूप में होते और उस पर मुझे साढ़े 7 हज़ार मिलते और कोई 15 हज़ार का स्टॉक नफ़े में होता जिसमें आप भी शरीक होते। मगर जब वह सब-कुछ न हुआ और मुझे दस-बारह हज़ार के बदले यही स्टॉक मिला जो पाँच-छः हज़ार से ज़्यादा का नहीं और वह आज से पाँच-छः साल में, हालाँकि शायद 'कर्मभूमि' और 'ग़बन' बिक जाने के बाद एक हज़ार को भी महँगा हो। ऐसी स्थिति में भी आप प्रेस में नफ़ा समझते हैं ! दोष किसका है, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। आपने मेहनत की ज़रूर, लेकिन भाग्य मेरा और आपका दोनों का दुश्मन निकला। मैं तो आपको एक तरह से प्रेस की माली ज़िम्मेदारी से आज़ाद किये देता हूँ। प्रेस की हालत आप 8 साल देख चुके। आगे भी वह इससे अच्छी न होगी। तो इस तरह मैं घाटे-नफ़े का हिसाब क्यों लगाता रहूँ ? हमने एक काम मिलकर किया। वह फ़ेल हो गया। मैंने ज्यादा नुक़सान उठाया, आपने कम। झगड़ा पाक हुआ। अब आप निर्द्वन्द्व होकर रह सकते हैं। मैं प्रकाशन कर ही रहा हूँ। आप अनुवाद या संग्रह से अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। गुजराती या मराठी की पुस्तकें अनुवाद करते जाइए, वही जो सर्वश्रेष्ठ हों। मैं छापूँगा और आपकी मज़दूरी दूँगा। मगर यह 800 रु.की रक़म तो हिसाब ठीक रखने के लिए कहीं-न-कहीं दिखानी होगी और प्रोनोट के सिवा मुझे कोई उपाय नहीं सूझता।

भवदीय, धनपत राय।

सरस्वती प्रेस, बनारस, 23 दिसंबर, 1935

प्रिय ललिताशंकर जी,

आपका पत्र मिला। श्री गोपाल रेड्डी का लेख अवश्य भेज दीजिएगा। या बेहतर हो मेरे पास न भेजकर बम्बई के पते से भेज दीजिए। अर्थात् 111 एस्प्लेनेड रोड, फोर्ट, बम्बई। क्योंकि दक्षिण भाषाओं के लेख बम्बई से एडिट होकर यहाँ आते हैं।

'विश्वभारती' तो यहाँ नहीं आई इसलिए आलोचना कैसे देखता।

श्री जवाहरलाल नेहरू जब यहाँ आ जावेंगे तब लेखक संघ वाले उन्हें लाने की चेष्टा करेंगे।

भवदीय, प्रेमचंद।



हंस कार्यालय, बनारस, 24 दिसम्बर, 1935

प्रिय जैनेन्द्र,

'सुनीता' पढ़ गया। आधी दूर तक तो कुछ रस न आया, लेकिन पिछला आधा सुंदर है। नारीत्व का जो आदर्श तुमने रखा है, वही सच्चा आदर्श है। नारी केवल गृहिणी क्यों हो, गृहिणी से अलग भी उसका जीवन है। अगर उसमें गृहिणीत्व से आगे बढ़ने की सामर्थ्य है तो वह क्यों न आगे बढ़े। सुनीता के मन में इस नये क्षेत्र में आने से जो संघर्ष हुआ है, वह उसके रक्त में सने हुए गृहिणी जीवन के अनुकूल है। मगर तुम्हारा हरिप्रसन्न अंत में जाकर मुझे कुछ X X X होता जान पड़ता है। शायद मुझे भ्रम हो। लेकिन श्रीकान्त से छिपकर वह कृत्य क्यों किया गया ? इसमें मुझे नैतिक दुर्बलता का भय होता है। श्रीकान्त की पूरी अनुमति से यह काम किया जा सकता था। श्रीकान्त जैसा उदारचेता मनुष्य सुनीता के इस नये मार्ग में बाधक न होता और होता तो सुनीता को अपने निश्चय पर दृढ़ रहना और उसके नतीजे (बर्दाश्त कर) लेना चाहिए था। हरिप्रसन्न ने सुनीता को Seduce किया, कुछ ऐसा भासित होता है। सुनीता ध्वजाधारिणी बने, इसमें कोई हर्ज नहीं, नहीं वह गौरव की बात है। उसके लिए भी और देश के लिए भी। लेकिन हरिप्रसन्न के मन में यह कुत्सित भावना क्यों ? ध्वजा-धारिणी के पद से गिराकर उसे व्यभिचारिणी के पद पर क्यों लाना चाहता है ? अगर सुनीता विवाहित न होती, अगर यह प्रेम सत्या के साथ निभाता तो कोई बात न थी। लेकिन जब श्रीकान्त और सुनीता में एक मुआहिदा हो चुका है और वह मुआहिदा उसे स्वीकार है तो फिर यह व्यवहार क्यों ? अगर सुनीता हरिप्रसन्न को जी से चाहती है, तो उसे अपने पति से स्वयं कह देना चाहिए था। यह धोखा और फरेब क्यों ? मगर सुनीता कहीं भी हरिप्रसन्न को चाहती नहीं दिखायी दी। विद्रोह या असंतोष की वहाँ गंध भी नहीं फिर वह क्यों हरिप्रसन्न के सामने इस तरह नत हो जाती है। क्या हरिप्रसन्न का Personal Magnetism उस पर असर करता है। अगर ऐसा है तो यह भी हरिप्रसन्न की नीचता और लापरवाही है, मित्र के साथ दगा है। उस मित्र के साथ जो उसे अपने भाई से भी प्रिय रखता हो ? क्रान्तिकारी नीति में विवाह हेच वस्तु हो सकती है। मगर इस सामाजिक (बंधन) का महत्व क्यों भूल जायँ। स्त्री पत्नी रहते हुए भी अभिनेत्री बन सकती है, और अगर पति दुराचार करे तो उसे लेकर मार सकती है। लेकिन इस तरह एक युवक के पंजे में फँस जाना न उस क्रांतिकारी युवक

को शोभा देता है न नारी को।

अगर मेरे समझने में ग़लती हो तो सुधार देना।

मेरे 'कर्मभूमि' का उर्दू एडिशन जामिया मिल्लिया ने निकाला है।

हो सके तो काशी नम्बर 'हंस' के लिए कुछ लिखना।

तुम्हारा, धनपत राय

●●

सम्भवतः दिसम्बर, 1935

वन्धुवर,

हिसाब-किताब सब-कुछ आप देख लीजिए। मैं तो इतना जानता हूँ कि प्रेस से आज तक मुझे कुछ नहीं मिला। अब मैं हिसाब देखकर क्या करूँ ? मुझे प्रेस से अब तक बड़ी रक़म मिल जानी चाहिए थी, मिला कुछ नहीं। प्रेस से कुछ मिल तो सकता नहीं। काग़ज़ को देखकर क्या होगा ? मैंने प्रेस से जो लिया है वह मुझे ज़बान पर है। काग़ज़ कुछ पड़ा हुआ है, उसका कोई भरोसा नहीं। पाँच-छः साल में शायद कुछ मिले।

आपने परिश्रम किया, मैंने भी किया; मगर प्रेस इस योग्य है कि 60 रु. प्रतिमास दे सके ? प्रेस आपके कथनानुसार अब 8 हज़ार का है क्योंकि आपने 3 हज़ार रु. लगाया है कमाकर, अर्थात् जो सूद था, वह उसमें लग गया। ठीक, तो मुझे उस पर आठ आने का ब्याज मिलेगा। 40 रु. यों हुए। 60 रु. आपको और 60 रु. मुझे। 120 रु. यों हुए। प्रेस से अगर आप प्रतिमास 160 रु. निकाल सकें तो निकालिए, मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं खुश हूँगा अगर आप 160 रु. मासिक निकालते रहेंगे। बहुत खुश और आपका एहसान मानूँगा। प्रेस में मज़दूरी देने के बाद जो कुछ बचे, उस पर 160 रु. निकल जाय तो क्या कहना ! बुक-डिपो से आपका कोई सम्बन्ध नहीं। आपकी जो पुस्तक छपे, उस पर आप रॉयल्टी के हक़दार हैं। अगर किसी महीने में मज़दूरी आदि देने के बाद 50 रु. बचें, तो उसी पर हमें और आपको सन्तुष्ट होना पड़ेगा।

उसके साथ ही जुरमाना वग़ैरा से मुझे चिढ़ है। हम सब मज़दूर हैं और सबके साथ प्रेम से काम लेना चाहिए। मुझे तो भय है कि आप प्रेस को इस सफलता पर पहुंचा सकेंगे। जब अभी तक केवल आपने किसी तरह अपना गुज़र किया हो तो अब कहाँ से आयेगा ? लेकिन मैं यह कब चाहता हूँ कि आप रहें ही नहीं ? अब तक मैंने प्रेस से कुछ नहीं लिया। अब उसी पर मेरी गुज़र-बसर भी है। सूद के बाद आधा-आधा। बुक-डिपो से मतलब नहीं। वेतन का कोई प्रश्न नहीं।

आपका, धनपत राय।

●●

सम्भवतः दिसम्बर, 1935

बन्धुवर,

आप स्वार्थी नहीं कहलाना चाहते, न सही। जिसकी हानि होती है वह कुछ-न-कुछ कटु हो ही जाता है।

मैंने आपसे जो-जो प्रस्ताव किये, आपने एक भी स्वीकार नहीं किया। फिर मेरे लिए

आप कौन-सा मार्ग छोड़ते हैं ? मैंने कहा, 40 रुपये मासिक लीजिए और 20 रुपये कटवाइए। आमदनी की कमी को अनुवाद से पूरा कीजिए। आपने स्वीकार नहीं किया।

मैंने कहा, प्रेस को 30 फ़ॉर्म दीजिए। आपने कहा, 30 फ़ॉर्म पर तो आप कहीं से भी 75 रुपये कमा सकते हैं। तो फिर आप क्या चाहते हैं ? मैं कह चुका हूँ, प्रेस की स्थिति जो इस वक़्त है वह 60 रुपये मासिक देने की नहीं है। इस वक़्त जो आमदनी है वह ख़र्च भर को मुश्किल से काफ़ी है। प्रेस का पावना शायद 400 या 500 रुपये होगा। देना है कम-से-कम 1200 रुपया, वह सब कहाँ से आयेगा ? अगर आप अपने लिए कोई मार्ग नहीं निकाल सकते तो प्रेस को इतना काम दीजिए कि आपका वेतन निकल सके। 60 रुपये वेतन के लिए कम-से-कम 25 फ़ॉर्म काम हर महीने बाहर से आना चाहिए। अगर आप इसका ज़िम्मा लें और परिश्रम करके काम लायें तो ठीक है। बुक-डिपो की आमदनी से मैं प्रेस नहीं चला सकता, जैसा अब तक हुआ है।

अगर यह भी स्वीकार न हो तो फिर और मैं क्या करूँ, मेरी समझ में नहीं आता। मैंने तो यहाँ तक कह दिया कि आप स्टॉक में भी जो कुछ हिसाब से निकले वह ले लीजिए। जो कुछ है वह तो स्टॉक ही है। मैंने तो कुछ नहीं छिपा कर रख लिया है।

आपकी जो दशा है वही तो मेरी है। मैं किससे फ़रियाद करूँ ? घाटे में और होता क्या है ? यह तो प्रेस का दीवाला है।

अगर आपको इन शर्तों में कोई मंजूर हो तो काम कीजिए। साझे-वाझे का झगड़ा मैं नहीं पाल सकता। उसका निहायत कटु अनुभव हुआ।

अगर कोई शर्त मंजूर न हो तो जैसी आपकी ख़ुशी !

आपका, धनपत राय।



'हंस', हंस कार्यालय, बनारस
सम्भवतः दिसम्बर, 35

प्रिय वर्मा जी,

आप न मेरी बात समझते हैं, न मैं आपकी बात समझता हूँ। मुझे इसका दुःख है कि आपके इन्तज़ाम में मेरी इतनी दिनों की सारी साहित्यिक तपस्या, जहाँ तक अर्थ का सम्बन्ध है, व्यर्थ हो गयी। अगर मुझे शर्तों के अनुसार प्रेस का सूद और नफ़ा देते जाते तो मैं न 'हंस' निकालता, न 'जागरण', न प्रकाशन करता। यह सब-कुछ इसलिए किया गया कि आप प्रेस को नहीं चला सके और मैंने आपका भार हलका करने के लिए सब-कुछ किया। 'हंस' में मैंने पाँच साल काम किया। आपको मैंने 10 रु. मासिक दिया। मुझे अपनी कहानियों और रचनाओं के लिए कम-से-कम 30 रु. महीना तो मिलना ही चाहिए था ! पाँच वर्ष में वह भी 2000 रु. के ऊपर हो जाता है। जब 'हंस' से आपने कोई हानि नहीं उठायी तो फिर आपको दुःख किस बात का ? जब मैंने देख लिया कि 'हंस' के कारण मुझे दिन-दिन घाटा हो रहा है तो क्या उसे चलाया ही जाता ? कब तक चलाया जाता ? कैसे चलाये जाता ? घर बेचकर ? या बाज़ार वालों की डिग्री लेकर और जेल में सड़कर ? 'हंस' मैंने दूसरों को दे दिया। मुफ़्त। मुझे कोई लाभ नहीं हुआ 'जागरण' भी हम दोनों ने निकाला, उसकी ज़िम्मेदारी मुझ पर ही नहीं। अगर आप कह

देते, मत निकालिए तो मैं कभी न निकालता। आपने उसके लिए मुझसे ज़्यादा मेहनत नहीं की। आपको मेरे लाभ-ही-लाभ नज़र आते हैं, मैं इसे क्या कहूँ ? अगर प्रेस 5 हज़ार रु. का हो और ब्याज आठ आने ही हो हालाँकि आप कोई महाजन खड़ा कर दें तो उससे आठ आने दर पर कुछ रुपये उधार लेकर प्रकाशन करने को तैयार हूँ, और यह आपका भ्रम है—अच्छी-से-अच्छी ज़ामनत पर आपको या किसी राजा को भी 9 रु. से कम पर रुपए नहीं मिल सकते, लेकिन ख़ैर आठ आने ही सही, तब भी 8 साल में 2400 हो जाते हैं। आपने जो कुछ पाया वह इसमें मिलाइए। आपने यह एक-एक हज़ार मिला कर 5 हज़ार पाये। यों 7400 हो जाते हैं। मेरी रॉयल्टी के कम-से-कम 4 हज़ार मिलाइए तो 11400 रु. होते हैं। यह आप मुझे किसी तरह दे दीजिए, नहीं दस ही दे दीजिए, 9 हज़ार दीजिए, 8 हज़ार दीजिए, 7 हज़ार दीजिए नगद, और ले जाइये, और इस रुपये पर जो साल-ब-साल मुझे मिलते तो अब तक मुझे कितना ब्याज मिला होता, इसे भी याद रख लीजिएगा। पहले साल में अगर आप मुझे 900 रु. दे देते तो दूसरे साल इसके आठ आने सैकड़े से 50 रु. सूद हो जाते। इस तरह रॉयल्टी और सब-कुछ मिलाकर इस वक़्त मेरे पास कम-से-कम 15 हज़ार होते। मैं इसे पाई-पाई हिसाब करके दिखा सकता हूँ। मैं उसके बदले सारा स्टॉक 7 हज़ार में देने को तैयार हूँ। आप किसी प्रकाशक या बुकसेलर को ठीक कर सकें तो कर लीजिए, आज ही। जब मेरी और पुस्तकें छप जायेंगी तो स्टाक बढ़ जायगा। मैं तो इस वक़्त की बात करता हूँ। 15000 रु. की जमा पर मैं 7 हज़ार लेने को तैयार हूँ। यह आठ हज़ार की हानि, और आप क्या चाहते हैं ? अगर आप ऐसा कर सकें तो कीजिए, नहीं तो साझे के विचार को दिल से निकाल डालिए। ये मेरी पुस्तकें थीं, जिनसे यह बिक्री हो गयी और प्रेस इतने दिनों चला, नहीं तो अब तक जहन्नुम में पहुँच गया होता।

अब रही आगे की बात। प्रेस में 60 रु. माहवार वेतन देने की सामर्थ्य नहीं है। 'हंस' आज यहाँ छपता है, कल को वह बम्बई चला जा सकता है। उस दशा में मैं 60 रु. वेतन आपको दूँगा तो खुद मुँह ताकता रहूँगा, और दूसरे रिश्तेदार भी मुँह ताकते रहेंगे। मैं खुद इसे इस तरह चलाऊँगा कि एक फ़ॉर्म रोज़ छापने का इन्तज़ाम करूँगा और अपनी पुस्तकों से जैसे होगा, चलाऊँगा। हाँ, आप कमीशन पर काम करना चाहें तो करें। उस दशा में आप जितने फॉ़र्म छापें, उस पर मुझसे 1 रु. लेते जाइए। उसमें 'हंस' भी शामिल है। जब तक वह यहाँ है, मेरी पुस्तकें भी शामिल हैं, किराया का काम भी शामिल है। अगर आप महीने में 60 फॉ़र्म छाप लें 60 लीजिए, 50 छापें 50 लीजिए, 70 छापें 70 लीजिए। मगर यह ज़रूरी है कि बाहर का काम कम-से-कम 30 फ़ॉर्म होता रहे। अगर आप घर का काम ही 60 फ़ॉर्म का चाहेंगे, तो मैं कहाँ से लाऊँगा ? या कुछ प्रतिशत रख लीजिए। जैसा आप सोचें जिसमें आपकी गुज़र हो और मेरा नुक़सान न हो। अगर आपका इस तरह सुभीता न हो तो आप स्वाधीन हैं, जहाँ जो चाहें कर सकते हैं। तब मैं ये रुपये बट्टेखाते में डलवा दूँगा और समझ लूँगा कि जैसे 7, 8 हज़ार गया वैसे यह भी गया। मैंने 8 साल केवल इसलिए दूसरों की गुलामी की कि मेरे पास अपनी पुस्तकों से कुछ जमा हो जाय और बुढ़ापे के लिए कुछ निकल आवे। मगर वह गुलामी करने पर

भी मैं आज खाली हाथ हूँ। यही पुस्तकें दूसरों को दे देता तो इस वक़्त ज्यादा नहीं तो 5 हज़ार मेरे बैंक में होते और मैं आराम की साँस लेता। अब मेरे पास शायद 4, 5 हज़ार का स्टॉक हो जिसे मैं 5, 6 साल में दीमक से बचने पर वसूल कर सकूँ। मैं तो समझता हूँ वह सब डूब गया। बिकने वाली किताबों में 'प्रतिज्ञा' है और 'कायाकल्प' है, 'प्रेम-तीर्थ' भी है। बस ! 'कर्मभूमि' और 'ग़बन' ग़ायब हो गये हैं। ख़ैर, इतने दिनों के अनुभव से अब मालूम हुआ कि प्रेस में 60 रु. वेतन देने की सामर्थ्य नहीं है और साझा, जो अब तक बरायनाम चलता था चल नहीं सकता, क्योंकि मैं बहुत जल्द एक कम्पनी बनाकर प्रेस और प्रकाशन उसके मत्थे पटक कर आज़ाद हो जाना चाहता हूँ। इसके लिए प्रयत्न भी कर रहा हूँ। कमीशन वाली व्यवस्था आप सोचकर मुझे बताइए, उसके लिए मैं तैयार हूँ, जब तक प्रेस मेरे पास है। बाद की कुछ नहीं कह सकता। अगर आप कहीं और अच्छी जगह पा सकें तो मुझसे ज्यादा खुशी और किसी को न होगी।

भवदीय, धनपत राय।



सम्भवतः दिसम्बर, 1935

बंधुवर,

मेरी समझ में नहीं आता कि आप मुझसे पिछला हिसाब क्या देखना चाहते हैं ? आप उसे देखिए। मैं उसे देख चुका। लेना-देना तो आप इस तरह करते हैं कि गोया मुझे भी कुछ देना है। आपने अभी तक परिस्थिति को शान्त मन से समझने की चेष्टा नहीं की लेने-देने के फेर में पड़े हुए हैं। मेरे दृष्टिकोण से भी तो देखिए ! आप न तो लज्जित हैं, न दुःखी हैं। बस, कि अपने कामों का औचित्य साबित किये जाते हैं। प्रश्न है कि हिसाब सही है या ग़लत ? अगर ग़लत है तो ग़लत हिसाब लिखने का जाल क्यों किया गया ? सही है तो रुपये रहते हुए मकान के किराए की डिग्री क्यों करायी गयी, काग़ज की डिग्री क्यों कराई गयी, हड़ताल क्यों करायी गयी ? मेरी बदनामी क्यों करायी गयी है ?

'हंस' निकला, 'जागरण' निकला—प्रेस के, मेरे और आपके लाभ के लिए। एक भी न चला। तो वह नुक़सान मेरे ही ऊपर क्यों डाला जाय ? मैंने माना, आपने प्रेस को 3000 रुपये दिये। प्रेस की घिसाई भी तो कुछ हुई। आज आपके पास केवल वही टाइप है जो मेरे सामने आया। दूसरा टाइप नहीं। मशीन में 200 रुपये ख़र्च होंगे तब चलेगी। घिस-घिसकर बेकार हो गयी। केवल ट्रेडल नयी आयी। बार्डर वग़ैरा आपने कितने का मंगाया है, यह मैं नहीं जानता। मुझे सूद कुछ मिलना चाहिए या नहीं ? पुस्तकों की आमदनी कुछ मिलनी चाहिए या नहीं ? यह सब 'हंस' और 'जागरण' खा गये। आपका इससे कोई संबंध नहीं था। यही सही ! मगर यह तो आपको मालूम था कि जो आदमी 7 साल से बराबर पत्र निकाल रहा है, पुस्तकें लिख-लिख दे रहा है वह किसलिए ? इसीलिए कि 'हंस' निकाला जाय ? 'हंस' निकालना ही उसका उद्देश्य है ? यह सब हम दोनों के नफ़े के ख़याल से निकला। यह जानते हुए कि जिस व्यक्ति ने इतना सब किया, वह कुछ नहीं पा रहा है, आपको प्रेस की एक-एक पाई की एक-एक अशर्फ़ी की तरह रक्षा करनी चाहिए थी। कारोबार में घाटा हो रहा हो, डिग्रियाँ हो रही हों, मैं बराबर अपने

पास से रुपये दे रहा हूँ, तो भी आप नफ़ा ही कहे जायेंगे ? अच्छा, सूद छोड़िए, आपने जो कुछ पाया वह तो मुझे मिलना ही चाहिए। पुस्तकों की रॉयल्टी तो मिलनी ही चाहिए। इन दोनों का ठीक-ठीक हिसाब निकलवाइए। फिर स्टॉक का ठीक-ठीक हिसाब निकलवाइए। स्टॉक के सिवा तो मेरे पास और कुछ नहीं है। 'मानसरोवर' को छोड़ दीजिए, क्योंकि वह दूसरे की चीज़ है। जितने का स्टॉक निकले उसमें मुझे प्रेस का नफ़ा और रॉयल्टी की रक़म देकर बाक़ी जो बचे उसमें आधा आप ले लीजिए, आधा मुझे दे दीजिए, और अपने लिए कोई दूसरा स्थान तलाश कर लीजिए।

मैंने आपकी मनोवृत्ति जैसी समझी है, वह स्वार्थपरता की ओर झुकी हुई मालूम होती है। मालिक को धेला न मिले, वह पत्र में भी लिखे, पुस्तकें भी लिखे, अपने पास से रुपये भी दे, फिर भी आप इस ख़याल में खुश रहें कि नफ़ा हुआ है और हजार-पाँच सौ रुपये ख़र्च करने का आपको अधिकार है। मैं इस अधिकार को स्वीकार नहीं करता हूँ। हमारे-आपके बीच में शर्त थी कि प्रेस की लागत का सूद निकालकर, प्रकाशन पर रॉयल्टी देकर जो कुछ बचे, उसमें आधा-आधा। इसमें कोई भूल तो नहीं है ? तो–

1. आपने अब तक क्या लिया, इसका हिसाब लगाइए। 2. मैंने क्या लिया ? 3. मैंने प्रेस को क्या दिया ? 4. स्टॉक कितने का है ? 5. प्रेस के ज़िम्मे क्या बाक़ी है ? 6. प्रेस का कितना पाना है ?

यह साफ़ करके आपका जो कुछ निकले ले लीजिए, मेरा जो कुछ निकले दे दीजिए और झगड़ा ख़त्म । ऐसी मनोवृत्ति के साथ मेरा सहयोग कठिन है। आप के लिए इससे बहुत अच्छे अवसर मिल सकते हैं।

मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आपके साथ मेरा साझा न चल सकेगा। साझा तो तब चलता जब आपने मेरे हित का ध्यान रखा होता। आपने मेरे हित का ध्यान न रखकर अपने लाभ का ही ध्यान रखा। ख़ैर, अब तो मुआमला साफ़ है। आप दो-चार दिन में हिसाब ठीक-ठाक कर लीजिए और यह चिठियाव ख़त्म कीजिए। आपको भी मानसिक कष्ट होता है और मुझे भी। हां, स्टॉक में इस बात का ख़याल रखिएगा कि केवल उसकी लिखी हुई क़ीमत पर न जाइए। उसमें अभी तैयारी में भी ख़र्चा पड़ेगा और 1/3 कमीशन निकालना पड़ेगा, अर्थात् 40 प्रतिशत बाद कर दीजिएगा।

'रस-रंग', 'ज्वालामुखी' आदि पुस्तकें आप यों ही ले जाइएगा और लेखकों से अपना हिसाब-किताब समझते रहिएगा।

आपका, धनपतराय

●●

प्रियरंजन सेन को

सम्भवतः 1935

....

बँगला-साहित्य अब केवल प्रान्तीय नहीं रह गया है। यह बहुत दिनों पहले ही प्रान्तीयता वाली अवस्था पार कर चुका है, परन्तु फिर भी उसके आधुनिक विकास से हम लोग भली-भाँति परिचित नहीं हैं। हिन्दी साहित्य ज्यों-ज्यों उन्नत होता जाता है, त्यों-त्यों उसे थोड़ा-बहुत अपने महत्त्व का परिचय होता जाता है और अब पहले की तरह

बँगला पुस्तकों के उतने अधिक हिन्दी अनुवाद नहीं होते। बंकिम, रमेश, डी. एल. राय, शरत् और गुरुदेव समस्त भारत के हैं, और इनमें से कुछ तो सारे संसार में प्रसिद्ध हो चुके हैं, लेकिन हम लोगों में एक-दूसरे के साथ जो दिलचस्पी है, वह कम नहीं होनी चाहिए। बड़े-बड़े लेखक किसी एक ही प्रान्त या देश के नहीं होते। जब हम लोग एक राष्ट्र के रूप में हैं, तब हमें बंकिम का भी उतना ही अधिक अभिमान होना चाहिए, जितना इक़बाल या जोशी का।



तिथि अज्ञात

भाई जान, तसलीम !

जल्द इत्तला ना मिली। दो घण्टे के इन्तज़ार के बाद अब जा रहा हूँ। यह क़िस्सा 'ज़माना' के लिए लिखा है, पसन्द आये तो दे दूँगा। इसमें कहीं-कहीं अल्फ़ाज़ Underlined नज़र आयेंगे। वो हिन्दी मतरज़्ज़म (अनुवादक) ने नहीं बनायीं। इनका कुछ मुझे ठीक मालूम नहीं हुआ। वस्सलाम,

धनपत राय।



2-1-36

बन्धुवर,

मुझसे अब और आप क्या चाहते हैं ? स्टॉक तो मैं कह चुका, कोई 5 हज़ार पर भी ले ले आप आज ही इसी दम दे दें और मुझे वह रुपये दे दें। इससे ज़्यादा आप मुझसे कितना त्याग करने को कहते हैं ? मेरे हिसाब से जो रक़म 15 हज़ार होनी चाहिए थी, वह केवल 5 हज़ार पर टूट रही है। मुझे 5 सहस्र देकर शेष आप ले जाइए। अब तो आप खुश हैं ? मैं सूद, ब्याज़, नफ़ा, रॉयल्टी सबको जहन्नुम भेजता हूँ।

रही गुज़र-बसर की बात। अगर मेरे कारोबार में उन्नति हुई, मुझे प्रेस से कुछ मिला तो मैं अकेला खाने वाला व्यक्ति नहीं हूँ। इस वक़्त प्रेस का ख़र्च मेरे सामने है–265+17 = 282 तो मज़दूरी है, किराया 21 रु., बिजली 15 रु., आपका 40 रु., ब्याज़ 30 रु, घिसाई 40 रु., फुटकर ख़र्च 30 रु.। यह तो 418 रु. ख़र्च हुए। इसमें मेरा केवल 30 रु. ब्याज़ है, अर्थात् 420 रु. माहवार आमदनी हो तो काम चले। मैं गया जहन्नुम में। 'हंस' से केवल 250 रु. ही तो मिलते हैं। 170 रु. तो केवल खर्च पूरा करने को चाहिए अब पिछला देना है। जब तक 200 रु. प्रति मास नक़द न मिलें गाड़ी रुक जायगी। मुझे कहीं और से कुछ नहीं मिलता। पुस्तकों से जो कुछ मिलेगा, वही मेरी जीविका। जो कुछ फ़रमे मेरे छपेंगे, वही मेरा नफ़ा है। अगर मैं और आप मिलकर प्रेस को 200 रु. का काम न दे सकेंगे तो आप ही सोचिए, प्रेस कैसे चलेगा और यह प्रश्न क्यों न उठेगा कि उसे बन्द क्यों न किया जाये ? जैसे अब तक वह चला है, यानी मुझे 10 हज़ार का घाटा देकर, उस तरह तो भविष्य में न चल सकेगा। इससे तो बन्द करना कहीं अच्छा होगा।

आपने जो अपने गुज़र की बात कही है, आपकी कठिनाई मैं समझता हूँ, लेकिन मेरे लिए तो भी वही परिस्थिति है। मैं तो कुछ भी नहीं ले रहा हूँ। बुकडिपो से जो सौ-पचास मिलेंगे, वही मेरे गुज़र का साधन है। वहाँ भी तो बिकने वाली पुस्तकें नहीं

रहीं। फिर से छपाने में धन ही तो लगेगा। जब तक प्रेस में 500 रु. का कम-से-कम काम न होगा, कहाँ से आप रहेंगे, कहाँ से मजूर रहेंगे, और कहाँ से मैं रहूँगा ? प्रेस से ज्यादा आमदनी कीजिए, ख़र्च से बच जाय, मैं नफ़ा लेने लगूँगा तो आपको भी दे दूँगा। पुस्तकें अनुवाद कीजिए, संग्रह कीजिए, मगर वह भी तो तभी छपेंगी जब प्रेस के पास धन होगा। नफ़ा तो पीछे होगा, इस वक़्त तो धन लगाने को चाहिए। इसी महीने में जब तक 200 रु. न मिलें, काम न चलेगा। टाइप कहाँ से आयेगा ? काग़ज़ का कैसे जायगा ? परिश्रम से अपनी आमदनी बढ़ाइए। सभी ऐसा करते हैं। मैं भी तो रात-दिन पेट की चिन्ता में ही रहता हूँ। आपने जिस परिस्थिति में प्रेस को ला दिया है, वह बड़ी भयावह है। पास एक पैसा नहीं, काम राम-आसरे ! खर्च 450 रु., कर्ज़ हज़ार-बारह से ऊपर। स्टाक वह जो मेरे 15 हज़ार के एवज़ मिला है, जिसे मैं 5 हज़ार पर देने को तैयार हूँ। अगर आप यह चाहें कि मैं पुस्तकें लिखे जाऊँ और प्रेस किसी तरह रो-धोकर चलता रहे और मैं मुँह ताकता रहूँ, तो अब तो मेरे लिए, और कहीं नौकरी भी नहीं है। मुझे खेद यही होता है कि आप मेरी हानि का अन्दाज़ न करके स्टॉक-स्टॉक करे जाते हैं। आप उस स्टॉक को न जाने क्या समझे हुए हैं ! मैं उसे रद्दी का ढेर समझता हूँ, जब तक वह रुपए के रूप में न आ जाय।

भवदीय, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 3 जनवरी 1936

प्रिय ललिताशंकर,

कार्ड। भारती मिली। हंस पर नोट पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। किसे धन्यवाद दूँ। अपने पास तो रख नहीं सकता। तुम ले लो या चंदोलाजी ले लें।

वह लेख अवश्य भेज दो। हिन्दी अनुवाद आये तो अच्छा। यहाँ अनुवाद ठीक न हो सकेगा।

लेख हिन्दी है तो मेरे पास भेजिए। बंगला भी, उड़िया भी, उर्दू भी। यह विभाग यहाँ हैं। गुजराती, मराठी और दक्षिण भाषाओं का विभाग बम्बई।

भवदीय, प्रेमचंद।

●●

3 जनवरी, 1936

प्रिय पद्मकांत जी,

आपसे किस भले आदमी ने कह दिया कि मैं अभ्युदय से नाराज़ हूँ। लिख न सकना दूसरी बात है, नाराज़ होना दूसरी बात है। मैं कोशिश करूँगा कि कुछ लिखूँ। कहानी तो फ़िलहाल लिखना कठिन है लेकिन कोई लेख भेजने का प्रयत्न करूँगा। मैं तो तुम्हारे घर भी हो आया हूँ। पान खा आया हूँ। हाँ, गरीब और धनी में जो एक अंतर होता है वह मुझमें और तुम में है। मैं गरीब वर्ग को बिलांग करता हूँ, तुम धनी वर्ग को। नहीं इतना पान क्यों खाते। मैं भी पान खाता हूँ मगर मेरा नशा ताड़ी है, तुम्हारा शेरी।

भवदीय,, प्रेमचंद

●●

दि हंस लिमिटेड, बनारस, 10-1-1936

बन्धुवर,

पचासों चिट्ठियों के बाद भी आप वहीं हैं, जहाँ से चले थे। यह लिखा-पढ़ी व्यर्थ हुई।

मैंने स्पष्ट लिख दिया, आपको 40 रु. मिलेंगे, 30 रु. मुज़रा होंगे। साझा कोई नहीं रहेगा। आपको काम की फ़िक्र रखनी होगी जिससे मुझे जेब से न देनी पड़े।

हिसाब क्या बाक़ी है मैं नहीं समझा। अगर आप स्टॉक देखना चाहते हैं तो मुझे लिख भेजिए कि किस पुस्तक की कितनी प्रतियाँ बाक़ी हैं और उस पर मुझे क्या मिलना है। मेरा देना चुकाकर उस स्टॉक में आधा ले लीजिए।

इसके उपरान्त मैं और क्या कर सकता हूँ ? 8 साल का अनुभव है कि प्रेस में 60 रु. या 50 रु. की गुंजाइश बनी नहीं है। 40 रु. की भी इसलिए है कि आपने इतने दिन काम किया है।

भवदीय, धनपत राय।

●●

दि हंस लिमिटेड

एडीटर्स : प्रेमचंद एण्ड कन्हैयालाल मुंशी 11-1-1936

प्रियवर,

मेरे जान में तो आपने मेरे साथ काफ़ी बुराई की है, नहीं आज यह नौबत ही क्यों होती ! रुपये रहते हड़ताल कराना, अदालत से डिग्रियाँ कराना बुराई नहीं है तो भलाई भी नहीं है।

आप अपना खर्च 90 रु. माहवार लिखते हैं। आपको 60 रु. मिलते थे, वह भी वेतन-स्वरूप नहीं, केवल भावी नफ़े की आशा पर। जो आदमी अपनी आमदनी से ज्यादा खर्च करता रहे वह योग्य नहीं कि उससे सहयोग किया जाय।

मैं हिसाब करने से क्यों भागूँ ? आप लिखते हैं आप टाल रहे हैं। मैंने तो पहले भी लिखा, पिछले पत्र में भी लिखा और अब फिर लिखता हूँ कि आप जैसे हिसाब चाहें कर लीजिए। काग़ज-पत्र सब नीचे रक्खे हैं। हिसाब कीजिए कि प्रेस की क्या घिसाई हुई और उसमें आपने कितना लगाया। कितना सूद हुआ और उसमें आपने कितना दिया। कितनी किताबें बिकीं और उन पर मेरी रॉयल्टी के सिवा क्या नफ़ा हुआ। फिर मेरी रॉयल्टी लगाइए, और जो कुछ आपने पाया है और जो कुछ मैंने पाया है, उसे निकालकर बताइए कि मुझे कितना मिलना चाहिए और आपको कितना मिलना चाहिए। फिर स्टॉक रक्खा है, उसमें से जितना आपका निकलता हो आप ले लीजिए। जितना मेरा निकलता हो मुझे दे दीजिए। यह भी लिखिए कि प्रेस को कितना किससे पाना है और कितना किसको देना।

आप या तो प्रेस के कर्मचारी हैं या साझेदार नफ़े के। कर्मचारी हैं तो एक महीने का नोटिस क़ायदे के अनुसार लीजिए और मुझसे वेतन लीजिए 60 रु.। साझेदार हैं तो आपको मुझसे कुछ लेने का हक़ नहीं है। केवल हिसाब करने का हक़ है और उस हिसाब से जो कुछ निकले उसे ले लेने का हक़ है। उससे आपको भी सन्तोष हो जाएगा, मुझे भी।

आप कहते हैं मैंने नफ़ा समझकर ज्यादा खर्च किया। अच्छी दिल्लगी है ! मकान का किराया तो आप दे नहीं सकते और आपको नफ़ा हो रहा था ! ठीक भी है। आपका नफ़ा हो रहा होगा, मुझे तो घाटा ही हो रहा था। ऐसा साझा, जिसमें एक तो घाटा हो दूसरे को नफ़ा, असंगत है।

मैं आज प्रयाग जाता हूँ। 14 को लौटूँगा। तब तक आप हिसाब-किसाब कर रखिए। मैं इस रोज़-रोज़ की लिखा-पढ़ी से तंग आ गया हूँ। बँटवारे के सिवा कोई उपाय नहीं है।

अगर आप इस पर राज़ी न हों तो पंचायत कर लीजिए। जिसे चाहें पंच बना लीजिए। उसके सामने अपना हिसाब रख दीजिए। जो वह दिला दे वह लेकर आप भी ख़ुश हो जाइए, मैं भी।

भवदीय, धनपत राय

●●

भारतीय साहित्य का मुखपत्र 'हंस'
सम्पादक—प्रेमचंद, कन्हैयालाल मुंशी
सं. 1335

प्रकाशक—दि हंस लिमिटेड
सरस्वती प्रेस, बनारस कैण्ट
16-1-1936

प्रिय रामकुमार,

मैं नहीं समझता, तुम्हारी अनुपस्थिति में घर से भाग आने के कारण मुझे क्षमा माँगनी चाहिए। मैंने प्रतीक्षा की और जब तुम नहीं आए तो मैं वहाँ ठहर न सका।

मैंने बुक डिपो को 'रूपराशि' की 15 प्रतियाँ भेजने का आदेश दे दिया है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब तुम्हारा 'देव' प्रसन्न होगा। मैं जल्दी में वहाँ अपनी धोती छोड़ आया हूँ, फूटा शीशा भी। अपनी याददास्त में मैं इन्हें तुम्हारी ड्राईग-रूम में छोड़ आया हूँ। कृपया इन्हें तलाश करना। मैं बिल्कुल भूल गया हूँ कि मैंने क्या लिखा था और अवस्थी को यदि मैंने भूमिका न दी तो वह मुझे ज़िन्दा न छोड़ेगा। यदि तुम्हें वह मिल जाय तो पुस्तक के साथ उसे भेज देना। खर्चा बचाने के लिए तुम अन्तिम तीन कहानियाँ मेरी टिप्पणियों के साथ पुस्तक से भेज सकते हो।

मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, तुम्हारी समुचित—यह कहना ठीक होगा, तुम्हारी मूल्यवान ख़ातिरदारी के लिए।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 22 जनवरी 1936

प्रिय बहन,

मैं लज्जित हूँ। तुम्हारी पुस्तक प्रेस में दे चुका हूँ, लेकिन जब कोई दूसरा काम मिल जाता है तो प्रेस वाले उधर लग जाते हैं और काम रुक जाता है। मुझे आशा है, मार्च के अंत तक पुस्तक तैयार हो जायेगी।

तुम्हारी दो कहानियाँ मेरे पास हैं। दो बार 'राखी' नाम की कहानी प्रेस में दी, लेकिन हिन्दी मैटर अधिक हो जाने से न छप सकी। हिन्दी के लिए कुल तीन फार्म रहते

हैं। इसी से विवश हो जाता हूँ। मार्च में एक अवश्य दूँगा।

तुम्हारे जीवन में मैं तुम्हारी कितनी ही पुस्तकें छापूँगा, अगर मैं जीता रहा।

शेष कुशल।

सप्रेम, प्रेमचंद।

●●

सम्भवतः जनवरी, 1936

प्रियवर,

...इस देरी (धनीराम ने अपनी पुस्तक के प्रकाशन में विलम्ब होने पर प्रेमचंद से अपनी पुस्तक वापस मँगा ली थी–गोयनका) में मेरा कोई अपराध नहीं था। बात यह है कि प्रबन्ध में मैं बहुत कच्चा हूँ और दुर्भाग्य से इस कारण मेरे अपनों को ही दुःख अधिक पहुँचा है। प्रेस में से लोग रुपया खा गये हैं। तुम यहाँ आकर अगर देख सको तो मेरी मुश्किलों को समझोगे। शायद हम लोगों की किस्मत में कंटु शब्द बदलना लिखा था। ख़ैर, अब हमारा व्यक्तिगत सम्बन्ध और भी सुदृढ़ होगा। जब हम मिलेंगे, तो यह धब्बा मिट जायगा।

भवदीय, प्रेमचंद।

●●

सम्भवतः 1936 का आरम्भ

प्रिय बनारसीदास जी, वन्दे !

यह एक छोटा-सा ड्रामा ('सृष्टि का आरम्भ'–गोयनका) बर्नार्ड शॉ की एक नयी रचना ('बैक टु मेथ्यूसेलह'–गोयनका) का अनुवाद है। इसे बड़े परिश्रम से कराया है। रचना कितनी उच्चकोटि की है, पढ़ने से ज्ञात होगी। किसी नाम की बहुत ज़रूरत हो तो ध. र. ('धनपत राय' जो प्रेमचंद का मूल नाम था–गोयनका) दे दें। हाँ, पुरस्कार वही दें, जो आप अच्छे अनुवाद को दे सकें। आशा है, आप सानन्द होंगे।

भवदीय, धनपत राय।

●●

काशी, 14 फरवरी, 1936

प्रिय आनन्द जी,

आपका नोट मिला। धन्यवाद। इसकी ज़रूरत थी। छापूँगा। हाँ, सिंहल साहित्य के विषय में अगर कोई लेख भेज सकें तो बड़ा अच्छा हो। उसे तो हम कुछ जानते ही नहीं। उसका कुछ आलोचनात्मक इतिहास ही हो तो कोई हर्ज नहीं।

अगर इंगलैण्ड जायँ तो वहाँ से बौद्ध साहित्य पर एक अच्छा-सा लेख लिखें, केवल उसके धर्म-साहित्य पर नहीं, वल्कि बौद्धकालीन साहित्य पर। ऐसे लेख की बड़ी ज़रूरत है।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

आपका, प्रेमचंद।

●●

15-2-1936

प्रियवर,

जहाँ आप चाहें और जब चाहें। मुझे किसी पंच की ज़रूरत नहीं। मेरे पंच वही होंगे जो आपके होंगे।

धनपत राय।

●●

काशी, 15-2-1936

प्रिय भाई साहब,

आपने पंचायत के लिए स्वीकार किया था। मैं सब ठीक कर चुका हूँ। अब आप अपनी ओर के पंचों को ठीक करके समय दीजिए कि किस दिन आपको सुविधा होगी। स्थान प्रेस ही रहेगा, या पंचों की इच्छानुसार। उत्तर इसी समय देने की कृपा कीजिए।

प्रवासीलाल।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट, 27 फरवरी, 1936

प्रिय ललिताशंकर जी,

तुम्हारा 22 फ़रवरी 36 का पत्र मिला। तुम्हारा भेजा हुआ लेख छप गया। उसे मैंने पहला स्थान दिया है। अब उसके reprint कैसे मिलेंगे। उसे छपे तो एक हफ्ता हो गया। पहले तुमने लिखा नहीं, कुछ निकलवा लेता।

मैंने तो तुम्हारे आदेशों को कभी नहीं टाला। चतुर्वेदी जी के नेवते पर मैं क्यों जाने लगा। वह कौन होते हैं। क्या तुम सीधे मुझसे नहीं कह सकते। तुम्हारे यहाँ जब कोई ऐसा अवसर आये, मुझे बुलाना, मैं आऊँगा। हाँ यह तो तुम जानते ही हो कि मैं घर में अकेला आदमी हूँ और बिला ज़रूरत कहीं नहीं आता जाता। गुरुदेव के दर्शनों की इच्छा मुझे भी है। समय आयेगा तो वह भी पूरी हो जायेगी। मित्रों को मेरा बंदे कहना।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।

●●

बनारस, 27 फ़रवरी, 1936

डियर अख़्तर,

तुम्हारा ख़त मिला। मैं इसी फ़िक्र में था कि तुमने मेरे ख़त का अब तक जवाब क्यों नहीं दिया। अब मालूम हुआ कि तुम पहाड़ों की सैर कर रहे थे।

अब मेरा क़िस्सा सुनो। मैं क़रीब एक माह से बीमार हूँ। मेदे में गैस्ट्रिक अलसर की शिकायत है। मुँह से खून आ जाता है। इसलिए काम कुछ नहीं करता। दवा कर रहा हूँ। मगर अभी तक कोई इफ़ाक़ा नहीं। अगर बच गया तो 'बीसवीं सदी' नाम का रिसाला अपने लोगों के ख़यालात की इशाअत के लिए ज़रूर निकालूँगा। 'हंस' से तो मेरा ताल्लुक़ टूट गया। मुफ्त की सरमग़्ज़ी, बनियों के साथ काम करके शुक्रिये की जगह यह सिला मिला कि तुमने 'हंस' में ज़्यादा रुपया सर्फ़ कर दिया। इसके लिए मैंने दिलोजान से काम किया, बिल्कुल अकेला, अपने वक़्त और मेहनत का इतना खून किया, इसका किसी ने लिहाज़ न किया। मैंने 'हंस' उन लोगों को इस ख़याल से दिया था कि वह

मेरे प्रेस में छपता रहेगा और मुझे प्रेस की जानिब से गूना बेफ़िक्री रहेगी लेकिन अब वह दिल्ली में सस्ता साहित्य मंडल की जानिब से निकलेगा और इस तबादले में परिषद् को अन्दाज़न पचास रुपये महीने की बचत हो जायगी। मैं भी खुश हूँ। 'हंस' जिस लिटरेचर की इशाअत कर रहा था, वह हमारा लिटरेचर नहीं है, वह तो वही भक्तिवाला महाजनी लिटरेचर है जो हिन्दी ज़बान में काफ़ी है।

मेरा नया नावेल 'गोदान' अभी हाल में निकला है। उसकी एक जिल्द भेज रहा हूँ। 'उर्दू' में रिव्यू करना। 'मैदाने अमल' का नुस्ख़ा तो तुम्हारे यहाँ पहुँचा ही होगा। अब 'गऊदान' के लिए भी एक पब्लिशर तलाश कर रहा हूँ मगर उर्दू में तो हालत जैसी है, तुम जानते ही हो। बहुत हुआ तो एक रुपया फ़ी सफ़ा कोई दे देगा।

और सब ख़ैरियत है। मौलवी अब्दुल हक़ साहब क़िवला की ख़िदमन में मेरा आदाब कहना।

मुखलिस, धनपत राय।

●●

सज्जाद ज़हीर के नाम

15 मार्च, 1936

सभापतित्व की बात, मैं इसके योग्य नहीं। विनम्रतावश नहीं कहता, मैं अपने में कमज़ोरी पाता हूँ। मिस्टर कन्हैयालाल मुंशी मुझसे बेहतर होंगे, या डॉक्टर ज़ाकिर हुसैन। पण्डित जवाहरलाल नेहरू तो बड़े व्यस्त होंगे, नहीं वे एकदम उपयुक्त होंगे। इस अवसर पर सभी राजनीति के नशे में चूर होंगे, साहित्य से शायद ही किसी को दिलचस्पी हो, लेकिन हमें कुछ-न-कुछ तो करना है। यदि जवाहरलाल ने दिलचस्पी ली, तो अधिवेशन सफल हो जायगा।

मेरे पास इस वक़्त भी सभापतित्व के लिए दो जगह के निमन्त्रण हैं—एक लाहौर के हिन्दी सम्मेलन का, दूसरा हैदराबाद दक्षिण की हिन्दी-प्रचार-सभा का। मैं इनकार कर रहा हूँ, पर वे लोग इसरार (अनुरोध) कर रहे हैं। कहाँ-कहाँ प्रिज़ाइड (Preside) करूँ ? हमारी संस्था में कोई बाहर का आदमी सभापति बने तो ज़्यादा अच्छा हो। मजबूरी दर्जा मैं तो हूँ ही। कुछ रो-गा लूँगा।

और क्या लिखूँ ? तुम जरा पण्डित अमरनाथ झा को तो आज़माओ। उन्हें उर्दू-साहित्य से दिलचस्पी है और शायद वे सभापति होना स्वीकार कर लें।

धनपत राय।

●●

16-3-1936

प्रिय शंकरन जी,

आपका 9-3-36 का पत्र मिला। मैं 11 को देहली से लौटा और कई दिन का बक़ाया साफ़ कर रहा हूँ। मुझे यह जानकर खेद हुआ कि सभा ने आपके साथ वह व्यवहार नहीं किया जो उसे करना चाहिए था। इसका कारण यही मालूम होता है कि सभा के पास धन नहीं है और वह अपना ख़र्च घटा रही है। हमारी सार्वजनिक संस्थाओं का यही

हाल है।

आपने 'हंस' के प्रचार के लिए श्री मुंशी को पत्र लिखा है, वह बड़े महत्त्व की वस्तु है। बेशक हमें कांग्रेस-सप्ताह में 'हंस' के लिए प्रोपैगण्डा करना होगा। अभी तो हमारी हालत ऐसी नहीं है कि 1000 प्रतियाँ छाप कर बाँट सकें, पर हमने 500 प्रतियाँ अधिक छाप कर बाँटने और प्रचार करने का निश्चय किया है। श्री शर्मा जी स्वयं लखनऊ आ रहे हैं। आशा है, कुछ-न-कुछ सफलता अवश्य मिलेगी।

नागपुर-सम्मेलन की स्वागतकारिणी सभा प्रान्तीय परिषदों के प्रतिनिधियों को निमन्त्रित करती है या नहीं, देखना चाहिए। हम लोग तो महात्माजी की बीमारी से ऐसा न कर सके। सम्भव है, आगे अवकाश मिलने पर करें।

और तो यहाँ सब कुशल है। आपकी याद अक्सर आती है। पत्र नहीं लिखता, इससे यह न समझिए कि मैं आपको भूल गया।

भवदीय, प्रेमचंद।



हंस कार्यालय, बनारस, 18 मार्च, 1936

प्रिय बनारसीदास जी,

धन्यवाद। हंस चल रहा है। ग्राहक धीरे-धीरे आ रहे हैं। अब भी इसमें दो सौ रुपये महीने का घाटा है, जब कि इसे सम्पादकों को कोई तनख्वाह नहीं देनी पड़ती और सारे लेख मुफ्त होते हैं।

मुझे जानकर दुख हुआ कि विशाल भारत अब भी घाटा दे रहा है। कितने अफ़सोस की बात है कि पहला हिन्दी पत्र, जिसे सब सर्वश्रेष्ठ हिन्दी मासिक के रूप में जानते-मानते हैं, इस हालत में हो। इससे हमारी सांस्कृतिक मनोवृत्ति का पता चलता है। उर्दू पत्र आगे बढ़ रहे हैं। पचास से अधिक प्रथम श्रेणी के मासिक पत्र हैं, और उनमें से एक भी ऐसा नहीं है जिसका दो-ढाई रुपये दाम का पाँच सौ पृष्ठों का एक वार्षिकांक न निकलता हो। निस्सन्देह उनकी साहित्यिक रुचि और अन्तर्दृष्टि ज्यादा अच्छी है। वे मूल्यांकन करना जानते हैं। उनके यहाँ कविता में वही संघर्ष मिलता है जो हमें जीवन में मिलता है, हिन्दी कविता अब भी व्यक्तिवादी और निरी भावुकतापूर्ण होती है। उसमें ज़िन्दगी की हरकत नहीं है, वह ज़िन्दगी को उजागर नहीं करती। वह बस तुमको हताश-निराश बना देती है। मैं समझ नहीं पाता कि क्यों हमारे सब कवि निराशा के दर्शन से इस तरह अभिभूत हैं। उर्दू कवि दार्शनिक हैं, यथार्थवादी हैं और आशावादी हैं। आधे दर्जन कवि हथौड़े मार-मारकर मुस्लिम जाति को समता और भ्रातृत्व और जनतन्त्र के नये आदर्शों में ढाल रहे हैं। मुस्लिम कवि कम्युनिस्ट होता है, यहाँ तक कि इक़बाल भी।

चार अप्रैल को वर्धा में एक अखिल भारतीय साहित्यिक सम्मेलन होने जा रहा है। हंस को हर हालत में तब तक निकल जाना चाहिए। मैं वहाँ पर मौजूद रहने की उम्मीद करता हूँ।

मैं शान्ति निकेतन नहीं जा सका। वहाँ पर मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं है। वे लोग मुझसे उम्मीद करेंगे कि मैं बड़ा विद्वतापूर्ण भाषण दूँ जो कि मैं कर नहीं सकता। मैं कोई विद्वान आदमी नहीं हूँ। तो भी अगर वे लोग मुझे काफी पहले से बुलायें तो मैं

आने की कोशिश कर सकता हूँ। मिनट भर की तार की सूचना पर मैं तैयारी नहीं कर सकता।

आगरे गया था और वहाँ मैंने आपके दोनों छोटे बच्चे देखे। आपके भाई एक आदर्श भाई हैं। मैं आपको बधाई देता हूँ।

आपने मुझको विशाल भारत में लिखने के लिए आमंत्रित किया है। मैं किसी पत्र के लिए नहीं लिख रहा हूँ। हंस के लिए भी पिछले तीन-चार महीनों में मैंने कुछ नहीं लिखा। जब तक कि कोई विशेष चीज़ मेरी कल्पना को कुरेदे नहीं, मैं कोई अच्छी चीज़ पैदा करने में बिल्कुल असमर्थ हूँ। तब क्यों अपने दिमाग़ के साथ ज़ोर-ज़बर्दस्ती करो। मैं अपने आप को साल में छः कहानियाँ और हर दूसरे साल एक उपन्यास तक सीमित रखना चाहता हूँ। मुझे चलाये चलने के लिए इतना काफी है। इससे अधिक की क्षमता मेरे अन्दर नहीं है।

सभापति के लिए आपने मेरा नाम प्रस्तावित क्यों किया ? दूसरों ने भी आपका अनुकरण किया है। मैं उत्सुक नहीं हूँ। मेरी अभिलाषा कभी उस दिशा में नहीं रही। बल्कि मैं उसे पसन्द भी न करूँगा।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका, धनपत राय।

●●

19 मार्च, 1936

यदि हमारे लिए कोई योग्य सभापति नहीं मिलता तो मुझी को रख लीजिए। मुश्किल यही है कि मुझे पूरे-का-पूरा भाषण लिखना पड़ेगा–मेरे भाषण में आप किन समस्याओं पर बहस चाहते हैं ? इसका कुछ इशारा कर दीजिए। मैं तो डरता हूँ, मेरा भाषण ज़रूरत से ज़्यादा निराशाप्रद न हो। आज ही लिख दो ताकि वर्धा जाने से पहले उसे तैयार कर लूँ।

धनपत राय

('संकेत' में प्रकाशित लेख 'सभापति मुंशीजी' से उद्धृत)

●●

भारतीय साहित्य का मुखपत्र 'हंस' — प्रकाशक–दि हंस लिमिटेड, सरस्वती प्रेस

सम्पादक–प्रेमचंद, कन्हैयालाल मुंशी — बनारस कैण्ट

सं. 1648 — 28-3-1936

प्रिय रामकुमार,

भाई मैं तो इतना बड़ा आदमी नहीं हुआ कि अपने मित्रों को पत्र न लिखूँ। हाँ, अगर बड़े से मतलब उम्र में बड़ा होना है तो ज़रूर बड़ा हूँ।

पुस्तक की प्रतियाँ जिल्द बँधी तैयार न थीं। उनकी वाइण्डिंग हो रही है। सोमवार को जायेगी अवश्य।

तुम अपना जो 'कबीर' पर एड्रेस पढ़ने जा रहे हो उसे बराह रास्ते यहाँ भेजना वरना नाहक झगड़ा हो जायेगा और तुम्हें शिकायत सुननी पड़ेगी।

रही मेरी सभापती। अगर मुझे कुछ लिखना न पड़े तो जब कहो तब आ जाऊँ।

मगर मुझपर दया करोगे अगर जान बख्शी कर दोगे।

सप्रेम, धनपत राय।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 31 मार्च, 36

प्रिय बनारसीदास जी,

पत्र के लिए धन्यवाद। हाँ, अगर आप अंग्रेजी पाठकों से हिन्दी लेखकों का परिचय करा सकें तो यह एक सच्ची सेवा होगी। लेकिन आप तो हिन्दी लेखकों की प्रवृत्ति जानते हैं। जिन-जिनको आप छोड़ेंगे उन सब की तरफ़ से चौमुख हमले को बर्दाश्त करने के लिए आपको तैयार रहना चाहिए। निर्दोष से निर्दोष बात की भी व्याख्या इस तरह की जा सकती है कि उसमें शरारत भरी हुई मालूम हो।

नागपुर सभा ने बाबू राजेन्द्रप्रसाद को चुना है; इससे अच्छा चुनाव वे नहीं कर सकते थे। सम्मेलन में शरीक होने का मेरा कोई इरादा न था। अब तक मैं केवल दिल्ली अधिवेशन में सम्मिलित हुआ हूँ और वह भी जैनेन्द्र के दबाव में पड़कर। लेकिन इस बार भारतीय साहित्य परिषद्, जो तीन और चार अप्रैल को वर्धा में होने वाला था, नागपुर सम्मेलन के लिए स्थगित कर दिया गया है। इसलिए मैं वहाँ जाऊँगा, गो अभी तक पक्का नहीं है, क्योंकि यह बजट का सवाल है।

दिल्ली की हिन्दुस्तानी सभा मेरे और जैनेन्द्र के सलाह-मशविरे का नतीजा है। जब तक हम दूसरी भाषाओं के लेखकों से मिले-जुलें नहीं, दोस्ती न बनायें, साहित्यिक समस्याओं पर एक-दूसरे से रोशनी न लें, विचारों का आदान-प्रदान न करें, अपने नतीजों का साथ बैठकर मिलान न करें, तब तक हममें कैसे दृष्टि की वह व्यापकता और मन की वह उदारता आ सकती है जो साहित्यिक सम्मेलन होते हैं, और उनमें वे उन सभी विषयों पर विचार विमर्श करते हैं जिनका साहित्य से संबंध है। हमने अब तक दूसरी भाषाओं के अपने भाइयों से भाईचारा क़ायम करने की कोई कोशिश नहीं की। उर्दू के पास निस्संदेह एक सांस्कृतिक परम्परा है और उनके सम्पर्क में आने पर हमको अपनी कमज़ोरियाँ मालूम होती हैं। सच तो यह है कि मैंने उनको अधिक सामाजिक और सहानुभूतिशील पाया, और जैनेन्द्र मेरी बात की तसदीक़ करेंगे। वह अभी हाल में लाहौर गये थे और वहाँ पर उन्होंने कई व्याख्यान दिये और हिन्दुस्तानी सभा संगठित की। उत्साह में भरे हुए वे वहाँ से लौटे हैं और उनके प्रशंसक हो गये हैं। इस बढ़ती हुई खाई को कैसे पाटा जाय ? इन राजनीतिज्ञों से तो कोई उम्मीद रखनी न चाहिए, बिल्कुल बेमसरफ़ लोग हैं। उनसे उदारमनस्क होने की आशा ही न करनी चाहिए। लेखकों ही को आगे आना पड़ेगा। और शत्रु से अधिक मित्र के रूप में वे ज़्यादा अच्छी तरह अगुअई कर सकते हैं। हिन्दुस्तानी सभा पाक्षिक मीटिंगों का संगठन करेगी जिनमें साहित्यिक और भाषाशास्त्रीय विषयों पर निबन्ध और भाषण हुआ करेंगे। जब श्रोता-मण्डली मिले-जुले ढंग की होगी तब वक्ताओं को भी अत्यधिक साहित्यिक होने के लोभ का दमन करना पड़ेगा और वह ज़्यादा सरल रूप में अपनी बात कहने के लिए मजबूर होंगे ताकि सब लोग उन्हें समझ सकें। अगर हम सभी महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्रों में ऐसी सभाओं की व्यवस्था कर सकें तो हम वर्तमान संकीर्ण और पार्थक्यवादी दृष्टि को व्यापक बना सकेंगे।

तब हमारा साहित्य अधिक समृद्ध, अधिक पूर्ण होगा और यही एक मिली-जुली भाषा की समस्या का अकेला हल होगा।

प्रान्तीयता एक नया संकट है और हमको सावधान होना पड़ेगा। अगर आप कलकत्ते में एक हिन्दी-बंगाली या हिन्दोस्तानी सभा का संगठन कर सकें, और समय-समय पर उर्दू, हिन्दी और बँगला लेखकों को एक जगह पर जमा कर सकें, तो यह एक असली काम होगा।

आपका, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 1 अप्रैल, 1936

भाईजान,

तसलीम। कार्ड मिला। मैंने तो इधर तीन माह से एक अफ़साना भी नहीं लिखा। बस जामिया में 'कफ़न' लिखा था। इसके बाद लिखने की नौबत ही न आयी। हां यार, इन सदारतों के मारे परीशान हूँ। मैंने मिस्टर सज्जाद ज़हीर से बहुतेरा कहा भई मुआफ़ करो, मुझे अपना काम करने दो। मगर न माने। 10 को लखनऊ और लाहौर में आर्य समाज की जुबली के साथ एक आर्य भाषा सम्मेलन हो रहा है। वहां 11 को मुझे सम्मेलन का सदर बनना है और वहां जाऊँगा तो चार पांच दिन लग ही जायेंगे। मैंने अपनी माजूरी लिख दी है। अगर मान गये तो ठीक वर्ना वहां भी जाना ही पड़ेगा। अगर मुझे बोलने का शऊर होता तो ऐसे न्योते बड़ी खुशी से मंजूर कर लिया करता मगर यहां तो वह गुन ही नहीं। इसलिए जान बचाता फिरता हूँ। मुफ़्त की परीशानी होती है। और जिस काम से रोज़ी मिलती है उसमें ख़लल पड़ता है। इरादा तो यही था कि लखनऊ से एक दो रोज़ के लिए कानपुर आऊँगा मगर अब तो लखनऊ से 10 की शब को लाहौर भागना पड़ेगा। और क्या अर्ज़ करूँ।

हालात बदस्तूर।

आपका, धनपत राय।

●●

2-4-1936

प्रिय दुर्गाप्रसाद[1] जी,

आज्ञानुसार प्रेस की हानि-लाभ का चिट्ठा भेज रहा हूँ। एक में प्रवासीलाल जी को चार्ज देते समय की कुल मालियत दर्ज है। दूसरे में उनसे चार्ज लेते समय की कुल मालियत का ब्यौरा दिया गया है। यह सब मैंने याददाश्त से लिखा है। सम्भव है, कुछ भूल हो। मसलन टाइपराइटर का दाम मैंने कुछ नहीं लगाया, क्योंकि वह अब बेकार पड़ा हुआ है और मुझे कोई 50 रु. भी दे तो दे दूँगा। इसी तरह हाट प्रेस की कीमत भी इस वक़्त 25-30 रु. से ज़्यादा न होगी। टाइप की घिसाई मैंने कुछ नहीं लगाई, क्योंकि वही मैटल फिर से ढलवा लिया गया। मशीन की मरम्मत या दो-चार कुर्सियाँ और फ़र्नीचर ज़रूर बढ़े हैं, मगर उनकी मौजूदा क़ीमत शायद 50 रु. भी न होगी। अगर यह सब भी जोड़ लिया जाय, तो भी ज़्यादा-से-ज़्यादा 500 रु. का होगा। मगर मैंने वह रक़म भी छोड़ दी है, अर्थात् 900 रु. जो प्रवासीलालजी ने ग़बन कर लिया है। इस तरह मैंने दोनों तरफ़

से न्याय करने की कोशिश की है। रहा प्रेस का 8 साल की आमदनी-ख़र्च का हिसाब, वह इस मुआमले को समझने के लिए ज़रूरी नहीं मालूम होता। प्रेस में आमदनी कम हुई, पुस्तकें बेचकर किसी तरह काम चलाया गया। मैनेजर ने केवल अपने वेतन का ख़्याल किया; मालिक को क्या मिलता है, इसका कोई विचार नहीं किया। अगर वह काम ज़्यादा लाते, प्रेस को नफ़े पर चलाते, तो यह हालत ही क्यों पैदा होती ! जब मैंने देखा कि 8 साल में मुझे 10-12 हज़ार का नुक़सान देकर यह महाशय 1000 रु. ग़बन कर लेते हैं और इस पर कहते हैं कि यह तो मैंने 'जागरण' में अधिक काम करने के लिए ले लिया, हालाँकि मुझे इसकी बिल्कुल ख़बर नहीं, तो मेरे लिए इसके सिवा और क्या उपाय था कि उन्हें अलग कर दूँ ? किसी तरह भी, हर प्रकार की रिआयत करने पर भी, हानि दस हज़ार से कम नहीं हुई है।

भवदीय, धनपत राय

अगर प्रवासीलाल जी को पुस्तकों के ब्यौरे में कुछ सन्देह हो, तो वह जाँच कर सकते हैं।

1 प्रेमचंद और प्रवासीलाल वर्मा के झगड़े में दुर्गाप्रसाद पंच बने थे।



चिट्ठा, प्रवासीलालजी को चार्ज देने के समय

नाम सामान	क़ीमत ख़रीद	घिसाई 4 साल 7।। की दर से	चार्ज देते वक़्त मालियत
मशीन प्रिण्टिंग 1 ट्रेडल 1 कटिंग 1 हैण्ड प्रेस 1	5700	2300	3400
फ़र्नीचर, कुर्सी, मेज़ गेली, रैक, स्टूल केस आदि	1500	450	1050
टाइप	2000	600	1400
मीज़ान	9200	3350	5850

पुस्तकें

1. प्रेमतीर्थ	2000	दर	लागत	600
2. मुरली-माधुरी	1000	दर	लागत	150
3. सुघड़ बेटी	1000	दर	लागत	120
4. सुशीला कुमारी	1000	दर	लागत	120
5. अवतार	1000	दर	लागत	150
				1140

चार्ज देते समय की कुल मालियत 6990 रु.

चिट्ठा प्रवासीलालजी के प्रेस से अलग होने के समय का

नाम सामान	चार्ज लेने के समय की मालियत	घिसाई 7।। वर्ष दर 7।।	मौजूदा मालियत
मशीन प्रिण्टिंग ट्रेडल, हैण्ड प्रेस कटिंग	3400	2060	1340 रु.

नोट–कटिंग टूट गई, ट्रेडल एक नया लिया गया, पुराना बेकार हो गया।

		घिसाई 5 साल की दर 7।।	मौजूदा मालियत
नये ट्रेडल का दाम	1200	450	750
	घिसाई 7।। वर्ष की, दर 7।।	**मीज़ान**	2090
फ़र्नीचर	1050	600	450
टाइप	1400	टाइप बदलने में ढलवाया गया इसलिए घिसाई का चार्ज नहीं लिया गया, केवल कमी का हिसाब रख लिया गया है, 200 रुपये	1200
			3470 रु.

पुस्तकों का ब्यौरा

चार्ज देते समय की मालियत	मौजूदा स्टाक की मालियत
1140)	

	संख्या	दर	लागत	
प्रतिज्ञा	700	दर	लागत	210
कायाकल्प	800	दर	लागत	400
ग़बन	150	दर	लागत	130
कर्मभूमि	300	दर	लागत	75
प्रेमतीर्थ	1000	दर	लागत	अजिल्द 200
प्रेमद्वादशी	20	दर	लागत	15
पाँच फूल	600	दर	लागत	60
प्रेरणा	500	दर	लागत	125
नारी-हृदय	500	दर	लागत	120
प्रेम की वेदी	1400	दर	लागत	200
घर की राह	1600	दर	लागत	480
गल्प-समुच्चय	100	दर	लागत	50
फाँसी	800	दर	लागत	80
रूप-राशि	700	दर	लागत	अजिल्द 70
मुरली-माधुरी	50	दर	लागत	4
सुघड़ बेटी	60	दर	लागत	6

सुशीला	60	दर	लागत	5
अवतार	80	दर	लागत	8
				2393 रु.
			1140 रु.	
			बाद करके बचे	1253 रु.

प्रवासीलालजी को चार्ज देते समय कुल मालियत 6990 रुपये

प्रवासीलालजी से अलग होते समय की कुल मालियत	3790	1253	5043
घाटे का ब्यौरा, मशीन आदि की कमी	1952		
सूद दः 6	2700		
पुस्तकों की रॉयल्टी	4000		
काग़ज़ का देना	1500		
दफ़्तरी का देना	150		
ब्लॉक का देना	280		
	1930		
टाइप का देना	125		
मकान-किराया बाक़ी	340		
धनपत राय से उधार लिया	1000		
मीज़ान	3395		
			12048
इसमें से मुझे समय-समय पर कुल 1200 रु. मिले हैं, वह मिनहा करता हूँ–			12048
			1200
कुल घाटे का मीज़ान			रु. 10848
या गोल संख्या में			रु. 10000

धनपत राय, काशी



सरस्वती प्रेस, काशी, 6 अप्रैल, 1936

प्रिय देवी जी,

अभी आपका पत्र मिला। कल दफ़्तर बंद था। इसलिए आपका ख़त पड़ा रह गया। आप आयी हैं, यह बड़ी ख़ुशी है। मैंने श्री जनार्दन राय नागर को, जो एम. ए. के छात्र हैं और हिन्दी के उदीयमान उपन्यासकार, लिखा है कि वह आपके पास जाकर आपको यहाँ लावें। मेरा दफ़्तर और मकान सब Queen's College के पास है यानी शहर के एक सिरे पर। मुझे मालूम नहीं, जनार्दन को फ़ुर्सत है या नहीं, लेकिन वह ख़ुद न जा सकेंगे तो अपने किसी मित्र को भेजेंगे। मैं ख़ुद आता लेकिन मुझे लाहौर के आर्यभाषा सम्मेलन में जाना है और उसके लिए अपना भाषण लिख रहा हूँ। 9 को चला जाऊँगा। बीच में दो दिन ही का समय है। आपको यह ख़त आज ही मिलेगा और जनार्दन भी

आज ही जायँगे। कल आप किसी वक्त आ सकती हैं।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 15 अप्रैल, 1936

भाईजान,

तसलीम। हां मुझे भी आपसे न मिलने का अफ़सोस रहा। भागा इसलिए कि मेरे पास एक रिटर्न टिकट था, आगरे से–मंगल को नौ बजे रात तक बनारस पहुँचना ज़रूरी था। ख़ैर–फिर सही। अभी तो मुझे शायद दिल्ली जाना पड़े।

तकलीफ़ की आपने खूब कही। अपने घर में काहे की तकलीफ़। आप न थे, अज़ीज़ सेन थे। सेन न होते तो बूटी थी और अब तो भाभी साहबा से भी तअर्रुफ़ (परिचय) हो गया। अब तो ख़ानए बेतकल्ललुफ़ है। अब आने के क़ब्ल आपसे एनगेजमेण्ट कर लूँगा।

आपका, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, काशी, 17-4-1936

प्रिय कमला,

पत्र मिला। तुम्हारी कहानियों का मज़मुआ निकल रहा है। बड़ा अच्छा है। अगर तुम्हें मेरी भूमिका का मोह है तो मुझे कोई उज्र नहीं है। मैंने देहली से आते ही 'भ्रम' पढ़ा और तुम्हारी क़लम का क़ायल हूँ, मगर भूमिका क्या ऐसी ज़रूरी चीज़ है ? मैं इसकी समालोचना करके इसका प्रचार कर सकूँगा, भूमिका लिखकर नहीं। आइन्दा जैसी तुम्हारी राय !

शुभ-अभिलाषी, प्रेमचंद।

●●

भँवरमल सिन्धी को

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट, 21-5-1936

प्रियवर,

आपकी रचना मिल गई। मैंने उसे 'हंस' में दे दिया है।

लेख तैयार हो गया है तो भेज दो, जिसमें जुलाई में दिया जा सके।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।

●●

The Karmaveer, Khandwa

दिनांक अंकित नहीं, सम्भवतः मई, 1936

मेरे देश के युग में 'बहुत-कुछ' प्रणाम !

कृपा-पत्र मिले। आगामी 13 जून तक कांग्रेस के मेम्बरों की फ़ेहरिस्त पूरी होनी है। मैं मारा-मारा यहाँ-वहाँ घूमकर पुण्य-संचय कर रहा था, आपके कृपा-पत्र का उत्तर कहाँ से दे पाता ? कृपया आप 'हंस' की वह संख्या भिजवा दें, जिसमें आपने अन्तर्प्रान्तीय साहित्य-संघ पर कुछ लिखा है। वह संख्या मेरे प्रेस से ग़ायब है–एप्रिल की संख्या है

शायद।[1] आपकी कहानियों और लिखावटों के चाहक भले आदमियों ने, मेरे पास आपकी कृतियाँ न रहने दीं। फिर 'हंस' वे क्यों छोड़ने चले ! आदमियों पर नाराज़ होकर रह गया। हाँ, यदि 'उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी' निबन्ध पर से ही लिखना है, तो ज़रूर एक नोट लिख दूँ।

मैं आपकी फोटो अभी तक न भेज सका। क्षमा करें। जल्दी ही भिजवाऊँगा।

'उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी' छोटे रूप में छपी उसकी हज़ार प्रतियाँ सम्मेलन में छोटेराम ने बँटवायीं, इस आशा से कि आप आ जावेंगे। उसकी एक प्रति इस पत्र के साथ भेजता हूँ।

कहिए तो, दूसरी बार छपवाकर आपके पास भेज दूं। आपके आने की प्रतीक्षा में पुस्तक बँट गयी—मुझसे बिना ही पूछे।

आपका अपना, माखनलाल।

1 'हंस' के अप्रैल, 1936 के अंक में 'भारतीय साहित्य-परिषद्' लेख छपा था। सम्भवतः उसकी ओर संकेत है।



सरस्वती प्रेस, बनारस, 5 जून, 1936

प्रियवर,

इधर आपने बहुत दिनों से 'हंस' के लिए कोई लेख लिखने की कृपा नहीं की। अगर आप ही लोग उसका यों तिरस्कार करेंगे, तो वह चलेगा क्योंकर। हमने आप ही जैसे महानुभावों के भरोसे यह सेवा स्वीकार की है। आपको मालूम ही है अब वह भारतीय साहित्य परिषद् का पत्र है। आपकी कृतियाँ केवल हिन्दीभाषी प्रान्तों में ही नहीं; अन्य प्रान्तों में भी रुचि से पढ़ी जायेंगी। मुझे आशा है, आप उसके लिए शीघ्र ही कोई लेख भेजेंगे। आलोचनात्मक, तुलनात्मक और चरित्रात्मक लेखों की हमें विशेष ज़रूरत है। हम हंस को शुद्ध साहित्य का पत्र बना देना चाहते हैं। आशा है आप हमें निराश न करेंगे।

भवदीय, प्रेमचंद।



सरस्वती प्रेस, काशी, 9 जून, 1936

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मिला। धान्यवाद। मैं वहाँ से आकर 'गोदान' में लगा रहा, तुम्हें कोई पत्र न लिख सका। क्षमा करना। 'गोदान' पूरा छप गया। बाइंडिंग होने पर भेजूँगा।

आज से तुम्हारा 'वचन का मोल' प्रेस में जा रहा है। जुलाई के अंत तक पुस्तक तैयार हो जायगी। 10 फार्म की किताब होगी।

मैंने विश्वमित्र मंगाना शुरू कर दिया है। अबकी तुम्हारी कहानी 'फागुन..' पढ़ी। सुन्दर थी। तुम्हारी भाषा कहीं-कहीं क्लिष्ट हो जाती है, इससे कम पढ़ों को समझने में अड़चन होती होगी। लेकिन अपनी-अपनी शैली है। आजकल युवक गल्प लेखक स्त्रियों को खुश करने के लिए ख्वामख्वाह ऐसे नारी चित्र खींचते हैं जिनमें विद्रोह की भावना भरी होती है। जरा-जरा-सी बात पर नारी अपने पुरुष से लड़ने पर तैयार हो जाती है,

घर छोड़ देती है, बदला लेने लगती है। एक स्त्री तो पुरुष से इसलिए असंतुष्ट थी कि वह बेचारा दिन-भर काम-धंधे में फंसा रहता था और स्त्री के पास बैठकर उसका मन बहलाने के लिए समय न था। देवी जी को अकेले बैठना बुरा लगता था। आखिरकार अपने ममेरे देवर के प्रेम में फंसकर मर गयीं। इस तरह की कहानियों से क्या फायदा होता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। केवल यही कि स्त्रियाँ लेखक को स्त्रियों का हिमायती समझें। ईश्वर की दया से देवियाँ इतनी असहिष्णु नहीं होतीं (वर्ना) विवाहित जीवन का अंत ही हो जाय।

नवलकिशोर प्रेस वाले तुम्हें एक रुपया पृष्ठ देते हैं तो स्वीकार कर लो। इसके साथ दस प्रतिशत रायल्टी भी दे दें तो अच्छा। पुस्तकों की बिक्री आजकल बहुत कम है। लेखक अकड़े तो किस बल पर।

यहाँ और सब कुशल है। तुम्हारी बहन जी तुमसे प्रेम मिलन कहती हैं।

बच्चों को मेरा आशीर्वाद कहना।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।

●●

हंस कार्यालय, बनारस कैंट, 10 जून, 1936

प्रिय जैनेन्द्र,

तुम दिल्ली कब पहुँच गये ? मैं तो समझ रहा था अभी चिरगाँव में ही हो। हाँ, वह राष्ट्रभाषा वाला कटिंग था तो मगर न जाने कहाँ रह गया। मिल नहीं रहा है।

'गोदान' निकल गया। कल तुम्हारे पास जायगा। खूब मोटा हो गया है, 600 से (ऊपर) गया। अपना विचार लिखना।

परिषद् तो साबिक दस्तूर (घिसट) रहा है। परिषद् का निर्माण हो जाने से इसमें कुछ नया जीवन तो आया नहीं।

आजकल 'हंस' में 450 रु. महीने की कमी पड़ रही है। 600 रु. का खर्च और 150 रु. की आमदनी। सोचा था काका साहब के आने से इसकी दशा सँभलेगी, मगर अभी तो कोई फल नहीं हुआ। आज जून की संख्या निकल गयी, कल भेजी जायगी।

हाँ, सीरियल नाविल शौक से लिखो। मुझे डर यही है कि 'हंस' की माली हालत ख़राब है। ख़ैर। लिखना शुरू करो। कुछ न कुछ करना चाहिए। बेकार बैठने से कैसे काम चलेगा। मैं ऐसा करूँगा कि दो हज़ार हर महीने छापता जाऊँ। इस तरह (उसके) प्रकाशन में सुविधा हो जायगी। पुस्तक बहुत कम ख़र्च में तैयार हो जायगी। हाँ यह चाहता हूँ कि मुंशी जी का उपन्यास ख़त्म हो जाय तो शुरू करो।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

'हंस' कार्यालय, बनारस कैण्ट, 10-6-36

प्रिय भगवतीप्रसाद जी,

पत्र के लिए धन्यवाद। आपकी कहानी बम्बई से आ गयी है और जुलाई में जा रही है। साहित्य का उद्यम आजकल इतना निराशाजनक हो रहा है कि कुछ न पूछिए। आपको इतने दिनों में जो अनुभव हुआ, वही इन दस वर्षों में मुझे भी हुआ है। मैं क़सम

खा सकता हूँ कि दस साल में अपनी रचनाओं से मैंने बीस पैसे भी नहीं पाये। इधर-उधर नौकरी-चाकरी करके गुज़र किया है। अगर बोरिया-बस्ता समेटकर जाऊँ भी, तो कहाँ ? लिखने में ही क्या रक्खा है। जब पुस्तक की बिक्री ही न हो तो प्रकाशक क्या करे ? पत्र-पत्रिकाएँ निकालिए तो बधिया बैठ जाय। पुस्तक लिखिए, तो बिके नहीं। ज़हर खा लेने के सिवाय और आदमी क्या करे ! स्थिति ऐसी नहीं है कि मैं कोई पुस्तक प्रकाशित कर सकूँ। अपनी दो पुस्तकें छापी हैं, उसी पर काग़ज़ के दो हज़ार रुपये आ गये हैं।

भवदीय, धनपत राय।

●●

बनारस कैंट, 22 जून, 1936

प्रिय जैनेन्द्र,

यह लेख तो अगस्त में जायगा। देर में आया और हिन्दी के चारों फ़ार्म भर गये। राष्ट्र-भाषा वाला लेख क्या कोई प्रिंट था ? याद नहीं आ रहा है, कब आया। यहाँ तो मिलता ही नहीं।

'हंस' का पैसे वाला भार कम्पनी पर है, मुझ पर नहीं। हाँ, कम्पनी इसके खर्च से X X X हुई है। 4 जुलाई को वर्धा में भारतीय परिषद् की कार्य कमेटी की बैठक है। इसमें फैसला किया जायगा कि 'हंस' का क्या किया जाय। शायद मैं भी जाऊँ। आज भी बम्बई में काका और मुंशी बैठे कुछ सलाह कर रहे हैं। मुझे तार दिया था, लेकिन अभी बम्बई जाता और 4 को वर्धा। वर्धा जाना ही मुश्किल हो रहा है। तबीयत भी अच्छी नहीं है।

बंगला वालों का यह (रोग) किसी तरह दूर हो जाय तो क्या कहना। काम मिलने-मिलाने का है और यहाँ किसी को फुर्सत नहीं। जब तक कोई एक आदमती पीछे न पड़ जाय तो जीवन कहाँ से आये।

आज 'गोदान' भेज रहा हूँ। पढ़ना और अच्छा लगे तो कहीं 'अर्जुन' या 'विशाल भारत', या 'हंस' में आलोचना करना। अच्छा न लगे तो मुझे लिख देना, आलोचना मत लिखना...

●●

काशी, जून, 1936

प्रियवर,

...साहित्य की दशा ख़राब है। यदि आप पुस्तक का प्रकाशन और उसकी उचित रॉयल्टी लेना चाहें तो आपको देश में एक भी प्रकाशक नहीं मिलेगा। जब आप रॉयल्टी माँगेंगे, तब आपको उत्तर मिलेगा कि पुस्तक बिक ही नहीं रही है। इसी कारण मैंने तथा कुछ अन्य लेखकों ने, लेखन ही जिनकी आजीविका है, अपनी पुस्तकें स्वयं प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया। यदि कुछ अच्छे प्रकाशक होते, तो हमने प्रकाशन का कार्य क्यों शुरू किया होता ?

इसकी कुछ जिम्मेदारी पत्रकारों पर भी है, जिसमें मैं भी एक हूँ। यह आवश्यक है, जब कुछ अच्छी चीज़ छपे तो उसका स्वागत होना चाहिए और ऐसे प्रयास किये जायें

जिससे पुस्तक बिके। इससे लेखक और प्रकाशक को प्रेरणा मिलेगी। यदि सभी सम्पादक और मैनेजर प्रत्येक पुस्तक की दो कापियाँ समीक्षा के लिए माँगेंगे तो लेखक दिवालिया हो जायगा। 'गोदान' की एक प्रति पर डाक-व्यय, जैसा आप जानते हैं, 12 आने आते हैं। दो प्रतियों पर यह एक रुपया आठ आने होगा। पचास प्रतियों को समीक्षा के लिए भेजने पर चालीस रुपये का डाक-ख़र्च आयेगा। फिर भी सभी पुस्तक की समीक्षा नहीं छापते। यही कारण है कि कुछ प्रकाशक समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं को समीक्षा के लिए पुस्तकें नहीं भेजते।

आपका, प्रेमचंद।

●●

बनारस, 2 जुलाई, 1936

प्रिय जैनेन्द्र,

'सुनीता' मैं छापूँगा। जिस वक्त तुम यहाँ आओगे, टाइप, काग़ज़, दाम आदि का निश्चय किया जायगा।

4 को वर्धा में भारतीय साहित्य परिषद् की मीटिंग है। हंस लिमिटेड 'हंस' को परिषद् के हाथ सौंपेगा। छपायी आदि का प्रबन्ध काका खुद करेंगे, मेरा केवल नाम रहेगा सम्पादकों में। यहाँ छापने में उन लोगों के विचार से ख़र्च ज़्यादा पड़ता है।

अब तक कम्पनी ने मुझे कुल 1400 रु. दिये हैं। मगर मुझे झंझट से निजात मिल जायगी।

(लोपामुद्रा) समाप्त हो गई। अगस्त में तुम्हारा उपन्यास जा सकता है। मुंशी को एक पत्र लिख दो। अगर 'हंस' यहाँ रहा तो कोई बात नहीं, लेकिन वहाँ गया तो वे लोग फैसला करेंगे। मैं तो जनवरी से एक और पत्र निकालूँगा। तुम आओगे तो सारी बातें तय होंगी। भगवती को साथ लाना। मैं 15 दिन से दस्तों में मुबतिला हूँ।

तुम्हारा, धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस, 9 जुलाई, 1936

डियर उपेंद्रनाथ,

दुआ। तुम ताज्जुब कर रहे होंगे कि मैंने तुम्हारे ख़त का जवाव क्यों नहीं दिया। बात यह है कि मैं पंद्रह दिन से क़ैदिये बिस्तर हो रहा हूँ। हाज़मे की शिकायत है, जिगर और तहाल की ख़राबी, कोई काम नहीं करता। तुम्हारी परेशानियों का क़िस्सा पढ़कर रंज हुआ। इस महाजनी दौर में पैसे का न होना अज़ाब है, ज़िन्दगी ख़राब हो जाती है, लेकिन इसके साथ यह भी न भूलना कि ग़रीबी और मुसीबतों का एक अख़लाक़ी पहलू भी है, इन्हीं आज़माइशों में इन्सान इन्सान बनता है, उसमें खुद-एतमादी पैदा होती है।

हिन्दी में भी वही कैफ़ियत है जो उर्दू में। किताबें नहीं बिकतीं। पब्लिशर कोई नयी किताब छापते नहीं। क़लम पर ज़िन्दा रहना मुश्किल हो रहा है। बस किसी अख़बार में जान देने के सिवा और कोई रास्ता नज़र नहीं आता। अगर आदमी का क़ाबू हो तो किसी देहात में जा बैठे। दो एक जानवर पाल ले, कुछ खेती कर ले और ज़िन्दगी गाँव वालों

की ख़िदमत में गुज़ार दे। शहर में रहकर, ख़ासकर बड़े शहर में, तो सेहत, ज़िन्दगी, सब कुछ तबाह हो जाती है। फ़िलहाल इतना ही। थक गया हूँ। अब लेटूँगा।

दुआगो, प्रेमचंद।



16 लाटूश रोड, लखनऊ, 5 अगस्त, 1936

भाईजान,

तसलीम। आपको ताज्जुब होगा मैं लखनऊ कैसे आ गया। बात यह है कि कोई डेढ़-दो महीने से मुझे वरमे-जिगर[1] की शिकायत हो गई है। दो बार मुंह से सेरों खून निकल गया है। बनारस में इलाज से कोई फ़ायदा न देखकर 2 को यहाँ आ गया और डाक्टर हर गोविंद सहाय के ज़ेरे इलाज हूं। पाख़ाना, पेशाब, खून वग़ैरा की जांच हो चुकी है। मगर अभी कई दाँत तोड़े जायेंगे, तब डाक्टर साहब मर्ज़ की तशख़ीश करेंगे और इलाज शुरू होगा। शायद यहां पंद्रह दिन लगें। या तो इसलाह ही होगी या ख़ात्मा ही होगा। घुलकर आधा रह गया हूँ। ज़र्द। न कुछ खा सकता हूँ, न हज़्म होता है। एक बार मुश्किल से हार्लिक्स खा लेता हूँ। मास्टर कृपा शंकर साहब का मेहमान हूँ। मगर यह मकान बहुत मुख़्तसर है, और आजकल में कोई दूसरा मकान ले लूंगा। घर से जितने रुपए लेकर चला था सब सर्फ़ हो गया। इरादा था एक्स-रे कराने का, मगर यहाँ के ख़र्च तो आप जानते हैं। क़दम-क़दम पर फ़ीस। मैंने घर पर रुपए के लिए लिखा तो है। लेकिन मुमकिन है वहां से रुपए देर में आयें, क्योंकि बैंक का अकाउंट तो मेरे नाम है। अगर आप आसानी से मुझे इस वक़्त एक सौ रुपये ज़रिये तार भेज दें तो बड़ा एहसान करें। मैं यहां से जाते-जाते रवाना कर दूँगा। मुमकिन है घर से रुपये आ जाएं—और इन रुपयों की ज़रूरत न पड़े, मगर एहतियातन कुछ फ़ाज़िल रुपये अपने पास रखना चाहता हूँ। तार से ज़्यादा ख़र्च हो तो मनीआर्डर से सही। और क्या लिखूं। यहां बड़ा लड़का धुन्नू मेरे साथ है। देखिए इस बीमारी से निजात मिलती है या यह आख़िरी पैग़ाम है।

आपका, धनपत राय।

1 जिगर, यकृत की सूजन; सिरोसिस ऑफ़ लिवर।



जगतगंज, बनारस, 31 अगस्त, 1936

प्रिय वीरेश्वर,

भई, मैं तो बुरा पड़ गया। इधर दो महीने से ज़्यादा हो गये, चारपाई पर पड़ा हुआ हूँ। इस समय तो दो-तीन मर्ज़ों में मुबतिला हूँ। लीवर अलग खराब है, पेचिश हो रही है तथा पेट में कुछ पानी भी आ गया है। तुम्हारा खत आया था। जवाब अभी तक न लिखवा सका था। आशा है तुम क्षमा करोगे।

आज 'भारत' से तुम्हारा लेख पढ़वाकर सुना। बड़ी तकलीफ़ में था लेकिन फिर भी कुछ आराम ही मिला। एकाध जगह तो, इस दशा में भी, हँसी आ गई ! बड़ा अच्छा लेख है।

तुमने तो शायद अख़बारों में तो पढ़ा ही होगा कि हंस से एक हज़ार की ज़मानत माँग ली गई तथा उसके मालिकों ने (दि हंस लिमिटेड के डाइरेक्टरों ने) उसका प्रकाशन

बन्द कर दिया। अब मैं उसे ज़मानत देकर निकाल रहा हूँ। सितम्बर का अंक प्रेस में है। अब यदि तुम अपनी कोई छोटी-सी भी चीज़ भेज दोगे तो बड़ा अच्छा होगा। इस अंक में मैटर की बड़ी कमी पड़ रही है। यदि जल्दी ही भेजोगे तभी उसका कुछ फायदा होगा। वैसे तो कभी भी तुम्हारी चीज़ के लिए स्थान है। जैनेन्द्र को मैंने साथ ले लिया है तथा वे ही सब कुछ करेंगे क्योंकि मैं तो अभी कुछ करने-धरने लायक हूँ नहीं।

आशा है स्वस्थ तथा प्रसन्न हो।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।



काशी, अगस्त 1936

प्रिय आनन्द जी,

क्या आप समझते हैं, अंग्रेज़ी की गुलामी से भारतीय परिषद् मुक्त है ? जब काँग्रेस की सारी लिखा-पढ़ी अँग्रेज़ी में होती है, तो भारतीय परिषद् तो उसी का बच्चा है। मन्त्री जी हिन्दी नहीं जानते, मगर हिन्दी के भक्त अवश्य हैं। अगर आप ऐसे भक्तों को दबाएँगे तो वह भाग खड़े होंगे।

'हंस' सितम्बर से सस्ता साहित्य, देहली से प्रकाशित होगा। मैंने उसके सम्पादन से इस्तीफ़ा दे दिया है। मैं इधर एक महीने से बीमार हूँ।

अगर अच्छा हो गया तो यहाँ से अपना एक नया पत्र प्रागतिक लेखक संघ की विचारधारा के अनुसार निकालूँगा।

मुझे आशा है, इस नयी योजना में मैं आपकी मदद पर भरोसा कर सकूँगा।

आपका, प्रेमचंद।



जगतगंज, बनारस, 13 सितम्बर, 1936

प्रिय इन्द्र,

तुम्हारा पत्र कोई दो दिन हुए मिला। मैं पिछले दो महीनों से बिस्तर पकड़े हुए हूँ। धीरे-धीरे मेरी सेहत ठीक हो रही है लेकिन इस क़ाबिल होने में कि मैं कुछ काम कर सकूँ अभी बहुत वक्त लगेगा।

मैं ज़मानत जमा करके फिर हंस निकालने जा रहा हूँ। और एक नयी पत्रिका निकालने का विचार मैंने छोड़ दिया है। मुझे आशा है कि तुम यदा-कदा उसमें लिखते रहा करोगे।

हास्यरस की गुजराती कहानियों के बारे में मैं कुछ जानकारी चाहता था क्योंकि मैं भारतीय हास्य पर एक पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित करने जा रहा था। उसके अनुवाद का काम मैं तुमको देना चाहूँगा। इस काम के लिए मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार भी दे सकूँगा। क्या तुम कृपा करके इन पाँच कहानियों में से तीन सबसे अच्छी कहानियों का अनुवाद करके एक पखवारे के भीतर मुझको भेज सकोगे क्योंकि पुस्तक प्रेस में जा चुकी है ? पूरा ध्यान लगाकर इस काम को करना।

तुम्हारा, प्रेमचंद।

Dhanpat Rai
(Premchand)

JAGATGANJ, BENARES,
Sept. 13th, 1936

My dear Anandraoji,

We have not written to each other since long. I have been lying ill for the last two months, but now I am getting better and hope I shall soon be well. During all this period, I have not heard from you.

You must have learnt from newspapers of the security demanded from the 'Hans' and its subsequent closure by the 'Hans' Limited. I am going to re-start the magazine after depositing the security. The September number is in the Press and shall soon reach you. I hope to receive your contributions to it regularly.

I would like you to do one thing for me. Will you kindly let me know the best three humorous stories in the Marathi language ? If you could give this information to me I may ask you to translate them for me. I am prepared to pay some price for it. I was going to publish a book on the humour in India. I hope you would undertake to do this work for me.

With best wishes,

Yours sincerely, Premchand



जगतगंज, बनारस, 16 सितम्बर, 1936

प्रिय वीरेश्वर,

तुम्हारी कहानी 'काजल' और पत्र कुछ समय पहले मिले थे। कहानी उतनी सुन्दर तो न बन सकी जैसी तुम्हारी कहानियाँ हुआ करती हैं फिर भी अच्छी थी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मौके से आ तो गई। इसी मास के हंस में छप गई है। अंक तैयार हो गया है।

मैं तो अब बेहद कमज़ोर हो गया हूँ। उठ-बैठ नहीं सकता। लेकिन मर्ज़ घट रहा है। डाक्टर का कहना है कि पन्द्रह दिन में मर्ज़ बिल्कुल घट जायगा।

जैनेन्द्र तो अभी आये नहीं हैं। अक्तूबर का अंक भी तैयार होने जा रहा है। क्या तुम कोई लेखमाला लिख सकते हो। वह बड़ी अच्छी चीज़ होगी। साहित्यिक पुरुषों को लेकर कुछ निबन्ध लिख डालो। खैर विचार करना।

आशीर्वाद।

शुभाकांक्षी, प्रेमचंद।



बनारस, सितम्बर, 1936

बरादरम,

आपका खत और रसायल[1] पहुँचे। 'ऐक्ट्रेस' और 'सहेली के खुतूत' पढ़े। आपने अदाकारों की ज़िन्दगी और निगारखानों[2] के अन्दरूनी हालात की सच्ची व इबरत-आमोज़[3]

तस्वीरें जिस मुवस्सर[4] व दिलपिज़ीर[5] अन्दाज़ में खींची हैं वह आप ही का हिस्सा है। इससे क़ब्ल अपने किसी ख़त में लिख चुका हूँ कि महज ज़िन्दगी में एक नया तजुर्बा हासिल करने की ग़रज़ से बंबई गया था। अपने मशाहदात[6] की बिना पर मैं आपके ख़यालात का लफ्ज ब लफ्ज ताईद करूँगा। मेरे ख़याल में शरीफ़ ख़वातीन[7] का फ़िल्मसाज़ी में हिस्सा लेना हर्गिज़ दुरुस्त नहीं, क्योंकि निगारखानों की फ़िजा उनके लिए रास नहीं आ सकती और न आइन्दा इसमें किसी क़िस्म की इसलाह मुमकिन है। सिनेमा की बदौलत हमारे नौजवानों पर जो बुरे असरात मुरत्तब[8] हो रहे थे, अब अख़बारात के तुफैल उनमें दिन ब दिन तरक़्क़ी होती जा रही है। जब अख़बारों में ऐक्ट्रेसों की तस्वीरें छपें और उनके कमाल के क़सीदे गाये जायँ तो क्यों न नौजवानों पर उसका असर हो। आप जल्द अज़ जल्द 'ऐक्ट्रेस' और 'सहेली के खुतूत' किताबी सूरत में शाया कर दीजिए, ताकि नौजवानों पर फ़िल्मी दुनिया की हक़ीक़त वाज़े हो जाये। मुझे तवक़्क़ो है कि आपकी तसनीफ़ अपने फ़ायदाबख़्श असर से लोगों के दिलों पर ज़रूर असर करेगी। ऐसी मुफ़ीद किताब जिस क़दर जल्द शाया हो अच्छा है। खुदा आपको इस कारे ख़ैर[9] का उज्रा[10] दे और क़ौम को इससे फ़ायदा बख़्शे। आजकल मेरी सेहत निहायत कमज़ोर हो रही है। लिखना-पढ़ना तर्क कर दिया है। लेकिन आप अपनी किताब का मुकम्मिल मसविदा भेज दीजिए। बखुशी मुक़द्दमा[11] लिख दूँगा।

मुखलिस, प्रेमचंद।

1. पत्रिकाएँ, 2 फिल्म-कंपनियों, 3. शिक्षा-परक, 4. प्रभावशाली, 5. आकर्षक, 6. निरीक्षण, 7. स्त्रियों, 8. पड़ रहे थे, 9. शुभकार्य, 10. पुरस्कार, 11. भूमिका।



गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, 24 अप्रैल

बरादर अज़ीज़मन सल्लमहू,

बाद दुआ। कल तुम्हारा ख़त मिला। हालात मालूम हुए। चाची साहिबा को लाये, अच्छा किया। यहाँ भी अब सब ख़ैरियत है। बन्नू भी अब अच्छे हैं।

प्रेस के मुताल्लिक़ तुमने जो तजवीज़ की, वह मुझे बहुत पसन्द है। मैं भी यही चाहता हूँ कि प्रेस एक आदमी का हो जाये। मैंने तुमसे जो कहा था कि प्रेस बन्द कर दो उसके मानी भी यही थे कि मैं साझे के रुपये को सूदी रुपया क़र्ज़ समझकर कुछ अभी दे देता और कुछ बाद को और प्रेस का काम जारी रखता। बेचने का इरादा तो उस हालत में था जब मैं भी आज़माइश कर लूँ, उसके पहले नहीं। लेकिन अब चूँकि तुमने खुद उसको अपना कर लेने का इरादा किया है, बहुत अच्छी बात है। मैं बड़ी खुशी से तुम्हें इसकी सलाह देता हूँ। मगर प्रेस से नफ़ा उठाने के लिए तुम्हें बनारस रहना पड़ेगा। जब तक दो फ़ारम रोज़ न छापोगे, काम अच्छा न निकलेगा। और लोगों से मिलते-मिलाते न रहोगे, नफ़ा फिर न होगा। घर रहकर तुमको भी ख़सारा होगा या नफ़ा होगा तो इतना ही कि अपना गुज़र कर लो। अगर दो फ़ारम रोज़ छपे तो कोई वजह नहीं कि माकूल नफ़ा क्यों न हो और कोई वजह नहीं कि चार हजार काग़ज़ भी रोज़ाना न छपे। इसे मैं इन्तज़ाम की ख़राबी कहता हूँ। कम्पोज़ीटरों से भी ठेके पर काम लेने का इन्तज़ाम करो। वही कम्पोज़ करें, वही डिस्ट्रीब्यूट करें और वही पहला करेक्शन भी करें। यहाँ तो

नवलकिशोर प्रेस में यही इन्तज़ाम है। इण्डियन प्रेस में भी यही इन्तज़ाम है। ख़ैर। अब यह देखो कि तुम्हें अगस्त तक कितने रुपये का इन्तज़ाम करना पड़ेगा।

भाई साहब को असल दो हजार दो सौ पचास रुपया, सूद दो सौ सत्तर रुपया कुल दो हजार पाँच सौ बीस रुपया। रघुपति सहाय को असल दो हजार रुपया, सूद डेढ़ साल का एक सौ अस्सी रुपया कुल दो हजार एक सौ अस्सी रुपया। कुल मीज़ान चार हजार सात सौ रुपया।

क्या तुमने चार हज़ार सात सौ रुपये का इन्तज़ाम कर लिया है, साफ़-साफ़ बतलाने की ज़रूरत है। मैं साल भर तक रुपये का इन्तज़ार कर सकता हूँ गोया पारसाल जुलाई में मुझे चार हज़ार पाँच सौ रुपया और छः सौ पचहत्तर रुपया (तीन साल का सूद) यानी पाँच हज़ार एक सौ पचहत्तर रुपये देने पड़ेंगे। यानी तुम्हें चार हज़ार सात सौ और पाँच हजार एक सौ पच्चहत्तर यानि नौ हज़ार आठ सौ पच्चहत्तर रुपये का इन्तज़ाम करने की ज़रूरत है। मेरा शुमार अभी न करो तब भी चार हज़ार सात सौ रुपये का इन्तज़ाम तो करना ही पड़ेगा। अगस्त तक तुम इसका इन्तज़ाम कर सकते हो तो करो और अगर किसी ने तुम्हें मदद देने का योंही वादा कर लिया है तो उसके धोखे में न आओ।

मैं इसके लिए भी तैयार हूँ कि तुम भइया के रुपये मय सूद के वापस कर दो। इस तरह प्रेस में हम और तुम रह जायँगे। रघुपति सहाय का रुपया दस्तावेज़ी कर लिया जाये और उन्हें बारह रुपये सैकड़ा सूद हम लोग देते रहें। लेकिन उस हालत में हममें से कोई भी तनख़्वाह न लेगा। काम हम भी करेंगे, काम तुम भी करोगे। हम अगर खुद काम न करेंगे तो अपनी तरफ़ से एक आदमी रख देंगे जो प्रूफ़ देखेगा और दफ़्तर का काम, मुलाज़िमों की हाज़िरी वग़ैरह, हिसाब-किताब ठीक रखेगा। अगर यह सूरत पसन्द न हो तो तुम सबको अलहदा करके प्रेस अपना कर लो। लेकिन जब तक रुपये मिलने की पूरी उम्मीद न हो वादों पर न टालो क्योंकि अब की अगस्त में कुछ-न-कुछ इन्तज़ाम ज़रूर करना पड़ेगा। मेरे ख़त का जवाब खूब ग़ौर करके देना।

तुमने कमरा बनवाने की तजवीज़ भाई साहब से की थी। तजवीज़ अच्छी है बशर्ते कि रुपया हाथ में हो। जब तक आमदनी का माकूल इन्तज़ाम नहीं हो जाय ख़र्च पैदा करने से सिवाय परेशानी के और क्या हाथ आयेगा।

और सब ख़ैरियत है। इधर तो सिनहा साहब से मुलाकात नहीं हुई। बच्चों को और चाची साहिबा को सलाम।

धनपत राय।



गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ

बरादरम, बाद दुआ।

तुम्हारा ख़त मिला, जवाब में देर इस वजह से हुई कि मैं सोच रहा था क्या जवाब दूँ। एक हजार रुपया तो मैं तुम्हें इसी महीने में दे दूँगा; लेकिन मुझे ख़ौफ़ है कि दवाओं की दूकान चल न सकेगी। बनारस में दवाओं की दूकानें बहुत हैं। फिर तुम्हें सुबह से आठ बजे रात तक दूकान पर रहना पड़ेगा। अगर ऐसा मकान लो जिसमें दवाख़ाना और रहने का मकान भी हो तो सड़क पर ऐसे मकान का किराया चालीस-पचास रुपये से कम

न होगा, यह सोच लो। ऐसा न हो कि रुपया भी हाथ से जाय और फिर उसी नौकरी का सहारा लेना पड़े। मेरे ख़याल में तुम्हारे लिए बेहतरीन सूरत यह है कि भाई बलदेवलाल के रुपये दे दो, हम और तुम आधे-आधे के हिस्सेदार हो जायें, एक प्रूफरीडर तनख़्वाहदार रख लिया जाये, हम दोनों दिल लगाकर काम करें, अच्छे से अच्छा काम निकाला जाये, मैं अपनी ज़िम्मेदारी पर काम तलाश करने की कोशिश करूँ, बनारस ही में रहूँ और कारोबार को चलाऊँ। अपनी किताबें जो अब लिखूँ, अपने यहाँ छपवाऊँ और किताबों की दूकान कर लूँ। इसमें शायद दो फ़ारम रोज़ का औसत पड़ जाय। कम-से-कम मैं कोशिश ऐसी ही करूँगा लेकिन चूँकि तुम्हें यह इन्तज़ाम पसन्द नहीं है इसलिए मैं मई में तुम्हें एक हजार रुपया दे दूँगा और बाक़ी एक हजार रुपया अगस्त में। अगस्त में मैं बनारस आ जाऊँगा और वहीं रहूँगा।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं है।

तुम्हारा, धनपत राय।



लक्ष्मी भवन, गोरखपुर, 2 जून

बरादर अज़ीज़ सल्लमहू,

दुआ। मैं यहाँ पहुँचा तो बाबू रघुपति सहाय बम्बई से नहीं आये थे। एक दिन के बाद आये और आये भी तो बीमार। डाक्टर की दवा हो रही है। आज उनकी तबीयत अच्छी है। इसलिए अभी रूपये के मुताल्लिक़ कोई कार्रवाई नहीं हो सकी। मुझे शायद यहाँ दो-तीन दिन यहाँ और ठहरना पड़े। इस असना में अगर वहाँ बाबू दयानारायन का कोई ख़त आये और उनकी वालिदा साहिबा बनारस आ रही हों तो तुम ज़रा तकलीफ़ करके उन लोगों को बुलानाले के धर्मशाला में ठहरा देना और हिन्दी पुस्तक एजेन्सी के माधोप्रसाद से ताकीदन कह देना कि उन लोगों की आसाइश का ज़रा ख़याल रक्खें। यह काम ज़रूर करना वर्ना बाद को दयानारायन शिकायत करेंगे।

यहाँ महावीरप्रसाद पोद्दार ने भी एक प्रेस, जिसका नाम गीता प्रेस है, खोला है। मैंने उनसे अपने प्रेस के लिए भी काम देने को कहा है। मुमकिन है कुछ काम मिलता रहे। मैं यहाँ से लौटकर सीधे इलाहाबाद जाऊँगा और हिन्दी के टाइप लाने की फ़िक्र करूँगा। मगर तुम्हें यह मालूम रहे कि यह सब कोशिश तुम्हारे ही भरोसे पर की जा रही है। इस वक़्त तुम्हें ज़ाती नुक़सान का ख़याल तर्क कर देना पड़ेगा। रोज़गार में पहले नफ़ा तो होता ही नहीं, महज़ आइन्दा नफ़े के ख़याल से काम किया जाता है। तुम इस प्रेस को बिल्कुल अपना समझ कर चलाओ और जब तक तुम्हें इतना न मिलने लगे कि तुम्हारा ख़र्च आसानी से चलने लगे, तब तक मुझे या भाई बलदेवलाल को कुछ देने की ज़रूरत नहीं और न हम तुमसे इसका तक़ाज़ा करेंगे। ईश्वर बड़ा कारसाज़ है। अगर काम बढ़ गया तो आइन्दा के लिए लड़कों को भी रोज़गार की एक सूरत निकल आयेगी। मैं पब्लिशिंग भी करने का मुसम्मम इरादा रखता हूँ। एक हज़ार से इस काम को शुरू करूँगा। इसमें जो नफ़ा होगा उसके एक चौथाई के हक़दार तुम होगे। प्रेस में एक चौथाई तुम्हारा है ही। क्या इन दोनों सूरतों से साल या दो साल में पचास रुपया माहवार भी न मिलेगा। तुम्हारी काम करने की तनख़्वाह या गुज़ारा जो चाहे समझो साठ रुपया कैपिटल से उस

वक़्त तक निकलेगा जब तक इतनी गुंजाइश प्रेस से न होने लगे। मुझे यक़ीन है कि तुम्हें इसमें कोई एतराज़ न होगा। इस वक़्त बज़ाहिर चालीस रुपया माहवार का नुक़्सान ज़रूर है लेकिन कौन कह सकता है कि तीन-चार साल में हमको प्रेस से दो सौ रुपया माहवार और पब्लिशिंग से भी दो सौ रुपया माहवार न मिलने लगेगा। इसलिए जहाँ तुम्हें खुदमुख़्तारी हो जायगी वहाँ आइन्दा के लिए भी फ़ायदे की सूरत हो जायगी। तुम्हें इसलिए ज़ोर देता हूँ कि ग़ैर आदमी दूसरे के काम अपना नहीं समझ सकता वर्ना यों पचास रुपये में मामूली किराये का टट्टू आसानी से दस्तयाब हो सकता है। तुम पहली जुलाई से, अगर उस वक़्त तक टाइप आ जायें, इस्तीफ़ा देने का इरादा मज़बूत कर लो। औरतों के कहने में न आना। अब तो जिस क़दर जल्द काम शुरू कर दिया जाये उतना ही अच्छा है। मुमकिन हो तो गौरीशंकर जी को भी लिखना कि दुकान में उनके कुफ्ल पड़े रहने के क्या माने हैं ? क्या वह उसका किराया देंगे ? ऊपर के कमरों में भी उन्हीं के लोग रहते हैं। यह तहक़ीक़ कर लेना चाहिए कि वह लोग गौरीशंकर की मर्ज़ी से रहते हैं या खुद-ब-खुद। अगर गौरीशंकर की मर्ज़ी न हो तो उन लोगों से मकान खाली करने को कहना होगा। ऐसा न हो कि हम तो समझें, हम गौरीशंकर पर एहसान कर रहे हैं और वह कहें मैंने कब कहा था कि आप इन आदमियों को रहने दीजिये। साहित्य विद्यालय वालों से भी कहना होगा कि वह लोग हम लोगों की मर्ज़ी के बग़ैर वहाँ क्यों आते हैं। उन लोगों में इतनी इन्सानियत तो ज़रूर होनी चाहिए थी कि जिसके घर में जाकर बैठते और पढ़ते हैं एक मर्तबा उससे पूछ तो लें।

और क्या लिखूँ। शायद मैं यहीं से कानपुर चला जाऊँ और आने में देर हो इसलिए तुम्हें यह सब बातें लिख दी हैं। बच्चों का खयाल रखना। तुम्हारे सिवा वहाँ और कौन है। एक बार रोज़ प्रेस में जाकर देख आया करना। हैंडप्रेस और रैक तय कर लेना। अब ज्ञानमंडल से डरने की ज़रूरत नहीं। और कोई ताज़ा हाल नहीं। यहाँ गर्मी बहुत कम है। मालूम होता है, देहरादून है।

दुआ।

तुम्हारा, धनपत राय।



1 अक्टूबर

बरादरम,

बाद दुआ। कल एक कार्ड लिख चुका हूँ। आज फिर प्रेस के मुताल्लिक़ तुमसे कुछ मशविरा करना चाहता हूँ। दसहरे में आ जाओ तो सब बातें मुफ़स्सल तय हो जायें। यहाँ मेरे दोस्तों की और नीज़ घर वालों की राय कलकत्ते में प्रेस करने की नहीं होती और मैं भी इसमें कोई ज़्यादा फ़ायदा नहीं देखता। पोद्दार जी ही के बयान के मुताबिक़ उसका सालाना नफ़ा सोलह सौ के क़रीब है। इस हिसाब से हम लोगों को आधे हिस्से पर आठ सौ सालाना मिलेंगे। पाँच हज़ार का सूद सालाना साढ़े चार सौ होगा। गोया कुल सालाना फ़ायदा बारह सौ के क़रीब होगा। कुछ कम या ज़्यादा होना भी मुमकिन है। क्या अगर हम लोग अपना ज़ाती प्रेस पाँच हज़ार के सरमाये से बनारस में खोलें तो सौ रुपया माहवार या बारह सौ सालाना नफ़ा न होगा ? मेरा ख़याल है कि ज़रूर होगा। इससे कम किसी

तरह नहीं हो सकता। यहाँ इससे छोटे-छोटे प्रेस, जो दो-ढाई हज़ार से खुले हुए हैं, सौ रुपया माहवार कमा रहे हैं। मैं यह चाहता हूँ कि तुम किसी नये प्रेस की तलाश में रहो जिसमें टाइप, ट्रेडिल मशीन वग़ैरह सब सामान मुकम्मल मौजूद हो। अगर सेकेण्डहैण्ड न मिल सके तो कलकत्ते के किसी फ़र्म से नये सामान का आर्डर करो। बस कोशिश यह होनी चाहिये कि बजट पाँच हज़ार से ज़्यादा न होने पाये। मेरे पास इस वक़्त तीन हज़ार मौजूद है। अप्रैल, मई तक एक हज़ार और हो जायगा क्योंकि रघुपति सहाय से और लाहौर के पब्लिशरों से रुपया वसूल हो जायगा। इधर मैं भी कानपुर, इलाहाबाद वग़ैरह में तलाश करता रहूँगा। बनारस में भी सुराग़ लगाता हूँ। यहाँ अभी हाल ही में दो आदमी बनारस से सामान लाये हैं और खूब अर्ज़ा। फ़ैज़ाबाद का ताल्लुक़ेदार प्रेस बिक रहा है। तीन हज़ार में सब सामान मिलता है। मुंशी गुलहज़ारीलाल से दरियाफ्त किया है। देखूँ क्या जवाब आता है। अब इस इरादे को मुस्तक़िल समझो। तुम्हारे कलकत्ता रहने से मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं बिल्कुल अकेला हूँ। मुझे हमेशा एक मददगार की ज़रूरत मालूम होती है। मेरी सेहत कुछ अच्छी होती मालूम होती थी लेकिन अब फिर ज्यों की त्यों हो रही है। जल-चिकित्सा से भी कोई फ़ायदा ज़्यादा नहीं हुआ। ऐसी हालत में मेरी दिली आरज़ू यह है कि बनारस में तुम्हारे मुस्तक़िल रहने का इन्तज़ाम हो जाये ताकि तुम हर हालत में घर को सम्हाल सको। कलकत्ते में रहकर तुम घर को हरगिज़ नहीं सम्हाल सकते। खुदा न ख़्वास्ता मैं न रहा तो तुम्हें कितनी मुश्किल पड़ेगी। तुम रहोगे कलकत्ता, मेरे बाल-बच्चे रहेंगे बनारस, कुछ भी न हो सकेगा। इसलिये मेरी तुमसे दरख़्वास्त है कि बनारस आने की फ़िक्र करो। अब तुम्हें पाँच हजार रुपये मिल सकते हैं। उसकी फ़िक्र नहीं। मार्च-अप्रैल तक अगर प्रेस का इन्तज़ाम हो जाय तो मई-जून में हम लोग मकान वग़ैरह लेकर बनारस में जम जायँ। ऐसा मकान लिया जाय कि उसमें प्रेस भी रहे और तुम भी रहो। मेरे बच्चे कभी बनारस रहें; कभी मेरे साथ। छुट्टियों में मैं भी बनारस आया करूँ और कुछ तुम्हारी मदद किया करूँ। साल-छः महीने में जब काम चल निकले तो मकान बनवाना शुरू कर दिया जाय। तुम एक सायकिल ले लो और अपनी निगरानी में मकान बनवाओ। इस तरह आइन्दा का इन्तज़ाम पूरा हो जायगा और मुझे इत्मीनान हो जायगा कि मैं कच्ची गृहस्थी छोड़कर नहीं मरा। कलकत्ते में काम करने से यह बातें एक भी पूरी न होंगी और मैं इस फ़िक्र से नजात न पाऊँगा। कानपुर में दयानरायन और रामभरोसे मुझे शरीक करना चाहते हैं और बीस हज़ार से प्रेस खोलना चाहते हैं लेकिन अब मैं बनारस के सिवाय और अपने लिये कहीं सुभीता नहीं पाता। बनारस में चाहे नफ़ा कुछ कम ही हो, लेकिन मुझे यह इत्मीनान रहेगा कि मेरे बाद ख़ानदान भूखों नहीं मरेगा और इज़्ज़त के साथ निबाह होता जायगा। यह भी मुमकिन है कि मैं बनारस तबादला करा लूँ। तब तो चैन ही हो जायगा। हम-दोनों साथ रहेंगे और एक-दूसरे की मदद करते रहेंगे। जो कुछ अपने पास रुपया जमा होगा वह कारोबार बढ़ाने में खर्च करेंगे। और मुमकिन होगा तो दस-पाँच बीघा ज़मीन ले लेंगे ताकि एक हल की खेती का भी आसानी से इन्तज़ाम हो जाये। खाने को गल्ला घर पर हो जाये, दीगर मसारिफ़ के लिए प्रेस से आमदनी हो जाये। कोशिश यह करेंगे कि प्रेस नदेसर या चेतगंज के आसपास खुले। शुरू में कुछ दौड़-धूप करनी पड़ेगी जो कलकत्ते में न करनी पड़ती लेकिन आइन्दा की बेहतरी

के ख़याल से इसे बर्दाश्त करना पड़ेगा। तुम पोद्दार जी से इन बातों को साफ़-साफ़ समझा देना और उनसे रुपये लेकर कहीं अमानत रख देना। अगर कहीं प्रेस का सौदा पट जाये तो यह रुपये बयाने का काम देंगे। दसहरे में आओ, ज़रूर आओ, इस बारे में और भी सलाह हो जायगी लेकिन अब अपनी सेहत की हालत देखते हुए मैं तुम्हारा कलकत्ते रहना पसन्द नहीं कर सकता। और तो कोई हाल ताज़ा नहीं है। नाना साहब के यहाँ चार अक्टूबर को ब्रह्मभोज है। अगर तुम आ जाते तो उसमें शरीक होते वर्ना मुझे जाना पड़ेगा और बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। तुम बनारस रहोगे तो कुछ मेरे लिटरेरी काम में भी मदद करोगे। हम लोग अपनी किताबें भी खुद ही छाप लिया करेंगे। जब तक इसका इन्तज़ाम न हो जाय तुम नौकरी करो, चाहे पोद्दार जी के प्रेस में, चाहे किसी दूसरे प्रेस में। लेकिन अप्रैल में तुम्हें हमेशा के लिए कलकत्ता छोड़ना पड़ेगा, अगर गृहस्थी और खानदान की तुम्हें फ़िक्र है। बस यही मेरा आख़िरी फ़ैसला है। अब इसमें किसी क़िस्म का रद्दोबदल मैं न करूँगा। तुम खुद इसका फ़ैसला कर सकते हो कि पेस के लिए नया सामान ख़रीदना बेहतर होगा या सेकेण्डहैण्ड। क्या-क्या सामान दरकार होंगे इस बारे में मुझे फ़िलहाल कोई तजुर्बा नहीं है।

और क्या लिखूँ, यहाँ सब ख़ैरियत है। क़हत का सामान हो गया। दुआ। भाई बलदेवलाल से मैंने पाँच सौ माँगे थे लेकिन मेरा ख़त पहुँचने के पहले ही वह एक हज़ार की फ़िक्र कर चुके थे। कोई शक नहीं कि वह निहायत नेकनियत और साफ़ दिल आदमी हैं।

तुम्हारा, धनपत राय।



बरादरम,

प्रेस का हाल यह है कि सितम्बर से जनवरी तक तो बेकारी रही। वही एक किताब नन्दकिशोर की और एक किताब चौधरी की चली। मजदूरी पास से देनी पड़ी। क़रीबन तीन सौ रुपया मज़दूरी में सर्फ़ हो गये। जनवरी में कुछ टाइप लिये तब से मामूली तौर पर काम चल रहा है। चाँद, इलाहाबाद ने कुछ काम दिया और कुछ और देनेवाला है। लाहौर से काम मँगवाया था। मगर उसकी बदमुआमलगी की वजह से आज वापस किये देता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि लाहौर वाले मज़दूरी देने में बहुत तंग करते हैं।

अब लहरियासराय से काम मिलने की उम्मीद है। मेरी दो किताबें भार्गव के मतबे में चल रही हैं। टाइप के लिए चार सौ रुपये मैंने सर्फ़ किये, एक सौ साठ रुपया भाई साहब, तीन सौ नन्दकिशोर से लिये, चार सौ भार्गव साहब से। भार्गव के रुपयों में अब दो सौ और बाक़ी हैं। नन्दकिशोर का जितना लेना-देना था, ग़ालिबन बेबाक हो गया है सिर्फ़ तीन सौ रुपया जो नक़द के थे वही बाक़ी हैं। वसूल भार्गव से हुए, चालीस रुपया मानिक से और शायद एक सौ पचास और रुपये वसूल हुए होंगे। और किसी से वसूल न हुआ। तुम्हें मैंने जनवरी से बारह सैकड़ा सूद दो हज़ार रुपया पर पन्द्रह रुपया माहवार देने का फ़ैसला किया है। अगर काम ख़ातिरख़्वाह चल गया तो सूद एक रुपया सैकड़ा हो जायगा मगर अभी तक तो आमदनी खर्च बराबर ही है। तुम्हारे चालीस रुपये हुए मार्च के आख़ीर तक। उसमें दस रुपया भेजता हूँ और जब-जब मिलता जायगा देता

जाऊँगा। अगर मन्दिर में हाथ लगा दिया होता तो वह दस रुपया भी तुम्हारे सूद के मद में जाते। खैर, अब तो उसे किसी तरह पूरा करना है। आज सहदेव से पचास फुट चूने के लिए कहूँगा।

मैं तुम्हारी तरफ से बिलकुल बेफ़िक्र नहीं था। लेकिन क्या करूँ पुराने मकान का किराया भी बीस रुपये माहवार दे रहा हूँ। माता प्रसाद के क़र्ज़ में अब उनके हिसाब से नौ रुपया और तुम्हारे हिसाब से तीन रुपया और बाक़ी रह गये हैं। हरिहर नाथ को भी इस माह में कुछ देना है। रघुपति सहाय की बहिन की शादी मई में है। दो सौ रुपया माँग रहे हैं। आज 'चाँद' को लिखियेगा कि हमारी छपाई में से दो सौ रुपया उन्हें दे दें।

तुम्हारा धनपत राय।

●●

सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी

बरादरम,

तुमने मुझे पहले भी रुपये के लिये लिखा था और अपनी तिहीदस्ती का उज़र किया था। तुम्हें मालूम है कि मैंने प्रेस के लिए एक हज़ार तीन सौ रुपये के टाइप लगवाये थे। वह रुपये अभी तक पूरे अदा नहीं हो सके। बमुश्किल प्रेस का ख़र्च निकालकर टाइप के रुपये अदा कर रहा हूँ और जो तुमने नंदकिशोर के छः सौ रुपये क़र्ज़ पर लिये थे वो सब अदा कर रहा हूँ। बाबू हरिहरनाथ का सूद अदा कर रहा हूँ। पुराने मकान का किराया बीस रुपया माहवार अदा कर रहा हूँ फिर भी इस कोशिश में हूँ कि मुमकिन हो तो तुम्हारी मदद करूँ। गुलूख़लासी हो जाने पर तुम्हें एक सौ अस्सी रुपये जहाँ से हो सके दूँ। और दूँगा। तुमने प्रेस में इतना झंझट छोड़ रखा है कि उससे फुरसत ही नहीं मिलती। ख़ैर, पीर खुद मोंदे दरगाह कहाँ से लगे। मेरी हालत खुद ही अबतर है। तुम्हें खुदा खुश रखे। तेज बहादुर तो मौजूद हैं। मैं किसकी जान को दुआ करूँ। प्रेस में इतना नफ़ा कहाँ कि पाँच महीने में एक हज़ार तीन सौ रुपये टाइप का, एक सौ रुपये पुराने मकान का, छः सौ रुपये नंदकिशोर का, पचास रुपये तुम्हारी माता जी का, पचास रुपये शिवनंदन प्रसाद और माता प्रसाद का क़र्ज़ा अदा करके अपना गुज़र भी कर लूँ और तुम्हारी फ़िकर भी रखूँ। नियत ज़रूर यह है कि काम सबका चलता रहे। मगर सब काम नियत से ही तो नहीं हो जाते। इसका तुम यक़ीन रखो कि मैं साल आख़िर तक तुम्हें सूद हसबे वायदा जिस तरह मुमकिन होगा दूँगा। और तो मेरी हालत इस क़ाबिल नहीं कि तुम्हारी और कुछ मदद कर सकूँ। मैं खुद ही अपने अख़राजात से ज़ेरबार हूँ और मालूम नहीं होता कैसे ज़िंदगी पार लगेगी। शायद फिर नौकरी करनी पड़ेगी या क्या होगा। इस वक़्त तो मैं भी तंगहाल हूँ। और क्या लिखूँ।

तुम्हारा, धनपत राय

●●

स्वर्गीय प्रेमचंद जी की एक योजना

दो शब्द

कुछ दिन हुए पुराने काग़ज़-पत्रों की सफ़ाई करते हुए मुझे एक फ़ाइल मिली जिसके अस्तित्व को मैं भूल चुका था। इस फ़ाइल में प्रेमचंद जी की अनुवादक-मंडल संबंधी एक

योजना को लेकर मेरा उनका पत्र व्यवहार है। फ़ाइल पर कुछ अंशों में दीमकों की कृपा हो चुकी है। इस पत्र-व्यवहार पर फिर से नज़र डालते हुए, इसे प्रकाशित कर देने का विचार हुआ—वह इस उद्देश्य से कि संभवतः साहित्यिक मित्रों को इस योजना में दिलचस्पी उत्पन्न हो और वह इसे अग्रसर करना चाहें। प्रेमचंद जी वास्तव में बहुधंधी आदमी थे और उस समय मेरे पास भी उतना अवकाश नहीं था जितना कि इस योजना को सफल बनाने के लिए अपेक्षित था। इसलिए हम लोगों ने आपस में विचार करके इसे 'किसी आगे के समय' के लिए स्थगित कर दिया था। खेद है कि वह 'आगे' का समय उनके जीवनकाल में न आया। प्रेमचंद जी के स्मारक के रूप में यह योजना आगे बढ़ाई जाय तो भी अनुचित नहीं।

प्रेमचंद जी का और मेरा पत्रव्यवहार अंग्रेज़ी में है। इसका अनुवाद कृपा करके श्री इलाचन्द्र जोशी जी ने हिन्दी में कर दिया है। मैंने फ़ाइल ज्यों की त्यों सम्मेलन संग्रहालय को भेंट कर दी है, जिसमें कि सुरक्षित रह सके।

रामचन्द्र टण्डन।



अनुवादक-मण्डल की आवश्यकता

हिन्दी में दैनिक पत्रों का मूल्य दो पैसे से अधिक नहीं है। जब अंग्रेज़ी पत्र 16-20 पृष्ठों के चार पैसे में मिलते हैं तो हिन्दी के आठ पृष्ठों के पत्र के लिए दो पैसे से ज़्यादा जनता क्यों खर्च करने लगी।

बिक्री का दाम तो है दो पैसे लेकिन कठिनाइयाँ कितनी हैं ? 'रूटर', 'असोसियेटेड', 'फ्री प्रेस' सभी खबर पहुँचानेवाली संस्थायें तार द्वारा खबरें भेजती हैं। अंग्रेज़ी पत्र तार पाते ही उसको देखभालकर, कुछ विराम चिन्ह घटा-बढ़ाकर या ज़रूरत के मुताबिक़ तार को काट-छाँटकर कम्पोज़ करने के लिए भेज देते हैं। हिन्दी पत्रों में इन तारों का हिन्दी में तर्जुमा होना चाहिए। इसके लिए 4 से 6-8 तक अनुवादक रखे जाते हैं। तार मिला है दस बजे या ग्यारह बजे रात को। उसे एक बजते-बजते कम्पोज़िंग में चला जाना चाहिए, नहीं तो वह छप न सकेगा। इसी घंटे-दो-घंटे में अनुवादक को तेज़ी के साथ अपना काम करना पड़ता है। ख़बर छोटी-सी हुई तो कोई बात नहीं। लेकिन कहीं वह वायसराय या महात्मा गान्धी की स्पीच हुई या एसेम्बली या कौंसिल के बैठक की रिपोर्ट हुई तो एक, दो, तीन, चार कालमों की ख़बर हो सकती है, और एक घंटे के अन्दर उसका अनुवाद होना परमावश्यक है, नहीं वह ख़बर रह जायगी। ऐसी हड़बड़ी में अनुवाद कैसा होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है। वाक्य के वाक्य और पैरे के पैरे छोड़ देने पड़ते हैं और भाषा इतनी उलझी हुई, इतनी बेसिर-पैर की हो जाती है कि बहुधा उसका मतलब समझने के लिए अनुमान से काम लेना पड़ता है। यह कठिनाई सभी भाषा पत्रों के सामने है। एक तो हिन्दी पत्र दो पैसे में बिकें, दूसरे अनुवादकों का वेतन दे। तो वह क्यों न घाटे पर चले और क्यों न उसका जीवन संकटमय हो। दरिद्रता के कारण पत्रों को सुयोग्य अनुवादक भी नहीं मिलते। जब चालीस रुपये से लेकर, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी रुपये तक अनुवादकों का वेतन होगा तो फिर ऐसे आदमी कहाँ से आएंगे जो सुन्दर अनुवाद कर सकें। अनुवाद करना आसान काम नहीं है। एक-एक शब्द के लिए घण्टों दिमाग़

टटोलना पड़ता है और दिमाग़ से काम न चलने पर कोश के वरक़ उलटना पड़ते हैं। मेरा विचार है कि स्वयं कोई लेख लिखना आसान है, अनुवाद करना कठिन है और यह काम हम थोड़े वेतन के कर्मचारियों से लेने पर मजबूर हैं।

किन्तु आजकल कोई समाचार पत्र केवल ख़बरों ही के बल पर सफल नहीं हो सकता। उसमें जनता और भी चीज़ें चाहती है, जिससे उसका विचार फैले, उसकी जानकारी बढ़े, उसके भावों का परिष्कार हो, वह संसार के विचार-प्रवाह में मिल सके। ऐसे लेख दो पैसे के पत्र में कहां से आवें। उनकी सारी शक्ति खबरों के अनुवाद करने में ही खर्च हो जाती है। इसलिए यह आम शिकायत सुनने में आती है कि हिन्दी पत्रों में कुछ होता नहीं। हिन्दी पत्र वही पढ़ता है जो अंग्रेजी नहीं जानता, और आजकल जो कुछ पढ़ा-लिखा है, वह कुछ अंग्रेज़ी भी जानता है। ऐसे हिन्दी जाननेवाले जो अंग्रेज़ी बिलकुल न जानते हों अधिक नहीं हैं। और जो सम्पन्न हैं वह तो अंग्रेज़ी अवश्य ही जानते हैं। जनता को हिन्दी पत्रों से प्रेम है अवश्य, मगर जब उसे उसमें सन्तोषजनक मसाला नहीं मिलता तो वह विवश होकर अंग्रेज़ी पत्र पढ़ती है अंग्रेज़ी व्यापक भाषा है। उसके द्वारा आप संसार की सैर कर सकते हैं। रूस, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों के विचारक और विद्वान क्या कहते हैं यह जानने के लिए आपको अंग्रेज़ी पत्र पढ़ना अनिवार्य है। अगर हम इन लेखों को हिन्दी पत्रों में दे सकें तो इन पत्रों की उपयोगिता, मनोरंजकता और व्यापकता बहुत बढ़ जाय। मगर ऐसे लेखों का अनुवाद करना हिन्दी पत्रों के सामर्थ्य के बाहर है। खबरों का टेढ़ा-सीधा अनुवाद कर देने से भी काम चल जाता है, लेकिन एक कन्वोकेशन ऐड्रेस का अनुवाद तो सोच समझ कर ही करना पड़ेगा। इसीलिए हमें एक अनुवादक-मंडल की आवश्यकता है। इस मंडल का यह काम हो कि वह पच्छिमी पत्रों से विचारपूर्ण ज्ञानवर्धक लेखों का अनुवाद करके हिन्दी पत्रों को दें। यह ज़रूरी नहीं कि मंडल के सभी काम करनेवाले अपना पूरा समय दें। अपने मुख्य काम के साथ वे मंडल में कुछ सहयोग दे सकते हैं। लेकिन कुछ ऐसे आदमियों की ज़रूरत तो होगी ही जो अपना पूरा समय दे सकें। अगर मंडल को ऐसे आदमियों की सहायता मिल सके जो फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेज़ी आदि जानते हों तो क्या कहना। मंडल संसार भर के मुख्य पत्र मंगाये, यह निश्चय करे कि कौन-कौन से लेख अनुवाद के योग्य हैं, पत्रों से पत्रव्यवहार करके वह निर्धारित करे कि कौन-कौन से पत्र, कौन-कौन से लेख स्वीकार करते हैं। या यह हो सकता है कि मंडल पत्रों से मासिक चंदा तय कर ले और रोज़-रोज़ की अनुवाद सामग्री पत्रों के पास भेज दें। पत्र अपनी सुविधा, अवकाश और रुचि के अनुसार जो अनुवाद चाहे प्रकाशित करे। इस तरह की सामग्री देने से हिन्दी पत्रों की खपत बढ़ सकती है और संभव है कि वे भी अपना मूल्य एक आना कर सकें। तभी वे अंग्रेज़ी पत्रों का सामना कर सकते हैं और तभी उनका आदर होगा।

(अर्जुन)



सरस्वती प्रेस, बनारस

प्रिय भाई साहब,

आपका कार्ड, कई दिन हुए, मिला था, पर मेरी तबियत इस बीच ठीक नहीं रहती

है और इस समय भी कुछ विशेष अच्छी नहीं है। मैं उम्मीद करता हूँ कि शनिवार या इतवार को मैं इलाहाबाद पहुँचूँगा। एक तो जीर्ण रोग, तिस पर दांत का दर्द, इन दो कारणों से आपके यहाँ आने का प्रलोभन बहुत कुछ नष्ट हो गया। मैं आपके यहाँ के सुस्वादु व्यंजनों के रस लेने से वंचित ही रह जाऊंगा। यदि इस बीच कोई विशेष कारण न आ खड़ा हुआ तो मुझे उम्मीद है कि इलाहाबाद आ पहुंचूंगा।

आपका, धनपत राय।

(कार्ड पर 15 जून 1933 की डाक मुहर है)

●●

प्रिय विनोदशंकर जी,

पत्र मिला। 'जागरण' के बंद करने का कारण मेरे यहाँ भी वही था जो आपके यहां था। आपने छः महीने में ज्यादा से ज्यादा एक हज़ार का नुक़सान उठाया। मैं चार हज़ार के लपेट में आ गया। आपने जो लंबे-चौड़े वादे किये थे वह आपने एक भी पूरे न किये। मैं आपके चकमे में आ गया। खैर, आप तो 'जागरण' को बंद कर चुके थे। उसे मैंने फिर चलाया। आपने सौ ग्राहक दिये थे। वह सब टूट गये। मेरे लिए 'जागरण' नाम से कोई विशेष लाभ क्या बिल्कुल लाभ नहीं हुआ। मैंने इस पर चार हज़ार डुबाया है और इसे फिर निकालूंगा, चाहे खुद भी किसी के साझे में। आप साझा करना चाहें आप कर सकते हैं। अगर आप बिल्कुल इसे लेना चाहते हैं तो मुझे चार हज़ार रुपया नकद दे दीजिए या बीस रुपया महीने सूद का प्रबन्ध कीजिए। वरना कुछ दिन इंतज़ार कीजिए और देखिए कि मैं इसे निकालता हूं या नहीं। बहरहाल मुझे इसको अपने हाथ में रखकर किसी के साझे में निकालने का पूरा अख़्तियार है। आप साझा करें शौक़ से आइए। लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं दो साल का परिश्रम और चार हज़ार का घाटा यों ही निकल जाने दूं। आइए, आपने जो घाटा दिया है और मैंने जो घाटा दिया है उसका हिसाब लगाकर उस घाटे के परते से 'जागरण' में हमारा और आपका हिस्सा हो जाय और आगे के लिए आप भी धन निकालिए और मैं भी निकालूं। फिर इसे अच्छे रूप में चलाऊँ। आप खुद आठ घंटे काम कीजिए। मेरी तरफ से प्रवासीलाल जी काम करेंगे। हाँ, अगर आप खुद निकालना चाहें तो आप क्या यह उचित नही समझते कि मेरे परिश्रम और घाटे का मुझे कुछ बदला मिलना चाहिए।

भवदीय, धनपत राय।

●●

बनारस

प्रिय भाई,

तुम्हारी पुस्तक मुझे बम्बई से मिली। मैं पढ़ चुका। मुझे बहुत पसन्द आयी। सच है कि तुम्हारे दिल में अछूतों के प्रति कितना प्रेम भरा है।

कला, कहानी, चरित्र-चित्रण सब दृष्टि से पुस्तक उत्तम है।

विनीत, प्रेमचंद

●●

गणेशगंज, लखनऊ

प्रिय सद्गुरुशरण जी, वंदे।

मैं तो झांसी न जा सका। एक फोड़े ने बहुत तंग कर रखा है। फिर, मैं बोलना नहीं जानता, साहित्य के विषय में नये विचार भी मेरे पास नहीं हैं। जिसका प्रतिपादन करने के लिए जाता।

मैंने अपने पत्र में अपनी रचनाओं और उनके प्रकाशकों के नाम लिखे थे जो आपने पूछे थे, फिर लिखता हूँ।

पुस्तक	प्रकाशक
(1) सप्त सरोज, शेख़सादी, प्रेम-पूर्णिमा, प्रेम-पच्चीस, सेवासदन, प्रेमाश्रम	हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता
(2) रंगभूमि, प्रेम प्रसून, कर्बला	गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
(3) आज़ाद कथा (दो भाग), कायाकल्प, प्रेम-तीर्थ, प्रेम-प्रतिमा, ग़बन, पांच फूल, प्रतिज्ञा, गल्प रत्न।	सरस्वती प्रेस, काशी।
(4) नवनिधि	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बंबई
(5) निर्मला, प्रेम-प्रमोद	चाँद कार्यालय, प्रयाग
(6) वरदान	हिन्दी ग्रन्थ भंडार, बम्बई

मेरी कहानियों का एक संग्रह सप्त सुमन है जो बनारस युनिवर्सिटी के दसवें दफा में था। उसकी एक प्रति और प्रेमतीर्थ की एक प्रति मैंने आपके पास भेजने को कहा है। शायद उन्होंने भेजा हो। शेष कुशल।

भवदीय, धनपत राय।

●●

25, मारवाड़ी गली, लखनऊ

प्रिय पंडितजी,

मुझे खेद है कि यद्यपि मैंने अपने पिछले पत्र में आपसे जल्दी जवाब देने के लिए कहा था ताहम आपने मेरी प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया। न मुझे हिसाब मिला और न रुपया। क्या आप अब भी ऐसा सोचते हैं कि मुनाफा तब बँटेगा, जब कुल लागत पूँजी लौट आयेगी ? मैं ऐसा नहीं सोचता। हमारा इक़रारनामा यह था कि सारे खर्चे काटने के बाद मुनाफा बराबर-बराबर बाँट लिया जाय। क्या इसका मतलब यह है कि मुनाफा बाँटने के पहले कुल लागत वसूल हो जानी चाहिए। मेरी समझ में यह एक भ्रान्त धारणा है। मान लीजिए मैंने इस वर्ष पुस्तक माला में एक और पुस्तक जोड़ी होती जिसमें तीन हज़ार रुपये की लागत लगती तो शायद मुझे तब तक रुकना पड़ता जब तक कि आपके यह तीन हज़ार भी वसूल न हो जाते। फिर मान लीजिए अगले साल एक और किताब निकल आती तो फिर नयी पूँजी लगानी पड़ती। अगर आपका ऐसा खयाल है तो मुनाफा बाँटने का वक्त कभी न आयेगा क्योंकि आपका कुछ रुपया हमेशा स्टाक में लगा रहेगा और मुनाफे का विभाजन कभी संभव न होगा।

और जब आपकी कुल लागत निकल आयेगी तब आपको किताबों की बिक्री को

आगे बढ़ाने में क्या दिलचस्पी रह जायगी। समय बीतने के साथ-साथ बिक्री ढीली पड़ती जायगी और आप अपनी लागत निकालकर पूरी तरह बचे रहेंगे, एकदम सुरक्षित, मुझको भारी नुकसान उठाना पड़ेगा। आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं इन पुस्तकों को बेच सकता था और इनसे मुझे कुछ भी नहीं तो दो हज़ार दो सौ रुपये के करीब मिले होते। प्रूफ के संशोधन से मुझे कोई मतलब न होता। यह क्या मेरी ओर से लागत में हाथ बँटाना नहीं है ? क्या मेरी मेहनत की कोई कीमत नहीं है ? इस दो हज़ार दो सौ रुपये से मुझे एक सौ बत्तीस रुपया सालाना सूद की आमदनी होती।

पिछले साल आपने जो हिसाब दिया था, उससे पता चलता था कि सत्रह सौ रुपये का मुनाफा हुआ। कुछ चीज़ों का हिसाब ग़लत लगाया गया था, उदाहरण के लिए कुल बिक्री पर तैंतिस प्रतिशत काटा गया था, जब कि कुछ किताबें फुटकर ग्राहकों के हाथ भी बिकी होंगी। लागत को देखते हुए साढ़े आठ सौ रुपये का मुनाफा किसी तरह असंतोषजनक नहीं कहा जा सकता। कुल लागत पाँच हज़ार रुपये की थी। यह सब नक़द नहीं था। काग़ज़ उधार ख़रीदा गया। अगर काग़ज़ नक़द ख़रीदा गया होता तो चार फी-सदी की छूट तमाम इस्तेमाल होने वाले काग़ज़ के कमीशन के रूप में हुई होती। फिर विज्ञापन के ख़र्चे में भी कुछ आनुपातिक कमी हो गयी होती क्योंकि विज्ञापन में पुस्तकमाला के अनावार भी कुछ पुस्तकें शामिल कर ली गयी थीं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए और एक रुपया सूद काटने के बाद भी काफी अच्छा मार्जिन बच जाता है और कुल पूँजी का करीब एक तिहाई हिस्सा वसूल हो चुका है।

मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि मेरी बेटी की शादी इस साल तय हो जायगी और मुझे अपने अप-टू-डेट मुनाफ़े की रक़म की ज़रूरत होगी।

मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप हम दोनों ही की दृष्टियों से विचार करें और अपना ही जेब भरने की जल्दबाज़ी न दिखलायें। स्टाक आपके पास है। यह क्या काफी गारण्टी नहीं है।

मैं 6 फरवरी को बनारस आने की सोचता था लेकिन चूँकि मुझे आपके पास से कोई खत नहीं मिला और मुझे शक है कि आप वह रकम मुझे देंगे इसलिए मैं रुपये का इन्तज़ार लखनऊ में करूँगा।

मेरे एक दोस्त सुदर्शन साहब ने इसी तरह का इक़रारनामा मैकमिलन एण्ड कंपनी के साथ किया है। उनको अपना आधा मुनाफा हर छठे महीने मिल जाता है। मैं समझ नहीं पाता कि आप क्यों इक़रारनामे को उसकी असल शक्ल से मुख़्तलिफ़ ढंग से पेश कर रहे हैं।

आशा है कि आप मज़े में हैं।

आपका, धनपत राय।

यह पत्र, जो भेजा नहीं गया, शायद भार्गव भूषण प्रेस के पंडित जे. पी. भार्गव को लिखा गया था जिनसे इसी समय मुंशीजी का कुछ इक़रारनामा हुआ था जिसके अन्तर्गत 'सार्वजनिक ग्रन्थमाला' के नाम से कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। मूल पत्र अंग्रेजी में है।

●●

काशी विद्यापीठ, बनारस, 29 फाल्गुन, 1928

प्रिय श्री प्रेमचंद जी,

श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुत्री के नाम कुछ पत्र अंग्रेज़ी में लिखे थे। इन्हीं पत्रों द्वारा उन्होंने संसार का इतिहास बताने का प्रयत्न किया था। H.G. Wells की Outline of History का ढंग है। इतिहास समाप्त न हो सका। केवल रामायण-महाभारत काल तक का इतिहास दिया है। कुछ लोगों की राय है कि यदि इन पत्रों का हिन्दी-उर्दू में अनुवाद कराके प्रकाशित किया जाय तो हिन्दुस्तानी बालकों का बड़ा उपकार हो। भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिए।

मुझसे उन्होंने इस संबंध में परामर्श किया कि किन महाशय से इसके लिए प्रार्थना की जाय। हम लोगों की राय में आपसे बढ़कर कोई लेखक नहीं है, जो इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सके।

अतः आपसे प्रार्थना है कि इस कार्य को आप स्वीकार कर लें। अनुवाद Allahabad Law Journal Press से प्रकाशित होगा।

यदि अनुमति देने के पूर्व आप अंग्रेज़ी पत्र देखना चाहें तो मैं उनकी प्रतिलिपि आपकी सेवा में भेज दूँ। पुस्तक का नाम क्या होना चाहिए, इस संबंध में भी कृपया अपनी सम्मति प्रदान करें और पुस्तक को देखकर यह भी लिखें कि पुस्तक को और सुन्दर तथा उपयोगी बनाने के लिए क्या करना चाहिए।

आप अपने 'terms' भी कृपया लिखें।

आपका, नरेन्द्रदेव।

●●

प्रिय भाई प्रेमचंद जी,

आप तो इंदोर नहीं आये। लेकीन भाई जैनेंद्र प्रसाद आदि ने मिल के हमारी योजना को आगे बढ़ाई। इसका परिणाम एक प्रस्ताव से आया जिससे आंतर प्रान्तीय परिषद् बुलाने में सुगमता होगी। अब सवाल रहा मासिक पत्र का। जैनेंद्र कुमार ने कहा था के आप 'हंस' को इस काम में दे देंगे। यदि आप 'हंस' को इस प्रवृत्ति का मुख पत्र बना सकते हों तो हमारा काम बहुत ही सरल हो जायगा। आप मुझे शीघ्र लिखियेगा कि इस बारे में आपकी क्या राय है। गान्धी जी भी इस बाबत में बड़े प्रसन्न हैं और अच्छा सहकार दे देंगे, ऐसी मुझे आशा है। आपका उत्तर की राह देखता हुआ।

भवदीय, कन्हैयालाल मुन्शी।

मैं दो दीन में पंचगनी जा रहा हूँ। वहाँ पत्र भेजियेगा।

●●●